Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या प्र८९८,
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

112917

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४८,४६८

~~विज्ञान~~ महाविद्यालय पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

वर्ग संख्या ____________

ग्रन्थ संख्या ____________

यह पुस्तक निम्नांकित अन्तिम तिथि को या उससे पूर्व पुस्तकालय में जमा हो जानी चाहिये। अन्यथा पांच पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देना होगा।

सर्व स्वामी हरण १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १७, खण्ड २] अगस्त, १९१६ [संख्या २, पूर्ण संख्या २००

सरस्वती

112917

वार्षिक मूल्य ४) . सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची।

पृष्ठ
(१) भारतीय स्कूलों में इतिहास की शिक्षा—[लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० ... ७३
(२) नेपाली भाषा—[लेखक, श्रीयुत दीपकेश्वर शर्म्मा लोहनी (नेपाल) ७६
(३) अकृतज्ञता—लेखक, "सनेही" ... ७८
(४) अँगरेज़ों के लिए भारतवर्ष-विषयक ज्ञान की आवश्यकता—[लेखक, पण्डित बालकृष्ण नारायण सुधोलकर, बी० ए० ... ७९
(५) वर्षा और निर्धन—[लेखक, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, काव्यतीर्थ ८१
(६) राजस्थान के इतिहास—मूता नेणसी की ख्यात [लेखक, मुंशी देवीप्रसाद ... ८२
(७) विरक्त विज्ञानानन्द—[लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा ८५
(८) वेदों में फलित ज्योतिष—[लेखक, पण्डित दिवाकर शुक्ल ८६
(९) जीवन्मुक्त—[लेखक, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ९०
(१०) एरोप्लेन [वायुयान]—[लेखक, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, ई० ई०, लन्दन ९१
(११) पावस-परमा—[लेखक, "सनेही" ... ९३
(१२) वाणिज्य-व्यवसाय-सम्बन्धी सुधार—[लेखक, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशीनिवासी ९४
(१३) कोर्ट आव् वार्ड्स के कुछ रजिस्टर [५] [लेखक,—"अभिज्ञ" ९७
(१४) वनस्थली—[लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय ९९
(१५) महाराना राजसिंहजी का पत्र—[लेखक, श्रीयुत हरनाथसिंह १००
(१६) (क) आदि-रहस्य (ख) अज्ञात कारण (ग) असम्पूर्ण संवाद—[लेखक, श्रीयुत पारसनाथसिंह, बी० ए० ... ... १०२
(१७) काश्मीर की यात्रा—[लेखक, बाबू सुपार्श्वदास गुप्त, बी० ए० ... ... १०३
(१८) बेंजमिन फ्रैंकलिन—[लेखक, "सिंह-वर्म्मा" १०६
(१९) बाबू—[लेखक, श्रीयुत हरिहरनाथ, बी० ए० १०९
(२०) सांख्यशास्त्र के कर्त्ता—[लेखक, श्रीकृष्ण शास्त्री तैलङ्ग ११२
(२१) पारस पत्थर ११४
(२२) जातियों का संघर्षण—[लेखक, पण्डित जनार्दन भट्ट, एम० ए० ... ... ११७
(२३) विविध विषय १२२
(२४) पुस्तक-परिचय १३३
(२५) चित्र-परिचय १३६

चित्र-सूची।

१—कमलकुमारी (रङ्गीन)
२—मानोप्लेन (नं० १)
३—मानोप्लेन (नं० २)
४—बाईप्लेन (नं० १)
५—बाईप्लेन (नं० २)
६—ट्राईप्लेन।
७—पहलगांव (काश्मीर) में लियर नदी का दृश्य
८—बारामूला (काश्मीर)
९—पहले दरजे का हाउस-बोट (काश्मीर)
१०—नङ्गा-पर्वत का दृश्य (काश्मीर)
११—सोपुर नामक नगर और बितस्ता नदी पर पुल (काश्मीर)
१२—बाबू बसन्तलाल अग्रवाल
१३—नाना फड़नवीस
१४-१५ गज्जलकोंड़ की क़ब्रों में प्राप्त हुए मिट्टी के बर्तन
१६—गज्जलकोंड़ की एक बहुत पुरानी क़ब्र

विज्ञापन

पवित्र वस्तुप्रचारक कम्पनी कानपुर का काम कुछ दिनों के लिए बंद कर दिया गया है, इसलिए अब जिन्हें पवित्र देशी शकर की बाबत कुछ दरियाफ़्त करना हो वह 'पवित्र वस्तुप्रचारक कम्पनी, १८० हेरिसन रोड, कलकत्ता' से करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112917
४५, ४६८

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग १८, खण्ड १

जनवरी—जून

१९१७

CHECKED 1973

सम्पादक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

वार्षिक मूल्य चार रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अरबी-व्याकरण की उत्पत्ति	श्रीयुत महेशप्रसाद विद्यार्थी	२३
२	अवतार (कविता)	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०	१८७
३	आलोक-विश्लेषण-यन्त्र	बाबू अनमोलचन्द्र जैन, बी० एस-सी०	२१५
४	ईश्वर-गीता	लाला कन्नोमल, एम० ए०	१२६
५	ऐतिहासिक हिन्दू-सम्राट् [१]	लाला कन्नोमल, एम० ए०	२६६
६	औदार्य्य का उत्कर्ष	सम्पादक	४१
७	कभी कुछ और कभी कुछ (कविता)	श्रीठाकुर गोपालशरणसिंह	१३३
८	कवि-वर तीर्थराज	पण्डित शिवाधीन मिश्र बी० ए०	२६७
९	काला रङ्ग (कविता)	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०	२३३
१०	कालिदास की नीति-शिक्षा	पण्डित जनार्दन भट्ट, एम० ए०	३२५
११	कालिदास के प्रति (कविता)	श्रीयुत पारसनाथसिंह, बी० ए०	१५२
१२	किसानों की शिक्षा	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०	३२०
१३	कुछ न किया (कविता)	"सनेही"	२७७
१४	कुमारी हेलेन केलर	पण्डित गङ्गाशङ्कर मिश्र, बी० ए०	१३५
१५	कौंसिल में हिन्दी	सम्पादक	२०७
१६	गत वर्ष का जातीय सप्ताह	पण्डित ज्वालादत्त शर्मा	८५
१७	गायकवाड़ की पूर्वीय भाषाओं की पुस्तक-माला (समालोचना)	सम्पादक	१४४
१८	गीतारहस्य- विवेचन (समालोचना)	सम्पादक	१७२
१९	गूँगी (आख्यायिका)	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०	१६६
२०	ग्रामोफ़ोन	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ०	१४७
२१	चार्ल्स डारविन	श्रीयुत श्यामसुन्दर जोशी	११३
२२	चाहमान बीसलदेव का एक शिलालेख	पण्डित रामकर्ण	३२२
२३	चित्र-परिचय	सम्पादक	२६, ११२, १६८, २३२, २८८ और ३४४
२४	छोटों का काम (कविता)	श्रीयुत विश्वनाथसिंह	२६३
२५	ज़बान भाषा	उद्धृत	११६
२६	जीवन क्या है ?	अनुवादित	२५२
२७	ट्राम चलानेवाली	बाबू जगद्विहारी सेठ, बी० ए० (केम्ब्रिज)	१२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूची ।

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२८	त्रिकाल-ज्ञान का सामर्थ्य	पण्डित किशोरीदत्त शास्त्री	३६
२९	दुःसाहस (कविता)	पण्डित मुकुटधर	४१
३०	दृढ़ता (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	१३८
३१	नन्दिनी (आख्यायिका)	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० ...	६८
३२	नाटक और अभिनय	श्रीयुत सुरेन्द्रनाथसिंह, बी० ए० ...	३१
३३	निर्जीव और सजीव (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	२५
३४	पण्डित बिशननारायण दर	पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा	१
३५	पण्डित सदानन्द शुक्र	पण्डित बालदत्त पाण्डेय	२३
३६	पतितों की पुकार (कविता)	बाबू मोतीलाल, बी० ए०	२८
३७	पशु-पक्षियों की स्मरण-शक्ति	पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्र	१०
३८	पुरातत्त्व-विभाग का वार्षिक विवरण... ...	पण्डित देवीदत्त शुक्र	१४
३९	पुष्पाञ्जली (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३०
४०	पुस्तक-परिचय	सम्पादक ५२, १०६, १६४, २२८, २८४, और	३३८
४१	पृथ्वी की उत्पत्ति	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ०	२३८
४२	प्यार का अत्याचार (कविता)	बाबू पारसनाथसिंह, बी० ए० ...	४
४३	प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव ...	श्रीयुत कोसलेन्द्रप्रताप साही ...	२७
४४	प्राचीन तथा अर्वाचीन शिक्षा-पद्धति... ...	पण्डित हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए० ...	७
४५	प्रार्थना (कविता)	श्रीयुत हेमनाथ चन्द्रवंशी	१६
४६	प्रौढ प्रेम (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	२६
४७	फलित ज्योतिष	पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	११
४८	फूल-माला (कविता)	चकबस्त	८
४९	बङ्किमचन्द्र चैटर्जी, सी० आई० ई० ...	पण्डित बालदत्त पाण्डेय	५
५०	बिजली और रसायन की बदौलत धनोपार्जन ...	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ० ...	२
५१	बूढ़े का ब्याह (आख्यायिका)	पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा	३१
५२	भाषा की उन्नति (१) और (२) ...	बाबू सुरेन्द्रनाथसिंह, बी० ए० १८८ और	२५
५३	भिन्नता और वंश-परम्परा	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ० ...	३०
५४	मदिरा-पान पर कुठार-प्रहार	सेंट निहालसिंह, लन्दन	२३
५५	मनुष्यते ! (कविता)	"सनेही"	१२
५६	महत्ता और क्षुद्रता (कविता)	पाण्डेय मुकुटधर	३०
५७	मित्र-स्मृति (कविता)	"सनेही"	२९
५८	मेरी बड़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह	बाबू जगद्बिहारी सेठ, बी० ए०, केम्ब्रिज ...	८
५९	मंसूरी	बाबू गयाप्रसाद गुप्त	२०
६०	योरप और भारत का तत्त्व-ज्ञान	बाबू शारदाप्रसाद, एम० ए०, वकील, हाईकोर्ट ...	२९
६१	योरप की एक विचित्र प्रथा	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ० ...	८
६२	राधास्वामी-सम्प्रदाय	लाला कन्नोमल, एम० ए०	१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
६३	राना राजसिंह का पत्र, प्रभावती के पत्र का उत्तर (कविता)	बाबू द्वारकाप्रसाद गुप्त ...	... ३१८
६४	लिच्छवि-वंश का इतिवृत्त	पण्डित जनार्दन भट्ट, एम० ए०...	... ३८
६५	वन्ध्या (आख्यायिका)	पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक	... ६२
६६	विनय (कविता)	पण्डित रामदहिन मिश्र, काव्यतीर्थ	... ५७
६७	विविध विषय	सम्पादक ४४, ६६, १५२, २१६, २७८ और	३३३
६८	विश्व-वेदना (कविता)	"भारतीय"	... ६१
६९	विहार की ऐतिहासिक प्रधानता	श्रीगङ्गापतिसिंह ...	... २६९
७०	वेद हैं (कविता)...	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय...	... २०४
७१	व्यवहार द्वारा भाषा-शिक्षा	पण्डित केशवप्रसाद मिश्र ...	... १३०
७२	शङ्कराचार्य्य श्रीमन्माधवतीर्थ स्वामी	कवि अम्बालाल लज्जाशङ्कर आचार्य्य	... २७
७३	शान्ति-देवी (कविता)	बाबू मोतीलाल, बी० ए०, सी० टी०	... १६४
७४	शिव सङ्कल्प (कविता)	कर्ण	... २९१
७५	श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी	पण्डित गणेशराम मिश्र ...	... २८६
७६	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना	सेंट निहालसिंह, लन्दन ...	... १३५
७७	श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस की पुस्तकें—समालोचना [१], [२] और [३]	सम्पादक	१४०, १६७ और २६५
७८	साकची में लोहे का कारखाना	पण्डित जोखू पाण्डेय ...	... २४६
७९	साकेत, तृतीय और चतुर्थ सर्ग (कविता) ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	... ५ और २४२
८०	साहित्य-सम्मेलन और सहकारिता	पण्डित गोविन्द नारायण हर्डीकर, बी० ए०, एल-एल० बी० ...	... २०२
८१	सिन्धु और बिन्दु (कविता)	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	... २०७
८२	सिंहलद्वीप में सेंगरों का राज्य	कुँवर शिवनाथसिंह सेंगर ...	... ७७
८३	स्त्रियों की शिक्षा कैसी होनी चाहिए... ...	पण्डित मूलचन्द भट्ट ...	... ६६
८४	स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता	बाबू शालग्राम गुप्त ...	... ३०६
८५	स्वर्गीय पण्डित गणपतिराव देसाई	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०	... १६९
८६	हमारा प्यारा भारतवर्ष (कविता)...	पाण्डेय लोचनप्रसाद ...	... ११३
८७	हमें चाहिए (.कविता)	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय...	... १४३
८८	हिन्दी-कविता में तुकान्त का उद्गम	पण्डित हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए०	... ७४
८९	हिन्दी में प्रत्यक्ष और परोक्ष भाषण... ...	पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	... ३१०
९०	हिन्दी में विराम-चिह्नों का दुरुपयोग ...	पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	... १८३
९१	हृदय (कविता)	पाण्डेय मुकुटधर ...	... १५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची।

रङ्गीन चित्र।

नंबर	नाम	महीना	पृष्ठ
१	अति-विलम्ब ...	... मई ...	... आदि पृष्ठ
२	आस असाढ़ ...	... जून ...	... आदि पृष्ठ
३	काश्मीर का प्रातःकालीन दृश्य	... एप्रिल ...	... आदि पृष्ठ
४	नवोढ़ा ...	... फ़रवरी ...	... आदि पृष्ठ
५	व्रज में होली ...	... मार्च ...	... आदि पृष्ठ
६	शारदा ...	... जनवरी ...	... आदि पृष्ठ

सादे चित्र।

१—४	आलोक-विश्लेषण-यन्त्र-सम्बन्धी ४ चित्र	२१२
५	इक्कीस सेर दूध देने वाली गाय	४४
६	एडिसन साहब अपने पुस्तकालय में बैठे हुए ग्रामोफ़ोन का रेकर्ड देख रहे हैं...	१५२
७	एडिसन साहब और उनका टीन का फ़ोनोग्राफ़	१३६
८	एडिसन साहब और उनका तैयार किया हुआ फ़ोनोग्राफ़	१५२
९	ताता के लोहे के कारख़ाने और कार्य्यालय का दृश्य, साकची ...	२७२
१०	पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट	३१२
११	पण्डित बिशननारायण दर	४
१२	परलोकवासी गोस्वामी श्रीपन्नालालजी महाराज	१६४
१३—१४	प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव—नामक लेख से सम्बन्ध रखने वाले २ चित्र	२७७
१५	बङ्किमचन्द्र चैटर्जी, सी० आई० ई०	६०
१६	बाबा गम्भीरनाथजी	२८४
१७	भीम का मन्दिर, महेन्द्रगिरि	३६
१८	महाराजा चरखारी के नाम का तुग़रा	३४०
१९	माननीय राय प्रयागनारायण भार्गव बहादुर	८४
२०	मिस्टर जे० एन० दस्तूर, बी० ए०, साकची	२५७
२१—२६	मेरी बड़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह—नामक लेख से सम्बन्ध रखने वाले ६ चित्र	६८, ७६ और ८७
२७	मंसूरी का केम्पटी नामक जल-प्रपात	२०८
२८	मंसूरी का लाइब्रेरी बाज़ार	१९२
२९	मंसूरी की डांडी	१९२
३०	मंसूरी की रिकशा नामक गाड़ी	१९६
३१	मंसूरी की हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणी	१९६
३२—३७	युद्ध-सम्बन्धी छः चित्र ...	५०, ५२, ५४, ६२, १०० और १०८
३८	युधिष्ठिर का मन्दिर, महेन्द्रगिरि	४०
३९	राधास्वामी-सम्प्रदाय के महाराज-साहब, पण्डित ब्रह्मशङ्कर मिश्र, एम० ए० ...	२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०	राधास्वामी-सम्प्रदाय के स्वामीजी महाराज...	८
४१	राधास्वामी-सम्प्रदाय के हुज़ूर-महाराज, राय सालिगराम बहादुर ...	१२
४२	रामघाट, हुशङ्गाबाद	३००
४३	राय-साहब एस० चक्रवर्ती, साकची	२४०
४४	वर्णाकृतियों के नमूने (१)	३२४
४५	,, (२)	३२८
४६	शङ्कराचार्य्य श्रीमन्माधवतीर्थ स्वामी	२४
४७	श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी	२६६
४८	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ०	१२०
४९	श्रीयुत पण्डित मुन्नालाल तिवारी, साकची	२६०
५०	सर प्रमदाचरण बैनर्जी, बी० ए०, बी० एल०	२८
५१	सर हरकर्ट बटलर	२२४
५२	संक्षिप्त-नाम-लेखन के नमूने	३१६
५३	संस्कृत-सूक्तियों के नमूने	३२८
५४	स्वर्गीय गणपतिराव देसाई	१७६
	रङ्गीन चित्र	६
	सादे चित्र	५४
	कुल	६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

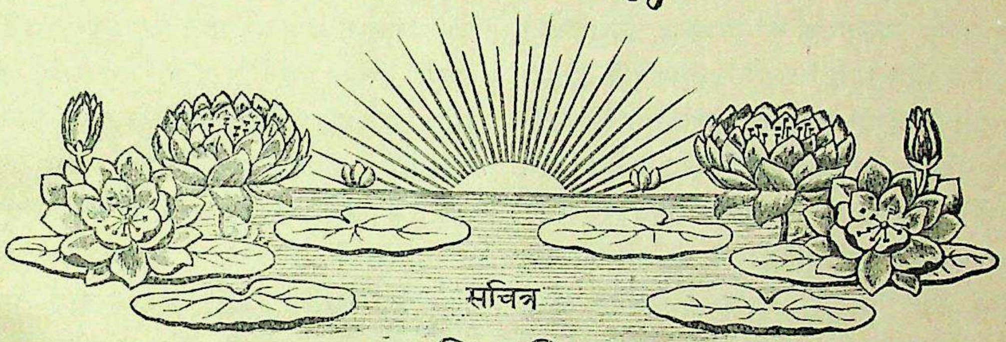

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग १७, खण्ड २] अगस्त १९१६—श्रावण १९७३ [संख्या २, पूर्ण संख्या २००

भारतीय स्कूलों में इतिहास की शिक्षा।

इतिहास की जैसी दुर्गति हमारे देश के स्कूलों में हो रही है वैसी शायद ही किसी अन्य देश में होती होगी। अध्यापक इस विषय को नीरस समझते हैं और चाहते हैं कि जितनी सुगमता और शीघ्रता से हो सके, यह पूरा कर दिया जाय। परन्तु वास्तव में जितना कठिन, जितना महत्त्वपूर्ण और जितना रोचक यह विषय है उतना अन्य नहीं। जातियों के पुनरुद्धार और व्यक्तियों के चरित्र-गठन पर इतिहास का अनुपम प्रभाव पड़ता है। यदि भारत का इतिहास अच्छी तरह लिखा जाय तो इसकी रोचकता चन्द्रकान्ता को और इसकी शिक्षा पञ्चतन्त्र को भी मात कर दे। परन्तु दुःख तो इस बात का है कि हमारे यहाँ, जहाँ उच्च आदर्श रखने वाले देश-हितैषी अध्यापकों की कमी है, इतिहास की अच्छी और उपयोगी पुस्तकों की भी कमी है। अध्यापक लोग विश्व-विद्यालय की नियत की हुई पाठ्य-पुस्तकों के 'सार' और 'कुञ्जियाँ' बना कर उन्हें विद्यार्थियों को रटा देना और येन केन प्रकारेण उन्हें परीक्षा में पास करा देना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। जाति के विचारों में परिवर्त्तन और उसके भीतर नव-जीवन का सञ्चार करने का उन्हें कभी ख़याल ही नहीं होता। जो अध्यापक इतिहास के महत्त्व को नहीं समझता, जो उसकी उपयोगिता का अनुभव नहीं करता, वह कदापि इतिहास का अध्यापन-कार्य्य करने योग्य नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास के अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह गत पीढ़ियों के अनुभव का इस प्रकार उपयोग करे जिससे वर्तमान और आगामी पीढ़ियाँ पिछली पीढ़ियों से उत्तमतर और श्रेष्ठतर हों। भूत के अनुभव से कौन सी बात किस रीति से भविष्यत् के लाभार्थ करनी चाहिए, यह जानने की योग्यता उसमें होनी चाहिए।

इतिहास के अध्यापक का सम्बन्ध विद्यार्थियों से असाधारण होता है। उसे अपने देश के भूत और भविष्यत् के बीच एक प्रकार का दूत ही समझिए। वह एक प्रकार का रसायन-शास्त्री है। अपने पूर्वपुरुषों के इतिहास से जो कुछ उसने सीखा है उसकी साररूपिणी जड़ी-बूटियों के संयोग से वह कोई नवीन और अद्भुत वस्तु बनाने की चेष्टा करता है। इस तरह वह संसार के विचार-प्रवाह को उन्नति के अनुकूल बनाता है। इस इतिहासाध्यापकरूपी रसायन-शास्त्री की वे जड़ीबूटियाँ मनुष्यों का जीवन हैं और उसके कार्य्य का उद्देश भविष्यत् को भूत के पापों और भूलों से बचाना है।

भारत के इतिहास में कितनी ही ऐसी विशेषतायें हैं जो अन्य देशों के इतिहासों में बहुत कम मिलती हैं। जिन व्यापक नियमों के अनुसार ऐतिहासिक घटनायें हुआ करती हैं और जिनका ढूँढ़ निकालना ही सच्चा ऐतिहासिक ज्ञान है वे नियम भारत के इतिहास में जगह जगह मिलते हैं। वे इतने स्पष्ट और उज्ज्वल हैं कि युवक विद्यार्थी भी शीघ्र ही उन्हें जान सकता है। वह उनके आशय को अपनी वर्तमान और भविष्यत् स्थिति पर घटा भी सकता है। भारतीय इतिहास के इन दो बड़े नियमों को ही लीजिए—(१) कर्म्मों का फल भोगना और (२) एकता के बिना शक्ति का अभाव।

भारत के इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ कर्म्म-सिद्धान्त की सत्यता का साक्ष्य दे रहा है। सहस्रों स्थानों पर हम देखते हैं कि पापियों को दण्ड मिल रहा है, अभिमानियों का गर्व टूट रहा है, अत्याचारियों पर पुनः अत्याचार हो रहा है, और कपटियों के साथ दूसरे कपट कर रहे हैं। बीसियों जगह हम देखते हैं कि विजेता निर्दय होकर अपनी शक्ति का उपयोग कर रहे हैं और उन्हें उसका अनिवार्य्य फल भी मिल रहा है। हम सैकड़ों पुरुषार्थी और पराक्रमी मनुष्यों को लोभ और व्यभिचार से बलहीन और भ्रष्ट हुआ पाते हैं। यदि वास्तव में देखा जाय तो भारत का इतिहास उसमें उत्पन्न हुए लोगों के जय और पराजय का इतिहास नहीं; बल्कि उसके साधु-महात्माओं, उसके अवतारों, उसके तत्त्ववेत्ताओं और आध्यात्मिक जगत् में उनके अद्भुत पराक्रमों का इतिहास है।

भारत के इतिहास के रङ्ग-मञ्च पर हम कर्म्म का खेल देखते हैं, जहाँ मनुष्य पाप बोकर विनिपात, और आत्म-संयम तथा उत्साह बोकर लाखों लोगों के प्रेम और भक्ति का फल प्राप्त कर रहे हैं।

भारतीय इतिहास का दूसरा बड़ा नियम यह है कि एकता के बिना शक्ति नहीं आती। उसके अध्ययन से आप इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि जो जाति सार्वजनिक हित के निमित्त घरेलू प्रभेदों को छोड़ कर एक नहीं हो सकती उसकी दुर्गति की कोई सीमा नहीं। अपने इतिहास का थोड़ा भी पाठ करने वाले भारतीय बालक के हृदय पर एकता की शिक्षा अवश्य अङ्कित करनी चाहिए। उसे इतना नीच न होना चाहिए कि निज के कल्याण को सार्वजनिक कल्याण से उत्तम समझे। राष्ट्रीय उत्थान के लिए जो चेष्टायें हो रही हैं उनके मार्ग में बाधा डालने वाले सम्प्रदाय-सम्बन्धी घातक पक्षपात को भारतीय इतिहास की सच्ची शिक्षा ही दूर कर सकती है। अभीष्ट-सिद्धि तभी हो सकती है जब भूत की दारुण फूट का परिणाम शिष्यों के मन पर अङ्कित कर दिया जाय। इतिहास की सुशिक्षा भारतीय जीवन के सारे प्रवाह को और आर्य्य-जाति के सारे प्रारब्ध को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल सकती है। पर शोक है कि भारतीय इतिहास के अक्षय्य भाण्डार का उचित उपयोग नहीं किया जाता।

इस त्रुटि के कितने ही कारण हैं। उनमें से पहला कारण अध्यापकों की अयोग्यता है। जब तक ये लोग अपने कार्य्य के महत्त्व को न समझेंगे और देश-भक्ति के भावों से प्रेरित न होंगे तब तक अधिक उन्नति सम्भव नहीं। आज कल जो लोग और काम नहीं कर सकते वे झट अध्यापक बन जाते हैं। अफ़सोस!

इस त्रुटि का दूसरा कारण शिक्षा की वर्तमान सदोष शैली है। इतिहास और भूगोल रटा कर याद कराये जाते हैं। प्राचीन काल की पाठशालाओं में संस्कृत-साहित्य प्रायः रटाया जाता था। पर गुरु के चरणों में बैठ कर शिक्षा पाने से इसके दोष दूर हो जाते थे। क्योंकि गुरु हर समय प्रत्येक बात को स्पष्ट करने के लिए उद्यत रहते थे। उस समय की शिक्षा उथली शिक्षा न होती थी। शिक्षार्थी का सम्पर्क पवित्र और परिपक्व मन के गुरु से रहता था। इस कारण वह शिक्षा चिरस्थायिनी होती थी। अब इस प्राचीन शैली के सिर्फ़ दोष ही दोष रह गये हैं; गुण नहीं रहे। आज कल का मास्टर अपने परिपक्व अनुभव के द्वारा पाण्डित्य और प्रज्ञा का सञ्चार करने वाला सच्चा गुरु नहीं। उसमें न तो यथेष्ट बुद्धिमत्ता ही होती है और न आकलन-शक्ति ही। यदि प्राचीन शैली के अनुसार उसकी सङ्गति में बच्चे रक्खे जायँ तो लाभ के स्थान में हानि ही की अधिक सम्भावना है। अभी तक हमारे शिक्षकों ने रटाने की शैली नहीं छोड़ी। इसलिए विद्यार्थी आधुनिक समस्याओं पर ऐतिहासिक परिणामों का प्रयोग नहीं कर सकते। अर्थात् वे नहीं अनुमान कर सकते कि अमुक घटना का परिणाम क्या होगा और किन कारणों से वह घटना हुई है।

तीसरा कारण पाठ्य-पुस्तकों की अपूर्णता है। किसी जाति के इतिहास का पाठ करने से उस जाति के विषय में प्रेम-भाव उत्पन्न होता है। यह आवश्यक नहीं कि इतिहास में जातीय गर्व उत्पन्न करने वाले उस जाति के गौरव और ऐश्वर्य्य का ही वर्णन हो। नहीं, किसी जाति की भिन्न भिन्न दशाओं का ज्ञान, चाहे वे दशायें कितनी ही विपत्तियों और कष्टों से भरी हों, उसकी भावी सन्तान के हृदय में एक विशेष भाव पैदा करती हैं। यही भाव पैदा करना इतिहास का उद्देश है। इसके अतिरिक्त किसी देश का सच्चा इतिहास कोई अन्य देशवासी नहीं लिख सकता। यह वैसे ही असम्भव है जैसे कोई अपरिचित व्यक्ति हमारे माता-पिता पर पुत्रवत् श्रद्धा रखने की डीँग मारे। विशेष कर वे लोग जो कभी किसी कारण से किसी देश के विरोधी दल में रहे हों उस देश की दशा का सच्चा वर्णन नहीं लिख सकते। वे केवल अपनी ही ओर देख सकते हैं; दूसरी ओर देख सकना उनके लिए असम्भव है। जब दो जातियों के बीच युद्ध होता है तब प्रत्येक पक्ष दूसरे को बुरा बताता है और सारा दोष दूसरे ही पर मढ़ता है। दलबन्दी में प्रत्येक मनुष्य अपने दल वालों के सामने अपना ही पक्ष पुष्ट करता है। इसी तरह प्रत्येक दल अपने कर्त्तव्य का विधान करके उसके साधन के लिए युक्तियाँ और कारण उपस्थित करता है। उन कारणों और युक्तियों का जानना ही किसी जाति के इतिहास का अध्ययन है। जो पुस्तकें इस दृष्टि से लिखी गई होंगी उनमें सुबुक्तगीं या महमूद की उदारता या दयालुता की कथायें न सुन पड़ेंगी। बल्कि उनमें ये बातें मिलेंगी— उस समय हिन्दुओं की दशा कैसी थी? उनकी निर्बलता के कारण क्या थे? उन्होंने किस प्रकार मुक़ाबला किया? उस मुक़ाबले में उनको कहाँ तक सफलता हुई? उनकी असफलता के कारण क्या थे? उन आक्रमणों से उनके सामाजिक और धार्म्मिक जीवन में क्या क्या परिवर्तन हुए? आगे चल कर, जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसल्मान आक्रमणकारी दिल्ली के स्वामी बने तब हिन्दू क्या करते रहे ? मुग़लों के साथ बर्ताव करने में हिन्दुओं की क्या नीति थी ? उसमें क्या दोष और क्या गुण थे ? अन्ततः हिन्दुओं में ऐसी क्या चीज़ थी जिससे हिन्दू प्रबल हो गये और उन्होंने मुग़लों से अपना राज्य छीन लिया ? सारांश यह कि उन पुस्तकों में मुख्य बात यह न होनी चाहिए कि भारत में कौन आये और उन्होंने कैसा बर्ताव किया, बल्कि यह लिखा होना चाहिए कि यहाँ के निवासियों ने नवागतों के साथ कैसा बर्ताव किया और उसका प्रभाव देश-वासियों पर क्या हुआ ?

हमारे इतिहास पर जितनी पुस्तकें आज कल प्राप्य हैं उनमें से किसी में भी उपर्युक्त बातें नहीं मिलतीं। इतिहास के वे ग्रन्थ आक्रमणों की भरमार, दलबन्दी की कहानियों और अत्याचारों के लम्बे चौड़े वर्णनों से भरे पड़े हैं। उनमें राजाओं के नामों, उनके जन्म-मरण की तिथियों और देवी-देवताओं के अपमान-सूचक किस्सों ही की भरमार है। उनमें भारत की धर्म्म-बुद्धि के विकास का कहीं नाम भी नहीं। हमारे नव-युवकों के हाथ में तो ऐसी पुस्तकें जानी चाहिए जिन्हें किसी सच्चे भारतवासी ने पूर्वोक्त लक्ष्यबिन्दु पर ध्यान रख कर लिखा हो।

आचार, सुधार और नीति-शिक्षा के लिए भी इतिहास की परम आवश्यकता है। ऐतिहासिक घटनायें जिन नैतिक नियमों की दृष्टान्त-दर्शक होती हैं उनको ढूँढ निकालने से पाप और पुण्य, केवल यही दो शब्द नहीं रह जाते, जिनका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु आँधी और तूफ़ान से भी बढ़ कर कोई बड़ी वस्तु मालूम होने लगती है। सदाचार, देश-भक्ति और धर्म्म सच्चों के मित्र और झूठों के शत्रु दिखाई देने लगते हैं। औरङ्गज़ेब के जीवन के अन्तिम काल का प्रकृत आशय मराठों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करना ही नहीं; किन्तु पक्षपात और सहिष्णुता का कड़वा फल तोड़ना है। अकबर द्वारा चित्तौड़ की लूट का वर्णन मुग़ल-साम्राज्य के विस्तार से सम्बन्ध रखने वाला उपाख्यान मात्र नहीं; किन्तु उन वीरों के कार्य्य-कलाप-वर्णन से सम्बन्ध रखने वाला दुःखमय महाकाव्य है जो प्रबल शत्रु के मुक़ाबले में भी आपस की फूट को नहीं भूल सके। मुग़ल-साम्राज्य का पतन एक ऐसे वंश की अपरिहार्य्य मृत्यु है जिसने राज-काज से मुख मोड़ कर विषय-भोग को ही महान् अन्तिम साध्य समझा था। इस प्रकार इतिहास की प्रत्येक घटना से व्यक्तियों और जातियों को शिक्षा मिलती है। ऐसी ही शिक्षा देना अध्यापक का प्रधान कर्तव्य है।

सन्तराम, बी० ए०

नेपाली भाषा।

यों तो नेपाल में कितनी ही भाषायें बोली जाती हैं, पर उनमें मुख्य तीन ही हैं—(१) नेवारी (२) भोटिया और (३) गोरखा। यही तीन भाषायें न्यूनाधिक परिमाण में यहाँ विशेष रूप से प्रचलित हैं। नेवारी-भाषा के बोलने वाले नेपाल नगर ही में बहुत हैं। नेपाल के उत्तरी और पूर्वी प्रान्तों के निवासी भोटिया-भाषा बोलते हैं। पर यह भाषा असभ्यों की भाषा समझी जाती है। अब गोरखा-भाषा का हाल सुनिए—

गोरखा-भाषा ही नेपाल की प्रधान भाषा है। राजा तथा प्रजा के सब काम इसी भाषा में होते हैं। नेपाल को जीत कर जब गोर्खालियों ने काठमाण्डू को अपनी राजधानी बनाया तभी से यह गोरखा-भाषा कहलाने लगी। इसकी उत्पत्ति देववाणी संस्कृत से हुई जान पड़ती है। क्योंकि संस्कृत और नेपाली भाषा के शब्दों में बहुत कुछ साम्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

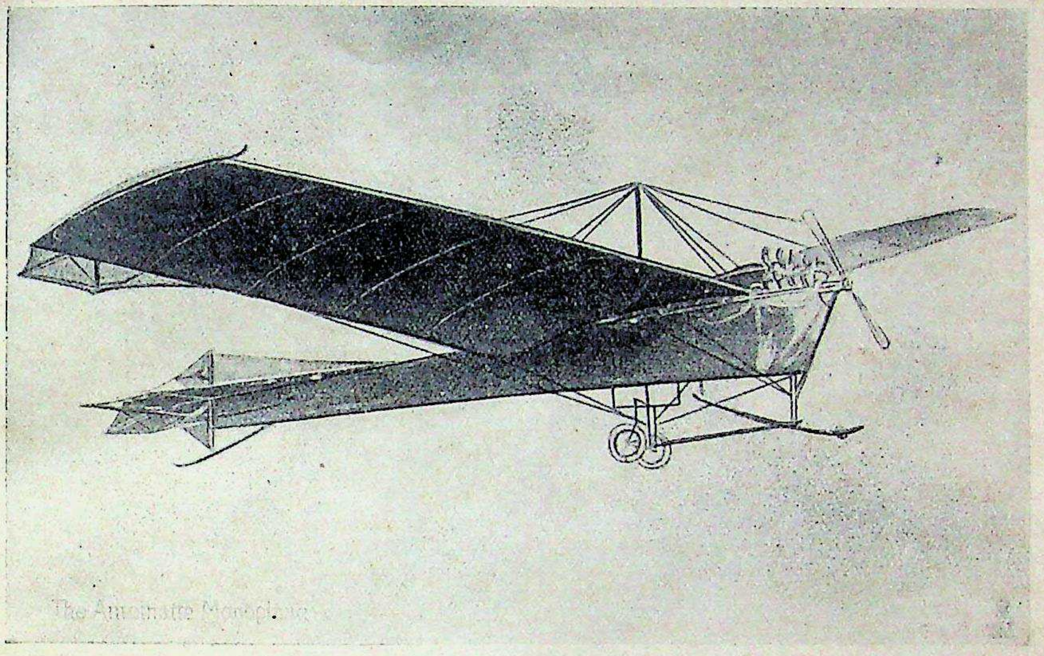

मानोप्लेन (१) (एकही सतह का वायुयान)

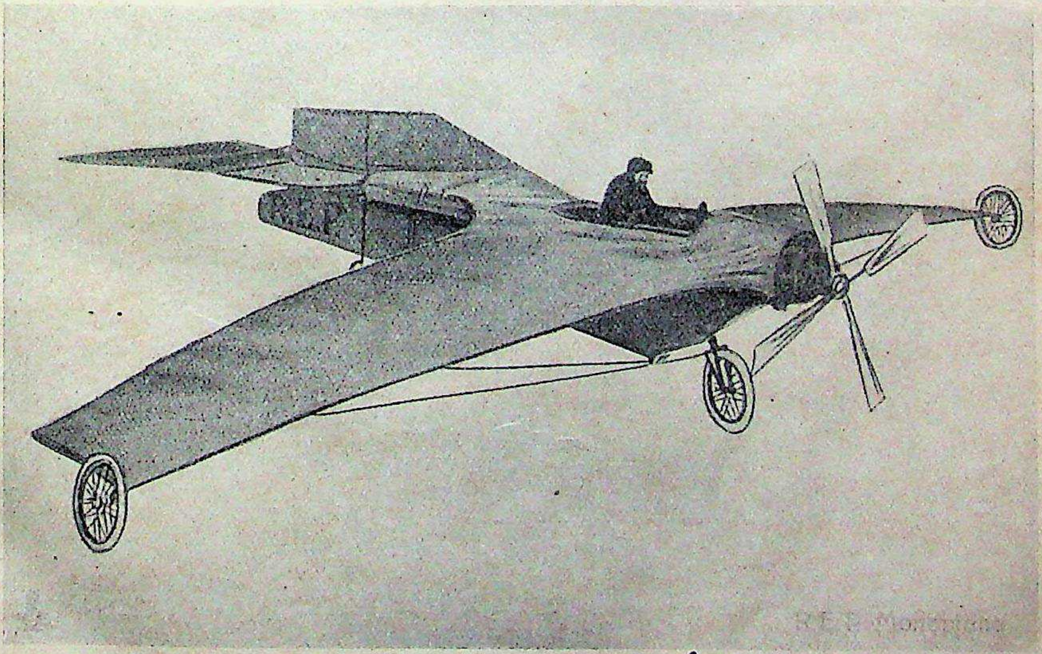

मानोप्लेन (२) दूसरा ढँग।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख पड़ता है। नेपाली-भाषा के साहित्य में काफ़ी शब्द-समूह नहीं। अतएव बँगला, उर्दू, हिन्दी, संस्कृत इत्यादि भाषाओं के कितने ही शब्द इसमें पाये जाते हैं।

कहा जाता है कि कोई साठ वर्ष पूर्व तक इस भाषा में कोई ग्रन्थ न था। विक्रम-संवत् १९११ में महाराज सर जङ्गबहादुर ने नेपाली भाषा में क़ानून की पुस्तकों का अनुवाद कराया। उस समय भी इस भाषा में १००—५० फुटकर पद्यों को छोड़ कर साहित्य-सम्बन्धी एक भी ग्रन्थ न था। इसी समय नेपाली-भाषा के आदि-कवि भानु-भक्ताचार्य्य, किसी कारण, नेपाल-सरकार के कोपपात्र हुए। अतएव आप को ४ महीने तक हवालात में रहना पड़ा। उस दशा में आपने नेपाली-भाषा में रामायण के तीन काण्ड सानुप्रास श्लोक-बद्ध लिखे। लिख कर आपने नेपाल-राज्य के तत्कालीन चीफ़ साहब, कृष्ण-बहादुर-जङ्ग राना को भेट किये। चीफ़ साहब ने आपकी रचना-शैली की ख़ूब प्रशंसा की। तब आप ही की सहायता से कविजी हवालात से छूटे। छूट कर रामायण के शेष काण्ड भी आप ने लिख डाले। पर उस समय यह ग्रन्थ न छप सका। इस कारण उसका यथेष्ट प्रचार न हुआ। पीछे—संवत् १९४८ में—उदार कवि मोतीराम भट्ट ने पूर्वोक्त रामायण को छपा कर प्रकाशित किया। लोगों ने उसे ख़ूब आदृत किया। मोतीराम भट्ट ने आदि-कवि का जीवन-चरित और उनके लिखे अन्यान्य निबन्धों को भी प्रकाशित किया। मोतीराम भट्ट नेपाली-साहित्य के प्रतिभाशाली कवि थे। आपने कितने ही रोचक प्रबन्धों की रचना की। गद्य-लेख और सङ्गीत-साहित्य का प्रचार नेपाल में सब से पहले आप ही ने किया। खेद है, आप अल्पवय में ही स्वर्ग-सदन को सिधार गये।

आपके पश्चात् नेपाल में कई कवि हुए। उन्होंने उपयोगी ग्रन्थ भी लिखे। नेपाल के पाशुपत प्रेस ने ऐसे कितने ही ग्रन्थ प्रकाशित किये। काशी के पण्डित हरिहरजी ने भी कुछ ग्रन्थों को प्रकाशित किया। इसी समय काशी में "रसिक-समाज" की स्थापना हुई। सुन्दरी नाम की एक मासिक पत्रिका भी इस समाज ने निकाली; पर अब न वह समाज ही जीवित है और न पत्रिका ही। समाज के निर्वाण के तीन ही साल बाद पत्रिका भी बन्द हो गई। परन्तु यह पत्रिका नेपाली समाज में कितने ही लेखक उत्पन्न कर गई।

बम्बई से पण्डित हरिहरजी ने गोरखा-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्य्यालय स्थापित करके बहुत से उपयोगी ग्रन्थ निकाले। इस कार्यालय से माधवी नाम की एक मासिक पत्रिका का भी जन्म हुआ था। पर वह भी, खेद है, मृत्यु को साथ ही लेती आई थी।

नेपाली-साहित्य दिन पर दिन उन्नति करता गया। पर व्याकरण, पिङ्गल अथवा काव्य-शास्त्र पर अब तक कोई पुस्तक न लिखी गई थी। अतएव कवि मनमानी उच्छृङ्खलता और निरङ्कुशता से काम लिया करते थे। यह देख कर कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने घोषणा कर दी कि जब तक व्याकरण आदि के उचित नियम न बन जायँ नेपाली भाषा विश्वविद्यालय में स्थान न पावे। बस, फिर क्या था, व्याकरण-रचना होने लगी। अब तक दो व्याकरण प्रकाशित भी हो चुके हैं—(१) श्रीहेमराज पण्डित का बनाया चन्द्रिका नामक सोपपत्तिक वृहद् व्याकरण और (२) पण्डित विश्वमणि का लिखा हुआ गोरखा-भाषा का व्याकरण। व्याकरण-सम्मत लेख लिखे जाने के उद्देश से हमारे साहित्य-प्रेमी महाराज सर चन्द्रशमशेरजङ्ग बहादुर राना ने एक साहित्य-समिति स्थापित की है। इस प्रबन्ध से अब नेपाली भाषा में व्याकरण-सम्मत लेख लिखे जाने लगे हैं। अतएव, आशा है, यह भाषा फिर से कलकत्ता-विश्वविद्यालय में स्थान पा जायगी।

नेपाली भाषा अब प्रति दिन उन्नति कर रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । उसके भिन्न भिन्न अङ्गों की पूर्ति के लिए लोग सचेष्ट हैं । कुछ समय से काशी में एक नेपाली पुस्तकालय खुला है । यह नेपाली भाषा की उन्नति का प्रमाण है ।

इस समय नेपाली भाषा में चार सामयिक पत्र निकल रहे हैं—(१) गोरखा नेपाल से (२) गोरखालि बनारस से (३) गोरखे और (४) गोरखा-साथी दार्जिलिङ्ग से । नेपाल में ८ मुद्रणालय—छापाख़ाने—हैं । उनसे नई नई पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं ।

दीपकेश्वर शर्मा लोहनी

(नेपाल)

—

अकृतज्ञता ।

(१)

जिसने जीवन-दान दिया जग में उपजाया, सुख-साधन सब दिये कहो क्या नहीं बनाया ।
विमल बुद्धि दे मार्ग समुन्नति का दिखलाया, सोच समझ सब सकें सलीक़ा वह सिखलाया ॥
जिसका यह संसार है, जिसने दी यह देह है ।
उसके ही अस्तित्व में कभी कभी सन्देह है !

(२)

जिसकी रज में उगे बढ़े जिसका रस पीके, जिसमें पाकर पवन प्राणदा पड़े न फीके ।
पालित पोषित हुए पुत्र बन जिस अवनी के, जिसने पूरे किये हैासले सारे जी के ॥
उसे भूल कर भी कभी करते दिल से याद हैं ?
हा उसकी सब नेकियाँ मुफ़् हुईं बरबाद हैं !

(३)

बिलकुल था असमर्थ न चल फिर भी सकता था, पड़ा मूक सा मौन पराया मुख तकता था ।
तब जिसने मुख चूम चूम कर हृदय लगाया, प्रेम-मत्त हो झूम झूम कर हृदय लगाया ॥
जननी का वात्सल्य वह जाता सुत को भूल है ।
पापिष्ठे अकृतज्ञता तू अनर्थ की मूल है ॥

(४)

जिनसे सन्तत प्रीति-रीति प्रण कर प्रतिपाली, जिनके होकर रहे जान जोखों में डाली ।
गिरा पसीना जहाँ वहाँ पर लहू गिराया, किन्तु कुफल यह हाय ! अन्त में उसने पाया ॥
बिना बात की बात में इस प्रकार वे फिर गये ।
जामे से बाहर हुए मनुष्यत्व से गिर गये ॥

(५)

पकड़ पकड़ कर हाथ ककहरा जिन्हें लिखाया, बेशऊर थे बातचीत का ढङ्ग सिखाया ।
पथ-दर्शक बन सदा सुपथ जिनको दिखलाया, इति उनकी यह लखो कि अथ जिनको दिखलाया ॥
ऐसी पट्टी पढ़ गये करते उलटा पाठ हैं ।
आज हमीं से कह रहे सोलह दूने आठ हैं ॥

(६)

ख़ुदा समझ कर जिन्हें बहुत बन्दगी बजाई, आत्म-हनन कर "जी हुज़ूर" की झड़ी लगाई ।
बन कर श्वान समान रहे जिनका मुख तकते, आशाओं से रहे सदा जिनका रुख़ तकते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे ही बनते शत्रु हैं अन्त नहीं है दर्प का।
हे विधि देना था उचित रूप उन्हें बस सर्प का॥

(७)

करके खेती विविध धान्य जो उपजाते हैं, कष्ट सहन कर काम निरन्तर जो आते हैं।
भोले भाले नहीं जानते छक्का पञ्जा, करते फिर भी मार मार उनका सर गञ्जा॥
हा! हा! यह जड़ भरत से क्या न कृपा के पात्र हैं?
किन्तु जानते लोग बस इन्हें सताना मात्र हैं!

(८)

देख दशा यह महा हृदय को क्लेश हुआ है, कृतघ्नता से पूर्ण हाय वह देश हुआ है—
जहाँ दया उपकार परम कर्त्तव्य, धर्म्म थे, जहाँ शील, सौजन्य सतत स्वीकृत सुकर्म्म थे॥
जहाँ शान्ति, सुख, प्रेम के भवन हुए निर्म्माण थे।
जहाँ स्वल्प उपकार का मूल्य एक बस प्राण थे॥

(९)

अहो विधाता! कहो रहो मत मौन साध के, कार्य्य आज कल नहीं कुटिल हैं एक आध के।
रसाभास में तुम्हें कहो क्या रस मिलता है? रच कर ऐसे मनुज कौन सा यश मिलता है?
माना हमने यह कि यह नीच नरों का काम है।
किन्तु हुआ क्या आपका नाम नहीं बदनाम है?

(१०)

अहो पितामह! इस भव के भ्रम में न फँसाओ, जो न बने तो नर न रचो कुछ और बनाओ।
जो मनुष्य ही करो न कुछ सम्बन्ध लगाओ, होवे जो सम्बन्ध तो न अवसर वह लाओ—
साथ किसी के किसी का कोई जब उपकार हो।
हो ऐसा तो साथ ही कृतज्ञता से प्यार हो॥

"सनेही"

अँगरेज़ों के लिए भारतवर्ष-विषयक ज्ञान की आवश्यकता।

मदरास से अँगरेज़ी में एक मासिक पत्र निकलता है। उसका नाम है—इंडियन रिव्यू। उसमें पण्डित श्यामशङ्कर, एम, ए०, बारिस्टर-एट्-ला की एक वक्तृता प्रकाशित हुए कुछ समय हुआ। उसकी बातें बड़े काम की हैं। इस कारण उसका मतलब थोड़े में सुन लीजिए—

भारतवर्ष में अँगरेज़ों का राज्य है। इस कारण अँगरेज़ों को इस देश के निवासियों का जितना ही अधिक ज्ञान होगा उतना ही अधिक सुभीता होगा। भारत-वासियों के विषय में यथेष्ट ज्ञान होने से शासन-सम्बन्धिनी बहुत सी कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। जब तक राजा को प्रजा का पूर्ण ज्ञान नहीं होता तब तक उसे पद पद पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शासकों के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वे प्रजा के रीति-रिवाजों को जानें, उनकी मनो-वृत्तियों को पहचानें और उनमें कौन दोष और कौन गुण हैं, इससे अनभिज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न रहें। बिना इन बातों को जाने शासन करना वैसा ही कष्ट-साध्य है जैसा कि काँटे बिछे हुए कँकरीले पहाड़ पर अन्धे आदमियों का चढ़ना।

विलायत में कितने ही लोगों का यह ख़याल है कि भारतवासी असभ्य हैं। कितने ही तो इतना भी नहीं जानते कि अमुक मनुष्य हिन्दू है या मुसलमान। भारत-वर्ष-विषय का अज्ञान यहाँ तक बढ़ा-चढ़ा है कि पार्लियामेंट के कुछ ही मेम्बर यह जानते होंगे कि हमारे देश में युक्त-प्रान्त कहाँ पर है और बनारस तथा लखनऊ किस लिए प्रसिद्ध हैं।

विलायत में एक बात और भी होती है। उसका ख़याल करके दुःख होता है। वह यह है कि वहाँ कुछ लोग ऐसे भी हैं जो भारतवर्ष के विषय में अकारण ही भ्रमपूर्ण बातें फैलाते हैं। इससे भी विलायत वालों का चित्त भारतवर्ष के विषय में कलुषित हो जाता है। इससे बड़ी हानि होती है।

इस सारे भ्रम को दूर करने के लिए इन बातों की बड़ी आवश्यकता है—

विलायत वालों को भारतवासियों के रीति-रिवाज अच्छी तरह जान लेना चाहिए। उन्हें ऊपरी बातों को ही जान कर सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए; हर बात की तह तक पहुँचने और तत्त्व को जानने की चेष्टा करनी चाहिए। बड़ी बड़ी परीक्षायें पास करके जो लोग विलायत से भारतवर्ष आते हैं और यहाँ ऊँचे ऊँचे पदों पर नियत किये जाते हैं वे बहुधा भारतीय सभ्यता से बिलकुल ही अनभिज्ञ रहते हैं। उन्हें भारत के प्राचीन गौरव, कला-कौशल, साहित्य-सम्पत्ति और सामाजिक सङ्गठन का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। इनका ज्ञान-सम्पादन करके उन्हें यहाँ आना चाहिए।

पार्लियामेंट के कितने ही मेम्बर यह समझते हैं कि भारतवासियों को एक-तन्त्र-शासन की पद्धति ही अधिक पसन्द है। परन्तु उनका यह ख़याल ठीक नहीं। भारतवर्ष ने स्वेच्छाचारी राजा कभी पसन्द नहीं किया। यहाँ के राजा सदा नियमानुसार शासन करते रहे हैं। उनके शासन के नियम मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि में जो चाहे अब भी देख सकता है। ये नियम सदा एक से न रहते थे। रिवाज और आवश्यकता के अनुसार उनमें परिवर्त्तन हुआ करता था। यदि कोई राजा स्वेच्छाचारिता—मनमानी—करता था तो विद्वान् ब्राह्मण मिल कर वैसा करने से उसे रोक देते थे। यहाँ तक कि कितने ही स्वेच्छाचारी राजा सिंहासन से भी उतार दिये गये थे।

भारत की साम्पत्तिक स्थिति का ज्ञान सम्पादन करना भी विलायत वालों के लिए बहुत आवश्यक है। हमारे देश में अत्यन्त उपयोगी चीज़ें पैदा होती हैं। परन्तु विदेशी प्रति-स्पर्द्धा के कारण हमें उद्योग-धन्धों में यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त होती। इस दशा में भारत के उद्योग-धन्धे की उन्नति के लिए विलायत वालों को हमारी सहायता करनी चाहिए। बिना उनकी सहायता के प्रति-स्पर्द्धा के दबाव से यह देश नहीं बच सकता और जब तक प्रतिस्पर्द्धा बे रोक टोक चली जायगी तब तक इस सम्बन्ध में विशेष उन्नति होना असम्भव सा है।

विलायत से बड़े बड़े विद्वान् अध्यापक बना कर यहाँ भेजे जाते हैं। वे शेक्सपियर के नाटक और मिल्टन के काव्य हमें पढ़ाते हैं। परन्तु ऐसी पढ़ाई से हम लोगों को बहुत कम लाभ पहुँचता है। हमें तो कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय आदि की विशेष शिक्षा मिलनी चाहिए। काव्य और नाटक पढ़ने और योरप के बड़े बड़े तत्त्ववेत्ताओं के ग्रन्थ चाट जाने से भारत-वासियों की भूख नहीं मिट सकती।

भारत का धर्म्म क्या है और कैसा है तथा समाज का सङ्गठन यहाँ किस आधार पर किया गया है, इन बातों को जानने की भी विलायत वालों को बड़ी आवश्यकता है। इनको न जानने से आज तक न मालूम कितनी भूलें हुई हैं और आगे भी होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112917

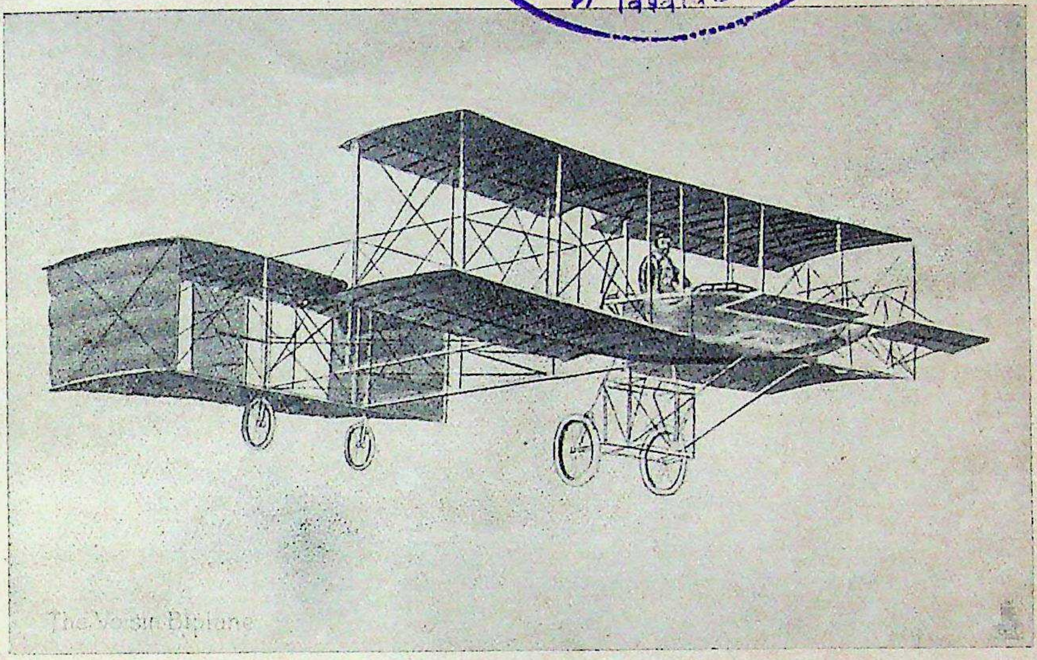

बाई-प्लेन (१) (दो सतहों का वायुयान)

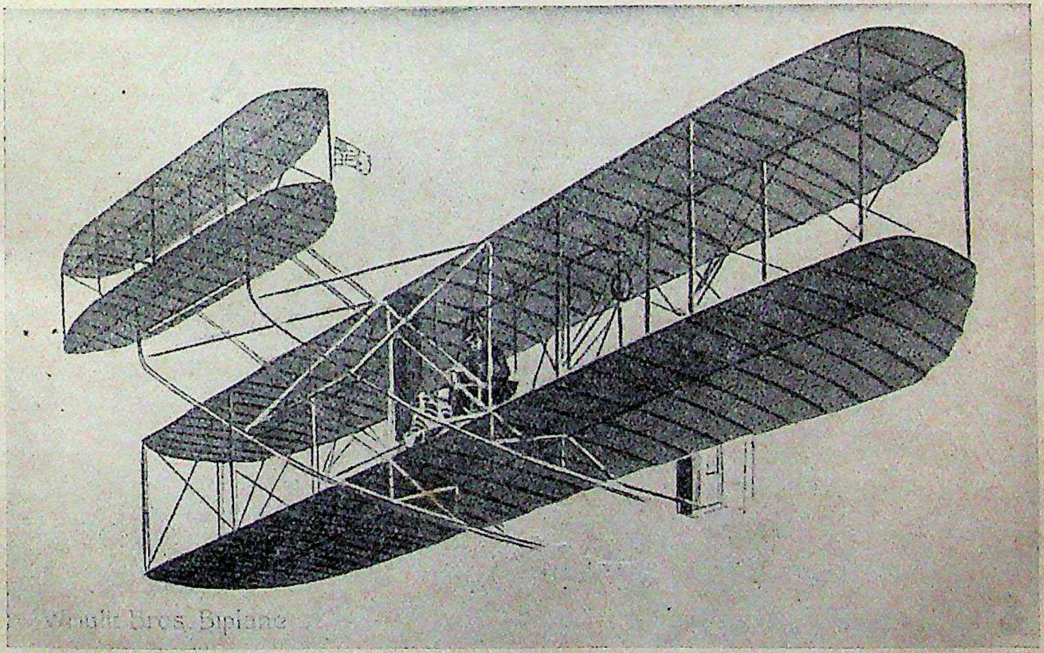

बाई-प्लेन (२) दूसरा ढँग।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सम्भावना है। भारतवर्ष के धार्मिक भावों और धार्म्मिक सम्प्रदायों में ऐसी कितनी ही बातें हैं जिनको जाने बिना मतमतान्तर के झगड़ों का न्याय-सङ्गत निपटारा हो ही नहीं सकता।

विलायत वालों को भारतवर्ष की भाषाओं का यथेष्ट ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। जो लोग यहाँ विलायत से बड़े बड़े पदों पर नियत होकर आते हैं उनमें से कितने ही यहाँ की भाषा बिलकुल ही नहीं समझते। जो थोड़ा बहुत समझते भी हैं वे अच्छी तरह बोल नहीं सकते। उनकी टूटी फूटी हिन्दी या हिन्दुस्तानी उनके ख़ानसामा और बहरे के सिवा और कोई नहीं समझ सकता। यदि ऐसे अधिकारियों के कारिन्दे और कारकुन इस देश के पढ़े लिखे लोग न हों तो इनका काम न चले। भारत-वासी काम-काज में इन अधिकारियों की सहायता भी करते हैं और दुभाषिये का भी काम देते हैं। सोचने की बात है कि अधिकारी यदि यहाँ की भाषा अच्छी तरह न समझेंगे तो यहाँ वालों के दुःख और कष्ट की बात वे समझ कैसे सकेंगे?

इस दुरवस्था को किसी हद तक दूर करने के लिए विलायत के विश्व-विद्यालयों की प्रवेश-परीक्षा के नियमों में सुधार होना चाहिए। जो लोग उनमें प्रवेश पाना चाहें उनके लिए भारत की प्रधान भाषा हिन्दी अनिवार्य्य कर दी जाय।

दूसरी बात यह है कि जो अफ़सर भारतवर्ष आवें वे भारत-वासियों से परिचय बढ़ाने का यत्न करें। बिना उनसे परिचय किये और उनके साथ खुल कर बात-चीत किये आपस में हेल-मेल नहीं बढ़ सकता। परस्पर आलाप करने से एक दूसरे का हाल अच्छी तरह मालूम हो जाता है। अतएव कभी भ्रम होने का डर नहीं रहता।

अँगरेज़ी राज्य से भारत ने बहुत लाभ उठाया है। उस पर उसकी भक्ति है। क्योंकि इस राज्य का आधार न्याय्य और नीति की अचल भूमि है। इतना विस्तृत राज्य पृथ्वी पर दूसरा नहीं। इसीसे भारत-वासियों को इस बात का अभिमान है कि ऐसे प्रताप-शाली राज्य से हमारा सम्बन्ध है। अतएव विलायत वालों को चाहिए कि वे भारत के विषय में सभी ज्ञातव्य बातें जान लें, जिससे भारत और ब्रिटिश जाति का सम्बन्ध दिन पर दिन अधिक सुदृढ़ होता जाय।

बालकृष्ण नारायण मुधोलकर

वर्षा और निर्धन।

काली काली घटा निराली घिर घिर आती;
बरस बरस कर अपना अपना रङ्ग दिखाती।
हरी भरी धरती ने होकर पानी पानी;
हरियाली के मिस से धानी चद्दर तानी॥ १॥
रुचिर चमेली के फूलों की सेज लगाई;
जुगुनूरूपी दीप-शिखा ने शोभा पाई।
रङ्ग-विरङ्गे धरे धरा ने रूप मोहने;
उत्कण्ठित हो लगी जलद की बाट जोहने॥ २॥
लोनी लोनी लोल लतायें लगीं झूलने;
झुक झुक कर प्रिय तरुओं के वदन चूमने।
नील जलद को देख मोर भी पर फैलाता;
अपना सुन्दर नाच मोरनी को दिखलाता॥ ३॥
कड़े ताप से पड़े पेड़ पौधे मुरझाये;
मुँह पर छींटे देकर मानो गये जगाये।
वनजीवन-सञ्चार हुआ थावर-जङ्गम में;
सब हो गये निहाल भूमि-नभ के सङ्गम में॥ ४॥
सूखे सर-वापी-तालों ने जीवन पाया;
दौड़-धूप की, शोर किया; विस्तार बढ़ाया।
अनायास सम्पत्ति मिली इससे मद छाया;
हुई स्वच्छता दूर मैल ने पैर जमाया॥ ५॥
नव उमङ्ग भर दिया हृदय में वर्षा ने जब;
सभी हुए आनन्द मनाने को आतुर तब।
सैर-सपाटे की यारों ने मिल कर ठानी;
उद्यानों में चले मौज करने मनमानी॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं युवतियाँ युवक हिँडोले झूल रहे हैं ;
घनानन्द में मग्न जगत को भूल रहे हैं।
कहीं कदम्ब-केकी के तरु फूल रहे हैं ;
कहीं मोर के शोर पथिक को हूल रहे हैं ॥ ७ ॥

बाबू लोग पहाड़ों पर बँगलों में बैठे ;
धन-मद, जन-मद शासन-मद, तीनें से एंठे।
खेल रहे शतरञ्ज, ताश, गंजीफ़ा, चैासर ;
या होते क़ुरबान पियाने पर, जानें पर ॥ ८ ॥

इसी तरह सब ओर ज़ोर की धूम मची है ;
माने नूतन सृष्टि विधाता ने विरची है।
पर पाठक ! आनन्द देख कर भूल न जाओ ;
एक बार विस्तार सहित आँखें फैलाओ ॥ ९ ॥

देखो उत्तर ओर झोपड़ी सड़ी खड़ी है ;
उसमें दुःखित एक ईश की सृष्टि पड़ी है।
चलो वहाँ चल कर देखें क्या क्या होता है ;
मातादीन पड़ा उसमें कैसा सोता है ? ॥ १० ॥

हाय ! हाय ! छप्पर में तिनका एक नहीं है ;
वह धरती छूता है उसमें टेक नहीं है।
घर पोखर हो रहा उसी में लोट रहे सब ;
शूकर उनको कहें मनुज तो वे न रहे अब ॥ ११ ॥

शूकर भी हो मस्त केलि करते पोखर में ;
यहाँ कहाँ मस्ती ? दाना जब नहीं उदर में।
बच्चे मोथे के समान कीचड़ में डूबे ;
मातादीन बचा न सका, बिगड़े मनसूबे ॥ १२ ॥

बेचारी बुढ़िया यों भी रह सकी न जीती ;
निकला काला साँप जान पर उसके बीती।
ज़रा देर में अभी नदी जब बढ़ आयेगी ;
तब यह निर्धन प्रजा मुकुन्द ! कहाँ जायेगी ? ॥ १३ ॥

बाबू साहब उठ कर जब शिकार पर टूटे ;
तब बेगार पकड़ने प्यादे उनके छूटे।
दुखिया मातादीन न इससे बचने पाया ;
गठरी लादे भूखों मर कर प्राण गँवाया ॥ १४ ॥

जब शिक्षा के लिए विश्व-विद्यालय खुलते ;
धनी ऐंठते मूँछ अधन ही दुख में घुलते।
ऐसे भी जर्जर झोपड़े न बचने पाते ;
वर्षा में ही हाय ! अनाथ निकाले जाते ॥ १५ ॥

अगर सभ्यता आज भरे ही को है भरना ;
नहीं भूल कर कभी ग़रीबों का हित करना।
तो सौ सौ धिक्कार सभ्यता को है ऐसी ;
जीव-मात्र को लाभ नहीं, तो समता कैसी ? ॥ १६ ॥

केशवप्रसाद मिश्र

राजस्थान के इतिहास—मूता नेणसी की ख्यात।

सम्राट् अकबर के समय में जो प्रदेश अजमेर के सूबे में सम्मिलित था वह अब राजपूताना कहलाता है। उसमें २० छोटे बड़े रजवाड़े हैं, जिनमें इतनी जातियों के राजपूत राज्य करते हैं—

(१) राठौड़—जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़	३
(२) सीसोदिया—उदयपुर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, देवलिया प्रतापगढ़, शाहपुर	५
(३) कछवाहा—जयपुर, अलवर, लावा	३
(४) भाटी—जेसलमेर	१
(५) चैाहान-हाड़ा—बूँदी, कोटा	२
(६) झाला—झालरापाटन	१
(७) चैाहान-देवड़ा—सिरोही	१
(८) यादव—करोली	१
	१७

इसके सिवा भरतपुर और धैालपुर के राजा जाट हैं, जो अपनी वंश-परम्परा करोली के यादवों से मिलाते हैं; और टोंक के नवाब मुसलमान हैं।

इन रजवाड़ों के इतिहास की आज कल कई छोटी छोटी पुस्तकें हिन्दी में छपी मिलती हैं। परन्तु वे सब कर्नल टाड् के इतिहास, राजस्थान, के आधार पर बनाई गई हैं और कर्नल टाड् के इतिहास का तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, परन्तु उसकी छाया लेकर लिखे गये एक बँगला-ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद छप भी चुका है।

राजपूताने में अँगरेज़ी अमलदारी होने के बाद, वहाँ के रजवाड़ों का एक ही बड़ा इतिहास लिखा गया है। वह कर्नल टाड् का ही ग्रन्थ है। उसमें इतने रजवाड़ों का इतिहास है—

(१) उदयपुर
(२) जोधपुर
(३) बीकानेर
(४) जेसलमेर
(५) बूँदी
(६) कोटा
(७) जयपुर

कर्नल टाड् ने अपना इतिहास लिखने के लिए जो सामग्री इन सातों रजवाड़ों से माँगी थी उसकी सूची देखने से ज्ञात होता है कि वे सब काव्य-ग्रन्थ थे। उनमें कवियों ने सातों रजवाड़ों की वंशावलियों और ऐतिहासिक घटनाओं को साहित्य-शास्त्र की शैली के अनुसार चुना चुनी से बना बना कर वर्णन किया है। इससे टाड् साहब के इतिहास में बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं, क्योंकि कवि लोग, जो वास्तव में गप्पी होते हैं, राई का पर्वत और पँखड़ी का फूल बना देते हैं।

टाड् के राजस्थान के यथार्थ अनुवाद में उन अशुद्धियों के शुद्ध करने में जो परिश्रम मेरे मित्र पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा को उठाना पड़ा है उसको मैं ही जानता हूँ। इस अनुवाद के ग्राहकों में से बिरले ही कोई महाशय जानते हों तो जानते हों। यह अनुवाद अभी पूर्ण नहीं हुआ; धीरे धीरे छप रहा है।

यहाँ पर यह पूछा जा सकता है कि क्या उन पद्यात्मक काव्य-ग्रन्थों के सिवा इन रजवाड़ों में कोई और शुद्ध इतिहास-ग्रन्थ न था? मारवाड़ के विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि एक क्या अनेक गद्य-ग्रन्थ वहाँ हैं, जिनमें मारवाड़ के सिवा और भी कई देशों तथा राज्य करने वाली जातियों के इतिहास भी लिखे हैं।

मैंने जब राजपूताने के इतिहास लिखने की सामग्री एकत्र की थी तब पद्य-ग्रन्थों के दोष देख कर गद्य-ग्रन्थों की शरण ली। उनमें मैंने बहुधा वही गुण पाये जो सच्चे इतिहास में होने चाहिए। इस कारण मैंने उन्हीं की बातें अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों में लिखीं, क्योंकि उनकी पुष्टि उस समय के शिलालेखों तथा अरबी, फ़ारसी में लिखे हुए ग्रन्थों से भी होती है।

ऊपर लिखे हुए गद्य-ग्रन्थों में एक ग्रन्थ मूता नैणसी की ख्यात है। मूता नैणसी जोधपुर के महाराजा, बड़े जसवन्तसिंह जी, का दीवान था। उसको इतिहास से बड़ी रुचि थी। इसीसे उसने यह इतिहास, संवत् १७१६ से १७२२ तक, मारवाड़ी भाषा में लिखा। इसके आधार पर और भी कई इतिहास लिखे गये हैं। इसके दो भाग हैं। एक में तो उन परगनों का वृत्तान्त है जो उस समय जोधपुर-राज्य में थे। मूता ने पहले तो एक एक परगने का इतिहास लिखा है। उसमें यह दिखाया है कि परगने का वैसा नाम क्यों हुआ, उसमें कौन कौन राजा हुए हैं, उन्होंने क्या क्या काम किये और वह कब और कैसे जोधपुर के अधिकार में आया। इसके बाद उसने एक एक गाँव का थोड़ा थोड़ा हाल दिया है कि वह कैसा है। फ़सल एक ही होती है या दो। कौन कौन सी धान्य किस फ़सल में होती है। खेती करने वाले किस किस जाति के लोग हैं। जागीरदार कौन हैं। गाँव कितनी जमा का है। पाँच वर्षों में कितना कितना रुपया बढ़ा है। तालाब, नाले और नालियाँ कितनी हैं। उनके इर्द गिर्द किस प्रकार के वृक्ष हैं। इस तरह इस विभाग की पूर्ति हुई है। यह कोई चार पाँच सौ पत्रों का ग्रन्थ है। इसमें जोधपुर के राजाओं का इतिहास, रांव सियाजी से महाराजा बड़े जसवन्तसिंह जी के समय तक का, है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे भाग में अनेक राजपूत राजाओं के इतिहास हैं। पर उनकी सूची ठीक ठीक नहीं जानी गई। क्योंकि यह भाग पूरा नहीं मिलता। एक प्रति दूसरी से कम ज़ियादह है। इसका कारण यह है कि लोग इस ग्रन्थ को छिपाते बहुत थे। जो किसी को देखने के लिए देते भी थे तो पूरा न देते थे, खण्ड खण्ड करके देते और ले लेते थे। इसी कारण कर्नल टाड् को भी शायद यह न मिला होगा।

मूता नेणसी के घर वाले तो अब इस ग्रन्थ को, जो कई लोगों के पास है, मूता नेणसी का बनाया हुआ ही नहीं बताते। वे कहते हैं कि मूता का बनाया हुआ असल ग्रन्थ तो हमारे पास है। मगर जब कोई उनसे देखने को माँगता है तब इधर उधर एक दूसरे के पास होना बता कर टाल जाते हैं।

यह भी सुना गया है कि मूता नेणसी की असल ख्यात, उसी के हाथ की लिखी हुई, बीकानेर-राज्य के पुस्तकालय में है; क्योंकि मूता नेणसी के पीछे, जब उसके घर वाले जोधपुर से निकाले जाकर वहाँ गये थे तब, वह पुस्तक उन्होंने राज्य को दे दी थी।

कुछ भी हो, इस समय दूसरे विभाग की जितनी प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं उनमें इतनी राजपूत-जातियों के इतिहास हैं—

(१) गहलोत
(२) सीसोदिया—उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और देवलिया प्रतापगढ़ के
(३) पँवार—उज्जेन और धार आदि के
(४) चौहान—अजमेर आदि के
(५) परिहार—मण्डोर के
(६) इँदाजाति के परिहार
(७) सोलंखी, टोड़ा आदि
(८) चौहान बागड़िया
(९) दहिया
(१०) बुँदेला
(११) गढ़-बान्धव के बघेला
(१२) सिरोही के चौहान देवड़ा
(१३) जालोर के सोनगरा चौहान
(१४) साचोर के साचोरा चौहान
(१५) बोड़ा चौहान
(१६) खीची चौहान
(१७) सोलंखी, पाटन के
(१८) सोलंखी, नाथावत
(१९) चावड़ा
(२०) गोयल, खेड़ के
(२१) साँखला पँवार
(२२) सोढ़ा पँवार
(२३) भायल पँवार
(२४) झाला मकवाणा
(२५) राव सियाजी राठौड़ का वृत्तान्त
(२६) राव कानड़देव का वृत्तान्त
(२७) सरबैया
(२८) चौत्रा
(२९) भाटी—जेसलमेर, बरसलपुर और पूँगल के
(३०) कछवाहे
(३१) गोड़

यह पुस्तक मारवाड़ी भाषा में है। मारवाड़ियों को अपनी मातृ-भाषा की उन्नति का ध्यान ही नहीं। इसी से यह अब तक नहीं छपी और न इसका अनुवाद ही भारत की किसी दूसरी भाषा में हुआ। अतएव इतहास-प्रेमी भारतवासियों को इसके दर्शन भी अभी तक नहीं हुए; पढ़ कर इससे लाभ उठाना तो दूर की बात है। मारवाड़ी भाषा भी इसमें वह है जो ढाई तीन सौ वर्ष पहले बोली जाती थी। अब तो भाषा और की और हो गई है। इससे टीका-टिप्पणियों की भी ज़रूरत है। कितनी ही अशुद्धियाँ भी, साल—संवत् और नामों तथा घटनाओं के सम्बन्ध की, ऐसी हैं जो इतिहास-वेत्ताओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

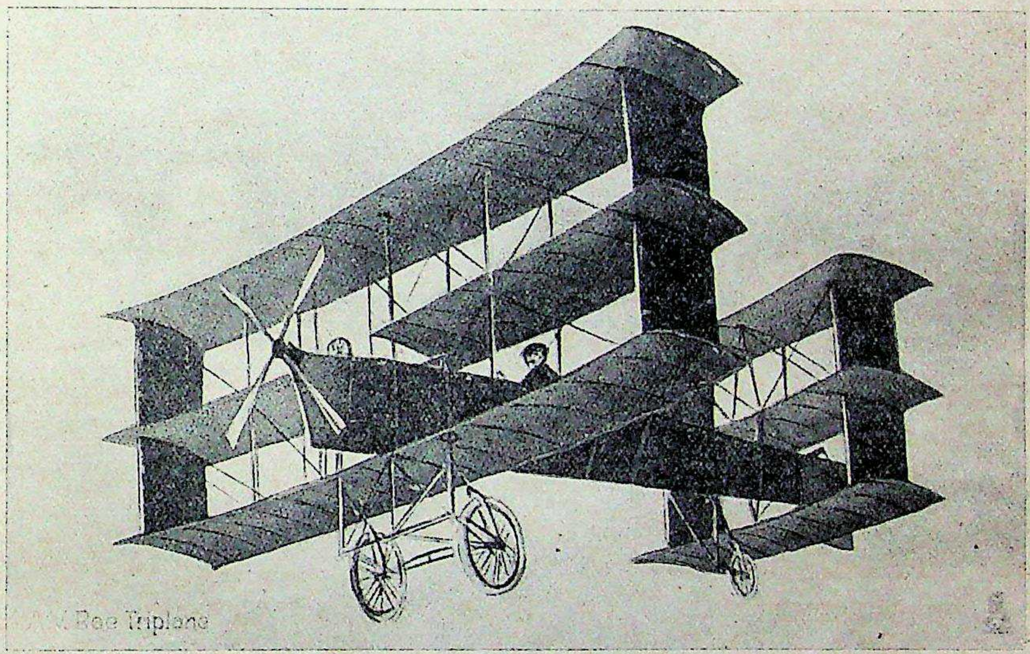

ट्राई-प्लेन (तीन सतहों का वायुयान)

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही शुद्ध करने योग्य हैं। इस अवस्था में यदि इसका हिन्दी में अनुवाद किया जाय तो कई सुयोग्य सम्पादक दरकार हों। यह काम या तो किसी बड़े इतिहास-रसिक या देश-हितैषी मारवाड़ी धनिक के करने योग्य है या किसी बड़े प्रेस के। इसमें सन्देह नहीं है कि इस अपूर्व ग्रन्थ के प्रकाशित होने से इतिहास की कुछ कमी अवश्य पूरी हो जायगी। सम्भव है, प्रकाशक को लाभ भी हो। क्योंकि रजवाड़ों में मूता नैणसी और उसकी ख्यात का नाम बहुत विख्यात है।

देवीप्रसाद

विरक्त विज्ञानानन्द ।

(१)

राजीवलोचन जिस दिन एक साथ एम० ए० और बी० एल० की परीक्षाओं में अच्छे नम्बरों से पास हुआ उस दिन उसके मित्रों ने बधाई के ढेर लगा दिये। उसके बूढ़े चचा के दिमाग़ में उसकी चमकती हुई वकालत के अनेक सुखमय चित्र खिंच खिंच कर बिगड़ने लगे। राजीवलोचन इस डबल पास होने की ख़ुशी में फूला न समाता, यदि इस घटना के कुछ सप्ताह पहले एक मानसिक व्यथा उसके सामने न आ खड़ी हुई होती। इस व्यथा के कारण वह सदा के लिए वकील बनने की आशा को छोड़ बैठा था। पर विधि के इस विचित्र विधान का वृत्त अभी तक राजीव और कमला के सिवा और किसी को मालूम न था।

राजीवलोचन बहुत दिनों से कमला के प्रेम-पयोधि में डुबकियाँ खा रहा था। कमला भी उससे प्रेम करती थी। मतलब यह कि—"दोनों तरफ़ थी आग बराबर लगी हुई"।

कमला के पिता सुखानन्द शिक्षित व्यक्ति थे। उन्होंने कमला को काम-चलाऊ हिन्दी भाषा, हिसाब, इतिहास और घरेलू काम की ख़ूब शिक्षा दी थी। कमला-राजीव के प्रेम की बात भी उनसे छिपी न थी। समय आने पर कमला का हाथ राजीवलोचन से ग्रहण कराने में उनको कोई आपत्ति न थी। कनवजिया, पञ्चादर और धाकर के भेद, बर्क और हेकल के ग्रन्थों के पन्ने लौटने वाले सुखानन्द सुकुल को महा ओछे और व्यर्थ के झंझटों के सिवा और कुछ न मालूम होते थे। यही कारण था कि पूरे बीस बिस्वे के सुकुल सुखानन्द अपने एक मात्र कन्या-रत्न का विवाह पांच बिस्वे वाले पाठक राजीव के साथ करने में कुछ भी दोषापत्ति न देखते थे। मनुष्य के बनाये अपूर्ण, दोषयुक्त और क्षणभङ्गुर नियमों के समक्ष वे प्रकृति के स्वाभाविक, सरल और शाश्वत नियमों का अधिक मान करते थे। पर जो संसार में सब तरह के भेदाभेद को क्षण में दूर कर देती है उसी मृत्यु के द्वारा सरल-चित्त सुखानन्द इन भावों को कार्य्य में परिणत किये बिना ही इस लोक से चल बसे।

सुखानन्द की मृत्यु से वास्तव में घर का सुख-आनन्द नष्ट हो गया। कमला के पिता के न रहने पर घर गृहस्थी के कर्णधार उसके चचा राधाचरण बने। राधाचरण की प्रकृति अपने भाई से अनेक अंशों में प्रतिकूल थी। वे कनवजियापन के बड़े क़ायल थे। भाई के मरने पर घर की सब चीज़ों पर राधाचरण का आधिपत्य हो गया—नहीं हुआ सिर्फ़ सरला कमला के प्रेम-भावपूर्ण अर्ध-स्फुटित चित्त पर। कमला अपने चचा का आदर न करती हो, उनकी आज्ञा को पिता की आज्ञा की तरह न मानती हो—यह बात नहीं। तथापि कमला का धर्म्म-भीरु मन राधाचरण के आनबान-पूर्ण मन से न मिलता था क्यों—वह उससे दबी हुई घृणा करता था।

कमला के विवाह के विषय में राधाचरण की मति भिन्न थी। वे वज्रमूर्ख कनवजिया को धाकर राजीव एम० ए०, बी० एल० से अतिशय पवित्र और आदरणीय समझते थे। वे किसी ऐसे ही कुलीन लट्ठधर लड़के की लालसा में चितुआ नाई को कभी इस और कभी उस गाँव को भेजते रहते थे। स्त्रियाँ 'इकबार' (अख़बार) पढ़ कर बिगड़ जाती हैं—इस बाबा-वाक्य के अनुसार भाई की मृत्यु के बाद उन्होंने सबसे पहले जो काम किया वह यह था कि मूल्य समाप्त होने से पहले ही कमला के नाम आने वाली कई पत्रिकाओं को बन्द कर दिया। यह सब होने पर भी राधाचरण सहृदय थे, निष्ठावान् थे, धार्मिक थे और भले थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

ग्राम्य जीवन का स्वाद बहुत कम लोगों को मालूम है। पढ़े-लिखे आदमी शहर की तङ्ग गलियों से निकल कर जिस दिन गाँव के खुले मैदानों में जाकर बसने लगेंगे उसी दिन सच्चे ग्राम्य जीवन का सूत्रपात होगा। उसी दिन शहर की बड़ी बड़ी इमारतें गाँव की कुटियों पर न्योछावर की जावेंगी।

स्वामी विज्ञानानन्द ने जब से मधुपुर जैसे छोटे गाँव में रहना शुरू किया है तब से उसकी अवस्था बहुत कुछ सँभल गई है। उसमें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है। छोटा सा पुस्तकालय, ग्राम्य दशा पर विचार करने के लिए एक क्लब और कमला मासिक पत्रिका के परिवर्त्तन में आने वाले समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं से बनाया गया एक छोटा सा रीडिंग रूम—ये सब स्वामी विज्ञानानन्द के रहने के कच्चे मकान के बाहर भिन्न भिन्न छप्परों के नीचे स्थापित हो गये हैं। नमूने की इमारतों के अभाव पर भी ये संस्थायें जीवित दशा में थीं, इस बात के मानने में रत्ती भर भी सन्देह करने की गुंजाइश न थी।

इस सारे कार्य्य-कलाप के केन्द्र स्वामी विज्ञानानन्द ही थे। उनको अपनी मासिक पत्रिका के सम्पादन के बाद जो समय मिलता था उसे वे कई ज़रूरी कामों में लगाते थे। वे गाँव के लड़कों को अक्षराभ्यास कराते, खेतिहरों को उनके अधिकार समझाते, कुटिल ज़मींदारों की चालें उन्हें सुझाते और सबसे अधिक ज़ोर गाँव की सफ़ाई पर देते। सङ्क्रामक रोगों की कैसे उत्पत्ति होती है—सफ़ाई का ठीक प्रबन्ध रखने से किस तरह इन जनपद-विध्वंसकारी रोगों से छुटकारा मिलता है—यह विषय स्वामीजी अपनी स्वाभाविक भाषा में ग्रामीण पुरुषों की समझ में आने लायक़ बना कर उनको समझाया करते थे।

स्वामीजी की कमला नामक मासिक पत्रिका का प्रचार भी ख़ूब था। उसमें प्रति मास ख़ूब गवेषणापूर्ण और मनोरञ्जक लेख प्रकाशित हुआ करते थे। यही कारण था कि हिन्दी-भाषा-भाषी बालक, बूढ़े सभी उसको बड़े आदर से ख़रीदते थे। थोड़े ही दिनों बाद मधुपुर में एक डाकख़ाना खुल गया। उसके कुछ काल बाद अकेली कमला के काम की ज़ियादती के कारण तारघर भी खुल गया। जिसने पाँच वर्ष पहले मधुपुर को देखा था वह आज उसकी उन्नति को देख कर चकित रह जाता था। सब तरफ़ ख़ासी सफ़ाई थी। खेतिहरों के छोटे छोटे मकानों के आँगनों में फूल खिले रहते थे। मालूम होता था मानों इस गाँव के खेतिहर धीरे धीरे प्रकृति के उपासक बनते जाते हैं। खेती के कामों में भी विज्ञान-भास्कर की पवित्र और उज्ज्वल रश्मियाँ धीरे धीरे प्रवेश करने लगी थीं। किसानों के बच्चों के लिए एक छोटा सा स्कूल भी खुल गया था।

इस प्रकार और तो सब तरह की उन्नति हो रही थी, पर तीन रुपये दो आने सैकड़ा मासिक सूद खाने वाले लाला चन्दूमल के तोंद का बेतरह ह्रास होने लगा था। वे मन ही मन स्वामीजी की अकाल मृत्यु के लिए न मालूम किन किन देवी-देवताओं को मना रहे थे। खेतिहरों की समृद्धि के कारण उस सूदख़ोर बनिये का व्यवसाय प्रायः बन्द ही हो चला था। पर मतलबबाज़ महाजन अपने बच्चों को स्वामीजी की पाठशाला में स्वयं पहुँचाने जाया करता था। सूद से नहीं, अब सीर से उसका पेट पलता था।

ज़मींदार महाशय अब बिना रसीद दिये किसी से रुपया वसूल करने का साहस न करते थे। उनकी आज्ञा से अब निरीह खेतिहरों के सिर पर चर्म्मपुष्प चढ़ाया जाना भी बन्द हो गया था। किसानों का भोलापन, विवेक और विचार के साथ मिल कर, ख़ूब ही उज्ज्वल हो गया था। उनके कार्य्यकलाप किसी ख़ास रङ्ग में रँग गये थे। ग्राम के सघन बाग़ों में लोग कभी कभी अख़बार पढ़ते दिखाई देते थे।

इन सब परिवर्त्तनों का एकमात्र कारण स्वामी विज्ञानानन्द थे। मासिक पत्रिका की आमदनी से उन्होंने ग्राम्य भूमि का एक बड़ा खण्ड ख़रीद लिया था। उसमें कमला-प्रेस, कमला-आफ़िस और रहने के मकान के सिवा एक बाग़ीचा भी था। अनेक तरह के फल-फूलों के वृक्ष उसमें लगाये गये थे। बाग़ में एक पक्का कुआँ भी था। मतलब यह कि स्वामीजी गाँव में जिस सुख और स्वच्छन्दता से रहते थे वह शहर में रहने वाले रईसों को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं। स्वामीजी गाँव के ख़ासे आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। पहले तो उनके सुधामय उपदेशों के कारण कोई झगड़ा उठता ही न था। यदि मनुष्य की सोई हुई और विकासवाद की बारीक चलनी में छनी हुई लड़ाकू वृत्ति कभी जग भी उठती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी तो स्वामीजी के वाक्य दोनों पक्ष वालों को मान्य होते थे। स्वामीजी को अपनी न्याय-पद्धति के अनुसार कभी कभी ख़ुद भी अर्थदण्ड भोगना पड़ता था। एक बार रामू कोरी के बैल चेता काछी की बाड़ खा गये। चेता ने स्वामीजी के पास शिकायत की। रामू ने अपनी ग़लती स्वीकार की। चेता की कोई चार रुपये की हानि हुई थी। रामू निर्धन था, इस कारण स्वामीजी ने बाक्स खोल कर चेता को अपने पास से चार रुपये दे दिये। चेता ने बहुत कहने सुनने पर यह क्षतिपूर्ति स्वीकार की। रामू और चेता के हृदय में हिंसा के जो सोये हुए भाव जग उठे थे वे स्वामीजी के इस प्रेम-पूर्ण और उदार व्यवहार के कारण सदा के लिए सो गये। उनकी जगह स्वामीजी के विषय में भक्ति का भाव, अग्निदग्ध भूमि में हरे भरे खेत की तरह, लहलहाने लगा।

इस तरह की बातें वहाँ रोज़ ही हुआ करती थीं। इनसे खेतिहरों के हृदय में कर्म्मयोगी स्वामी विज्ञानानन्द की प्रतिष्ठा दिन दिन गाढ़ रूप से जगती जाती थी।

(३)

कमला का पत्र पा कर राजीव ने बड़ी घबराहट से उसे खोला। कुछ दिनों से राजीव का मन सुस्त रहता था। उसको कमला की प्राप्ति में संशय होने लगा था। प्रेमिक राजीव को कमला के बिना सारा विश्व शून्य दिखाई पड़ता था। आज कई दिनों के सख़्त इन्तज़ार के बाद उसको कमला का पत्र मिला है। इसी लिए पत्र खोलते खोलते उसके हृदाकाश में अनेक धूमकेतुओं का उदय होने लगा। पत्र में लिखा था—

"प्रियतम,

आज जो बात आपसे कहा चाहती हूँ उसको मैं कह सकूँगी, यह स्वप्न में भी मैंने न सोचा था। मैं अबला हूँ, पर इतना कठोर व्यवहार किये जाने पर भी ज़िन्दा हूँ। आप पुरुष हैं। इससे आशा होती है कि इस कुलिश-कर्कश व्यवहार का समाचार सुन कर आप उसको जिस तरह होगा सहन कर लेंगे। मेरे चचा नहीं चाहते कि मेरा विवाह आपके साथ हो। मेरे हृदय की अनेक गुत्थियाँ आपने सुलझाई हैं। कृपा करके इस समय भी मुझे प्रकाशदान कीजिए जिससे मैं ठीक मार्ग को पहचान सकूँ। मैं क्या करूँ, समझ में नहीं आता। आपकी आज्ञा पर ही मेरा भविष्यत् जीवन अवलम्बित है। जैसा लिखें करने को तैयार हूँ।

अनुगता
कमला।"

ग्रीष्मकाल की दोपहरी का सूर्य्य राजीव की आँखों में काला पड़ गया। कुछ देर के लिए तो मानों उसके शरीर का रक्तसञ्चालन भी बन्द हो गया। मूर्त्तिमान् नैराश्य राजीव ने बड़े ज़ोर से 'आह' की। मानों उस आह के साथ ही भीतर का बहुत बड़ा बोझ हट गया। उसने अत्यन्त नैराश्य-दशा में भी किसी अलौकिक सुख का स्वाद पाया। शुद्ध प्रेम की निर्म्मल ज्योति ने फिर उसके मलिन मन को प्रकाशित कर दिया। उसने बड़ी शान्ति से नीचे लिखा उत्तर कमला के नाम भेजा—

"कमले,

संसार में सभी पूर्ण सुखी नहीं। बहुत कम आदमियों के भाग्य में पूर्ण सुख बदा है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि तुम अपने चचा की आज्ञा का पालन करो। ईश्वर तुम्हें मुझको भूलने का बल प्रदान करे। कमला, सच जानो— मैं अपने हृदय से ये बातें लिख रहा हूँ।

विरक्त
राजीव।"

दूसरे दिन लोगों ने सुना कि राजीवलोचन पिता का गया-श्राद्ध और तीर्थयात्रा करने चला गया है।

(४)

संन्यासी होकर विज्ञानानन्द मासिक पत्रिका चलाते हैं, इस बात को बहुत आदमी सोच कर भी नहीं सोच पाते थे। समझदार आदमी उनसे ऐसा प्रश्न करने का साहस न कर सकते थे, पर उद्दण्ड प्रकृति के कोई कोई पुरुष उनसे पूछ ही बैठते थे—

"स्वामीजी, पत्रिका के लिए आप दिन रात परिश्रम करते हैं; बखेड़ा करते हैं—इससे आपके परमार्थ-साधन में ज़रूर विघ्न होता होगा।"

विज्ञानानन्द स्वामिजन-सुलभ उपेक्षा के साथ उत्तर देते—"मनुष्य-समाज की सेवा करना भी ईश-सेवा करना ही है। मनुष्य-प्रेम और ईश-प्रेम में कुछ भी भेद नहीं। मासिक पत्रिका द्वारा मातृ-भाषा के साहित्य का उपकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। साहित्य से देश-भाइयों का थोड़ा बहुत कल्याण होता ही है। उनके कल्याण से ही हमारा 'परमार्थ-साधन पुष्ट होता है।''

पाँच ही वर्ष के थोड़े से समय में विज्ञानानन्द की पत्रिका ख़ूब चमक गई। उसके हज़ारों ग्राहक हो गये। दूर दूर से लोग उसमें लेख भेजने लगे। स्वामीजी को उससे ख़ासी बचत होने लगी। वे अन्न-धन से भूखों की सहायता करते, रोगियों की परिचर्य्या करते, और भूले-भटकों को सदुपदेश से सुमार्ग पर ले आते। इसी लिए स्वामीजी सर्व-प्रिय हो गये थे। स्वामी विज्ञानानन्द का पूर्वेतिहास मालूम न होने पर भी गाँव के लोग समझते, मानों वे जन्म से ही वहाँ के निवासी हैं।

(५)

स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर स्वामीजी ने आफ़िस में आकर किसी महामहोपाध्याय के शास्त्रीय लेख को बोलचाल की भाषा में बदल देने का उपक्रम किया ही था कि डाकिये ने अपना सौम्य दर्शन दिया। स्वामीजी की डाक साधारण न होती थी। इस कारण उन्होंने लेख को मेज़ की दराज़ के हवाले कर दिया। पोस्टमैन ने चिट्ठियों और अख़बारों आदि का पुलिन्दा स्वामीजी के हाथ में दे दिया। अनेक पत्रों पर सरसरी नज़र डालते हुए स्वामीजी एक पत्र को पा कर चौंक पड़े। वैसे ही मोती जैसे अक्षर, वैसी ही लेखनशैली! संयमी स्वामी का हृदय उछलने लगा; हाथ काँपने लगे! बहुत शीघ्र डाकिये को बिदा करके स्वामीजी ने उस पत्र को खोला। इसी समय आम के फूले हुए मौरों का सौरभ हवा के झोंके के साथ स्वामीजी के मस्तक को ठण्डा करने लगा। आम की शाखा पर दूर बैठी कोयल ने बड़े मीठे स्वर में—पी कहाँ—कहा।

काँपते हुए हाथों से पत्र को खोल कर स्वामीजी उसे पढ़ने लगे—

''श्रीयुत कमला-सम्पादक,

''दुखिया की पुकार'' आपके पास पहुँचाती हूँ। आप अपने पत्र में छाप कर इस पुकार को अभीष्ट स्थान तक पहुँचाने में सहायता देंगे—इसकी मुझे पूरी आशा है।

कृपाकांक्षिणी

कमला।''

इस पत्र के साथ जो मज़मून था उसकी नक़ल नीचे दी जाती है—

दुखिया की पुकार।

''नाथ,

मेरी भलाई के लिए आपने अपने हृदय को खण्ड खण्ड कर दिया था। मुझे अब आपसे प्रार्थना करने का कोई हक़ नहीं। किन्तु आप मेरे चिरकाल से उपास्य देव हैं। इस लिए आपसे न कहूँ तो किससे कहूँ? आज पाँच वर्ष से आपका पता नहीं। आपने मेरे कारण घर-बार छोड़ कर क्या किया, मुझे मालूम नहीं। हृदयेश्वर, हिन्दी-समाचार-पत्रों को छोड़ कर और कोई मार्ग नहीं, जिसके द्वारा मैं आप तक अपना सन्देश भेजूँ। मुझे आशा नहीं, विश्वास है, आप जहाँ होंगे हिन्दी-पत्र पढ़ते होंगे। इसी कारण हिन्दी के प्रमुख पत्रों के द्वारा आज आपके पास यह विनय-पत्र भेजती हूँ। मेरे चचा राधाचरण, जिनके कठोर व्यवहार के कारण आपको सर्वस्व त्यागना पड़ा था, इस संसार में नहीं हैं। मरते समय, मेरी सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने मुझको आपके साथ विवाह करने की आज्ञा दे दी है। अतएव इस दीन पर दया करके यथासम्भव शीघ्र दर्शन दीजिए। आपके बिना मेरा जीवन कण्टकमय हो रहा है। आपकी प्यारी चीज़ इस तरह चिन्तित और दुखी हो, यह जानने पर आप शान्त न रह सकेंगे—मुझ अपराधिनी को आज भी इसका दृढ़ विश्वास है। ईश्वर आपके शीघ्र दर्शन करावे। आज से एक वर्ष तक आपकी प्रतीक्षा करूँगी। फिर क्या करूँगी, इसे यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं। इति।

कातरा

कमला।''

(६)

आज मधुपुर में घर घर ख़ुशी मनाई जा रही है। संसार-त्यागी विज्ञानानन्द का संसारी बन जाना लोगों को आश्चर्य्य और आनन्द में डाल रहा है। स्वामीजी का बाग़ ख़ूब सजाया गया है। ग्राम-निवासियों का आज वहाँ बड़ा जमाव है। सब लोग बड़े चाव से अपने अपने कामों में लग रहे हैं। आज ग्रामवासियों का भोज है। उसी की तैयारी है।

× × × × ×

छः महीने बाद बाग़ में एक बड़ी भारी कोठी बन गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार पर लगे नीम के बड़े वृक्ष पर एक तख़्ता लटक रहा है। पाठक आप जानते हैं उस पर क्या लिखा है। उस पर लिखा है—राजीवलोचन शर्म्मा, एम० ए०, बी० एल०—कमला-सम्पादक।

ज्वालादत्त शर्म्मा

वेदों में फलित ज्योतिष ।

कुछ समय से कुछ लोग फलित ज्योतिष को अविश्वसनीय, निर्मूल, तथा ब्राह्मणों की जीविका का आधार-स्वरूप मानने लगे हैं। ये लोग आधुनिक अधपढ़े ज्योतिषियों के कहे हुए फलों से असन्तुष्ट होकर इस विद्या ही का मूलोच्छेद करना चाहते हैं। कुछ विचारशील विद्वान् भी इसे आर्ष नहीं मानते। वे कहते हैं कि इस विद्या को भारतवर्ष ने यवनों से सीखा है। इन महानुभावों के विनोदार्थ हम अथर्व्ववेद से कुछ मन्त्र उद्धृत करके यह दिखाने की चेष्टा करते हैं कि यह विद्या आर्ष है, वैदिक समय में विद्यमान थी, मानी जाती थी, और उसके चिह्न अब तक वेदों में मिलते हैं। तथापि हम यह नहीं कह सकते कि उस समय इसका आधिपत्य भारतनिवासियों के चित्तों पर उतना ही था जितना कि अब है। यह उसी समय निश्चय हो सकता है जब उस काल का लिखा हुआ कोई ग्रन्थ हाथ लगे। ऐसे ग्रन्थ की अनवस्थिति में कोई बात इस विषय में सप्रमाण नहीं कही जा सकती। परन्तु शकुन-अशकुन मानना, नक्षत्रों के पाप-क्रूरादि भेद बताना, उनके अधिकारी देवताओं का उल्लेख करना, जो ऋक् से लेकर अथर्व तक में विद्यमान है, यह साबित करता है कि उस समय भी इस विद्या का प्रचार था। अथर्ववेद में लिखा है—

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥

अथर्व—६-११०-२

इस पर सायण-भाष्य का सारांश यह है—ज्येष्ठ बड़े को मारने वाले का नाम ज्येष्ठघ्नी है। इस नक्षत्र-विशेष में उत्पन्न पुत्र अपने ज्येष्ठ पिता, माता आदि का मारक होता है। वैसे ही विचृत अर्थात् विवर्तन-शील मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र सारे कुल का नाश-कर्त्ता होता है। इसलिए पापी नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र की रक्षा मूलोच्छेद-दोष से करो। इस पुत्र के दीर्घायु होने के लिए (१०० वर्ष जीने के लिए) सभी उपाय करो।

व्याघ्रे न ह्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
समावधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्रमिनीञ्जनित्रीम्।

अथर्व—६-११०-३

व्याघ्र के समान क्रूर नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र शुभ हो और बढ़ कर—बड़ा होकर—माता-पिता का हन्ता न हो।

मा ज्येष्ठा वधीयमग्न एषां मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनुजानन्तु विश्वे।

अथर्व—६-११२-१

हे अग्नि! यह अपने बड़े भाई को न मारे। मूलोच्छेदन दोष से इसकी रक्षा करो, अर्थात् इस दोष का शमन करो। हे अग्नि! तू इस पाश से विमुक्त करने वाले उपाय को जानती है। उन पाशों को खोल। सब देवता इस विमोचन में तेरा अनुकरण करें।

इन मन्त्रों में स्पष्टतया मूल-नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र का फल कहा गया है। ऐसे ही प्रमाण अन्य स्थलों पर भी मिलते हैं। इससे यह मानना पड़ता है कि वैदिक काल में भी फलित ज्योतिष का बीज विद्यमान था।

दिवाकर शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-मुक्त ।

(अरिल)

किसे नहीं ललना ललामता मोहती,
विफल नहीं होता उसका टोना कहीं।
किसे नहीं उसके विशाल दृग बेधते,
किसे कुसुम-शायक कम्पित करता नहीं ॥१॥

निज लपटों से करके दग्ध विपुल हृदय,
कलह वैर कुवचन अङ्गारक प्रसवती।
करके भस्मीभूत विचार विवेक को,
किस के उर में क्रोध आग नहिँ दहकती ॥२॥

अनुचित-उचित-विचार-विहीन, उपद्रवी,
प्रति-हिंसा-प्रिय, हठी, निकेतन अज्ञता।
असहन-शील, कठोर, दाम्भिक, मन्द-धी,
किसे नहीं करती प्रमत्त, मदमत्तता ॥३॥

कहीं कान्त स्वर ग्राम रूप में है रमा,
कहीं सरस रस परिमल बन कर सोहता।
सुत-वितादि ममता स्वरूप में है कहीं,
मधुर मूर्ति से मोह किसे नहीं मोहता ॥४॥

तीन लोक का राज तथा सारा विभव,
पा करके भी तृप्ति नहीं होती जिसे।
रुधिर-पात पर-पीड़न का जो हेतु है,
भला लोभ विचलित करता नहिँ किसे ॥५॥

चाहे द्रोह प्रमाद असूया आदि हो,
चाहे हो मत्सर चाहे हो पिशुनता।
काम क्रोध मद मोह लोभ जैसे अपर
दोष हैं न, ये सकल दोष के हैं पिता ॥६॥

अनुपम साधन तथा आत्म-बल अतुल से,
जिसका जीवन इन दोषों से मुक्त है।
पूत-चरित लोकोत्तर-गुण-गरिमा-वलित
वही इस अवनि-तल पर जीवन-मुक्त है ॥७॥

क्या सकामता उसमें होती है नहीं?
होती है, पर वह होती है सुरुचिमय।
बन जाता परम फलद पूत-तम,
काम-विशिख छू अति पावन उसका हृदय ॥८॥

नहिँ विलासिता हेतु बनी उसके लिए,
किसी काल में कामिनि-कुल-कमनीयता।
वरन उसे सब काल दिखा उसमें पड़ी
उस महान महिमामय की महनीयता ॥९॥

उस पावक सा पूत कोप उसका रहे,
जो कञ्चन को तपा बनाता है विमल।
या होता है उस भानु प्रभात सा,
जो समुदित हो देता है तम-तोम दल ॥१०॥

उस आतप सा भी कह सकते हैं उसे,
जिसके पीछे सुखद सलिल है बरसता।
वह सुतप्त जल भी उसका उपमान है,
तन जिससे पाता है अनुपम निरुजता ॥११॥

यह वह शासन है जिससे सुधरे कुधी,
यह वह नियमन है जिसमें हित निहित।
वह प्रयोग है मुक्त जनों का कोप यह,
जिससे अविहित रत पाता है पथ विहित ॥१२॥

आत्म-त्याग का अति पुनीत मद पान कर,
वह रहता है सदा विमुग्ध प्रमत्त सा।
होती है इसलिए भूत-हित में रँगी,
सफल भावनायें उसकी मद-सम्भवा ॥१३॥

पर-दुख-कातरता पर वरता वन्यता,
अहंमन्यता को मानवता पगों पर।
सदा निछावर करता है वह मुग्ध हो,
पर-हित-प्रियता पर गौरव-गरिमा अपर ॥१४॥

कर विलोप साधन नभ-तारक-पुञ्ज का,
दिननायक सा नहिँ होत उसका उदय।
समुदित होता है वह कुमुदिनि-कान्त सा,
सप्रभ अविकलित रञ्जित रख तारक-निचय ॥१५॥

होता है उर मोह-महत्ताओं भरा।
होती हैं भ्रममयी न उसकी पूर्तियाँ।
मधुमयता ममता विमुग्धता में उसे
विश्व-प्रेम की मिलती हैं शुचि मूर्तियाँ ॥१६॥

सुन्दर-स्वर-लहरी उसकी चित-वृत्ति को
ले जाती है खींच अलौकिक लोक में।
बहती है अति पूत प्रेमधारा जहाँ,
भक्ति-सुधा सँग दिव्य ज्ञान-आलोक में ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव "रसो वै सः" का उसमें है भरा ,
परिमल करता है मानस को परिमलित ।
पाठ सिखा देता है समता का उसे ,
मननशीलता सुत-वितादि-ममता-जनित ॥१८॥
कभी लोक-सेवा लोलुपता-रूप में ,
कभी उच्च-तम-प्रेम-ललक की मूर्ति बन ।
मुक्त जनों का लोभ बिलसता है कभी ,
पा भावुकता-लसित-लालसा-पूत-तन ॥१९॥
रज समान गिन तीन लोक के राज को ,
लोक-चित्त-रञ्जन-हित लालायित रहा ।
बना रहा वह विहित लाभ का लालची ,
सदा विभव तज भव-हित-धारा में बहा ॥२०॥
रक्त-पात-नियमन मदान्धता-दमन का ,
सत्य, न्याय को समुचित मान-प्रदान का ।
उसके जी से लोभ न जाता है कभी ,
जीव-दया, सच्ची स्वतन्त्रता दान का ॥२१॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

एरोप्लेन (वायुयान) ।

वायु में उड़ने वाले विमान को हम वायु-यान कह सकते हैं। उसका वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में बहुत स्थानों में उसी प्रकार मिलता है जिस प्रकार प्रायः सब प्राचीन जातियों के साहित्य में मिलता है। रामचन्द्र, अपने सैन्य के सहित, लङ्का से सचमुच ही किसी वायुयान पर बैठ कर अयोध्या को लौटे थे अथवा नहीं, इसका निर्णय करना उस विषय के विद्वानों का काम है। यहाँ पर तो वर्तमान वायु-यान का वर्णन थोड़े में करना ही मेरा उद्देश्य है।

इन वायु-यानों के दो मुख्य विभाग हैं—एक ज़ेप्लिन, दूसरा एरोप्लेन। ज़ेप्लिन गुब्बारे के नियमों के आधार पर बनाये जाते हैं। उनका वर्णन सरस्वती में किया जा चुका है। आज एरोप्लेन का वर्णन सुनिए—

इन बड़े बड़े विमानों को वायु में उड़ते हुए देख कर साधारण मनुष्यों को अचरज होना स्वाभाविक है। किन्तु इनके वायु में स्थित रहने के नियम साधारण गति की शक्ति के नियमों पर ही निश्चित हुए हैं। बाइसिकल को बिना इधर उधर झुके दौड़ते देख कर आरम्भ में लोगों को आश्चर्य्य हुआ करता था; किन्तु अब वह साधारण बात हो गई है। बाइसिकल सीधी उसी समय तक रह सकती है जिस समय तक कोई मनुष्य उस पर बैठा हुआ अपनी शक्ति के द्वारा उसे चलाता रहता है। अर्थात्—जब तक उसकी गति का रोध नहीं होता। गति-हीन होने से वह गिर जाती है। इसी प्रकार एक लट्टू अपनी बारीक कील पर तभी तक नाचता रहता है जब तक उसमें गति है। गति बन्द होते ही वह भी गिर पड़ता है।

एरोप्लेन की भी बात ऐसी ही है। इस विमान में एक तेज़ एञ्जिन जुड़ा रहता है। वह दो पङ्खों को बराबर चलाता रहता है। पङ्खों की गति के वेग से यह भारी पदार्थ भी आकाश में ठहरा रहता है।

बड़े वेग से दौड़ती हुई रेल-गाड़ी की खिड़की से मुँह निकालने पर वायु का बड़ा तेज़ झोंका लगता है। पर उसी समय कभी कभी पास के पेड़ों के पत्ते तक नहीं हिलते। जब वायु की चाल धीमी होती है तब भी तेज़ दौड़ती हुई गाड़ी पर बैठे हुए मनुष्य को वायु ज़ोर से बहती हुई मालूम पड़ती है। इसी प्रकार दौड़ते हुए मनुष्य को मन्द वायु का झोंका भी ज़ोर से लगता है। इसका कारण मनुष्य की चाल है, न कि वायु की।

अपना मुँह गाड़ी के बाहर निकालने के बदले यदि एक काग़ज़ की तख़्ती के टुकड़े को बाहर खड़ा रक्खें तो वह फ़ौरन या तो हाथ से छूट जायगा, या टूट जायगा। यदि हम उसे हाथ पर पट रक्खें तो वह फर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फराता हुआ हिलता रहेगा। यदि तख़्ती के उस टुकड़े को कुछ थोड़ा सा उठा कर रक्खें तो एक बड़ा आश्चर्यजनक वैज्ञानिक नतीजा निकलेगा। वह यह कि तख़्ती का टुकड़ा ऊपर उठने की कोशिश करेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी चिपटी वस्तु को वायु की चाल की ओर, सतह से कुछ उठा कर रक्खें, तो उसमें ऊपर की ओर कुछ बोझ ले जाने की शक्ति आ जाती है। इसका कारण यह है कि वह वस्तु वायु को नीचे की ओर धक्का देती है। इससे वह स्वयं ऊपर को उठती है—ठीक वैसे ही जैसे गेंद दीवार को धक्का मार कर पीछे लौटती है।

वायु में उड़नेवाला पक्षी ऊपर जाते समय सदैव ऊपर की ओर झुका हुआ उठता है और नीचे आते समय नीचे की ओर झुका रहता है। कभी कभी पक्षी वायु में ऊपर की ओर झुक कर अपने पङ्खों को बिना हिलाये—केवल उन्हें फैलाये हुए ही एक ही स्थान पर ठहरा रहता है और नीचे नहीं गिरता। इसी नियम के आधार पर सब "ऐरोप्लेन" इस प्रकार बनाये जाते हैं कि वे वायु में कुछ ऊपर को उठे रहें।

ऊपर दो नियम बताये गये हैं। एक तो यह कि वायु-यान को ऊपर की ओर कुछ उठा हुआ होना चाहिए, जिससे वह ऊपर आकाश में चढ़ सके और वायु को नीचे की ओर धक्का मार सके। उसी धक्के के बल वह ऊपर चढ़ता है। दूसरा यह कि पक्षी की तरह उसमें ऐसे पङ्ख हों जो सदैव वेग से हिलते रहें।

बिना एक प्रकार की शक्ति ख़र्च किये दूसरे प्रकार की शक्ति पैदा नहीं हो सकती। पक्षी पङ्ख हिलाने में अपने शरीर की शक्ति को ख़र्च करके उड़ने की शक्ति प्राप्त करता है। यद्यपि वायु की शक्ति, पक्षी के ऊपर की ओर झुके रहने के कारण, उसे वायु में किसी क़दर स्थित रख सकती है; तथापि वह शक्ति इतनी नहीं है कि पक्षी को इधर से उधर मनमाना ले जा सके।

किसी चलती हुई नाव को देखिए। खेते समय मल्लाह डाँडों के द्वारा जल को पीछे की ओर ढकेलता है, जिससे नाव स्वयं आगे की ओर जाती है। बड़े बड़े जहाज़ों में, पीछे, दुम की ओर, एक पङ्खा लगा रहता है। वह पानी को पीछे की ओर ढकेलता है, जिससे जहाज़ धक्का खा कर आगे बढ़ता जाता है।

वायु-यान में भी इसी प्रकार पङ्खे होते हैं। वे एञ्जिन-द्वारा बराबर चलते रहते हैं। इससे वायु-यान हवा को पीछे धक्का मारता हुआ आगे बढ़ता जाता है। यदि एञ्जिन बन्द हो जाय और पङ्खों का चलना रुक जाय तो वायु-यान उसी प्रकार ऊपर की ओर झुका रह कर, कुछ देर वायु में ठहरा रह सकता है जिस प्रकार पक्षी अपने पङ्खों को बिना हिलाये कभी कभी वायु में ठहरे रहते हैं। इसी तरह नीचे आने के लिए भी वायु-यान को नीचे की ओर झुक जाना पड़ता है।

एरोप्लेन बिलकुल पक्षी की सूरत-शक्ल का होता है। इसका शरीर, इसके पङ्ख और इसकी दुम पक्षी ही की तरह होती है और पक्षी के पैरों के सदृश इसके पहिये भी होते हैं। नीचे उतरते समय इन पहियों की सहायता दरकार होती है।

प्रधान एरोप्लेन दो प्रकार के होते हैं। एक को मानोप्लेन कहते हैं और दूसरे को बाइप्लेन। मानोप्लेन की सतह, शरीर, पङ्ख इत्यादि सब अवयव पक्षी के सदृश इकहरे, अर्थात् एक ही एक होते हैं। पर बाइप्लेन में वे सब दोहरे—एक के ऊपर एक—होते हैं।

इन वायु-यानों में पक्षी की तरह दोनों बाज़ुओं में पङ्ख लगाने से इनको तेज़ी से घुमाने में दिक़्क़त पड़ती है। इसलिए इनमें एक ही पङ्ख आगे या पीछे लगा दिया जाता है। वह वायु को धक्का मारता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

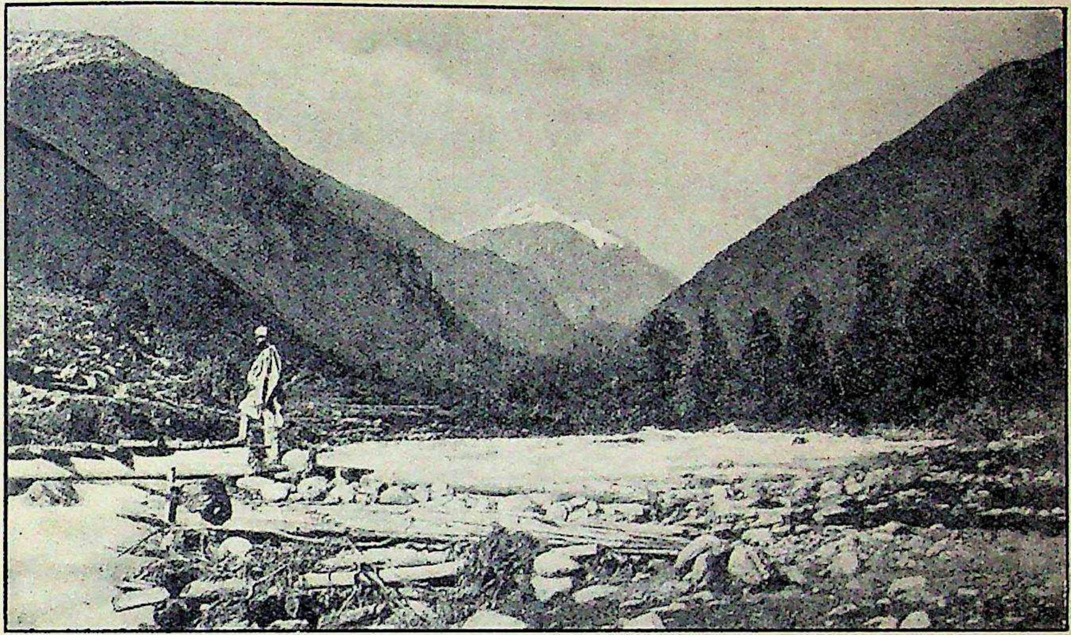

पहलगाँव (काश्मीर) में लिदर नदी का दृश्य । यह स्थान श्रीनगर से बहुत दूर नहीं ।

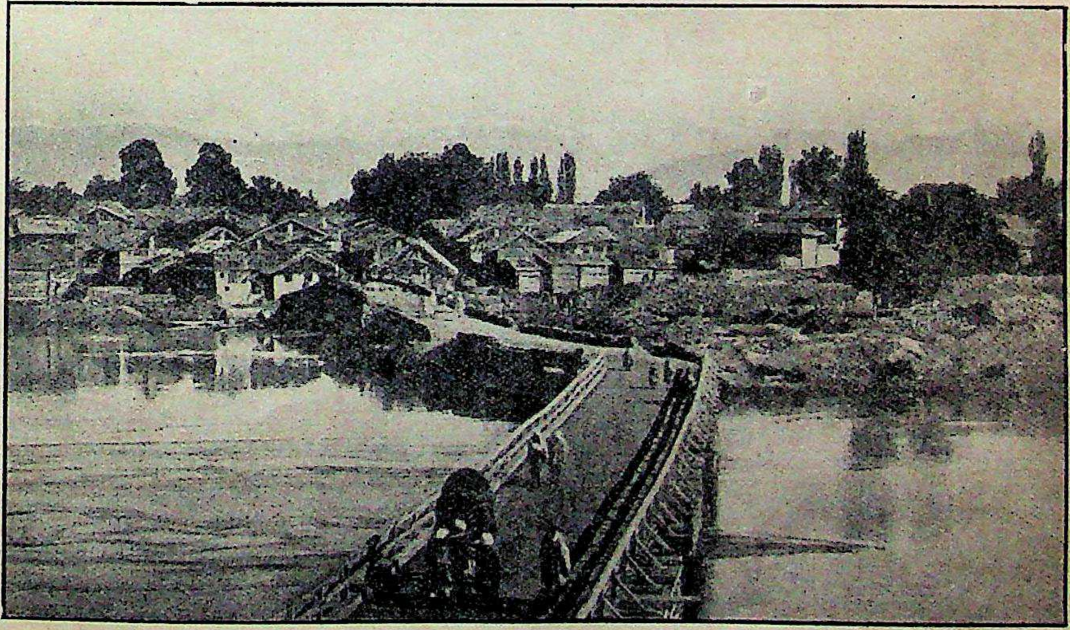

सोपुर नाम का नगर (काश्मीर) और वितस्ता नदी पर पुल ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ वायु-यान को जहाज़ के सदृश आगे बढ़ा ले जाता है। इस पङ्ख की चाल इतनी तेज़ होती है कि यह साधारणतः दिखाई ही नहीं पड़ता।

वायु-यान प्रायः लकड़ी का बनाया जाता है। इससे वह हलका रहता है। उसमें सबसे प्रधान वस्तु एञ्जिन है। वही उसे शक्ति दे कर आगे बढ़ाता है। एञ्जिन जितना ही छोटा, पर शक्तिमान हो, वायु-यान उतना ही अच्छा और शक्ति-शाली होगा।

ऊपर बताये हुए दो प्रकार के वायुयानों के अतिरिक्त एक प्रकार का वायुयान और भी होता है। उसे सामुद्रिक वायु-यान (Hydro-Aeroplane or Se-aplane) कहते हैं। उसमें और पूर्वोक्त वायुयानों के आकार-प्रकार में केवल इतना भेद होता है कि पहले प्रकार के वायुयानों का आकार-प्रकार पृथ्वी से ऊँचे उठने और पृथ्वी पर उतरने के योग्य बनाया जाता है और इनका आकार-प्रकार समुद्र में चलने योग्य होता है। अर्थात् ये इस प्रकार बनाये जाते हैं कि समुद्र से ऊपर उठ सकें और समुद्र में ही उतर सकें। उड़ने के नियम सबके एक ही से हैं। मानोप्लेन और बाइप्लेन के पेट में पहिये होते हैं। उनके सहारे वे बिना चोट खाये पृथ्वी पर उतर पड़ते हैं। पर सीप्लेन के नीचे खोखले तम्बूरे होते हैं। उनके सहारे वे पानी पर तैरते रहते हैं।

चौथे प्रकार का भी एक एरोप्लेन होता है। उसे ट्राइप्लेन कहते हैं। उसके शरीर में तीन सतहें होती हैं। इस प्रकार के वायु-यान बहुत भारी होते हैं। इस कारण उनके चलने की शक्ति कम हो जाती है।

ये वायु-यान भिन्न भिन्न आकार के बनते हैं। परन्तु जिन नियमों के आधार पर इनकी रचना की जाती है वे सब असल में एक ही हैं।

जगन्नाथ खन्ना, बी० एस्०-सी०, ई० ई०, लन्दन

पावस-परमा।

ऊष्मा बड़ी थी, देह से था स्वेद का सोता बहा;
था पवन भी तो स्थगित सा किसको न दुख होता रहा
जो देशव्यापी विपद है वह है किसे खलती नहीं?
बचते नहीं चालाक कोई चाल फिर चलती नहीं ॥१॥

चिड़ियाँ सशङ्कित-चित्त जाकर नीड में रक्षित हुईं;
अण्डे सँभाले च्यूँटियाँ भगती हुईं लक्षित हुईं।
आती विपद लख यत्न कुछ रक्षार्थ करना चाहिए;
आलस्य-वश हो मौत-बेआई न मरना चाहिए ॥२॥

बदला प्रकृति ने रङ्ग फिर पुरवा हवा चलने लगी;
फिर जान सी आई बदन में कुछ व्यथा टलने लगी।
सुख यदि सदा रहता नहीं तो दुःख का भी अन्त है;
यह सोच कर निज चित्त में विचलित न होता सन्त है ॥३॥

आने लगे दल बादलों के गगन में घिरने लगे;
मद-मत्त-गज से घन गरजते घूमने फिरने लगे।
आकाश पर चढ़ कर किसे होता नहीं अभिमान है?
सुध वह पतन की भूलता जिसका कि अभ्युत्थान है ॥४॥

अब हो गया शीतल पवन बूँदें विपुल पड़ने लगीं;
भूषण वनस्पति-पत्र पर मणि-जाल से जड़ने लगीं।
जो पतित होकर भी सदा इस तरह पर-हित-रत रहे;
तो चाह में उसकी न क्यों संसार चातकवत् रहे ॥५॥

करती हुई गुरु गर्जना छिपती चमक कर चञ्चला;
नभ-रङ्ग-भू में यह नटी सी कर रही क्या क्या कला।
मानों स्वपति-साम्राज्य लख कर नाचती आनन्द से;
उल्लसित मन होते सभी के स्वजन श्री-सुखकन्द से ॥६॥

रज-कण-मिलित जल भर गया नद तीव्र-गति से बह चले,
वे विकल से जाते हुए यह बात तह की कह चले।
आये जहाँ से फिर वहीं हम विमल होने जा रहे;
इस बीच की ही कीच से हो कर मलिन दुख पा रहे ॥७॥

वह दूब जो सूखी हुई थी हरी मख़मल बन गई;
बिगड़ी हुई उसकी सभी पा कर विमल जल बन गई।
निज सुहृद से शीतल हुआ है जी—जला किसका नहीं?
पा कर मनोहर मन हरा होता भला किसका नहीं? ॥८॥

वे पेड़ जिनकी जान के थे ताप से लाले पड़े;
अब लहलहाते झूमते हैं मुदित मतवाले खड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें पड़ा जीवन भला वे शान्त कब रहने लगे ;
क्यों रोक फलने फूलने में सदल हो सहने लगे ॥९॥
देखो जिधर, है उधर ही बस हरित-आभा छा गई ;
उसकी लहक लग लोचनों में तीव्र-ताप बुझा गई।
लख रुचिर हरियाली जवासा जला मानो ताप से ;
जलते मनुज योंहीं जगत में सतत पर-सन्ताप से ॥१०॥
बक-पंक्ति नीलाकाश में उड़ती हुई छवि छा रही ;
या धवल पावस-राज्य की है जय-ध्वजा फहरा रही।
या तमोगुण-मण्डित हृदय में लसी सत की लीक है ;
या शान्त का शृङ्गार में आभास कहना ठीक है ॥११॥
चिर-व्यथित चातक-चित्त में है नृत्य आशा कर रही ;
प्रियतम-मिलन की लालसा उत्कट हृदय में भर रही।
सुखमय-समय लख अति-निकट होता न कौन अधीर है ?
मछली उछलती किस त्वरा से जब निरखती नीर है ॥१२॥
थकं पथिक पथ चलते नहीं हैं भीग लथ पथ हो गये ;
ऐसा रुका रथ विपथ में मिथ्या मनोरथ हो गये।
दुर्दिन कहें इसको न क्यों अब कठिन घर जाना हुआ ;
निज हित अहित से हितू अहितू है सदा माना हुआ ॥१३॥
अति भयद वर्षा की निशा तम तुमुल छाता आ रहा ;
विरही जनों के हृदय को भय से कँपाता आ रहा।
योंही विरह-वश मृत्यु-घटिका दीखती नज़दीक है ;
"दैवोपि दुर्बलघातकः" लोकोक्ति बिलकुल ठीक है ॥१४॥
निष्प्रभ गगन है, एक तारा भी चमकता है नहीं ;
जैसे अशिक्षित देश में बुध हो न कोई भी कहीं।
जुगनू चमक पर आज अपना कर रही अभिमान है ;
जो कुछ न हो कम है, बड़ा ही काल यह बलवान है ॥१५॥
रोती छतें हैं और है दीवार फट कर हँस रही,
उभरा हुआ छज्जा कहीं पर कहीं धन्नी धँस रही।
यह सुखद ऋतु भी दीन जन को दे रही सुख कौन है
हरता हरे! दुखिया जनों का तब बिना दुख कौन है ?॥१६॥
रव घोर झिल्ली कर रहे हैं, गूँज नभ-मण्डल रहा ;
अति कर्ण-कटु यह शब्द कानों को बहुत ही खल रहा।
झिल्ली करोड़ों—इस लिए चलता नहीं कुछ ज़ोर है ;
है रोक सकता कौन जनता में मचा जो शोर है ? ॥१७॥
दादुर उधर गाते, इधर भी नृत्य करते मोर हैं ;
फिरते मुदित-मन मीन हैं, चिन्तित परन्तु चकोर हैं।
जैसे जगत-जन सुखित मन हो, मोह-माया-मग्न हैं ;
बस एक योगी तत्त्व-चिन्ता में कहीं संलग्न हैं ॥१८॥

सनेही

वाणिज्य-व्यवसाय-सम्बन्धी सुधार।

देशरूपी शरीर का प्रधान अङ्ग वाणिज्य-व्यवसाय है। देश की आर्थिक अवस्था और व्यवस्था से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब तक किसी देश में आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं होती, अर्थात् वहाँ के निवासियों को देश का धन-व्यय करने का अधिकार नहीं होता, तब तक देश के वाणिज्य का पनपना सम्भव नहीं। उसी तरह जब तक देश की सामाजिक व्यवस्था पर भी देशवासियों ही का पूर्ण अधिकार नहीं होता तब तक देश की व्यावसायिक अवस्था भी सुधर नहीं सकती।

उपर्युक्त कथन से मेरा अभिप्राय यह है कि जब तक एक देश के निवासियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता कि वे जनता से प्राप्त धन को अपनी आवश्यकता के अनुसार व्यय करें; विदेश से आये हुए माल पर कर लगावें; जिन्हें वे अनुचित और अनुपयोगी समझें उन वस्तुओं को देश में आने से रोकें, और तत्सम्बन्धी अपने और अधिकारों की रक्षा विदेश में करें, तब तक उनके वाणिज्य की उन्नति नहीं हो सकती।

इसी प्रकार जब तक देश में उत्पन्न होनेवाले कच्चे बाने पर देश-वासियों का पूरा अधिकार नहीं होता, देश के व्यवसाय को उचितलाभ पहुँचाने का प्रबन्ध स्वयं वे नहीं करते, तथा देश के व्यवसाय को विदेशी व्यवसायियों से बचाने का अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं होता, तब तक देश के व्यवसाय की यथेष्ट उन्नति नहीं हो सकती।

पर यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो पूर्वोक्त कोई भी अधिकार भारत-निवासियों को प्राप्त नहीं। भारत-सरकार ने "खुले दरवाज़े" वाले वाणिज्य (Free-Trade) की प्रथा भारत में चला रक्खी है। यह प्रथा चाहे उन्नत देशों को लाभदायक हो, किन्तु भारत ऐसे देश के लिए लाभदायक नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरप में भयङ्कर युद्ध छिड़ जाने के कारण, शत्रुओं के देश से भारत में माल आने की मुमानियत हो जाने के कारण, अब भारतीय जनता और भारत-सरकार की आँखें कुछ कुछ खुलने लगी हैं। भारतवासियों को अब अच्छी तरह मालूम हो गया है कि हमारा पैसा केवल इँगलिस्तान के ही व्यवसायी नहीं ले जाते (ये तो एक प्रकार से हमारे ही हैं; अतएव इनके पास रहा धन तो मानों हमारा ही है)। किन्तु हमारे विदेशी व्यापार का अधिकांश धन अब तक हमारे शत्रुओं को मिलता था, जो आज हमारे ही रुधिर-पात में काम आ रहा है। किन्तु हमें, इस समय, शत्रुओं अथवा मित्रों का विचार नहीं करना। हमें आज केवल इस दृष्टि से विचार करना है कि हमारे व्यवसाय और वाणिज्य से कितना धन हमें प्राप्त होता है और कितना बाहर वालों की जेबों में जाता है। इस सम्बन्ध में जो सुधार हम चाहते हैं उसका अर्थ यह है कि हमारे वाणिज्य और व्यवसाय से हमीं को दिन दिन अधिकाधिक लाभ हो और हमारा धन ग़ैरों की गाँठ में जाने से बचे।

इन्हीं सब बातों पर विचार करने के लिए भारत-सरकार ने सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी सज्जनों की एक समिति (कमीशन) बनाई है। यह समिति भारत भर में दौरा करेगी और इस विषय का अनुसन्धान करके सरकार को यह बताने का यत्न करेगी कि भारत के व्यवसाय की किस प्रकार उन्नति की जाय और भारतीय वाणिज्य किस तरह से राष्ट्रीय बनाया जाय।

मालूम नहीं, यह समिति सरकार को क्या सलाह देगी या इसे किन किन बातों पर विचार करने की आज्ञा है। तथापि देशी सदस्यों के विचारार्थ कतिपय सूचनायें करना आवश्यक है। वे सूचनायें ये हैं—

(१) भारत के वाणिज्य की उन्नति का सबसे बड़ा कण्टक यहाँ की मुद्रा-प्रणाली है। भारत का प्रधान सिक्का रुपया है जो चाँदी का बनाया जाता है। इस कारण हमारे वणिकों को लेन-देन में विदेशियों से हानि उठानी पड़ती है। इसके प्रधान कारण दो हैं—

(अ) चाँदी के भाव की अस्थिरता के कारण—उसके दिन दिन घटने-बढ़ने के कारण—हमारे सिक्के का भाव भी विदेशों में घटा-बढ़ा करता है। इस कारण लेन-देन में विदेशी मुद्रा (सिक्के) में ही हिसाब-किताब करना पड़ता है। इससे लेन-देन दोनों में हमें हानि ही होती है।

(आ) हमारी मुद्रा वास्तविक नहीं, साङ्केतिक है। अर्थात् १६ आने की समझी जाने पर भी उसमें १० आने से अधिक की चाँदी नहीं। इसलिए विदेश में हमारे १) का मूल्य ॥=) से अधिक नहीं होता। अतएव विदेशवासियों से धन पाते समय हमें १०० के मूल्य की चीज़ पर कोई ६२॥) की चाँदी, अथवा इतनी ही चाँदी के मूल्य का सोने का सिक्का, मिलता है।

इसी तरह उन्हें देते समय हमें कोई ६२॥) के मूल्य की चीज़ के लिए १००) देने पड़ते हैं। इसमें हमें दुहरा घाटा होता है। इसलिए देशी सदस्यों से मेरी सविनय प्रार्थना है कि समिति की जाँच का विवरण लिखते समय सरकार से मुद्रा-प्रणाली में सुधार करने के लिए नीचे लिखी हुई प्रार्थनायें की जायँ।

१—भारत में चाँदी की जगह सोने का सिक्का चलाया जाय।

२—साङ्केतिक मुद्रा की जगह वास्तविक मुद्रा का प्रचार किया जाय।

३—मुद्रा-प्रणाली दशमलव के सिद्धान्त पर बनाई जाय। इससे हिसाब-किताब में और भी सुगमता होगी।

इससे मेरा अभिप्राय यह है कि प्रधान मुद्रा पूरे १०० भागों में विभक्त हो। यदि उसके भी छोटे छोटे अंश करना अभीष्ट हो तो वे भाग भी दस दस के किये जायँ। अर्थात् १) के १०० पैसे। यदि १ पैसे से भी छोटा भाग करना हो तो पैसे के भी १० भाग करके प्रत्येक भाग का कुछ नाम रख दिया जाय।

(२) व्यवसाय की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि "खुले दरवाज़े" व्यवसाय को एकदम देश-निकाला दे दिया जाय। उसके स्थान में सुरक्षित व्यवसाय का सिद्धान्त व्यवहार में लाया जाय और विदेशी मालों पर कर लगाया जाय। इस सम्बन्ध में जो सुधार आवश्यक जान पड़ते हैं वे ये हैं—

(अ) स्वदेशी व्यवसाय को उन्नत करने के लिए जहाँ स्वदेशी व्यवसायियों को धन और मन से एक ओर सहायता देनी पड़ेगी तहाँ दूसरी ओर विदेशी मालों पर कर लगा कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें देश में आने से रोकना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में रोकटोक दो प्रकार की होनी उचित है। एक तो शत्रु-देशों के प्रति, दूसरे मित्र-देशों के प्रति। शत्रुओं के माल पर तो इतना कर लगाना चाहिए कि वह कुछ दिनों तक देश में आकर बिक ही न सके। मित्र-देशों के मालों पर भी इतना कर लगाना होगा कि उनका माल देश में आकर देशी मालों से किसी प्रकार सस्ता न बिक सके।

(आ) ऐसे मालों पर जिनके लिए वहाँ की सरकार से सहायता मिलती हो—फिर वे चाहे शत्रु-देशों के हों—चाहे मित्र-देशों के हों—इतना कर लगा देना चाहिए जिससे वे स्वदेश में आकर स्वदेशी व्यवसाय को हानि न पहुँचा सकें।

(इ) देश से कच्चा बाना अपरिमित परिमाण में बाहर जाता है। वह बन्द होना चाहिए। यह दो प्रकार से हो सकता है—एक तो ऐसी आज्ञा देने से कि कतिपय वस्तुयें, जिनकी हमें अधिक आवश्यकता है, बाहर जाने ही न पावें; दूसरे ऐसे नियम बनाने से कि बाहर सिर्फ़ वही वस्तुयें जाने पावें जिनके जाने से देश की और अधिक हानि न होती हो। और, बाहर जाने वाली वस्तुओं पर इतना कर लगाया जाय जिसमें वे पक्के माल के रूप में भारत लौटने पर देशी माल से सस्ती न बिक सकें।

कर लगाते समय एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। वह यह कि ऐसे मित्र-देशों के माल, जो अब तक बाज़ार में, शत्रुओं के मालों के रहने के कारण उनके मुक़ाबिले में मँहगे नहीं बेचे जा सकते थे, शत्रुओं के माल का एकदम अभाव हो जाने के कारण मँहगे न बिकने लग जायँ। क्योंकि फिर उन्हें मुक़ाबिले का भय बाक़ी न रह जायगा। इसलिए उन पर भी यथेष्ट कर लगाना उचित है, जिससे देश की हानि न हो।

सारांश यह कि भारत के हित की ओर दृष्टि रख कर कर-पद्धति की सृष्टि होनी चाहिए; अन्य राष्ट्रों के हित की दृष्टि से नहीं। अर्थात् जिस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य अङ्ग, आस्ट्रेलिया इत्यादि, में स्वदेश के वाणिज्य और व्यवसाय के उपकार को ध्यान में रख कर कर-पद्धति निश्चित की जाती है उसी प्रकार यहाँ भी की जानी चाहिए।

(३) इन सुधारों के साथ साथ और भी कितने ही सुधार होने चाहिए—यथा (१) भारत की रेल-कम्पनियों ने माल ले जाने के लिए किराये का जो नियम बनाया है उससे विदेशी वणिकों को तो लाभ होता है और भारतीय वणिकों को हानि। इसलिए भारत-सरकार रेल-कम्पनियों का प्रबन्ध कम्पनियों के हाथ से निकाल कर स्वयं अपने हाथ में ले ले, जिससे रेल-द्वारा, भविष्यत् में, देशी वणिकों और व्यवसायियों को हानि न पहुँचे।

आन्तरिक व्यापार (Internal Trade) अर्थात् देश के भीतर इधर उधर माल ले जाने के लिए जल-मार्ग का भी उपयोग फिर से दिन दिन अधिकाधिक बढ़ाना चाहिए। जल-मार्गों के पुनर्जीवन से आन्तरिक व्यापार की उन्नति का एक स्वाभाविक साधन हाथ लग जायगा।

(४) देश में दुर्भिक्ष दिन दिन अपनी दारुणता दिखाता जाता है। उसे रोकने के लिए खाद्य पदार्थों का बाहर जाना एकदम रोक देना चाहिए। उन्हें शत्रु-देशों में जाने देने की तो सख़्त रुकावट होनी चाहिए। यही नहीं, मित्र-देशों में भी उतनी ही चीज़ें जाने पावें जितनी घर की आवश्यकता पूर्ण करने के उपरान्त बच सकें। अर्थात् एक दाना भी बाहर जाने के पहले इसका अन्दाज़ा लगा लेना चाहिए कि दो वर्षों के लिए देश में कितनी अन्न-सामग्री दरकार होगी। तब जितना बचे उतना मित्र-देशों में जाने दीजिए।

(५) भारत में भिन्न भिन्न तोल, माप और गणना होने के कारण देश के भीतरी व्यवसाय में बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। इसका भी सुधार होना आवश्यक है। अर्थात् देश भर में एक ही प्रकार की तोल, माप और गणना की प्रथा का प्रचार होना चाहिए।

ये कतिपय विचार सुधार के मार्ग में दिग्दर्शन मात्र हैं। अन्य अनुभवी और अर्थ-शास्त्र के ज्ञाताओं को इस सम्बन्ध में अपने अपने विचार प्रकट करके जनता और सरकार को सचेत करना उचित है।

शिवप्रसाद गुप्त
(काशी-निवासी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोर्ट आव् वार्ड्स के कुछ रजिस्टर।

कोर्ट आव् वार्ड्स में ज़िले के दफ़्तरों का हिसाब दो बड़े भागों में विभक्त है। एक तो वह जिसका सम्बन्ध सदर, अर्थात् मैनेजर के दफ़्तर, से होता है। दूसरा वह जिसका सम्बन्ध मुफ़स्सिल (बाहर) के मुलाज़िमों से होता है। हिसाब रखने की इन दोनों प्रणालियों का वर्णन लिखने के पहले हम यह आवश्यक समझते हैं कि कुछ मुख्य मुख्य रजिस्टरों का परिचय पाठकों से करा दिया जाय। क्योंकि हिसाब रखने की रीति के वर्णन में बारम्बार रजिस्टरों का नाम आवेगा।

मुफ़स्सिल के रजिस्टर।

(१) बहीखाता—इनमें सबसे अधिक उपयोगी बहीखाता है। जब कोई नई रियासत कोर्ट में आती है तब पटवारी की खतौनी की एक नक़ल कोर्ट में करा ली जाती है, जो सदा के लिए रक्खी रहती है। इस खतौनी का मिलान रियासत के काग़ज़ात से करके बहीखाता बनाया जाता है। बहीखाता मौज़ेवार होता है। अर्थात् प्रत्येक गाँव का बहीखाता अलग अलग होता है। हाँ, अनेक बहीखाते एक जिल्द में भी बँधा लिये जा सकते हैं। प्रत्येक कृषक के माथे जो देना होता है वह इसमें लिखा रहता है; चाहे वह देना जिस सीग़े का हो। अपने देन में से किसान जो कुछ अदा करता है वह भी लिख लिया जाता है और प्रत्येक रक़म के आगे, उस समय तक जो कुछ दिया गया है उसका जोड़ लिख दिया जाता है—अफ़ज़ूं लगा दी जाती है। इससे यह लाभ होता है कि उस व्यक्ति-विशेष के ज़िम्मे जो कुछ बाक़ी होता है वह झट मालूम हो जाता है।

बहीखाता सालाना काग़ज़ है। अर्थात् वह प्रति वर्ष नया बनता है। नया बहीखाता पिछले बहीखाते के आधार पर बनाया जाता है। पटवारी की खतौनी से उसका मिलान प्रति वर्ष किया जाता है। मिलान के बाद पटवारी और ज़िलेदार, दोनों मिल कर, मिलान कर लेने का सर्टीफ़िकेट बहीखाते पर देते हैं। बहीखाते में लिखे गये देन में बिना मैनेजर के हुकुम के कुछ भी न्यूनाधिक्य नहीं हो सकता। इसलिए जो घटी बढ़ी देने में होती है उसके लिए मैनेजर का हुकुम ज़िलेदार को दिखाना पड़ता है। सरबराहकार नये बहीखाते का मिलान पुराने से करके एक और सर्टीफ़िकेट उस पर लिखता है कि नये खाते पर देना सही सही लिखा गया है। पिछले खाते में जो देना बाक़ी रह गया था वह नये खाते पर लिख लिया गया है; और, इसी तरह जो पिछले साल अगले साल के लिए वसूल हो चुका है—अर्थात् पेशगी—वह भी बहीखाते पर लिख लिया गया है।

देने अर्थात् मतालबे का ऐसा ही रजिस्टर प्रायः प्राइवेट रियासतों में भी देखा जाता है, जिसे कहीं खाता और कहीं खतौनी कहते हैं। परन्तु पटवारी के काग़ज़ से उसका मिलान अकसर नहीं होता और न उसमें न्यूनाधिक करने की बाबत ही इतने कड़े नियम का पालन होता है। परिणाम यह होता है कि कृषक के भाग्य का फ़ैसिला केवल ज़िलेदार के हाथ में रहता है।

(२) खतौनी और खेवट—बहीखाते में लिखे देने की जाँच के लिए कोर्ट में पटवारी की खतौनी और खेवट (मातहतदारी और पुख़्तेदारी) की प्रतियाँ रहती हैं। हम पहले ही कह आये हैं कि इन्हीं से मिलान होकर पहला बहीखाता बनता है और प्रति वर्ष नये नये खाते का मिलान पुराने खाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हो जाने से उसके सही होने का इतमीनान हो जाता है।

(३) ख़सरा—देना दो प्रकार का होता है—एक नक़दी, जिसमें नक़द रुपया दिया जाता है; दूसरा ग़ल्लई, जिसमें अनाज बाँट लिया जाता है, अथवा उसके दाम ले लिये जाते हैं। अनाज बाँटने को "बटाई" और उसके दाम ले लेने को "कनकूत" कहते हैं। कोर्ट में प्रायः कनकूत पसन्द की जाती हैं। हाँ, कहीं कहीं बटाई भी होती है। कनकूत करने के भी नियम कोर्ट आव् वार्ड्स ने बनाये हैं। पहले पटवारी के काग़ज़ से एक खतौनी बनाई जाती है, जिसमें सब ग़ल्लई खेत लिख लिये जाते हैं। जिस खेत में फ़सल न बोई गई हो, अथवा उपजी न हो, अथवा उपज कर नष्ट हो गई हो, उसका मतालबा खतौनी में लिखा जायगा और उसके लिए जो व्यवस्था हुई होगी वह भी उसके सामने लिख दी जायगी। खतौनी पर पटवारी एक सर्टीफ़िकेट देता है कि सब ग़ल्लई खेत खतौनी में लिख गये हैं और जो खेत ख़ाली या उपजहीन लिखे हैं उनमें बीज बोया ही नहीं गया था, अथवा यदि बोया गया था तो नष्ट हो गया है। इसी खतौनी में अनाज का कनकूत और उसके दाम भी लिखे जाते हैं। कनकूत ख़सरे से लिया जाता है। ख़सरा वह रजिस्टर है जिसमें ज़िलेदार हर एक खेत पर जाकर पटवारी और कनकूत करने वाले पञ्चों के सामने अनाज का कनकूत लिख लेता है। शाम को पटवारी और कनकूत करने वाले पञ्चों के दस्तख़त ख़सरे पर ले लिये जाते हैं और तारीख़ लिख दी जाती है। इस ख़सरे की एक प्रति ज़िलेदार को उसी दिन सरबराहकार के पास भेजनी पड़ती है। सरबराहकार उसकी यथोचित जाँच करता है। फिर अपनी राय लिख कर मैनेजर के पास भेज देता है। मैनेजर उसे मञ्ज़ूर करता है और अपना हुकुम लिख कर उस प्रति को ज़िलेदार के पास लौटा देता है। ज़िलेदार मैनेजर के मञ्ज़ूर किये हुए देने को बहीखाते में लिख लेता है। उस देने का वसूल फिर नहीं लिखा जाता।

(४) सायर रजिस्टर—ज़मींदार कुछ भूमिकर ऐसा लेता है जिसका सम्बन्ध भूमि की जुताई से नहीं होता। जैसे—बाग़ की फ़सल के दाम; धरती पर उगी घास के दाम; कुम्हार, गड़रिये आदि प्रजा से घड़े या कमली आदि लेना इत्यादि। इसको सायर कहते हैं। कुछ सायर प्रति वर्ष बदलता रहता है, अर्थात् सालाना होता है और कुछ मुस्तक़िल होता है। वह एक ही दर से वसूल होता है। पेड़ की फ़सल के दाम, लकड़ी के दाम, घास के दाम, प्रति वर्ष उनकी उपज पर अवलम्बित रहते हैं। अतएव वे प्रति वर्ष बदलते रहते हैं। अथवा यों कहिए कि वह सालाना सायर है। गड़रिये आदि से कर बाँध लेना—उदाहरणतः एक कमली प्रति वर्ष ले लेना मुस्तक़िल सायर है। सालाना सायर के भी कुछ मुस्तक़िल ज़रिये होते हैं; जैसे—बाग़, ताल, आदि। उनसे कुछ न कुछ प्रति वर्ष मिलता ही है। कुछ ज़रिये मुस्तक़िल नहीं होते। यथा—किसी घर की लकड़ी के दाम और नई प्रजा के बसने के समय घर का नज़राना आदि। सायर के मुस्तक़िल ज़रियों का एक रजिस्टर प्रत्येक ज़िलेदार अपने पास रखता है, जिसे सायर-रजिस्टर कहते हैं। इसमें ख़सरे का नम्बर, आमदनी का ज़रिया और गत पाँच वर्षों की आमदनी का औसत लिखा रहता है। उसी के सामने साल की आमदनी लिखी जाती है। मैनेजर का काम है कि वह गत ५ साल की आमदनी से वर्तमान साल की आमदनी का मिलान करे, और यदि विशेष घटी बढ़ी हुई हो तो उसका कारण ढूँढ़े। लेखक की राय में यह रजिस्टर बहुत उपयोगी है और जिन प्राइवेट रियासतों में न हो वहाँ भी उसका प्रचार होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) रेमिटेन्स रजिस्टर—दिन भर जो रुपया वसूल होता है उसे जोड़ कर उसका योग-फल इस रजिस्टर में लिखा जाता है तथा पिछले दिन का रुपया जो ज़िलेदार के हाथ में रहा हो वह भी लिख कर उसमें जोड़ दिया जाता है। जो रुपया ज़िलेदार ख़ज़ाने में भेजता है उसे घटा कर बाक़ी निकाल देता है। सप्ताह के अन्त में सात दिन का, और महीने के अन्त में महीने भर का जोड़ इसमें लिख दिया जाता है। इसी तरह वर्ष के अन्त तक हुए वसूल का जोड़ बढ़ता जाता है।

(६) स्याहा और गोशवारा—किसी असामी से जो रुपया जिस मद में वसूल होता है उसकी रसीद ब्योरेवार उसी वक्त उसे दी जाती है। रसीदों से मौज़ेवार वसूल स्याहा में प्रति दिन लिख लिया जाता है। स्याहा में वसूल ब्योरेवार लिखा जाता है। वसूल का जोड़ भी उसमें लिख दिया जाता है। सप्ताह के अन्त में प्रत्येक मौज़े का वसूल जोड़ कर गोशवारे में लिखा जाता है और सब मौज़ों का, सप्ताह भर का, वसूल जोड़ लिया जाता है। इसका मिलान रेमिटेन्स से होता है।

मुफ़स्सिल के यही मुख्य रजिस्टर हैं। इनके अतिरिक्त ज़िलेदार को माफ़ी का रजिस्टर, रसीद की किताब, पट्टे और क़बूलियत की किताब, चीज़ों का स्टाक-रजिस्टर, चालानबही, स्टाम्प-रजिस्टर, पेशगी का हिसाब भी रखना पड़ता है। इनका विषय इनके नाम ही से प्रकट है। ज़िलेदार चिट्ठी-पत्री का रजिस्टर और बेदख़ली का रजिस्टर भी रखता है। बेदख़ली का रजिस्टर भी उपयोगी रजिस्टर है। इस रजिस्टर से यह पता चलता है कि अमुक वर्ष अमुक गाँव में क्यों ज़ियादह इस्तेफ़े हुए या बेदख़लियाँ लगानी पड़ीं। इससे यह भी जाना जाता है कि इस तरह ख़ाली हुई ज़मीन का क्या इन्तज़ाम ज़िलेदार ने किया।

अभिज्ञ

वनस्थली।

स्वार्थ-सिद्धि के लिए विविध व्यापारी तो हैं;
किन्तु धन्य वे पुरुष देश-हितकारी जो हैं।
अपने ही से सुखी अन्य को करने वाले,
दुर्लभ हैं पर में भी निज गुण भरने वाले।
ये मलयज निज देश को करते हैं सुरभित सदा;
इनसे मिल कर कौन तरु हुआ न इनके सम कदा ॥१॥

रूपवान का नाम मनोहर यदपि पड़ा है,
तो क्या वह इस हेतु किसी से कभी बड़ा है?
बन सकता है बड़ा वही जो है गुण वाला;
उसका चाहे रङ्ग रहे गोरा या काला।
चारु पत्र पा कर वृथा, गर्वित हुआ अशोक है;
फल-विहीनता पर उसे होता तनिक न शोक है ॥२॥

पर-पालन का पाठ नहीं जो पढ़े हुए हैं;
डील डौल में मूढ़ व्यर्थ वे बढ़े हुए हैं।
कोई उनके निकट कहो क्यों जा सकता है?
जाता है जग वहीं जहाँ कुछ पा सकता है।
इन बातों को ताल-तरु सिखलाते मानो हैं हमें;
निज जीवन की व्यर्थता या दिखलाते हैं हमें ॥३॥

नारिकेल भी यदपि ताल ही के भाई हैं;
निज छाया से नहीं किसी को सुखदायी हैं।
तो भी रस से भरे हुए ये फल देते हैं;
पहले निज काठिन्य हमें दिखला लेते हैं।
दानी जन की निठुरता सह सकता संसार है,
पर अति सूखे हृदय का जीवन भू का भार है ॥४॥

यथा भीरु का हृदय सदा कम्पित रहता है;
कभी न वह रिपु-शक्ति स्वल्प भी सह सकता है।
कायरपन के कर्म सभी को सिखलाता है;
या वह अपनी व्यर्थ तुच्छता दिखलाता है।
उसी भाँति अश्वत्थ ये स्थिर होकर रहते नहीं;
कभी वायु के वेग को दृढ़ होकर सहते नहीं ॥५॥

ज्यों भविष्य में देश-दशा की देख अधोगति,
देश-हितैषी की न कभी रहती है स्थिर मति।
नहीं दुष्ट-उत्कर्ष सहन उसको होता है,
अश्रुपात कर सदा क्षुभित हो वह रोता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मधूक-तरु भी तथा पुष्प-पात के व्याज़ से ,
सोच हृदय शुचि की व्यथा रोता है भय-लाज से ॥६॥
नीच मनुज के साथ नीच ही रह सकता है ,
क्योंकि वही नीचत्व नीच का सह सकता है ।
करके उसका सङ्ग नीचता कैान पड़ेगा ?
अधम रजक के छोड़ गधे पर कैान चढ़ेगा ।
इन नीमों के योग्य ही रसिक मिले हैं काक भी ;
अन्य पतग इनकी तरफ़ सकते क्यों कर ताक भी ॥७॥
दुख ही दुख का लाभ सदा है कण्टक जन से ;
कोई उससे कभी नहीं मिलता है मन से ।
क्या वह सद्व्यवहार किसी से कर सकता है ?
ताड़ित होकर भी न किसी से डर सकता है ।
वही बबूलों की दशा है सचमुच ही देखिए ;
लाभ न कुछ होगा, इन्हें यदपि सुधा से सींचिए ॥८॥
निज गैारव का ज्ञान बना रहता है जिनको ,
कभी अपर का वेश नहीं भाता है उनको ।
वे अपना ही रङ्ग चढ़ाते हैं ग्रौरों पर ;
सदा ऐक्य का हाथ ढारते हैं ग्रौरों पर ।
खदिर-वृक्ष भी धन्य ये रहते हैं निज रङ्ग में ;
लाल हुआ चूना लखो इनके ही सत्सङ्ग में ॥९॥
निज-जन-नाशक कुल-कपूत होते हैं जैसे ,
बाँसों को भी सहज जान लेना तुम तैसे ।
करते हैं ये अग्नि प्रकट आपस में लड़ कर ,
हो जाता है भस्म विपिन सब उसमें पड़ कर ।
हित अनहित का ज्ञान क्यों शून्य-हृदय को हो कभी ।
विविध यत्न कर देखिए निष्फल होंगे वे सभी ॥१०॥
ज्यों कलि के धनवान श्वान को दूध पिलाते ,
हाय ! गाय को किन्तु घास भी नहीं खिलाते ।
गुरुदेवों को छोड़ धर्म से होकर न्यारे ;
करते हैं सम्मान सदा नीचों के सारे ।
यह वट-विटपी भी तथा हंसादिक को छोड़ कर—
निन्दित है, निज मित्रता क्षुद्रखगों से जोड़ कर ॥११॥
दानवीर वह धन्य अन्य-उपकार करे जो ;
देह-दान से सदा देश का दैन्य हरे जो ।
दुर्लभ ऐसे मनुज सदा जग में होते हैं ;
दुख सह कर जो स्वयं पराये दुख खोते हैं ।
शिवि, दधीचि के सम सुयश इसी भूर्ज तरु ने लिया ,
जड़ भी हो करके अहो त्वचा-दान जग को दिया ॥१२॥

रामचरित उपाध्याय ।

महाराना राजसिंहजी का पत्र ।

गत मई की सरस्वती में "महाराजा जसवन्तसिंहजी का पत्र" शीर्षक एक लेख, पण्डित देवीदत्तजी शुक्ल का लिखा हुआ, प्रकाशित हुआ है। पण्डितजी ने असली ख़त का जो अनुवाद दिया है वह बहुत उत्तम है। पत्र का अँगरेज़ी-अनुवाद उन्होंने पुरातत्व-विभाग की रिपोर्ट में पढ़ा था। उसी का अनुवाद आपने हिन्दी में किया है। अँगरेज़ी-अनुवाद ग्रोमें नाम के एक इतिहास-लेखक के लेख के आधार पर किया गया है। हमें असली ख़त की नक़ल मिली है, जो इस नोट के साथ प्रकाशित की जाती है। आशा है, पाठकों के लिए यह नक़ल अधिक उपयोगिनी और मनोरञ्जक होगी। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि पत्र की भाषा कितनी गम्भीर और रहस्य-पूर्ण है। पर इसको लिखने वाले जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंहजी नहीं हैं, उदयपुर के महाराना राजसिंहजी हैं।

कर्नल जेम्स टाड ने, अपनी पुस्तक (Annaas and Antiquities of Rajasthan) की पहली जिल्द के पृष्ठ ३५३ पर, इस विषय में एक नोट दिया है। उसमें उन्होंने साफ़ तैार पर इस पत्र को महाराना राजसिंहजी का लिखा हुआ बताया है। उनके मीर-मुन्शी को इस पत्र की असली नक़ल मेवाड़ के प्राचीन दफ़्र से ही उपलब्ध हुई थी। कर्नल टाड राज-स्थान के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक हैं। वे ग्रार्मे महोदय के मत को सर्वथा भ्रम-मूलक प्रमाणित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

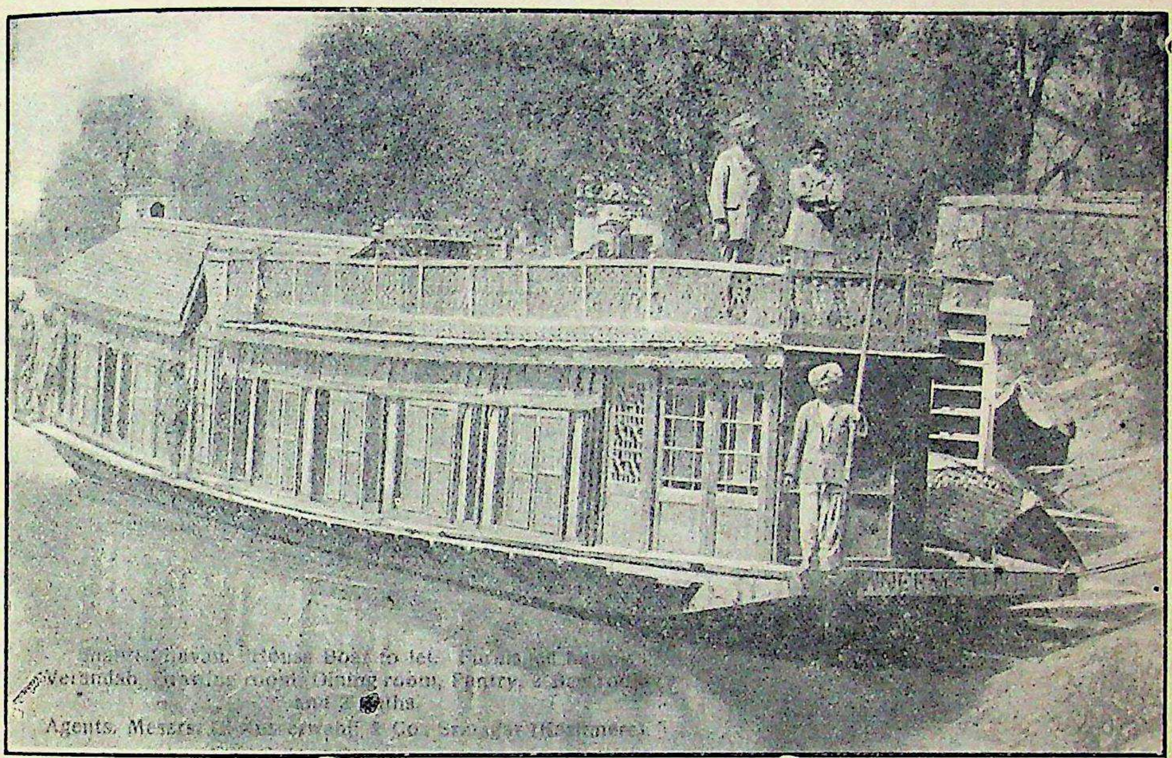

पहले दरजे का हाउस-बोट (काश्मीर)।

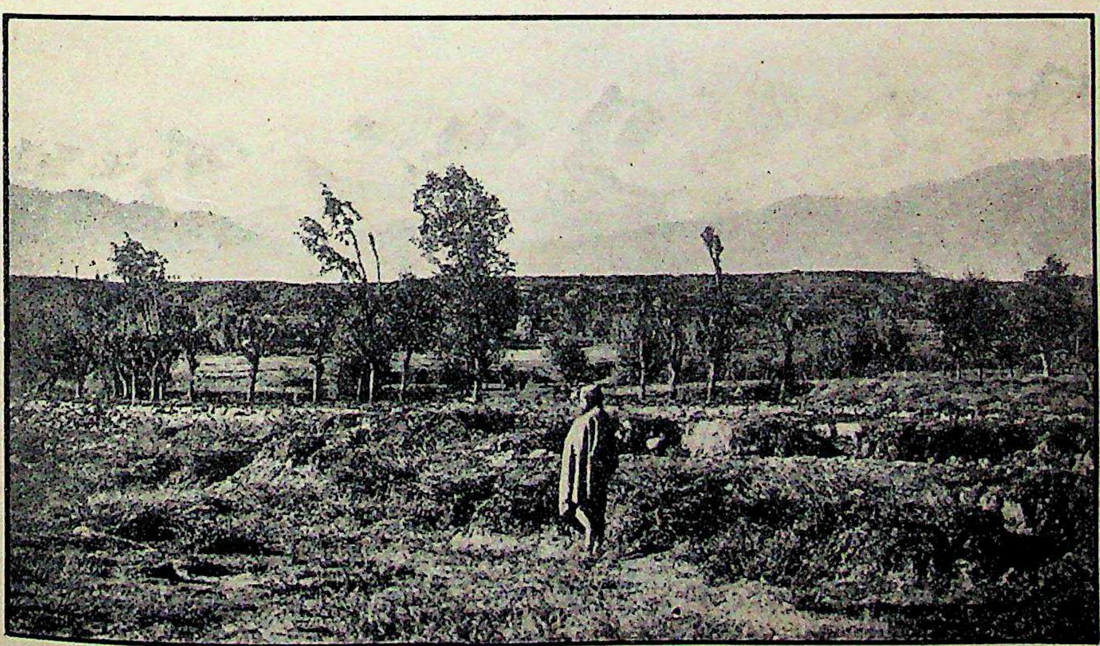

नङ्गा-पर्वत का दृश्य (काश्मीर)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक भी पत्र के मज़मून से मालूम कर सकते हैं कि इस तरह का पत्र किस हैसियत का मनुष्य लिख सकता है। कारण सुनिए—

(१) प्रथम—"बाद हमदे एज़िदे .ज़ुलजलाल और शुक्रिया करम व फ़ज़्ले हुज़ूरे अनवर के वाज़े हो कि अगरचे .खैर-तलब ख़िदमते हुज़ूरे आला से अलाहिदा हो गया है"।

महाराजा जसवन्तसिंहजी कभी "ख़िदमते आला" से अलाहिदा नहीं हुए, और महाराना राजसिंहजी ने सन्धि तोड़ कर बादशाह के विरुद्ध खड़े होने का साहस किया था। परिणाम यह हुआ कि संवत् १७३७ में बादशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और दैबारी घाट के भयङ्कर युद्ध में बादशाह परास्त होकर भाग निकला।

(२) दूसरे—"अवल रामसिंह से जो हुनूद में मुक़द्दम समझा जाता है मतालिबा किया जावे"—

ये लफ़्ज़ महाराजा जसवन्तसिंहजी नहीं लिख सकते। आमेर-नरेश मिरज़ा राजा जयसिंहजी और महाराजा जसवन्तसिंहजी में बड़ी मित्रता थी। इस दशा में अपने मित्र के पुत्र रामसिंहजी पर इस प्रकार कटाक्ष करना और उनके विषय में बादशाह को उत्तेजित करना उनके लिए असम्भव था। पर महाराना राजसिंहजी यह कटाक्ष-पूर्ण वाक्य महाराजा रामसिंहजी के लिए लिख सकते थे। क्योंकि आमेर और उदयपुर में उन दिनों घोर वैर-भाव था। महाराना इन वाक्यों से मानों आमेर-नरेश को धिक्कार दे रहे हैं।

(३) तीसरे—"बाद अज़ाँ इस .खैरतलब को याद फ़रमाया जाय क्योंकि मेरे मुक़ाबिले में हुज़ूर को कम मुशकिलात वाक़ै होंगी"।

महाराजा जसवन्तसिंहजी औरङ्ग़ज़ेब की अधीनता में रहते हुए ऐसे शब्द लिख सकते थे या नहीं, यह विचारने योग्य बात है। महाराना के इस लिखने का ही फल संवत् १७३७ का युद्ध था।

इन तथा और कारणों से यह पत्र महाराजा जसवन्तसिंहजी का लिखा हुआ प्रतीत नहीं होता। इसके लेखक महाराना राजसिंहजी ही प्रमाणित होते हैं। आशा है कि कोई इतिहास-प्रेमी इस बात का निर्णय करने की कृपा करेंगे।

नीचे उस ख़त का मज़मून दिया जाता है जिसे महाराना राजसिंहजी ने शाहनशाह औरङ्ग़ज़ेब आलमगीर ग़ाज़ी के नाम लिखा था—

बाद हमदे एज़िदे ज़ुलजलाल और शुक्रिया करम व फ़ज़्ले हुज़ूरे अनवर के वाज़े हो कि अगरचे .खैर-तलब ख़िदमत हुज़ूरे आला से अलाहिदा हो गया है मगर इताअत और .खैरख़्वाही की हर एक लाज़मी ख़िदमत के अंजामदिही में हमातन सर-गरम है। मेरी दिली ख़्वाहिश और शबाना रोज़ी कोशिश इसमें है कि शाहान व उमरा व मिरज़ायान व राजगान मुमालिके हिन्दोस्तान और फ़रमाँरवायान ईरान व तूरान व रूम व शाम व बाशिंदगाने हफ़्त अक़लीम और सइयाहान बहर व बर की आफ़ियत व बहबूदी में तरक़्क़ी हो। चुनांचे मेरा यह शौक़ मशहूर व मारूफ़ है कि हुज़ूर के दमाग़ व दिल को भी उसमें मुक़ामे इश्तिबाह नहीं हो सकता। इस वास्ते अपने रुसूख़ ख़िदमाते साबिक़ा और हुज़ूर के इलतिफ़ात पर ऐतबार करके मैं हुज़ूर से ऐसे मामले पर मुतवज्जह होने की इलतिजा करता हूँ जिस में ज़ाते ख़ास व अवामुन्नास के फ़वाइद मुज़मिर हैं।

मुझको दरयाफ़्त हुआ है कि इस .खैरख़्वाह के ख़िलाफ़ जो तदबीरें हुई हैं उनकी तामील व अंजामदिही में ज़रे कसीर ख़र्च हुआ है और ख़ज़ानए आमिरए शाही में जो कमी आयद हुई उसके रफ़ा करने के वास्ते हुज़ूर ने ख़िराज वसूल करने का हुक्म दिया है। वाज़ेह राय आलिये हुज़ूर हो कि आपके अज़ीमुश्शान बुज़ुर्ग मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर ख़ल्दअल्लाह मुल्कहू ने अरसे बावन बरस तक कारोबार सलतनत को बड़े इसतिक़लाल और इन्साफ़ से अंजाम दिया था, और हर फ़िरक़ा रिआया के आराम व आसाइश में कोशिश की थी। .ख़्वाह कोई ईसाई हो या उन दहरियों के फ़िरक़े से हो जो दवामियत माद्दे से मुनकिर हैं या उस से जो वजूदे आलम को मुनहसर बइत्तफ़ाक़ समझते हैं। उनकी सब पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यकसां तवज्जह व मेहरबानी थी कि इस बिला इमतयाज़ शफ़क़त के शुकरिए में उनकी रिआया ने उनको जगतगुरू यानी मुहाफ़िज़-नोए-बशर के लक़ब से मुमताज़ किया था।

हज़रत मुहम्मद नूरउद्दीन जहांगीर ने कि ख़ुदा उनको भी बहिश्त नसीब करे, इसी तरह बाईस बरस तक ज़िल्ले हिफ़ाज़त व हिमायत को अपनी रिआया पर मुहीत रक्खा। रफ़ीक़ों के साथ हमेशा वफ़ादारी और मुहिम्माते सलतनत में क़ूवत व ज़ोर-आज़माई करके कामयाब हुए।

मशहूर शाहेजहां ने भी अपने बत्तीस बरस के मुतबर्रक अहद में रहम व सख़ावत का उमदा इजरा और दवामी नेक-नामी हासिल करने में कमी न की।

आपके बुज़ुर्गों की ऐसी पुर ख़ैर व फ़ैय्याज़ आदतें थीं। इन फ़राख़ और उलू हिम्मती के उसूल पर अमल करने से जिस तरफ़ उन्होंने अज़ीमत की फ़तह व नुसरत पेशरौ हुई, और इसी ज़रिये से उन्होंने अकसर मुमालिक व क़िलआत को मग़लूब व मुतीअ किया। मगर हुज़ूर के अहद में अकसर मुमालिक सलतनत से जाते रहे हैं और इस वजह से कि तबाही व मुसीबत बिला मुज़ाहिमत आलमगीर है, दीगर मुमालिक का नुक़सान और आयद होगा। आपकी रिआया पामाल हो गई है और आपकी सलतनत का हर एक मुल्क तबाह व मुफ़लिस हो गया है। वीरानी ज़ियादह होती जाती है और आफ़तें बढ़ती जाती हैं। जिस हालत में ख़ुद बादशाह और शाहज़ादों के घर को इफ़लास ने जा घेरा तो अमीरों का ख़ुदा जाने क्या हाल होगा। सिपाह नालां हैं। ताजिर मुस्तग़ीस हैं। मुसल्मान शाकी हैं। हिन्दू तबाह हैं और कमबख़्त मुसीबतज़दह लोगों के गरोह नाने-शबिना से मुहताज हैं। दिन भर ग़म व ग़ज़ब से सिर पीटते हैं। जो बादशाह ऐसे आफ़तज़दा लोगों से ख़िराजे गरां वसूल किया चाहे वह अपनी अज़मत व शान को क्योंकर क़ायम रख सकता है। इस ज़माने में मशरिक़ से मग़रिब तक मशहूर है कि हिन्दोस्तान का बादशाह बेचारे हिन्दू-मज़हबी लोगों से तअस्सुब करके ब्राह्मण, सेवड़ा, जोगी, बैरागी और सन्यासियों से ख़िराज वसूल किया चाहता है, और नसले तैमूरिया के अज़ीमुश्शान रुतबे का मुतलक़ लिहाज़ न करके बे-गुनाह, बे-क़ुसूर, ख़ुदा-परस्तों पर अपनी ताक़त का इम्तहान करने पर उतर आया है। अगर हुज़ूर का कुछ भी एतक़ाद उन किताबों पर है जिनको मुतबर्रक व मज़हबी कहते हैं तो वे आप की रहनुमाई करेंगी। ख़ुदावन्द ताला रब्बुल-आलमीन है, न सिर्फ़ रब्बुल-मुसल्मीन। हिन्दू और मुसल्मान एकसां उसकी मख़लूक़ हैं। रङ्ग का फ़रक़ उसके हुक्म से है। वही सब को पैदा करता है। आपके मोबिदों में उसी के नाम पर अज़ां दी जाती है और बुतख़ानों में भी, जहां घण्टे हिलाये जाते हैं, मनसूए इबादत वही है। ग़ैर लोगों के मज़हब या रसमियात की इहानत करना ख़ुदावन्दताला की मरज़ी की ख़िलाफ़वरज़ी है, क्योंकि अगर हम तसवीर को मिटावें तो लाज़िम है कि मुसव्विर-इताब मुतसव्विर हों। किसी शाइर ने सच कहा है कि "ख़ुदावन्दताला के मुख़्तलिफ़ कामों पर एतराज़ व नुकताचीनी की मुबादरत मत करो"। अलग़रज़ महसूल जो आप हुनूद से तलब करते हैं ख़िलाफ़े मादलत है और उसी क़दर ख़िलाफ़े मसलहत है। क्योंकि मुल्क उससे मुफ़लिस हो जावेगा। अलावा बरीं यह फ़ेल जदीद और क़वानीने हिन्दोस्तान से ख़िलाफ़ है। अगर आपके जोशे मज़हबी नें आपको इस इरादे पर क़तई आमादह कर दिया है तो बमुक़तज़ाये इनसाफ़ लाज़िम है कि अव्वल रामसिंह से, जो हुनूद में मुक़द्दम समझा जाता है, मतालिबा किया जावे। और बाद अज़ां इस ख़ैर-तलब को याद फ़रमाया जावे, क्योंकि मेरे मुक़ाबिले में आपको कम मुशकिलात वाक़े होंगी। वरना मोर व मगस को अज़ीयत पहुँचाना उलूहिम्मती और दरयादिली से बईद है। तअज्जुब है कि वज़राय सलतनत ने हुज़ूर को ईमान व इज़्ज़त के क़वाइद की हिदायत करने में बड़ी ग़फ़लत की है।

बस, असल पत्र की यही नक़ल है।

हरनाथसिंह।

आदि-रहस्य।

वंशी बोली—वश मेरा क्या ? मैं करती हूँ शोर—
जभी मुझे बाहर से मिलता किसी फूँक का ज़ोर।
कहा फूँक ने—पवन-मात्र मैं; मेरा ही है ध्यान—
किन्तु बजाता जो जन वंशी, उसका किसको ज्ञान ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञात कारण ।

पर-सेवा है व्रत रजनी का, इससे वह आती चुपचाप
और विपिन की सब कलियों को विकसित कर हट जाती आप ।
पुष्प, सुबह उठ कर, सब कहते—हम हैं उषः काल के फूल ;
और बोलती ऊषा मुखरा—ठीक, ठीक—इसमें क्या भूल ?

असमपूर्ण संवाद ।

रोकर बोली कभी चकोरी—हे हे पूर्ण चन्द्र राकेश !
विद्वज्जन-वाणी सुन मुझको होता है सन्देह विशेष ;
क्या तेरा भी हो जावेगा प्रलय-काल आने पर अन्त ?
अहो निशापति ! गति तब मेरी, सोचो, क्या होगा हा हन्त !!
कहा शशी ने—मेरी चिन्ता मत कर; जा विज्ञों के पास
और पूछ आ कब तक तेरे लिखा भाग्य में भोग-विलास !

अनुवादक—पारसनाथसिंह, बी० ए० ।

काश्मीर की यात्रा ।

कुछ दिनों से स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण मेरा विचार था कि किसी पहाड़ी स्थान में इस साल की गरमी बिताऊँ। मन में शिमला, नैनीताल, अल्मोड़ा अथवा दारजिलिङ्ग जाने का विचार कर ही रहा था कि मेरे एक मित्र ने काश्मीर की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया । उनके मुख से वहाँ के दृश्य और जलवायु की प्रशंसा सुन कर मेरे हृदय में यह उत्कट आकांक्षा उत्पन्न हुई कि इस बार काश्मीर की तराई का दर्शन अवश्य करूँ । समय आने पर मैं आरे से चल कर लखनऊ और लाहौर होता हुआ रावलपिण्डी पहुँचा । पास ही एक खत्री सज्जन की बनाई हुई धर्मपुरा नाम की धर्मशाला है । उसमें उतरने का अच्छा प्रबन्ध है । प्रबन्ध-कर्त्ता महाशय भी सत्पुरुष हैं । जाते ही आपने मेरी बड़ी मदद की ।

सवारी ।

दूसरे दिन, अर्थात् पाँचवीं मई को, सन्ध्या-समय, मैं महाराज काश्मीर के दरबार के एक वयोवृद्ध ज्योतिषी के साथ ताँगे पर रवाना हुआ । उनके साथ एक नौकर भी था । कुल ताँगे का किराया ४८॥) था । उसमें से मुझे १६=)॥ देने पड़े । रावलपिण्डी से श्रीनगर जाने के लिए पाँच तरह की सवारियाँ मिलती हैं ।

(१) मामूली ताँगा—इसमें साधारणतः तीन आदमी बैठते हैं । ऐसे ताँगे लखनऊ, बरेली, मेरठ, लाहौर और रावलपिण्डी आदि सभी उत्तर-पश्चिमीय भारत के बड़े बड़े शहरों में पाये जाते हैं । इसका किराया प्रायः ३०-३५) होता है । एक आदमी को उसका तिहाई देना पड़ता है । एप्रिल के अन्त और मई के प्रारम्भ में महाराजा साहब का दफ़्तर जम्मू से उठ कर श्रीनगर आता है । इस लिए ताँगे की दर चढ़ जाती है । एक आदमी को १६) वा १७) तक देने पड़ते हैं । मामूली ताँगे के लिए यात्री को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता । क्योंकि ताँगे वाले ख़ुद ही धर्मशाला में आते और यात्रियों को तलाश करते हैं ।

(२) धनजी भाई का ताँगा—धनजी भाई की एक इम्पीरियल कैरिंग कम्पनी (Imperial Carrying Company) है जो चिट्ठियाँ और माल आदि रावलपिण्डी से श्रीनगर और श्रीनगर से रावलपिण्डी ले जाने का प्रबन्ध करती है । इसके लिए साधारण ताँगे हैं । यात्री भी पूरा किराया देने से उनमें बैठ सकते हैं । एक सवारी का किराया ३१॥) है । यह ताँगा तीसरे दिन श्रीनगर पहुँचता है और मामूली ताँगा पाँचवें दिन । इसके घोड़े और हाँकने वाले प्रति पाँच मील पर बदलते हैं । ये ताँगे रात दिन चला करते हैं । मामूली ताँगे रात को नहीं चलते ।

(३) धनजी भाई की फ़िटिन—इसका किराया सौ रुपये है । इसमें चार आदमी बैठते हैं । यह भी श्रीनगर तीन चार रोज़ में पहुँचती है । पर इसमें अधिक सामान रखने की गुञ्जायश नहीं । इसके यात्रियों को सामान के लिए प्रायः इक्के करने पड़ते हैं । इनका किराया मामूली ताँगे के किराये के प्रायः बराबर होता है ।

(४) इक्का—इसमें भी, मामूली ताँगे की तरह, तीन आदमी बैठते तो हैं, पर ज़रा तकलीफ़ से । इससे फ़ायदा सिर्फ़ इतनाही है कि इसमें बहुत सामान रक्खा जा सकता है । बैठने की तकलीफ़ के सिवा इसकी सवारी कुछ ख़तरनाक भी है । क्योंकि बैठने की जगह बहुत ऊँची होती है ।

(५) मोटरकार—इसका किराया कोई २५०) है । यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन में रावलपिण्डी से श्रीनगर पहुँचती है। इसमें सामान भी काफ़ी रक्खा जा सकता है।

ऊपर लिखी हुई पाँच सवारियों में से लोग अपनी हैसियत और यात्रा के उद्देश के अनुसार कोई सवारी ठीक कर लेते हैं। जो लोग सिर्फ़ सैर के लिए काश्मीर जाना चाहते हैं उन्हें ताँगा अथवा इक्का करना चाहिए। क्योंकि इससे ठहरने, पैदल चलने, अतएव प्राकृतिक दृश्य देखने का अच्छा मौक़ा मिलता है।

मैं शाम को, ज्योतिषीजी के साथ, मामूली ताँगे पर, रावलपिण्डी से रवाना हुआ। रात के दस बजे एक गाँव मिला। वहाँ प्रायः सब ताँगे और इक्के ठहरते हैं। दूध आदि पी कर क़रीब बारह या एक बजे मैं यहाँ से रवाना हुआ और दूसरे दिन बारह बजे दिन को मरी पहुँचा। मरी प्रायः आठ हज़ार फ़ुट ऊँचा पहाड़ है। उसके ऊपर समतल भूमि पर मरी नाम का क़सबा बसा है। यहाँ बहुतेरे अँगरेज़ गरमियों में पञ्जाब से आकर रहते हैं। जितनी सरदी यहाँ पड़ती है उतनी श्रीनगर में भी नहीं पड़ती। यहाँ ब्रिटिश अँगरेज़ी सेना भी रहती है। यहाँ से सफ़ेद बर्फ़ से ढकी हुई चोटी वाले दूरस्थित पहाड़ों का दृश्य बड़ा ही मनोहर देख पड़ता है। दिल चाहता है कि घण्टों खड़े देखते ही रहें। कभी कभी तो यह सन्देह होने लगता है कि पतित-पावनी शुभ्र-सलिला गङ्गा खेतों से होकर कई धाराओं में बह रही है अथवा शिव की लम्बी लम्बी जटाओं से निकल रही है। श्रीनगर जाने में जिस सब से ऊँची चढ़ाई का सामना यात्रियों को करना पड़ता है वह इसी मरी की है। यहाँ से बराबर उतार शुरू होता है।

सड़क।

सड़क पक्की और काफ़ी चौड़ी है। उसके एक ओर ऊँचा सिर उठाये ये पहाड़ और दूसरी ओर पाताल सी गहरी खाई है। इस पर एक साथ दो ताँगे मज़े में चल सकते हैं। पर कहीं कहीं यह इतनी तङ्ग है कि एक ताँगा भी मुश्किल से चल सकता है। सड़क पर सवारियाँ बराबर आया जाया करती हैं। चोरी आदि का कुछ भी भय नहीं। हाँ, यदि घोड़े की बदमाशी अथवा गाड़ीवान की असावधानी से ताँगा खाई की ओर चला गया तो ईश्वर ही मालिक है। ऐसे मौक़े पर जान हथेली पर रहती है। जो लोग ताँगे की पिछली बैठक पर बैठते हैं उन्हें तो कूद कर अपनी जान बचा लेने का अवसर भी मिल सकता है, परन्तु आगे बैठने वालों को बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ता है। पर, फिर भी डरने की कोई बात नहीं। ऐसी घटनायें बहुत ही कम होती हैं, क्योंकि गाड़ीवान और घोड़े दोनों सड़क से परिचित होते हैं।

पड़ाव।

रास्ते में रात को ठहरने के लिए कई पड़ाव हैं, जिनमें ऊड़ी, बारामूला, और पटन मुख्य हैं। इनके अलावा और स्थान भी हैं, जहाँ दूध, मिठाई और पूरियाँ आदि पदार्थ मिलते हैं। चार आने देने से सोने के लिए एक कमरा भी मिल जाता है। कमरे में चारपाई आदि सामान भी रहता है। कितने ही पड़ावों में पूरियाँ बनी बनाई नहीं मिलतीं। और, जब तक कम से कम आध सेर न लो, दूकानदार बनाते भी नहीं। क्योंकि यहाँ वाले पूरियाँ ज़ियादह नहीं ख़रीदते। दूकानदार पञ्जाबी हैं। काश्मीरी एक भी नहीं। ऊड़ी में पानी की बड़ी तकलीफ़ है। क्योंकि वहाँ एक ही नाली है। उसमें एक झरने से बहुत धीरे धीरे पानी आता है। पर है वह बहुत हलका, ठण्डा और पुष्टिकारी। सारे काश्मीर में दो एक ख़ास झरनों के पानी के सिवा और सब जगहों में पानी ठण्डा ही मिलेगा। दो आने सेर दूध सब पड़ावों में मिल जाता है। पर दो एक पड़ावों को छोड़ कर बाक़ी सब जगहों का दूध पानी-मिला होता है।

बारामूला की आबादी कोई १०—१५ हज़ार होगी। वहाँ पञ्जाबियों का अच्छा सिक्का जमा हुआ है। वहाँ सन्तसिंह जी की एक कोठी है। सन्तसिंह जी जाति के सिक्ख हैं। बड़े ही उदार और धर्म्मपरायण हैं। आपने अपने आलीशान मकान के, बिजली की रोशनी से झकाझक कई कमरे, शरीफ़ यात्रियों के लिए अलग कर दिये हैं। यही नहीं, भोजन तथा वस्त्रादि से भी आप यात्रियों की सेवा करते हैं। जब मैं यहाँ उतरा तब आपने पाँच ही मिनट के भीतर दूध मँगवा दिया। आप अपने साथ मुझे टहलाने भी ले गये। रात को आपने उमदा भोजन खिला कर सत्कार किया और अपने पास ही सुलाया। अमरनाथ के मेले के मौक़े पर सैकड़ों साधु आपके यहाँ प्रति दिन भोजन करते हैं। धन्य हैं आप। जिस समय मैं वहाँ उतरा उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय आपके भतीजे सेवासिंहजी वहीं थे। आप पर ही अतिथि-सत्कार का भार था।

झेलम नदी ।

रावलपिण्डी से ही काश्मीर का राज्य नहीं शुरू होता। वहां से ६३ मील पर एक स्थान कोहाला है। यहीं पर ब्रिटिश राज्य का अन्त और काश्मीर राज्य का आरम्भ होता है। यहीं से झेलम की तराई भी शुरू होती है और सड़क लगातार बारामूला तक, अर्थात् लगभग १०० मील तक, झेलम नदी के किनारे किनारे जाती है। इस नदी में बारामूला तक किश्ती नहीं चल सकती। क्योंकि यहां इसे पत्थरों के टुकड़ों पर से उछलते कूदते आना पड़ता है। बारामूला से तांगे की सड़क, नदी का किनारा छोड़ कर, दूसरे रास्ते से जाती है। जब तक यह सड़क न बनी थी तब तक लोग बारामूला से किश्ती पर भी श्रीनगर जाते थे। बारामूला से आगे कुछ दूर पर प्रसिद्ध झील ऊलर नाम की है। ऊलर झील से निकलने पर झेलम नदी का नाम झेलम है। वहां जब तक वह उस झील में नहीं गिरती तब तक उसका नाम वितस्ता है। वह श्रीनगर से कोई ५० मील दक्षिण वीरनाग नामक एक झरने से निकलती है और श्रीनगर होती हुई ऊलर में गिरती है।

मकान ।

श्रीनगर पहुँचने पर, अनजाने यात्रियों को सिक्खों की धर्म्मशाला में उतरना चाहिए। वहां उतर कर वे अपने रहने के लिए मकान अथवा हाउस-बोट (गृह-नौका) ठीक कर सकते हैं। यहां के मकान प्रायः काठ के हैं। दीवारें भी काठ की हैं, जिन पर मिट्टी का पलस्तर रहता है। कारण यह है कि यहां पहले भूकम्प अधिक हुआ करते थे और काठ सस्ता था। पर अब भूकम्प कम हो जाने और लकड़ी का ठेका हो जाने से ईंट के मकान बनने लगे हैं। मकानों में लगी हुई लकड़ी पर नक्क़ाशी ख़ूब होती है। इस काम में यहां के काश्मीरी मुसलमान बड़े चतुर हैं। मकानों की छत नक्क़ाशी की हुई लकड़ी से मढ़ दी जाती है। इसमें अधिक ख़र्च भी नहीं पड़ता। मकानों का किराया यहां कम नहीं। जिस मकान में मैं १० दिनों तक ठहरा था उसका किराया (सिर्फ़ तीन छोटे कमरों का) ७॥) था। चार-पांच मामूली कमरे लेने से ५), ५॥) देने पड़ते हैं। जिस तरह कलकत्ते आदि बड़े शहरों में एक कटरे में कई परिवार रहते हैं उसी तरह यहां भी होता है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही है कि यहां एक कमरा किराये पर नहीं मिलता। एक परिवार के लिए जितने कमरे चाहिए उतने ज़रूर लेने होंगे, चाहे आप उन्हें काम में लावें चाहे न लावें। किराया अधिक होने के प्रधान कारण ये हैं कि यहां, सिर्फ़ आज कल ही, मकानों की मांग, पांच छः महीनों के लिए, बे-हद बढ़ जाती है। क्योंकि इन्हीं दिनों महाराजा साहिब का दफ़्र जम्मू से उठ कर यहां आता है। जो लोग साल भर या और अधिक समय के लिए मकान किराये पर लेना चाहते हैं उन्हें वही मकान जिसका मैं ७॥) देता था, २॥) ३) पर मिल जायगा। बिजली की रोशनी भी ॥) महीना देने से मिल जाती है। मकानों की छत समतल नहीं होती; खपड़े वाले मकानों के सदृश होती है। उस पर गच नहीं होती; मामूली मिट्टी या टीन होता है। इससे बर्फ़ ढुलक कर नीचें गिरजाती है।

हाउस-बोट ।

किश्तियां छः तरह की होती हैं—(१) हाउस-बोट, (२) डूँगा-हाउस-बोट, (३) डूँगा, (४) कुकिङ्ग-बोट, (५) शिकारा और (६) बहत (या बर)।

(१) हाउस-बोट—इनमें काठ के बने कई कमरे होते हैं। उनकी छत लकड़ी के खपड़ों की होती है। प्रायः सभी हाउस-बोटों पर एक ओर खुली छत रहती है, जिस पर बैठ कर यात्री चारों ओर का दृश्य देख सकते हैं। दरजे के मुताबिक कुर्सी, मेज़, चारपाई और बरतन आदि भी इनमें होते हैं। पहले दरजे के हाउस-बोट में ड्राइङ्ग-रूम, (बैठक) दो-तीन स्लीपिङ्ग-रूम, (शयनागार) एक डाइनिङ्ग-रूम, (भोजन-गृह) दो बाथ-रूम, (स्नानसदन) एक सामान रखने का कमरा और दो-एक फ़ालतू कमरे होते हैं। इनमें काफ़ी कुर्सियाँ और मेज़ें होती हैं। मेज़ों पर बेल-बूटेदार कपड़ा पड़ा रहता है और खिड़कियों और दरवाज़ों में सुन्दर पर्दे लगे रहते हैं। बात यह है कि रहनेवालों को मकान में जिन जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है वे सब इनमें मिल जाती हैं। किराया इनका तीस चालीस रुपये महीना होता है। दूसरे, तीसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरजे का किराया इससे कम होता है। हर हाउस-बोट पर तीन-चार माँझी होते हैं।

(२) डूँगा-हाउस-बोट—यह भी एक प्रकार का हाउस-बोट है। इसकी छत मामूली लकड़ी की होती है। इस पर बैठने उठने के लिए खुली छत नहीं होती। इसका किराया—२५) ३०) मासिक होता है।

(३) डूँगा—यह हाउस-बोट ही की तरह का होता है, पर इसकी छत सिर्फ़ चटाई की होती है। इसमें लकड़ी की दीवारें नहीं होतीं; उनके बदले चटाइयाँ लटकी रहती हैं। यह भी कई क़िस्म का होता है। एक सुसज्जित और कमरे वाला होता है, दूसरा बिना कमरे का। इनका किराया क्रमशः कोई १५) और १०) मासिक होता है। माँझी भी तीन-चार होते हैं।

(४) कुकिंग-बोट—यह मामूली चटाई की छत और दीवार वाली किश्ती है। इसमें हाउस-बोट या डूँगा—हाउस-बोट में रहने वालों के लिए भोजन बनता है। इसी में हाउस-बोट के माँझी भी रहते और अपना खाना पकाते हैं। इसका किराया १०) १५) मासिक होता है।

(५) शिकारा—यह छोटी किश्ती है। इस पर लोग घण्टे दो घण्टे के लिए टहलने निकल जाते हैं। यह खुली और चँदोवेदार होती है। इस पर पार जाने के लिए एक अधेला देना पड़ता है। पूर्वीय प्रान्तों में नदियाँ पार करने के लिए जैसी छोटी छोटी खुली किश्तियाँ होती हैं वैसी ही यह भी है। इस पर चढ़ कर लोग आसपास के बाग़ और झरने देखने जाते हैं। तीन माँझी सहित एक शिकारा का किराया १) १।) रोज़ है। दिन भर में यह १०—१५ मील का चक्कर लगाती है। यदि नदी के प्रवाह के साथ इसे जाना पड़े तो ३०—३५ मील भी चली जाती है।

(६) बहत वह किश्ती है जिस पर माल-असबाब, अनाज और तरकारी आदि लद कर श्रीनगर पहुँचाई जाती है। यह बहुत मामूली और टूटी फूटी सी होती है।

अन्त में इस सम्बन्ध में अपने पाठकों से इतना और कह देना चाहता हूँ कि जो लोग धनी हैं और आराम से रहना चाहते हैं उन्हें हाउस-बोट, कुकिंग-बोट और शिकारा लेना चाहिए। बिना शिकारा और कुकिंग-बोट के हाउस-बोट अकेला नहीं मिल सकता। क्योंकि सजे सजाये हाउस-बोट में भोजन बनाने की आज्ञा नहीं मिल सकती। इससे ख़र्च बहुत बढ़ जाता है। ५०) ६०) रुपये लग जाते हैं। जो डूँगा-हाउस-बोट लेना चाहते हैं उन्हें भी आम तौर पर कुकिंग-बोट लेना पड़ता है। परन्तु समझ कर किराया ठीक करने पर शिकारा सहित ३०) में ही ये दोनों बोट मिल सकते हैं। जो लोग कुकिंग-बोट नहीं लेना चाहते उन्हें डूँगा लेना चाहिए। क्योंकि उसके लिए अलग कुकिंग-बोट दरकार नहीं होता। दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य यह भी है कि हाउस-बोट भारी होता है। उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए मामूली माँझियों के सिवा दो चार माँझी और रखने पड़ते हैं। इनकी रोज़ाना मज़दूरी प्रायः ॥) है। इसकी चाल भी हलके डूँगों से धीमी होती है। मेरे विचार में उमदा सजा हुआ हाउस-बोट या डूँगा लेना उन लोगों के लिए सबसे अच्छा है जो सैर करने के लिए काश्मीर जाते हैं। इस पर अधिक से अधिक एक और माँझी रखना पड़ता है, सो भी उस समय जब नदी के वेग के विरुद्ध जाना होता है। माँझी मुसलमान होते हैं। वे लकड़ी आदि पर अच्छी तरह हाथ फेरते हैं। नज़र बचा कर अपने मालिक की लकड़ी दूसरी नाव वालों को दे देते हैं और उनसे उनके मालिक की लकड़ी बदले में ले लेते हैं।

सुपार्श्वदास गुप्त।

बेंजमिन फ़्रैंकलिन।

बेंजमिन फ़्रैंकलिन अमेरिका में एक बड़ा उद्योगी पुरुष हो गया है। वह केवल अपने ही पराक्रम और परिश्रम से योग्यता को पहुँचा। उसके आदि अन्त की दशा का मिलान करने से निश्चय होता है कि दरिद्री भी उद्योग से धनाढ्य हो सकता है। वह निरा दरिद्री होने पर भी इतना बड़ा विद्वान् और सम्पत्तिमान कैसे हुआ, जो जो सङ्कट उस पर पड़े, उनसे उसको कैसे छुटकारा मिला, उसकी कीर्त्ति कैसे फैल गई—इन सब बातों का विचार करने से बहुतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उसका सा उद्योग करके उन्नति करने का उत्साह होगा।

फ़्रैंकलिन उत्तरी अमेरिका के बोस्टन नगर में सन् १७०६ ई० में उत्पन्न हुआ था। उसका बाप बीस बरस पहले इँगलेंड से अमेरिका में जा कर बसा था। उसका कुटुम्ब बड़ा था; इस लिए वह सोच समझ कर चलता था। वह बुद्धिमान् और उद्योगी था और अपने लड़कों को विद्वान् बनाने के लिए सदा यत्न किया करता था।

फ़्रैंकलिन के बड़े भाई ने एक छापाख़ाना खोला। उस समय फ़्रैंकलिन की अवस्था केवल बारह बरस की थी। उसके बाप ने उसे भाई के अधीन कर दिया। फ़्रैंकलिन को लड़कपन से ही पुस्तकें पढ़ने की बड़ी रुचि थी। इस कारण जो द्रव्य वह कमाता उसे बहुधा पुस्तकें मोल लेने में लगाता था। छापेख़ाने में रहने के कारण बहुत से पुस्तक बेचने वालों से उसकी जान पहचान हो गई। वह शाम को उनसे पुस्तकें माँग लाता और रात में पढ़ कर सबेरे लौटा आता था। इस रीति से उसकी बुद्धि दिन दिन बढ़ती गई और वह अपने भाई की विशेष सहायता करने लगा।

सोलह बरस की उम्र में बेंजमिन के हाथ एक पुस्तक लगी, जिसका आशय यह था कि अन्न और वनस्पतियों का आहार मनुष्यों के लिए सस्ता और हितकारी है। तब उसने इसी प्रकार का भोजन करने का निश्चय किया। अपने भाई से उसने कहा कि जितना व्यय मेरे भोजन में पड़ता है उसका आधा ही ख़र्च किया जाय; शेष रक्खा रहे; काम पड़ने पर माँग लिया करूँगा। भाई ने उसका कहना मान लिया। उसकी आधी कमाई बचने लगी, जिससे नई नई पुस्तकें लेने में उसे बड़ी सुगमता हुई। जब उसका भाई और छापेख़ाने के नौकर भोजन करने जाते तब वह वहाँ रहता और खाकर कुछ न कुछ सीखा करता। जब वह कोई नई विद्या सीखने पर उतारू होता तब धीरज से अवश्य ही उसे सीख लेता। एक दिन की बात है कि उसे गणित का एक प्रश्न हल करने की आवश्यकता हुई। पर वह उसे न कर सका। इस पर वह बहुत लज्जित हुआ। उसी दिन से वह गणित के अभ्यास में तत्पर हो गया और जब तक उसमें निपुण न हो गया उसने दूसरे विषय के सीखने को मन न चलाया।

फ़्रैंकलिन का भाई उसके साथ निठुरता का बर्ताव करता था। इस लिए वह नौकरी की खोज में फ़िलाडेलफिया गया। उस समय उसकी गाँठ में बहुत ही थोड़ा धन था। इस लिए वह वहाँ थोड़े दिन एक छापेख़ाने की नौकरी करके लन्दन गया और वहाँ नौकर हो गया। वह समय पर उपस्थित रह कर छापेख़ाने के अपने काम को बड़े ध्यान से करता था। इसलिए उसका स्वामी उससे बहुत सन्तुष्ट रहता था। वह अक्षर बड़ी फ़ुर्ती से जोड़ता था। इस लिए जल्दी के काम उसी को मिला करते थे। ऐसे कामों में धन भी अधिक मिलने लगा और ख़र्च के बन्धेज से धीरे धीरे उसके पास कुछ धन इकट्ठा भी हो गया।

लन्दन में डेढ़ बरस रह कर वह फ़िलाडेलफिया को लौट आया और फिर अपने पुराने स्वामी के यहाँ नौकरी करके बहुत सा रुपया कमाया। उस रुपये से उसने निज का छापाख़ाना खोल लिया और एक समाचार-पत्र निकालने लगा। इस समाचार-पत्र के चारों ओर ग्राहक हो गये और उसकी प्रतिष्ठा दिन दिन बढ़ने लगी। सम्पत्ति होने पर भी उसने अपने व्यवहार में तनिक भी अन्तर न पड़ने दिया। बहुधा हीन दशा से जो उन्नति पाते हैं वे इतराने और औरों को तुच्छ समझने लगते हैं। परन्तु फ़्रैंकलिन ऐसा न था। ज्यों ज्यों उसकी बढ़ती होती गई त्यों त्यों वह और भी नम्र होता गया। वह यहाँ तक निरभिमानी था कि बाज़ार से काग़ज़ मोल लेकर, ठेले पर रख कर, आप ही उसे खींच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाता था। कुछ दिन पीछे उसने विवाह किया। उसकी स्त्री भी शील-स्वभाव की अच्छी थी। इस कारण उन दोनों में बड़ा प्रेम था। उसने एक बड़ा पुस्तकालय साधारण लोगों के लिए खोला। उसमें चन्दा देने वालों को पुस्तकें देखने के लिए मिला करती थीं। अमेरिका में इस ढंग का यह पहला ही पुस्तकालय था। उसने "दि वे टु वेल्थ" (The Way to Wealth) अर्थात् धन उपार्जन करने का मार्ग नामक एक ग्रन्थ रचा। इस पुस्तक की अमेरिका में बड़ी बिक्री हुई। सन् १७३९ में वह गाँव के कामों पर ध्यान देने लगा। उन दिनों पुलिस की अवस्था अच्छी न थी। उसके सुधार के लिए बड़ा प्रयत्न करके उसने सरकार से अच्छा प्रबन्ध कराया। उसने आग से हानि होने का बीमा करने वाली कम्पनियाँ खड़ी करने के लिए लोगों को उत्साहित किया। उसने शिक्षा के लिए पाठशालायें खुलवाईं और अपने देश की रक्षा के लिए सेना रखवाई।

इस समय फ़्रैंकलिन का मन पदार्थ-विज्ञान की ओर झुका। उसने यह सिद्ध कर दिया कि कृत्रिम बिजली, जो पदार्थों की रगड़ से उत्पन्न होती है, और अकृत्रिम बिजली (जो आकाश से गिरती है) में कुछ भेद नहीं है, और अकृत्रिम बिजली को आकाश से उतार सकते हैं। जब यह बात निश्चित हो गई तब उसने बिजली से बड़े बड़े ऊँचे घरों के बचाव की युक्ति अपनी बुद्धि से सोच निकाली। वह युक्ति यह थी कि ऊँचे ऊँचे मकानों में कच्चे लोहे की छड़ें लगाई जायँ, जिनका एक सिरा धरती में गड़ा रहे और दूसरा सिरा मकान के ऊपर निकला रहे। बिजली उसी छड़ के ऊपर गिर कर धरती में समा जाय और मकान को कुछ भी हानि न पहुँचे।

उस समय फ़्रैंकलिन से बढ़ कर प्रतिष्ठित और कोई भी न था। इस असाधारण मनुष्य ने केवल विद्या ही के बल से इतनी प्रतिष्ठा पाई। उसमें विशेषता यह थी कि उसने किसी पाठशाला में किसी अध्यापक से कुछ नहीं पढ़ा। जो कुछ विद्या उसको प्राप्त हुई वह उसके ही परिश्रम का फल था। वह निर्धन था, तो भी अपने अन्न-वस्त्र के ख़र्च से पुस्तकों के लिए कुछ बचा रखता था और जिन पुस्तकों को वह न मोल ले सकता था उन्हें औरों से कुछ काल के लिए माँग लाता था। जीविका के लिए दिन भर तो वह काम काज में लगा रहता और आधी रात तक पुस्तकें देखा करता था।

फ़्रैंकलिन जैसा विद्वान् था वैसा ही स्वदेश-हितैषी भी था। इस कारण उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि राज्य-सम्बन्धी सभाओं में उसको कुरसी मिलने लगी। अमेरिका के निवासी अँगरेज़ों ने स्वाधीन होने के लिए इँगलेंड से युद्ध आरम्भ किया। उस समय उन्होंने बेंजमिन को फ़्रांस के दरबार में अपनी ओर से प्रतिनिधि बना कर भेजा। उसने वहाँ जाकर अपने देश वालों से फ़्रांस वालों की मित्रता कराई। इस कारण फ़्रांस और इँगलेंडवालों में युद्ध हुआ। जिस समय फ़्रैंकलिन फ़्रांस देश के पेरिस नगर में था उस समय एक आयरलैंड-निवासी, जो वहाँ रहता था, बड़ी दुर्दशा में था। उसने पत्र द्वारा फ़्रैंकलिन से कुछ सहायता चाही। फ़्रैंकलिन ने उसे लिखा कि पत्र के साथ दस मोहरों की हुण्डी तुम्हारे पास भेजी जाती है। ये मोहरें मैंने तुम्हें दे नहीं डालीं, किन्तु तुम इनको उधार समझो। आशा है कि जब तुम अपने देश लौट जाओगे तब तुम्हारी जीविका का कहीं न कहीं ठिकाना हो ही जायगा। उस समय तुम अपना ऋण भी चुका सकोगे। इतना सामर्थ्य होने पर जब तुम किसी मनुष्य को ऐसी ही अवस्था में देखो जैसी अवस्था में तुम इस समय हो तब उसे यही मोहरें दे देना, और उससे भी जो मैंने तुम्हें लिखा है, कह देना। ऐसा करने से तुम उऋण हो जावगे। मैं चाहता हूँ कि इसी तरह इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत बाबू वसन्तलाल जी अग्रवाल ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये से बहुतों का काम निकले । मैं बड़ा धनी नहीं हूँ । तो भी थोड़े ही धन से, जहाँ तक बन पड़े, दीन-दुखियों का उपकार करना चाहता हूँ । इस लिए मैंने तुमको यह पत्र लिखा है ।

अन्त में इँगलेंड और अमेरिका वालों में सन्धि हो गई, जिससे अमेरिका के निवासी स्वतन्त्र हो गये । उस सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए अमेरिका वालों ने बेंजमिन को ही भेजा । दो बरस इँगलेंड में रह कर वह अपने देश को लौट आया । लौट आने पर, उसके उपकारों का स्मरण करके, उसके देश-निवासियों ने उसे अपना प्रेज़िडेन्ट अर्थात् सभापति बनाया ।

यह महान् पुरुष पचासी बरस की अवस्था में, अप्रैल की सत्रहवीं तारीख़ को, सन् १७९० में, परलोक सिधारा ।

"—सिंह—वर्म्मा" ।

बाबू ।

मैं ने पहले पहल बङ्गाल के विचित्र जन्तु "बाबू" का नाम कानपुर में सुना । अब तो उसके विषय में बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है । एक दिन मैं अपने एक मित्र की प्रतीक्षा में बैठा था कि वे अत्यन्त झल्लाये हुए आये और आराम-कुरसी पर चित पड़ गये । मैंने धीरे से पूछा कि आप आज क्रुद्ध क्यों हैं ? उन्होंने कहा—हमारा बाबू हमारा प्राण लेकर ही छोड़ेगा । मुझे विस्मय हुआ कि यह बाबू कौन है ? मैंने अफ़रीक़ा देश के 'बबून' आदि कई जन्तुओं को तो देखा था, पर बाबू जन्तु का नाम तक न सुना था; देखने की तो बात ही दूर रही । मैंने अपने मित्र से पूछा—क्यों जी, बाबू कौन जन्तु है ? इस पर वे इतना हँसे कि उनकी आँखों से आँसू बहने लगे । किसी प्रकार हँसी रोक कर वे बोले—"भाई क्या जन्म भर में कभी बाबू नहीं देखा ?" बाबू एक विचित्र और भयानक जन्तु है ।

अब तो मुझे इस जन्तु को देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई । मैंने अपने मित्र से कहा—उसके पोषक से कहिए, वह बाबू को लाकर मुझे दिखा दे । पर उन्होंने कहा—बाबू को पोषक की आवश्यकता नहीं होती । वह तो यथेच्छ घूमा फिरा करता है । यह सुन कर मुझको और भी विस्मय हुआ । इस पर फिर भी अत्यन्त उत्सुक होकर मैंने पूछा—वाह भाई ! वह कौन सा जन्तु है ? मेरे मित्र ने उत्तर दिया—यह जन्तु बङ्गाल में पाया जाता है । इसके कारण मुझे दारुण दुःख उठाना पड़ता है । कभी कभी तो मुझे इतना क्रोध आ जाता है कि मैं आपे से बाहर हो जाता हूँ । बाबू ऐसा विचित्र जन्तु है कि बिना ही बुलाये आपके पास आ जायगा । फिर कभी वह आपका पिण्ड ही न छोड़ेगा । यहाँ तक कि आपको उल्लू बना डालेगा ।

मुझ से रहा न गया । बात काट कर मैं बोल उठा कि ऐसे जन्तु को आपने रक्खा ही क्यों ? उत्तर मिला कि झखमार कर रखना ही पड़ा । प्रत्येक साहब* के पास एक एक बाबू रहता है । क्योंकि बाबू के बिना इस देश में हम से कोई काम ही नहीं हो सकता । बाबुओं के द्वारा काम बड़ा सस्ता होता है । बाबू सचमुच ही बड़े काम का पशु है ।

मेरी उलझन बढ़ती ही गई । उनकी बात ज़रा भी मेरी समझ में न आई । तब मैंने और भी उत्कण्ठित होकर पूछा कि जब बाबू ऐसे दुष्ट जन्तु हैं तब वे मार क्यों नहीं डाले जाते ?

मित्र—दुष्ट तो वे अवश्य हैं; पर उन्हें मारे कौन ? मुझे तो इतना साहस नहीं । बाबू ऐसे वैसे

* अँगरेज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्तु नहीं। उनके पञ्जे और दाँत भी होते हैं। अतएव वे मारते और काटते भी हैं।

मैं—क्या वे बङ्गाले के बाघ या अफ़रीक़ा के सिंह से भी अधिक भयानक होते हैं?

मि०—जी नहीं, बाबू बड़ा सीधा-सादा जन्तु है।

मैं—सीधा है तो मौक़ा पाकर उसको गोली क्यों नहीं मार देते?

मि०—गोली मार दूँ!!! मैं अपना दाहना हाथ भले ही काट डालूँ; पर बाबू को कोड़े से मारने तक का भी साहस नहीं कर सकता। जनाब, कभी कभी बाबू की लल्लो चप्पो भी करनी पड़ती है। उससे प्रायः अपने मित्र के सदृश व्यवहार करना पड़ता है। गोली मारना! बाबू को!! असम्भव बात!!! आप नहीं जानते कि ऐसे अविवेकपूर्ण काम का क्या परिणाम होगा। गोली से बाबू मर तो अवश्य जायगा, पर देश भर के और बाबू, हज़ारों लाखों का दल बाँध कर, ऐसी कराल और हृदय-विदारक चिग्घाड़ मचावेंगे कि वज्र-हृदय मनुष्य का भी कलेजा काँप जायगा। वे सब गली गली और नगर नगर तो क्या, कलकत्ते से बम्बई तक चिल्लाहट का पुल बाँध देंगे।

मैं—ठीक है। अब समझ गया। तो बाबू एक प्रकार के बन्दर हैं, जिनको मैंने अमेरिका में देखा था। उन्हें वहाँ हौलिंग मङ्की कहते हैं।

मि०—नहीं साहब, बाबू हौलिंग मङ्की नहीं हैं। वे तो मनुष्यों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। पर कितनों को साहब लोग बन्दर ही के धोखे गोली मार देते हैं। ठीक तो है, आप कलकत्ते जाते ही हैं। वहाँ तो ढेर के ढेर बाबू मिलेंगे। रेल के स्टेशनों पर भी बहुत बाबू देख पड़ेंगे। क्योंकि रेलगाड़ी चलाने में भी बाबू-शक्ति दरकार है। परन्तु भाई! स्मरण रखिएगा। मेरा अन्तिम अनुरोध यही है कि बाबू से सर्वदा बचते रहिएगा।

दूसरे दिन सबेरे ही मैंने कलकत्ते का टिकट कटाया। परन्तु गाड़ी में बैठने के पहले इञ्जिन को अच्छी तरह देख लिया कि किस ओर बाबू जोता गया है। परन्तु वह इञ्जिन ठीक वैसा ही था जैसा कि मैंने इँगलेंड आदि में देखा था। कहीं भी बाबू का पता न चला। मैंने इञ्जिन चलानेवाले से पूछा। परन्तु उसने भी मेरी बात न समझी और आफ़िस की ओर इशारा किया। तुरन्त ही घण्टी बजी। मुझे गाड़ी में बैठ जाना पड़ा। उसमें कितने ही साहब भी थे। मैं अपना असबाब रख ही रहा था कि एक साहब ने धड़ से किवाड़ बन्द कर दिया और तेज़ आवाज़ से कहा—एक दुष्ट बाबू भीतर आता था। बस, मेरी सारी हिम्मत हवा हो गई। साहब से मैं परिचित न था। काँपते काँपते मैंने उनसे पूछा—महाशय, किवाड़ ठीक बन्द हो गया न? मुझे डर लगता है! साहब ने उत्तर दिया कि बन्द तो है, पर चाभी नहीं लगी। मैंने फिर पूछा कि अब बाबू कहाँ हैं? मैं चाहता था कि छिप कर किसी संरक्षित जगह से उसे देखूँ। परन्तु साहब ने उत्तर दिया कि बाबू किसी दूसरे डब्बे में घुस गया होगा।

बैठे बैठे मैंने सोचा कि हो न हो बाबू वही जन्तु होगा जिसको स्विफ़्ट ने याहू* के नाम से लिखा है। पर बात कुछ समझ में न आई। मैं अत्यन्त उत्सुक था कि कहीं न कहीं से यह देख लूँ कि बाबू किस प्रकार रेल को खींचने में सहायता देते हैं। पर प्रत्येक प्रयत्न निष्फल ही होता गया। हर स्टेशन पर गार्ड बाबू बाबू पुकारता था, परन्तु तुरन्त ही

* स्विफ़्ट अँगरेज़ी का एक प्रसिद्ध लेखक हो गया है। उसने गलिवर्स-ट्रेवेल्स नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उसी में याहू जन्तु का वर्णन उसने लिखा है। उसने याहू का रूप मनुष्य के सदृश और स्वभाव पशुओं का सा बताया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ी चल देती थी। इससे मैं समझता कि ये लोग बाबू बाबू को इस लिए पुकारते हैं कि गाड़ी खींचने में उनकी हिम्मत कम न हो जाय।

गाड़ी में एक मैजिस्ट्रेट साहब मेरे पास ही बैठे थे। मैंने उनसे धीरे से कहा कि मुझे बाबू को देखने की बड़ी उत्कण्ठा है। पर साहब ने उत्तर दिया कि ऐसा मत करना। उनको छूना ही पाप है। मैं सर्वदा उनसे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ और अभिलाषा रखता हूँ कि इसमें सफल होऊँ। इस पर मैंने पूछा कि ऐसा है तो आप उनको अपने पास ही क्यों आने देते हैं?

साहब ने भुनभुनाते हुए उत्तर दिया—"उनको रोकना मेरी शक्ति के बाहर है।"

इसी डब्बे में एक पादरी साहब भी थे। बाबू जन्तु का नाम लेते ही पादरी साहब बोल उठे कि इन्हीं के कारण मैं ईसाई मत का प्रचार अच्छी तरह नहीं कर सकता। मैजिस्ट्रेट साहब ने कहा कि ये बाबू सिविलियनों के तो सब से बड़े शत्रु हैं। चाहे जो हो, इनको अवश्य दबाना चाहिए। गाड़ी में एक डाकृर साहब भी बैठे थे। उन्होंने भी शपथ-पूर्वक कहा कि मैं बाबू-शून्य स्थान में बदली कराने की भरसक चेष्टा करूँगा। मैं अवसर को कदापि हाथ से न जाने दूँगा। क्योंकि एक बाबू ने मेरी नाक में दम कर रक्खा है। वह मेरी जीविका में बाधा डाल रहा है। इस पर उसी डब्बे में बैठे हुए एक इञ्जिनियर साहब तो इतने बिगड़े कि एक बाबू को गाली देते देते घूँसे से किवाड़ पीटने लगे; यहाँ तक कि बेचारा किवाड़ टूटते टूटते बचा। मतलब यह कि मैजिस्ट्रेट, पादरी, डाकृर, इञ्जिनियर सभी को बाबू से नफ़रत थी और सभी उससे दूर रहा चाहते थे।

मेरे लिए इतना मसाला काफ़ी से भी अधिक था। मेरा रिवालवर बिगड़ गया था। अतएव ऐसे समय में मैं कदापि बाबू का सामना करने को प्रस्तुत न होता। मैं सोच ही रहा था कि मैजिस्ट्रेट ने कहा—भाई! हबड़े के स्टेशन पर ढेर के ढेर बाबू मिलेंगे। सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा। मुझ पर मानों बिजली सी गिरी। अब मुझ पर बड़ी भारी चिन्ता सवार हो गई। मैं उसी में निमग्न था कि स्टेशन आ गया। मेरे सहयात्री तो साहस-पूर्वक किवाड़ खोल उतर पड़े। पर उन लोगों की बात-चीत सुन कर मैं इतना डर गया था कि तत्काल बाबू के सामने जाने को उद्यत न हो सका। अतएव मैं गाड़ी ही में घूमता रहा। मैं चारों तरफ़ आँखें उठा उठा कर देखने लगा कि कहीं बाबू दिखाई दे। पर, कुली बहुत तङ्ग करने लगे। मैंने उनसे अँगरेज़ी में पूछा कि क्या कोई बाबू यहाँ है? बस, फ़ौरन कुली दौड़ कर एक हिन्दुस्तानी को बुला लाया। उस मनुष्य ने बड़े ही आदर-पूर्वक, जैसा कि इन लोगों का व्यवहार सदा ही साहबों के साथ होता है, मुझ से पूछा—आपको क्या चाहिए? मैं कहता क्या? आख़िर मैंने कहा—मैं उतरूँगा। वह मनुष्य आदरपूर्वक मेरा असबाब स्टेशन पर रखने लगा। परन्तु मैं तब तक गाड़ी ही में रहा और उत्कण्ठा-पूर्वक इधर उधर देखता रहा।

उस मनुष्य ने फिर पूछा—आपको क्या चाहिए? मैंने काँपते हुए कहा—अरे! भा—भाई! क्या सब बा—बा—बाबू चले गये? उसने उत्तर दिया—नहीं, सब नहीं गये। मैंने उसके कान में मुँह लगा कर धीरे से पूछा कि वे कहाँ हैं। उसने कहा—क्यों, आप चाहते क्या हैं? मैंने कहा—अ—अरे! भा—भा—भाई! मैं योंहीं पूछता हूँ; ज़ोर से न बोलो। उसने उत्तर दिया—महाशय! मैं स्वयं बाबू हूँ। इतना सुनते ही मेरे मुँह से निकला—आप! बाबू!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ज़ियादह न बोल सका। मेरा सिर घूम गया। मैं बेहोश होकर प्लेटफ़ार्म पर गिर पड़ा। *

हरिहरनाथ, बी० ए०

——

सांख्यशास्त्र के कर्ता।

सांख्यशास्त्र छः शास्त्रों में से एक मुख्य शास्त्र गिना जाता है। उसके कर्त्ता कपिल महर्षि हैं। परन्तु यह निश्चय नहीं कि कौन से कपिल ने इस शास्त्र को बनाया है। कपिल नाम के चार ऋषि-पुङ्गव हो गये हैं। उनमें से एक तो अभी कलियुग में हुए हैं, जो गोतम ऋषि के वंशज थे तथा जिनके नाम पर कपिलवस्तु नगर बसाया गया था। यह बात बौद्धग्रन्थों में लिखी है। बहुत से विदेशी विद्वान् इन्हीं को सांख्य-शास्त्र के प्रणेता कहते हैं। परन्तु वास्तव में यह ठीक नहीं। क्योंकि यह शास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। कपिल नाम के अवशिष्ट तीन ऋषियों में से (१) एक कपिल वे हुए हैं जो ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे तथा जो मूल-ज्ञानी कहलाते थे। (२) दूसरे कपिल अग्नि के अवतार थे। (३) तीसरे कपिल देवहूति और कर्दम ऋषि के पुत्र थे।

पहले कपिल ऋषि के सम्बन्ध में श्रुति तथा स्मृति के अनेक वाक्य पाये जाते हैं। यथा—

ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानञ्च पश्येत् (श्रुतिः)

आदौ यो जायमानञ्च कपिलं जनयेदृषिम्।
प्रसूतं बिभृयाद् ज्ञानैस्तं पश्येत्परमेश्वरम् (स्मृतिः)॥

श्रुति और स्मृति के इन वचनों से सिद्ध होता है कि ये कपिल अति प्राचीन तथा पूर्ण ज्ञानी थे। यही ब्रह्मा के पुत्र कपिल थे, जिनका वर्णन पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में पाया जाता है—

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
सप्तैते मानसाः पुत्रा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। (पुराण)

गौडपाद स्वामी सांख्य-शास्त्र के मुख्य तथा प्राचीन-तम भाष्यकार हो गये हैं। वे शुकदेव के शिष्य थे। यह बात नीचे लिखे हुए वचनों से स्पष्ट विदित होती है—

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिञ्च तत्पुत्रपराशरञ्च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्॥

अर्थात्—नारायण, ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास और शुकदेव—यहाँ तक पिता-पुत्र सम्बन्ध हुआ। इसके आगे गुरु-शिष्य-सम्बन्ध बताया गया है। वह इस प्रकार समझना चाहिए—शुकदेव के शिष्य गौड़पाद हुए। वे दीर्घायु तथा परम योगी थे। वे सांख्य और वेदान्त के बड़े भारी विद्वान् थे। सांख्य और वेदान्त पर उनके अनेक रचे हुए ग्रन्थ हैं। वेदान्त में माण्डूक्योपनिषद्-भाष्य तथा सांख्य में सांख्यसप्तति-भाष्य—इनके ये दोनों ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन गौड़पाद स्वामी ने आदि-सांख्य-प्रणेता कपिल-महर्षि के विषय में इस प्रकार अपने ग्रन्थ में लिखा है—

इह भगवान् ब्रह्मसुतः कपिलो नाम। तद्यथा—
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः सप्त प्रोक्ता महर्षयः।

गौड़पाद स्वामी ने ब्रह्मा के पुत्र कपिल को ही आदि-सांख्य-प्रणेता कहा है। इन्होंने जो सांख्य-ग्रन्थ बनाया है उसका नाम तत्त्व-समास अथवा द्वाविंशति-सूत्र है। यह ग्रन्थ सांख्य-शास्त्र का सबसे प्राचीन तथा प्रथम ग्रन्थ है। क्योंकि इसमें दूसरे दर्शन-ग्रन्थों पर कटाक्ष नहीं है। इसमें केवल प्रमेय पदार्थों के सूत्र हैं। मूल ग्रन्थ की रचना जिस

* बाबू शिशिरकुमार घोष के एक अँगरेज़ी-लेख का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना फड़नवीस।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की होती है वैसी ही इस ग्रन्थ की है। इसमें निरीश्वर-वाद का आभास भी नहीं है; प्रत्युत चौथे सूत्र में सेश्वरवाद ही का निरूपण है। अन्य सांख्य ग्रन्थ इसी मूल सांख्य-ग्रन्थ के विस्तार-रूप मालूम होते हैं—

अथात्रानादिक्लेश-कर्म-वासना-समुद्रपतितान् अनाथान् उद्दिधीर्षुः परमकृपालुः स्वतःसिद्धज्ञानो महर्षिर्भगवान् कपिलो ब्रह्मसुतो द्वाविंशतिसूत्राण्युपादिक्षत्। सूचनात्सूत्रमिति हि व्युत्पत्तिः। तत एतैः समस्ततत्वानां सकलषष्टितन्त्रार्थानां सूचनं भवति। ततश्चेदं सकलसांख्यतीर्थमूलभूतम्। तीर्थान्तराण्यपि चैतत्प्रपञ्चभूतान्येव। सूत्रषडध्यायी तु वैश्वानरावतारभगवत्कपिलप्रणीता। इयञ्च द्वाविंशतिसूत्री तस्या अपि बीजभूता ब्रह्मसुतमहर्षिभगवत्कपिलप्रणीतेति वृद्धा वदन्ति।

ऊपर के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि क्लेश-कर्म-वासनाओं के समुद्र में निमग्न जीवों के उद्धारार्थ परम कृपालु, स्वतःसिद्ध ज्ञानवान्, ब्रह्माजी के पुत्र, महर्षि कपिलदेवजी ने इस सूत्रमय सांख्य-ग्रन्थ की रचना की है। इसमें तत्त्व-समूह की सूचना है। इसीसे इसे सूत्र-रूप कहते हैं। यही आदि-सांख्य-सूत्र सांख्य-शास्त्र का मूल-रूप अर्थात् बीज है। सांख्य-शास्त्र के कितने ही ग्रन्थ क्यों न हों, वे सब इन्हीं २२ सूत्रों के विस्तार रूप हैं। "सूत्र-षडध्यायी सांख्य"—जो वर्तमान समय में सांख्य-प्रवचन नाम से प्रसिद्ध है, अग्नि के अवतार भगवान् कपिल का बनाया हुआ है। वह भी द्वाविंशति-सूत्र आदि सांख्यग्रन्थ का प्रपञ्च-रूप है।

इससे सिद्ध है कि तत्त्वसमास अथवा द्वाविंशतिसूत्री नामक आदि-सांख्य-ग्रन्थ ब्रह्मा के पुत्र महर्षि-कपिल का बनाया हुआ है और सांख्य-प्रवचन, जो आधुनिक समय में प्रचलित है, वैश्वानरावतार कपिल का बनाया हुआ है। इस पिछले ग्रन्थ में निरीश्वर-वाद की तर्कना है।

आदि विद्वान् ब्रह्म-पुत्र कपिल-ऋषि मूल-सांख्य-प्रणेता हैं। उनके शिष्य आसुरि और वोढु हुए। आसुरि के शिष्य पञ्च-शिखाचार्य्य और पञ्च-शिखाचार्य्य के शिष्य ईश्वरकृष्ण हुए, जिनकी बनाई हुई कारिकायें बहुत मान्य समझी जाती हैं। इस प्रकार क्रमशः सांख्य मत का प्रचार हुआ। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, तन्त्र इत्यादि समस्त ग्रन्थ सांख्य-मत से भरे हुए हैं। ऐसा कोई ऋषि नहीं जो सांख्य-मत का अङ्गीकार न करे। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने भी सांख्य-मत का अवलम्बन किया है। वैश्वानरावतार कपिल का वर्णन महाभारत में है—

शुक्लकृष्णगतिर्देवो यो बिभर्ति हुताशनम्।
अकल्मषः कल्मषाणां कर्त्ता क्रोधाश्रितस्तु सः।
कपिलं परमर्षिञ्च यं प्राहुर्यतयः सदा।
अग्निः स कपिलो नाम सांख्ययोगप्रवर्तकः॥

शङ्कराचार्य्यजी ने अपने शारीरक-भाष्य में लिखा है कि यही कपिल-ऋषि सांख्य-प्रवचन-सूत्र के बनाने वाले तथा सगर राजा के ६०००० पुत्रों के भस्म-कर्त्ता हुए हैं।

तीसरे कपिलदेवजी के विषय में श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कन्ध, के २४—३३ अध्याय देखिए—

एतन्मे जन्मलोकेस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात्।
प्रसंख्यानाय तत्वानां संमतायात्मदर्शने॥
अध्याय २४—श्लोक ३६

इन्हीं कपिलदेवजी ने अपनी माता देवहूति को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। ये ईश्वर के अवतार थे। इन्होंने स्वयं अपनी माता से यह बात कही है। इससे ये सांख्य-शास्त्र-प्रणेता कपिलदेव नहीं, किन्तु वेदान्तादि के उपदेशकर्त्ता हैं। इस कारण मूल सांख्य-शास्त्र के रचयिता ब्रह्माजी के पुत्र कपिलदेव ही हैं। उन्हीं के सांख्य-सूत्रों का अनुसरण करके सांख्य-प्रवचन आदि ग्रन्थ बनाये गये हैं।

श्रीकृष्णशास्त्री तैलङ्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारस पत्थर।

रसायन-शास्त्र का इतिहास देखने से पता लगता है कि एक समय कुछ मनुष्य पारस नामक पत्थर की खोज में व्यस्त थे। उस समय आधुनिक रसायन-शास्त्र की नींव भी न पड़ी थी। इस प्रकार के मनुष्यों का यह दृढ़ विश्वास था कि पृथ्वी में अवश्य ही कोई ऐसी वस्तु है जिसके स्पर्श से लोहा आदि धातुयें सुवर्ण हो जाती हैं। उन लोगों में इस प्रकार का विश्वास कैसे पैदा हुआ, इसका पता नहीं लगता। वे वर्तमान समय के वैज्ञानिकों की तरह बिजली की भट्टी तथा उष्णता और वायु मापने वाले यन्त्रों का व्यवहार न करते थे। वे लोहे को सोना बनाने के लिए अनेक प्रकार के वृक्षों के रस, तन्त्र-मन्त्र और पूजा-पाठ आदि का आश्रय लेते थे। सुनते हैं, इस प्रकार उन्होंने इस कार्य में सिद्धि भी प्राप्त कर ली थी। किन्तु इस श्रेणी के रसायन-शास्त्रवेत्ता अब संसार में नहीं; उनके पोथी-पत्रे भी नष्ट हो गये। इस दशा में यह जानने का अब कोई उपाय नहीं कि उन्होंने पारस पत्थर की खोज में किस मार्ग का अवलम्बन किया था। उन लोगों का केवल नाम रह गया है। अँगरेज़ी में वे अलकेमिस्ट कहाते हैं।

वर्तमान समय के वैज्ञानिकों ने उन अलकेमिस्टों के अद्भुत विचारों और पागलपन की बातों का स्मरण करके उनकी कितनी हँसी उड़ाई है, इसकी सीमा ही नहीं। किन्तु गत दस वर्षों के भीतर रसायन-शास्त्र में कई एक अद्भुत अद्भुत आविष्कार हुए हैं। उनसे इन हँसने वालों को पता लग गया है कि अलकेमिस्ट लोग पागल न थे। उन्होंने भी कई प्रकार की साधनाओं का अवलम्बन किया था और उनके द्वारा उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई थी। इँगलेंड के प्रसिद्ध रसायन-शास्त्रवेत्ता रैमज़े साहब (Sir William Ramsay) यह बात अब साफ़ साफ़ स्वीकार करने लगे हैं कि लोहे का सोना और राँगे की चाँदी बनाना असाध्य काम नहीं। इस दशा में कई शताब्दियों पहले जिस प्रकार अलकेमिस्ट लोग पारस की खोज में व्यतिव्यस्त थे उसी प्रकार वर्तमान समय के वैज्ञानिक भी उसकी खोज में दौड़धूप करने लगे हैं।

रैमज़े साहब के आविष्कार की बात जानने के लिए पहले एक भूमिका की आवश्यकता है। सृष्टि-तत्त्व की बात उठते ही बहुत पहले समय के पण्डित लोग पञ्चतत्त्वों का नाम सुनाने लगते थे। उन लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच तत्त्वों से ही इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। ये पाँचों तत्त्व मूल पदार्थ हैं, अर्थात् इनका और कोई रूपान्तर नहीं हो सकता। ये वृक्ष और लतायें, पशु और पक्षी, स्त्री और पुरुष सब इन्हीं पाँच पदार्थों के ही विचित्र संयोग से पैदा हुए हैं। ये सब जब नष्ट होते हैं तब इन्हीं पाँच पदार्थों में मिल जाते हैं। पुराने पण्डितों का यह सिद्धान्त वर्तमान समय के वैज्ञानिकों के सामने स्थिर न रह सका। गत उन्नीसवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डाल्टन् साहब ने यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि पृथ्वी, अप् आदि मूल पदार्थ नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक का विश्लेषण किया जा सकता है और विश्लेषण करने पर प्रत्येक में एक से अधिक पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। डाल्टन् साहब ने सिद्ध किया कि यह ब्रह्माण्ड पञ्च-महाभूतों से नहीं बना। इसकी उत्पत्ति हाइड्रोजन, आक्सिजन आदि वायव, गन्धक, अङ्गार आदि कठिन और स्वर्ण, रौप्य आदि धातव पदार्थों से हुई है। उन्होंने यह भी प्रत्यक्ष दिखला दिया कि वायु, जल आदि पदार्थ आक्सिजन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजन आदि से ही बने हैं। इस दशा में प्राचीन समय के पञ्च महाभूतों के स्थान पर और भी अनेक भूतों की कल्पना हुई। वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया कि हाइड्रोजन, आक्सिजन, गन्धक, स्वर्ण और रौप्य आदि कोई नव्वे पदार्थों से इस विश्व की सृष्टि हुई है। ये नव्वे पदार्थ ही वास्तव में मूल पदार्थ हैं। इनका नाश अथवा रूपान्तर नहीं होता।

डाल्टन् साहब का यह सिद्धान्त बहुत समय से वैज्ञानिकों में आदृत होता आ रहा था। किसी समय यह भी असत्य ठहराया जायगा, इस बात की कभी किसी ने कल्पना तक न की थी। पर, अब इस सिद्धान्त की जड़ पर भी धक्का लगा है। फ़्रांस के विख्यात रसायनशास्त्री क्यूरी साहब और उनकी सहधर्मिणी ने रेडियम नामक एक धातु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा की। उन्होंने देखा कि यह धातु अपने आप विश्लिष्ट होकर परमाणु से भी अधिक छोटे छोटे कणों में विभक्त हो जाती है। रेडियम धातु मूल पदार्थ मानी गई थी। मूल पदार्थ का इस प्रकार विश्लिष्ट होना देख सारे संसार के विज्ञानवेत्ता चकित हो गये। क्यूरी साहब रेडियम का ही विश्लेष दिखला कर शान्त न हुए। उन्होंने थेरियम, यूरेनियम आदि अनेक धातु-सम्बन्धी मूल पदार्थों का भी विश्लेषण कर दिखाया। ये सब पदार्थ विश्लिष्ट होकर एक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ में परिणत हो गये, यह भी विद्वानों ने प्रत्यक्ष देखा। परमाणु के इन अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ों का नाम इलेक्ट्रान अथवा अति-परमाणु रक्खा गया।

क्यूरी साहब के पूर्वोक्त आविष्कार को हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ। तथापि, इतने थोड़े समय में ही इस आविष्कार की बात सुन कर रदरफोर्ड, सदि, टामसन आदि वर्तमान समय के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने इस विषय पर अलग अलग विचार करना प्रारम्भ कर दिया। उनके इस विचार का अन्त आज तक नहीं हो सका। तथापि इस विचार की बदौलत विज्ञान की नई नई बातें रोज़ ही मालूम हो रही हैं। इन वैज्ञानिकों को परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि रेडियम विश्लिष्ट होकर केवल इलेक्ट्रान, अर्थात् अति-परमाणु, में ही परिणत नहीं हुआ, किन्तु साथ ही साथ वह नाइटन (Niton) नामक एक और नवीन धातु में भी रूपान्तरित हो गया। रेडियम से रूपान्तरित होने पर यह नाइटन नामक पदार्थ हेलियम तथा रेडियम जाति के एक और पदार्थ (Radium-A) में भी परिणत हो जाता है। इस प्रकार जो पदार्थ इस समय तक मूल पदार्थ माने गये थे उन्हीं को विश्लिष्ट और रूपान्तरित होते देख इन वैज्ञानिकों के आश्चर्य्य की सीमा न रही।

ऊपर के इन आविष्कारों से डाल्टन् साहब का परमाणु-सम्बन्धी सिद्धान्त एकदम डांवाडोल हो गया। वैज्ञानिक लोग कहने लगे कि हाइड्रोजन, आक्सिजन आदि धातु और अधातु-सम्बन्धी नब्बे ही पदार्थ जगत् के मूल पदार्थ नहीं। जगत् का मूल पदार्थ केवल इलेक्ट्रान अर्थात् अति-परमाणु है। वह, अत्यधिक संख्या में सम्मिलित होकर हमारे सुपरिचित आक्सिजन, हाइड्रोजन तथा सुवर्ण, लोह आदि को उत्पन्न करता है। इन विज्ञानवेत्ताओं को यह भी निश्चय हो गया कि इस ब्रह्माण्ड में केवल रेडियम, अथवा उसी की जाति का कोई अन्य पदार्थ ही रूपान्तर ग्रहण करके अति-परमाणु में परिणत नहीं होता, किन्तु सृष्टि की सभी अन्यान्य वस्तुयें धीरे धीरे नष्ट होकर अति-परमाणु में परिणत हो जाती हैं। यह अति-परमाणु ही पुनः इकट्ठा होकर संसार में एक नई वस्तु उत्पन्न करता है। ये लोग अब अपनी कल्पना-दृष्टि से देखने लगे कि संसार की यह सृष्टि इसी प्रकार के उथल-पुथल द्वारा अस्तित्व में आती है। इस उथल-पुथल का न आदि है, न अन्त।

जिस समय संसार के अन्यान्य वैज्ञानिक पूर्वोक्त आविष्कारों की ओर आकृष्ट हो रहे थे उस समय इँगलेंड के सुप्रसिद्ध रसायन-शास्त्री सर विलियम रैमज़े एकमात्र रेडियम के सम्बन्ध में ही शान्तिपूर्वक मनन कर रहे थे। उन्होंने परीक्षा द्वारा देखा कि रेडियम रूपान्तरित होकर नाइटन में परिणत हुआ और नाइटन अपनी बहुत कुछ उष्णता का परित्याग करके हेलियम हो गया। यह सब लीला रेडियम की ही अन्तर्निहित शक्ति से हुई। उन्होंने हिसाब लगा कर देखा कि एक घन सेंटिमेटर (One Cubic Centimeter) स्थान में रक्खा हुआ नाइटन जब विश्लिष्ट होकर हेलियम आदि में परिणत होता है तब उस आयतन के चालीस लाख गुने हाइड्रोजन को जलाने से जितना ताप उत्पन्न होता है, उतना ही ताप उससे आप ही पैदा होता है। उन्होंने निश्चय समझ लिया कि यह अत्यधिक शक्ति रेडियम ही के भीतर छिपी रहती है। रेडियम विश्लिष्ट होकर जिस समय लघु पदार्थ में परिणत होता है, उस समय उसकी वह शक्ति ताप उत्पन्न करने लगती है। रैमज़े साहब को विश्वास हो गया कि ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों में इसी प्रकार अत्यधिक शक्ति सञ्चित है। यत्नपूर्वक सञ्चित उस शक्ति के ख़ज़ाने का द्वार खोल कर ही प्रकृति देवी संसार में उथल-पुथल के नये नये तमाशे दिखाती है। रेडियम जैसी गुरु वस्तु जब अपनी अन्तर्निहित शक्ति को त्याग कर नाइटन और हेलियम आदि लघु वस्तुओं में परिणत हो जाती है तब लघु वस्तुओं पर अधिक शक्ति डाल कर क्या वह उन्हें वैसी ही गुरुतर नहीं बना सकती? यह प्रश्न रैमज़े साहब के चित्त में उदित हुआ। यदि ऐसी रासायनिक प्रक्रिया का आविष्कार हो जाय तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहे से सोना बनाना सहज हो जायगा। सभी विज्ञान-वेत्ता रैमज़े साहब की इस बात से सहमत हो गये।

प्रकृति के कार्य्यों की प्रणाली का आविष्कार करना कठिन बात नहीं, किन्तु जिन उपकरणों और जिन अपरिमित शक्तियों के प्रयोग द्वारा प्रकृति संसार का काम चलाती है उन सब का अनुकरण करना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है। रैमज़े साहब इस कठिनाई से अनभिज्ञ न थे। तथापि वे किसी कृत्रिम उपाय से शक्ति-प्रयोग द्वारा लघु पदार्थ को एक स्वतन्त्र गुरु पदार्थ में परिणत करने की चेष्टा करने लगे। पर उन्हें इस प्रकार के किसी भी कृत्रिम उपाय का पता न लगा। साथ ही, विश्लिष्ट होने के समय रेडियम अपने पिण्ड से जो विपुल शक्ति उत्पन्न करता है उसका भी अनुसन्धान वे न कर सके। इसी समय रैमज़े साहब के मन में एक बात पैदा हुई। वे सोचने लगे कि विश्लिष्ट होते समय नाइटन अपने पिण्ड से जो शक्तिराशि बाहर निकालता है उसका यदि और किसी लघु पदार्थ पर प्रयोग किया जा सके तो शायद वह पदार्थ गुरु पदार्थ बन जाय। इस प्रकार का सोच-विचार करके ही वे शान्त न हुए। उन्होंने परीक्षा भी आरम्भ कर दी। पहले वे विशुद्ध जल की कुछ बूँदों में नाइटन डाल कर यह देखने लगे कि जल के हाइड्रोजन और आक्सिजन में कुछ परिवर्त्तन होता है या नहीं। जल यथारीति विश्लिष्ट होकर हाइड्रोजन और आक्सिजन उत्पन्न करने लगा और नाइटन से हेलियम पैदा होने लगा। जल के पात्र से इन सब प्रकार की भाफों को अलग करके रैमज़े साहब देखने लगे कि और कोई नया पदार्थ तो नहीं पैदा हो गया। अन्त में उन्होंने देखा कि पूर्वोक्त भाफों के अतिरिक्त नियन् (Neon) नामक एक मूल पदार्थ भी उत्पन्न हो गया है। यह देख कर रैमज़े साहब के आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। उनको दृढ़ विश्वास हो गया कि जब हाइड्रोजन और नाइट्रोजन की गुरुता बढ़ कर वे नियन् में परिणत हो गये तब किसी न किसी दिन इसी उपाय से लोहा भी सोने में अवश्य परिणत हो जायगा।

रैमज़े साहब के इस आविष्कार का प्रचार हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ। इतने में ही उसका वृत्तान्त सुन कर संसार के वैज्ञानिकों में एक अद्भुत हलचल मच गई है। ऐसी हलचल और ऐसी आनन्द-प्राप्ति वर्त्तमान समय के और किसी भी आविष्कार के कारण नहीं हुई। कुछ समय से विज्ञान-सम्बन्धी सामयिक पत्रों तथा सभा-समितियों में इस आविष्कार पर वाद-विवाद हो रहा है। बड़े बड़े विज्ञान-वेत्ता इस आविष्कार पर बड़े ध्यान से विचार कर रहे हैं। किन्तु सभी वैज्ञानिक रैमज़े साहब के आविष्कार को भ्रान्ति-हीन नहीं समझते। बेकेरेल् साहब, जिन्होंने सब से पहले रेडियम जाति के पदार्थों के गुणों की परीक्षा की थी, अब इस संसार में नहीं हैं। क्यूरी साहब भी परलोक सिधार गये। क्यूरी साहब की पत्नी, रदरफर्ड, टाम्सन और सदि साहब ही इस समय इस आविष्कार पर अपने मतामत देने के अधिकारी हैं। रदरफ़र्ड ने तो रैमज़े साहब के इस आविष्कार की बात सुन कर कहा है कि उनकी परीक्षा के समय सम्भवतः जल में वायु का प्रवेश हो गया होगा। वायु-प्रवेश के कारण जल में वायु का ही नियन् बन गया होगा। रैमज़े साहब ने इसी नियन् को नवीन उत्पन्न नियन् मान कर भूल की है। क्यूरी साहब की पत्नी भी इस आविष्कार पर अविश्वास करती हैं। किन्तु पहले कही हुई परीक्षाओं के बाद रैमज़े साहब ने और कई परीक्षायें कीं। उनके द्वारा उन्होंने अनेक पदार्थों का रूपान्तर प्रत्यक्ष दिखला दिया। इस कारण, मालूम होता है, वैज्ञानिकों का सन्देह अब इस सम्बन्ध में दूर हो रहा है।

कुछ समय हुआ, रैमज़े साहब ने ताँबा, नाइट्रोजन और आक्सिजन मिले हुए एक यौगिक पदार्थ (Copper-Nitrate) में नाइटन डाला। यह यौगिक पदार्थ परिवर्तित हो गया। इससे आर्गन (Argon) नामक एक मूल पदार्थ की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त सिलिकन्, टिटानियम्, थोरियम आदि पदार्थों से घटित और भी अनेक यौगिक पदार्थों पर इसकी परीक्षा हुई। फल यह हुआ कि ये सब पदार्थ परिवर्तित हो गये। इनमें से प्रत्येक से अङ्गार (Carbon) नामक पदार्थ का जन्म हुआ। बिस्मिथ घटित एक पदार्थ (Bismuth Perchloride) का रूपान्तर भी अङ्गारक बाष्प में होता देखा गया है।

रैमज़े साहब की ये सब परीक्षायें लुक छिप कर नहीं हुईं। उन्होंने कई अच्छे अच्छे विज्ञान-वेत्ताओं के सामने ये परीक्षायें की हैं। कई परीक्षायें तो उन्होंने इँगलेंड की केमिकल सोसायटी की सभा में ही की हैं। अतएव रैमज़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहब की इन परीक्षाओं की सत्यता के विषय में सन्देह करने का कोई कारण नहीं। साक्षर जन अब समझ जायँगे कि प्रकृति की यह लीला नव्वे मूल पदार्थों द्वारा नहीं हो रही। केवल एक ही पदार्थ उसका मुख्य आधार है। सोना, चाँदी, हीरा, लोहा और ताँबा आदि सभी पदार्थ एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न रूप हैं। अलकेमिस्ट लोगों ने लोहे को सोने में परिणत करने का जो प्रयत्न प्रारम्भ किया था, वास्तव में वह दुस्साध्य न था। लोहे को सोना बनाने वाला पारस पत्थर इस भूमण्डल में इस प्रकृति के ही भीतर विद्यमान जान पड़ता है।*

जातियों का संघर्षण।

सृष्टि के प्रायः समस्त चेतन पदार्थ एक दूसरे को पद-दलित करके उस पर विजय पाने की चेष्टा करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। एक के विजय से दूसरे का नाश, एक के सुख से दूसरे का दुख, यही सृष्टि का नियम है। जिस पेड़ को हम आज इतना बड़ा और ऊँचा देख रहे हैं, मालूम नहीं, वह कितने पौधों का नाश करके इतना बड़ा हुआ होगा। हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक ह्वेल मछली कितने जीवों का भक्षण करके इतनी बड़ी हुई है। धन के मद में चूर जिस धनी मनुष्य को हम अभिमान के साथ मोटर पर जाते हुए देखते हैं, मालूम नहीं, उसने अपने धन को कितने मनुष्यों का संहार करके—कितने आदमियों की जीविका छीन कर—पैदा किया होगा। सारांश यह कि सृष्टि के आदि-काल से यह प्राकृतिक नियम चला आ रहा है कि वास्तव में ज़िन्दा वही रहता है जो बुद्धि में, विद्या में, बल में बढ़ा चढ़ा होता है। इसी प्राकृतिक नियम को लोग "Survival of the Fittest" and "Struggle for Life" अर्थात् "जीवन-सङ्ग्राम", "ज़िन्दगी के लिए कशमकश," या "संघर्षण" इत्यादि भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। केवल व्यक्तियों ही में नहीं, किन्तु व्यक्तियों के समूहों अर्थात् जातियों, में भी यही नियम काम कर रहा है। संसार में आज कौन सी सभ्यताभिमानी, उन्नतिशील तथा बढ़ी-चढ़ी जाति है जिसने दूसरी जातियों को पद-दलित न करके अपनी उन्नति की हो? जिस तरह एक मनुष्य दूसरे मनुष्यों से जीवन-सङ्ग्राम में बाज़ी ले जाने का यत्न किया करता है, उसी तरह एक जाति दूसरी जातियों से आगे बढ़ जाने की चेष्टा में लगी रहती है। जो जाति जितने ही जोश के साथ इस जीवन-सङ्ग्राम में प्रविष्ट होकर विजय पाने का यत्न करती है वह उतनी ही अधिक उन्नति की दौड़ में आगे बढ़ती है, और जो जाति इस सङ्ग्राम से डर कर पीठ दिखाती है वही मुर्दा जातियों में गिनी जाती है।

यह संसार एक माला के समान है, जिसकी प्रत्येक जाति एक एक गुरिया है। जिस तरह माला की एक गुरिया दूसरी गुरिया से गुँथी रहती है, उसी तरह संसार की एक जाति दूसरी जाति से एक सूत्र में बँधी हुई है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। इस पारस्परिक सम्बन्ध से जातियों के गुण-स्वभाव में बड़ा रद्दोबदल हो जाता है। जिस तरह एक मनुष्य के गुण-स्वभाव में दूसरे मनुष्यों के साथ से भारी परिवर्तन हो जाता है उसी तरह एक जाति के गुण-स्वभाव में दूसरी जातियों के सम्बन्ध से अनेक महान् परिवर्तन हो जाते हैं। दूसरी जातियों के सम्बन्ध से किसी जाति में कितना परिवर्तन हो जाता है, इसके अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। बिना फ़ारिस के सम्बन्ध के एथन्स (यूनान) की उन्नति असम्भव थी।

जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध में जीवन के

* श्रीजगदानन्द-राय-प्रणीत "प्राकृतिकी" से अनुवादित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए सङ्ग्राम (Struggle for Existence) करना दूसरा मुख्य कारण है। प्राचीन समय से लेकर अब तक इतिहास के पन्नों में जिन युद्धों का ज़िक्र है उन सब की जड़ में यही जीवन-सङ्ग्राम दिखाई पड़ता है। इस विषय में जातियों की प्रकृति वनस्पतियों से मिलती-जुलती है। यदि इन दोनों की बुद्धि में कोई रुकावट न डाली जाय और इनकी ख़ूराक और बढ़ने के लिए स्थान भरपूर इन्हें मिलता जाय तो इनके बढ़ने की कोई हद न रहे। यदि पृथ्वी पर दूब को छोड़ कर और कोई वनस्पति न होता तो अपनी उत्पादिका शक्ति से समस्त पृथ्वी पर दूब ही दूब छा जाती। इसी तरह यदि अँगरेज़-जाति को छोड़ कर और कोई जाति इस पृथ्वी-तल पर न होती तो केवल यही एक जाति बढ़ते बढ़ते समस्त पृथ्वी पर फैल जाती। प्रकृति ने वनस्पतियों तथा जातियों को बड़ी उदारता के साथ बढ़ने की शक्ति दी है। किन्तु इसके साथ ही उनके बढ़ने के लिए स्थान और आहार में, बड़ी अनुदारता के साथ, कमी कर दी है। पृथ्वी में उपजाऊ और रहने योग्य स्थान बहुत ही परिमित है। इसी उपजाऊ और बसने योग्य स्थान के लिए ही प्राचीन समय से अब तक संसार की जातियों में युद्ध होता आ रहा है। इँगलैंड और फ़्रांस के बीच जो सात वर्ष तक युद्ध हुआ था, और जो "Seven Years War" के नाम से प्रसिद्ध है, किस लिए हुआ था? उस युद्ध का दारोमदार इस प्रश्न पर था कि फ़्रांस और इँगलैंड में से कौन सा देश ऐसा सौभाग्यशाली है जो हिन्दुस्तान और कनाड़ा की सम्पत्ति और वैभव का अधिकारी हो। हाल में रूस-जापान-युद्ध, अमरीका और जापान के बीच में बढ़ता हुआ मनमुटाव और वर्तमान योरोपीय महासमर का क्या कारण है? यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो इन सबकी जड़ में उसी जीवन-सङ्ग्राम की ज्वाला देख पड़ेगी। युद्ध से प्रत्येक जाति का उद्देश यही रहता है कि उसकी बढ़ी हुई जन-संख्या को भोजन और रहने के लिए काफ़ी स्थान मिले।

यहाँ तक हमने दिखाया कि जातियों में पारस्परिक सम्बन्ध किस तरह होता है—अर्थात् एक जाति का दूसरी जाति के साथ संघर्षण किस हालत में होता है। अब हमें यह देखना है कि इस पारस्परिक सम्बन्ध से जातियों को क्या हानि और क्या लाभ होता है, और इससे जातियों की उन्नति और अधःपतन में क्या सहायता मिलती है।

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष करके ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि जब कोई जाति कूप-मण्डूक बन कर अन्य जातियों से सम्बन्ध तोड़ देती है, अपने को सर्व-श्रेष्ठ मान कर अन्य जातियों को म्लेच्छ, बर्बर और असभ्य समझने तथा उनसे घृणा करने लगती है, और साथ ही यह भी समझने लगती है कि हमारे यहाँ सभी कुछ है, हमें दूसरी जातियों से कुछ सीखने की कोई ज़रूरत नहीं, तब उस जाति में एक तरह की स्थिरता शुरू हो जाती है, जिसे हम कई नामों से पुकार सकते हैं—यथा मुर्दापन, अकर्मण्यता, आलस्य, तन्द्रावस्था इत्यादि। अँगरेज़ी में इस हालत को "Period of Stagnation" कहते हैं। अन्त में इसका परिणाम नाश अथवा अधःपतन होता है। स्पार्टा इसी अवस्था को अन्त में पहुँच गया था। स्पार्टा की प्राकृतिक तथा भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी, और स्पार्टन जाति को सैनिक उन्नति करने की इतनी आवश्यकता थी कि स्पार्टा को दूसरी जातियों से सम्बन्ध करने और उनसे कुछ सीखने का न तो अवसर ही मिलता था और न उसकी प्रवृत्ति ही उस तरफ़ थी। फल यह हुआ कि उस जाति में घुन लगना शुरू हुआ और अन्त में स्पार्टा का नाम मात्र शेष रह गया; उसकी सैनिक उन्नति का कोई चिह्न बाक़ी न रहा। भारतवर्ष का भी यही हाल हुआ। जब से भारतवासियों ने दूसरे देशों से सम्बन्ध रखना छोड़ दिया, चौके तथा छुआ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूत के फेर में पड़े और उन्हें यह अभिमान होने लगा कि हमारे बराबर पृथ्वी में कोई नहीं, सारा ज्ञान और विज्ञान हमारे वेदों और शास्त्रों में मौजूद है, अतएव हमें दूसरों से कुछ सीखने की कोई आवश्यकता नहीं—तभी से देश का अधःपतन शुरू हुआ। अब जो कुछ जागृति देश में होने लगी है उसका मुख्य कारण यही है कि फिर से भारतवर्ष का नाता संसार के साथ होने लगा है।

जब किसी जाति का दूसरी जातियों से घनिष्ठ लगाव होता है तभी वह जाति कर्मशील तथा सजीव होती है। पशु-संसार में भी यदि एक प्रकार के पशुओं का दूसरे प्रकार के पशुओं से कोई लगाव न रक्खा जाय तो उन पशुओं में दूसरे पशुओं के गुण तथा अन्य बातें नहीं आ सकतीं और न उनके शरीर इत्यादि में कोई उन्नति या विकाश हो सकता है। एक जाति के पशुओं का दूसरी जाति के पशुओं के साथ जोड़ा खिलाने और एक साथ रखने से पशुओं में बहुत अधिक उन्नति और अनेक गुणों का विकाश होता हुआ दिखाई पड़ा है। इसी तरह जातियों की उन्नति तथा जीवन बहुत कुछ पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध पर—उनके वर्ण-सङ्कर होने पर—अवलम्बित है। क्या कोई इस बात को अस्वीकार कर सकता है कि हिन्दू-जाति के अब तक जीवित रहने का कारण यही है कि वह प्राचीन समय से ही द्रविड, शक, हूण आदि अनेक अनार्य्य जातियों को अपने में मिलाती रही है? यूनान में भी वही जातियाँ सबसे अधिक उन्नतिशील थीं जो सबसे अधिक दूसरी जातियों से सम्बन्ध रखती थीं। इटली में भी रोमन जाति, जो उन्नति के शिखर तक पहुँच गई थी, लैटिन, इट्रस्कन और सेबाइन इन तीन भिन्न भिन्न जातियों के मिश्रण से बनी थी। अँगरेज़-जाति का गुण-स्वभाव भी डेन, सैक्सन, सेल्ट और नार्मन, इन भिन्न भिन्न जातियों के मेल से बना है। अमरीका की वर्तमान अत्यधिक उन्नति का मुख्य कारण यह है कि उस देश में प्रति वर्ष अँगरेज़, आइरिश, इटालियन, स्वीडिश, जर्मन इत्यादि योरप की जातियों का नया ख़ून मिलता जा रहा है।

जो लाभ व्यक्तियों को परस्पर वार्तालाप करने और एक दूसरे के विचारों को सुनने से होता है वही लाभ जातियों को दूसरी जातियों से मिलने जुलने से होता है। अँगरेज़ी साहित्य की क्या दशा होती, यदि विदेशी भाषाओं के साथ उसका सम्पर्क न होता? चासर से लगा कर स्पेंसर के समय तक की अँगरेज़ी कविता अधिकतर या तो फ़्रेंच भाषा की कविताओं का अनुवाद है या उसके ढँग पर लिखी गई है। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि मिल्टन अपनी कविता के लिए इटली तथा लैटिन भाषा के बहुत कुछ ऋणी थे। शेक्सपियर की कविता से भी पता लगता है कि उन्होंने भी दूसरी भाषाओं से—और ख़ास कर लैटिन भाषा से—बहुत कुछ मसाला लिया था। उनकी कविता से पता लगता है कि वे विदेशों की और ख़ास कर इटली की ख़ूब सैर किये हुए थे।

सभ्यता धीरे धीरे एक जाति से दूसरी जाति में प्रवेश किया करती है। स्वाभाविक तौर पर उसकी चाल एक ही तरफ़ को होती है। अब तक सभ्यता की दौड़ पूर्व से पश्चिम की ओर थी। जब योरप सभ्यता का नाम भी न जानता था तब भी पूर्व दिशा के भारत, आसीरिया, बेबीलोनिया, मीडिया, पर्शिया और फ़िनीशिया इत्यादि देश सभ्यता की चरम सीमा को पहुँच चुके थे। इनमें से फ़िनीशिया के द्वारा सभ्यता का प्रवेश पश्चिम के देशों में हुआ। फ़िनीशिया के लोग बहुत बड़े व्यवसायी, नाविक-विद्या में निपुण और कलाकौशल में दक्ष थे। दैवात् उन्होंने एक बहुत बड़े उद्देश को भी पूरा किया। वह उद्देश योरप के देशों को सभ्यता का सबक़ सिखलाना था। जहाँ कहीं वे जाते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वीय सभ्यता और पूर्वीय ज्ञान फैलाते जाते थे। उन्होंने केवल अक्षरों ही का ज्ञान नहीं, किन्तु अनेक प्रकार की कलाओं और विद्याओं को भी ईजियन और मेडिटरेनियन सागर के किनारे रहनेवाली अर्द्ध सभ्य जातियों को दिया। जब फ़िनीशियन लोगों की शक्ति का ह्रास होने लगा तब उस शक्ति का बहुत बड़ा हिस्सा ग्रीस के हाथ लगा। सामुद्रिक शक्ति के सिवा फ़िनीशिया की राज्यप्रणाली, कलाकौशल तथा दर्शनशास्त्र आदि अनेक बातें ग्रीस के हाथ लगीं। इसके पश्चात् रोम ने ग्रीस को परास्त करके उसे अपने अधीन कर लिया और फ़िनीशिया से पाई हुई शक्ति और सभ्यता का मालिक बन बैठा। रोम ने पूर्वीय सभ्यता और ज्ञान को सुरक्षित ही न रक्खा, बल्कि उसमें स्वयं अपनी बुद्धि से अनेक बातें मिला कर उसका विस्तार पश्चिमीय देशों में किया। रोमन लोगों ने क़ानून और न्यायशास्त्र में बहुत उन्नति की। वे इस विषय में अब भी योरप के गुरु समझे जाते हैं। इसके उपरान्त पूर्व की बारी एक दफ़े फिर आई। अरब लोगों ने भी इस सभ्यता के विस्तार में कन्धा लगाया। जहाँ कहीं वे जाते थे वहाँ वे अपनी विचित्र बुद्धि और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का प्रकाश करते थे। अरब के पुस्तकालय और विश्वविद्यालय योरप के विद्यारसिक छात्रों से भरे रहते थे। वैद्यकशास्त्र, रसायन-शास्त्र, दर्शनशास्त्र और गणितशास्त्र में अरब देश के लोगों ने अपूर्व उन्नति की थी।

दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में उन्नति की लहर फिर इटली के किनारे से उठी। इटली के जेनोआ और पीसा इत्यादि नगर धीरे धीरे बहुत महत्त्व के स्थान हो गये। वे व्यवसाय के केन्द्र भी बन गये। इटली के नाविक इँगलेंड इत्यादि योरोपीय देशों के साथ व्यवसाय करते थे। विशेष करके वीनिस के हाथ में उस समय संसार के व्यवसाय का बहुत बड़ा भाग था। पूर्वीय देशों का माल पहले वीनिस आता था; वहाँ से सारे योरप में जाता था। वीनिस से धीरे धीरे संसार का वाणिज्य जर्मनी के हाथ चला गया। जर्मनी के नगरों ने भी इटली के वीनिस इत्यादि नगरों की तरह केवल धन और ऐश्वर्य ही की वृद्धि नहीं की; किन्तु बुद्धि, विद्या, बल, सभ्यता, शिल्प और कलाकौशल में भी अपने समय में सबसे आगे बढ़े रहे। कुछ समय बाद क्रम क्रम से स्पेन, हालेंड और फ़्रांस ने भी ख़ूब उन्नति की। किन्तु इन सब की उन्नति अँगरेज़ों की अतुलनीय सम्पत्ति, पराक्रम तथा सभ्यता के आगे फीकी पड़ गई। वही सभ्यता जिसे इँगलेंड ने क्रम क्रम से पूर्वीय जातियों से प्राप्त की थी अट्ठारहवीं शताब्दी में अमरीका पहुँची। इस प्रकार पचास बरस में सभ्यता की गाड़ी समस्त योरप और अमरीका का चक्कर लगा कर फिर पूर्व की ओर आ रही है। नये वेश में उसी पुरानी सभ्यता के सम्पर्क से आज पूर्वीय देशों की जातियाँ सैकड़ों वर्षों की निद्रा त्याग कर उठने का यत्न कर रही हैं।

सभ्यता की इस महान् दौड़ पर सरसरी तौर से नज़र डालने से पता लगता है कि सभ्यता पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर गई है और जितनी जातियों ने इस दौड़ में भाग लिया सभी ने कुछ न कुछ इस सभ्यता में अपनी बुद्धि से मिला कर उसे इसकी वर्तमान अवस्था को पहुँचाया है। ग्रीक लोगों ने फ़िनीशियन सभ्यता को केवल ग्रहण ही नहीं किया, किन्तु अपनी बुद्धि, प्रतिभा और कल्पनाशक्ति से उसमें न जाने कितनी बातें जोड़ कर उसे उन्नत भी किया। ग्रीक लोगों से उस सभ्यता को रोम ने ग्रहण किया और उसका विस्तार अपनी कार्य-कुशल और व्यावहारिक बुद्धि से किया। इसके उपरान्त अरब, इटालियन, जर्मन, फ्रेंच और अँगरेज़—इन सभी ने उसी एक सभ्यता को बढ़ाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कुछ न कुछ सहायता की। इस प्रकार प्रत्येक जाति अपनी सभ्यता तथा उन्नति के लिए दूसरी जातियों की थोड़ी या बहुत अवश्य ऋणी है। जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध के बिना, मालूम नहीं, संसार की बहुत सी जातियों की सभ्यता इस समय किस अवस्था में होती।

अब हमें देखना है कि जातियों के संघर्षण से संसार को क्या लाभ होते हैं। यह तो स्पष्ट ही प्रकट है कि वे जातियाँ, जो सर्वथा अयोग्य तथा ज़िन्दा रहने के लायक़ नहीं, संसार से बहुत शीघ्र उठ जाती हैं। वह जाति, जो उन्नति की दौड़ में पिछड़ी है—जो आगे जाने की अपेक्षा पीछे की ओर जाती है, जो संसार की जीती जागती जातियों से नाता तोड़ कर अपने रङ्ग में मस्त रहती है—जो न तो स्वयं कोई नया आविष्कार करती है और न दूसरों के आविष्कारों से फ़ायदा उठाती है, और जिसमें राष्ट्रीयता और देशभक्ति का अभाव है, अवश्य ही नाश को प्राप्त होती है। जिस तरह कमज़ोर पौधे और प्राणी जीवन-सङ्ग्राम के प्राकृतिक नियम के अनुसार जड़ से नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह निर्बल और अयोग्य जातियाँ भी ज़िन्दगी की लड़ाई में हार कर उच्छिन्न हो जाती हैं और दूसरी जातियाँ उनका स्थान ग्रहण कर लेती हैं। संसार के इतिहास में न मालूम कितनी जातियाँ दुनिया के परदे से उठ गईं और उनकी जगह नई नई जातियाँ अस्तित्व में आ गईं। अतएव पहला लाभ, जो संसार की जातियों को जीवन-सङ्ग्राम से होता है, यह है कि योग्यता, बल और पौरुष को आदर-सम्मान और पुरस्कार मिलता है और अयोग्यता तथा निर्बलता का निरादर तथा निन्दा होती है। अतएव देखादेखी दूसरी जातियाँ भी योग्यता तथा बल-पौरुष आदि गुणों के सम्पादन में यत्नशील होती हैं।

जब किसी जाति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दूसरी जाति से लड़ना पड़ता है तब उस जाति के लोगों में अपूर्व एकता का भाव आ जाता है और जाति की जाति एक ही भाव से प्रेरित होकर अपने दोषों के दूरीकरण और जातीय सुधार में तन मन से लग जाती है। जब कभी इस तरह का सङ्कट किसी जाति पर आता है तब उस जाति में बड़े बड़े सुधार के काम होते हैं। यदि बाहरी शत्रुओं का भय न होता तो रोम में पेट्रीशियन (ऊँच) और प्लीबियन (नीच) के झगड़े का तय होना असम्भव था। इस बात का ताज़ा उदाहरण वर्तमान महासमर है। प्रत्येक मनुष्य इस बात को देख सकता है कि किस तरह इँगलेंड के भिन्न भिन्न दल तथा समस्त साम्राज्य के भिन्न भिन्न देश इस महान सङ्कट के समय एकमत होकर तन, मन, धन से शत्रु का मुक़ाबला कर रहे हैं। युद्ध के पहले किस तरह इँगलेंड और आयरलेंड में भिन्न भिन्न दल आपस में लड़ रहे थे और युद्ध छिड़ते ही वे किस तरह पुरानी बातों को भूल कर एक हो गये। यह बात किसी से छिपी नहीं। इँगलेंड में अनिवार्य सैनिक-सेवा, आयरलेंड में होमरूल और भारतवर्ष में इंडस्ट्रियल कमिशन की नियुक्ति इसी युद्ध का परिणाम है। युद्ध के बाद इँगलेंड में तथा आयरलेंड, भारतवर्ष इत्यादि साम्राज्य के भिन्न भिन्न अङ्गों में जो कितने ही सुधार और परिवर्तन होंगे उनका हम अभी अनुमान भी नहीं कर सकते। ये सब लाभ हैं जो जातियों के जीवन-सङ्ग्राम से होते हैं।

इस लेख से जो सिद्धान्त निकलते हैं वे ये हैं—(१) जातियों का संघर्षण, अथवा संसार में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संग्राम, एक प्राकृतिक नियम है जो सृष्टि के प्रारम्भ-काल से चला आ रहा है, (२) जो जाति जितने ही उत्साह के साथ जीवन-सङ्ग्राम में डट कर संसार की दूसरी जातियों पर विजय पाने का यत्न करती है वह उतनी ही अधिक और जातियों से आगे बढ़ी रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; और, इसके विपरीत जो जाति इस सङ्ग्राम से डर कर भागती है वह मुर्दा क़ौमों में गिनी जाती है, (३) इस जीवन-सङ्ग्राम से जातियों को बड़े बड़े लाभ होते हैं जो ऊपर बताये गये हैं; और (४) संसार की आज जो इतनी सभ्यता तथा उन्नति दिखाई पड़ती है उसका मुख्य कारण यही जीवन-सङ्ग्राम है। अस्तु, बड़े हर्ष की बात है कि हमारे देशवासी भी जीवन-सङ्ग्राम और जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध का महत्त्व समझने लगे हैं और उसमें शरीक होने के लिए कमर कस कर तैयार हो गये हैं। यह बात देश के भावी सौभाग्य की सूचक है।

जनार्दन भट्ट

विविध विषय।

१—सर भाण्डारकर का विद्यालय।

संस्कृत-भाषा का प्रवेश जब से भारत के स्कूलों और कालेजों में हुआ तब से संस्कृत की चर्चा कुछ अधिक तो अवश्य होने लगी है तथापि संस्कृत के जैसे विद्वान् इस देश में पहले हुआ करते थे वैसे अब बिरले ही दिखाई देते हैं। वह समय ही और था। विद्वानों को उदर-दरी की पूर्ति के लिए गली गली न भटकना पड़ता था। उन्हें स्कूलों में १२) २०) की अध्यापकी के लिए अर्ज़ियाँ लिये हुए न दौड़ना पड़ता था। धनिकों और राजाओं के यहाँ उनका आदर था। उनकी वृत्तियाँ बँधी हुई थीं। वे सुख-पूर्वक रहते और अपना सारा समय विद्या-दान और विद्योपार्जन ही में लगाते थे। यही कारण है जो उस ज़माने में संस्कृत-भाषा की इतनी उन्नति थी। यदि संस्कृत के विद्वानों को आज कल की तरह दर दर भटकना पड़ता तो संस्कृत में कभी ऐसे ऐसे उत्तम काव्य, नाटक और अन्यान्य महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों की सृष्टि न होती।

आज कल का यह हाल है कि पुरानी प्रथा के जो पण्डित यत्र-तत्र पाये जाते हैं वे विद्यमान तो हैं इस बीसवीं शताब्दी में, पर विचार हैं उनके सैकड़ों वर्ष पहले के। संसार में इस समय क्या हो रहा है, इसका उन्हें बहुत ही कम ज्ञान है। इसके सिवा उनमें कुछ ऐसा सङ्कोच-भाव आ गया है कि दूसरी भाषाओं के विद्वानों को वे बहुत ही कम योग्यता की वस्तु समझते हैं। संस्कृत के जो विद्वान् कालेजों में अच्छे अच्छे पदों पर हैं और जिनमें से कुछ ने जर्मनी और इँगलेंड आदि में पश्चिमी ढँग से संस्कृत का अध्ययन किया है उन पर भी ऐसे पुराने ढँग के पण्डितों की श्रद्धा नहीं। पश्चिमी ढँग से शिक्षित संस्कृतज्ञ भी प्राचीन प्रथा के पण्डितों को अपने सामने कोई चीज़ नहीं समझते। यह दुरवस्था अच्छी नहीं। नव्य शिक्षितों को प्राचीनों का आदर करना चाहिए और प्राचीनों को भी यदि नव्य शिक्षितों में कोई ग्रहणीय गुण देख पड़े तो उसे ग्रहण करना चाहिए।

संस्कृत के पारगामी पण्डित सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर पूने में एक ऐसा विद्यालय खोलना चाहते हैं जिसमें प्राचीन संस्कृत-साहित्य की शिक्षा दी जाय और साथ ही साथ उस साहित्य के सम्बन्ध में नई नई बातों की खोज भी की जाय। भाण्डारकर महाशय चाहते हैं कि अब ऐसे भी पण्डित पैदा हों जो संस्कृत के प्राचीन साहित्य का अध्ययन करके वर्तमान काल से बिलकुल ही दूर न जा पड़ें। इस साहित्य के सम्बन्ध में जो नये नये आविष्कार हुए हैं उनसे भी वे परिचय प्राप्त करें। इस विद्यालय में शिक्षा पाने वालों के लाभ के लिए भाण्डारकर महाशय अपना अनमोल पुस्तकालय भी दे डालना चाहते हैं। इस विचार को कार्य्य में परिणत करने के लिए गत जुलाई में कितने ही देशी और विदेशी महाशयों का एक समुदाय बम्बई के गवर्नर, लार्ड वेलिङ्गडन, की सेवा में उपस्थित हुआ और उनसे सहानुभूति पाने की प्रार्थना की। गवर्नर महाशय ने सर भाण्डारकर के विचारों की बड़ी प्रशंसा की और यह अभिवचन दिया कि यदि यह विद्यालय खुला तो गवर्नमेंट उसकी यथाशक्ति सहायता करेगी।

इस विद्यालय के लिए ज़मीन का भी प्रबन्ध हो गया है और बहुत कुछ चन्दा भी इकट्ठा हो गया है।

आशा है, यह विद्यालय अपने ढँग का एक ही होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके खुलने से संस्कृत-साहित्य की बहुत कुछ उन्नति होने की सम्भावना है।

२—मिर्ज़ापुर का वसन्त-विद्यालय।

सरस्वती के सम्पादक शिकायत किया करते हैं कि और प्रान्तों की तरह इस प्रान्त के श्रीमान् सज्जन शिक्षा-प्रचार के लिए प्रयत्न नहीं करते। उनकी शिकायत ठीक है। पर अब, कुछ समय से, इस प्रान्त के धनिकों का भी ध्यान इस ओर जाने लगा है। अपने कथन की पुष्टि में मैं मिर्ज़ापुर के वसन्त-विद्यालय का कुछ वृत्तान्त सुनाता हूँ।

इस विद्यालय की स्थापना हुए पाँच वर्ष हुए। हाल ही में इस संस्था की रजिस्टरी भी हो गई है। इसके बोर्ड आव् ट्रस्टीज़ में मिर्ज़ापुर के कई एक रईस, महाजन और व्यापारी हैं। एक महाशय काशी के और एक इलाहाबाद के भी हैं। इनमें से तीन ट्रस्टीज़ अँगरेज़ी की उच्च शिक्षा पाये हुए हैं। इस विद्यालय के संस्थापक और कर्णधार मिर्ज़ापुर के रईस बाबू वसन्तलाल अगरवाले हैं। आपके यहाँ लाख का व्यापार होता है। संवत् १९६४ में आपने अच्छे कर्म्म-काण्डी ब्राह्मण तैयार करने के लिए एक वैदिक पाठ-शाला खोली। संवत् १९६८ में एक स्कूल भी खोल दिया। उसका नाम हुआ वसन्त-विद्यालय। जिस साल वह खुला उसमें केवल २२ विद्यार्थी थे। पर उसकी इतनी शीघ्र उन्नति हुई कि इस समय उसकी छात्र-संख्या २५२ है। अध्यापक ९ हैं। शिक्षा मिडिल तक दी जाती है। सनातन-धर्म्मानुकूल धार्म्मिक शिक्षा देने का भी प्रबन्ध है। बही-खाता रखना भी सिखाया जाता है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि छात्रों से फ़ीस नहीं ली जाती। शिक्षा मुफ़्त दी जाती है। इस स्कूल का सारा ख़र्च बाबू वसन्तलालजी ही देते हैं। अब तक आपने कोई दस हज़ार रुपया ख़र्च किया है। अब आपने स्कूल के लिए पच्चीस हज़ार रुपया नक़द और इतने ही की जायदाद दे दी है और उसकी रजिस्ट्री भी करा दी है। स्कूल और उसकी सम्पत्ति का प्रबन्ध बोर्ड आव् ट्रस्टीज़ के हाथ में है। बाबू साहब भी बोर्ड में हैं। आपकी उदारता और विद्याभिरुचि प्रशंसनीय है। आपने मिर्ज़ापुर की "गोवर्धन-गोशाला" और "सरस्वती-भवन" की भी सहायता की है। आशा है, आपकी इस औदार्य्य-वृत्ति की उत्तरोत्तर उन्नति होती जायगी और आपका संस्थापित विद्यालय किसी दिन एक नामी विद्यालय हो जायगा।

"हितैषी"

बाबू वसन्तलाल का चित्र और वसन्त-विद्यालय का संक्षिप्त वृत्तान्त भेजने के लिए "हितैषी" जी को धन्यवाद। इस प्रान्त के अन्यान्य श्रीसम्पन्न सज्जनों को बाबू वसन्तलाल का अनुकरण करके शिक्षा-प्रचार की वृद्धि करना चाहिए। कालेजों की बात जाने दीजिए, स्कूलों तक में अब अनेक शिक्षार्थी छात्रों को जगह नहीं मिलती। सैकड़ों, हज़ारों विद्यार्थी मारे मारे फिर रहे हैं; भरती ही नहीं हो सकते। नियमों की कठिनता शिक्षा-प्राप्ति में बाधा डाल रही है। ऐसे दुःसमय में नये नये स्कूल खुलने की बड़ी ही आवश्यकता है।

सम्पादक।

३—वसन्त-व्याख्यान-माला।

१८७५ ईसवी में महामति रानड़े ने इस व्याख्यान-माला की नींव डाली। तब से आज तक इसमें कितने ही व्याख्यान-कुसुम गूँथे गये। प्रति वर्ष वसन्त ऋतु के सुहावने और उत्साहदायक समय में इस माला का उत्सव होता है। चुने हुए विद्वान् भिन्न भिन्न विषयों पर व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रित किये जाते हैं। माला का दफ़्र पूने में है। प्रायः वहीं उत्सव किया जाता है।

पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष इस माला को विशेष सफलता प्राप्त हुई। इस बार एक महीने में २७ व्याख्यान हुए। व्याख्याताओं में ८ अध्यापक (Professor) ६ वकील, ६ समाचारपत्रों के सम्पादक, १ व्यापारी और २ सरकारी कर्म्मचारी थे। व्याख्यान-माला के सञ्चालकों का विचार है कि अगले वर्ष भिन्न भिन्न प्रान्तों के सुयोग्य विद्वानों के भी व्याख्यान कराये जायँ। व्याख्याता और उनके विषयों के नाम नीचे देखिए—

नम्बर	व्याख्याता	विषय
(१)	श्रीयुत बाल गङ्गाधर तिलक	नारायणीय धर्म्म
(२)	,, लक्ष्मण गणेश शास्त्री लेले	काव्यानन्द
(३)	अध्यापक धर्मानन्द कोसम्बी	समाजसत्तावाद और वर्तमान महायुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)	,, विश्वनाथ बलवन्त नाइक	उष्णता का कार्य्य
(५)	,, हरि रामचन्द्र दिवेकर	भारतवर्ष का पौराणिक इतिहास
(६)	,, वामन गोविन्द काले	साम्पत्तिक उन्नति का मार्ग
(७)	डाक्टर वामनराव देसाई, एम्० डी०	आयुर्वेद और यूरोपियन वैद्यक की तुलना
(८)	अध्यापक अण्णा बाबाजी लट्ठे	नीच जातियों का सुधार
(९)	श्रीयुत जनार्दन सखाराम करन्दीकर बी० ए०, एलू-एलू० बी०	भारतीय स्वराज्य और गवर्नमेंट
(१०)	श्रीयुत वामन मल्हार जोशी, एम्० ए०	अद्वैत के अनेक अर्थ
(११)	अध्यापक हरि गोविन्द लिमये	काव्हूर और इटाली का राष्ट्रीकरण
(१२)	श्रीयुत काशीनाथ नारायण दीक्षित	पुराण-वस्तु-संशोधन
(१३)	,, नारायण कृष्ण आगाशे, बी० ए०, एलू-एलू बी०	१९१३ ईसवी में जर्मनी और इँगलेंड की दशा
(१४)	,, श्रीकृष्ण नीलकण्ठ चापे-कर, एम्० ए०, एलू-एलू० बी०	वाङ्मयात्मक टीका का महत्त्व और नीति
(१५)	श्रीयुत भास्करराव भालेराव	हिन्दी-साहित्य
(१६)	,, सत्यबोध बालकृष्ण हुद-लीकर, एम्० ए०	शिक्षा में सृष्टि-शास्त्र का महत्त्व
(१७)	मिसेज़ एनी बेजेन्ट	भारत का भविष्य
(१८)	श्रीयुत शङ्कर रामचन्द्र भाग-वत, एलू-सी० ई०	पानी बहाने की नालियाँ (Drainage System)
(१९)	श्रीयुत रामचन्द्र गणेश प्रधान, बी० ए०, एलू-एलू० बी०	प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य-पद्धति
(२०)	,, विट्ठल रामजी शिन्दे बी० ए०	जरायम पेशा जातियों की उन्नति
(२१)	,, नारायण मल्हार जोशी, बी० ए०	राष्ट्रकार्य्य में समाज-सेवा का महत्त्व
(२२)	माननीय मनमोहनदास रामजी	भारतीय बैङ्क
(२३)	श्रीयुत नीलकण्ठराव पाटण-कर, बी० ए०, एलू-एलू० बी०	बड़ौदा-पुरोहित-एक्ट और समाज-सुधार
(२४)	अध्यापक केशवराव कानिटकर	शिशु-शिक्षा
(२५)	श्रीयुत नागेश वासुदेव गुणाजी, बी० ए०, एलू-एलू० बी	अर्थकरी शिक्षा
(२६)	मिस्टर बैप्टिस्टा, बी० ए०, बारिस्टर-एट-ला	वर्तमान महायुद्ध के कारण और उसका परिणाम
(२७)	श्रीयुत अच्युत बलवन्त कोलहटकर, बी० ए०, एलू-एलू० बी०	बिना चन्दे के सर्व-साधारण वाचनालय

इस नामावली से ही पाठक व्याख्यानों की गम्भीरता और उपयोगिता का यथेष्ट अनुमान कर सकेंगे। यह व्याख्यान-माला क्या है, स्वर्गीय राव बहादुर गणेश व्यङ्कटेश जोशी के शब्दों में, सचमुच "विचार-महोत्सव" ही है। एक सज्जन ने "हिन्दी-साहित्य" पर भी व्याख्यान दिया। उस दिन सभापति का स्थान ग्रहण किया था—श्रीयुत नारायण भवानराव पावगी ने। आप महाराष्ट्र प्रान्त के नामी ग्रन्थकार और इतिहासज्ञ हैं। हिन्दी-भाषा के विषय में उस दिन सभापति की हैसियत से आपने जो उदारतापूर्ण विचार प्रकट किये वे हिन्दी से मुँह मोड़ने और उसकी उन्नति पर नाक भौंह सिकोड़ने वाले प्रत्येक भारतवासी के ध्यान देने योग्य हैं। आपने कहा—"हिन्दी-भाषा में प्रौढ़ता और सरसता, ये गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं। हिन्दी-भाषा अधिकांश भारतवर्ष में बोली और समझी जाती है। अतएव भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासियों के विचार-विनिमय के लिए वही राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए।" आपका यह विचारौदार्य्य और प्रान्त वालों के लिए भी अनुकरणीय है।

४—मराठी में विश्वकोश।

मराठी-भाषा के विद्वानों ने मिल कर अपनी भाषा में एक विश्वकोश (Marathi Enccylopaedia) तैयार करने का सङ्कल्प किया है। कोश के प्रधान सम्पादक होंगे—डाक्टर श्रीधर व्यङ्कटेश केतकर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०। इसकी सिद्धि के निमित्त नागपुर में एक समिति स्थापित हुई है। उसकी रजिस्ट्री भी करा ली गई है। ५० हज़ार रुपये के मूलधन से यह समिति अपना काम करेगी। इसके एक एक हिस्से (शेयर) का मूल्य १००) रक्खा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

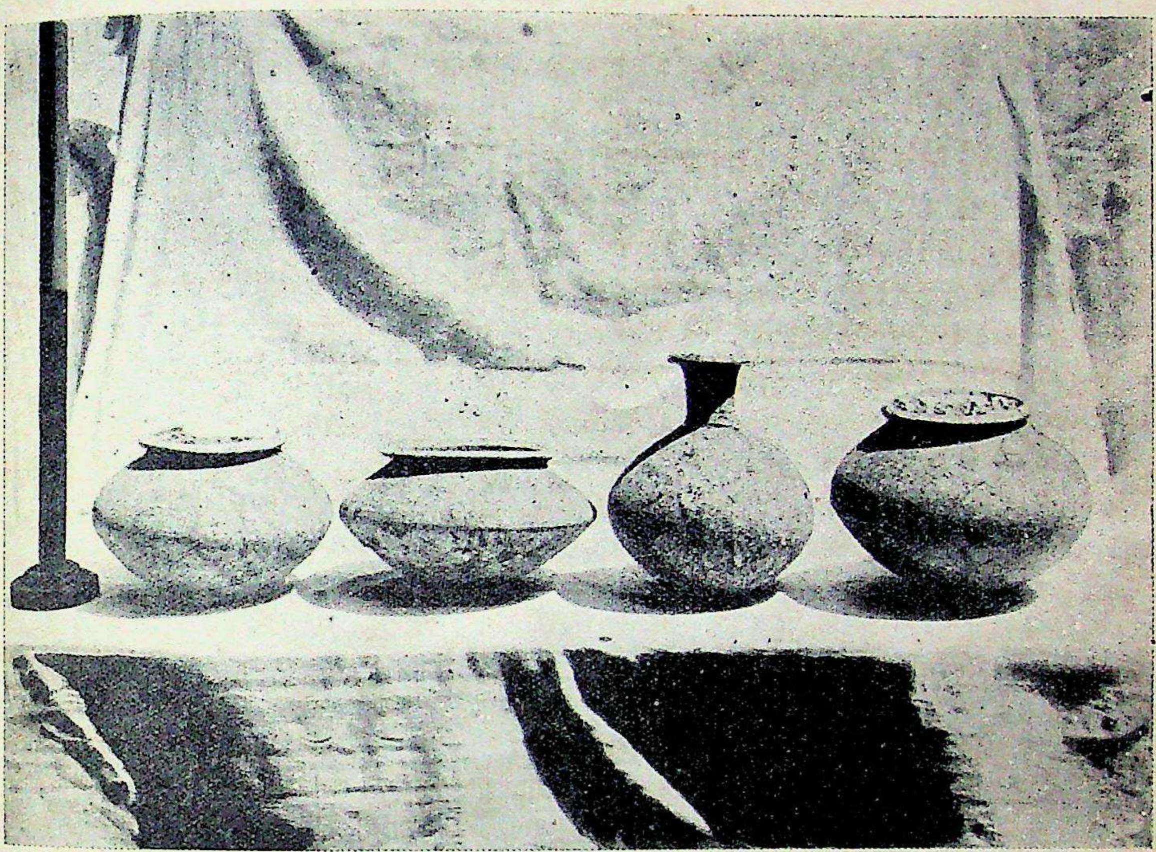

(१) गज्जलकोंड की क़ब्रों में प्राप्त हुए मिट्टी के बर्तन।

(२) गज्जलकोंड की क़ब्रों में प्राप्त हुए मिट्टी के बर्तन।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कोष २० भागों में समाप्त होगा। प्रत्येक भाग में ५०० पृष्ठ रहेंगे। आशा है, कार्य्यारम्भ होने के कोई ५ वर्ष बाद यह लिख जाय।

श्रीयुत तिलक, प्रोफ़ेसर शिवराम महादेव पराञ्जपे, डॉक्टर खेडकर, श्रीयुत हरि नारायण आपटे, श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सम्पादक केसरी और मराठा, श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०, श्रीयुत माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि कितने ही मराठी के सुप्रसिद्ध विद्वान् कोश के भिन्न भिन्न भागों का सम्पादन करेंगे। इस कार्य्य के लिए आवश्यक पुस्तकसंग्रह का यथेष्ट प्रबन्ध कर लिया गया है। समिति के रङ्ग ढँग से जान पड़ता है कि यह कोश बहुत अच्छा बनेगा और यथासमय प्रकाशित होकर मराठी भाषा के गौरव को बढ़ावेगा—"उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्म्मस्वतिदुष्करेषु"।

५—रोमन-लिपि के प्रचार का प्रयत्न।

सरस्वती के पाठक पादरी जे० नोल्स के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। भारतवर्ष की मूर्खता और निरक्षरता देख कर पादरी साहब दुखी हैं। वे चाहते हैं कि सारा भारतवर्ष शिक्षित हो जाय और उसकी निरक्षरता बहुत ही शीघ्र दूर हो जाय। परन्तु इस देश की बुरी लिपियों के कारण उनकी यह कमनीय कामना नहीं सफल होने पाती। वे चाहते हैं कि यहाँ की दोषपूर्ण लिपियों के बदले एक निर्दोष और शीघ्र सीखी जाने योग्य लिपि का प्रचार किया जाय। ये गुण उन्हें रोमन-लिपि में देख पड़ते हैं। आपका कथन है कि थोड़े ही फेर-फार से रोमन-लिपि सर्वथा निर्दोष हो जायगी और इस देश के अनुकूल सभी ध्वनियों को व्यक्त करने की शक्ति उसमें आ जायगी। आज तक आपने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रयत्न किया है। आपका प्रयत्न अब तक बराबर जारी भी है।

हाल ही में आपने टाइम्स आव इंडिया में एक चिट्ठी प्रकाशित की है। उसमें जापान के टोकियो-विश्वविद्यालय के एक प्रोफ़ेसर की सम्मति का उल्लेख आपने किया है। ये प्रोफ़ेसर महाशय विलायत के एम० ए० पास हैं। इन्होंने कहीं लिखा है कि चीनी-लिपि के मिश्रण से बनी हुई जापानी-लिपि में अनेक दोष हैं। अतएव उसके बदले रोमन, अर्थात् वह लिपि जिसमें अँगरेज़ी लिखी जाती है, क्यों न जापान में जारी की जाय? पादरी साहब का कथन है कि चीन के विद्वान् भी चीनी-लिपि की अपेक्षा रोमन-लिपि को अधिक पसन्द करते हैं। आप यह भी कहते हैं कि विलायत के कुछ बड़े बड़े विद्वान् शिक्षा-सम्बन्धी एक कमीशन नियत कराने के लिए हस्ताक्षर एकत्र कर रहे हैं। उस कमीशन द्वारा वे अँगरेज़ी शब्दों के हिज्जों और अँगरेज़ी वर्णों के दोष दूर करने के लिए भी चेष्टा करेंगे। यह सब लिख कर आपने भारतीय गवर्नमेंट से प्रार्थना की है कि भारत-निवासियों को निरक्षरता के गढ़े में पड़े बहुत दिन हो गये। अब तो उनके लाभ के लिए रोमन-लिपि के किसी सुधरे हुए रूप का प्रयोग स्कूलों और कचहरियों में ज़रूर होना चाहिए। इस के आगे आपने रोमन-लिपि के गुण और नागरी, फ़ारसी, बँगला, गुरुमुखी आदि लिपियों के दोष दिखाये हैं।

पादरी साहब की युक्तियों का खण्डन सरस्वती में एक नहीं कई बार किया जा चुका है। चीनी और जापानी-लिपियाँ निश्चय ही अनेक दोषों से पूर्ण हैं—उन लिपियों के ज्ञाता यही कहते हैं। लिपियों की दोष-पूर्णता के कारण ही पूर्वोक्त देशों में उनको सीखने में बहुत समय लगता है। अँगरेज़ी अथवा रोमन-लिपि भी दोषों से ख़ाली नहीं। पर वह इतनी सदोष नहीं, जितनी चीनी और जापानी लिपियाँ हैं। यह बात स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे तक जानते हैं। अतएव उन लिपियों के बदले यदि रोमन-लिपि जारी की जाय तो बुरा नहीं। उससे शिक्षा-प्राप्ति में सुभीता हो सकता है। परन्तु देवनागरी-लिपि के सम्बन्ध में पादरी साहब की युक्तियाँ ठीक नहीं। रोमन-लिपि के मुक़ाबले में देवनागरी-लिपि बहुत ऊँचा दरजा रखती है। वह बहुत शीघ्र सीखी भी जा सकती है। उसमें सब तरह की ध्वनियाँ प्रकट करने की शक्ति भी है। इसी देश की होने के कारण यहाँ वालों की श्रद्धा भी उस पर अधिक है। इसके सिवा न मालूम कितने काल से उसका प्रचार इस देश में चला आ रहा है। ऐसी दशा में यहाँ रोमन-लिपि का प्रचार करने के लिए पादरी साहब का प्रयत्न कभी उस दृष्टि से नहीं देखा जा सकता जिस दृष्टि से उसे दिखाने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। जिस तरह वे रोमन-लिपि को स्कूलों और कचहरियों में ऐच्छिक लिपि के तौर पर जारी कराना चाहते हैं उसी तरह देव-नागरी-लिपि क्यों न जारी की जाय? और प्रान्तों में वहाँ की लिपियों के साथ यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लिपि का भी प्रचार किया जाय तो यह राष्ट्रीय-लिपि हो जाय। और, ऐसा करने से किसी की कुछ भी हानि नहीं हो सकती।

६—भारत में वैज्ञानिक खेती।

भारतवर्ष में वैज्ञानिक ढँग से खेती करने की कल्पना का जन्म हुए कोई २०-२५ वर्ष हुए। भारत ही में क्यों, इँगलेंड में भी इसकी चर्चा कोई ५०—६० ही वर्षों से छिड़ने लगी है। भारत में सबसे पहले १८९० ईसवी के लगभग बम्बई प्रान्त में वैज्ञानिक ढँग से खेती करने के प्रयोग आरम्भ किये गये। इसके पश्चात् मदरास और फिर मध्य-प्रान्त में वैज्ञानिक ढँग से कुछ खेत बोये गये। धीरे धीरे भारत के अन्यान्य प्रान्तों में भी इसकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। १९०५-०६ ईसवी में पूसा में एग्रिकलचरल रिसर्च इन्स्टीव्यूट की स्थापना की गई। उस समय लार्ड कर्ज़न भारत के गवर्नर जनरल थे। इस काम के लिए सरकार ने २० लाख रुपये प्रति वर्ष देना स्वीकार किया। पीछे से यह रक़म बढ़ा कर २४ लाख कर दी गई। पूसा की यही कृषिशाला सरकारी कृषि-विभाग की मुख्य संस्था है। यह शाला अन्य पूर्वीय देशों की कृषि-शालाओं के टक्कर की है। इसके सिवा पूना, मदरास, सबोर (बङ्गाल), कानपुर (संयुक्त-प्रान्त), लायलपुर (पञ्जाब), नागपुर (मध्य-प्रान्त) में एक एक सरकारी कृषि-कालेज है। इन कालेजों के प्रोफ़ेसर अपने अपने प्रान्त में कृषि-विषयक खोज भी किया करते हैं। प्रत्येक कालेज की ज़मीन है जिसमें विद्यार्थियों को अपने हाथ से खेती करना सिखाया जाता है।

कृषि-विभाग ने तीन तरह के काम किये हैं—पहले तो उसने इसका पता लगाया है कि किस प्रान्त में कौन कौन सी पैदावार होती है और उसमें कौन कौन चीज़ों की उपज अच्छी है। दूसरे उसने इस बात की खोज की है कि कौन कौन सी नई चीज़ किस प्रान्त में पैदा हो सकती है और किस प्रकार उसकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है। तीसरे उसने परीक्षा द्वारा इसका पता लगाया है कि किस पेड़ या पौधे में किसकी क़लम लगाने या किसका संयोग करने से असली पेड़-पौधे का फल या दाना पहले से अधिक बड़ा हो सकता है।

भारत कृषि-प्रधान देश है। सौ में कोई ७० मनुष्यों की जीविका यहाँ खेती से ही चलती है। ऐसी दशा में सारे भारत में सिर्फ़ ६ कृषि-कालेज काफ़ी नहीं। दूसरे यहाँ के अधिकतर कृषक अपढ़ हैं। अपढ़ और अशिक्षित लोग नई नई बातों से, चाहे वे कितनी ही हितकारिणी हों, प्रायः दूर भागते हैं। नई बातें करने से वे डरते हैं। अतएव जब तक ये लोग पढ़ लिख कर वैज्ञानिक ढँग से खेती करने के लाभ न समझने लगेंगे तब तक सरकारी कालेजों के परीक्षा पास कृषि-विद्या के जानकारों से देश को विशेष लाभ न पहुँचेगा। अतएव सरकार को चाहिए कि वह सबसे पहले कृषकों को आवश्यक शिक्षा देने का यथोचित प्रबन्ध करने की कृपा करे। साथ ही वह कृषि के स्कूल भी जगह जगह खोले। एक बात और भी है। इस महकमे का प्रायः सारा काम अँगरेज़ी-भाषा में होता है। कृषि-सम्बन्धी नये नये शोधों के विवरण भी प्रायः अँगरेज़ी में ही प्रकाशित होते हैं। कृषि-कोविदों के व्याख्यान भी प्रायः अँगरेज़ी ही में होते हैं। अभी उस दिन हमें पूसा की कृषि-शाला से एक पुस्तिका प्राप्त हुई। उसका नाम है—"One Hundred Notes on Indian Insects." अर्थात् हिन्दुस्तानी कीड़े-मकोड़ों के विषय की १०० बातें। यह पुस्तिका अँगरेज़ी में है। अब कहिए, इससे किसान क्या लाभ उठा सकते हैं? हाँ, सरकार यदि ऐसी पुस्तकों के अनुवाद देशी भाषाओं में प्रकाशित करे और उन्हें मुफ़्त या नाममात्र की क़ीमत लेकर बाँटे तो अलबत्ता सर्वसाधारण और थोड़ा पढ़े-लिखे खेतिहरों को लाभ पहुँच सकता है। इस काम में सरकार ख़र्च भी करती है और इस बात की चेष्टा भी भरसक करती है कि उसकी पुस्तकों और उसकी कृषि-विषयक खोजों से लोग लाभ उठावें। पर जब तक कृषि-विषयक ज्ञान-प्रचार के लिए वह देशी भाषाओं का आश्रय न लेगी तब तक उसके ख़र्च किये हुए धन और शक्ति का यथेष्ट उपयोग न होगा।

७—महाराष्ट्र-प्रान्त-वासियों की हिन्दी।

बम्बई से सुवर्ण-माला नाम की एक सामयिक पुस्तक निकलती है। उसमें जो चित्र निकलते हैं उनका संक्षिप्त परिचय अँगरेज़ी, मराठी, गुजराती और हिन्दी, इन चार भाषाओं में दिया जाता है। उसके फ़रवरी १९१६ के अङ्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पेशवाई ज़माने के प्रसिद्ध राज-कार्य्य-पटु नाना फड़नवीस का जो चित्र निकला है वह इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है। इस चित्र का परिचय सुवर्ण-माला में इस प्रकार हिन्दी में दिया गया है—

नाना फड़नवीस का नाम बालाजी जनार्दन था। उनका जन्म सितारे में इ० स० १७४१ में हुआ था। उनके पिता और दादा पेशवा के फड़नवीस थे। इ० स० १७५६ में उनके पिता की मृत्यु पीछे नाना को उनकी जगा पर नियत किया था। इ० स० १७६१ में पानीपत की लड़ाई में से वह भाग के बच गया था। इ० स० १७६१ में माधवराव पेशवा भया। उनकी छोटी उम्मर के लिये सर्वराज्यकार्य्य उनके काका रघुनाथराव रक्षक बन के चलाता था, उस समय नाना पेशवा का फड़नवीस सन्मान से कायम रहे। माधवराव की उन पर अति प्रीति जम गई थी। इ० स० १७७२ में माधवराव मृत्यु पाया। उन पिछे उनके भाई नारायणराव पेशवा हुवा। उनके बखत में नाना बहुत बड़ा दरज्जा पर चढा। इ० स० १७७३ में नारायणराव का खून हुवा और रघुनाथराव ने पेशवाई पचाई। परन्तु थोड़े रोज में नारायणराव की विधवा जो सगर्भा थी उसने पुत्र का जन्म दिया। उनको तुरत पेशवा ठहराय के नाना फडनवीस, सखाराम बापु ने और बाल पेशवा माधवराव की माता राज्य-रक्षक निमाये। यह टुंक समय में नाना फडनवीस पूना में सर्व राज्यकार्य संभालने लगे और मुख्य नेता भये।

नाना फड़नवीस और सखाराम बापु की बिच में कुछ कलह होने लगा। यह मौका देख कर रघुनाथराव ने अंग्रेज़ों को अप पक्ष में लिये। तब मरहठे और अंग्रेज़ों की बिच में विग्रह की शरुवात हुई। परन्तु यह विग्रह का इ० स० १७८२ में सालपाई का तहनामा से अंत आ गया, और अंग्रेजों ने रघुनाथराव का पक्ष छोड़ दिया और रघुनाथराव भी अल्प समय में मर गये। उन पिछे सखाराम बापु को एक किल्ला में कैद रखने में आये। इ० स० १७९१ में नाना फड़नवीस ने टीपू के साम्हे लार्ड कार्नवालीस की मदद में सैन्य भेजा; और इ० स० १७९५ में मरहठाओं ने निझाम पर चढाई की, और खर्दा की लडाइ में निझाम को हराया। पूना में नाना की सत्ता सर्वोपरी थी, और छेक शिखर उपर पहुंची थी। उतने में अचानक युवान पेशवा माधवराव ने अपघात किया। उन पिछे रघुनाथराव का पुत्र बाजीराव पेशवा निमाये। नया पेशवा साथ नाना को अनबनाव होने से वह भागने लगा, परन्तु तुर्त पकड़ जाने से उनको कैद करने में आया; परन्तु थोड़े समय पिछे दोनों की बिच में मित्रता हो गई, और पुनः नाना प्रधान पद पर आये। यह नानौ इ० स० १८०० के मार्च मास की ता० १३ के दिन मृत्यु पाये।

यह परिचय निस्सन्देह किसी महाराष्ट्र-प्रान्त-वासी—बहुत करके किसी गुजराती भाषा-भाषी—का लिखा हुआ है। इस तरह की भाषा का एक नमूना पहले भी सरस्वती में दिया जा चुका है। पर इसमें कुछ अधिक विचित्रता है। इस कारण यह विशेष कौतूहल-जनक है। तथापि यह इस बात का पक्का प्रमाण है कि अन्य-प्रान्तवासी भी, बिना शिक्षा पाये ही, हिन्दी लिख सकते हैं। ऐसी हिन्दी यद्यपि सदोष होती हैं तथापि समझ में अच्छी तरह आ जाती है। इस दशा में हिन्दी को छोड़ कर हिन्दुस्तान में और कोई भाषा राष्ट्र-भाषा होने का दावा नहीं कर सकती।

८—विहार में रेडियम का आविष्कार।

गया के पास सिङ्गर (Singar) नाम की एक रियासत है। उसमें अबरखी नाम का एक पहाड़ है। उस पर यत्र तत्र अभ्रक पाया जाता है। उस पर छोटी छोटी कई खानें अभ्रक की हैं। कोई चार वर्ष हुए, खान के एक गढ़े से कुछ ऐसी चीज़ें निकलीं जिनमें रेडियम का कुछ अंश था। इस पर दो एक गढ़े ख़ूब गहरे खोदे गये तो पिच-ब्लैंडी (Pitch Blende) नाम की खनिज वस्तु मिली। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा इसीसे रेडियम निकाला जाता है। कोई छः ही महीने के भीतर पूर्वोक्त पहाड़ से मनों पिच-ब्लैंडी निकली। खनिजविद्या के ज्ञाता कहते हैं कि इस पहाड़ के आस पास भी इस वस्तु का मिलना सम्भव है। पिचोली नाम के एक गाँव के पास भी पिच-ब्लैंडी पाई गई है। यह गाँव अबरख़ी पहाड़ से कोई सात मील उत्तर-पश्चिम है। पिचौली के पास भी एक पहाड़ी है। इससे अनुमान होता है कि अबरख़ी पहाड़ का सिलसिला पिचौली तक चला गया है।

अबरख़ी पहाड़ के आसपास की भूमि खोद कर उससे पिचब्लैंडी आदि खनिज पदार्थ निकालने के उद्देश से एक कम्पनी स्थापित हो चुकी है। पर कुछ अनिवार्य्य कारणों से वह अब तक कार्य्यारम्भ नहीं कर सकी। इन पहाड़ियों के गर्भ में और भी कितने ही मूल्यवान् खनिज पदार्थ पाये गये हैं। उनमें से पिच-ब्लैंडी का आविष्कार बड़े महत्त्व का है। भारत की भूमि सचमुच ही रत्नगर्भा है। ऐसी कौन चीज़ है जो यहाँ न प्राप्य हो?

डाक्टर डब्ल्यू० चौधरी, पी-एच० डी०, नाम के एक सज्जन पूर्वोक्त पहाड़ियों पर प्राप्त हुई वस्तुओं के विषय में एक रिपोर्ट प्रकाशित करने वाले हैं। उसके प्रकाशित होने पर इस विषय की सब बातें मालूम होंगी।

९—शृङ्गेरी मठ।

भारतवर्ष में किसी समय बौद्धधर्म्म का ख़ूब दौर दौरा था। शङ्कराचार्य्य ने उसका उच्छेद करके भारत में अद्वैत-मत का प्रचार किया। अपने पश्चात् भी अद्वैत-मत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार निरन्तर होता रहे, इस उद्देश से उन्होंने भारत के मुख्य मुख्य चार केन्द्रों में एक एक मठ की स्थापना की और वहाँ एक एक मठाधिपति भी नियत किया। चारों मठाधिपति जगद्गुरु कहाते हैं और आदि शङ्कराचार्य्य के प्रतिनिधि माने जाते हैं। शृङ्गेरी मठ इन्हीं चार मठों में से है। धार्मिक दृष्टि से उसका बड़ा माहात्म्य है।

मैसोर-राज्य में तुङ्गभद्रा नदी के किनारे शृङ्गेरी नाम का एक गाँव है। इसी गाँव में यह मठ है। शृङ्गेरी में कोई १२० देवालय हैं। मठ, गाँव के मुख्य मार्ग पर है। मठ के आसपास कितने ही अन्य मन्दिर भी हैं। मठ के अधिपति, जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य, ६ महीने नदी पार एक बँगले में रहते हैं और ३ महीने गाँव के पास एक पक्के मकान में। धार्म्मिक दृष्टि से तो शृङ्गेरी का माहात्म्य बढ़ा चढ़ा हुई है, पर ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसका महत्त्व कम नहीं। आज कल जिस जगह पर मठ है उसी जगह पर पहले एक बड़ा भारी बौद्ध मठ था। श्रीशङ्कराचार्य्य ने शास्त्रार्थ में बौद्धों को परास्त करके वह स्थान ले लिया और बौद्ध मठ को नष्ट करके उसी जगह वर्तमान मठ बनवाया। पीछे से उसमें भगवान् जनार्दन की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा हुई। शङ्कराचार्य्य बौद्ध धर्म्म के कट्टर विरोधी थे। तथापि उन्होंने इस मठ में पहले से ही स्थापित बौद्ध मूर्त्ति पर अत्याचार न होने दिया। उस स्थान से हटा कर उन्होंने थोड़ी ही दूर पर उसे स्थापित करा दिया। वह आज तक वहीं है। लोग उसकी पूजा करते हैं। स्वयं मठ की ओर से मूर्त्ति की पूजा-सामग्री के ख़र्च के लिए कुछ रकम दी जाती है। तत्कालीन धार्म्मिक सहनशीलता और उदारता का यह प्रकाशमान उदाहरण है।

दक्षिणी भारत में यह स्थान बहुत पूज्य माना जाता है। कितने ही भारतीय राजा, महाराजा मठ के सहायक और संरक्षक हैं। सैकड़ों यात्री भारत के दूरस्थ प्रान्तों से भी वहाँ यात्रा के लिए जाते हैं।

१०—मङ्गल का जल-वायु।

कितने ही ज्योतिर्विदों की राय है कि मङ्गल शीत-प्रधान ग्रह है। वहाँ की आबोहवा इतनी सर्द है कि उस पर सूर्य्य की गरमी का बहुत ही कम असर पड़ता है। भूगोल के ध्रुव-प्रदेश अत्यन्त सर्द समझे जाते हैं। पर मङ्गल उनसे भी अधिक सर्द है। इस अनुमान को पादरी ए० सी० रिड्सडेल (Ridsdale) एम्० ए०, एफ्० आर० ए० एल० ठीक नहीं समझते। आप का कथन है कि मङ्गल का जल-वायु इतना सर्द नहीं। आइसलेंड और ग्रीनलेंड के जल-वायु से वह मिलता जुलता है। मङ्गल की मध्य-रेखा (Equator) के आस पास के प्रदेशों में भी इससे अधिक सर्दी नहीं पड़ती। सूर्य्य से पृथ्वी और मङ्गल जितने अन्तर पर हैं उसका हिसाब लगा कर आपने अपने कथन को पुष्ट किया है। आप यह भी कहते हैं कि मङ्गल का जल-वायु ग्रीनलेंड के जल-वायु से कुछ कम सर्द है। आप इसके दो प्रधान कारण बताते हैं। एक तो यह कि मङ्गल में पानी की भाफ़ बहुत बनती है और ऐसी भाफ़ से गरमी अधिक समय तक रुकती है। अतएव सूर्य्य से जो उत्ताप मङ्गल ग्रहण करता है उसे पानी की भाफ़ बाहर नहीं जाने देती; उस उत्ताप को वह रोक रखती है। इससे मङ्गल में सर्दी नहीं बढ़ने पाती। दूसरा कारण यह है कि कोई ८० मील के ऊपर पृथ्वी के वायु-मण्डल की स्थिति एक ही सी रहती है। वहाँ ४७ दरजे की गरमी रहती है। प्रायः यही दशा मङ्गल के वायु-मण्डल की भी है। वायु में कितने ही पदार्थ हैं। कुछ गैसें भी हैं। पूर्वोक्त ताप वाले वायु-मण्डल में वायु की कुछ गैसें तो रुकी रहती हैं और कुछ ऊपर आकाश में चली जाती हैं। जो रुकी रह जाती हैं उनमें कारबोनिक एसिड गैस मुख्य है। मुख्यतः उसी के कारण मङ्गल के वायु-मण्डल में बहुत अधिक सर्दी नहीं होने पाती।

पादरी साहब यह भी कहते हैं कि मङ्गल पर पेड़, पौधे और जीवधारियों की उत्पत्ति भी सम्भव है। वहाँ प्रायः उसी श्रेणी के जीवधारी होंगे जिस श्रेणी के हमारे भूगोल पर पाये जाते हैं।

११—प्राचीन भारत में सभा-समितियाँ।

कितने ही लोग यह समझते हैं कि सभा-समितियों की सृष्टि नई चीज़ है। वह अँगरेज़ी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता का फल है। पर उनका यह ख़याल भ्रम-मूलक है। सम्मेलनों और परिषदों की चाल नई नहीं, पुरानी है। उपनिषत्काल तक में वह प्रचलित थी।

बम्बई से "समालोचक" नाम का एक मासिक पत्र गुजराती में निकलता है। उसकी मई की संख्या में श्रीयुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

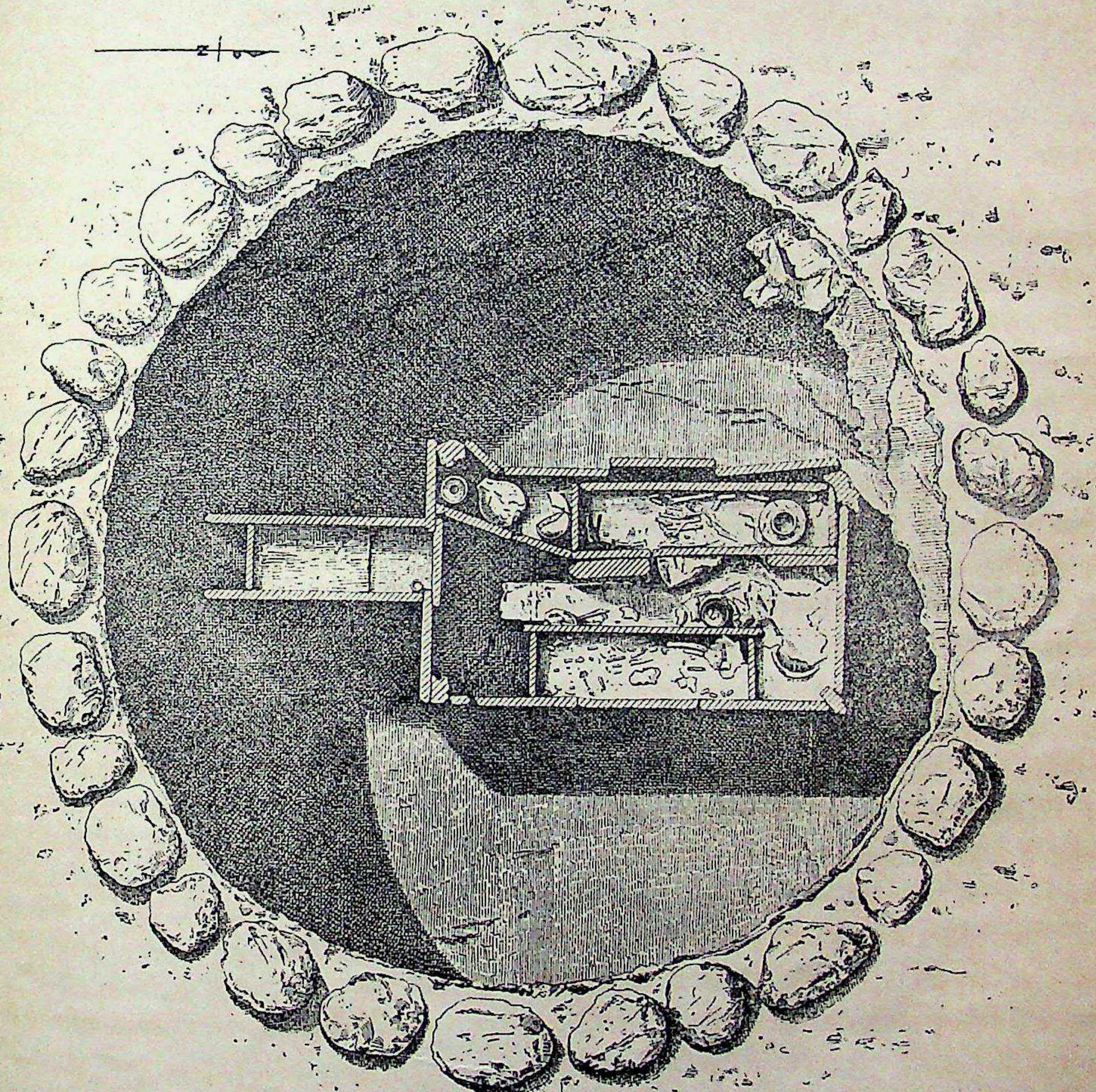

गज्जलकोंड की एक क़बर—हज़ारों वर्ष की पुरानी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री का एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है—प्राचीन वैदक परिषदो। उसमें शास्त्रीजी ने उपनिषदों से लेकर अन्य कितने ही संस्कृत-ग्रन्थों से श्लोक उद्धृत करके इस बात को अच्छी तरह पुष्ट किया है कि प्राचीन काल में भी सभा-समितियां होती थीं। छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है—

श्वेतकेतुर्ह आरुणेयः पाञ्चालानां परिषदमाजगाम।

जनक वैदेह ने जो यज्ञ किया था उसमें पाञ्चाल के ब्राह्मणों की एक बृहत् परिषद् हुई थी। बृहदारण्यक उपनिषद् में उसका वर्णन है। महाभारत और रामायण में भी परिषदों का उल्लेख है। रामचन्द्र के राज्याभिषेक की कुल तैयारी हो चुकने पर राजा दशरथ ने उनके पास दूत-द्वारा यह शुभ समाचार भेजा। उस समय रामचन्द्र सीता से कहते हैं—

यादृशी परिषत् सीते दूतश्चायं तथाविधः।

ध्रुवमद्यैव राजा मां यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति॥

धर्म का निर्णय करने के लिए भी प्राचीन काल में सभायें होती थीं। देखिए, प्रायश्चित्त-विवेक नामक ग्रन्थ में लिखा है—

एकविंशतिसंख्याकैर्मीमांसान्यायपारगैः।

वेदाङ्ग-कुशलैश्चैव परिषत्त्वं प्रकल्पयेत्।

इस प्रकार बौद्ध-साहित्य, संस्कृत-धर्म-शास्त्र, रामायण, महाभारत और उपनिषद् इत्यादि का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि कम से कम ईसवी सन् के कोई छः सौ वर्ष पहले से भारत में समय समय पर सभायें होती आई हैं। चरकसंहिता में भी भिन्न भिन्न प्रकार की कितनी ही परिषदों का उल्लेख है।

१२—एक प्रलयङ्कर आविष्कार।

आज तक तारों के द्वारा ही बिजली की शक्ति एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाई जाती थी। पर हाल ही में एक वैज्ञानिक ने बिना तार के ही विद्युत्प्रवाह बहाने का आविष्कार किया है। इस आविष्कार का नाम है—Transmission of Energy by Wireless.—अर्थात् बे-तार का विद्युत्-प्रवाह। इसके आविष्कर्त्ता हैं—इटली के नेकोला टेस्ला नाम के एक वैज्ञानिक। इस आविष्कार की तात्त्विक बातें अभी आविष्कर्त्ता महाशय ने गुप्त रक्खी हैं। इससे क्या क्या काम होंगे—संसार को इससे क्या लाभ अथवा क्या हानि होगी—यह अलबत्ते आपने प्रकट कर दिया है। आप का कथन है कि इस आविष्कार की बदौलत बिजली की प्रचण्ड शक्ति एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाई जा सकेगी। आप अपनी जगह पर ही बैठे बैठे उस शक्ति को अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचा सकेंगे। उसे वहाँ ले जाने के लिए न तार ही दरकार होंगे न अन्य ही कोई साधन। वह शक्ति आकाश-मार्ग से गमन करेगी। किसी को देख भी न पड़ेगी। पर ठीक निशाने पर जाकर लगेगी। एक हज़ार मील की दूरी पर भी वह निर्भ्रान्त निशाने पर लगेगी। शक्ति कई प्रकार की होगी। एक शक्ति ऐसी होगी जिसकी सहायता से आप सैकड़ों कोस दूर स्थित भी अपने शत्रु को निकम्मा कर सकेंगे। उसके प्रभाव से शत्रु क्षीणबल होकर जहाँ के तहां खड़े रह जायँगे। यह शक्ति ठीक वही काम करेगी जो पुराण-वर्णित सम्मोहनास्त्र करता था। इससे पौराणिक अग्नि-बाणों या आग्नेय अस्त्रों का भी काम लिया जा सकेगा। मनोवेग से भी अधिक वेगवती इस शक्ति के प्रकट होते ही शत्रुओं की पलटनें की पलटनें जल कर ख़ाक हो जायँगी और लाखों मन खाद्य पदार्थ तथा कमसरियट का अपरिमित असबाब नष्ट हो जायगा। इससे सहसा जहाज़, व्योमयान तथा रेलें भी उड़ा दी जा सकेंगी। यह सारा संहार-कार्य्य सैकड़ों कोस दूर बैठे बैठे, बिना किसी को ज़रा भी ख़बर हुए, किया जा सकेगा। यह आविष्कार वही काम करेगा जो महादेव का ललाटवर्ती तीसरा नेत्र कर सकता है। टेस्ला साहब ने स्वयं ही अपने आविष्कार को—A Terrible Engine of Destruction. अर्थात् भयङ्कर विध्वंसकारी यन्त्र बताया है। आविष्कारक का ख़याल है कि इस आविष्कार के डर से भविष्यत् में वर्तमान महायुद्ध के सदृश भीषण युद्ध न हुआ करेंगे। पर संसार की गति को देखते यह बात असम्भव सी है। इससे भी बढ़ कर संहारकारी आविष्कार क्या न हो सकेंगे? यदि कोई वैसा आविष्कार हो गया तो वर्तमान युद्ध से भी अधिक भयङ्कर युद्ध हो सकेंगे। वर्तमान शस्त्रास्त्रों से तो धीरे धीरे और थोड़ा ही धन तथा जन-नाश होता है। आगे तो इन प्रलयङ्कर आविष्कारों के द्वारा एक पक्ष के लोग दूसरे पक्ष को चुटकी बजाते बजाते भस्म कर देंगे। तब तो धन-जन-विध्वंस की इयत्ता ही न रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३—दक्षिणी सर्किल के पुरातत्त्व-विभाग की रिपोर्ट।

यह रिपोर्ट १९१४—१५ ईसवी की है। इसमें जिस खुदाई का विवरण प्रकाशित हुआ है वह इतिहास की दृष्टि से महत्त्व की है। यह खुदाई ज़िला करनूल के गज्जलकोंड़ ग्राम के समीप हुई थी। इससे इस बात का पता चलता है कि ऐतिहासिक काल के पहले इस देश में ऐसी जातियाँ बसती थीं जिनका अब नामोनिशान तक नहीं रह गया। इस रिपोर्ट में लिखा है—

"गज्जलकोंड़ ग्राम के दक्षिण-पूर्व, तीन मील की दूरी पर, पहाड़ियों के नीचे नीचे छोटी बड़ी अनेक क़बरें हैं। इनका व्यास छः फ़ीट से लेकर छब्बीस फ़ीट तक है। आकार गुम्बज़नुमा है। ऊँचाई धरातल से लगभग तीन फ़ीट है। सब की सब पत्थर की हैं। इनमें से दो खोदी गईं। कोई दो फ़ीट खोदने पर क़बर की छत का पता लगा। वह दस फ़ीट लम्बी और साढ़े पांच फ़ीट चौड़ी थी। छत का पत्थर हटाने पर एक छोटा सा कमरा मिला। उसमें, दक्षिण ओर, साढ़े चार फ़ीट ऊँचा और डेढ़ फ़ीट चौड़ा एक द्वार पाया गया। जितनी क़बरें देखी गईं, सब में दक्षिण ही की तरफ़ दरवाज़ा मिला। कमरे की दीवारें पत्थर की खड़ी पटियों से सुदृढ़ बनी हुई थीं। कमरे के भीतर पत्थर की कई पटियायें एक दूसरी के ऊपर पाई गईं। उनके बीच बीच मनुष्य की हड्डियाँ और मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े मिले। क़ब्र में समूचे बर्तन भी पाये गये।"

रिपोर्ट के लेखक का अनुमान है कि ये क़बरें एक ऐसी जाति की हैं जिनका वर्णन इतिहास में मिलता ही नहीं। मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े और समूचे बर्तन जो क़बरों में मिले हैं वे चाक पर फिराये हुए और ख़ूब पकाये हुए हैं। पत्थर की एक पटिया ऐसी भी मिली है जिस पर सादी नक़्क़ाशी है। इन क़बरों के सम्बन्ध में सबसे अधिक विचित्र बात यह है कि इनकी बनावट मिस्र के मीनारों के सदृश है।

देवीदत्त शुक्ल

१४—डाकृरी सिखाने का नया प्रबन्ध।

आगरे में बहुत समय से एक मेडिकल स्कूल है। उसमें डाक्टरी सिखाई जाती है। पहले तो उसमें केवल हिन्दी-उर्दू और बहुत थोड़ी भी अँगरेज़ी जानने वाले छात्र भरती हो सकते थे। पर अब वह बात नहीं। अब वही लोग भरती किये जाते हैं जो अँगरेज़ी भाषा अच्छी तरह समझ सकते हैं। पहले वहाँ ३ वर्ष पढ़ना पड़ता था, अब ४ वर्ष। इस स्कूल से जो लड़के पास होते हैं उन्हें एल० एम० पी० की डिगरी मिलती है। नौकरी मिलने पर ये लोग सब-असिस्टंट सर्जन नियत होते हैं। १९११ ईसवी से लखनऊ में डाक्टरी सिखाने का एक कालेज भी खुल गया है। इसकी पढ़ाई ५ वर्ष की है। यह प्रयाग के विश्वविद्यालय के अधीन है। इससे जो छात्र निकलते हैं उन्हें एम० बी० और बी० एस० की डिगरी मिलती है। ये लोग असिस्टंट सर्जन नियत किये जा सकते हैं। इसके छात्रों के लिए अँगरेज़ी भाषा का बहुत अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है।

लखनऊ के कालेज और आगरे के स्कूल से पास होकर जो लोग निकलते हैं उन्हें निज के तौर पर भी दुकान खोलने और चिकित्सा करने का अधिकार रहता है।

अब गवर्नमेंट कहती है कि डाक्टरी शिक्षा का यह प्रबन्ध यथेष्ट नहीं। लखनऊ के कालेज की पढ़ाई बहुत ऊँचे दरजे की है और आगरे के स्कूल की बहुत नीचे दरजे की। जो लोग आगरे के स्कूल से निकलते हैं उन पर सर्वसाधारण की श्रद्धा कम रहती है। इससे गवर्नमेंट इस त्रुटि को दूर कर देना चाहती है। वह चाहती है कि डाक्टरों की संख्या बढ़े और सर्वसाधारण को ख़ूब लाभ पहुँचे। जगह जगह डाक्टर हो जायँ और उनसे लोग चिकित्सा करावें। इसीसे उसने आगरे के स्कूल की पढ़ाई में परिवर्तन करने का निश्चय किया है। अब वहाँ स्कूल लीविंग् सरटिफ़िकेट पाये हुए ही लड़के भरती हो सकेंगे। उन्हें ५ वर्ष तक पढ़ना पड़ेगा। पास हो जाने पर उनको एल० एम० एस० की डिगरी मिलेगी। इस डिगरी का महत्त्व प्रायः उतना ही होगा जितना कि लाहोर और कलकत्ते के मेडिकल कालेज से निकले हुए छात्रों को दी गई एल० एम० एस० डिगरी का होता है। यह डिगरी मँझोले दरजे की होगी—अर्थात् जो डिगरियाँ लखनऊ के मेडिकल कालेज से दी जाती हैं उनसे कम दरजे की और आगरे के वर्तमान मेडिकल स्कूल से जो दी जाती है उससे कुछ ऊँचे दरजे की। सौ बात की बात यह कि अब कम पढ़े-लिखे लोग डाक्टर न बन सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरे के वर्तमान मेडिकल स्कूल में ही यह नये ढँग की शिक्षा दी जायगी। पुरानी पढ़ाई उठ जायगी; नई पढ़ाई जारी होगी। जो छात्र इस समय उस स्कूल में हैं उन्हें अपनी शिक्षा पुराने ढँग से ही समाप्त करनी पड़ेगी। नये भरती होने वालों को ही नई शिक्षा मिलेगी।

आगरे के मेडिकल स्कूल पर विश्वविद्यालय की देख रेख न रहेगी। यह काम एक मेडिकल बोर्ड करेगा। अभी रुपये की कमी है। इस कारण नये प्रबन्ध के अनुसार स्कूल के कर्म्मचारियों और अध्यापकों की संख्या न बढ़ाई जायगी। युद्ध ख़तम होने पर यह बात होगी। तब तक प्रबन्ध और पढ़ाई-सम्बन्धी काम काज की तैयारी होती रहेगी।

इस नये प्रबन्ध की कुछ बातों से लोग नाराज़ हैं। वे तरह तरह की सूचनायें कर रहे हैं। पर उनकी सूचनाओं का शायद ही कुछ फल हो। क्योंकि गवर्नमेंट को तो जो कुछ करना था उसने कर दिया। यदि वह सर्वसाधारण की सलाह की आवश्यकता समझती तो अपना निश्चय प्रकाशित करने के पहले ही वह सर्वसाधारण को सलाह देने का मौक़ा देती।

डाक्टरों की संख्या अब बढ़ेगी, यह प्रजा के लिए सन्तोष की बात है। असन्तोष सिर्फ़ इस कारण से हो तो हो सकता है कि बेचारे वैद्यों और हकीमों का कोई पुरसां नहीं।

यह नोट लिख चुकने पर मालूम हुआ कि गवर्नमेंट ने इस नये प्रबन्ध को अभी विचाराधीन रक्खा है। कौंसिल के कुछ मेम्बरों की प्रार्थना पर यह बात हुई है।

१५—गवर्नमेंट की की हुई साहित्यालोचना।

१९१४-१५ से सम्बन्ध रखने वाली, संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट की, शासन-रिपोर्ट गत जूलाई में निकली है। उसमें पूर्ववत् साहित्य की भी आलोचना है। उसकी मुख्य मुख्य बातें नीचे लिखी जाती हैं—

१९१३-१४ में कुल १७०८ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। १९१४-१५ में उनकी संख्या बढ़ कर २०४२ हो गई। अर्थात् ३३४ पुस्तकें अधिक निकलीं। किस विषय की कितनी पुस्तकें अधिक निकलीं। इसका हिसाब देखिए—

कविता	१२१
धर्म्म	६८
फुटकर	४२
क़ानून	३६
इतिहास और भूगोल	३६
उपन्यास	२८

उपन्यास कम निकले, यह अच्छा ही हुआ। पर रद्दी कविता ने ज़ोर पकड़ा, यह बुरा हुआ।

१९१३-१४ में उर्दू की केवल ३०८ पुस्तकें निकली थीं। पर १९१४-१५ में उनकी संख्या ४५१ हो गई। अर्थात् १४३ की वृद्धि हुई। हिन्दी-पुस्तकों की भी संख्या बढ़ी। वे ८०१ से ९५१ हो गईं। अर्थात् १५० अधिक निकलीं। यह वृद्धि यथेष्ट सन्तोषजनक नहीं। हिन्दी बोलने वालों की संख्या के लिहाज़ से हिन्दी-पुस्तकों की और वृद्धि होनी चाहिए थी। यह वृद्धि तो उर्दू-पुस्तकों की संख्या-वृद्धि के प्रायः तुल्य ही है। उर्दू बोलने वाले कम, हिन्दी बोलने वाले अधिक हैं। अतएव बोलने वालों की संख्या के परिमाण से हिन्दी-पुस्तकों की वृद्धि नहीं हुई।

सामयिक पुस्तकों और समाचार-पत्रों की संख्या २९० से ३१७ हो गई। अर्थात् सिर्फ़ २७ की वृद्धि हुई। यह वृद्धि यथेष्ट नहीं, विशेष कर इस लिहाज़ से कि १६ पत्र-पुस्तकें १९१४-१५ में बन्द हो गईं। किस भाषा में कितनी पत्र-पुस्तकें निकलीं, इसका हिसाब नीचे दिया जाता है—

अँगरेज़ी	६८
उर्दू	१२६
हिन्दी	१०७

बाक़ी और भाषाओं में निकलीं।

यहाँ हिन्दी से उर्दू बढ़ी हुई है। यह अवस्था अस्वाभाविक है। बोलने वालों की संख्या के अनुरूप ही हिन्दी में पत्र-पुस्तकें निकलनी चाहिए थीं। हिन्दी की उन्नति हो तो रही है, पर धीमी गति से। यह उसकी उन्नति का प्रारम्भिक काल है। आशा है, धीरे धीरे, अधिकाधिक उन्नति होती जायगी।

गवर्नमेंट का कहना है कि कथा-कहानियों में हिन्दू-लेखक मुसलमान-विजेताओं के चरित्र मन्द दिखाते हैं और मुसलमान-लेखक हिन्दुओं के चरित्र में बल और साहस की कमी सूचित करते हैं। ऐतिहासिक सत्य की ओर इन लोगों का ध्यान बहुत कम रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्य-समाज के अनुयायियों ने शिक्षा, धर्म्म और सामाजिक सुधार पर बहुत सी छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित कीं। सुधार के लिए इन्होंने हार्दिक उत्साह दिखाया। पर उनके धार्म्मिक लेखों और पुस्तकों में द्वेष और मत्सर की मात्रा प्रायः जैसी की तैसी ही बनी रही। वह विशेष नहीं घटी। द्वेष-भाव के प्रकटीकरण में इन लेखकों ने पूर्ववत् ही सचाई और औचित्य को तिलाञ्जलि दी। इनके मुक़ाबले में क्रिश्चियन लोगों के लेखों और पुस्तकों में यह दोष उतना नहीं आने पाया। आर्य्य-समाजियों के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर भी क्रिश्चियन लेखकों ने कम उच्छृङ्खलता दिखाई। उन्होंने जो कुछ लिखा विशेष असंयत भाषा में नहीं लिखा।

हिन्दी में भारतवर्ष का एक इतिहास निकला। भारत को आर्य्य-समाज के अनुयायी जिस दृष्टि से देखते हैं उसी दृष्टि से यह लिखा गया है। इस इतिहास में झूठी या विकृत देश-भक्ति और जाति-विषयक कठोर घृणा के भाव इतने भर दिये गये हैं कि इसका ऐतिहासिक महत्त्व नष्ट हो गया है।

कविता की बात कुछ न पूछिए। जिन विषयों को अँगरेज़ी-भाषा के कवि कविता के योग्य ही नहीं समझते उन पर भी कवितायें लिखी गईं। इस देश से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातों पर यहाँ वाले कविता बना डालते हैं। अपनी कविता के लिए वे किसी विषय को त्याज्य ही नहीं समझते।

गवर्नमेंट की इस समालोचना से लेखकों को लाभ उठाना चाहिए।

१६—पाठ्य पुस्तकों का चुनाव।

बम्बई के गवर्नर की कौंसिल में एक प्रस्ताव, अभी हाल में, बड़े मारके का पास हुआ है। प्रस्तावकर्त्ता थे—फर्गुसन कालेज, पूने, के प्रधानाध्यापक श्रीयुक्त पराञ्जपे। आपके प्रस्ताव का सार सुनिए—

स्कूलों और कालेजों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें चुनने का काम शिक्षा-विभाग ने अपने हाथ में रक्खा है। पुस्तकें ही नहीं, कापियाँ और चित्र तक बिना उसकी मंज़ूरी के स्कूलों में नहीं व्यवहृत हो सकते। पुस्तकालयों में वही पुस्तकें रक्खी जा सकती हैं जिनके नाम शिक्षा-विभाग बता देता है। यह नियम अच्छा नहीं। इससे बड़ी हानि है। शिक्षा-विभाग सब पुस्तकों को साद्यन्त नहीं पढ़ सकता। इसके सिवा उसमें सब प्रकार की पुस्तकों पर राय देने की योग्यता भी नहीं। जो पुस्तकें जारी हैं उनमें से कितनी ही शिक्षा-विभाग के अफ़सरों ही की रची हुई हैं। इस दशा में दूसरों की लिखी हुई पुस्तकों का मुक़ाबला उनसे करते समय उस विभाग के अफ़सरों को दूसरों की पुस्तकें बहुत ही कम पसन्द आ सकती हैं। ऐसे मौक़ों पर वे सोचते हैं कि हम से अधिक अच्छी पुस्तकें भला और कोई क्या लिखेगा? इस कारण अन्य लेखकों को अपनी पुस्तकें मंज़ूर कराने में बड़ी कठिनता होती है। देशी भाषा की पुस्तकों के चुनाव की तो और भी दुरवस्था है। उनमें यह देखा जाता है कि कहीं राजनीति की बुरी बू तो नहीं अथवा कहीं कोई बात ऐसी तो नहीं जो किसी की प्रतिष्ठा को कम करने वाली हो। ऐसी बात चाहे सच ही क्यों न हो, जिस पुस्तक में वह होगी वह नामंज़ूर कर दी जायगी। इस नीति के अवलम्बन से अच्छे अच्छे लेखकों और प्रकाशकों को भी कोई नई पुस्तक लिखने या प्रकाशित करने का उत्साह नहीं होता। शिक्षा-विभाग ख़ुशी से सदाचार और राजनीति-विषयक पुस्तकें लिखे, चुने या प्रकाशित करे। पर अन्य विषयों की पुस्तकें चुनने का अधिकार वह कृपा करके स्कूलों के प्रधान अध्यापकों को दे दे। उसे इस विषय में उदारता से काम लेना चाहिए। यदि वह उदारता दिखावेगा तो शिक्षित समाज को बहुत लाभ पहुँचेगा। अच्छी अच्छी नई पुस्तकें तैयार हो जायँगी और विद्या की ख़ूब उन्नति होगी।

कई देशी प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन और समर्थन किया। पर गवर्नमेंट की ओर से इसका विरोध किया गया। सरकारी मेम्बरों ने कहा कि शिक्षा-विभाग की मंज़ूरी के बिना कोई पुस्तक जारी न होनी चाहिए। इस पर उपस्थित मेम्बरों की सम्मति ली गई तो २२ ने पक्ष में और १८ ने विपक्ष में सम्मति दी। फल यह हुआ कि बहु-सम्मति से प्रस्ताव पास हो गया। ऐसे दो एक मौक़े पहले भी आ चुके हैं जब सरकारी विरोध होने पर भी प्रजा के प्रतिनिधियों के प्रस्ताव बहु-सम्मति से पास हो गये हैं। प्रस्तुत प्रस्ताव पास हो गया, यह तो अच्छा ही हुआ। पर गवर्नमेंट आव् इंडिया इसे मंज़ूर करे तब न।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय।

१—हरिदास एंड कम्पनी की पुस्तकें—इस कम्पनी ने और पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली पुस्तक है—**भर्तृहरि-कृत नीतिशतक**। इस शतक के सिवा भर्तृहरि के दो शतक और हैं—शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक। नीतिशतक तीनों में श्रेष्ठ है। इन शतकों के अनुवाद अनेक भाषाओं में हो गये हैं। अँगरेज़ी और जर्मन भाषाओं तक में इनके अनुवाद विद्यमान हैं। इनका एक बहुत विस्तृत अनुवाद हिन्दी में भी है। वह पुरोहित गोपीनाथजी एम० ए० का किया हुआ है। उसमें अँगरेज़ी भी है। टिप्पणियाँ और साहित्य-सम्बन्धिनी अन्यान्य बातें भी उसमें बड़े महत्त्व की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मूल संस्कृत के नीचे उसका पद्यात्मक हिन्दी-अनुवाद है, फिर उसका गद्यात्मक भावार्थ है। तदनन्तर उसका अँगरेज़ी अनुवाद है। मूल को छोड़ कर यह सब पाण्डेय लोचनप्रसाद और पण्डित सखाराम दुबे, बी० ए०, बी० एल० की रचना है। पद्यात्मक अनुवाद अनेक छन्दों में हुआ है। एक नमूना—

> नरपति किसके हैं मित होते अभिन्न।
> कब नृप कर देते बन्धुता को न भिन्न?
> कुटिल नृपति का है कौन आत्मीय, भाई!
> कब निभ सकती है अग्नि से मित्रताई॥

यह अनुवाद शाब्दिक नहीं, मूल का भावार्थ मात्र है। पर है अच्छा। पृष्ठ-संख्या १२४ और मूल्य ८ आने है। दूसरी पुस्तक का नाम है—**महाकवि ग़ालिब**। इसकी पृष्ठ-संख्या १०२ और मूल्य ८ आने है। इसके लेखक पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा हैं। इसमें ग़ालिब के जीवनचरित के सिवा उनकी कविता के उत्तमोत्तम नमूने भी हैं। ग़ालिब उर्दू के नामी शायर थे। शर्म्माजी उर्दू-कविता के नामी रसिक हैं। आपने ग़ालिब की कविता की ख़ूबी ख़ूब ही दिखाई है। आपकी आलोचना योग्यतापूर्ण है। यदि आप उर्दू के अन्यान्य शायरों की कविता की भी ऐसी ही समालोचनायें प्रकाशित कर दें तो हिन्दी-कविता के रसिकों को उर्दू-कवियों की कविता से पहचान होजाय। दोनों पुस्तकें अच्छी छपी हैं। पूर्वोक्त कम्पनी को २०१ हैरिसन रोड, कलकत्ते, के पते पर पत्र लिखने से मिलती हैं।

२—सिक्खों का परिवर्तन। पृष्ठ-संख्या तीन सौ के ऊपर, जिल्द बँधी हुई, मूल्य १½ रुपया, मिलने का पता—पुस्तक-भाण्डार, लाहौर। डाकृर गोकुलचन्द्र नारँग, एम० ए०, पी-एच० डी० की लिखी हुई एक पुस्तक अँगरेज़ी में है। उसका नाम है—Transformation of Sikhism. उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं—स्वामी सोमेश्वरानन्द, बी० ए०। अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करके डाकृर साहब ने अपनी पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने सिक्ख-धर्म्म का आदि से इतिहास लिख कर यह दिखाया है कि किस प्रकार यह समाज एक छोटी सी धर्म्म-संस्था से विकास पाते पाते एक प्रबल राजनैतिक दल में परिणत हो गया। आपने बड़ी खोज और बड़ी मिहनत से यह पुस्तक लिखी है। इससे एक ऐतिहासिक न्यूनता की पूर्ति हो गई। स्वामीजी ने बड़ी कृपा की जो इसका हिन्दी-अनुवाद कर डाला। पर इसका नाम सिक्खों का रूपान्तर या सिक्ख-धर्म्म का रूपान्तर होना चाहिए था। आपकी भाषा में यद्यपि कहीं कहीं शिथिलता है, तथापि सरलता यथेष्ट है। पुस्तक संग्रहणीय है। आरम्भ में कठिन शब्दों का कोश लगा दिया गया है और अन्त में तीन उपयोगी परिशिष्ट। बीच में कई चित्र भी हैं।

❋

३—श्रीयोगवासिष्ठ महारामायण, भाग २ जो। भाषा गुजराती; प्रकाशक—सस्तुं-साहित्य-वर्द्धक-कार्य्यालय बम्बई और अहमदाबाद; आकार बड़ा; पृष्ठ-संख्या १०६७; जिल्द कपड़े की पक्की और सुन्दर; छपाई सफ़ाई उत्तम; मूल्य ३ रुपया। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग की समालोचना सरस्वती में पहले की जा चुकी है। योगवासिष्ठ में कुल छः प्रकरण हैं। पहले पाँच प्रकरण इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में प्रकाशित हो चुके हैं; छठा, निर्वाण-प्रकरण, इस द्वितीय भाग में प्रकाशित हुआ है। योगवासिष्ठ वेदान्त का अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें वसिष्ठ ने वेदान्त के सिद्धान्त रामचन्द्र के हितार्थ सुनाये हैं। अनुवादक ने मूल का अनुवाद सरल गुजराती भाषा में किया है। प्रत्येक सर्ग के आद्यन्त के संस्कृत-श्लोक भी दे दिये गये हैं। प्रथम भाग की तरह यह द्वितीय भाग भी सर्वाङ्ग-सुन्दर और सङ्ग्रहणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—The Study of Indian Economics. यह २८ सफ़े की पुस्तक अँगरेज़ी में है। एन० एम० मजूमदार, बी० ए०, बी० एस-सी० ने, १६१५ ईसवी में, एक व्याख्यान दिया था। विषय था—भारतीय सम्पत्ति-शास्त्र का अध्ययन। वही व्याख्यान, प्रस्तुत पुस्तक के रूप में, पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। इसमें, इसके नामानुसार, सम्पत्ति-शास्त्र के महत्त्व और उसके अध्ययन की प्रणाली आदि का बड़ा अच्छा विवेचन है। इसके लेखक मजूमदार महाशय ने विलायत में सम्पत्ति-शास्त्र की शिक्षा पाई है। आपके लेख से प्रकट है कि आप इस शास्त्र के बहुत अच्छे ज्ञाता हैं। आशा है, अँगरेज़ी जानने वाले भारतीय विद्वान् इस पुस्तिका को पढ़ कर लाभ उठावेंगे और लेखक महाशय की सूचनाओं को सफल करने की चेष्टा करेंगे। कराची के श्रीयुत आत्माराम बी० ए० ने इस पुस्तक को भेज कर हम पर बड़ी कृपा की। पुस्तक के अन्त में अँगरेज़ी-भाषा की अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकों की नामावली भी है।

※

५—ओंकार प्रेस की पुस्तकें। इस प्रेस ने कृपा करके दो पुस्तकें समालोचना के लिए भेजी हैं। दोनों का आकार मँझोला; छपाई और काग़ज़ साधारण है।

पहली पुस्तक का नाम है—**आत्मवीर सुक़रात**। इसमें ६६ पृष्ठ हैं। मूल्य है ४ आने। इसे पण्डित वृजमोहन शर्म्मा नाम के किसी सज्जन ने लिखा है। अँगरेज़ी में एक पुस्तक है—Trial and Death of Socrates—वह किसी ज़माने में एफ़० ए० में पढ़ाई जाती थी। मालूम नहीं, अब पढ़ाई जाती है या नहीं। शर्म्माजी ने इसी के सहारे आत्मवीर सुक़रात की रचना की है। सुक़रात यूनान का एक नामी महात्मा हो गया है। वह बड़ा ही आत्माभिमानी, सत्यशील, स्थिर-चित्त और तत्त्व-ज्ञानी था। उसी का हाल इसमें है। सुक़रात पर यह अभियोग लगाया गया था कि वह तत्कालीन क़ानून के विरुद्ध नवयुवकों को उभाड़ता है और देवी-देवताओं के सम्बन्ध में ऐसी बातें कहता है जो धार्मिक दृष्टि से नास्तिक्य-पूर्ण हैं। इस कारण उसे प्राणान्त-दण्ड हुआ—उसे ज़हर पिलाया गया। ज़हर उसने प्रसन्नता-पूर्वक पी लिया। पर मरते दम तक वह अपने शिष्यों को निर्भयता-पूर्वक उपदेश देता रहा। साक्रेटिस (सुक़रात) न्याय-शास्त्र का भी बड़ा अच्छा पण्डित था। तर्क-वितर्क में उसका सामना करने वाला उस समय यूनान में कोई न था। ऐसे महात्मा की जीवन-कथा पढ़ना कौन समझदार मनुष्य न पसन्द करेगा?

दुःख है, ऐसे नामी पुरुष का चरित बहुत ही लचर भाषा में लिखा गया। लोग हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए तो ज़ोर ज़ोर से चिल्लाते हैं; परन्तु लेख और पुस्तकादि लिखने के पहले हिन्दी का कोई छोटा सा भी व्याकरण नहीं देख लेते। कुछ लोगों का शायद यह ख़याल है कि हिन्दी-भाषा व्याकरण के नियमों की पाबन्दी से मुक्त है। यह उनकी भूल है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने इस छोटी सी पुस्तक में सैकड़ों जगह व्याकरण पर अत्याचार किया है। शायद के अर्थ में "स्यात्" का प्रयोग करना बहुत ही खटकने वाला है। शर्म्माजी ने अपना नाम तक सही सही नहीं लिखा। शब्द व्रजमोहन ठीक है, "वृजमोहन" नहीं।

दूसरी पुस्तक का नाम है—**महाराणा प्रतापसिंह**। इसकी पृष्ठ-संख्या है १४३; मूल्य वही ।) है। महाराना प्रताप पर हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। अच्छा हो यदि अब कोई लेखक प्रताप के सम्बन्ध में एक गवेषणा-पूर्ण बड़ा सा ग्रन्थ लिखे। इसके लिए बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री मिल सकती है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने टाड साहब के "राजस्थान" के आधार पर इसकी रचना की है। महाराना प्रताप के नाम और काम से प्रायः सभी हिन्दी-सेवी परिचित हैं। अतएव उस सम्बन्ध में कुछ लिखने की विशेष आवश्यकता नहीं।

पूर्व-निर्दिष्ट पुस्तक की भाषा की तरह इसकी भी भाषा दोष-पूर्ण है। इसमें—

(१) "आर्य्य-मित्र सभा ने अपने यहाँ संसार के कतिपय महापुरुषों की जीवनी पर कुछ व्याख्यान रक्खे थे।"

(२) "हिन्दी में कई जीवनी महाराना प्रताप की नाटक उपन्यासों के रूप में हैं।"

इस तरह की दूषित भाषा हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों की लेखनी से निकलना दुःख की बात है। मालूम नहीं, जीवनचरित के अर्थ में "जीवनी" शब्द का प्रयोग क्यों किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक ने बीसवें परिच्छेद के आरम्भ में एक दोहा लिखा है। इसका प्रथमार्द्ध है—

"जननी अरु जन्म-भूमि को बढ़ प्राणहु ते देख"

ऐसा छन्दोभङ्ग-पूर्ण पङ्गुल दोहा न दिया जाता तो क्या कुछ हानि थी? नये नये लेखक यदि अशुद्ध, अस्वाभाविक और बेमुहावरा भाषा लिखें तो वे किसी तरह क्षमा के पात्र भी समझे जा सकते हैं; परन्तु सिद्धहस्त लेखकों की भाषा में मोटी मोटी त्रुटियाँ रह जाने का कारण असावधानता के सिवा और कुछ नहीं। भाषा-शुद्धि की ओर लेखकों को अधिक ध्यान देना चाहिए।

दोनों पुस्तकें, मैनेजर ओंकार प्रेस, इलाहाबाद, को लिखने से मिलती हैं।

६—**संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनस्य प्रथमवार्षिकी निबन्धावली**। हरद्वार में जो पहला संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन हुआ था उसके लिए लिखे गये निबन्धों का संग्रह इस पुस्तक में प्रकाशित है। इसका सम्पादन हरद्वार-ऋषि-कुल के अध्यापक पण्डित—गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने किया है। इसमें संस्कृत-शिक्षा, संस्कृत-भाषा, वेद, वेदाङ्ग, ज्योतिष, प्राचीन दर्शन, मानवजीवन, अर्वाचीन साहित्य और जैन-साहित्य पर अच्छे अच्छे निबन्ध हैं। संस्कृत-भाषा किस प्रकार व्यवहार योग्य हो सकती है, इस एक विषय पर युक्ति-पूर्ण अनेक निबन्ध प्रकाशित हैं। ये निबन्ध विशेष उपयोगी हैं। अर्वाचीन साहित्य से सम्बन्ध रखने वाला निबन्ध भी मनोहर है। पर उसके अन्त में काशी के पण्डितों पर किये गये आक्षेपों की कोई आवश्यकता न थी। उस अंश के बिना भी लेखक महाशय अपना वक्तव्य प्रकट कर सकते थे। अस्तु। यह लेख-संग्रह संस्कृतज्ञों के पढ़ने और शिक्षा-ग्रहण करने लायक़ है।

७—**राजपूत-रमणी**। आकार मध्यम; पृष्ठ-संख्या ६५; टाइप बड़ा; काग़ज़ अच्छा; मूल्य ४ आने; प्रकाशक—बाबू देवनन्दनसिंह, पोईआवाँ, डाकख़ाना औरङ्गाबाद, ज़िला गया—से प्राप्य। इस छोटे से उपन्यास की रचना बाबू युगलकिशोर-नारायणसिंह ने टाड के राजस्थान के आधार पर की है। इसकी मुख्य नायिका एक चन्दावत सरदार की पत्नी है। पुस्तक में उसी के चरित्र-वर्णन से क्षत्रियों की गृहिणियों को सुशिक्षा दी गई है। उसके पति के वृत्तान्त में स्वामिभक्ति का भी चित्र खींचा गया है। और भी कई प्रकार के सदुपदेश इससे मिल सकते हैं।

८—**शारदा**। आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ।=); प्राप्ति-स्थान—हिन्दी-हितैषी कार्यालय, देवरी, ज़िला सागर। पण्डित शिवनाथ शास्त्री एम० ए० ने बँगला में एक कहानी लिखी है। उसका नाम है—"मेजबऊ"। इस कहानी को उस तरफ़ लोगों ने बहुत पसन्द किया है। यह है भी अच्छी। इसमें एक ऐसा सामाजिक दृश्य दिखाया गया है जो स्वाभाविक हो कर शिक्षा-दायक भी है। प्रस्तुत पुस्तक उसी बँगला कहानी का घटाया-बढ़ाया हुआ अनुवाद है। पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी ने इसे लिखा है। आपकी भाषा मज़े की है। परन्तु "बेटा, बहुत हवा की", "पुरा पड़ौस", "छुटपन" इत्यादि मुहावरे कान को खटकते हैं।

९—**बालोपदेश**। पृष्ठ-संख्या ६६, मूल्य ४ आने, लेखक—पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०, काल-भैरव, बनारस। मिश्रजी काशी में हरिश्चन्द्र स्कूल के हेडमास्टर हैं। हिन्दी के बड़े प्रेमी और बड़े अच्छे लेखक हैं। अध्यापन-कार्य्य में भी आप बड़े निपुण हैं। अपने स्कूल के छात्रों का चरित्र सुधारने के लिए आपने कथा के रूप में कुछ दिन तक उन्हें सदुपदेश दिया। उन्हीं उपदेशों का यह संग्रह है। भाषा सीधी-सादी है। उपदेशों में उदाहरण-द्वारा दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बातें बताई गई हैं। अच्छी पुस्तक है। छोटे-बड़े सभी के पढ़ने लायक़ है।

१०—**द्रोणाचार्य्य**। पृष्ठ-संख्या १०१, मूल्य ६ आने, लेखक—पण्डित रामरत्न त्रिपाठी, प्रकाशक—भीष्म एंड ब्रादर्स, पटकापुर, कानपुर। प्रकाशकों से ही प्राप्य। इसमें द्रोणाचार्य्य का चरित है। महाभारत तथा अन्य कई पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है। बीच बीच में पद्य भी हैं। भाषा सरल है। अपने ही नहीं, विदेशी भी, वीरों, महात्माओं और अन्य विख्यात पुरुषों के जीवनचरित पढ़ने से अनेक लाभ हो सकते हैं। यह तो अपने ही देश के एक ब्राह्मण वीर-पुङ्गव का चरित है। अतएव इसकी महत्ता का तो कहना ही क्या है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११—श्रीरामनामामृत। इसके प्रकाशक हैं श्रीयुत बाबू रामकुमार भगत। यह सचित्र है। आरम्भ में कोई १८ पृष्ठों में श्रीराम-नाम का माहात्म्य और उसके बाद कोई २१० पृष्ठों में "श्रीराम" का पिष्टपेषण है। "श्रीराम" नामों की संख्या है—२१६१०। ऐसी पुस्तक प्रकाशित करना व्यर्थ रुपया बरबाद करना है। पुस्तक के अन्त में श्रीराम की महिमा की सूचक स्तुति भी है। पुस्तक मुफ़ मिलती है। रामचन्द्र के जिन भक्तों की इच्छा हो वे इस पते से मँगा लें—श्रीयुक्त बाबू द्वारकादास केदारबक्स, ४ चीनी पट्टी, कलकत्ता।

※

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) ज्योतिष-संग्रह
(२) भाषा लीलावती } लेखक, यतिवर मैथिल-स्वामी, दुर्गाकुण्ड, काशी।

(३) चतुर्दश-नियमावली
(४) हिन्दी जैन-शिक्षा, चतुर्थ भाग
(५) नव तत्त्व } प्रकाशक, श्रीआत्माराम-जैन-पुस्तक-प्रचारक मण्डल, देहली।

(६) सीता-प्रलोभन—लेखक, पण्डित महादेवप्रसाद वाजपेयी, कनकपुर, फ़ैज़ाबाद।

(७) सप्त-व्यसन-निषेध—प्रेषक, महाशय शेरसिंह जैन, जैन-स्कूल, बीकानेर।

(८) चम्पा
(९) बाल-विवाह का एक हृदयद्रावक दृश्य } लेखक, बाबू कृष्णलाल वर्म्मा, गोहाना (रोहतक)

(१०) कवित्त-रत्न-प्रकाश—प्रकाशक, पण्डित मातादीन चौबे, औरैया।

(११) गड़ा धन—प्रकाशक, एक-आना-पुस्तक-माला-कार्य्यालय, आगर (मालवा)

(१२) वेद-धर्म्म-व्याख्यानम्—लेखक, पण्डित मधुसूदन शर्म्मा, जयपुर।

(१३) संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनस्य द्वितीय वार्षिक कार्य्य-विवरणम्—प्रकाशक, संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन-कार्य्यालय, हरद्वार।

(१४) गौतमीय-महाकाव्यम्—प्रेषक, चन्द्रसिंह-सूरि, जैन-ग्रन्थ-माला-कार्य्यालय, बनारस।

(१५) सच्चा उपन्यास, दूसरा भाग—लेखक, बाबू वल्लभदास वर्म्मा, कराची।

(१६) धान की खेती
(१७) लाख की खेती } प्रकाशक, कार्य्याध्यक्ष, कृषिभवन, इलाहाबाद।

(१८) सेवाधर्म्म—प्रकाशक, कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, आरा।

(१९) आदर्शचरित—लेखक, पण्डित अशरफ़ी मिश्र, भागलपुर।

(२०) विद्यार्थियों के कर्तव्य—प्रकाशक, महाशय शिवजीलाल काला, इन्दौर।

(२१) श्रावकधर्म्मदर्पण—प्रकाशक, मुंशी मोतीलाल रांका, ब्यावर।

(२२) गुप्त जादू-शिक्षा—लेखक, कुँवर महताबसिंह वर्म्मा, आगरा।

(२३) भक्त-विनय—लेखक, बाबू नाथूराम रामदयाल, सागर।

(२४) भगवान ऋषभदेव का जीवनचरित्र—प्रकाशक, आत्माराम जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला।

चित्र-परिचय।

कमलकुमारी।

इस संख्या के रङ्गीन चित्र का नाम है—कमलकुमारी। इसके भी निर्म्माता कलकत्ते के चित्रकार श्रीयुत बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा हैं। चित्र का भाव यह है—जिस तरह मनुष्य का मन ईश्वर के रचे हुए संसाररूपी चित्र में भ्रमण किया करता है उसी तरह कमलकुमारी नामक विचारशील वधू के नेत्ररूपी भ्रमर कमलरूपी भारतवर्ष में भ्रमण कर रहे हैं और परमात्मा के चमत्कार देख रहे हैं। गुलाब जैसे इँगलेंड का सूचक चिह्न माना गया है। वैसे ही कमल भारतवर्ष का, क्योंकि कमल विशेष करके इसी देश में अधिक होता है। कमलकुमारी के लहँगे का रङ्ग हरा है, जैसा कि कमल के पत्ते का होता है। इससे चित्रकार का आशय यह जान पड़ता है कि जल के आसरे रहने पर भी कमलपत्र जैसे जल से निर्लिप्त रहता है वैसे ही पत्ररूपी देहाधार के आसरे रह कर भी शरीरस्थ आत्मा को उससे निर्लिप्त रहना चाहिए तथा परमात्मा के अनन्त चातुर्य्य के सूचक चमत्कार देखते हुए उसी में लीन हो जाना चाहिए।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग १८, खण्ड १] मार्च, १९१७ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २०७

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग से छप कर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची ।

पृष्ठ

(१) हमारा प्यारा भारतवर्ष—[ले०, पाण्डेय लोचनप्रसाद ११३
(२) चार्ल्स डारविन—[लेखक, श्रीयुत श्यामसुन्दर जोशी ११३
(३) ज़बान भाषा [उद्धृत] ११६
(४) फलित-ज्योतिष—[लेखक, पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ११८
(५) मनुष्यते !—[लेखक, "सनेही"... ... १२४
(६) ईश्वर-गीता—[ले०, लाला कन्नोमल एम० ए० १२६
(७) ट्राम चलाने वाली—[ले०, बाबू जगद्विहारी सेठ, बी० ए०, (केम्ब्रिज) १२८
(८) व्यवहार द्वारा भाषा-शिक्षा—[लेखक, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, काव्यतीर्थ ... १३०
(९) कभी कुछ और कभी कुछ—[लेखक, श्री-ठाकुर गोपालशरणसिंह १३३
(१०) श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना—[लेखक, सेंट निहालसिंह, लन्दन १३४
(११) कुमारी हेलेन केलर—[लेखक, पण्डित गङ्गाशङ्कर मिश्र, बी० ए० ... ... १३५
(१२) दृढ़ता—[लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय १३८
(१३) श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस की पुस्तकें [१] ... १४०
(१४) पुरातत्त्व-विभाग का वार्षिक विवरण—[लेखक, पण्डित देवीदत्त शुक्ल १४१
(१५) हमें चाहिए—[ले०, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय १४३
(१६) गायकवाड़ की पूर्वीय भाषाओं की पुस्तक-माला १४४
(१७) ग्रामोफ़ोन—[ले०, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ०, ... १४७
(१८) हृदय—[लेखक, पाण्डेय मुकुटधर ... १५१
(१९) कालिदास के प्रति—(अनुवादक, श्रीयुत पारसनाथसिंह, बी० ए० ... ... १५२
(२०) विविध विषय १५२
(२१) पुस्तक-परिचय १६४
(२२) चित्र-परिचय १६८

चित्र-सूची ।

१—व्रज में होली (रङ्गीन) ।
२—श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ० ।
३—एडिसन साहब और उनका टीन का फ़ोनोग्राफ़ ।
४—एडिसन साहब और उनका तैयार किया हुआ फ़ोनोग्राफ़ ।
५—एडिसन साहब अपने पुस्तकालय में बैठे हुए ग्रामोफ़ोन का रेकर्ड देख रहे हैं ।
६—परलोकवासी गोस्वामी श्री पन्नालालजी महाराज ।

नई पुस्तकें ! नई पुस्तकें !!

हिन्दी में

किरातार्जुनीय

(पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित)

महाकवि भारवि की यह वही पुस्तक है जिसकी धूम सैकड़ों वर्षों से संस्कृत-साहित्य में मच रही है। द्विवेदीजी महाराज की कृपा से केवल हिन्दी भाषा से ही परिचय रखने वाले सज्जन भी इसका ख़ूब रसास्वादन कर सकेंगे। इसमें राजनीति, धर्मनीति आदि कूट कूट कर भरी पड़ी हैं। पुस्तक अनुपम है, और ऐसी मनोरञ्जक है कि एक बार शुरू करने से विना ख़तम किये चैन नहीं पड़ता। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर। मूल्य केवल १॥)

मानस-प्रबोध

(लेखक, पण्डित विश्वेश्वरदत्त शर्मा)

यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। इसमें तुलसीकृत रामायण के वाक्य-प्रयोग, शब्द-प्रयोग आदि उदाहरण देकर ऐसी ख़ूबी से समझाये गये हैं कि इसके पढ़ने से गोस्वामीजी के ग्रन्थों को समझने में बड़ी आसानी होगी। पुस्तक मौलिक है। रामायण के प्रेमियों को अवश्य ख़रीदनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या तीन सौ से ऊपर। मूल्य केवल १)

मिलने का पता :—

मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

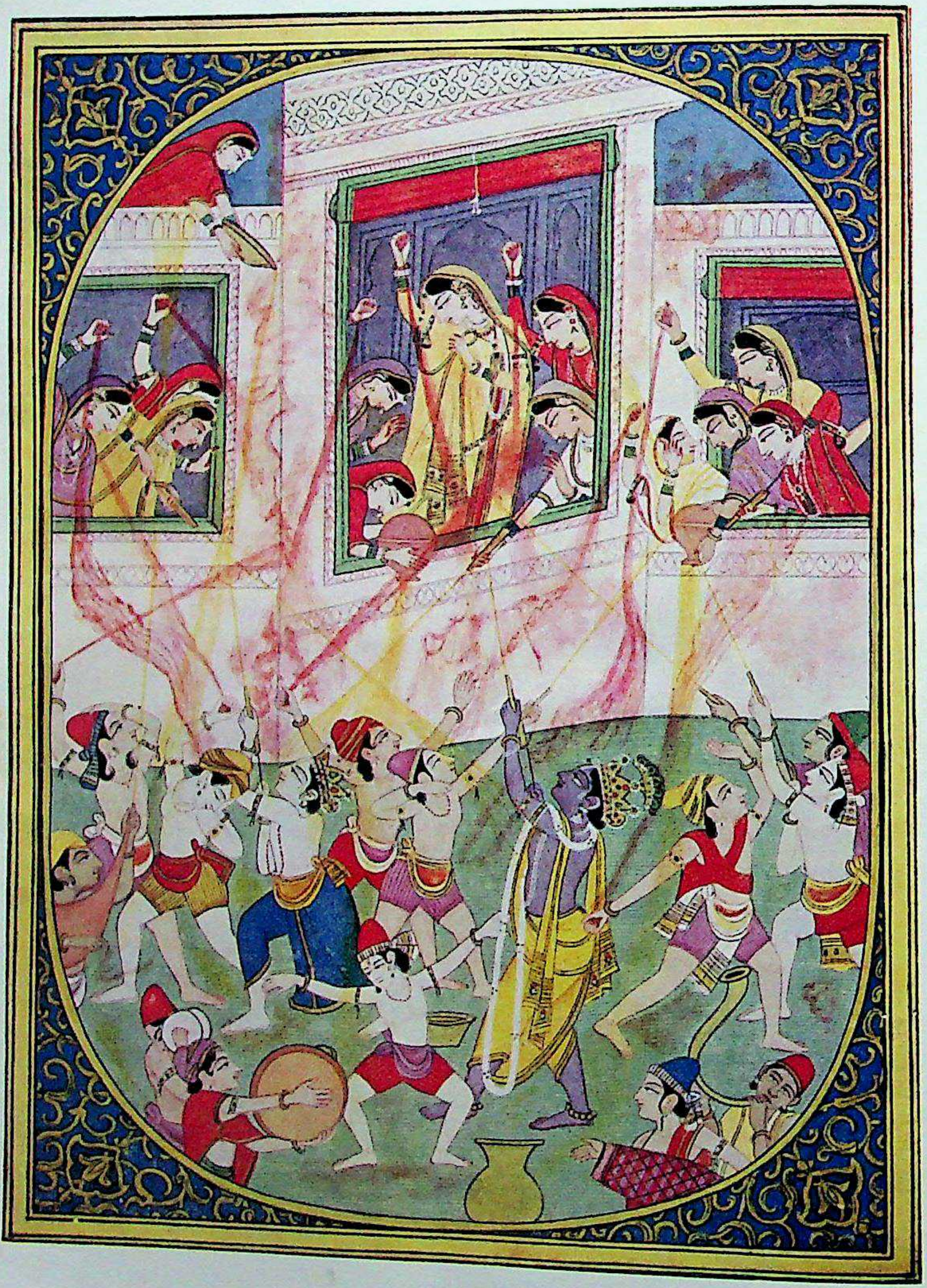

व्रज में होली।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

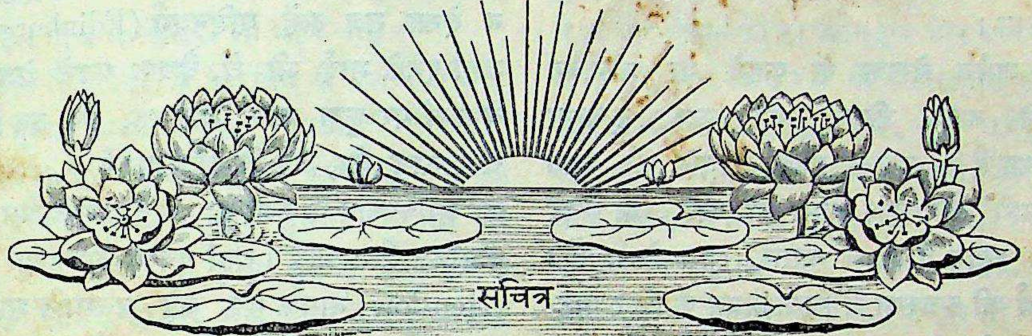

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग १८, खण्ड १] मार्च १९१७—फाल्गुन १९७३ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २०७

हमारा प्यारा भारतवर्ष।

हमारा प्यारा भारतवर्ष।
आदि-सभ्यता-सद्म, पुण्य का पद्म, विश्व-आदर्श ॥१॥
राम-राज-सुख-सेतु, सगर-कृति-केतु, प्रजा का हर्ष।
सच्छासन की सृष्टि, शान्ति-सद्वृष्टि, आर्य-उत्कर्ष ॥२॥
स्वतन्त्रता की खान, जाति-अभिमान, ज्ञान-भाण्डार,
ऋषि-समाज की, शुभ सुराज की, भूमि शील-श्रृङ्गार ॥३॥
देश-भक्ति का, प्रजा-शक्ति का निलय, न्याय-अवतार,
अघ-अनीति का ईति-भीति का नाशक, विगत-विकार ॥४॥
रवि-प्रताप का कवि-कलाप का केन्द्र, प्रकृति-छवि-धाम,
शिव-सुरेश का बल-विशेष का देश-तीर्थ अभिराम ॥५॥
दीनबन्धु का दयासिन्धु का प्रेम-निकुञ्ज विशाल,
बल निर्बल का, शासक खल का, विश्व-सखा गोपाल ॥६॥

पाण्डेय लोचनप्रसाद

चार्ल्स डारविन।

चार्ल्स राबर्ट डारविन इँगलेंड के बड़े प्रसिद्ध प्राणि-विद्या विशारद हो चुके हैं। इनका जन्म शिरूसबरी-नामक स्थान में, १२ फ़रवरी सन १९०५ ईसवी को, हुआ। इनके पिता उसी नगर में वैद्यक कार्य्य किया करते थे। वे रोगियों से सदा सद्व्यवहार करते थे। इस कारण उनका अच्छा मान था। उनकी आय भी अच्छी थी। अतएव उन्होंने बहुत सा धन सञ्चित कर लिया था। यही कारण है जो डारविन अपने सब वैज्ञानिक कार्यों को, किसी की आर्थिक सहायता के बिना, अपने ही धन से निर्विघ्नता-पूर्वक कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डारविन का हृदय बाल्यावस्था से ही विज्ञान की ओर जो इतना आकर्षित था और छोटी अवस्था से ही इनको जो इतना आनन्द आता था उसका कारण इनके पिता नहीं, बल्कि इनके पितामह थे। इनके पितामह ने दि लव्ज़ आव् दि प्लेंट्स (The Loves of the Plants) नामक एक अर्द्ध-वैज्ञानिक पुस्तक लिखी थी। उन्हीं से डारविन को विज्ञान का चसका लगा।

एक जर्मन लेखक के कहने पर डारविन साहब ने अपने जीवन का कुछ वृत्तान्त स्वयं लिखा है। उससे इनके जीवन की मुख्य मुख्य घटनायें और अन्य बहुत सी बातें, जो अपर लेखकों के ध्यान में भी न आतीं, ज्ञात होती हैं। ये आठ वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन के लिए पाठशाला भेजे गये। पाठशाला के सब शिक्षक, और इनके पिता भी, इनको एक सामान्य बुद्धिवाला और साधारण बालक समझते थे। क्योंकि इनको लैटिन, व्याकरण आदि रटने में आनन्द न आता था और उन दिनों इन्हीं का बहुत प्रचार था। इसे ये स्वयं भी स्वीकार करते हैं। इनको बचपन से ही प्राकृतिक वस्तुओं—वन वन विचर कर प्रकृति का अध्ययन करने और चूहे तथा छोटे छोटे जीवों को पकड़ कर प्राणि विद्या का अध्ययन करने इत्यादि—के अध्ययन करने में बड़ा ही आनन्द आता था। इन्हीं दिनों में आखेट करते समय इन्होंने प्रकृति की अनुपम सुन्दरता को देखा, जिसका चित्र इनके हृदय में सदा ही अङ्कित रहा। इस विषय में वे लिखते हैं, "मेरे करुण-हृदय पिता ने मुझे नाना प्रकार से, और बहुत बार, मृगया और अकारण जीव-हत्या के दोष बताये और मुझे इस प्रकार समय-नाश करने से बहुत रोका; यहाँ तक कि कभी कभी उन्होंने मुझे कठोर शब्द भी कहे। परन्तु मुझ पर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ता था; क्योंकि मुझ पर तो और ही धुन सवार थी।" ये इन दिनों अपने घर ही पर रसायन-शास्त्र का भी कुछ अध्ययन किया करते थे, जिससे इनके पिता और शिक्षक इन पर और भी क्रुद्ध हुए। इनके सहपाठी भी इनको "गैस गैस" (Gas ! Gas !) कह कर चिढ़ाया करते थे। पर ये उनकी ओर कुछ भी ध्यान न देते और अपने कार्य्य अपने इच्छानुसार करते रहते।

जब इनके पिता ने इन्हें शिरुसबरी में कुछ करते न देखा तब इन्हें एडिनबर्ग (Edinburgh) को, जहाँ इनके भाई भी थे, वैद्यक पढ़ने भेज दिया। ये वहाँ पर कुछ काल तक रहे; पर उन दिनों की चीर-फाड़ को, जब कि क्लोरोफार्म (Chloroform) का आविष्कार न हुआ था, न देख सके और वहाँ से केम्ब्रिज लौट आये। यहाँ पर ये अध्यापक हैन्सलो (Henslow) नामक एक बड़े वनस्पति-शास्त्रज्ञ के पास अध्ययन करने और विद्यालय में उनके व्याख्यानों को भी बड़े चाव से सुनने लगे। इस तरह होते होते उन्होंने एक दूसरे के गुणों को पहचान लिया। तब दोनों में बड़ी गाढ़ी मित्रता हो गई। वहाँ पर इन्होंने बहुत से मनुष्यों को वृक्षों की काई और जड़ तथा कीचड़ आदि को एकत्र करने में लगा रक्खा था। उनके अध्ययन से इन्होंने बहुत से अपरिचित जीवों का ज्ञान संसार को कराया। इससे इनका नाम दिन दिन प्रसिद्ध होने लगा। इनका कहना है—"मुझे Stephens' History of British Insects" में "Captured by C. Darwin Esqr." अर्थात् "स्टेफन साहब की हिस्ट्री आव् ब्रिटिश इनसेक्ट्स" नाम की पुस्तक में "सी॰ डारविन द्वारा पकड़े गये" लिखा देख कर इतना आनन्द हुआ जितना किसी कवि को अपनी प्रथम कविता को मुद्रित देख कर भी न हुआ होगा।

केम्ब्रिज में अपने अध्ययन-काल की एक घटना का वर्णन डारविन साहब ने इस प्रकार किया है—"एक दिन मैं एक बड़े पुराने पेड़ को खुरच रहा था। उसमें मुझे दो बड़े बड़े विचित्र गुबरैले दिखाई दिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने उन दोनों को अपने दोनों हाथों से उठा लिया। इतने में मुझे एक और विचित्र गुबरैला दिखाई पड़ा। इस पर शीघ्रता में मैं न सोच सका कि उसे क्या करूँ। इसलिए मैंने एक को मुख में रख कर दूसरे की ओर हाथ बढ़ाया। परन्तु मेरे मुखवाले गुबरैले ने कुछ दाहक, अर्थात् जलानेवाला, बड़ा गरम जल सा छोड़ा। तब मैंने उसे हठात् मुँह से डाल दिया। इस बीच में तीसरा भी भाग गया।"

विज्ञान-विशारदों में डारविन के इतना प्रसिद्ध होने का मुख्य कारण इनका "बिगल" (Beagle) नामक जहाज़ द्वारा संसार-भ्रमण करना है। क्योंकि इनको अपनी प्रधान प्रधान पुस्तकें लिखने की सामग्री इसी भ्रमण में प्राप्त हुई। यह भ्रमण १८३१ से १८३६ ईसवी तक होता रहा। स्वदेश लौटने पर आपने अपने भ्रमण का वृत्तान्त प्रकाशित किया, जो अत्यन्त मनोरञ्जक है।

परन्तु इस भ्रमण से इनका आरोग्य बिगड़ गया, जो मरणपर्य्यन्त फिर न सुधरा। इस कारण ये लन्दन से १६ मील दूर एक स्थान में एकान्त-वास करके अपना कार्य्य करने लगे। ये १८३८ से १८४१ ईसवी तक जियोलोजिकल सोसाइटी (Geological Society) के मन्त्री का कार्य्य करते रहे। वहाँ इनकी मैत्री लायल (Lyell) और हुकर (Hooker) साहब से हो गई।

इनकी सबसे प्रसिद्ध एवं मुख्य पुस्तक ओरिजन आव् स्पिशीज़, १८५९ के नवम्बर मास में, प्रकाशित हुई। इसको लिखने का कारण इन्होंने इस प्रकार बताया है—"जब मैं १८३८ में—माल्थस आन पापुलेशन (Malthus on Population)—नामक पुस्तक पढ़ रहा था तब मेरे मन में नाना प्रकार की भावनायें उठीं। पर मैंने उन्हें अपने स्वदेश-वासियों के विचारों की प्रवृत्ति और अपने धर्म के ध्यान से लिखने का साहस न किया। पर १८४२ में मैंने अपने स्वदेशवासियों के विचारों और प्रचलित धर्म पर कुछ भी ध्यान न देकर, किन्तु सत्य का पक्ष लेकर, उन भावनाओं को पैंतीस पृष्ठों में लिख लिया। फिर उन्हीं को बढ़ा कर १८४४ में मैंने दो सौ तीस पृष्ठों की एक पुस्तक लिखी जो अब भी मेरे पास है।" इसी पुस्तक को फिर इन्होंने, कोई पन्द्रह वर्ष उपरान्त, प्रकाशित किया। यद्यपि इस पुस्तक ने मनुष्यों के हृदय से कुछ पक्षपात दूर कर दिया और वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया तथापि ये सर्व-साधारण के कटाक्षपात से न बचे। कोई इनको पागल, कोई मूर्ख, कोई धर्म-द्रोही और कोई कुछ और बताने लगा। जितने मुँह उतनी ही बातें इनके विषय में सुनी जाने लगीं। इतना होने पर भी इस पुस्तक की १२५० प्रतियों का प्रथम संस्करण तो मुद्रित होने के दिवस ही और ३००० प्रतियों का दूसरा संस्करण भी कुछ काल उपरान्त बिक गया। इस पुस्तक का अनुवाद योरप की कितनी ही भाषाओं में—स्पेनिश (Spanish) पोलिश (Polish), बोहेमियन (Bohemian) और रशियन (Russian) सी जटिल भाषाओं तक में—हो गया है। सभ्य संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में इनकी पुस्तक के अनुवाद पाये जाते हैं।

इनके रचित प्राणियों और वनस्पतियों से सम्बन्ध रखने वाले मुख्य मुख्य ग्रन्थ ये हैं—The Origin of Species, The Descent of Man, The Variations of Plants and Animals under Domestication, Worms, Different Forms of Flowers इत्यादि। परन्तु इनकी प्रथम दो पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। उनका अध्ययन करके उनके आधार पर भिन्न भिन्न विद्वानों ने कितने ही ग्रन्थ लिख डाले हैं।

डारविन को अपनी अस्वस्थता के कारण लन्दन छोड़ना पड़ा। वे अपने गाँव से लन्दन जाया भी कम करते थे। वे अपने ही गाँव में अपने वैज्ञानिक कार्य्य आनन्द से किया करते थे। अपनी नीरोगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक न बिगड़ने देने के लिए और प्रकृति का अध्ययन करने के लिए ये वृद्धावस्था तक भी भ्रमण किया करते थे। यहाँ तक कि ये बरसात के दिनों में भी घर पर न ठहरते थे। इनका स्वभाव बालकों से बहुत मिलता-जुलता था। इनको बालकों के साथ खेलने में, मिस्टर ग्लैडस्टन की तरह, ख़ूब आनन्द आता था। बालक भी इनको ढूँढ़-ढाँढ़ कर अपने साथ खेलने के लिए ले आते थे। ये मिठाई बहुत खाया करते थे।

१९ अप्रेल १८८२ को इनकी मृत्यु हुई। उस दिन भी वैज्ञानिकों में इनका बड़ा नाम हो चुका था। समस्त सभ्य संसार में हलचल मचा देनेवाली कितनी ही अनुपम बातों के ये आविष्कारक थे। पर ये सदा ही दुर्बल और रोगी रहे। यदि ये आरोग्य होते तो न जाने संसार का कितना उपकार करते। तो भी इन्होंने संसार का बहुत उपकार किया, जिसके लिए संसार इनका सदा ही कृतज्ञ रहेगा। यह सब इनके असीम धैर्य्य, कार्य्य-तत्परता और निदिध्यास का फल है।

श्यामसुन्दर जोशी

ज़बान भाषा।

(नवंबर १९१६ के "ज़माना" से उद्धृत)

दिल ब यादे नौ गुले शुद
हम नवाये अन्दलीप।
.ख़ुश रफ़ीक़े गश्त पैदा
अज़ बराये अन्दलीप॥

हर शख़्श ज़बान रखता है और सिवाय इसके कि कोई गुङ्गा हो हर शख़्श बोलता है। लेकिन हर शख़्श की ज़बान बोलने और गुफ़्गू में एकसी कैफ़ियत नहीं रखती। बाज़ लोग बोलने में शीरीं-गुफ़्तार और शीरीं-सुख़न होते हैं। बोलने में गोया फूल झड़ रहे हैं। एक मामूली बात भी वह लज़्ज़त और वह शीरीनी रखती है कि सुनने वाले हलावते तलाक़त से मुअस्सिर ही नहीं होते, बल्कि मुतअज्जिब होते हैं। कुदरत ने ज़बान में कैसी हलावत और कैसा असर दिया है। लेकिन ख़िलाफ़ इसके बाज़ लोग बोलते हैं। ऐसे दुरुश्त होते हैं कि सुनने वाले तौअन् करहन् बात सुनते हैं। तअस्सुर का तो ज़िक्र ही क्या।

एक शख़्श मशहूर गवैया एक तरफ़ अलापता है और दूसरी तरफ़ एक मामूली अनाड़ी दो चार बोल बोलता है। चूंकि यह मामूली और अनाड़ी कुदरतन् ख़ुशगुलू रखता है इस वास्ते जो असर उसकी आवाज़ और लय का होता है वह मशहूर गवैये की आवाज़ का नहीं होता। कुछ शक नहीं इल्म और फ़न के रङ्ग में बएतबार नज़ाकतहाय मूसीक़ी गवैये की सदायें एक सनदी क़ीमत रखती हैं। लेकिन तबाये पर जो सिक्का एक .ख़ुशगुलू की आवाज़ बिठाती है वह उस गवैये की क़िस्मत में कहाँ।

ईं सआदत बज़ोर बाज़ू नेस्त।

दुनिया में बीसों बाजे हैं लेकिन बाज़ बाजों का असर जो तबाये पर होता है वह हर बाजे के हिस्से में नहीं आता। बांसुरी की लै जो असर करती है और गुदाज़दिल उससे जिस रङ्ग में और जिस क़दर मुतअस्सिर होते हैं वह किसी और बाजे को कहाँ हासिल। यही कैफ़ियत ज़बानों की भी है। बाज़ ज़बानें दुनिया में बावजूद इस बात के भी, उनमें इल्मी सामान बहुत कुछ है, शीरीनी और हलावत में ऐसी शोहरत नहीं रखतीं जो बाज़ दूसरी ज़बानें रखती हैं। जिस तरह तलाक़त की हलावत एक .ख़ुदादाद बात है उसी तरह ज़बानों की तरकीबी सूरतें और तलफ़्फ़ुज़ाना कैफ़ियतें भी .ख़ुदादाद ही होती हैं। योरप की ज़बानों में फ़रानसीसी ज़बान मुनासिबतन् एक शीरीं ज़बान है और जरमन ज़बान एक करख़्त ज़बान। अजमी ज़बानों में फ़ारसी ज़बान एक शीरीं ज़बान है। जिस तरह तलाक़त की हलावत एक कुदरती बात है उसी तरह ज़बान की हलावत भी एक .कुदरती अम्र है। ज़बानों की हलावत और तासीरात बलीग़ा अगरचे मामूली बातचीत और गुफ़्गू में भी खुलते ज़ाहिर व मालूम होते हैं, लेकिन ज़ियादहतर इज़हार उस वक़्त होता है जब ख़ास तरकीब के मातहत उनसे काम लिया जावे। मुख़्तलिफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परेशान मज़ामीन जब बांधे जाते हैं तो वह ज़बानें जो अपने अन्दर शीरीनी और हलावत नहीं रखती हैं ईफाय इज़हार हलावत असर से क़ासिर रह जाती हैं। लेकिन वह ज़बानें जो शीरीनीं रखती हैं मुख़तलिफ़ और परेशान ख़यालात की तरतीब और बन्दिश फरहत इस .ख़ूबसूरती से अदा करती हैं कि हुस्न बयान और भी ज़ेबा और खुश आयन्द हो जाता है। शायरी और नज़्म में मज़ामीन आलिया और मक़ासिद जमीला व परेशान का बांधना अगर एक तरफ़ शायर के हुस्न तब्अ और जामियत मालूमात व इन्तख़ाब नादिर का मुहताज है तो दूसरी तरफ़ .ख़ूये ज़बान की जामियत बस्तगी और नदरत बयान और बसात का भी ख़्वाहाँ है। बेशक शायर तअस्सुर के अपने हुस्न बयान के भी मज़ामीन बहुत कुछ मुहताज होते हैं लेकिन असल .ज़रूरत वसात और जामियत .ज़बान की होती है। आला से आला शायर भी उस .ज़बान में जो वसात और जामियत नहीं रखते, नादिर से नादिर मज़ामीन एक जज़बे के साथ बयान नहीं कर सकता। .ज़बान एक तरफ़ है अगर .ज़र्फ़े लसां मौज़ूं .ज़रफ़ियत नहीं रखता तो हुस्न मज़ामीन किस तरह उसमें .ख़ूबी के साथ आ सकते हैं और किस तरह मुख़तलिफ़ क़िस्म के ख़यालात के मजमूये की उसमें समाई हो सकती है। न सिर्फ़ गुंजाइश की ही ज़रूरत है बल्कि उस हलावत और उस तासीर और जज़्ब की भी जो एक दिलकश .ज़बान के अनासिर लाज़मिया हैं। बाज़ .ज़बानें समाई भी रखती हैं लेकिन उनमें वह कशिश, वह जज़्ब, वह तासीर, वह हलावत और वह .ख़ुशायन्दगी नहीं होती जो होनी चाहिए। यह तमाम बातें बाज़ वक़्त ऐसी अजूबा और नादिर मालूम होती हैं। उन्हें ब अलफ़ाज़े दीगर .क़ुदरती बातों और .क़ुदरती मवाद से ताबीर करना ज़ियादह .ज़ेबा मालूम देता है। लिखने वाले भी .ज़बान के एतबारात से यही कैफ़ियत रखते हैं।

इसमें शक नहीं कि तासीरात ज़बान व जज़्बात ज़बान व दिलबस्तगी ज़बान का पहलू तफ़हीम ज़बान से भी एक हद तक वाबिस्ता है लेकिन इसके साथ ही यह भी कहा जावेगा कि असल जज़्ब और असल तासीर उस ज़बान में है जो बग़ैर तफ़हीम के भी बएतबार अपने हुस्न तलफ्फ़ुज़ और हुस्न अदा के कानों को प्यारी, दिल व दिमाग़ को महबूब व मरग़ूब मालूम हो। क्या तुम देखते नहीं हो कि बाज़ ज़बानें क़ौल लब और मज़ामीन अलग रख कर कानों में भली नहीं सुनाई देतीं। और बाज़ बावजूद नुक़्स मज़ामीन के भी दिल पर असर करतीं और कानों को भली मालूम होती हैं। एक तरफ़ पश्तो और एक तरफ़ नारी बोल कर देखो कि दोनों का सुनने वालों पर कैसा असर होता है। यह बात भी किसी हद तक हलावतुस्सना के इमतियाज़ के लिए एक अच्छा मियार है गो यह फ़ैसलाकुन न हो मगर ताबीर रङ्ग में इसकी भी अच्छी क़ीमत है।

भाषा ज़बान में भी यह ताक़त और यह जज़्ब दिलकश .ख़ुसूसियत से मौजूद है कि उसकी तलाक़त एक ख़ास हलावत रखती है। न सिर्फ़ हलावत बल्कि इस क़दर बामैयत भी कि उनसे वजदानी अदक़ मज़ामीन ख़ुसूसन् वह मज़ामीन जो दिल व दिमाग़ के वास्ते मुअस्सिराना पैराये में एक वाबस्तगी और लज़ूम रखते हों ऐसे तौर पर फिलस्सफाना रङ्ग में तबाये पर असर अफ़ग़न हो सकती कि नव्वे फ़ी सदी दिल व दिमाग़ हदफ़े असर होकर .ख़ुद ब ख़ुद उसकी तरफ़ खिँच आयें। न सिर्फ़ यही बात बल्कि यह ही फ़र्ते असर और तफ़ौवक जज़्ब की बदौलत वह उस लज़्ज़त और उस दिलचस्पी और दिलावेज़ी का इज़हार मुश्किल से कर सकता जो उनका दिल व दिमाग़ रफ़ा रफ़ा उस हुस्न बयान और हुस्न नज़्म से इक्तबास कर रहा है और बजाय यहाँ के उन पर ख़ुद बख़ुद एक ऐसा आलम महवियत तारी हो रहा है जो एक वजदानी सरूर की एक ज़िन्दा तफ़सीर और मुअस्सिर तसवीर है। अगर आप भाषा के हुस्न बयान की मुँह बोलती तसवीर देखना चाहते हैं तो दायरतुलअदब देहली से एक जिल्द किताब "जज़बात भाषा" मँगवा कर देखनी चाहिए। यह किताब हज़रत नयाज़ फतेहपूरी की जज़्बात इल्मिया और मुक्तज़ियात अदबिया का एक क़ीमती दिलावेज़ और ज़िन्दा नमूना है। हज़रत नयाज़ ने तअस्सुरात भाषा से मुतअस्सिर होकर मुख़्तलिफ़ नमूने भाषा शायरी के देकर यह साबित किया है कि ज़बान भाषा में किस दर्जे का असर और कशिश है और मुख़तलिफ़ मज़ामीन किस .ख़ूबसूरती और किस जामियत से भाषा में अदा हो सकते हैं। नाज़रीन को इस किताब के पढ़ने से यह बातें ज़ेहननशीन हो जायँगी कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अ) भाषा ज़बान बलेहाज़ तासीरात कैसी ज़बान है ।

(ब) भाषा में मुख़्तलिफ़ मज़ामीन ख़सूसन् वह मज़ामीन जिनमें इश्क़ व उलफ़त या उम्मेद का बयान होता है किस जामीयत से समा सकते हैं ।

(ज) भाषा के अलफाज़ और मानी में क्या कुछ निसबत और कैसी कशिश होती है ।

(द) हिन्दोस्तान के फ़ारसी और उर्दू शायरों ने भाषा से क्या कुछ हासिल किया और कहाँ तक उनकी बेतवज्जही रही और इस बेएतनाई का उर्दू इल्म अदब पर क्या असर पड़ा ।

(ह) इस मौजूदा कमी की तलाफ़ो कैसे हो सकती है या कैसे होनी चाहिए ।

हम इस बात के मोतरिफ़ हैं कि बाज़ शायरों और बाज़ मुसलमान मुअर्रख़ीन ने हिन्दी और भाषा की जानिब अपने मरते वक़्त में तवज्जुह की और इनकी अदबी दुनिया भाषा के जवाहिरात और ख़ूबियों से मुस्तफ़ीद हुई । लेकिन बहैसियत मजमुई उर्दू शायरी और उर्दू अदब लाई (?) भाषा से महरूम ही रहा और अब तक महरूम है । अगर हमारे और शायरों का काफ़ी हिस्सा इस तरफ़ मुतवज्जेह होता तो इस वक़्त उर्दू शायरी के एक बड़े हिस्से की सूरत व शक्ल कुछ और होती और हमें ख़ुशी से यह कहने का मौक़ा मिलता कि हमारा उर्दू इल्म अदब उस ज़बान की ख़ूबियों, तलाज़मात, इस्तेआरात और दिलावेज़ियों से भी ख़ाली नहीं रहा जो उसकी महज़ एक हमसाया ज़बान ही नहीं है बल्कि एक ऐसी ज़बान है जिसका उर्दू पर एक मादराना हक़ भी है । जब उर्दू की हिन्दोस्तान में दाग़बेल पड़ी तो उस वक़्त जहाँ फ़ारसी और अरबी से उर्दू दो चार हुई तो हिन्दी और भाषा की गोद में भी उसे आराम हासिल करने का मुद्दतों मौक़ा मिला । उर्दू की डिक्शनरी ज़रा ग़ौर से देखो, हिन्दी और भाषा का क़ब्ज़ा उसमें किस क़दर है । उस क़ुदरती फ़ैज़ के मातहत जो हमेशा एक जदीद ज़बान के वास्ते एक ज़रिया और सहारा दूसरी ज़बानों से इख़्तलात का होता है उर्दू ज़बान भी जब निकली तो सबसे अव्वल उसका साथ भाषा ही से पड़ा । उर्दू ज़बान क्या है भाषा का एक ऐसा मुजस्सिमा जिसमें फ़ारसी अरबी और अँगरेज़ी के मौज़ूँ हीरे और जवाहिरात जड़े हुए हैं । हज़रत नयाज़ ने जज़बात भाषा के शुरू में जो मुक़द्दमा लिखा है वह ऐसा जामा और दिलचस्प है कि उससे इन अदबी ज़रूरियात और उन अदबी मक़ासिद का पता लग सकता है जो भाषा से वाबिस्ता हैं । हज़रत ख़लक़ी का मुक़द्दमा या रिव्यू भी बावजूद इख़्तसार के इस क़दर दिलचस्प है कि नाज़रीन के वास्ते वह बजाय ख़ुद एक ख़ास दिलचस्पी का मोजिब हो सकता है । हज़रत नयाज़ की जोदत तराज़ी और नग़्ज़बयानी अदबी दुनिया के वास्ते एक ऐसी ज़ुदरत और दिलावेज़ी है कि जिसकी शान और अलू व हलावत व जामियत जज़बात भाषा से बिलख़सूस मालूम हो सकती है । हम उम्मेद करते हैं कि हमारे शोअराय उर्दू कमालियत ख़यालात का दामन पहले से भी ज़ियादह भाषा की ख़ूबियों और जवाहिरात अदबी के सुनने के लिए फैला देंगे । उर्दू हिन्दोस्तान की एक मुश्तर्का ज़बान और मुश्तर्का वरसालस्सानी है । हज़रत नयाज़ के अदबी फ़यूज़ में से गीताञ्जलि का भी तर्जुमा है जिसका मुक़द्दमा इस जामियत और इस ख़ूबी से लिखा गया है, हर मुंसिफतबा से ख़िराज तहसील वसूल किये बग़ैर नहीं रह सकता । शायर की जोदत नज़ाकत हुस्नबयान जहाँ बहुत कुछ तारीफ़ के क़ाबिल है वहाँ हज़रत नयाज़ का मुक़द्दमा भी कम तारीफ़ के क़ाबिल नहीं है । इस मुक़द्दमे ही से हज़रत नयाज़ का हुस्न बयान हुस्न इस्तदलाल और हुस्न निज़ाम अदबी मालूम हो सकता है । नाज़रीन को चाहिए कि यह दोनों किताबें दायरतुल्अदब देहली से मँगवा कर देखें और हज़रत नयाज़ के सलाय अदबियों से मालामाल हों—

कैफ़ियते अज़ सूमा हासिल न नमूदे ।
ज़ाहिद गुज़रत जानिबे मैख़ाना ज़रूर अस्त ॥

सुल्तान् अहमद, भेलम

फलित-ज्योतिष ।

हमारा ज्योतिःशास्त्र दो भागों में विभक्त है । एक का नाम गणित-ज्योतिष (Astronomy), दूसरे का नाम फलित-ज्योतिष अथवा होरा-विज्ञान (Astrology) है । "भारतवर्ष" नामक बँगला मासिक पत्र के इसी अगहन मास की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या में श्रीज्ञानेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय का एक लेख "होरा-विज्ञान" नामक प्रकाशित हुआ है । लेख अच्छा है, पर अभी अपूर्ण है । लेखक महाशय फलित-ज्योतिष के कैसे ज्ञाता हैं, यह मालूम नहीं । तथापि यहाँ पर मैं आपके लेख की कुछ उपयोगिनी बातें लिखना चाहता हूँ । कुछ वर्ष हुए सरस्वती में फलित-ज्योतिष पर एक वैज्ञानिक लेख मैंने लिखा था । उसमें फलित-ज्योतिष के प्रेमी, देशी और विदेशी, विद्वानों के मन्तव्य का आधुनिक रीति से विवेचन था । यह बात भी बहुतों ने मानी है कि फलित-ज्योतिष-विद्या झूँठी या निरी कल्पना नहीं है; इसमें सत्य का अंश अवश्य है और इसी से चिरकाल से यह इस देश में प्रचलित है तथा हज़ारों ग्रन्थ इस विषय के विद्वानों ने बना डाले हैं । परन्तु इस वैज्ञानिक युग में, जब युक्ति और तर्क का प्राधान्य और प्रत्यक्ष प्रमाण का राज्य है तब, उस सत्यांश को, जैसे हो सके, ढूँढ़ निकालना परमावश्यक जान पड़ता है । अन्यथा, सब बातें गोल-मटोल ही रहेंगी और इस शास्त्र पर सार्वजनिक श्रद्धा-विश्वास उठता चला जायगा, फिर चाहे जितने लेख लिखे जायँ । परन्तु यह काम ठीक ठीक करनेवाले लोग बहुत ही कम हैं । जो हैं भी वे मौन, उदासीन, तटस्थ, निःस्पृह हैं । इसके सिवा अनेक ग्रन्थ, हज़ारों बातें, प्राचीन नवीन आचार्यों का मतभेद, ऐसा विकट है कि साधारण ज्योतिषी पण्डितों के छूने लायक़ नहीं है, अन्यथा वे ग़ोता खाकर डूब जा सकते हैं । उन लोगों के लिए तो "चमत्कारचिन्तामणि" ही गति है । आज कल एक मदरासी ज्योतिषी, पण्डित सूर्य-नारायणराव, बी० ए०, इस विद्या के विचार में दत्त-चित्त हैं और काम भी अच्छे अच्छे कर रहे हैं । आप अँगरेज़ी में फलित-ज्योतिष-विषयक एक मासिक पत्र भी कई वर्षों से निकाल रहे हैं । उसका नाम है—Astrological Magazine—इसके सिवा यूरोप में एलन लिओ नामक एक फलित-शास्त्र-विशारद हैं । उन्होंने अँगरेज़ी में कई बड़े बड़े ग्रन्थ फलित विषय पर लिखे हैं और अनेक विषयों का युक्तिपूर्ण निर्णय भी किया है । उन्होंने लिखा है कि यह विद्या अवश्य सत्य है । आपके लिखे "Astrology for All" और "How to Judge a Nativity" नामक ग्रन्थ मैंने जयपुर-दरबार के पुस्तकालय में देखे हैं । फलित-ज्योतिष के प्रेमी विद्वान् उन्हें भी पढ़ने की कृपा करें और निर्णीत विषयों को अपनी देश-भाषा में लिखने का भी कष्ट उठावें, तो बहुत अच्छा हो ।

अब उक्त मुखोपाध्याय महाशय के लेख की मुख्य मुख्य बातें सुनिए—

"आद्यन्तवर्णलोपात् होरास्माकं भवत्यहोरा-त्रात्"—अर्थात् अहोरात्र शब्द के पूर्व और अन्त 'अ, त्र' वर्ण के लोप से होरा शब्द बनता है । गणित-द्वारा भगणादि ग्रहों का साधन करके, इस होरा-शास्त्र से मनुष्य के पूर्वजन्मार्जित जितने भले बुरे कर्म हैं उनका फल जाना जा सकता है । सूर्य्य, ब्रह्मा, वेद-व्यास, वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अङ्गिरा, लोमश, पौलिश, भृगु, यवन, बृहस्पति और शौनक—ये अठारह मुनि ज्योतिष-संहिता के बनाने वाले हैं । इन अठारह संहिताओं में दो चार के सिवा औरों का नाम ही लुप्त हो गया है । यह बात प्रसिद्ध है कि यवनों के राज्यकाल में हिन्दुओं के बहुत से शास्त्रीय ग्रन्थ नष्ट हो गये । उसी समय, मालूम होता है, ज्योतिष-संहितायें भी नष्ट हो गई होंगी । पराशर, भृगु और नारद की रची हुई संहितायें, इस समय, देखने में आती हैं । इनके सिवा संस्कृत-भाषा में यवन-रचित यवन-जातक और ताजिक नामक दो ज्योतिष-ग्रन्थ देखे जाते हैं । हमारे देश में "हायन-रत्न" और "नील-कण्ठ-ताजिक" नामक जो दो ग्रन्थ प्रचलित हैं—जिनसे वर्ष-प्रवेश-गणना की जाती है—वे यवनों के "ताजिक" ज्योतिष से उत्पन्न हैं । ज्योतिःशास्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आलोचना से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में, इस देश में, इस प्रत्यक्ष-फलप्रद शास्त्र की पूर्ण उन्नति थी। पूर्व काल में भारत-वासी नानाविध वैज्ञानिक विषयों में भी पारदर्शी थे। पश्चिमी विद्वान् भारत को ही गणित और ज्योतिष का उत्पत्ति-स्थान मानते हैं। परन्तु हाय! काल की विचित्र गति को तो देखिए। अब इसी भारत में उक्त शास्त्र की परम अवनति हो गई है।

फलित ज्योतिष में विश्वास किया जा सकता है कि नहीं, इस विषय पर बहुत आलोचनायें हो चुकी हैं। अब कोई नवीन बात कहनी नहीं है। वैज्ञानिक लोग इस विषय में प्रायः विश्वास नहीं करते, क्योंकि जैसे प्रमाण वे चाहते हैं, नहीं पाते। इस कारण वे कई कुयुक्तियों का उद्धरण भी करते हैं। कुछ भी हो, विज्ञान-सम्मत प्रमाण के अभाव में भी फलित पर एकबारगी अविश्वास करना उचित नहीं। जगत् में आज जो बात असम्भव मानी जाती है, सम्भव है, कल वही सम्भव सिद्ध हो जाय। पहले कौन जानता था कि रेल के द्वारा छः दिन का मार्ग छः घड़ी में चला जा सकता है और बिजली के सहारे जगत् के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक वार्त्ता भेजी जा सकती है। फलित-ज्योतिष का फल प्रत्यक्ष है; उसमें परोक्ष प्रमाण की आवश्यकता नहीं। संसार के अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों की जन्मपत्रियों पर विचार करने और उनके जीवन की शुभाशुभ घटनाओं का मिलान करने से ज्ञात हुआ है कि होराशास्त्रोक्त ग्रहों का शुभाशुभ फल प्रत्यक्ष है। साहित्य-सेवी बङ्किम बाबू की जन्मपत्रिका में "बुधादित्य और भौमाचार्य्य" योग पड़ा था। उसके फल से वे शास्त्रज्ञ, तेजस्वी, देशहितैषी और कीर्त्तिशाली हुए। ऐसे ही कविवर नवीनचन्द्र सेन की कुण्डली में देखा गया है कि शुक्र, गुरु, चन्द्र ये तीन शुभ-ग्रह केन्द्र-स्थान में और द्वितीय-एकादश-भाव-स्वामी होकर बृहस्पति सप्तम स्थान में स्थित था। उसके फल से नवीन बाबू बड़े यशस्वी, विद्वान् और कवि हुए। कोई कहे कि—हरिपद बाबू की कुण्डली में तो राजयोग है, परन्तु आज तक वे राजा नहीं हुए! इसका उत्तर यह है कि यदि किसी शिरःपीड़ा वाले रोगी को कुनैन खिला दी जाय और उससे पीड़ा शान्त न हो तो जैसे चिकित्सा-शास्त्र को दोष नहीं दिया जा सकता वैसे ही हरिपद बाबू के राज्य न पाने पर भी होराशास्त्र को दोष नहीं दिया जा सकता। जैसे चिकित्सक बहुत हैं और वे रोग-निर्णय में अयोग्य होकर भी किसी न किसी औषध की व्यवस्था कर दिया करते हैं वैसे ही ज्योतिषी भी बहुत हैं। जन्मकाल का अन्दाज़ा करके झट-पट वे एक कुण्डली खींच देते हैं; जन्मकालिक ग्रहों की बलाबल-परीक्षा ठीक नहीं करते। इस प्रकार के जन्मपत्रों का फल ठीक न उतरने से साधारण लोगों का अविश्वास दृढ़ हो जाता है।

होराशास्त्र में मनुष्यों की अदृष्ट गणना करने के प्रधान आधार सूर्य्य आदि सात ग्रह, राहु और केतु तथा मेष आदि बारह राशियाँ हैं। कुण्डली-निर्माण में प्रथम जन्मकालिक ग्रहों का स्पष्टी-करण करके जातकोक्त जन्मलग्न का निरूपण किया जाता है। पृथिवी की दैनिक गति प्रति दिन पूर्व से पश्चिम को एक बार होती है। द्वादशराशि-युक्त सौर-कक्षा भी २४ घण्टे में भ्रमण कर लेती है। इस प्रकार प्रत्येक राशि क्षितिज-वृत्त के ऊपर (On the Horizon) दो घण्टे उदित रहती है। जिस समय जो राशि पूर्व-क्षितिज में उदित रहती है उस समय उसी राशि को लग्न (Ascendent) कहते हैं। जन्मलग्न का साधन बहुत विचार से करना चाहिए, क्योंकि अदृष्ट गणना का वही मूलाधार है। इस ३० अंशात्मक राशि के प्रथम दो, तीन, नो, बारह और तीसवाँ भाग जान कर कौन भाग जन्मकाल में क्षितिजवृत्त पर था, इसका भी निश्चय करना पड़ता है। इन्हीं भागों को क्रम से होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और त्रिंशांश कहते हैं। ग्रह किस राशि के कितने अंशों पर अवस्थित है, यह जानना भी ज़रूरी है। क्योंकि एक राशि के सब भागों में ग्रहों का फल समान नहीं होता।

इन बारह राशियों में स्थित ग्रहों के सहारे भाव-फल, योग-फल और दशा-फल नामक अदृष्ट गणना प्रधानतः तीन प्रकार से की जाती है। सम्पूर्ण राशि-चक्र को बारह अंशों में बाँट कर प्रत्येक अंश की भाव-संज्ञा होती है। जन्मलग्न से लेकर बारह भावों में मनुष्य के लिए समग्र ज्ञातव्य बातों का निर्णय होता है। प्रथम-लग्न से शरीर के रूप-गुणादि, द्वितीय—धन-भाव से धन-रत्नादि, तृतीय—सहज-भाव से सहोदर,जाति और पराक्रम आदि, चतुर्थ—बन्धु-भाव से माता-मित्र-भूसम्पत्ति आदि, पञ्चम—पुत्र-भाव से पुत्र-विद्या बुद्धि आदि, षष्ठ—शत्रु-भाव से शत्रु-चिन्ता और पीड़ा आदि, सप्तम—जाया-भाव से स्त्री, काम और वाणिज्य आदि, अष्टम—निधन-भाव से मृत्यु, पराक्रम और विपत्ति आदि, नवम—धर्म-भाव से धर्म-भाग्य और चरित्र आदि, दशम—कर्म-भाव से पिता-उच्चपदप्राप्ति आदि, एकादश—आय-भाव से यान-वाहन आदि और द्वादश—व्यय-भाव से व्यय, ऋण आदि सम्बन्धी शुभाशुभ भाग्य-फल जाना जाता है। इन बारह भावों में लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम की केन्द्र-संज्ञा है और पञ्चम तथा नवम की त्रिकोण-संज्ञा। केन्द्र और त्रिकोण क्रम से शुभ और अशुभ कहे गये हैं।

दूसरे प्रकार से भाग्य-गणना करने का नाम योग-फल-विचार है। जन्मकालिक विशेष विशेष ग्रहों की विशेष विशेष राशियों में स्थिति किंवा योगायोग से जो गणना की जाती है उसी को योग-फल-विचार कहते हैं, जैसे—

"कुम्भे च मीने मिथुनाभिधाने
शरासने स्युर्यदि पापखेटाः।
कुचेष्टितः स्यात्पुरुषो नितान्तं
वज्रेण नूनं निधनं हि तस्य॥"

अर्थात् जन्म-समय में कुम्भ, मीन, मिथुन और धन—इन चार राशियों में यदि पापग्रह हों तो उस मनुष्य की मृत्यु वज्र गिरने से होती है। अन्य रीतियों की अपेक्षा योग-फल का विचार अधिक फलप्रद होता है। योग-फल में प्रायः व्यतिक्रम नहीं देखा जाता। वह अवश्य घटित होता है।

मानव-जीवन में किस समय कैसी शुभाशुभ घटना होगी, यह जिस गणना से ज्ञात हो वह दशा-फल-गणना कहलाती है। ज्योतिःशास्त्र में सम्पूर्ण गणना-प्रकार मिल कर ४२ हैं। अर्थात् दशा फल का निर्णय ४२ प्रकार से हो सकता है। उनमें अष्टोत्तरी, षोडशोत्तरी और विंशोत्तरी-गणना उत्तम-फलप्रद होने से इस देश में प्रचलित हैं। मनुष्य-देह सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से सङ्कुठित होने पर भी, पूर्वकृत कर्म के अनुरोध से, और देश-काल-पात्र के भेद से, व्यक्ति विशेष में उक्त तीनों गुणों का न्यूनाधिक भाव देखा जाता है। अष्टोत्तरी दशा सत्व-प्रधान, षोडशोत्तरी दशा रजः-प्रधान और विंशोत्तरी दशा तमः-प्रधान व्यक्ति के लिए विशेष फलदायक है। वर्तमान समय में तमोगुण की प्रबलता है। इसलिए प्रायः समस्त व्यक्तियों को ही अन्य दशाओं की अपेक्षा विंशोत्तरी दशा अधिक फलप्रद सिद्ध हुई है। ये सब दशायें नक्षत्रों से सिद्ध होती हैं। इस कारण इसका नाक्षत्रिकी दशा भी एक साधारण नाम है। समग्र राशिचक्र में २७ नक्षत्र हैं और प्रत्येक राशि सवा दो नक्षत्रों की होती है। जन्म-काल में चन्द्रमा जिस नक्षत्र पर होता है वही जन्म-नक्षत्र कहा जाता है। प्रत्येक नक्षत्र एक एक ग्रह के दशा-फल को देता है और प्रत्येक ग्रह नियत काल तक फल देता है। इसका साधन नक्षत्र का भुक्त-भोग्य मान जान कर फलित-ग्रन्थों में किया गया है। इस दशा-फल की सूक्ष्म गणना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने पर मनुष्य को किस दिन, किस घड़ी, क्या शुभाशुभ फल होगा, यह ठीक ठीक जाना जा सकता है।

उक्त कई प्रकार की भाग्य-गणनायें आकाशस्थ ग्रहों के शुभाशुभत्व और बलाबल के ऊपर सर्वथा अवलम्बित हैं। ग्रहों में गुरु और शुक्र शुभ-ग्रह और रवि, भौम, शनि पाप किंवा अशुभ-ग्रह माने गये हैं। शरीर सबल होने से जैसे चित्त प्रसन्न अन्यथा अप्रसन्न रहता है वैसे ही चन्द्रग्रह भी कला की वृद्धि और क्षय से शुभ-अशुभ-भाव को प्राप्त होता है। शुक्ल-पक्ष की अष्टमी से कृष्ण-सप्तमी तक चन्द्र का बिम्बार्ध शुभ और उसके बाद अशुभ माना जाता है। बुध शुभ-ग्रह है; परन्तु उसका स्वभाव बालक के समान है। अच्छा बालक बुरे बालक की सङ्गति से जैसे बुरा हो जाता है वैसे ही बुध का हाल है। राहु और केतु दोनों पापी हैं।

होराशास्त्र में ग्रह बिम्बाकार ज्योतिःपिण्ड नहीं माने गये, किन्तु वे मनुष्यों के भाग्य-नियामक देव-मूर्त्ति विशेष स्वीकार किये गये हैं। जैसे रवि—रक्त-श्यामवर्ण, पित्ताधिक-प्रकृति, प्रतापशाली और गम्भीर है। चन्द्र—गौरवर्ण, मेधावी, वात-कफ-प्रकृति और शान्तमूर्त्ति है। भौम—रक्त-गौरवर्ण, बलशाली, क्रोधी, साहसी और पित्ताधिक-प्रकृति है। वराह-मिहिर के बृहज्जातक में सकल ग्रहों के स्वरूप और स्वभाव इसी तरह लिखे हैं। इन्हीं के सहारे मनुष्यों के स्वरूप-भाव आदि जाने जाते हैं।

राशि-चक्र ग्रहों की विहार-भूमि है। उसमें कोई ग्रह एक, कोई ग्रह दो राशियों का स्वामी है—अर्थात् वह राशि उसका स्वगृह किंवा स्वक्षेत्र है। जैसे सिंह-राशि सूर्य्य का है, कर्क चन्द्र का इत्यादि। मार्ग-श्रम से थका हुआ मनुष्य जैसे निजगृह को प्राप्त होने पर प्रसन्न-चित्त होता है वैसे ही ग्रह भी राशि-चक्र पर घूमते हुए स्वक्षेत्र में पहुँचने पर प्रसन्नता को धारण करते हैं। ऐसे ग्रहों का फल शुभ होता है। इन स्वगृहों के बीच में विशेष विशेष स्थान उनके मानो शान्ति-निकेतन हैं। ऐसे स्थान होरा-शास्त्र में मूलत्रिकोण कहे गये हैं। इन स्थानों में प्राप्त ग्रह शुभ फल देते हैं। जैसे सूर्य्य सिंहराशि के २० अंश तक, भौम—मेषराशि के १२ अंश तक, बुध-कन्याराशि के १६ अंश से लेकर २५ अंश तक अपने मूल-त्रिकोण स्थान में रहता है। ऐसा ही हाल और ग्रहों का भी है। पर इस सम्बन्ध में चन्द्रमा का विषय भिन्न है। क्योंकि उसके स्वक्षेत्र कर्कराशि में मूल त्रिकोण-स्थान नहीं है। पुराणों में लिखा है कि रोहिणी चन्द्रमा की पत्नी है। रोहिणी-नक्षत्र वृष-राशि में परिगणित है। अतएव ज्ञात होता है कि वृष-राशि के ४ अंश से लेकर २० अंश तक चन्द्रमा विशेष प्रफुल्ल-चित्त होने से शुभफलप्रद होता है।

राशिचक्र में ग्रह किसी स्थान में पूर्णबली और किसी में हीनबली होते हैं। उसको क्रम से उच्च और नीच स्थान कहते हैं। जिस ग्रह की जो राशि उच्च है उससे सातवीं राशि नीच है। किन्तु पाप-ग्रहों की स्थिति इससे उलटी है। वे उच्च में अशुभ फल न देकर भी नीच में अशुभ फल देते हैं। राहु-केतु के स्वक्षेत्रादि-स्थान का विचार नहीं। वे जिस ग्रह के स्थान में होते हैं उसी का बलाबल करते हैं। कहीं कहीं राहु की राशि कन्या, मूल-त्रिकोण कुम्भ और उच्चस्थान मिथुन कल्पना किया गया है। इसी तरह केतु के लिए भी कहीं कहीं कल्पना की गई है।

ग्रहों में शत्रुता, मित्रता और समता—ये तीन प्रकार के परस्पर सम्बन्ध भी होते हैं। रवि और चन्द्र को छोड़ कर प्रत्येक ग्रह के दो दो भाव हैं। इसलिए गणना में किसी ग्रह का कोई ग्रह शत्रु और मित्र दोनों हो जाता है। शत्रु-गृह में पड़े हुए ग्रह स्वाभाविक फल न देकर अशुभफलदायी होते हैं, एवं मित्र-ग्रह में शुभफल करनेवाले होते हैं।

मनुष्यों के समान ग्रहों में भी दृष्टि-शक्ति है। किन्तु वे राशि-चक्र के सम्पूर्ण प्रदेशों को सम-भाव से नहीं देखते। वे निजाधिष्ठित राशि से तीसरे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दसवें में एक पाद दृष्टि से, नवें, पाँचवें में द्विपाद दृष्टि से, चौथे, आठवें में त्रिपाद-दृष्टि से और सातवें में पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। जगत् में सबकी दृष्टि समान नहीं। कोई कोई वक्र दृष्टि से भी अच्छी तरह देख सकते हैं। ग्रहों में इस प्रकार की दृष्टिवाले शनि, मङ्गल, बृहस्पति और राहु हैं—जैसे; शनि तीसरे, दसवें को, भौम चौथे, आठवें को, गुरु पाँचवें, नवें को राहु पाँचवें, नवें और बारहवें स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। ग्रहों में केवल केतु ही अन्धा है। ग्रहों पर मित्र-ग्रहों की दृष्टि होने से शुभ फल अन्यथा अशुभ फल होता है।

इस प्रकार ग्रहों का बलाबल, शत्रु-मित्र-स्थान-स्थिति, उच्च, मूलत्रिकोण, स्वगृह, नीच, शुभाशुभ दृष्टि आदि समस्त विषयों का सूक्ष्म रीति से विचार करके फलादेश कहना चाहिए। किसी एक बात की परीक्षा करने से फल में विसंवाद हो जाता है। परन्तु होराशास्त्र में जो विशेष व्युत्पन्न हैं—जो अनुभवी हैं—उन्हीं की की हुई गणना ठीक उतरती है, अन्यथा नहीं। आचार्य्य वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में लिखा भी है—

"जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ निषिक्तमिव हृदये।
शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य।"

परन्तु ये बातें सर्वसाधारण में होना असम्भव हैं। अतएव फलादेश का निर्णय भी अति कठिन है। जो लोग इस शास्त्र को सुगम बाललीला समझ कर सहसा इस पर आक्रमण कर रहे हैं उनकी बड़ी भारी भूल है।

"कलौ पाराशरी स्मृतिः" अर्थात् वर्तमान कलि-युग में पराशर मुनि का मत प्रबल और प्रत्यक्ष फल-प्रद है। पराशर-संहिता में लिखा है—"ग्रहः क्रूराः खला नात्र शुभाः सोम्याः कदाचन। तत्तत्स्थानाधिपत्येन भवन्तीह खलाः शुभाः"। अर्थात् नैसर्गिक पापग्रह (रवि, भौम और शनि) एवं नैसर्गिक शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) शुभ ग्रह नहीं माने जा सकते। लग्नाधिभावों के आधिपत्य के अनुसार ग्रहों का शुभाशुभत्व निश्चित किया जाता है। जैसे नैसर्गिक शुभ किंवा अशुभ ग्रह लग्न, पञ्चम और नवम स्थान का स्वामी होने से शुभ ग्रह और तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थान का स्वामी होने से अशुभ ग्रह माना जाता है। नैसर्गिक शुभ ग्रह केन्द्रस्थान (१, ४, ७, १०,) के स्वामी होने से अशुभ फल-दाता और पाप-ग्रह शुभफल-दाता होते हैं। कुण्डली-फल के विचार में कभी कभी नैसर्गिक फल में भी अन्तर हो जाता है। जगत् में जब सभी मनुष्य एक प्रकृति के नहीं तब एक ही ग्रह सब को एक सा फल कैसे देगा? पराशर मुनि के अनुसार किसी को शनि अशुभ और किसी को शुभ फल देता है।

प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति अपना भावी शुभाशुभ जानने की होती है। आपत्ति-काल में तो यह जिज्ञासा बहुत ही प्रबल हो जाती है। भावी फल जान लेने पर चित्त-शान्ति भी होती है। अतएव भविष्यत् जानने को सभी उत्सुक रहते हैं। बहुतों का मत है कि फलित-ज्योतिष में आस्था हो जाने पर अदृष्टवाद जड़ पकड़ लेगा और पुरुषार्थ का लोप हो जायगा—उन्नति का मार्ग रुक जायगा। सभी अपनी अपनी कुण्डलियों को दिखला कर भावी बातें जान लेंगे और कर्त्तव्य-विमुख होकर हाथ पर हाथ रक्खे दिन बितावेंगे। परन्तु यह भ्रम मात्र है। पौरुष-लोप करना फलित-ज्योतिष का उद्देश नहीं। क्योंकि "पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति"। हमारे यहाँ का प्राचीन सिद्धान्त है—

"दैवमात्मकृतं विद्यात् कर्म यत्पूर्वदैहिकम्।
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहापरम्"॥

प्रयोजन यह है कि दैव और पुरुषकार के संयोग से ही फलोत्पत्ति होती है। पौरुष से अशुभ फल का ह्रास और शुभ फल की वृद्धि होती है। पूर्व-जन्मार्जित सदसत् कर्मों का शुभाशुभ फल जान कर, पौरुष द्वारा, लोक में जिससे जीवन में उन्नति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुख-साधन हो सकता है वही उद्देश ऋषियों का ज्योतिःशास्त्र निर्माण करने का है, न कि अदृष्ट के मुख को देखते हुए जड़वत् जीवन धारण करने की शिक्षा देना। यह बात विचारशील विद्वानों से छिपी नहीं।

मुखोपाध्याय जी के लेख का यही सारांश है। फलित-ज्योतिष के प्रेमी इसे पढ़ें और इसका मनन करें। फिर यदि हो सके तो सत्य की खोज कर प्रकट करें और कोई मार्ग ऐसा निश्चित करें जिससे पथिक सहज ही में अपने अभीष्ट पथ को प्राप्त कर सकें। "नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्"—की उलझन में पड़ कर विवेकियों को भी व्यामोह हो जाता है, साधारणों की तो बात ही नहीं।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

मनुष्यते !

मनुष्यते ! अब कहो कहीं हो अवनीतल में ? किसी कुटी में है निवास या किसी महल में ?
आख़िर, कुछ भी कहीं पता है स्थल में जल में ? हो बेकल कलिकाल-कला से या हो कल में ?
अपने गूढ़ावास का गुप्त भेद तुम खोल दो।
अहो देवि ! करके कृपा कहो कहाँ हो ? बोल दो ॥१॥

गोरों में हो बसी बसी हो या कालों में ? पूर्व-वासिनी हो कि बसी पश्चिमवालों में ?
स्थिरता में हो तुम कि चल रही हो चालों में ? निर्गुण का गुण लिया या गुथीं गुण-मालों में ?
उभय लोक की साधिका जीवन की आधार हो।
इस असार संसार में एक तुम्हीं तो सार हो ॥२॥

रमी शान्ति में तुम कि जमी हो कहीं समर में ? वन-विहारिणी बनी या बनी सी हो घर में ?
अपनों में हो आज सिधारी हो या पर में ? अपना तो सर्वस्व तुम्हारे ही है कर में ॥
बिना तुम्हारे जगत में जीना ही धिक्कार है।
अपना जी ही जानता जितना तुम पर प्यार है ॥३॥

पर सम्प्रति मिल नहीं रहा है पता तुम्हारा ; होकर भ्रम में पतित विकल है मन बेचारा।
खोजे हृदय अनेक बहुत सा तो सिर मारा ; क्या जाने तुम कहाँ हुई हो नौ दो ग्यारा ॥
क्यों रूठी सी हो कहो क्या कारण है रोष का ?
साथ तुम्हारे ही गया है उपाय सन्तोष का ॥४॥

हाँ, क्या हो तुम वहाँ जहाँ पर स्वार्थ प्रबल है—दूषित ईर्ष्या, दम्भ, द्वेष दोषों का दल है ?
कड़ुवाहट है बात बात में या कुछ छल है ? मुख में पय, पर भरा पेट में विषम गरल है ?
कैसे इस दुस्सङ्ग में हो सकता निर्वाह है।
सुनते हैं सद्गुणों की तुमको रहती चाह है ॥५॥

या हो क्या तुम वहाँ जहाँ अन्याय अधम है ? बेदम निर्बल किये जहाँ सबलों का दम है ?
"जीव जीव-आहार"—जहाँ नय, नीति, निगम है—दया, दान, दाक्षिण्य जहाँ करुणा भी कम है ?
इस बीहड़ वन में भला कलरव चातक हैं कहाँ।
शिकरा, बहरी, बाज़ से द्विज-कुल-घातक हैं यहाँ ! ६॥

या हो क्या तुम वहाँ जहाँ भीरुता भरी है ? सहमत होकर सुनें बात खोटी कि खरी है ?
मानो दिल की जगह एक पवि-शिला धरी है ; पानी कैसा, नहीं आँख में रही तरी है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे मरु-प्रदेश में पीड़ित होकर प्यास से।
घबराती होगी न क्या दुख से, भय से, त्रास से ? ७॥
या हो क्या तुम वहाँ द्वेष का वास जहाँ है ? बन्धु बन्धु में नहीं प्रेम आभास जहाँ है।
दुर्बलता-वश उच्च गुणों का ह्रास जहाँ है; लोभ आदि का बना हुआ मन दास जहाँ है॥
ऐसे घृणित कुठौर में होगा तुम्हें सुपास क्या ?
फँसे तुम्हारे प्रेम में वहाँ किसी से आस क्या ? ८॥
या हो क्या तुम वहाँ जहाँ काले दिलवाले—रहते हैं दुर्भाव सदा हृदयों में पाले ?
खर हैं, पर हैं खाल सिंह की ऊपर डाले; डाले हैं अल्लाह तआला ने भ्रम-ताले॥
हृदय-धाम उनके कभी खुलने की उम्मेद क्या ?
ऐसे कठिन कुसङ्ग में तुम्हें न होगा खेद क्या ? ९॥
किस कारण से देवि ! दीन पर रुष्ट हुई हो ? किस पर करुणाकोर ? कहाँ सन्तुष्ट हुई हो ?
क्या दुर्बलता देख नहीं तुम पुष्ट हुई हो ? माना हम थे दुष्ट, आप क्यों दुष्ट हुई हो ?
उचित न था तुमको कभी दुर्दिन में यों छोड़ना।
नाता-रिश्ता प्रेम का उसी देश से तोड़ना ! १०॥
जिसने पहले पहल तुम्हें जग में पहचाना; छोड़ साधना और प्रथम तव पूजन ठाना।
अमर-गणों के मध्य तुम्हारा आसन माना; जहाँ ज़रूरत पड़ी जान से बढ़ कर जाना॥
कष्ट कौन से रह गये जो हमने झेले नहीं ?
खेल तुम्हारे ही लिए क्या क्या हम खेले नहीं ? ११॥
वाणी रूठी ख़ैर ! चतुर्मुख की प्यारी थीं; अमरों की भी पूज्य अमरपुर में न्यारी थीं।
उनकी शक्ति विलोक शक्तियाँ सब हारी थीं; सेवायें बन पड़ीं न हम से सुखकारी थीं॥
अपना ही अपराध था उनकी कज इसमें नहीं।
रुष्ट हुईं वे तो हमें कुछ अचरज इसमें नहीं॥१२॥
कमला का आवास विष्णु का हृदय-धाम था; रग रग थी चापल्यपूर्ण चञ्चला नाम था।
विष की भगिनी और बन्धु यह चन्द्र वाम था; उनको श्रम, उद्योग, भोग से सदा काम था॥
कुछ तो निज आलस्य से कुछ निज तापस-वृत्ति से—
कर बैठे हैं हम उन्हें बाहर अपनी शक्ति से॥१३॥
पर तुम रूठीं हाय सगी—अपनी ही होकर ! छूट गईं किस तरह जान हो जी ही होकर !
निर्मम क्यों हो गईं दया जननी ही होकर ! क्षमा न की क्यों कहो क्षमा-देवी ही होकर !
करुणामयि ! करिये कृपा मन तव पद आसक्त हैं।
अनुचर अब भी सैकड़ों बने तुम्हारे भक्त हैं॥१४॥
आओ आओ मनुष्यते ! निज घर में आओ; क्षमा-दया की मूर्त्ति शान्ति उर में उपजाओ।
जान पुराना दास हमें भी गले लगाओ; अब मत रूठी रहो अधिकतर मत तड़पाओ॥
मम जीवन की नाव है पड़ी हुई मँझधार में।
सिवा तुम्हारे कौन है अपना इस संसार में॥१५॥
करें परस्पर प्यार हमें जो प्यार करो तुम; कण्टक-मय हो रहा, सुखद संसार करो तुम।
बेड़ा इस प्राचीन देश का पार करो तुम; तुम्हें करें हम, हमें गले का हार करो तुम॥
निर्बलता, नीचता से पिण्ड छुड़ा कल दो हमें।
कर्म्मयोग के योग्य ही साहस दो, बल दो हमें॥१६॥

सनेही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर-गीता।

बहुत से मनुष्य, जो संस्कृत-साहित्य से अच्छी तरह परिचित नहीं, समझते हैं कि केवल भगवद्गीता ही एक गीता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीताओं में भगवद्गीता सर्वोत्तम है। परन्तु केवल एक यही गीता नहीं है। कितनी ही और गीतायें भी हैं। अष्टादश पुराणों में से प्रत्येक पुराण में एक या एक से अधिक गीतायें मिलती हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत, योगवासिष्ठ, अध्यात्म-रामायण आदि ग्रन्थों में भी गीतायें हैं। उदाहरणार्थ कुछ गीताओं के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

(१) भगवद्गीता, (२) ईश्वरगीता, (३) देवीगीता, (४) शिवगीता, (५) गणेशगीता, (६) रामगीता, (७) कपिलगीता, (८) अष्टावक्रगीता, (९) अवधूतगीता, (१०) ब्रह्मगीता, (११) सूर्यगीता, (१२) यमगीता, (१३) हंसगीता, (१४) पाण्डवगीता, (१५) व्याधगीता, (१६) अनुगीता, (१७) व्यासगीता।

गीतायें अध्यात्मिक ज्ञान के भाण्डार हैं। उनमें उच्च से उच्च धार्म्मिक विचार, गम्भीर से गम्भीर दार्शनिक तत्व, शुद्ध से शुद्ध भक्ति-भाव भरे हैं। उपाधियों को हटा कर आत्मा के शुद्ध निर्म्मल स्वरूप का आविष्कार करना, वासनाओं को पवित्र बनाना, इन्द्रियों को वश में करके बुद्धि को स्थिर करना, मायाजाल को काट कर सच्चिदानन्द परमात्मा के दर्शन कराना—यही सब गीताओं के उद्देश हैं। वेदान्त, सांख्य और योगदर्शनों के तत्त्व उनमें निहित हैं। उपनिषदों के पवित्र विचारों की दिव्य प्रभा से वे प्रभान्वित हैं। नित्य पाठ करने योग्य हैं। क्योंकि उनसे बढ़ कर अध्यात्म-विषय की बहुत कम पुस्तकें हैं।

यदि इन सब गीताओं की समालोचना की जाय तो एक पुस्तक बन जाय। अतएव इस लेख में केवल ईश्वर-गीता का ही कुछ वर्णन किया जाता है।

ईश्वर-गीता कूर्मपुराण का एक अंश है। इसमें ११ अध्याय और ४९६ श्लोक हैं। श्लोक अनुष्टुप् वृत्त के हैं। कहीं कहीं और वृत्त भी हैं। इसके प्रधान देवता भगवान् शङ्कर हैं।

ईश्वर-गीता का कथन पहले पहल भगवान् विष्णु ने, अपने कूर्मावतार में, किया था। अनन्तर इसे शिवजी ने बदरिकाश्रम में नरनारायण के सामने सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, अङ्गिरा, भृगु, कणाद, कपिल, गर्ग, वामदेव, शुक, और वसिष्ठ ऋषियों को सुनाया। इन ऋषियों से और और ऋषियों ने इसे सुना। इसी प्रकार परम्परा से यह व्यासजी को प्राप्त हुई। व्यासजी ने शौनकादि को सुनाई। इस समय जो ईश्वर-गीता प्राप्त है वह व्यास ही जी की कही हुई है।

इस गीता के उपदेश के आधार वेदान्त, सांख्य और योगशास्त्र हैं। इन तीनों को मथ कर उनका निचोड़ इसमें रख दिया गया है। तथापि इसमें वेदान्त-विचारों की अधिकता है। आत्मा और ब्रह्म की एकता स्पष्टतापूर्वक बुद्धिमत्ता से दिखाई गई है।

दूसरे, तीसरे, छठे और सातवें अध्याय तथा चौथे और नवें अध्याय के कुछ अंशों में आत्मा, परमात्मा और उनकी एकता का विषय वेदान्तानुसार वर्णन किया गया है। आठवें अध्याय में और तीसरे तथा सातवें अध्याय के कुछ अंशों में सांख्य-सम्बन्धिनी प्रकृति, पुरुष और उनके द्वारा संसारोत्पत्ति का विवरण है। ग्यारहवें अध्याय में केवल योग का विषय है। पाँचवें अध्याय में परमात्मरूप भगवान् शिवजी की स्तुति बड़े ही भावपूर्ण और प्रभावशाली वाक्यों में की गई है। दसवें अध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ईश्वर के भक्तों और प्रियजनों के लक्षण बताये गये हैं। मोक्ष का स्वरूप भी वहाँ बताया गया है।

इस गीता में धार्म्मिक विचारों की गुरुता, दार्शनिक विषयों की गम्भीरता, भक्ति-भावों की निर्म्मलता और हार्दिक भावों की उदारता खूब ही दिखाई गई है। इसमें सभी धर्म अच्छे कहे गये हैं। किसी की निन्दा नहीं की गई। सभी धर्म्मानुयायी परम-पद को पहुँच सकते हैं। ईश्वर की उपासना अनेक प्रकार से हो सकती है। उसके लिए सभी मार्ग खुले हुए हैं। उसकी प्राप्ति सभी मार्गों से हो सकती है। जो शुद्धभाव से फल, फूल, पत्रादि भेट करता है उसे ईश्वर ग्रहण करता है। मनुष्य चाहे जिस मार्ग से उसकी उपासना करे, क्योंकि सभी मार्ग अच्छे हैं, तथापि भक्ति-मार्ग सबसे सरल और साध्य है। मोक्षोपलब्धि में वह बहुत उपयोगी है। अतएव इस मार्ग की विशेष कर के प्रशंसा की गई है।

भगवद्गीता और ईश्वरगीता में बहुत सी बातें मिलती हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है—

(१) सांख्य और योग दोनों एक ही हैं। इनमें भिन्नता नहीं। जो इनमें भिन्नता समझता है वह ज्ञानी नहीं।

(२) ईश्वर-प्राप्ति सभी मार्गों से हो सकती है। अपने भक्तों को ईश्वर सभी मार्गों से स्वीकार करता है।

(३) सभी मार्ग अच्छे हैं। परन्तु भक्ति-मार्ग सबसे सरल और उपयोगी है।

(४) दोनों गीताओं में सृष्टि की उत्पत्ति, सांख्य-दर्शन के विचारों के अनुसार ही, कही गई है।

(५) भगवद्गीता में जैसे श्रीकृष्णजी ने विश्वरूप दिखाया है वैसे ही ईश्वरगीता में शिवजी ने दिखाया है। इन दोनों विश्वरूपों का वर्णन एकसा है।

(६) विश्वरूप देखने पर जैसी दीन प्रार्थना अर्जुन ने की है वैसी ही ऋषियों ने शिवरूप देखने पर की है।

(७) भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियाँ सारे संसार में बताई हैं। ईश्वरगीता में महादेवजी ने भी अपनी विभूतियाँ दिखाई हैं।

(८) आत्मा और ब्रह्म का स्वरूप दोनों गीताओं में एक ही सा वर्णन किया गया है।

(९) परमात्मा की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, विश्वरूपता, अनादिता, अनन्तता दोनों गीताओं में एक सी कही गई है।

(१०) ईश्वर के भक्तों के लक्षण दोनों में एक ही से हैं।

(११) मोक्ष का वर्णन भी एक ही सा है।

(१२) दोनों ही गीताओं में निष्काम कर्म करने का उपदेश है। मनुष्य जो कुछ करे उसे ईश्वर के लिए करे। अपने सभी काम ईश्वरार्पण कर दे।

(१३) संस्कृत दोनों गीताओं की एक सी है—अर्थात् सरल, सरस और मनोहर है। बड़े बड़े समास अथवा अलङ्कार, जो पीछे के ग्रन्थों में मिलते हैं, इनमें नहीं।

इससे तथा और कारणों से यह कह सकते हैं कि यह गीता भी उतनी ही प्राचीन है जितनी कि भगवद्गीता है।

ईश्वर-गीता में छठा और ग्यारहवाँ अध्याय विलक्षण ही है। छठे में ईश्वर के जगच्छासन का महत्त्व और प्रभाव दिखाया गया है। यह अध्याय अनेक बार पढ़ने योग्य है।

ग्यारहवें अध्याय में राजयोग का सविस्तर वर्णन है। उसके आवश्यक साधन और क्रियायें अच्छी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह लिखी गई हैं। योग का ऐसा वर्णन और किसी गीता में नहीं।

इस गीता का अनुवाद अभी तक हिन्दी अथवा अँगरेज़ी में नहीं हुआ।

कन्नोमल, एम० ए०

ट्राम चलानेवाली।

युद्ध छिड़ने के पहले ही इँगलेंड में बहुत सी स्त्रियां कितने ही सोफ़ियाने काम करती थीं; परन्तु जब से युद्ध शुरू हुआ है और सेना में अधिकाधिक मनुष्य भरती होने लगे हैं तब से और भी अधिक स्त्रियां भिन्न भिन्न महकमों में काम करने लगी हैं। अब वे कितने ही ऐसे कठिन काम भी करती हैं जिन्हें युद्ध के पहले सिर्फ़ पुरुष ही करते थे और जिनके लिए स्त्रियां अयोग्य समझी जाती थीं। ट्राम, मोटर तथा अन्य गाड़ियां चलाना, उनकी देख-भाल करना, टिकट बाँटना इत्यादि ऐसे ही कामों में से हैं। जब तक योरोपीय युद्ध न छिड़ा था, इन कामों के लिए स्वप्न में भी स्त्रियों का कोई नाम तक न लेता था। परन्तु आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जब ट्रामों और मोटरों के चलानेवाले पुरुष सेना में भरती होने लगे तब उनके चलाने में बाधायें उपस्थित होने लगीं। कम गाड़ियां चलने लगीं। तब लोगों का ध्यान स्त्रियों की ओर गया। बस फिर क्या था, ख़ाली जगहों पर धड़ाधड़ स्त्रियां भरती की जाने लगीं। अब कितने ही भिन्न भिन्न विभागों में काम करती हुई स्त्रियां आपको देख पड़ेंगी। टिकट देने, गाड़ियों पर मुसाफ़िरों को चढ़ाने और उतारने तथा ऐसे ही अन्य काम करनेवाली स्त्रियों को यहां "कंडक्ट्रेस" कहते हैं। किस शौक़, किस उत्साह और किस परिश्रम से स्त्रियां ये अपने अङ्गीकृत कार्य्य करती हैं, यह बात नीचे लिखी हुई घटना से अच्छी तरह प्रकट हो जायगी। इस घटना का वर्णन एक अँगरेज़ी अख़बार से मैं देता हूँ। उसकी लिखने वाली एक स्त्री है—

मैं झपट कर जल्दी से गाड़ी पर चढ़ गई। पर चढ़ने की जल्दी में मेरी कुछ चीज़ें गाड़ी की सीढ़ियों पर गिर पड़ीं। उन्हें उठाते हुए एक चञ्चल कन्डक्ट्रेस ने कहा—

क्या इसी तरह आप हमेशा गाड़ी पर चढ़ा करती हैं?

मैंने उत्तर दिया—नहीं, हमेशा नहीं। पर अपनी चीज़ों को हिफ़ाज़त से रखने की गड़बड़ में अक्सर ऐसा हो ही जाता है।

कन्डक्ट्रेस ने हँस कर कहा—इसमें सन्देह नहीं। चीज़ों की हिफ़ाज़त के लिए इतनी सावधानता दिखाना ज़रा अनोखी बात है!

इतने में, कुछ दूर, सड़क पर पड़ी हुई एक चीज़ मुझे दिखाई दी। उसकी ओर इशारा करके मैंने कहा—ओफ़! यह लो, मेरा छाता तो छूट ही गया! पर, ख़ैर वह मेरा नहीं था। मँगनी लाई थी।

कन्डक्ट्रेस खिलखिला कर हँस पड़ी।

मैंने उससे पूछा—तुम इस काम को कैसा पाती हो?

अजीब अदा से मेरा टिकट मुझे देते हुए उसने जवाब दिया—बहुत ही अच्छा। इससे पहले मैं बच्चों की देख-भाल करती थी। मैं एक जगह दाई थी। उस नीरस काम की अपेक्षा इसमें मेरा जी बहुत लगता है।

इतने में "बेकर स्ट्रीट! बेकर स्ट्रीट!" की आवाज़ उसने दी। वह मीठी आवाज़ क्या ही भली मालूम हुई। गाड़ी की सीढ़ी के किनारे मुसकराती हुई वह खड़ी रही। एक हाथ से गाड़ी को पकड़ कर उसने ठीक कन्डक्टर ही की तरह अपने शरीर को झोंका दिया। उस समय उसका चमकदार चेहरा बहुत ही प्यारा मालूम हुआ। वह ख़ूब ऊँचे जूते पहने हुए थी। उसकी नीली पोशाक पर लगी हुई सफ़ेद गोट बहुत फबती थी। अपने काम के लिए वह बहुत योग्य थी। अपने काम को वह मुस्तैदी से करती भी थी। उसे सौंपा गया वह काम भी ऐसा वैसा न था। उसी के शब्दों में उस काम की गुरुता भी सुन लीजिए। उसने कहा—

कन्डक्टर का काम आसान नहीं। न वह सदा मधुमिश्रित ही है। बरसात में जब पानी बरसता है अथवा जाड़ों में जब कड़ाके की सर्दी पड़ती है तब इस काम का सच्चा स्वरूप प्रकट होता है। तब इससे जी ऊब सा उठता है। इसके सिवा एक और भी विपद हमें घेरे रहती है, जिससे यह काम हमें कभी कभी भयङ्कर दिखाई देने लगता है। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है पुरुष-कर्म्मचारियों का हमारे साथ दुर्व्यवहार। पहले पहल तो उन लोगों को यह ख़याल हो गया था कि हम "अव्यापारेषु व्यापार" कर रही हैं; हम उनके कामों और अधिकारों को छीनना चाहती हैं। अतएव वे हमारी राह में नित नये काँटे बखेरा करते थे। ड्राइवरों ने हमें सहायता देने से साफ़ साफ़ इनकार कर दिया। ड्राइवरों और कन्डक्टरों को परस्पर की सहायता और सहयोगिता दरकार होती है। उसके बिना यात्रा निर्विघ्न समाप्त नहीं होती। तथापि पहले दिन तो उन लोगों ने सिर हिला कर कही डाला था—उहूँ, इनसे यह काम नहीं चलने का। भला स्त्रियाँ भी कहीं ऐसे काम करने में समर्थ हो सकती हैं? परन्तु अनुभव सब का गुरु है। वह सब को रास्ते लगा देता है। जब उन्होंने देखा कि जाड़े के दिनों में वे .खुद सर्दी के मारे काँप रहे हैं और आस पास की दूकानों में गरमागरम काफ़ी के लिए दौड़ रहे हैं, और हम लोग स्वस्थ और प्रसन्न-चित्त अपनी अपनी गाड़ियों पर बैठी हुई वायलों के लिए मोज़े इत्यादि बुन रही हैं, तब उन की अक़्ल ठिकाने आ गई। तब वे जान गये कि स्त्रियाँ सचमुच पुरुषों से कहीं अधिक मनोदमन कर सकती हैं। इस घटना ने उनके मन में हमारे विषय में कुछ श्रद्धा उत्पन्न कर दी। इस कारण अब हम लोगों में .खूब मेलमिलाप और एकता हो गई है। पुरुष-कर्म्मचारी अब इस बात को मानते हैं कि स्त्रियों की सहयोगिता वाञ्छनीय है और पुरुषों को उससे बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है। हम लोगों के इस काम के पहले बहुत सी गाड़ियाँ कन्डक्टरों की कमी के कारण बन्द पड़ी थीं। सिर्फ़ लन्दन जेनरल आम्नीबस कम्पनी ही के पाँच हज़ार से भी ज़ियादह आदमी सेना में भरती हो चुके हैं, और तीन हज़ार आदमी भरती होने की तैयारी में हैं। अब योग्य कन्डक्टरों को ड्राइवरी का काम सिखाया जा रहा है, और हमें कन्डक्टरों की जगहें मिल रही हैं!

× × × × ×

मैंने पूछा—तुम लोग कितनी इस काम में लगी हो।

जवाब मिला—एक सौ तीस से कुछ ज़ियादह तो काम कर रही हैं। कोई तीन सौ काम सीख रही हैं। कोई पाँच हज़ार स्त्रियों ने भरती होने के लिए अर्ज़ियाँ दी थीं। पहले हम लोगों को डाक्टरी परीक्षा पास करनी पड़ती है। उसमें इस बात की जाँच होती है कि हम लोग इस काम के लिए योग्य हैं या नहीं। कितनी ही अयोग्य पाई गईं स्त्रियाँ नहीं भरती की गईं। हम लोग इस काम को दिल से पसन्द करती हैं। जहाँ हमें एक दफ़े चलती गाड़ियों पर चढ़ने और उतरने तथा घूमने का अभ्यास हो गया कि फिर तो यह काम खेल सा मालूम होने लगता है। तब इसमें दिल भी .खूब लगता है। हाँ एक बात पर हमें ज़रूर एतराज़ है। वह यह कि लोग बाग हमें "कन्डक्टरेट्स"* कहकर पुकारते हैं। हम वैसी नहीं।

उस स्वाभिमानिनी नवयुवती के हट्टे कट्टे बदन को देख कर उस समय मुझ से यही कहते बना—इसमें क्या शक।

उसने फिर कहा—बाज़ बाज़ मुसाफ़िर हम लोगों को आँखें फाड़ फाड़ कर घूरा करते हैं। मानों हम किसी चिड़ियाख़ाने से पकड़ लाये गये कोई अजीब जानवर हों। हम तो सिर्फ़ "कन्डक्टर्स" हैं—न कम न ज़ियादह! एक बात और भी है। जान पड़ता है, लोगों ने हमें विश्वकोश समझ रक्खा है। वे हमसे ऐसी ऐसी जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं मानों पाँच मील लम्बे रास्ते के हर एक गली-कूचे और कोने के नाम हमने मदरसों में ही रट लिये हों। कितने ही लोग तो हमें सूचनाओं और ख़बरों की कामधेनु समझते हैं। इसका कारण हमारी यह निगोड़ी वरदी है। इसी से उन्हें यह भ्रम हो जाता है। पर हम न तो टाइम-टेबुल (समय-सूची) हैं, न स्ट्रीट-गाइड (मार्ग-प्रदर्शक) हैं और न क्रय्य-विक्रय्य वस्तुओं का सूचीपत्र ही हैं।

उसने फिर कहा—इन सब दिक़तों और विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी हमें एक बात से बहुत समाधान और सन्तोष होता है। उसे याद कर हम गज़ों फूल उठती हैं। वह यह कि हम सब यह समझती हैं कि अपने बहादुर सिपाहियों के घरों को हमीं ने क़ायम रक्खा है।

मैंने पूछा—जब वे लौट कर वापस आवेंगे तब?

उसने तुरन्त जवाब दिया—तब क्या, तब हम साभिमान उनका स्वागत करेंगी और .खुशी से उन्हें उनका काम

* कन्डक्टरेट्स (Conducterettes) के मानी हैं—छोटे कन्डक्टर्स। कन्डक्ट्रेसेज़ और कन्डक्टरेट्स के उच्चारण में साम्य भी .खूब है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंप देंगी। उन्हें सकुशल वापस आया देख कर हम बहुत प्रसन्न होंगी।

मैंने फिर पूछा—और तब तुम क्या करोगी?

ऊँह, इसकी क्या चिन्ता? युद्ध के बाद हम लोगों को दूसरे सैकड़ों काम मिल जायँगे। स्त्रियों की योग्यता का पूरा पूरा परिचय अब देशनिवासियों को मिल गया है। अपने इस नवीन ज्ञान-लाभ का बदला वे हमें अवश्य ही देंगे।

गाड़ी से उतरते हुए मैंने कहा—तुम बहुत बड़ी आशा-वादिनी हो।

उसने जवाब दिया—नहीं, मैं केवल तर्क-सङ्गत फल-प्राप्ति की पक्षपातिनी हूँ।

बस, इस घटना का वर्णन यहीं समाप्त होता है।

जगद्विहारी सेठ,
ट्रिनिटी-हाल, केम्ब्रिज

व्यवहार द्वारा भाषा-शिक्षा।

प्रकृति हमारी जननी है। जहाँ तक हो सके हमको प्रकृति ही की गोद में विहार करना और उसी के अव्याज-मनोहर दृश्य देख देख कर आश्वस्त रहना चाहिए। ज्यों ज्यों हम प्रकृति से अपरिचित होते जायँगे—माता को भूलते जायँगे—त्यों त्यों हमारा क्लेश बढ़ता जायगा। हमें अपने उद्यान के कृत्रिम क्रीड़ाशैल पर ही न मुग्ध रहना चाहिए; किन्तु अब हमें कुक साहब की तरह ध्रुव तक का पता लगा कर प्रकृति का असली रूप देखना चाहिए। समय की पेर्सी ही राजाज्ञा है। समय यही चाहता है कि जहाँ तक हो मनुष्य-मात्र प्रकृति के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करे। वह केवल बनावटी वस्तुओं ही पर अवलम्बित न रहे। इस समय प्रकृति के सब से बड़े भक्त पाश्चात्य लोग समझे जाते हैं। उन्होंने प्रत्येक विषय में प्राकृतिक तत्त्व ढूँढ़ निकालने की प्रतिज्ञा सी कर ली है। भाषा-शिक्षा के विषय में भी वे प्रकृति के अनुसार चलना चाहते हैं। इसीलिए वे (Direct Method) अर्थात् व्यवहार द्वारा भाषायें सिखलाने की एक नई प्रणाली का अवलम्बन कर रहे हैं। उसी के विषय में दो चार बातें मुझे सरस्वती-पाठकों से कहना है।

यह सभी जानते हैं कि बच्चों को कोई भाषा नहीं सिखलाता। न अँगरेज़ बच्चे को कुत्ते के लिए डाग (Dog) सिखलाने की आवश्यकता रहती है और न हिन्दुस्तानी को डाग के लिए कुत्ता। जो बच्चा जिस देश में उत्पन्न होता है वह वहाँ की भाषा बिना मानो रटे सीख जाता है। वही भाषा उसकी मातृ-भाषा कहलाती है। मातृ-भाषा का इसीलिए इतना महत्त्व है कि उसके सीखने में किसी को कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता।

जिस रीति से बच्चा अपनी मातृ-भाषा सीख लेता है उसी रीति का यदि हम अन्य भाषा सीखने में उपयोग करें तो वह भाषा भी हमें थोड़े ही परिश्रम से आ सकती है और उस पर हमारी सच्ची स्वाधीनता और प्रभुता भी रह सकती है। वह हमारी बोलचाल की भाषा हो सकती है। इसी रीति को अँगरेज़ी में (Direct Method of Teaching) अर्थात् व्यवहार-द्वारा भाषा-शिक्षा कहते हैं।

इस विषय पर अँगरेज़ी जैसी समृद्ध भाषा में बहुत सी पुस्तकें हैं, जिनमें इस रीति का विस्तार-पूर्वक गुण-दोष-विवेचन किया गया है। उसका सारांश एक ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल के शब्दों में सुनिए—

That method is direct according to which one learns his mother tongue. In beginning the mother tongue we start with things whose names are already known to the child; before the child begins to give names, he imitates his brother or sister or parents in relating unconsciously

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the qualities of things. Again, names belong to objects and actions.

Thus before naming, the child is to—

(1) Observe objects and actions.

(2) Discern qualities.

(3) Understand relationship.

Direct method in teaching a foreign tongue requires an immense preparation. To begin with, it is slow. Proceed with vague whole-names, spoken words, then symbols—symbols according to sounds, then alphabet.

तात्पर्य्य यह कि जैसे बच्चा बिना समझे बूझे अपने भाई, बहन अथवा माता-पिता की बातें सुन सुन कर गाय के गाय, कुत्ते के कुत्ता आदि कहने लग जाता है; प्रारम्भ में विशेष कर जैसे केवल संज्ञा-शब्दों का ही प्रयोग करता और गाय-बैल का भेद नहीं समझता है; आगे चल कर जैसे अनुकरण ही के द्वारा धीरे धीरे क्रियाओं और विशेषणों का ज्ञान प्राप्त करता और शब्दों का परस्पर सम्बन्ध समझने लगता है; उसी तरह विदेशी भाषा अथवा अन्य भाषा सीखने के समय भी इन बातों पर ध्यान रखना चाहिए। व्यवहार-द्वारा विदेशी भाषा सिखलाने में शिक्षक को बहुत परिश्रम और बुद्धिमानी से काम लेना चाहिए। उसे ठीक उसी रीति का अवलम्बन करना चाहिए जिस रीति से बालक अपनी भाषा सीखता है। उसे भी पहले पहल केवल संज्ञा-शब्दों का परिचय कराना चाहिए। फिर, धीरे धीरे, वर्णमाला के उन अक्षरों का जिनका उच्चारण कहीं कहीं पृथक् और पदों में समान होता है—जैसे A का उच्चारण पृथक् और टेक (Take) पद में समान है; न कि W डब्लू ऐसे अक्षरों का जिनके पृथक् और पदगत उच्चारण में आकाश-पाताल का अन्तर है। ऐसा करने से ध्वनि और उसके साङ्केतिक अक्षरों के उच्चारण में जो अस्वाभाविक भेद है उससे बालक का जी न घबरायगा। ईश्वर की कृपा से हमारी नागरी-वर्णमाला इन दोषों से बिलकुल ख़ाली है। यहाँ जो लिखिए वही पढ़िए। फिर भी न जाने क्यों पादरी नोल्स ऐसे लोग दूषित रोमन-लिपि के इतने पक्षपाती हैं!

व्यवहार की रीति मौखिक रीति है। शिक्षक को इस रीति का विशेष रूप से ज्ञान होना चाहिए; नहीं तो इसका अटपट प्रयोग करने से इसमें कृत्रिमता और अस्वाभाविकता आ जाती है। इसका मूलमन्त्र यही है कि प्रथम ही से यह वैसे ही उपयुक्त होनी चाहिए जैसे प्रकृति बच्चों को उनकी मातृ-भाषा सिखलाने में करती है। विषय-निर्वाचन और वाक्य-रचना के सम्बन्ध में यह अवश्य विचार लेना चाहिए कि जो विषय हम बालकों के सामने उपस्थित कर रहे हैं अथवा जैसे पदों से जैसे वाक्य बना रहे हैं वह बालकों के मन के अनुकूल होगा या नहीं; उसे बालक स्वाभाविकता से ग्रहण कर सकेंगे या नहीं; उसका संस्कार उचित रूप से बालकों के मन में जमेगा अथवा नहीं; जिस विषय अथवा शब्द को हमने चुना है उसको भाषण अथवा प्रश्नोत्तर से हम समझा सकते हैं या नहीं—इत्यादि। ऐसा न करने से फल उलटा होता है और लोग इस रीति ही को दूषित बतलाने लगते हैं।

व्यवहार द्वारा शिक्षा देने के समय प्रत्यक्ष वस्तुयें—कुर्सी, मेज़, फूल-पत्तियाँ आदि—दिखला दिखला कर प्रश्न पूँछे जायँ तो बड़ा ही लाभ हो। यदि ऐसी वस्तुयें क्लास में दुर्लभ हों तो चित्रों से यह काम लेना चाहिए। चित्र व्यावहारिक शिक्षा के प्रधान साधन हैं। चित्रों की कृपा से पाठ्य विषय का प्रभाव सीधे बालकों के मन पर पड़ता है; मातृ-भाषा या किसी दूसरी भाषा से व्यवधान नहीं होने पाता। इनके द्वारा आन्तरिक भावों—क्रोध, शोक, पीड़ा आदि—की भी अभिव्यक्ति बड़ी सुगमता से हो जाती है। परन्तु चित्रों का उपयोग शिक्षा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भावस्था ही में करना उचित है। चित्र साधन हैं, साध्य नहीं; अतः इनका प्रयोग साधन के रूप में होना चाहिए। शिक्षा सर्वदा चित्रों के विषय ही पर अवलम्बित न हो; वह स्वतन्त्र होनी चाहिए। चित्र-प्रदर्शन के समय यह भी सोच लेना अच्छा है कि किस वस्तु के चित्र से बालकों का अधिक मनोरञ्जन होगा। क्योंकि चित्र जितने ही मनोरञ्जक होंगे शिक्षा में उतनी ही सफलता होगी। इसी लिए इसमें अत्यन्त चतुर और आन्तरिक भावों को सरलता से अभिव्यक्त करने वाले शिक्षक की आवश्यकता है।

इस विषय में एक पाश्चात्य विद्वान् का मत सुनिए—

"The first advantage consists in the fact that we have here lessons whose subject is the actual experience of every child from hour to hour in his daily life—how he sleeps and wakes, dresses and undresses, eats and drinks; how those around him keep the house clean and tidy, procure and prepare his food; the actions and characteristics of the domestic animals with which he comes in contact; their habits and haunts and their uses towards himself. From these close circles they widen up to the materials with which he is clothed, the tools and utensils that he handles—whence they come, how and why they gained their present form." * *

"These are all subjects that occupy the child's attention naturally, and call up questions that seek an answer in his awakening mind."

प्रश्नोत्तरी के समय शिक्षक निरन्तर वही प्रश्न न करे जो उसकी पुस्तक में हैं। वह बालकों की प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार उन प्रश्नों में न्यूनाधिक्य भी कर सकता है।

व्यवहार द्वारा शिक्षा के समय व्याकरण का उपयोग ऐसा स्वाभाविक और अज्ञात रूप से होना चाहिए जिससे बालकों के प्राकृतिक भाषाज्ञान के अङ्कुर पर आघात न हो; क्योंकि ऐसी शिक्षा का वही प्रधान फल है। व्याकरण और बालकों की आवश्यकता की ऐसी एकस्वरता होनी चाहिए जिससे यथार्थ परिपाक में त्रुटि न रह जाय।

व्यवहार अनुवाद को भी स्थान देता है; परन्तु केवल भाषाओं के तुलनात्मक ज्ञान के सम्पादन के लिए। प्रारम्भावस्था में जब कि भाषा-ज्ञान का बीज जम रहा है अनुवाद की कोई आवश्यकता नहीं। अनुवाद करने के लिए अनुवादक में भाषाओं की तुलना करने की योग्यता अपेक्षित होती है। उस योग्यता की सम्भावना नये छात्र में नहीं की जा सकती; अतः उसका किया हुआ अनुवाद बिलकुल बनावटी और बे-मुहाविरे होगा। इस लिए कम से कम एक वर्ष तक अनुवाद न कराना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अनुवाद समालोचना और तुलना-शक्ति को बढ़ाता है; परन्तु यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि वह स्वतन्त्रता से भाषा-ज्ञान-शक्ति का विकासक है। वह व्याकरण के तत्त्वों को समझाता अवश्य है; किन्तु भाषा-विज्ञान के विकास को रोकता है। अतः अधिकतर स्वतन्त्र रचना और निबन्ध-लेखन से कार्य्य लेना चाहिए।

कुछ लोग व्यावहारिक शिक्षा को असम्भव, अस्वाभाविक, हानिकारक और अव्युत्पादक कहते हैं, परन्तु यह दोषारोपण न्यायसङ्गत नहीं; क्योंकि ये दोष रीति के दुष्प्रयोग अथवा शिक्षक की अयोग्यता के कारण हो सकते हैं, रीति की हीनता के कारण नहीं। इन पङ्क्तियों का लेखक इसी रीति से छोटी श्रेणियों में संस्कृत पढ़ाता है। किन्तु सिवा लाभ के हानि नहीं देखता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोगों का मत है कि इस रीति का आविष्कार फरासीसी विद्वान् गोयें (Gouin) ने किया है; परन्तु यदि देखा जाय तो इसका मूल हमारी संस्कृत-भाषा में भी है।

प्राचीन विद्वानों ने अर्थबोधक साधनों का वर्णन निम्न-लिखित पद्य में किया है—

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।

अर्थात् किसी शब्द का अर्थ इन साधनों से जाना जाता है—व्याकरण, उपमान (Analogy) कोश, आप्तवाक्य (Verbal Authority) व्यवहार (Direct Method) वाक्यशेष (Supplement or Appendix), विवरण (Comment) और प्रसिद्ध पद का सान्निध्य। इन सब के उदाहरण लिखना अप्रासङ्गिक होगा; अतः व्यवहार के विषय में ही कुछ सुन लीजिए—

उत्तमवृद्धेन मध्यमवृद्धमुद्दिश्य 'गामानय' इत्युक्ते तं गवानयनप्रवृत्तमुपलभ्य बालोऽस्य वाक्यस्य 'सास्नादिमत्पिण्डानयनमर्थः' इति प्रथमं प्रतिपद्यते। अनन्तरं च 'गां बधान' 'अश्वमानय' इत्यादावावापोद्वापाभ्यां गोशब्दस्य 'सास्नादिमानर्थः' आनयनपदस्य च 'आहरणमर्थः' इति सङ्केतमवधारयति (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)

"शब्दवृद्धाभिधेयांश्च प्रत्यक्षेणात्र पश्यति।
श्रोतुश्च प्रतिपन्नत्वमनुमानेन चेष्टया।
अन्यथानुपपत्त्या तु बोधेच्छक्तिं द्वयात्मिकाम्।
अर्थापत्त्यावबोधेन सम्बन्ध त्रिप्रमाणकम्"

इति प्रतिपादितदिशा 'देवदत्त ! गामानय'—इत्याद्युत्तमवृद्धवाक्यप्रयोगाद् देशाद्देशान्तरं सास्नादिमन्तमर्थं मध्यमवृद्धे नयति सति 'अनेनास्माद् वाक्यादेवंविधोऽर्थः प्रतिपन्नः' इति तच्चेष्टया अनुमाय तयोरखण्डवाक्यवाक्यार्थयोरर्थापत्त्या वाच्यवाचकभावलक्षणसम्बन्धमवधार्य बालस्तत्र व्युत्पद्यते। परतः 'चैत्र ! गामानय', 'देवदत्त ! अश्वमानय', 'देवदत्त ! गां नय'—इत्यादि वाक्यप्रयोगे तस्य तस्य शब्दस्य तं तमर्थमवधारयति (काव्यप्रकाश, पञ्चम उल्लास)

आरोह जयाय कुञ्जरमिति वाक्यं प्रयोक्ता' प्रत्यक्षीकरोति प्रथमम्। चरममनेनास्माद् वाक्यादयमर्थोऽधिगत इति तदभिमुखानुसरणरूपया चेष्टयाऽनुमिनोति। इयं प्रवृत्तिरर्थावधारणपूर्विका प्रवृत्तित्वात् संप्रतिपन्नप्रवृत्तिवदिति। यद्यमुमर्थमस्माद् वाक्यान्नाज्ञासीत् तर्हि कथं तदभिमुखं चेष्टत इत्यर्थापत्त्या तयोः × × × × वाक्यवाक्यार्थयोर्वाच्यवाचकभावलक्षणसम्बन्धमवधारयति। ततस्तत्र व्युत्पत्तिमासादयति बालः। × × × ×

(एकावली, प्रथमोन्मेष)

इन अवतरणों में उसी रीति का वर्णन है जिससे बच्चा अपनी भाषा सीखता है। इनका अक्षरशः अनुवाद लिखना व्यर्थ है। जितने अर्थबोधक पहले कहे गये हैं उनमें व्यवहार (Direct Method) को नागेशभट्ट अपनी वैयाकरण-सिद्धान्तमञ्जूषा में अर्थबोधकों का शिरोमणि बतलाते हैं—

साच शक्तिः साधुष्विवापभ्रंशेष्वपि, शक्तिग्राहकशिरोमणेर्व्यवहारस्य तुल्यत्वात्।

केशवप्रसाद मिश्र

कभी कुछ और कभी कुछ।

बराबर एक पथ पर तुम नहीं चलते नज़र आते।
कभी इस ओर हो जाते कभी उस ओर हो जाते॥
कभी तो तुम हमें निज छवि-सुधा सन्तत पिलाते हो।
कभी फिर दर्शनों के हित हमें दिन रात तरसाते॥१॥

कभी तो रूठ जाने पर हमें बहुविध मनाते हो।
कभी फिर बोलने की भी कृपा हम पर न दिखलाते॥
कभी आकर स्वयं हम से विनय-युत याचना करते।
कभी मम प्रार्थना को भी न तुम हो चित्त में लाते॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी बन कर सुधाकर तुम सुधा-धारा बहाते हो।
कभी विष-वारि-बूँदों को निरन्तर ख़ूब टपकाते॥
कभी अलि बन स्वयं पङ्कज-कली हमको समझते हो।
कभी फिर मान कर चम्पा हमारे ढिग नहीं आते॥३॥
कभी तुम प्रेम के जल से हृदय-वल्ली खिलाते हो।
कभी उसको उपेक्षा के अनल से ख़ूब झुलसाते॥
कभी तुम पूर्ण आशा की विमल ज्योत्स्ना दिखाते हो।
कभी नैराश्य की काली निशा हो सामने लाते॥४॥
कभी तो प्रेम का शुभ पाठ तुम हमको पढ़ाते हो।
कभी फिर प्रेम की बाज़ी स्वयं ही हार तुम जाते॥
कभी वीणा बजा कर तुम रिझाते अमृत बरसाते।
कभी फिर तुम हमें हरदम खिझाते क्लेश पहुँचाते॥५॥
कभी तो प्रेम से मिल कर गले हमको लगाते हो।
कभी करके किनारा तुम हमें अत्यन्त कलपाते॥
कभी तो कुसुम से कोमल हमें तुम ज्ञात होते हो।
कभी कर्कश कुलिश जैसे कठोराकार हो जाते॥६॥

गोपालशरणसिंह

श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना।

(लेखक, सेंट निहालसिंह, लन्दन)

सरस्वती के पाठक श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना बी० एस—सी०, इ० इ० (पिट्सबर्ग) के नाम से अच्छी तरह परिचित हैं। वैज्ञानिक विषयों पर आपके कितने ही लेख सरस्वती में निकल चुके हैं। पर बहुत कम लोगों को आप की जीवन-कथा मालूम होगी। अतएव हम आज, उसे, थोड़े में, सुनाये देते हैं। उसमें शिक्षा ग्रहण करने की बहुत सामग्री है।

श्रीयुत खन्ना का जन्म, प्रयाग में, १८८८ ईसवी में, हुआ। आपके माता-पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। वे उन्हें माध्यमिक शिक्षा का लाभ तक करा देने में समर्थ न थे। तिस पर भी श्रीयुत खन्ना विचलित न हुए। मिडिल का इम्तिहान पास कर चुकने पर वे तार का काम (Telegraphy) करने लगे। उससे, थोड़े ही दिनों में, आपने अगले विद्याध्ययन के ख़र्च के लिए काफ़ी रक़म इकट्ठी कर ली। तब आपने प्रयाग-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास की। आपको उच्च शिक्षा प्राप्त करने की बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी। क्रिश्चियन कालेज, प्रयाग, के भूतपूर्व अध्यक्ष डाकृर ए० एच० ईविंग् पर आपकी महत्त्वाकांक्षा का बड़ा असर हुआ। उन्होंने आपके लिए इलेक्ट्रिकल इंजिनियरिंग (विद्युद्विद्या) के अध्ययन का सुभीता कर दिया।

उस अध्ययनकाल में ही, श्रीयुत खन्ना को, १९०९ ईसवी वाली प्रयाग-प्रदर्शिनी में विद्युच्छास्त्री के सहायक (Assistant Electrician) का पद मिला। इसके पश्चात् आप ने और भी कुछ काम किये, जिससे आपको काफ़ी आमदनी हुई। तब आपने कल-कारख़ाने से सम्बन्ध रखने वाली शिक्षा की पूर्ति के लिए अमेरिका के संयुक्त-राज्यों के लिए प्रस्थान किया।

१९१० ईसवी के अन्त में श्रीयुत खन्ना न्यूयार्क पहुँचे। वहाँ के विश्वविद्यालय के सभापति (Chancellor) के नाम आप डाकृर ईविङ्ग का परिचय-पत्र ले गये थे। पत्र दिखाते ही आप तत्काल इलेक्ट्रिकल इंजिनियरिंग विभाग में भरती कर लिये गये। तीन वर्षों तक आप पिट्सबर्ग में रहे।

आपके पास इतना धन तो था नहीं जो अपना ख़र्च भी चलाते और विश्वविद्यालय की फ़ीस भी देते। अतएव आप छुट्टियों के दिनों में मिहनत-मज़दूरी किया करते। पहले पहल तो आपको भोजनालयों में बरतन साफ़ करने और धनी अमरीकनों के अहातों में घास छीलने तक का काम करना पड़ा। आपने वहाँ खेतों पर भी मज़दूरी की। बड़े दिनों की छुट्टियों में वहाँ काम बढ़ जाता है। इस लिए नौकरों की बड़ी माँग रहती है। श्रीयुत खन्ना ने इस सुअवसर को भी हाथ से न जाने दिया। जो काम मिला किया। कुछ दिनों बाद आपको एक इलेक्ट्रिशियन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् विद्युद्विद्या-विशारद का पद मिल गया। इससे आपके "एक पंथ दो काज" हुए। जीवन-निर्वाह का सुभीता भी आपको हो गया और इलेक्ट्रिकल इंजिनियरिंग की भिन्न भिन्न शाखाओं के अनुभव और प्रयोग का भी अच्छा अवसर मिला। आपने वहाँ की वेस्टिंग हाउस कम्पनी (Westing House Company) के बड़े बिजली के कारख़ाने में भी कुछ समय तक काम किया। वहाँ से आपको अच्छी आमदनी हो जाती थी। इस तरह आपने वहाँ के विश्वविद्यालय की पदवी-परीक्षा पास कर ली। घर लौटते समय आपके पास ख़र्च के लिए काफ़ी रक़म हो गई थी। अतएव आप मज़े से स्वदेश लौट आये।

१९१३ के अन्त में श्रीयुत खन्ना भारत पहुँचे। आते ही आपका विवाह एक पञ्जाबी कुमारिका से हो गया। श्रीमती खन्ना जालन्धर के कन्या-विद्यालय में शिक्षा पाई हुई हैं। यहाँ आकर खन्ना महाशय ने जीविका-प्राप्ति के लिए बहुत प्रयत्न किये। पर उन्हें अनुभव हुआ कि अधिकारियों के ख़यालात अमेरिका के शिक्षा प्राप्त लोगों के विषय में अच्छे नहीं हैं। अतएव आपने फ़ौरन इँगलेंड जाने की ठानी और युनाइटेड किंग्डम (विलायत) के पोस्ट ग्रेजुएट की परीक्षा पास करने का निश्चय आपने कर लिया। परन्तु—"सर्वारम्भास्तण्डुलाः प्रस्थमूलाः।" उस समय आपकी परिस्थिति ऐसी न थी जो आप वहाँ जाकर अपनी इच्छा पूर्ति कर सकते।

अतएव आपने लाहौर में एक नौकरी कर ली। एक वर्ष उस जगह पर रह कर आपने लन्दन-यात्रा के लिए आवश्यक द्रव्यसञ्चय कर लिया।

श्रीयुत खन्ना साम्राज्य की लन्दन जैसी राजधानी में बड़ी मितव्ययिता से रहने लगे। छुट्टियों के दिनों में आप युद्धोपकरण बनाने वाले कारख़ानों में काम करते। इससे जो आमदनी होती उससे आप अपने कालेज का ख़र्च चलाते। दक्षिणी केनसिंग्टन (South Kensington) के इम्पीरियल कालेज आव् साइंस एंड टेकनालाजी में आपने अपनी अभीष्ट शिक्षा प्राप्त कर ली। जिस दिन आपको उस संस्था से पदवी मिली उसी दिन आपको गिल्डहाल, लन्दन, के कार्पोरेशन में असिस्टन्ट इंजिनियर का पद मिला। आज कल आप वहाँ की बिजली की प्रयोगशाला और परीक्षा-भवन का काम देखते हैं। आप पहले ही भारतवासी हैं, जिसे यह सम्मानास्पद पद मिला है। आप शाम को प्रायः वैद्युतिक रसायन-शास्त्र (Electro—Chemistry) का अध्ययन किया करते हैं। उन्हें आशा है कि वे शीघ्र ही इतना द्रव्य अर्जन कर लेंगे कि आसानी से भारत लौट सकें। परमात्मा करे, उनकी शुभाकाङ्क्षा पूर्ण हो और वे भारत लौट कर अपने अभीष्ट-साधन प्राप्त करें।

कुमारी हेलेन कलर।

गत दिसम्बर के "माडर्न रेव्यु" में अध्यापक सुधीन्द्र बोस ने कुमारी हेलेन केलर के जीवन का जो वृत्तान्त दिया है उसे पढ़ कर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। जब वह डेढ़ ही वर्ष की थी, उसके लिए संसार अन्धकारमय और शून्य हो गया। उसकी दृष्टि जाती रही; वह बहरी भी हो गई और उससे बोलने की शक्ति भी छीन ली गई। परन्तु वही बहरी, अन्धी, गूँगी हेलेन अमेरिका के विख्यात हारवर्ड-विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास करके लैटिन, ग्रीक, फ़्रेंच, और अँगरेज़ी भाषाओं की पूरी पण्डिता बन गई है। आज अमेरिका में उसके व्याख्यान बड़े चाव से सुने जाते हैं। संसार-सेवा उसके जीवन का मुख्य सङ्कल्प है। आज वह बहरी होते हुए भी सुनती है, अन्धी होकर भी देखती है, गूँगी रह कर भी बोलती है। इस देवी का जीवन-चरित आश्चर्य्य में डालने वाला ही नहीं, संसार को शिक्षा देने के लिए आदर्श भी है, विशेष करके उस देश को जहाँ के निवासियों का हाथ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-सङ्ग्राम में ज़रा भी कठिनाई उपस्थित होते ही, झट मस्तक पर जाता है। पाठकों के लिए उसी पूर्वोक्त लेख का सारांश नीचे दिया जाता है।

कुमारी हेलेन केलर का जन्म, अमेरिका में, सन् १८८० ईसवी में, हुआ। उसके पिता पत्र-सम्पादन का काम करते थे। कुछ काल तक वे फ़ौज में भी उच्च पद पर रहे थे। पैदा होने के समय हेलेन की सब इन्द्रियाँ अपनी स्वाभाविक अवस्था में थीं; किसी में भी कोई त्रुटि न थी। परन्तु १६ महीने के बाद वह बीमार पड़ी। इसी बीमारी में उसकी दृष्टि और सुनने की शक्ति जाती रही। इन व्यङ्गों के रहते हुए भी उसने निर्भयता के साथ संसार में प्रवेश किया और अन्त में कठिन परिश्रम करके अपने उद्देश की सिद्धि प्राप्त ही कर ली।

उन्नीस ही महीने में संसार का जो अनुभव उसे हो सका उसे वह भूली नहीं। वह लिखती है—अपने जीवन के १६ महीनों में ज्योतिर्मय आकाश और हरे भरे खेतों की जो झलक मुझे मिली वह पिछले अन्धकार में लुप्त न हो सकी।

हेलेन का मस्तिष्क कभी स्थिर न रहता था। वह निरन्तर कुछ न कुछ सोचा करती थी। बचपन ही से वह बोलने के लिए व्याकुल रहती थी। उसे बोलने का कोई नया ढँग निकालने की धुन लगी थी। अन्त में वह सङ्केतों का उपयोग करने लगी। नीचे को सिर हिलाना उसके लिए 'हाँ' का अर्थ रखता था, इधर उधर सिर डुलाना 'ना' का बोध करता था। इसी तरह वह धक्का देने से 'जाने' का और अपना कोट खींचने से 'आने' का अर्थ समझती थी। जब कभी उसे अपनी माँ से मलाई की बर्फ़ माँगने की इच्छा होती थी तब वह जमानेवाली कल की गति का सङ्केत करके काँपने लग जाती थी। हाथ फैला कर वह रोटी का भाव प्रकट करती थी।

उसका पिता पहले उसे टेलीफ़ोन के निर्माण-कर्त्ता डाक्टर अलेग्ज़ांडर ग्राहम बेल के पास ले गया। परन्तु उस विद्युच्छक्ति के जादूगर की बुद्धि भी चक्कर खा गई। अन्त में वह भी इन दोषों को दूर करने में समर्थ न हो सका। परन्तु उसकी सलाह से बोस्टन नगर में अन्धों का जो स्कूल है उसकी एक अध्यापिका हेलेन की शिक्षा के लिए रक्खी गई। उसका नाम कुमारी सुलीवान था। इस समय हेलेन की अवस्था ६ वर्ष ८ महीने की थी। बड़ी कठिनाई से वह उसकी सहायता से दो शब्द सीख सकी। ये शब्द 'गुड्डी' और 'रोटी' थे। अध्यापिका सुलीवान सदा हेलेन के साथ रहती थी। पहले कुछ दिन तक वह उसे हाथों के सङ्केत द्वारा एक आध शब्द बताती रही। पर उसे भाषा का कुछ भी ज्ञान न हो सका। एक दिन जब वह अपनी अध्यापिका के साथ कुवें से पानी खींच रही थी तब उसे सहसा भाषा का रहस्य ज्ञात हुआ। पानी और प्याले का ज्ञान उसे स्पर्श-द्वारा था ही। अध्यापिका सुलीवान ने उसके हाथ पर इन दोनों शब्दों को लिख कर उसे इनका शब्द-ज्ञान कराया। तब हेलेन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसकी समझ में तुरन्त ही आ गया कि संसार की सभी वस्तुओं का कुछ न कुछ नाम है, और वे नाम उसके हाथ पर लिख कर उसे समझाये जा सकते हैं।

सुलीवान के लिए अब शिक्षा देना सहज हो गया। धीरे धीरे इसी तरह वह हेलेन को शब्द-ज्ञान करा चली। हेलेन को भी पढ़ने की इतनी उत्कण्ठा थी कि वह एक दिन में तीस तीस नये शब्द याद करने लगी। यहाँ तक कि तीन महीने में उसने ३०० शब्द याद कर लिये। चौथे महीने वह बच्चों के टेढ़े मेढ़े अक्षर भी लिखने लगी। छठा महीना पूरा होते ही उसे इतना शब्द-ज्ञान होगया कि वह उभड़े हुए अक्षरों में छपी हुई छोटी छोटी सरल कहानियाँ पढ़ने लगी।

जिस प्रान्त में वह रहती थी उसका जल-वायु बहुत स्वच्छ है। इसलिए यह प्रान्त सदैव नाना प्रकार के फलों, फूलों और पक्षियों से परिपूर्ण रहता है। हेलेन की शिक्षा अधिकतर इसी सुन्दर प्रान्त में, स्वच्छ और नील आकाश के नीचे, हुआ करती थी। गणित, भूगोल, अँगरेज़ी भाषा, इतिहास, पशु और वनस्पतिशास्त्र इत्यादि विषयों में उसकी शिक्षा दिन पर दिन अधिकाधिक होने लगी।

हेलेन केलर की ज्ञानपिपासा पहले ही से बहुत बढ़ी हुई थी। दस ही वर्ष की अवस्था में उस अन्धी और बहरी बालिका ने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया। इतने ही दिनों में अमेरिका की राजनीति की भी बहुत बातें वह समझने लग गई। एक दिन उसका पिता अमेरिका की व्यापार-नीति पर कुछ बातें कर रहा था। इस पर उसने बात-चीत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

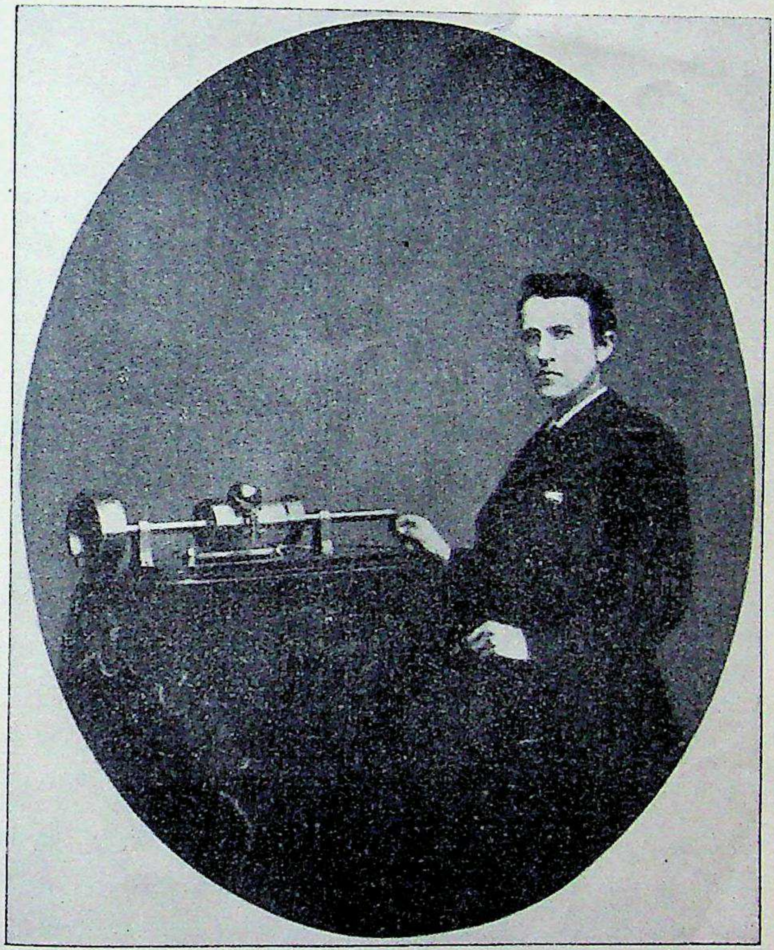

एडिसन साहब और उनका टीन का फोनोग्राफ़—१८७८ ई० ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय जानना चाहा। पर उससे कहा गया कि वह उस विषय को समझ नहीं सकती। इस पर वह झट बोल उठी—"मेरी समझ बड़ी तेज़ है। यूनान के लोग तो अपने बच्चों को अच्छी अच्छी बातें सुनने दिया करते थे"। भला ऐसी समझ-वाली बालिका से कोई बात अज्ञात क्यों कर रह सकती थी? अभी तक वह अँगुलियों ही के द्वारा बात चीत करती थी। अब उसको बुलाने के लिए प्रयत्न आरम्भ हुआ। शब्दोच्चारण के लिए वह स्वभाव ही से उत्सुक थी। बोलने की शिक्षा के लिए वह होरेसमैन-स्कूल भेजी गई। वहाँ पर ११ पाठ पढ़ चुकने पर जब वह घर लौटी तब रास्ते में उसने अपनी पुरानी अध्यापिका से कहा—"मैं अब गूँगी नहीं। अब मैं बोल सकती हूँ"।

इसके बाद वह बोलने की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने लगी। हारवर्ड-विश्वविद्यालय के रैडक्लिफ़-कालेज में भरती होने के लिए उसने लैटिन और फ्रेंच भाषाओं का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। कालेज के प्रबन्धकर्ताओं ने उस बहरी-अन्धी बालिका को भरती करना उचित न समझा। कालेज का काम वह कैसे कर सकेगी, यह बात उन लोगों की समझ में न आई। परन्तु वह वीर बालिका हताश न हुई। उसने उन लोगों को लिख भेजा कि—"कोई अच्छा सैनिक युद्ध के पूर्व ही अपनी हार नहीं स्वीकार करता"। थोड़े ही दिन बाद वह एन्ट्रेन्स की परीक्षा में अच्छे नम्बर पाकर पास हुई। अब कालेज में भरती होने के लिए भी किसी प्रकार की बाधा न रही।

कालेज में उसे लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच, और अँगरेज़ी भाषाओं के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, इतिहास और दर्शनशास्त्र का भी अध्ययन करना पड़ता था। इन विषयों पर सब पुस्तकें उभड़े हुए अक्षरों में मिलना बड़ा कठिन था। इस लिए इनका एक एक शब्द, एक एक पृष्ठ, हेलेन के हाथ पर लिख लिख कर उसे पढ़ाया जाता था। पाठक समझ सकते हैं कि यह कितना कठिन काम था। उसकी अध्यापिका बराबर उसके साथ कालेज जाया करती और व्याख्यानों को अपनी अँगुली से हेलेन की हथेली पर लिख कर उसे समझाती थी।

१८९९ ईसवी में बी० ए० की अन्तिम परीक्षा का समय आया। वह अन्य विद्यार्थियों से अलग एक कमरे में बिठाई गई। उसकी जानपहचान-वाला कोई भी उस कमरे में न जाने पाया। उसने प्रश्नों के उत्तर टाइप-राइटर से लिखे। जो कुछ वह लिखती थी उसे न तो वह स्वयं पढ़ सकती थी और न उसे कोई बतलाने वाला ही था। इससे उसकी कठिनता और भी बढ़ गई। पर वह देवी किसी भी कठिनता से डरने या मुँह मोड़ने वाली न थी। उसने इस उत्तमता से उत्तर लिखे कि परीक्षा में वह सम्मान-सहित उत्तीर्ण हो गई। इतनी भाषायें सीखना साधारण मनुष्य के लिए सहज नहीं। फिर बहरों और गूँगों के लिए तो एक भी भाषा सीखना बड़ा दुष्कर है। इस पर अन्धा भी होना तो मानों भाषा-ज्ञान के द्वार का एक दम ही बन्द हो जाना है। तब भी, इन सब कठिनाइयों के रहते हुए भी, कुमारी हेलेन ने जिस उत्तमता के साथ शिक्षा प्राप्त की उसे देख कर उस देवी की प्रखर बुद्धि और असीम धैर्य्य की सहस्रमुख से प्रशंसा करनी पड़ती है।

बी० ए० होने के पश्चात् कुमारी हेलेन ने अपना जीवन संसार-सेवा के लिए अर्पण कर दिया। यद्यपि वह घनीभूत अन्धकार के कारागार में बद्ध है, तथापि यह संसार उसके लिए अद्भुत प्रकाश और सौन्दर्य्य से परिपूर्ण है। अन्धों और बधिरों की शिक्षा की उन्नति के लिए वह दिन रात परिश्रम करती है। अपने देश के सामाजिक, धार्म्मिक और राजनैतिक विषयों में उसकी बड़ी रुचि है। स्त्रियों को वोट (मताधिकार) देने की भी वह पक्षपातिनी है। उसके कई लेखों की बड़ी प्रशंसा है। बड़े बड़े विद्वानों के सामने उसके व्याख्यान होते हैं। उसने अब तक बहुत कुछ लिख डाला है और बराबर लिखती जाती है। "मेरे जीवन की कहानी", "मेरा संसार", "अन्धकार से बाहर"—इत्यादि पुस्तकें उसने लिखी हैं। उनका अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। वह कभी कभी कविता भी करती है। अब तक कई अच्छी अच्छी कवितायें वह लिख चुकी है।

देखने और सुनने का काम उसके हाथ करते हैं। अधिकतर उसको स्पर्श से ही रूप का ज्ञान होता है। शब्द-तरङ्गों का आघात उसके शरीर के ज्ञानतन्तुओं पर होता है। इससे उसको शब्द-ज्ञान का आभास मात्र होता है। घ्राण-शक्ति से भी उसको बहुत कुछ सहायता मिलती है। हाथ तो उसके नेत्र-सदृश हैं। उनके सम्बन्ध में वह लिखती है—"लोगों के हाथ मौन होते हुए भी मेरे लिए बोलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ हाथों के तो स्पर्श से ही धृष्टता टपकती है। मुझे कुछ ऐसे उदासीन मनुष्य भी मिले हैं जिनकी ठण्ढी अँगुलियाँ मेरे हाथ में लगीं तो मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं बर्फ़ के किसी टुकड़े से हाथ मिला रही हूँ। कभी कभी ऐसे सज्जन भी मुझे मिल जाते हैं, जिनके हाथों में (आनन्दमय जीवनरूपी) सूर्य्य-किरणों का तेज रहता है। ऐसे हाथों के स्पर्श मात्र से मेरा हृदय तेजोमय हो उठता है।"

अपनी कल्पना-शक्ति के विषय में हेलेन लिखती है—"बिना कल्पना के मेरा संसार कितना उदासीन होता। मेरी वाटिका भिन्न भिन्न रूप और गन्ध की लताओं से आच्छादित मौन पृथ्वी का एक टुकड़ा हो जाती। परन्तु जब मेरे मानसिक चक्षु उसके सौन्दर्य पर दृष्टिपात करने लगते हैं तब मेरे पद-तल की भूमि जगमगा उठती है, घास-पात पत्तियों से लहलहाने लगती है और गुलाब की सुगन्धि चारों ओर फैल जाती है। मैं जानती हूँ कि खिले हुए वृक्ष कैसे सुहावने मालूम होते हैं और पक्षियों की कलोलें कितनी सुखदायक होती हैं। यह सब उस अद्भुत कल्पना-शक्ति ही की करतूत है। वह न होती तो मेरे दुःख का ठिकाना न रहता"।

प्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेन ने एक बार कहा था कि उन्नीसवीं शताब्दी में दो मनुष्य सबसे अधिक विख्यात हुए हैं—एक तो फ़्रांस का नेपोलियन, दूसरी कुमारी हेलेन केलर। निस्सन्देह हेलेन साक्षात् देवी है। उसने असम्भव को भी सम्भव करके दिखला दिया है। नपोलियन का नाम तो बहुतेरे पढ़े-लिखे लोगों ने सुना होगा; परन्तु इस देवी के जानने वाले अभी बहुत कम हैं। जो कोई उसके जीवन-सङ्ग्राम की करुणा-पूर्ण कहानी सुनेगा वह स्तम्भित हुए बिना न रहेगा।

इस देवी के विचार भी बड़े ही भोले-भाले, मनोहारी और पवित्र हैं। गत वर्ष "आनन्द" पर व्याख्यान देते हुए उसने कहा था—"जीवन का उद्देश आनन्द-प्राप्ति है। यह आनन्द प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। जब हम दूसरों से प्रेम और उन पर विश्वास करते हैं तभी हमें आनन्द मिलता है। सुख से आनन्द कहीं बढ़ कर है। आनन्द-प्राप्ति, बिना उसकी प्रतीक्षा किये ही, होती है। मनुष्य को केवल अपने ही जीवन को आनन्द से परिपूर्ण न बनाना चाहिए; उसे दूसरों को भी आनन्द का रसास्वादन कराने का प्रयत्न करना चाहिए"। व्याख्यान समाप्त करते समय उसने जो कुछ कहा था वह सभी के हृदय-पटल पर स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहना चाहिए। वह वाक्य यह था—"इच्छाजनित आवश्यकताओं की परिपूर्ति करना आनन्द नहीं। आनन्द प्रेम है। प्रेम सेवा है। और संसार की रक्षा प्रेम ही से होगी"।

जिस सिद्धान्त का आदर्श उसकी जीवनी है उसे वह अपनी एक पुस्तक में इस प्रकार प्रकट करती है। "मुझे ईश्वर में विश्वास है; मुझे मनुष्यों में विश्वास है; मुझे आत्मा की शक्ति में विश्वास है। अपने आपको तथा दूसरों को भी उत्साहित करना मैं अपना परम पवित्र कर्तव्य समझती हूँ। ईश्वर-जनित संसार के प्रतिकूल अपमान-सूचक वचन मुख से निकालना महा पाप है, क्योंकि किसी भी मनुष्य को उस जगत् को, जिसे स्वयं ईश्वर ने अच्छा बनाया है और जिस को अच्छा बना रखने के लिए सहस्रों मनुष्यों ने प्रयत्न किया है, बुराई करने का अधिकार नहीं। मेरा विश्वास है कि हम लोगों को इस ढँग से काम करना चाहिए जिससे हमारा पारस्परिक सम्बन्ध दिन पर दिन घनिष्ठ होता जाय और वह युग निरन्तर निकट आता रहे जिस में कोई भी मनुष्य दूसरों को दुखी देख कर सुखी न रह सकेगा"।

गङ्गाशङ्कर मिश्र, बी० ए०

दृढ़ता।

धन्य वही है जिसे न रिपुओं में प्रतीति है; रीति, प्रीति है नहीं, न उनसे तनिक भीति है।
जिसको निज कर्तव्य याद रहता है हर दम, उसका कब उत्साह भला हो सकता है कम?
हिम-मेघों ने रवि-कार्य में विघ्न नहीं क्या क्या किया?
वे किन्तु आप ही मर मिटे उसका क्या कुछ कर लिया?॥१॥
कर्मवीर बकवाद नहीं करता है खल से; शान्ति सहित निज कार्य किया करता है बल से।
यदपि क्षुद्र-गण उसे बुरी बातें कहता है, तो भी वह निज धर्म-मार्ग पर दृढ़ रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यों श्वान भूँकते हैं खड़े हाथी जाता है चला।
क्या मशकों के हुङ्कार से खगपति डरता है भला ?॥२॥

अपने बल से आप खड़ा जो हो सकता है, वही मनुज निज कुल-कलङ्क को धो सकता है।
निज बल का विश्वास बना है जिसके मन में, उसे सिद्धि सर्वत्र मिलेगी—रण में, वन में।
क्यों अपढ़ चतुष्पद सिंह भी राज-शब्द से युक्त है ?
जो विक्रमशाली है सदा सभी दुखों से मुक्त है ॥३॥

धारा रुकती नहीं कभी नदियों की तब तक, प्यारा उन्हें पयोधि नहीं मिलता है जब तक।
सुधा प्राप्त हो गई नहीं देवों को जब तक, वारिधि मथते चले गये वे थके न तब तक।
जो अज्ञ कार्य आरम्भ कर पीछे को हट जायगा।
वह फिर कैसे कहिए कभी भला सिद्धियाँ पायगा ॥४॥

दृढ़-प्रतिज्ञ क्या कभी विघ्न से डर सकते हैं ? यम का भी वे सदा सामना कर सकते हैं।
जो चलते हैं सदा पराये हित के मग में, चुभ सकते हैं कभी न काँटे उनके पग में।
अति प्रबल पवन से भी जलद तब तक हट जाते नहीं।
जब तक सतृष्ण संसार को जलमय कर पाते नहीं ॥५॥

दुःखानल में धीर जन्म भर जल सकता है; पर अपने सिद्धान्त से न वह टल सकता है।
प्यासा ही मर जाय किन्तु जब तक जीता है; स्वाती-जल को छोड़ न कुछ चातक पीता है।
जो जलधि कभी बाँधा गया, मथा गया, सोखा गया।
वह गत-मर्यादा भी कभी चलता क्या देखा गया ? ॥६॥

दृढ़-प्रतिज्ञ जो कार्य्यसूत्र कर में धरता है, करता है वह उसे, नहीं जब तक मरता है।
कह कर जो हट जाय वही अति कायर नर है, जग में वह उपहास-पूर्ण अपयश का घर है।
शशी, समीरण, सूर्य्य क्या करते कुछ विश्राम हैं ?
शेष-शीश पर भी धरा रहती आठों याम है ॥७॥

प्रण से हटना नहीं धीर नर को आता है; यद्यपि उसके लिए बड़ा दुख वह पाता है।
बाहर हो गज-दन्त नहीं मुख में फिर जाते; कट करके हैं कभी भले ही वे गिर जाते।
चल जावे अचला भी कभी सागर निर्मर्य्याद हो।
पर ध्रुव तारक चलता नहीं कितना ही अवसाद हो ॥८॥

विपुल विघ्न को दूर करेगा जो तेजस्वी, होगा वह क्यों नहीं विश्व में शीघ्र यशस्वी ?
जिसकी दृढ़ता कभी नहीं घटने पाती है, लक्ष्मी उसके अङ्क आप ही आ जाती है।
अमित वस्तुओं को जला पावक हुआ पवित्र है।
पर हिम पूजित होता नहीं जग भी बड़ा विचित्र है ॥९॥

जो दृढ़ हो निःस्वार्थ भलाई चाहे जग की, क्यों न बने संसार धूलि फिर उसके पग की ?
जग-सेवक ही सेव्य जगत के बन जाते हैं, चाहे हों वे नीच तदपि पूजा पाते हैं।
क्या चिन्तामणि जड़ है नहीं ? या कामधेनु पशु है नहीं ?
पर उनके दर्शन के लिए उत्कण्ठित यह है मही ॥१०॥

रामचरित उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस की पुस्तकें।

(१)

पुस्तक-प्रकाशन भी एक व्यवसाय है। सभी व्यवसाय चार पैसे पैदा करने ही के लिए किये जाते हैं। व्यवसायी की दृष्टि सदा मुनाफ़े की ओर रहती है। वह वही काम करता है जिससे उसकी पूँजी भी बनी रहे और उसे कुछ मुनाफ़ा भी हो। व्यवसायी प्रायः ऐसे ही होते हैं जो इस बात का ध्यान नहीं रखते कि उन के व्यवसाय से किसी जन-समाज, किसी जाति या किसी देश की कुछ हानि तो नहीं। वे केवल अपने लाभ को देखते हैं, दूसरे को कुछ लाभ पहुँचे या न पहुँचे। कुछ व्यवसायी—उदाहरणार्थ अफ़ीम, गांजा, भङ्ग और शराब का काम करने वाले—दूसरे को मानसिक और शारीरिक हानि पहुँचा कर भी स्वार्थ-साधन करते हैं। इस तरह का व्यवसाय अधम व्यवसाय है। व्यवसाय अवश्य ही अपने लाभ के लिए किया जाता है, पर यदि उस से किसी का कल्याण भी साधन हो तो वही व्यवसाय श्रेष्ठ व्यवसाय है। पुस्तक-प्रकाशन—अच्छी पुस्तकों का प्रकाशन—व्यवसायों में सब से श्रेष्ठ है।

जो लोग पुस्तक-प्रकाशन का व्यवसाय करते हैं वे यदि चाहें—यदि उनमें इतनी समझ हो—तो दो चार ही जनों का नहीं, लाखों-करोड़ों का हित-साधन कर सकते हैं। साथ ही व्यवसाय का उद्देश जो अर्थ-साधन या धनोपार्जन है उस की सिद्धि तो होती ही है। अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित कर के उन्हें थोड़े मूल्य पर सुलभ कर देने से करोड़ों मनुष्यों की आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति हो सकती है। ऐसे कार्य्य से धार्मिकता बढ़ सकती है, उद्योगशीलता बढ़ सकती है, साक्षरता बढ़ सकती है और सामाजिक दोष दूर हो सकते हैं। जो पुस्तक-प्रकाशक अपनी प्रकाशित पुस्तकों के द्वारा सद्विचारों का प्रचार करता है, आलसियों के लिए भी मनोरञ्जन की सामग्री प्रस्तुत कर के उन्हें समय का सदुपयोग सिखाता है, कला-कौशल और ज्ञान-विज्ञान-विषयक ग्रन्थों से जन-समुदाय की ज्ञान-वृद्धि करता है वह बहुत बड़ी प्रशंसा का पात्र है। उस के औदार्य्य और उस की जन-हितैषणा सर्वथा स्तुत्य है। अपना इष्ट साधन कर के, साथ ही करोड़ों आदमियों का कल्याण-साधन करना बहुत बड़ी बात है। यह इतनी बड़ी बात बम्बई का श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस अनेकांशों में आज कोई पचास वर्षों से बराबर कर रहा है। उस ने आल्हखण्ड से ले कर वैदिक साहित्य तक की सैकड़ों नहीं, हज़ारों पुस्तकें प्रकाशित कर के उन्हें इस देश के कोने कोने—गाँव गाँव तक में—सुलभ कर दिया है। पुराणों के तो उस ने ढेर के ढेर टीका, टिप्पणी और अनुवाद सहित, छाप डाले हैं। वैद्यक, ज्योतिष, कोश, काव्य, तन्त्र, व्याकरण कोई विषय ऐसा नहीं जिसके ग्रन्थ उसने न प्रकाशित किये हों। उस के प्रकाशित पुराणादि की हिन्दी टीकाओं से साधारण पढ़े लिखे हज़ारों पण्डितों का जीविका-निर्वाह हो रहा है। हिन्दी की पुस्तकें भी वह प्रकाशित करता है और संस्कृत की भी। इसी प्रेस ने धर्म्मशास्त्र-संग्रह नाम का एक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसी को देख कर हमारी प्रवृत्ति यह निवेदनात्मक स्वल्प लेख लिखने की हुई है।

इस संग्रह-ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या छः सौ के ऊपर है। आकार बहुत बड़ा है। यदि यह छोटे आकार में छपता तो पृष्ठ-संख्या एक हज़ार के ऊपर निकल जाती। जिल्द बँधी हुई है। काग़ज़ अच्छा है। टाइप भी सुन्दर है। मूल श्लोकों का टाइप बहुत बड़ा और नीचे मूल के हिन्दी-अनुवाद का उस से छोटा है। पर इस छोटे टाइप को भी बड़ा ही कहना चाहिए।

इस संग्रह के कर्त्ता भारत-भ्रमण के रचयिता बाबू साधुचरणप्रसाद हैं। कई वर्ष हुए आप का परलोक-वास हो गया। इस में मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति के सिवा और भी अनेक स्मृतियों के वचन उद्धृत हैं। जिन स्मृतियों के नाम तक बहुत लोगों ने अब तक न सुने थे उन के भी वचन इस में निबद्ध हैं। इस में सब मिला कर ५६ स्मृतियों के प्रमाण-वचनों का संग्रह है। आरम्भ में संग्रहकार का जीवन-चरित और ४७ पृष्ठों की एक विषयानुक्रमणिका है। नीचे पादटीकाओं में जिन वचनों का निर्देश है वे सब पुस्तकान्त में, एक परिशिष्ट के रूप में, छाप दिये गये हैं। उसी के आगे संज्ञा शब्दों का एक कोश भी दे दिया गया है। हिन्दी-टीका सरल और शुद्ध है।

इस पुस्तक को देख कर संग्रहकार के प्रचण्ड परिश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अच्छा परिचय मिलता है। पहले तो सभी स्मृतियाँ सहज में प्राप्य नहीं। फिर उन सब को पढ़ कर, विषय के अनुसार, प्रत्येक से श्लोक छाँटना और उन का अनुवाद करना थोड़े परिश्रम का काम नहीं। इसी से संग्रहकर्त्ता महाशय के सात साल के सतत परिश्रम से यह संग्रह तैयार हुआ है। उन्हों ने इस ग्रन्थ को धर्म्म-प्रकरण, वर्ण-प्रकरण, देश-प्रकरण, राज-प्रकरण, अध्यात्म-ज्ञान-प्रकरण आदि २६ प्रकरणों में बाँटा है। फिर हर प्रकरण को अनेक विषयों में विभक्त किया है। उन उन विषयों पर भिन्न भिन्न स्मृतिकारों ने जो कुछ लिखा है उसे उन्होंने, यथाक्रम नंबर देकर और स्मृति का उल्लेख करके, लिख दिया है। फिर उस का भावार्थ हिन्दी में दिया है। साथ ही नीचे पादटीकाओं में कितनी ही आवश्यक बातें लिखी हैं। सारांश यह कि संग्रहकार ने इस ग्रन्थ को सर्वोपयोगी बनाने और प्रकाशक, सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास, ने इस के प्रकाशन में ख़र्च करने में कोई कसर नहीं की। इस अकेले ग्रन्थ को रखने से फिर और किसी स्मृति-ग्रन्थ की विशेष आवश्यकता नहीं रहती। चातुर्वर्ण्य-सम्बन्धिनी प्रायः सभी धर्म्मशास्त्रीय व्यवस्थायें इसी से जानी जा सकती हैं। ऐसा अच्छा ग्रन्थ तैयार करने के लिए संग्रहकार को और उसे छपा कर सुलभ कर देने के लिए प्रकाशक को साधुवाद। मूल्य इस ग्रन्थ का डाक-महसूल-सहित ७ रुपये है।

इस प्रेस ने और भी कुछ पुस्तकें भेजने की कृपा की है। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

(१) पारदसंहिता
(२) अष्टाङ्गहृदय (वाग्भट)
(३) भावप्रकाश
(४) चरकसंहिता, दो जिल्दों में
(५) बृहन्निघण्टुरत्नाकर, आठों भाग, सात जिल्दों में
(६) वङ्गसेन
(७) रसरत्नाकर
(८) योगतरङ्गिणी
(९) योगचिन्तामणि
(१०) माधवनिदान
(११) शालग्राम-औषध-शब्दसागर
(१२) बृहत्पाराशर-होराशास्त्र
(१३) निर्णयसिन्धु
(१४) व्रतराज
(१५) ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्डाध्याय
(१६) गोविन्दार्चनचन्द्रिका
(१७) मन्त्रमहार्णव
(१८) मन्त्रमहोदधि
(१९) टाड-राजस्थान, दो जिल्दों में
(२०) अष्टादशपुराण-दर्पण
(२१) शुक्रनीति
(२२) भुवनेशलौकिकन्यायसाहस्री
(२३) दशकुमारचरित

इन पुस्तकों का भी परिचय, सरस्वती की अगली संख्याओं में, दिया जायगा।

पुरातत्त्व-विभाग का वार्षिक विवरण।

(क)

इस विवरण का सम्बन्ध १९१४–१५ से है। इस वर्ष भी इस विभाग ने अनेक प्राचीन और प्रसिद्ध इमारतों की मरम्मत करके उनका अस्तित्व बना रक्खा है। वर्तमान महायुद्ध के कारण भारत-सरकार को भी आर्थिक सङ्कट का सामना करना पड़ा है। तिस पर भी उसने इस विभाग को कुछ कम चार लाख रुपये इस वर्ष भी दिये। इस वर्ष इस विभाग ने दिल्ली और उसके आस पास की शाही इमारतों की मरम्मत की ओर विशेष ध्यान दिया। इसके सिवा अजन्ता और इलोरा के गुहा-मन्दिरों की चित्रकारी सुरक्षित रखने के लिए भी इस विभाग ने नये नये उपायों का अवलम्बन किया। निज़ाम की गवर्नमेंट ने भी इस कार्य में बहुत सहायता की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख)

विदिशा की खोज।

वार्षिक विवरण का यह पहला भाग है। इसमें मुख्य मुख्य बातें संक्षेप ही में लिखी गई हैं। उनसे सूचित है प्राचीन विदिशा (भिलसा) की खोज का काम मिस्टर भाण्डारकर के अधीन है। वहाँ के खँडहर खोदने से आपको तीन यज्ञ-कुण्ड मिले हैं। कुण्डों से कुछ अन्तर पर, पूर्व और दक्षिण ओर, दो बड़े बड़े कमरों के भग्नावशेष भी मिले हैं। कुण्डों की लम्बाई-चौड़ाई और बनावट देख कर अनुमान होता है कि ये कुण्ड ऐसे यज्ञों के कुण्ड हैं जो साल भर या उससे भी अधिक समय तक जारी रहते थे। ऐसे यज्ञों में बड़े बड़े ऋषि और वेदज्ञ ब्राह्मण एकत्र होते रहे होंगे। ये ऋषि और ब्राह्मण यज्ञ-कार्य्य से अवकाश पाने पर शायद पूर्वोक्त कमरों को अपने काम में लाते होंगे। किसी में बैठ कर वे लोग पुराणों का पाठ करते होंगे, और किसी में भोजन। विदिशा के भग्नावशेषों में इतिहास-प्रेमियों के लिए एक और भी मार्के की बात खोज निकाली गई है। पूर्वोक्त कमरों में और उनके बाहर भी खोदने से मिट्टी की कोई छब्बीस मुहरें मिली हैं। एक को छोड़ कर सब पर कोई न कोई नाम अङ्कित है। एक में "हयहस्त्याधिकारी" और दूसरी में "महाराजविशामित्रस्वामिन्" खुदा हुआ है। एक मुहर ऐसी है जिस पर दो पंक्तियाँ खुदी हुई हैं। पहली पंक्ति में "तिपित्रदतृस्य (स) हो (ता)" खुदा हुआ है और दूसरी में "प (ओ) तयंत्र सजन (इ)। भाण्डारकर महाशय इन पंक्तियों का अर्थ अच्छी तरह नहीं समझ सके। आप का कहना है कि 'होता' 'पोता', और 'यन्त्र' शब्दों से यह बात स्पष्ट है कि इस मुहर का सम्बन्ध यज्ञशाला से है। 'तिपित्र' शब्द ग्रीक नाम 'डेमेट्रिअस' के स्थान पर व्यवहृत हुआ है। आप का अनुमान है कि डेमेट्रिअस ने कोई यज्ञ किया था और स्वयं यजमान हुआ था। उसी ने उन कुण्डों और कमरों का निर्माण कराया होगा।

(ग)

ग्वालियर में पुरातत्त्व-सम्बन्धी कार्य्य।

यहाँ की खोज का काम मिस्टर एम० बी० गर्दे के सिपुर्द था। आप को केवल इसी बात की आज्ञा थी कि आप ग्वालियर-राज्य की प्राचीन वस्तुओं की एक सूची तैयार करें। परन्तु आप ने यह कार्य्य करते हुए भी अनेक नई बातें खोज निकालीं। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

गर्दे महाशय का अनुमान है कि पवाया नाम का मौज़ा, जो नरवर से उत्तर-पूर्व बीस मील पर है, प्राचीन पद्मावती नगरी के ही भग्नावशेष पर बसा हुआ है। इस नगरी के खँडहर दो वर्ग मील के घेरे में हैं। प्राचीन ईंटों की टूटी-फूटी दीवारों से उनका ज्ञान होता है। वहाँ पर पुराने सिक्के कसरत से पाये जाते हैं। मिस्टर गर्दे को ताँबे के तीस सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों में गणेन्द्रदेव, स्कन्द, भीम इत्यादि नाग-वंशीय नरेशों के नाम अङ्कित हैं। इस नगरी का उल्लेख विष्णुपुराण में है। कविवर भवभूति ने भी इसका वर्णन मालती-माधव में किया है। यहाँ पर अनेक प्रकार के पत्थरों के ऐसे भी नमूने मिलते हैं जिनका समय ईसवी सन् की पहली सदी से लेकर दसवीं सदी तक अनुमान किया जाता है। यहाँ पर यक्ष-मणिभद्र की एक खण्डित मूर्ति मिली है। इस मूर्ति का निर्माण ईसवी सन् के प्रारम्भकाल में हुआ होगा। यह बड़ी प्राचीन मूर्ति है। यहाँ पर कुछ मठ भी मिले हैं। वे मध्य-कालीन हिन्दू-कारीगरी के नमूने हैं। उनके तोरणों पर बड़ी अच्छी कारीगरी है। ऐसी इमारतों के चिह्न अब दुष्प्राप्य हैं। कनिंघम साहब ने पहले एक मठ खोज निकाला था। परन्तु उसे वे एक महल समझे हुए थे। वह मठ रानोद में है। मिस्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्दे ने उसी तरह के और तीन मठ खोज निकाले हैं। रानोद का मठ १३२ + १०६ फुट लम्बा-चौड़ा है। ये मठ दो मञ्ज़िले हैं। इनकी दीवारें पत्थर की हैं। छेनी से तराशे हुए पत्थरों के बड़े बड़े और मोटे मोटे टुकड़े, बिना चूने के, एक दूसरे पर ख़ूब मज़बूती से जमा कर ये दीवारें बनाई गई हैं। कीलहार्न साहब के मत में रानोद के मठ का संस्थापक पुरन्दर नवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जीवित था।

देवीदत्त शुक्ल

हमें चाहिए।

रोला

कपड़े रँग कर जो न कपट का जाल बिछावे,
तन पर जो न विभूत पेट के लिए लगावे।
हमें चाहिए सच्चे-जीवाला वह साधू,
जाति-देस-जग-हित कर जो निज जनम बनावे ॥१॥

देश काल को देख चले निजता नहिँ खोवे,
सार वस्तु को कभी पखण्डों में न डुबोवे।
हमें चाहिए समझ-बूझ-वाला वह पण्डित,
आँखें ऊँची रखे कूप-मण्डूक न होवे ॥२॥

आँखों को दे खोल भरम का परदा टाले,
जी का सारा मैल कान को फूँक निकाले।
गुरु चाहिए हमें ठीक पारस के ऐसा,
जो लोहे की कसर मिटा सोना कर डाले ॥३॥

टके के लिए धूल में न निज मान मिलावे,
लोभ-लहर में भूल न सुरुचि सुरीति बहावे।
हमें चाहिए सरल सुबोध पुरोहित ऐसा,
जो घर घर में सकल सुखों की सोत लसावे ॥४॥

करे आप भी वही और को जो सिखलावे,
सधे सराहे सार वचन निज मुख पर लावे।
हमें चाहिए ज्ञानवान उपदेशक ऐसा,
जो तम-पूरित उरों बीच वर जोति जगावे ॥५॥

जो हो राजा और प्रजा दोनों का प्यारा,
जिसका बीते देश-प्रेम में जीवन सारा।
देश-हितैषी हमें चाहिए अनुपम ऐसा,
बहे देश-हित की जिसकी नस नस में धारा ॥६॥

जिसे पराई रहन सहन की लौ न लगी हो,
जिसकी मति सब दिन निजता की रही सगी हो।
हमें चाहिए परम सुजान सुधारक ऐसा,
जिसकी रुचि जातीय रङ्ग ही बीच रँगी हो ॥७॥

जिसके हों ऊँचे विचार, पक्के मनसूबे,
जो होवे गम्भीर भीड़ के पड़े न ऊबे।
हमें चाहिए आत्मत्याग-रत ऐसा नेता,
रहें जाति-हित में जिसके रोयें तक डूबे ॥८॥

बोल बोल कर वचन अमोल उमङ्ग बढ़ावे,
जनसमूह को उन्नति-पथ पर सँभल चलावे।
इस प्रकार का हमें चाहिए चतुर प्रचारक,
जो अचेत हो गई जाति को सजग बनावे ॥९॥

देख सभा का रङ्ग, ढङ्ग से काम चलावे,
पचड़ों में पड़ धूल में न सिद्धान्त मिलावे।
हमें चाहिए नीति-निधान सभापति ऐसा,
जो सब उलझी हुई गुत्थियों को सुलझावे ॥१०॥

एँच-पेँच में कभी सचाई को न फँसावे,
लम्बी चौड़ी बात बनाना जिसे न आवे।
हमें बात का धनी चाहिए कोई ऐसा,
जो कुछ मुँह से कहे वही करके दिखलावे ॥११॥

किसे असम्भव कहते हैं यह समझ न पावे,
देख उलझनों को चितवन पर मैल न लावे।
हमें चाहिए धुन का पक्का ऐसा प्राणी,
जो कर डाले उसे कि जिसमें हाथ लगावे ॥१२॥

कोई जिसे टटोल न ले आँखों के सेवे,
जिसके मन का भाव न मुखड़ा बतला देवे।
हमें चाहिए मनुज पेट का गहरा ऐसा,
जिसके जी की बात जान तन-लोम न लेवे ॥१३॥

जिसके धन से खुलें समुन्नति की सब राहें,
हो जावें वे काम विबुध जन जिन्हें सराहें।
हमें चाहिए सुजन गाँठ का पूरा ऐसा,
जो पूरी कर सके जाति की समुचित चाहें ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँच नीच का भेद त्याग सब का हित माने,
चींटी पर भी कभी न अपनी भौंहें ताने।
हमें चाहिए मानव ऊँचे जी का ऐसा,
अपने जी सा सभी जीव का जी जो जाने ॥१५॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

गायकवाड़ की पूर्वीय भाषाओं की पुस्तक-माला।

(Gaikwad's Oriental Series)

महाराजा बड़ौदा, सर सयाजीराव गायकवाड़, आदर्श राजा हैं। शासन की कोई शाखा ऐसी नहीं जिसकी उन्नति उन्होंने न की हो अथवा जिसकी उन्नति की ओर उनका ध्यान न गया हो। वे चाहते हैं कि उनकी प्रजा सब तरह सुखी रहे, उसके आराम के लिए हर तरह के सुभीते हो जायँ, उसे विद्या-प्राप्ति और ज्ञान-लाभ के लिए किसी बात की कमी न रहे। वे जानते हैं कि ज्ञान-वृद्धि का सबसे बड़ा साधन शिक्षा और पुस्तक-प्रचार है। इसी से आज तक उनकी सहायता से कोई साढ़े तीन सौ लाभदायक ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। कितनी ही पुस्तक-मालिकायें उनकी कृपा और सहायता से निकली हैं और अब तक निकल रही हैं। कुछ के नाम सुनिए—

(१) बाला-ज्ञानमाला में लड़कियों के पढ़ने योग्य अनेक पुस्तकें (Readers) प्रकाशित हुई हैं।

(२) भारतीय सङ्गीत-माला में १५ पुस्तकें सङ्गीत पर प्रकाशित हुई हैं।

(३) ज्ञान-मञ्जूषा में विज्ञान-विषय की तीस पुस्तकें निकली हैं।

(४) प्राचीन काव्यमाला में गुजराती भाषा के ३५ प्राचीन काव्य प्रकट हुए हैं।

(५) राष्ट्र-कथामाला की १० जिल्दों में अनेक जातियों के इतिहास छप चुके हैं।

(६) हिन्दू-धर्म्मशास्त्र की ७ जिल्दों में स्मृतियों के अनुवाद छपे हैं।

(७) पाटन की हस्त-लिखित २४ प्राचीन पुस्तकों के अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं।

इसी तरह महाराष्ट्र-ग्रन्थमाला, क्रीड़ा-माला और पाक-शास्त्र आदि के द्वारा भी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। इसके सिवा और भी कितनी ही पुस्तकें अलग अलग भी प्रकाशित हुई हैं। एक शिक्षा-प्रेमी और प्रजावत्सल राजा जब इतना काम कर सकता है तब यदि दस पाँच राजे ऐसा ही उद्योग करें तो भारत में कितना ज्ञान-विस्तार हो जाय, यह बताने की ज़रूरत नहीं। राजपूताने, मध्य-भारत, पञ्जाब, बिहार आदि में कितने ही राजे-महाराजे हैं। पर किसी का ध्यान इस तरफ़ नहीं। यदि हमारे प्रान्त के दो चार तअल्लुकेदार—अलग अलग न सही—मिल कर भी साल में दो ही चार हज़ार रुपये ख़र्च करें तो हिन्दी का कितना प्रचार हो—हिन्दी की कितनी ही नई नई पुस्तकें निकलें, और इस प्रबन्ध से सर्व-साधारण की कितनी ज्ञान-वृद्धि हो। पर उनकी प्रवृत्ति ही इस ओर नहीं। मेलों-तमाशों में वे हज़ारों ख़र्च कर डालेंगे; मतलब से ज़ियादह हाथी, घोड़े, फिटन और मोटरकार ख़रीद लेंगे; दावतों में हज़ारों रुपया फूँक तापेंगे; पर विद्या-वृद्धि के लिए कुछ न ख़र्च करेंगे। यह हाल सभी का नहीं। कुछ पृथ्वीपति ऐसे भी हैं जो समय पर ऐसे काम के लिए भी कुछ दे डालते हैं; पर उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। अस्तु।

अब महाराजा बड़ौदा ने एक और भी बड़ी ही महत्त्व-पूर्ण पुस्तक-मालिका का प्रकाशन आरम्भ कराया है। उसके लिए उन्होंने बहुत सा रुपया मंजूर किया है। पाटन में जैनों का जो प्राचीन-पुस्तक-भाण्डार है उसमें अनेक ग्रन्थ-रत्न सञ्चित हैं। उस तरफ़ और भी ऐसे कितने ही भाण्डार हैं—कुछ बड़ौदे की रियासत में हैं, कुछ अन्यत्र। उनमें सञ्चित पुस्तकें कृमियों का भक्ष्य हो रही हैं। अतएव उन्हें नाश से बचाने के लिए महाराजा बड़ौदा ने एक "Oriental Series" निकालने का प्रबन्ध किया है। यह पुस्तक-माला वैसी ही निकलेगी जैसी कि बम्बई, मदरास, माइसोर, ट्रावनकोर और काश्मीर आदि से निकलती हैं। इसमें पाटन तथा अन्य भाण्डारों के प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित होंगे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती—इन सभी भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थों का उद्धार इसमें होगा। पाटन के ग्रन्थ-भाण्डारों का वर्णन सरस्वती में निकल चुका है। उससे पाठकों को मालूम हो गया होगा कि इसमें कितने पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कितने महत्त्व के ग्रन्थ हैं। इससे उन्हें इस बात का अन्दाज़ा अच्छी तरह हो जायगा कि इस प्राचीन-पुस्तक-माला में किस प्रकार के ग्रन्थ प्रकाशित होंगे।

इस ग्रन्थमाला का सम्पादन बड़ौदे के राजकीय पुस्तकालयों के अध्यक्ष श्रीयुत कुडलकर, एम० ए०, की अधीनता और निरीक्षण में होगा। इसमें अब तक दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। अन्य कितने ही छप रहे हैं। कुछ का सम्पादन भी हो रहा है। जो ग्रन्थ निकले हैं उनमें से एक—

(१) राजशेखर-विरचित काव्यमीमांसा

और दूसरा—

(२) वस्तुपाल-विरचित नरनारायणानन्द महाकाव्य

है। इनका परिचय सुनिए—

काव्यमीमांसा का सम्पादन दो पुस्तकें देख कर किया गया है—एक तो ईसा की तेरहवीं सदी में तालपत्र पर लिखी हुई कापी और दूसरी पन्द्रहवीं सदी में काग़ज़ पर लिखी हुई कापी। अब तक राजशेखर-कृत बालभारत, बालरामायण, विद्धशालभञ्जिका और कर्पूरमञ्जरी ही का पता पण्डितों को था। अब महाराजा गायकवाड़ की कृपा से काव्यमीमांसा भी सुलभ हो गई। इस महाकवि के रचे हुए हरविलास नामक एक महाकाव्य और भुवनकोश नामक एक भूगोल का भी नाम मालूम हुआ है। पर ये पुस्तकें अभी तक देखने को नहीं मिलीं। राजशेखर कवि क़न्नोज के राजा महेन्द्रपाल के उपाध्याय थे। यह राजा ईसा के दसवें शतक के आरम्भ में (९१७ ईसवी में) विद्यमान था। अतएव राजशेखर का भी वही समय हुआ। राजशेखर अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। वे कविराज थे। अपने इस ग्रन्थ में उन्होंने कवियों की कई अवस्थाओं का वर्णन किया है और कविराज को महाकवि से बढ़ कर बताया है। राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी भी विदुषी थी। उन्होंने इस ग्रन्थ में कई बार अपनी पत्नी का मत प्रकट किया है। राजशेखर के समय में बड़े घरों की स्त्रियां यथेच्छ विद्योपार्जन करती थीं। उन्होंने लिखा है—

पुरुषवत् योषितोऽपि कवीभवेयुः। संस्कारो ह्यात्मनि समवैति न स्त्रैणं पौरुषं वा विभागमपेक्षते। श्रूयन्ते दृश्यन्ते च राजपुत्र्यो, महामात्रदुहितरो, गणिकाः, कौतुकिभार्याश्च शास्त्रप्रहतबुद्धयः कवयश्च।

राजशेखर की इच्छा थी कि वे इस पुस्तक को १८ अधिकरणों में लिखें और उनमें काव्य-विषयक सभी बातों का उल्लेख करें। पर प्रस्तुत पुस्तक में केवल एक ही अधिकरण है। सम्भव है, अगले १७ अधिकरण लिखने के पहले ही वे मर गये हों, या वे किसी कारण नष्ट हो गये हों। ख़ैर। जो कुछ इस एक अधिकरण में है वह प्रायः सभी विलक्षण नहीं, तो बहुतों के लिए अभिनव अवश्य ही है। इसकी अधिकांश बातें काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण आदि में नहीं। कवियों के भेदादि पर राजशेखर लिखने लगे तो कई अध्याय लिख डाले। अर्थाहरण पर दो अध्याय पूरे के पूरे लिख डाले। कल्पनाभेद, ऋतुभेद, शिष्यभेद, व्युत्पत्ति-भेद, वाक्य-भेद, काव्य-योनि, कविसमय आदि विषयों पर जो कुछ इन्होंने लिखा है, उपलब्ध ग्रन्थों में वह और कहीं नहीं पाया जाता। पुस्तक गद्य में है। गद्य सूत्र-सदृश छोटे छोटे वाक्यों में है। पर उदाहरण सब पद्यों में हैं। ये पद्य बड़े ही मनोहारी हैं। इसका दूसरा नाम कविरहस्य है। पुस्तकारम्भ में एक आलोचनात्मक विस्तृत भूमिका अँगरेज़ी में है। अन्त में २७ पृष्ठों में नोट हैं। और भी कितनी ही ज्ञातव्य बातें पुस्तक में हैं। आरम्भ में तालपत्र की पुस्तक के दो पत्रों का फोटो भी है। बड़े अच्छे टाइप में मोटे-चिकने काग़ज़ पर पुस्तक छपी है। आकार बड़ा है। मूल्य २ रुपया है। इसका सम्पादन मिस्टर सी० डी० दलाल, एम० ए० और आर० अनन्तकृष्ण शास्त्री ने किया है।

दूसरी पुस्तक नरनारायणानन्द-महाकाव्य के प्रणेता धोलका (गुजरात) के चक्रवर्ती राजा वीरधवल के महामन्त्री वस्तुपाल हैं। यह पुरुष बड़ा विद्वान्, बड़ा दानी, बड़ा कवि-वत्सल और बड़ा वीर था। यह स्वयं बहुत अच्छा कवि था। आबू के पहाड़ पर इसके बनवाये हुए मन्दिर अब तक इसकी कीर्त्ति-कलाप के परिचायक हैं। अनेक प्रशस्तियों और शिलालेखों में इसकी प्रशंसा लिखी हुई मिलती है। प्रबन्धचिन्तामणि और चतुर्विंशतिप्रबन्ध में भी इसका कीर्तिगान है। इसके सिवा सोमेश्वर, अरिसिंह, बालचन्द्र आदि ने भी इसकी महिमा का गान किया है। बालचन्द्र ने वसन्तविलास नामक एक महाकाव्य और जिनहर्ष ने वस्तुपालचरित नामक एक ग्रन्थ लिख कर इसकी कीर्त्ति को अजरामर कर दिया है। इसका दूसरा नाम वसन्तपाल भी था। यह इतना उदारहृदय था कि १८ करोड़ रुपया ख़र्च करके इसने हज़ारों-लाखों ग्रन्थ लिखवा कर जैन-भाण्डारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भरे थे। मुसल्मानों तक पर इसकी कृपा थी। इनके लिए इसने ६४ मसजिदें बनवा दी थीं। तालाब, कुवें, मन्दिर, औषधालय, पान्थशालायें आदि इसने कितनी बनवाईं, इसकी तो गिनती ही नहीं।

वस्तुपाल के इस महाकाव्य में १६ सर्ग हैं। उनमें कृष्णार्जुन की मैत्री, गिरनारपर्वत पर उनका भ्रमण और अर्जुन द्वारा सुभद्रा का हरण वर्णन किया गया है। मुख्य कथा इतनी ही है। चन्द्रोदय, सुरापान, पुष्पावचय आदि वर्णनों का विस्तार इस लिए किया गया है, जिससे यह महाकाव्य के लक्षणों से समन्वित हो जाय। वस्तुपाल का समय सन् ईसवी के तेरहवें शतक का उत्तरार्ध है। उसी समय इस काव्य का निर्म्माण हुआ है।

वस्तुपाल की कविता बड़ी हृदयहारिणी है। उसके पद्यों का अवतरण उसके बाद के अनेक कवियों ने अपने अपने ग्रन्थों में किया है। कवियों के लिए तो वह कल्पवृक्ष ही था। सोमेश्वर, हरिहर, दामोदर, नानाक, जयदेव, मदन आदि कवि उसकी कृपा से मालामाल हो गये। इन लोगों ने उसे लघु-भोजराज की पदवी दी थी। पर वस्तुपाल अपने को सरस्वती का धर्म्मपुत्र समझता था। उसने इस महाकाव्य में स्वय ही लिखा है—

नरनारायणानन्दो नाम कन्दो मुदामिदम्।
तेने तेन महाकाव्यं वाग्देवीधर्म्मसूनुना॥

इसी के आगे, पुस्तकान्त में, उसने अपनी अल्पज्ञता और नम्रता दिखाते हुए यह भी लिखा है कि इस काव्य का निर्म्माण मैंने "सपदि" अर्थात् बड़ी शीघ्रता से किया है। अतएव अवलोकन करते समय पण्डितों को कृपापूर्वक इसके दोष दूर कर देना चाहिए, यथा—

उद्भास्वद्विश्वविद्यालयमयमनसः कोविदेन्द्रा वितन्द्रा
मन्त्री बद्धाञ्जलिर्वो विनयनतशिरा याचते वस्तुपालः।
अल्पप्रज्ञाप्रबोधादपि सपदि मया कल्पितेऽस्मिन्प्रबन्धे
भूयो भूयोऽपि यूयं जनयत नयनक्षेपतो दोषमोषम्॥

एक कवि ने इसकी कविता की प्रशंसा इस प्रकार की है—

पीयूषादपि पेशलाः शशधरज्योत्स्नाकलापादपि
स्वच्छा नूतनचूतमञ्जरिभरादप्युल्लसत्सौरभाः।
वाग्देवीमुखसामसूक्तविशदोद्गारादपि प्राञ्जलाः
केषां न प्रथयन्ति चेतसि मुदः श्रीवस्तुपालोक्तयः॥

अर्थात् वस्तुपाल की उक्तियाँ पीयूष से भी अधिक पेशल, कलाधर की कलाओं से भी अधिक स्वच्छ, आम-मञ्जरी की सुगन्धि से भी अधिक सुगन्धिपूर्ण और सरस्वती के मुख से निकले हुए साम-गान से भी अधिक प्राञ्जल हैं। इस दशा में कौन ऐसा है जिसके हृदय को वे मोद से मत्त न कर दें?

ऐसे लोकोत्तर कवि के इस महाकाव्य की एक प्रति पाटन के पुस्तक-भाण्डार में मिली। वह विक्रम-संवत् १४७७ की लिखी हुई है। उसी के आधार पर इस काव्य का सम्पादन हुआ है। सुन्दर, साफ़ और बड़े टाइप में, अच्छे काग़ज़ पर, यह छपा है। आरम्भ में वस्तुपाल और उसके पत्नी-युग्म की मूर्तियों का एक चित्र है। आबू में वस्तुपाल के मन्दिर से इन मूर्तियों का चित्र प्राप्त किया गया है। पुस्तकारम्भ में एक गवेषणापूर्ण प्रस्तावना अँगरेज़ी में है और अन्त में कई परिशिष्ट हैं। उनमें वस्तुपाल-कृत एक स्तोत्र और कुछ सूक्तियाँ हैं। वस्तुपाल की कीर्त्ति और दान के विषय में जो कुछ लिखा गया है उसमें से भी कुछ बातें तीन चार ग्रन्थों से उद्धृत की गई हैं। इन परिशिष्टों को पढ़ने से भोजप्रबन्ध का ऐसा आनन्द मिलता और कौतूहल होता है। कुछ नमूने लीजिए। अपने स्वामी वीरधवल के मरने पर वस्तुपाल ने इस प्रकार दुःखप्रकाशन किया—

आयान्ति यान्ति च परे ऋतवः क्रमेण
सञ्जातमत्र ऋतुयुग्ममगत्वरन्तु।
वीरेण वीरधवलेन विना नितान्तं
वर्षा विलोचनयुगे हृदये निदाघः॥

और ऋतु तो यथाक्रम आती ही जाती रहती हैं, पर वीरधवल के बिना अब जो दो ऋतु आ गई हैं सो कभी जाने ही वाली नहीं—नेत्रयुग्म में तो वर्षा सदा के लिए उपस्थित हो गई है और हृदय में सदा के लिए निदाघ!

यह वस्तुपाल की सूक्ति का उदाहरण हुआ। और कवियों ने उसके दानादि के विषय में क्या कहा है, इसके भी दो एक नमूने सुन लीजिए—

एक दफ़े वीरधवल ने वस्तुपाल को बहुत सा रुपया दिया। परन्तु अपने घर पहुँचने के पहले ही उसने उसे कवियों, पण्डितों और अन्य दानपात्रों को दे डाला। उसके रिक्तहस्त हो जाने पर एक कवि ने उसे यह श्लोक सुनाया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमन्ति दृष्ट्वा द्विजराजमेकं पद्मानि सङ्कोचमवाप्नुवन्ति।
समागतेऽपि द्विजराजलक्षे सदा विकासी तव पाणिपद्मः॥

अर्थात् एक ही द्विजराज (चन्द्रमा) को देख कर श्रीमान् (शोभाशाली) कमल सङ्कुचित हो जाते हैं। पर एक क्या एक लाख द्विजराजों (द्विजन्माओं) के आ जाने पर भी आपका पाणिपद्म विकसा ही बना रहता है; वह बन्द होता ही नहीं।

यह सुन कर वस्तुपाल ने सिर नीचा कर लिया। उसे लज्जा हुई कि इस समय पास कुछ भी नहीं; इस कवि को क्या दूँ? इससे वह अधोवदन होकर नीचे पृथ्वी की ओर देखने लगा। कवि उसकी चेष्टा से उसके हृदय की बात ताड़ गया। वह तत्काल ही फिर बोल उठा—

एकस्त्वं भुवनोपकारक इति श्रुत्वा सतां जल्पितं
लज्जानम्रशिरा धरातलमिदं यद्वीक्षसे वेद्मि तत्।
वाग्देवीवदनारविन्दतिलक श्रीवस्तुपाल ध्रुवं
पातालाद्बलिमुद्दिधीर्षुरसकृन्मार्गं भवान् मार्गति॥

सज्जनों के मुख से यह सुन कर कि आप अकेले इस महीतल के ही नहीं, किन्तु सारे भुवन के उपकारकर्ता हैं, आपने लज्जित होकर नीचे ज़मीन पर जो अपनी आँखें गाड़ सी दी हैं, इसका कारण मैं समझ गया। बलवत् पाताल को निकाल दिये गये बलि का उद्धार करने के लिए आप मार्ग ढूँढ़ रहे हैं! आप यह देख रहे हैं कि ज़मीन को किस जगह फाड़ कर पाताल चला जाऊँ और वहाँ से बेचारे बलि को निकाल लाऊँ!

यह सुन कर वस्तुपाल ने सोने की जीभ बनवा कर उसे दी।

एक बार देवपत्तन नामक नगर से कुछ पुजारी भट्ट आये। उनसे वस्तुपाल ने पूछा—कहिए, शिवजी की पूजा-अर्चा बराबर होती है न? इस पर उन लोगों ने कहा—

नादत्ते भसितं सितं सचिव ते कर्पूरपूरं स्मरन्
कौपीने न च तुष्यति प्रभुरसौ शंसन्दुकूलानि ते।
दिग्धो दुग्धभरैर्जलेषु विमुखः श्रीवस्तुपाल त्वया
कर्पूरागुरुपूरितः पशुपतिर्नो गुग्गुलं जिघ्रति॥

मन्त्रि-महाराज, हम लोगों के पशुपतिजी का हाल कुछ न पूछिए। हमारी की हुई पूजा वे ग्रहण ही नहीं करते। आपके कर्पूर-पूर की याद करके वे सफ़ेद भस्म का खौर लगाने ही नहीं देते। वे तो आपके बहुमूल्य दुकूलों की प्रशंसा किया करते हैं; लँगोटी से अब उन्हें तृप्ति कहाँ? जल से उनकी तुष्टि नहीं; वे आपके दुग्ध-सिञ्चन ही का स्मरण किया करते हैं। आपने उन्हें कपूर और अगरु की ऐसी चाट लगा दी है कि अब वे गूगल सूँघते ही नहीं। पूजा हो तो कैसे हो?

इन लोगों को मन्त्री ने दस हज़ार रुपये या दिरम दिये।

एक बार अमरचन्द्र-मुनि के दर्शनार्थ वस्तुपाल गये। मुनिजी काव्य-चर्चा कर रहे थे। दरवाज़े पर पहुँचते ही मन्त्री ने मुनि महाराज को यह श्लोकार्द्ध कहते सुना—

असारे खलु संसारे सारं सारङ्गलोचना।

यह सुन कर वस्तुपाल को आश्चर्य और खेद हुआ। उन्होंने मन में कहा—यह मुनि होकर स्त्रियों की चर्चा कर रहा है! मन्त्रीजी जो भीतर गये तो मुनिजी का वन्दन किये बिना ही बैठ गये। मुनि-महाशय इसका कारण समझ गये। अतएव तत्काल ही उन्होंने पूर्वोक्त श्लोकार्द्ध की पूर्ति इस प्रकार कर दी—

यत्कुक्षिप्रभवा एते वस्तुपाल भवादृशाः।

यह सुन कर वस्तुपाल का क्षोभ जाता रहा और उन्होंने श्रद्धापूर्वक अमरचन्द्र-मुनि का वन्दन किया।

ऐसी ही और भी अनेक सूक्तियाँ और वस्तुपाल की प्रशंसा से पूर्ण कवितायें पुस्तकान्त के परिशिष्टों में हैं।

मूल्य इस पुस्तक का सवा रुपया है।

—

ग्रामोफ़ोन।

प्रायः सभी पाठकों ने ग्रामोफ़ोन नामक बाजे के भिन्न भिन्न प्रकार के गीत सुने होंगे। अपने देश के एक नगर की एक दुकान के आगे बड़ी भीड़ देख कर एक बार मुझे भी उस भीड़ में सम्मिलित होने का शौक़ हुआ। पास जाने पर मालूम हुआ कि एक प्रसिद्ध गायिका का एक गीत ग्रामोफ़ोन द्वारा गाया जा रहा है, जिसे सुनने के लिए इतने लोग बड़े चाव से एकत्र हुए हैं। गाना बन्द हो जाने पर मैंने अपने एक देहाती भाई को यह टिप्पणी करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुना—"भाई, ईश्वर की कैसी लीला है कि बकस में बैठ कर गायिका गा रही है। हमें मुँह क्यों नहीं दिखाती ?"

शिक्षित भारतवासियों में आज भी ऐसे अनेक मिलेंगे जिन्हें इस बात का पता नहीं कि ग्रामोफ़ोन किन वैज्ञानिक नियमों के आधार पर मनुष्य के शब्दों को ज्यों का त्यों उच्चारण कर देता है; संसार के नामी नामी गवैयों के भिन्न भिन्न प्रकार के गीतों को क्योंकर यह लकड़ी का बक्स एक पेंच घुमा देने से ही हमें घर बैठे सुना देता है ? बेशक यह बड़े अचरज की बात है। किन्तु इसके विज्ञान की ओर ज़रा सा ध्यान देने से यह एक साधारण बात मालूम होने लगती है।

मनुष्य के शब्दों को ग्रहण कर लेने वाले और उन शब्दों को फिर ज्यों का त्यों उच्चारण कर देने वाले ग्रामोफ़ोन नामक यन्त्र का आविष्कार, इसके वर्तमान उपयोगी रूप में, अमेरिका के नामी विज्ञानवेत्ता एडिसन ने, सन् १८७७ ईसवी में, किया था। इस आविष्कार और इसके जन्मदाता दोनों का इतिहास बड़ा रोचक और विचित्र है। तार की ख़बर भेजने वाला एक साधारण मनुष्य—एडिसन—किस प्रकार तीस वर्ष की उम्र में संसार में हलचल मचा देने वाली वैज्ञानिक करामातों का आविष्कारक बन गया; किस प्रकार बिजली की रोशनी, तार और टेलीफ़ोन, बिजली की रेलगाड़ी, मनुष्य की आवाज़ उत्पन्न करने वाले ग्रामोफ़ोन और मनुष्य तथा अन्य जीव-जन्तुओं को चलते फिरते दिखलाने वाली चित्रकारी तथा कितने ही और भी अचम्भों की इसने लगातार उत्पत्ति की, इसकी कहानी बड़ी लम्बी है। उसे फिर कभी, समय मिलने पर, सरस्वती के पाठकों के लिए, लिखने का प्रयत्न करूँगा। आज ग्रामोफ़ोन और उससे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का हाल सुनिए।

युवक एडिसन एक बार अपने तार-घर में बैठा हुआ इस बात का अनुसन्धान कर रहा था कि किस प्रकार तार की ख़बरें, बिना किसी मनुष्य की सहायता के, अपने आप लिख जाया करें। इस अनुसन्धान के समय उसे इस बात का पता लगा कि लोहे की कील या क़लम, घूमते हुए कड़े और चिकने काग़ज़ पर घिसने से, शब्द करती है। काग़ज़ जितना ही ऊपर को उठा हुआ या नीचे को दबा हुआ होता है शब्द भी उतना ही तेज़ या धीमा होता है। इस साधारण घटना को देख कर एडिसन ने निश्चय किया कि यदि काग़ज़ के ऊपर थोड़ी थोड़ी दूर पर कोई चीज़ एक लाइन में इस प्रकार चिपका दी जाय जिससे काग़ज़ थोड़ी थोड़ी दूर पर उठे और फिर दब जाय, और यदि फिर वह काग़ज़ एक चरख़ी पर चढ़ा कर चरख़ी घुमाई जाय, तो इस ऊँचे-नीचे काग़ज़ की सतरों पर घिसने वाली लोहे की कील कड़ी और धीमी आवाज़ करेगी। इतना पता लग जाने पर एडिसन के दिमाग़ ने सोचा कि काग़ज़ के स्थान पर यदि किसी अन्य धातु का चिकना पत्तर लगाया जाय, और फ़ौलाद की नुकीली कील से घिस कर निकली हुई धीमी आवाज़ को बहुत तेज़ करने का कोई प्रबन्ध हो जाय, तो बहुत काम हो। साथ ही उसने यह भी सोचा कि यदि इस धातु के चिकने पत्तर के ऊपर मनमानी ऊँचाई निचाई न रख कर, मनुष्य की जिह्वा से शब्द करा कर उसी कील के द्वारा छोटे बड़े गढ़े किये जायँ, तो सम्भव है कि फिर इस पत्तर पर कील चलाई जाने पर उसमें से उस मनुष्य की वही आवाज़ निकलने लगे। तब उसने एक पेंचदार चूड़ी बना कर उसे एक चरख़ी में पहनाया। फिर चूड़ी पर, काग़ज़ से भी पतले टीन का एक पत्तर, गोंद से चिपका कर, उसने पहना दिया। दूसरी ओर उसने मुँह-नली बनाई जिसके नीचे के पेंदे पर चमड़े की बारीक झिल्ली पहना दी। इस झिल्ली के बीचोंबीच फ़ौलाद की एक बारीक कील लगा दी। अब इसका नतीजा देखिए—

यदि यह कील चूड़ी के अगले पेंच पर टीन के पत्तर को छूती हुई रख दी जाय और फिर कोई मनुष्य एक ओर इस चूड़ी को हाथ से फिराता जाय और दूसरी ओर, साथ ही साथ, मुँह-नली में बोलता जाय तो उसके मुँह से उच्चारण किये हुए शब्द इस मुँह-नली में वायु की लहरें पैदा करेंगे। ये लहरें नली की दूसरी ओर जाकर उसके पेंदे में लगी हुई चमड़े की झिल्ली पर धक्के मारेंगी। याद रहे कि शब्द-विज्ञान का नियम है कि मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकार के शब्द उच्चारण करते समय अपनी जीभ से मुँह के भीतर भरी हुई वायु में भिन्न भिन्न प्रकार के गहरे या हलके धक्के मारता है। वे धक्के सुनने वाले के कानों की झिल्ली में जाकर लगते हैं, जिससे उसे भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों का ज्ञान होता है और वह समझ लेता है कि बोलने वाले ने क्या कहा। इसी नियम के अनुसार जब मुँह-नली में भिन्न भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के शब्द बोले जाते हैं तब उसके पेंदे पर चढ़ी हुई झिल्ली के ऊपर भिन्न भिन्न प्रकार के गहरे या हलके धक्के लगते हैं। इन धक्कों को खाकर वह झिल्ली अपनी पीठ के बीच में लगी हुई कील को कम या ज़ियादह धक्के के अनुसार नीचे की ओर दबाती है। कील के दबने से घूमती हुई चूड़ी पर चढ़े हुए टीन के पत्तर पर कम या अधिक गहरा निशान, कील के दबाव के हिसाब से, होता जाता है। इस प्रकार यह कील टीन के पत्तर पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक निशान बना देती है। निशान बन जाने पर यह टीन का पत्तर गाने वाला "रेकर्ड" (चूड़ी) बन जाता है।

इस प्रकार रेकर्ड बन जाने पर फिर हम उसमें भरी हुई आवाज़ को उससे निकाल कर सुन सकते हैं। ऐसा करने के लिए हमें टीन के पत्तर को फिर से चूड़ी पर पहनाना पड़ता है। पहना कर उसे फिर पहले की तरह हाथ से घुमाना और मुँह-नली को कान में लगाना पड़ता है। तब इस घूमते हुए टीन के पत्तर पर कील के घिसने से मुँह-नली के पेंदे पर लगी हुई चमड़े की झिल्ली ऊपर की ओर, कम या अधिक, टीन के पत्तर पर बने हुए निशानों के हिसाब से, उठती है। झिल्ली के बार बार ऊपर उठने से मुँह-नली के भीतर की वायु में, झिल्ली के उठाव के हिसाब से, कम या अधिक, धक्का लगता है, जिससे वायु की वैसी ही लहरें पैदा हो जाती हैं जैसी पहले बोल कर की गई थीं। ये लहरें उस समय सुनने वाले मनुष्य के कान की झिल्ली में लगती हैं और उसे ठीक वही शब्द सुनाई पड़ते हैं जो उस रेकर्ड में पहले भरे गये थे। इसी नियम के आधार पर तमाम ग्रामोफ़ोन बनाये गये हैं।

एडिसन ने इस प्रकार इस टीन के पत्तर और चमड़े की झिल्ली वाले ग्रामोफ़ोन को बना कर, १८७७ ईसवी में, संसार के सन्मुख रक्खा। मनुष्य की बोली पैदा करने वाले इस विचित्र यन्त्र के निकलते ही संसार में बड़ी हलचल मची। अमेरिका तथा योरप के देशों में इसे बनाने के लिए बड़े बड़े कारख़ाने खुले। उनमें ग्रामोफ़ोन की कलें, जिन्हें उस समय फ़ोनोग्राफ़ कहते थे, बनने लगीं। कारख़ानेवालों ने एडिसन से उसके बनाने का अधिकार ले लिया। इसके बदले में एडिसन को धन भी ख़ूब दिया गया। फ़ोनोग्राफ़ निकलने के आरम्भ में हिन्दुस्तान के बाज़ारों में कितने ही पाठकों को एक या दो पैसे में कानों में नलियाँ लगा कर उस समय की प्रसिद्ध ग़ज़ल—"मज़ा देते हैं क्या यार तेरे बाल घूँघरवाले"—सुनने का अवसर प्राप्त हुआ होगा। अब तो इस कल में बहुत उन्नति हो गई है। इस कारण अब हम इसे ग्रामोफ़ोन के रूप में अपने घरों में रख कर दुनिया के बड़े से बड़े नाटकालयों और सङ्गीत-सदनों में गाये गये गीतों को, चारपाई पर पड़े पड़े, आनन्द के साथ सुन सकते हैं।

इस टीन के पत्तर वाले रेकर्ड को एक मैशीन की चरख़ी से निकाल कर दूसरी पर चढ़ाने में पहले बड़ी दिक़्क़त पड़ती थी। इस लिए बहुत अनुसन्धान करने के पश्चात् एडिसन ने मोम के सदृश एक नया चिपचिपा पदार्थ तैयार करके उसकी चौथाई इञ्च मोटी चूड़ी तैयार की। फिर मुँह-नली में शब्द करके इस चूड़ी पर निशान बनाने के लिए, कील के स्थान पर, हमारे नाई-राम की नख काटने वाली छोटी तेज़ नहन्नी के सदृश एक चमड़े का यन्त्र बनाया और उसे झिल्ली की पीठ पर लगाया। इस मोम के सदृश पदार्थ से बने रेकर्ड को हम आसानी से एक मैशीन से निकाल कर दूसरी मैशीन पर चढ़ा सकते हैं। इस रेकर्ड द्वारा एक ही गीत को सुनते सुनते जब हम थक जाते हैं तब हम तेज़ चाकू से इसके पेंदे से उस पर बने निशानों को काट कर दूसरे किसी गीत को, निशान बना कर, भर सकते हैं। इतना होने पर, अब इस मैशीन के चलाने में होने वाली एक दिक़्क़त बाक़ी रह गई। वह यह कि उसे हाथ से चलाना पड़ता था। इससे मैशीन की चाल कभी कम और कभी ज़ियादह हो जाती थी, जिससे कम या ज़ियादह आवाज़ निकल कर गाना बेसुरा हो जाता था। इस लिए फ़ोनोग्राफ़ की चरख़ी को चलाने के लिए एक सन्दूक़ बनाया गया, जिसके भीतर घड़ी को चलाने वाली स्प्रिङ्ग (पेंच) की तरह एक स्प्रिङ्ग लगाई गई। इस स्प्रिङ्ग को कस देने पर और रुकावट की कील को हटा देने पर चरख़ी समान चाल से बराबर चलने लगती है। इस प्रकार यह अद्भुत यन्त्र बन कर तैयार हो गया। इसके रेकर्ड में कोई भी गाना या कोई भी शब्द भर दिया जा सकता है और फिर उस रेकर्ड को लगा कर हम उसी गाने या शब्द को बार बार सुन सकते हैं। थोड़े दिनों में इस मैशीन का व्यापार और इसकी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों की रुचि बहुत बढ़ी। तब यह प्रश्न उठा कि एक गाने को सौ रेकर्ड में भरने के लिए गवैये को सौ बार गाने की जो ज़रूरत पड़ती है वह ठीक नहीं। तब एक ऐसा रेकर्ड बनाया गया जिसके मोम-सदृश पदार्थ के ऊपर बहुत ही पतला सोने का पत्तर चढ़ाया गया। यह पत्तर इतना महीन होता है कि यदि ऐसे तीन लाख पत्तर एक दूसरे के ऊपर रख कर नापे जायँ तो उनकी मुटाई केवल एक इञ्च निकले।

इस सोने के पत्तर पर चढ़े हुए रेकर्ड में एक बार गाना भर देने से फिर इसी रेकर्ड से हज़ारों बार यही गाना ज्यों का त्यों निकाल कर दूसरे रेकर्डों में भी भर दिया जा सकता है। इससे गवैये की मिहनत भी बची और कम्पनी का ख़र्च भी।

इसमें और भी बहुत उन्नति की गई है। जैसे मुँह-नली में धातु का एक बड़ा सा भोंपू का लगाया जाना। यह भोंपू निकले हुए शब्द को तेज़ करके तमाम कमरे में फैला देता है। इसके सिवा गोल चरख़ी की चूड़ी के स्थान पर चन्द्राकार चिपटी चूड़ी का प्रचार होना, जैसी आज कल हम लोग ग्रामोफ़ोन में देखते हैं। ऐसे कितने ही अदल-बदल हुए जिनका वर्णन, लेख-विस्तार के भय से, हम छोड़े देते हैं।

मधुर और मनोहर गीतों को सुनने के अतिरिक्त ग्रामोफ़ोन से और भी कितने ही काम लिये जाते हैं—

(१) अमेरिका में समय की तङ्गी और व्यापार की तेज़ी होने के कारण वहाँ फ़ोनोग्राफ़ से मुन्शीगीरी का काम लिया जाता है। जब किसी व्यापारी को किसी पत्र का उत्तर लिखना होता है तब वह बिना आवाज़ भरी एक सादी चूड़ी को इस मैशीन पर चढ़ा कर इसमें उत्तर भर देता है। जब अनेक पत्रों के अनेक उत्तर भरे हुए रेकर्ड जमा हो जाते हैं तब एक टाइप-राइटिंग करने वाली लड़की उन सब को उठा कर अपने कमरे में ले जाती है। वहाँ इन रेकर्डों को एक एक करके फ़ोनोग्राफ की मैशीन पर चढ़ा कर और उसकी मुँह-नली को अपने कानों में लगा कर वह अपने टाइप-राइटर के सामने बैठ जाती है और फ़ोनोग्राफ़ को खोल देती है। रेकर्ड शब्द करने लगता है और वह शीघ्रता-पूर्वक उससे निकले हुए शब्दों को छापती जाती है। यदि उसे कहीं सन्देह हो जाता है तो सुई को पीछे हटा कर फिर से रेकर्ड चला देती है। इस तरकीब से कभी ग़लती नहीं हो सकती और व्यापारी का अमूल्य समय और दिमाग़-सोज़ी बच जाती है। उत्तर छप कर भेज दिये जाने पर वे रिकर्ड हमेशा के लिए दफ़्र में रख दिये जाते हैं।

(२) रेकर्ड में बड़े बड़े विद्वानों की लिखी हुई किताबें भर दी जाती हैं, जिससे अन्धे मनुष्य भी उन विद्वानों की पुस्तकों से लाभ उठा सकते हैं। किताबों को स्वयं पढ़ना इन नेत्र-हीन मनुष्यों के लिए असम्भव है। किन्तु तुलसीदास के दोहे और चौपाइयों से भरे हुए रेकर्डों को ग्रामोफ़ोन पर चढ़ा कर वे मज़े में सुन सकते हैं।

(३) बड़े बड़े व्याख्यानदाताओं के व्याख्यानों को स्वयं सुनना सभी के भाग्य में नहीं बदा होता; परन्तु उनके व्याख्यानों और उपदेशों को रेकर्ड में भर कर सब कोई सुन सकता है।

(४) अपने अपने वंश के बुज़ुर्गों के उपदेशों और वसीयत-नामों इत्यादि को इन रेकर्डों में भर कर हम अपनी सन्तान के लिए छोड़ जा सकते हैं, जिससे उन्हें लाभ पहुँचे और वंश की सम्पत्ति के बटवारे के लिए आपस में झगड़ा न खड़ा हो।

(७) अमेरिका में ऐसी घड़ियाँ बनी हैं जिन पर रेकर्ड इस प्रकार चढ़ा होता है कि घण्टा बजने पर वह मनुष्य के सदृश शब्द करके बतलाता है कि कितने बजे हैं।

(८) किसी देश और जाति की किसी समय की भाषा रेकर्ड में भर कर भविष्यत् के लिए सुरक्षित रक्खी जा सकती है।

(९) विद्यार्थियों के लिए ये रेकर्ड बड़े काम के हैं। किसी प्रोफ़ेसर या शिक्षक के पाठ को रेकर्डों में भर लेते हैं और घर ले जाकर उन्हें मैशीन पर चढ़ा देते हैं। इससे सहज में वे बिना ग़लती किये पाठ याद कर सकते हैं। अमेरिका और योरप में ऐसे कई कालेज हैं जो संसार की भिन्न भिन्न भाषाओं को इन रेकर्डों में भर कर अपने विद्यार्थियों को दूर दूर भेज देते हैं, जिससे इनके द्वारा असली भाषा का ठीक ठीक ज्ञान हो जाय। उदाहरण के लिए यदि किसी भारतवासी को फ़्रेञ्च भाषा, ठीक फ़्रेञ्च लोगों की तरह, बोलना हो तो या तो किसी फ़्रान्स-निवासी को अध्यापक रक्खे या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी फ्रेञ्च विद्वान् के शब्दों से भरे हुए रेकर्ड ख़रीद कर उन्हें सुन सुन कर अध्ययन करे। पहली तरकीब से ख़र्च अधिक पड़ता है, दूसरी से कम।

(१०) इस मैशीन के द्वारा ख़ुफ़िया पुलिस को बड़ा लाभ पहुँचा है। जहाँ कोई अपराध होने की सम्भावना और गवाही देने की ज़रूरत होती है वहाँ एक छोटे से फ़ोनोग्राफ़ को वे लोग लगा देते हैं। उसमें चोरों या हत्यारों की सारी बातें भर जाती हैं। यही रेकर्ड, बाद को, जज के सामने, गवाह का काम देते हैं।

एडिसन ने यों तो अनेक आविष्कार किये हैं; किन्तु चलने-फिरने वाली चित्रकारी (Cinematography) और ग्रामोफ़ोन के आविष्कार ने संसार का बड़ा हित किया है। हमारी प्राचीन आर्य्य-सभ्यता की उन्नति के समय यदि कोई एडिसन पैदा हुआ होता तो हमें, और सारे संसार को भी, अत्यन्त लाभ पहुँचता। फिर तो आज हम अपने वेदों की पवित्र ऋचाओं को साक्षात् अपने पूजनीय ऋषियों और मुनियों की जिह्वा से निकले हुए शब्दों के रेकर्डों द्वारा सुन सकते। भगवान् श्रीकृष्ण के गीता-ग्रथित उपदेशों को स्वयं सुन लेते; सूरदास, तुलसीदास तथा अन्य प्राचीन कवियों की कविताओं को उन महात्माओं के मुँह से निकलते सुन पाते। यह कितने आनन्द और कितने लाभ की बात होती। इनके शब्दों को सुनने के अतिरिक्त हम चित्रकारी के द्वारा यह भी देख सकते कि वे किस प्रकार बोलते थे; किस प्रकार चलते, बैठते खाते और पीते थे। ख़ैर तब न सही अब सही। हम अपनी चाल-ढाल और कहावतों को अपनी भविष्यत् सन्तान के लिए इन साधनों के द्वारा छोड़ जा सकते हैं।

जगन्नाथ खन्ना (लन्दन)

हृदय।

(१)

वह सिसकता जो सड़क पर है खड़ा,
है नहीं घर-द्वार का जिसके पता,
बाँह ऐसे दीन की गहता हृदय
और उसके आँसुवों को पोंछता॥

(२)

जिस अभागे को हरे! सब काल है
घाव घोर अभाव का रहता बना,
भूल कर उसको हृदय करता नहीं
द्वार आने से कभी अपने मना॥

(३)

प्यार की दो बात कहने के लिए
जिस दुखी के पास है कोई नहीं,
पास उसके दौड़ कर जाता हृदय
और घण्टों बैठ रहता है वहीं॥

(४)

गोद जिसकी आज ख़ाली हो गई
है अनूठा रत्न जिसका खो गया,
देख कर उस दुःखिनी माँ की दशा,
बावला सा क्यों हृदय है हो गया?

(५)

राह पर उसको ठिठुरता शीत से
मिल गया कोई अगर नङ्गे बदन,
शाल अपना डाल तो उस पर हृदय
है वहीं से लौटता अपने सदन॥

(६)

देख लेता जो किसी निज बन्धु पर
वज्र सम आघात है आता बड़ा,
तो न प्राणों की ज़रा परवाह कर
सामने वह आप हो जाता खड़ा॥

(७)

बेकसों का जो दबा करके गला
चालबाज़ी से चला देते छुरी,
याद कर उनको हृदय है काँपता;
वह नहीं इसमें समझता चातुरी॥

(८)

देख कर उत्कर्ष औरों का सदा
हर्ष से खिलता हृदय है फूल सा,
पर किसी का दुःख-मय अपकर्ष है
बेधता उसको बहुत ही शूल सा॥

(९)

स्वर्ग की भी लख अतुल सुख-सम्पदा,
माँगने वह हाथ फैलाता नहीं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ कर अपनी पुरानी झोंपड़ी ,
द्वार को वह अन्य के जाता नहीं ॥

(१०)

मुफ़्त ही पर की कमाई से मिली
है मिठाई भी सरस सीठी उसे ;
पर परिश्रम-प्राप्त सूखी रोटियाँ
हैं अमृत के सम बड़ी मीठी उसे ॥

(११)

हाँ किसी श्रीमान के हाँ में मिला ,
आम भी जब नीम है जाता कहा ,
तब हृदय होता सँभल कर है खड़ा
जब वहाँ उससे नहीं जाता रहा ॥

(१२)

देख यह झट हाथ उसका खींच कर
स्वार्थ उसको चाहता देना बिठा ;
पर कुचल पाँवों तले उसको वहीं ,
मोह का परदा हृदय देता उठा ॥

(१३)

धर्म-रक्षा से विमुख हो अन्य जब
शक्तिशाली के पदों को चूमता ,
स्वीय प्राणों को हथेली पर लिये
यह सरे बाज़ार है तब घूमता ॥

पाण्डेय मुकुटधर

कालिदास के प्रति–

हम सब जो अब सुख-दुख पाते हुए न तुमको प्राप्त सभी ?
आशा और निराशा का क्या तुम्हें न दीखा द्वन्द्व कभी ?
अहो अमर कवि ! राजसभा में रचे न क्या षडचक्र गये ?
किये न प्रति पल दुर्जन जन ने तुम पर गुप्ताघात नये ?
निशा-काल में चिन्तानल से गले न तुम क्या किसी घड़ी ?
व्यथा-शूल लगने के कारण कभी न तुमने आह भरी ?
अविश्वास, अपमान, अनादर—इनका क्या था नाम नहीं ?
क्या अन्याय, अभाव कठिन से पड़ा न तुमको काम कहीं ?
फिर भी, कविवर ! काव्य तुम्हारा रह निर्लिप्त और निर्मल,
उठा पङ्कमय जल के ऊपर बन कर क्या सौन्दर्य्य-कमल !
इस पर छाया दुःख-दैन्य की आज सकेगा कौन बता ?
दुर्दिन की रचनाओं का अब कौन सकेगा लगा पता ?
जीवन-मन्थन से जो निकला विष वह तुमने पान किया !
और अमृत जो बाहर आया उसे जगत् को दान दिया !!

अनुवादक—पारसनाथसिंह, बी० ए०

विविध विषय ।

१—व्रज-भाषा पर एक मुसलमान-लेखक की सम्मति ।

इस संख्या में एक मुसलमान-महाशय का लिखा हुआ एक लेख उद्धृत है। उसका नाम है—ज़बान भाषा । उसके लेखक हैं—सुल्तान-अहमद—नाम के कोई झेलम-निवासी । इस लेख की भाषा ज्यों की त्यों रक्खी गई है। "ज़बान भाषा" से लेखक का आशय व्रज-भाषा से मालूम होता है। लेख में जिस पुस्तक का उल्लेख है उसके लेखक और महाशय सुल्तान-अहमद ने "भाषा" की प्रशंसा में जो कुछ लिखा है वह हमारे मुसलमान भाइयों के ध्यान देने योग्य है। जिस तरह हिन्दुओं ने उर्दू और फ़ारसी पढ़ कर लाभ उठाया है उसी तरह यदि मुसलमान भी व्रज-भाषा, हिन्दी और संस्कृत पढ़ते तो अवश्य ही उनको लाभ पहुँचता और उर्दू की कविता भी विशेष उन्नत हो जाती। इस दृष्टि से सुल्तान-अहमद महाशय का यह लेख बड़े महत्त्व का है।

एक और दृष्टि से भी यह लेख विशेषता रखता है। उस दिन संयुक्त-प्रान्त के लेजिस्लेटिव कौंसिल में माननीय चिन्तामणि ने गवर्नमेंट से पूछा कि जो लोग मुंसिफ़ और सदर-आला नियत किये जाते हैं उनको जैसे उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि सीखनी पड़ती है वैसे ही हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि भी क्यों न सीखनी पड़े ? गवर्नमेंट ने उत्तर दिया—इसकी ज़रूरत नहीं। इस उत्तर से असन्तुष्ट होकर प्रश्न-कर्त्ता महाशय ने कौंसिल की १२ दिसम्बर १९१६ वाली बैठक में इसी विषय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया। परन्तु समयाभाव के कारण उस पर विचार न हो सका। मामला अगली मीटिंग तक के लिए मुल्तवी रक्खा गया। ख़ैर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

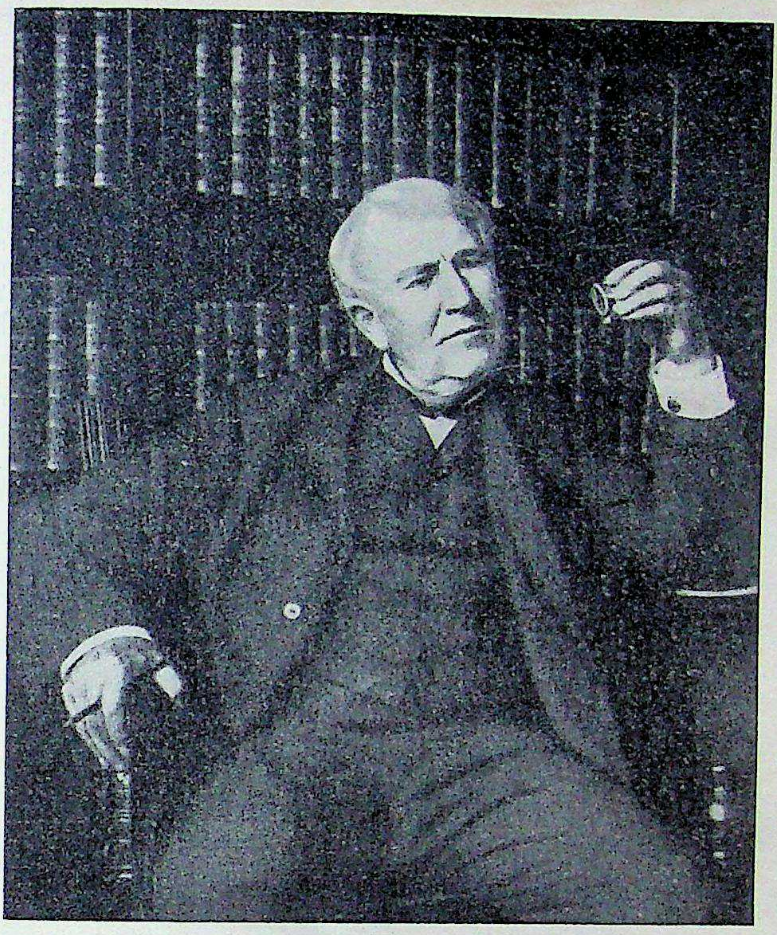

एडिसन साहब अपने पुस्तकालय में बैठे हुए फ़ोनोग्राफ़ का रेकर्ड देख रहे हैं।

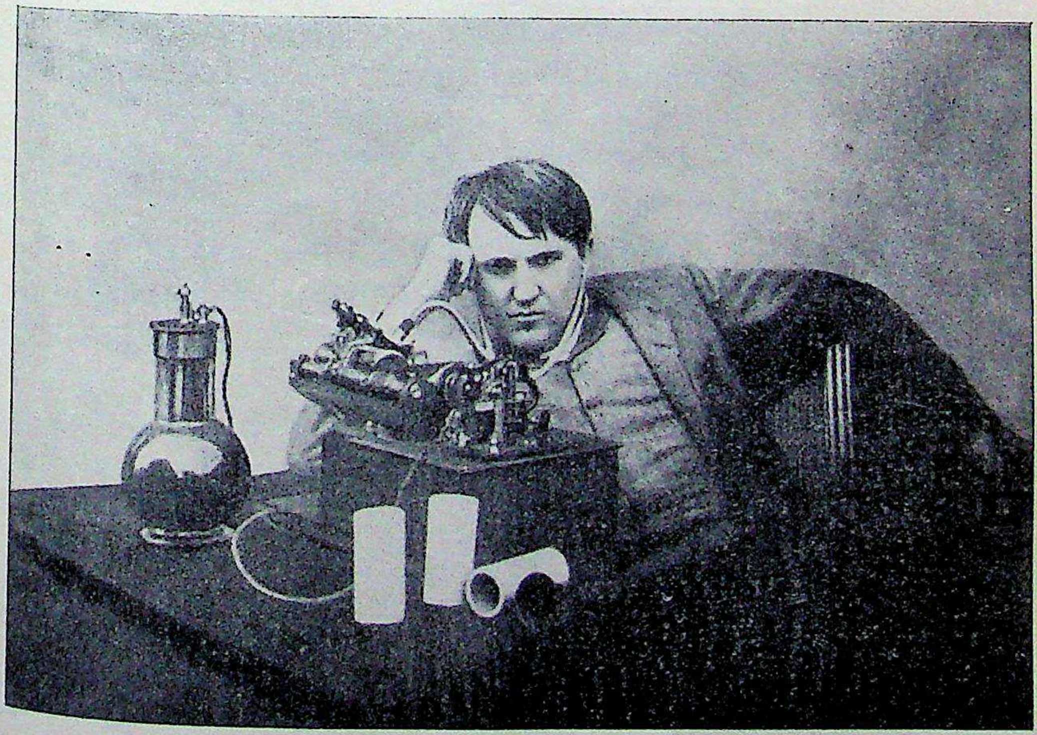

एडिसन साहब और उनका तैयार किया हुआ फ़ोनोग्राफ़—१८८८ ईसवी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वोक्त तारीख़ को चिन्तामणिजी ने बनारस के क्वीन्स कालेज के विषय में लगातार तीन प्रस्ताव पेश किये। उन्होंने कहा, या तो इस कालेज में यथेष्ट छात्र भरती किये जायँ—अर्थात् जितनों के बैठने की जगह है उतने—; या यह कालेज हिन्दू-विश्वविद्यालय के सिपुर्द कर दिया जाय; या यदि यह भी न किया जाय तो यह एकदम तोड़ ही दिया जाय। पहला प्रस्ताव कौंसिल ने नामंज़ूर किया। तब दूसरा पेश हुआ। उसका प्रतिवाद कई मुसल्मान मेम्बरों ने किया। उन में से माननीय सैयद रज़ाअली भी थे। आप कहाँ तो इस कालेज-विषयक प्रस्ताव का प्रतिवाद करने उठे थे, कहाँ एक अप्रासङ्गिक बात की आलोचना करने लगे। यह अप्रासङ्गिक बात थी चिन्तामणिजी का वह प्रस्ताव जिसमें उन्होंने मुन्सिफ़ों और सब-जजों को हिन्दी सीखने की आवश्यकता प्रकट की थी। रज़ा-अली साहब ने फ़रमाया—देखिए, ये लोग न्याय-विभाग के अफ़सरों पर क्लिष्ट-हिन्दी (High-flown Hindi) सीखने का बोझ लादने की चेष्टा कर रहे हैं। इस पर, प्रस्ताव-कर्ता चिन्तामणिजी के सुझाने पर, प्रेसिडेंट, सर जेम्स मेस्टन, ने कहा—विषयान्तर न कीजिए। तब आपने अपनी बात को वहीं तक रक्खा। नहीं तो शायद क्लिष्ट हिन्दी की आप और भी ख़बर लेते। बे मौक़े ही जब मिस्टर रज़ा-अली से हिन्दी के विरुद्ध दो बातें कहे बिना न रहा गया तब हिन्दी-विषयक प्रस्ताव पर विचार करने के समय आप न मालूम क्या क्या कहने की कृपा करेंगे।*

अब आप से हमारी प्रार्थना है कि आप मिस्टर सुल्तान-अहमद का उद्धृत लेख पढ़ने की कृपा करें और देखें कि हिन्दी पढ़ने से कितना लाभ हो सकता है। साथ ही आप यह भी देखें कि आपकी उर्दू के लेखक कितनी सरल भाषा लिखते हैं। इस लेख को हमने एक हिन्दू-सज्जन को पढ़ने के लिए दिया। वे एम० ए० हैं और बी० ए० तक उनकी दूसरी भाषा फ़ारसी थी। लेख के कितने ही शब्द उनकी समझ में न आये। उन्होंने कहा—क्लिष्टता के सिवा इस लेख में व्याकरण और मुहावरे की भी कितनी हीं ग़लतियाँ हैं। इसकी शैली को तो उन्होंने अत्यन्त ही दोषपूर्ण बताया। माननीय रज़ा-अली साहब यह तो अवश्य ही जानते होंगे कि इस प्रान्त के तीन-चौथाई निवासी हिन्दी ही बोलते, हिन्दी ही लिखते और हिन्दी ही पढ़ सकते हैं। अवशिष्ट एक चौथाई मुशकिल से उर्दू जानते हैं। जैसी क्लिष्ट भाषा और जैसी घसीट लिपि न्यायालय के कर्मचारी लिखते हैं वैसी के जानने वाले तो और भी थोड़े हैं। पर माननीय रज़ा-अली प्रजा का कल्याण इसी में समझते हैं कि आबादी का तीन-चौथाई भाग समन, अर्ज़ीदावे और फ़ैसलों की नक़लें लिये हुए, घसीट उर्दू और क्लिष्ट फ़ारसी-अरबी के जानने वालों को ढूँढ़ने के लिए गाँव गाँव ठोकरें खाता फिरे! बात यह कि मेरी उर्दू दोषपूर्ण होने पर भी निष्कण्टक राज्य करे; हिन्दी सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी दूर ही रक्खी जाय! अरे भाई! आपके सुभीते के लिए आपकी उर्दू अपने आसन पर आसीन रहे; पर जिनका सुभीता हिन्दी के प्रचार से है उनके लिए उसे भी तो न्यायालय के भीतर पहुँचने दो। न्याय-अन्याय का कुछ भी तो ख़याल रक्खो। अपने अल्पलाभ के लिए दूसरों को अनल्प हानि पहुँचने का यत्न करना अच्छा नहीं।

* हमारी यह सम्भावना सच निकली—सम्पादक।

२—काश्मीर में शिक्षा-प्राप्ति के सुभीते।

काश्मीर के महाराज शिक्षा-प्रचार और उसके विस्तार के बड़े पक्षपाती होते जा रहे हैं। उनकी प्रेरणा और कृपा से वहाँ शिक्षा-प्राप्ति के लिए नये नये सुभीते किये जा रहे हैं। वहां अब, हर साल, एक शिक्षा-सम्बन्धिनी कमिटी बैठती है। पहली कमिटी की बैठक १९१५ के अन्त में हुई थी। उसका हाल उस समय सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। दूसरी कमिटी की बैठक गत दिसम्बर में हुई। इस कमिटी में जिन विषयों पर विचार और जिन बातों का निश्चय हुआ उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

काश्मीर और जम्बू की रियासत में जितने स्कूल हैं उनकी प्रत्येक कक्षा में चालीस तक ही छात्र रक्खे जायँगे। पर यदि इससे अधिक छात्र भरती होना चाहेंगे तो उन्हें भरती करने से इनकार न किया जायगा। उनके लिए एक एक कक्षा के एक से अधिक विभाग कर दिये जायँगे और प्रत्येक विभाग के लिए अलग अलग अध्यापक रक्खे जायँगे। इस प्रबन्ध से शिक्षा में "कच्चापन" भी न रहेगा और शिक्षा-प्राप्ति से कोई छात्र वञ्चित भी न होगा।

उद्योग-धन्धे की शिक्षा के लिए राज्य में ६ स्कूल खोलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निश्चय हुआ। उनमें कृषि-विद्या और लुहार-बढ़ई आदि का काम सिखाया जायगा। जिनमें कृषि की शिक्षा दी जायगी उनमें बाग़ भी रहेगा और खेत भी, जिससे लड़के कृषि का काम अपने हाथ से करना सीख जायँ। लुहार-बढ़ई की शिक्षा देने वाले स्कूलों के साथ छोटे छोटे कारख़ाने भी रहेंगे। इस तरह के स्कूलों से बड़ा लाभ होगा। लड़के अपने घर का पेशा सीख कर वह काम करने की विशेष योग्यता प्राप्त कर सकेंगे।

तीसरे दरजे के नीचे के सभी दरजों में केवल हिन्दी-उर्दू के द्वारा शिक्षा देने का निश्चय पहले ही हो चुका था। अब यह निश्चय हुआ है कि तीसरे अर्थात् मिडिल क्लास में भी सारी शिक्षा इन्हीं भाषाओं के द्वारा दी जाय। यह ख़ूब हुआ। जान पड़ता है, काश्मीर-दरबार को मातृ-भाषा के द्वारा शिक्षा देने का महत्त्व ज्ञात होगया है। इसी से वह इस प्रणाली को धीरे धीरे आगे बढ़ा रहा है।

कमिटी की राय हुई कि प्रारम्भिक शिक्षा का ख़ूब विस्तार किया जाय, जिससे राज्य में एक भी आदमी अपढ़ न रहे। इसका प्रबन्ध वहाँ का शिक्षा-विभाग बड़े झपाटे से करना चाहता है। उसने अनेक नये नये प्रारम्भिक मदरसे खोल भी दिये हैं और अनेक अन्य मदरसे खोलने के लिए तैयार भी है।

काश्मीर का शिक्षा-विभाग धार्म्मिक शिक्षा देने की भी आवश्यकता समझता है। इसके लिए संस्कृत, अरबी और हिन्दी भाषायें जानने की ज़रूरत है। क्योंकि इन्हीं भाषाओं के द्वारा इस तरह की शिक्षा अच्छी तरह दी जा सकती है। अतएव वहाँ जितने मिडिल और हाई स्कूल हैं उनमें धार्म्मिक शिक्षा देने के लिए उसने संस्कृत, अरबी और हिन्दी के ज्ञाता अध्यापक नियत करने का निश्चय किया है।

दरबार स्त्री-शिक्षा की भी उन्नति करना चाहता है। विधवाओं और वयस्क कुमारिकाओं को वज़ीफ़े दे कर वह अध्यापन-कार्य्य सिखलाना चाहता है। इस तरह जैसे जैसे उसे अध्यापिकायें मिलती जायँगी वैसे ही वैसे वह लड़कियों की शिक्षा के लिए नये नये स्कूल खोलता जायगा।

काश्मीर और जम्बू के शिक्षा-विभाग के सचिव ने पूर्वोक्त कमिटी की कारवाई का जो वर्णन भेजा है उससे मालूम होता है कि यदि इसी तरह काम होता गया तो वहाँ शिक्षा की बहुत शीघ्र उन्नति हो जायगी।

३—शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टरों की विचार-सभा।

गत जनवरी में शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टरों की एक सभा देहली में हुई। उसके काम का आरम्भ बड़े लाट, लार्ड चेम्सफर्ड, ने किया। आपने अपनी आरम्भिक वक्तृता में शिक्षा-विषयक अनेक बातें कहीं। शिक्षा अँगरेज़ी द्वारा देनी चाहिए, या देशी भाषाओं के द्वारा, इस पर भी लाट साहब ने अपना वक्तव्य प्रकट किया। आपके भाषण के इस अंश का आशय सुनिए—

उच्च शिक्षा आज कल अँगरेजी भाषा के द्वारा दी जाती है। यह इस लिए कि अँगरेज़ी जानने वालों को नौकरी मिलने में सुभीता होता है। इसका यह भी कारण है कि देशी भाषाओं में सब तरह की पाठ्य पुस्तकें नहीं। इसका परिणाम जो हो रहा है उसे बताने की ज़रूरत नहीं। वह सभी पर विदित है। बेचारे विद्यार्थियों को गहन से गहन विषय भी विदेशी भाषा में सीखने पड़ते हैं। यदि उनकी समझ में कोई विषय नहीं आता तो वे उस विषय के वर्णन को रट लेते हैं। यहाँ तक कि कोई कोई विद्यार्थी तो पूरी पुस्तक की पुस्तक कण्ठ कर डालते। उनकी इस आदत को हम बुरा समझते हैं और उसकी तीव्र आलोचना करते हैं। पर इस प्रकार पुस्तकें कण्ठ करने वालों की तो मैं प्रशंसा ही करूँगा। उनके विद्या-प्रेम और ज्ञान-लिप्सा को तो देखो। हम लोगों (विलायतवालों) को यदि शिक्षा किसी विदेशी भाषा में दी जाती तो हम में से अधिकांश घबरा कर शायद विद्योपार्जन करना ही छोड़ देते। इतनी मिहनत हम से हो ही न सकती। पर ये भारतवर्षीय छात्र इस कठिनता को अदम्य उत्साह और उत्कट परिश्रम से हल कर लेते हैं। वे पुस्तकें की पुस्तकें ही कण्ठ कर डालते हैं। अतएव हमें इन लोगों के इस कार्य्य से आश्चर्य्य-चकित होना चाहिए; इनकी निन्दा हमें न करनी चाहिए। यहाँ, इस देश में, विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा देना दुःख की बात है। यह प्रणाली अच्छी नहीं। या तो हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे, जहाँ तक हो सके, देशी भाषाओं द्वारा ही शिक्षा दी जाय; अँगरेज़ी भाषा का प्रयोग बहुत पीछे से किया जाय; या अँगरेज़ी सिखाने की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जाय। यदि यह नहीं हो सकता तो इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या और भी कोई इलाज इस रोग के दूरीकरण का है? मैं इस विषय में आपकी विचारपूर्ण और पक्षपातरहित राय चाहता हूँ। कोई दो वर्ष हुए, इस बात का विचार कौंसिल में हुआ था। उस समय यह निश्चय हुआ था कि युद्ध समाप्त होने पर इस सम्बन्ध में प्रान्तिक गवर्नमेंटों से परामर्श किया जाय। अतएव आपके विचार ज्ञात हो जाने पर उस समय इस विचारणीय विषय का निपटारा करने में बहुत सुभीता होगा।

लाट साहब का यह वक्तव्य विशेष आशा-जनक है। हम आपके इन विचारों का अभिनन्दन हृदय से करते हैं।

४—शिक्षा-विभाग की रिपोर्ट।

इस प्रान्त के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर की वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। इस रिपोर्ट का सम्बन्ध एप्रिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९१५ से मार्च १९१६ तक है। इसकी कुछ बातें सुनिए—

इस साल १७० शिक्षालय कम हो गये। यह कमी सरकारी और गैर सरकारी दोनों प्रकार के शिक्षालयों में हुई। जहाँ तक सरकारी शिक्षालयों से सम्बन्ध है, कमी केवल प्रारम्भिक मदरसों में हुई। पहले इस तरह के शिक्षालय १०,२३७ थे। अब घट कर वे १०,४७१ ही रह गये। इमदादी मदरसों के टूटने या तोड़े जाने से यह दशा हुई है। सरकार इमदादी मदरसे कम पसन्द करती है। वह अपने ही नमूनेदार मदरसों को अच्छा समझती है। वह कहती है, हम उन्हीं की वृद्धि करके प्रारम्भिक शिक्षा का अधिकाधिक प्रचार करेंगे। इस निमित्त उसने जटिल नियम बना दिये हैं। इनके अनुसार अभी तक पूरी पूरी कारवाई नहीं हो सकी। जब हो जायगी तब मदरसे अधिक हो जायँगे। यहाँ तक कि हर गाँव के लड़कों की पहुँच वहाँ हो सकेगी। सरकार का यही कहना है। पर प्रजा के नेता कहते हैं—अच्छी बात है, यही हो। पर जब तक सरकारी मदरसों की संख्या नहीं बढ़ती तब तक तो इमदादी मदरसे तोड़ने में शीघ्रता न की जाय। परन्तु सरकार को शायद यह मन्ज़ूर नहीं। इसी से ऐसे मदरसों को तोड़ने का काम झपाटे से जारी है।

ख़ैर, मदरसे तो कम हो गये, पर छात्र कम नहीं हुए। पहले ८,२२,४५५ थे। अब ८,४१,३३४ हैं। अर्थात् १३,२१९ छात्र बढ़ गये हैं। परन्तु, इस अवधि में, इस प्रान्त में, इससे अधिक लड़के और लड़कियाँ यदि उत्पन्न हुई हों तो इस वृद्धि की गिनती वृद्धि में न की जा सकेगी। मदरसे जाने योग्य उम्र की १०० लड़कियों और लड़कों पीछे केवल १२ छात्रों ने शिक्षा पाई। बाक़ी ८८ छात्रों को ककहरे से पहचान करने की नौबत ही न आई!

यदि मदरसे जाने योग्य उम्र के लड़कों और लड़कियों का हिसाब अलग अलग देखा जाय तो फ़ी १०० लड़कों पीछे २१ ने और फ़ी १०० लड़कियों पीछे दो ने ही शिक्षा पाई!

अब शिक्षालयों का औसत देखिए। इस प्रान्त से नगरों, क़सबों और गाँवों की संख्या १,०४,९६६ है। इनमें से फ़ी १०० क़सबों आदि के पीछे १९३ शिक्षालय लड़कों के लिए और केवल १½ से कुछ अधिक लड़कियों के लिए थे!

शिक्षा-प्राप्ति का मार्ग कहाँ तक सङ्कुचित है, यह बात इस लेखे से अच्छी तरह समझ में आ सकती है। ख़र्च भी रिपोर्ट के साल कम किया गया। उसके पहले १,४१,५५,८०८ रुपया ख़र्च हुआ था। रिपोर्ट के साल केवल १,३९,१९०६० रुपया ख़र्च किया गया। कोई डेढ़ दो लाख कम ख़र्च हुआ।

शिक्षा-विभाग के एक अफ़सर ने १९१५—१६ में एक बड़े महत्त्व की पुस्तक का पता लगाया। यह उन्हें महाराजा बीकानेर के पुस्तकालय में मिली। यह एक रोज़नामचा है, जो डच भाषा में है। १६५९—६० में हालेन्ड का एक व्यापारी अहमदाबाद में व्यापार करने आया था। यह प्राचीन पुस्तक उसी की लिखी हुई है। इसमें उस समय का बहुत कुछ हाल है।

रिपोर्ट में लिखा है कि संस्कृत पढ़ने की ओर हिन्दुओं की रुचि अधिक हो रही है। पाठशालाओं में हिन्दू छात्र अब अधिक भरती होने लगे हैं। ये शुभ लक्षण हैं।

माध्यमिक स्कूलों में अब हिसाब, भूगोल, इतिहास और विज्ञान देशी भाषाओं द्वारा ही पढ़ाया जाता है। स्कूलों के इन्स्पेक्टरों की राय है कि इससे लड़कों को अँगरेज़ी ज्ञान तो कम होगा, पर विषय-ज्ञान पहले से अच्छा होने की सम्भावना है। शिक्षक अच्छे मिलें तो अँगरेज़ी भाषा का ज्ञान कम कदापि न हो। लड़कों को अब पहले से अधिक समय मिलेगा। उनके मस्तिष्क पर ज़ोर भी कम पड़ेगा। अतएव व्यर्थ मिहनत से वे बहुत कुछ बच जायँगे। इस कारण अँगरेज़ी सीखने के लिए यथेष्ट समय लगाने और श्रम करने में उन्हें सुभीता होगा। एक कठिनता यह भी बताई गई है कि देशी भाषाओं में शिक्षक अच्छी तरह विज्ञान नहीं पढ़ा सकते। यह कठिनता भी शीघ्र जाती रहेगी। अपनी भाषा सीखते शिक्षित शिक्षकों को बहुत समय न लगेगा। यदि ये लोग अपनी माँ की भाषा की अवहेलना न करते तो यह नौबत ही न आती।

लड़कियों के भी बहुत से इमदादी मदरसे टूट गये। पूर्व वर्ष की अपेक्षा उनके शिक्षालयों की संख्या कुछ कम हो गई। पर शिक्षा पाने वाली लड़कियों की संख्या कम नहीं हुई। वह एक हज़ार के ऊपर बढ़ी। परन्तु इस वृद्धि को महासागर में एक छोटा सा जल-कण डाल देने ही के सदृश समझिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—पुरातत्त्व-विभाग के पश्चिमी सरकिल की रिपोर्ट।

पुरातत्त्व-विभाग के पश्चिमी सरकिल का सदर मुक़ाम पूना है। वह एक सुपरिंटेंडेंट के अधीन है। मिस्टर डी० आर० भाण्डारकर, एम० ए०, इस समय, इस पद पर हैं। आपके सरकिल की रिपोर्ट, जो आप ही की लिखी हुई है, अभी हाल में प्रकाशित हुई है। उसका सम्बन्ध उस वर्ष से है जो ३१ मार्च १९१६ को ख़तम हुआ। इस रिपोर्ट से सूचित है कि पश्चिमी सरकिल में पुरातत्त्व-सम्बन्धी काम ख़ूब हो रहा है। जो अजायबघर इस सरकिल की देख-रेख में हैं उनमें अनेक दुष्प्राप्य वस्तुओं का संग्रह किया गया। उनमें से कितने ही प्राचीन सिक्के भी हैं। कई सिक्के तो बहुत ही प्राचीन हैं। इस महकमे के लिए बम्बई की गवर्नमेंट ने मिस्टर पुरुषोत्तम विश्राम मावजी से कोई डेढ़ लाख रुपये में प्राचीन चित्र, सिक्के, नक़शे, शस्त्रास्त्र और रेशमी कपड़े इत्यादि मोल लिये। बाँसवाड़े की रियासत में २,३९३ सिक्के ज़मीन में गड़े हुए मिले। ये सिक्के क्षत्रप-राजाओं के हैं। उनमें से ५० अलभ्य सिक्के भी भाण्डारकर महाशय ने प्राप्त किये। और भी कितने ही सिक्के एकत्र किये गये। एक सिक्का आन्द्रगोरस का भी मिला। यह वही ग्रीक सरदार है जिसे सिकन्दर ने बाकूट्रिया का क्षत्रप नियत किया था। मिनेंडर, वेमा-कडफसी और हविष्क के भी सिक्के मिले। मुसलमान-बादशाहों और शाहों के भी अनेक प्राचीन सिक्के प्राप्त किये गये। इसके सिवा न मालूम कितनी बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री एकत्र की गई।

खुदाई कई जगह हुई। कितनेही ताम्रपत्रों और शिलालेखों का संग्रह किया गया। चित्तौर से ८ मील की दूरी पर एक जगह नगरी नाम की है। यहीं पर, कोई दो हज़ार वर्ष पूर्व, माध्यमिका नामक नगरी थी। इस नगरी का ज़िक्र पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में किया है। मिनेंडर नाम के यवन (ग्रीक) राजा ने इसे उद्ध्वस्त किया था। शिबि नाम की एक जाति यहाँ रहती थी। ये लोग पहले पञ्जाब में आकर बसे थे। वहाँ से ये राजपूताने में भी फैल गये थे। माध्यमिका इन्हीं की राजधानी थी। यह उस समय बड़ी ऊर्जितावस्था को प्राप्त थी। इक्कीस सौ वर्ष का पुराना एक शिलालेख यहाँ मिला है। उसमें लिखा है कि यहाँ एक वाजपेय और एक अश्वमेध-यज्ञ हुआ था।

नगरी में एक प्राचीन स्तूप के भग्नावशेष मिले। उनके ऊपर पन्द्रह सौ वर्ष के पुराने एक शिव-मन्दिर के चिह्न देखे गये। इससे सूचित हुआ कि स्तूप दो हज़ार वर्ष के बहुत पहले ही वहाँ बना होगा।

नगरी में एक जगह का नाम घोसुण्डी है। वहाँ एक और भी बहुत पुरानी और बड़े महत्त्व की इमारत का पता लगा। इमारत के भग्नावशेषों और शिलालेखों से सिद्ध हुआ कि वहाँ पर ईसा के ढाई तीन सौ वर्ष पूर्व भी संकर्षण और वासुदेव का एक मन्दिर था। इससे स्पष्ट है कि आज से बाइस सौ वर्ष पहले भी भारत में मूर्त्ति-पूजा और वैष्णव-मत प्रचलित था। ईसा के दो सौ वर्ष पहले के एक गरुड़-स्तम्भ का पता, भिलसा के पास बेसनगर में, कोई तीन वर्ष पहले, लग चुका था। विष्णु-मन्दिर के अस्तित्व का यह दूसरा पता उससे भी पुराना लग गया। ये दोनों ही आविष्कार मिस्टर भाण्डारकर ही के किये हुए हैं।

भाण्डारकर महाशय को नगरी में एक शिलालेख बड़े ही महत्त्व का मिला। वह विक्रम-संवत् ४८१ का है। वह समय गुप्तवंशीय नरेशों के शासन का था। उस लेख का सम्बन्ध एक विष्णु-मन्दिर से है। यह मन्दिर सत्यशूर, सुगन्ध और दास नाम के तीन वैश्य-भाइयों ने बनवाया था। इस लेख में मन्दिर के निर्म्माण का समय इस प्रकार दिया हुआ है—

कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेषु एकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालव-पूर्वायां ४०० ८० १ कार्तिक शुक्ल-पञ्चम्याम्

इसके पहले विक्रम-संवत् के सम्बन्ध में ये वाक्य मिल चुके थे—

(१) मालवानां गणस्थित्या।

(२) मालव-गण-स्थितिवशात्।

(३) मालव-गणाम्नाते।

इन वाक्यों से अब तक मालव-संवत् का अर्थ लिया जाता था और यह अनुमान किया जाता था कि विक्रम-संवत् उस समय मालव-संवत् के नाम से प्रसिद्ध था। विक्रम-शब्द पीछे से जोड़ दिया गया है। पर अब भाण्डारकर महाशय कहते हैं कि यह भूल थी। उनको प्राप्त हुए लेख में "कृतेषु"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द "संवत्सरेषु" के लिए आया है। यह शब्द, संवत्सर के अर्थ में, और भी कई प्राचीन लेखों में व्यवहृत हुआ है। प्रकृत शिलालेख में "मालवपूर्व्वायां" पद संवत्सर के लिए नहीं, किन्तु "कार्त्तिक-शुक्र-पञ्चम्यां" के लिए है। वह पञ्चम्यां का विशेषण है। जिन पुराने लेखों में विक्रम-संवत् दिया हुआ है उनमें एक विशेषता है। किसी में चैत्रादि-संवत् है, किसी में कार्तिकादि, किसी में पूर्णिमान्त और किसी में अमान्त। इससे सूचित है कि मालवेवाले वर्ष की गणना भिन्न भिन्न प्रकार से करते थे। इसी गणना-विशेष के कारण "मालवानां गणस्थित्या"—आदि प्रयोगों का व्यवहार प्राचीन लेखों में मिलता है। उसका सम्बन्ध तिथियों से है, संवत्सर से नहीं। इससे सिद्ध है कि मालवेवालों ने विक्रम-संवत् नहीं चलाया। वह पहले ही से प्रचलित था और उसका पूर्व नाम कृत था। इस "कृत" का चाहे जो अभिप्राय रहा हो। पर वह मालवेवालों की कृति नहीं।

देखिए, अब इस पर विदेशी वि.ान् क्या कहते हैं।

६—विज्ञानाचार्य्य वसु के नये आविष्कार।

विज्ञानाचार्य्य जगदीशचन्द्र वसु के अद्भुत आविष्कारों का हाल सरस्वती में कई दफ़ प्रकाशित हो चुका है। कुछ समय हुआ, भारत के गवर्नर जनरल और बङ्गाल के गवर्नर वसु महाशय की प्रयोगशाला देखने गये। यह प्रयोगशाला कलकत्ते के अपर सरकुलर रोड में है। वहाँ वसु महाशय के प्रयोग देख कर दोनों लाट बहुत प्रसन्न हुए। पेड़-पौधे भी बढ़ते हैं, यह सभी जानते हैं। पर उनका बढ़ना आँख से नहीं दिखाई देता। विज्ञानाचार्य्य वसु ने इस असम्भव बात को भी सम्भव कर दिखाया है। आपने एक ऐसा यन्त्र बनाया है जिसके योग से पौधों की वृद्धि अच्छी तरह दिखाई देती है। एक सेकंड में वे जितना बढ़ते हैं उतनी वृद्धि भी, इस यन्त्र से देखने को मिलती है। उन्होंने एक ऐसा काँच बनाया है जो इस वृद्धि को दस हज़ार से लेकर एक लाख गुनी तक बड़ी करके दिखा देता है। इसी से वृद्धि का परिमाण आँख से साफ़ साफ़ दिखाई देता है। इस यन्त्र के द्वारा पौधों की वृद्धि देख कर लाट साहब ने आश्चर्य्य-पूर्ण प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने इस प्रयोगशाला के पास एक और भी अद्भुत बात देखी। आचार्य्य महाशय ने दो बरगद के पेड़, जो न बहुत बड़े हैं न बहुत छोटे, एक और जगह से उठा कर, ज्यों के त्यों, अपनी प्रयोगशाला की ज़मीन में लगा दिये हैं। वे अच्छी तरह लग गये हैं और ख़ूब बढ़ रहे हैं। इतने बड़े पेड़ उखाड़ कर अन्यत्र नहीं लगाये जा सकते। वसु महाशय ने इनको ओषधियों के द्वारा पहले बेहोश कर दिया। फिर उसी दशा में उन्हें उठा कर अपनी शाला में उनका आरोपण किया। बेहोश होने के कारण पेड़ों को उन्मूलन-क्रिया के धक्के का ज्ञान ही न हुआ। वे समझे, हम जहाँ थे वहीं हैं। इसी से वे स्थानान्तर किये जाने पर भी लग गये। इससे सिद्ध है कि पेड़-पौधों की दशा भी मनुष्यादिक जीवधारियों ही की सी है। बिना बेहोश किये यदि मनुष्य का पैर काटा जाय तो वह पीड़ा से प्राण खो सकता है। पर बेहोशी की हालत में इस तरह की चीर-फाड़ बहुधा हुआ ही करती है और प्रायः लोग अच्छे ही हो जाते हैं। पेड़ों की जीवनी शक्ति भी मनुष्य ही के सदृश है। यही कारण है, जो बेहोश हो जाने पर वे भी पीड़ा का अनुभव नहीं करते। पूर्वोक्त लाट साहबों ने बरगद के इन दोनों पेड़ों को देख कर आश्चर्य्य प्रकट किया और वसु-महाशय के विज्ञान-बल की भूरि भूरि प्रशंसा की।

७—रोमन-लिपि के प्रचार के उद्योग का नमूना।

"मसीही मज़हब की बेहबूदी की ग़रज़ से"—एक साप्ताहिक पत्र लखनऊ के मेथाडिस्ट पबलिशिंग हौस से निकलता है। इस पत्र की भाषा कड़ी उर्दू होती है; पर लिपि होती है रोमन। इसके १२ जनवरी १७ के अङ्क से कुछ मज़मून हम नीचे नक़ल करते हैं—

ASMAN. PAIDAISH 1: 1.

Ham dekhte haiṇ ki Khudá ne ásmán, zamín, súraj, chaṇd, sitáre, samundar, machhliáṇ, charand, parand, kíṛe makoṛe, jamádát o nabátát, insán aur tamám chízeṇ jin ko ham apní ánkhoṇ se mahsús karte haiṇ, aur un ko bhí jin ko ham mahsús nahíṇ karte paidá kíṇ. In sab chízoṇ se peshtar us ne ásmán ko paidá kiyá. Is mazmún se ham zail kí báteṇ síkhte haiṇ.

Auwal.—Asmán kis ko kahte haiṇ?

Doyum.—Asmán lafz se kyá báteṇ záhir hotí haiṇ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Soyum.—Asmán meṇ kyá hai ?

Chahárum.—Asmán kis ke zari'a se miltá hai ?

Panjum.—Asmán kin logoṇ ke liye hai ?

Auwal.—Asmán hamárí nigáh aur zindagí kí hadd hai, Ḳhudá kí taḳht-gáh, Ḳhudáwand Masíh kí huzúrí, Firishtoṇ kí ta'ríf-gáh, pák o jalálí maqám aur muqaddasoṇ kí mírás kí jagah hai. Yih jagah Ḳhudá ne sab se pahle paidá kí.

Doyum.—Jis tarah ásmán zamín se dúr o buland haiṇ waise hí Ḳhudá hadd darje ká buzurg o jalálwálá hai, apní zát o sifát meṇ ḳhiyáloṇ, kámoṇ aur bátoṇ meṇ.

धर्म्माचार्य्य नोल्स साहब इसे देख कर अवश्य ही ख़ुश होंगे। यदि रोमन-लिपि का प्रचार हो जाय तो ईसाइयों को देवनागरी और फ़ारसी-लिपि सीखने का झञ्झट न उठाना पड़े। इन लिपियों पर उनका प्रेम न होना स्वाभाविक है। इनसे उनका विशेष सम्बन्ध नहीं। उन्हें तो रोमन जारी होने ही में सुभीता है। पर रोमन के प्रचार से करोड़ों भारतवासियों को हानि पहुँच सकती है। अतएव अपने ज़रा से लाभ के लिए इतनी जनता के सुभीते पर पानी फेरना उदारता का काम नहीं। जिन्हें रोमन से प्रेम अथवा सुभीता है वे उसे ही लिखें। पर जो उसे नहीं चाहते, उनको निर्बल और भ्रमपूर्ण युक्तियों के आधार पर उस ओर खींचना सर्वथा अनुचित है।

८—एक नई परीक्षा।

गवर्नमेंट ने—नहीं, इन प्रान्तों के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने—एक नई परीक्षा की सृष्टि की है। यह परीक्षा हिन्दी और उर्दू में हर साल, एप्रिल में, हुआ करेगी। परीक्षार्थियों को यह परीक्षा इस प्रान्त के गवर्नमेंट ट्रेनिंग कालेजों में आकर देनी होगी। ट्रेनिंग कालेजों के छात्रों, गवर्नमेंट के स्थापित किये हुए अँगरेज़ी स्कूलों तथा शिक्षा-विभाग के मनोनीत अन्य अँगरेज़ी स्कूलों के अध्यापकों, और सब डिपटी-इन्स्पेक्टरी के उहदे के लिए चुने गये उम्मीदवारों के लिए ही इस परीक्षा की योजना की गई है। परीक्षा इन विषयों में होगी—

(१) अँगरेज़ी से हिन्दी-उर्दू में अनुवाद।

(२) रचना—अर्थात् दिये हुए विषय पर लेख लिखना।

(३) निर्दिष्ट लेख या लेखांश पढ़ कर सुनाना।

(४) परीक्षक से बातचीत करना।

परीक्षा में शामिल होने वालों से दो रुपये फ़ीस ली जायगी। जो लोग परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे उनके नाम गवर्नमेंट-गैज़ट में प्रकाशित किये जायँगे।

जब तक यह परीक्षा पास न कर लेंगे तब तक गवर्नमेंट-स्कूलों के अध्यापक अपने पद पर स्थायी न समझे जायँगे। परीक्षा हिन्दी और उर्दू, दोनों भाषाओं में, पास करनी पड़ेगी। जिसने मैट्रिकुलेशन या स्कूल-लीविंग सरटिफ़िकेट की परीक्षा उर्दू में पास की होगी उसे केवल हिन्दी में ही यह परीक्षा पास करनी पड़ेगी। इसी तरह हिन्दी वालों को केवल उर्दू में परीक्षा देनी होगी।

यह परीक्षा बड़े महत्त्व की होगी। इसकी कृपा से स्कूलों के अध्यापक हिन्दी-उर्दू अच्छी तरह जान जायँगे। फल यह होगा कि उनके पढ़ाये हुए छात्रों को भी इन भाषाओं का ज्ञान पहले की अपेक्षा अधिक हुआ करेगा।

९—महकमे जङ्गलात के बड़े अफ़सरों की नियुक्ति।

६ जनवरी १७ के गैज़ट आव् इंडिया में वह नियमावली प्रकाशित हुई है जिसके अनुसार महकमे जङ्गलात में ऊँचे ऊँचे पद प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले लोग इस महकमे में भरती हो सकेंगे। नियम बड़े जटिल हैं और बहुत हैं। भरती होने वालों को एक विशेष प्रकार के फ़ार्म पर इंडिया आफ़िस, लन्दन, को अर्ज़ी देनी होगी। यह अर्ज़ी, अबके साल, १ जूलाई तक पहुँच जानी चाहिए। भरती होनेवालों के लिए जो शर्तें रक्खी गई हैं उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(१) उम्मेदवार वेल्स, आयरलेंड और स्काटलेंड के किसी विश्वविद्यालय की कोई उच्च परीक्षा, नामवरी के साथ, पास हो।

(२) उसकी उम्र १६ वर्ष से कम और २२ से अधिक न हो।

(३) यदि उम्मेदवार अधिक हुए और उनकी योग्यता की जाँच की गई तो फ़्रेंच या जर्मन भाषा में भी परीक्षा पास करनी होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) तन्दुरुस्ती अच्छी हो।
(५) चालचलन अच्छा हो।
(६) उम्मेदवार कुँवारा हो और इक़रारनामा लिख दे कि हिन्दुस्तान पहुँचने के पहले वह ब्याह न करेगा।

जो लोग इन सब शर्तों को पूरा कर सकेंगे और नौकरी के लिए चुन लिये जायँगे वे असिस्टंट कन्सरवेटर नियत होंगे। उन्हें ३८० रुपये महीना तनख़्वाह मिलेगी। धीरे धीरे उन्हें २,६५० रुपये महीना तक तनख़्वाह मिल सकेगी।

इस दशा में इस महकमे में प्रवेश पाना भारतवासियों के लिए प्रायः असम्भव ही समझिए। पहले तो विलायत में उच्च परीक्षा पास करना, फिर फ्रेंच या जर्मन भाषा सीख कर उसका भी अच्छा ज्ञान सम्पादन करना, फिर २२ वर्ष की उम्र तक कुँवारे रहना। काहे को कोई ये शर्तें पूरी कर सकेगा और काहे को उसे डिपटी कन्सरवेटरी मिलेगी। ऐसी ही शर्तों के कारण इस महकमे में शायद अब तक एक भी भारतवासी किसी उच्च पद को नहीं पा सका।

१०—श्रीकृष्ण और इन्द्रजाल।

अक्तूबर और नवम्बर १९१६ की सरस्वती में लाला कन्नोमल, एम० ए०, का "नवीन सभ्यता के स्रोत में कुछ प्राचीन विद्याओं का लोप"—शीर्षक लेख निकला है। वह बड़ी दूर-दर्शिता से भारत के वर्तमान स्कूल और कालेजों में प्रचलित नवीन शिक्षा के सब अङ्गों पर ध्यान देकर लिखा गया है। सरस्वती के प्रत्येक पाठक को, उसे ध्यान से पढ़ कर, उस पर अमल करना चाहिए। पर लाला साहब के इस लेख पर मुझे कुछ निवेदन करना है। मेरा यह निवेदन नवम्बर की सरस्वती में प्रकाशित इन्द्रजाल शीर्षक लेखांश के सम्बन्ध में है। उसमें लाला साहब लिखते हैं—

"श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ शरत्-पूर्णमासी की रात्रि को नृत्य किया। उस समय कृष्ण ने इसी विद्या के प्रभाव से अपने अनेक रूप दिखलाये थे। जितनी गोपियाँ थीं उतने ही कृष्ण हो गये थे"।

एक भारतवासी हिन्दू विद्वान् की लेखनी से कृष्ण को इन्द्रजाली लिखा जाना खटकता है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को पूर्ण-कलायुक्त विष्णु का अवतार माना है और महाभारत में महायोगेश्वर। इसी कारण वर्तमान समय के कुछ देशी और विदेशी विद्वान् दो कृष्णों के अस्तित्व का प्रतिपादन करने लगे हैं। वे कहते हैं कि नन्द के पुत्र कृष्ण अलग थे और वसुदेव के पुत्र कृष्ण अलग थे, जिन्होंने भारत-युद्ध में अर्जुन का रथ हाँका और अर्जुन को गीता का उपदेश किया था। परन्तु इस बात पर कोई हिन्दू विश्वास न करेगा और न अब तक अधिकांश लोग करते ही हैं। जो दो चार ऐसा मानने वाले हैं उनके कथन का इस विषय में कुछ मूल्य नहीं। अपने आप ही चुप भी हो गये। उनका तर्क कुछ दिन भी न ठहरा।

जब हम और हमारे पूर्वज सहस्रों वर्षों से कृष्ण को विष्णु का पूर्णावतार और महायोगेश्वर मानते आते हैं तब भी हम उन्हें इन्द्रजाली कहें या मानें, यह कहाँ तक ठीक है। लाला साहब इसी लेख के पूर्वांश में, जो अक्तूबर की संख्या में था, योग की बड़ी भारी महिमा लिखते हैं। जब योगी मनुष्य लाला साहब के ही लेखानुसार सब प्राकृतिक तत्त्वों पर अधिकार कर सकता है और विभूतियाँ भी प्राप्त कर सकता है तब जो योगेश्वर हो वह क्या नहीं कर सकता है? और श्रीकृष्ण को तो हमने महायोगेश्वर तक माना है। इतने पर भी हम उन्हें इन्द्रजाली की उपाधि से विभूषित करें, यह कहाँ तक न्याय्य है!

योगी और इन्द्रजाली में वही अन्तर है जो एक बड़े सम्राट् और भिक्षुक में होता है। लाला साहब एक तो भारतवासी, दूसरे हिन्दू, और तीसरे विद्वान् हैं; फिर प्राचीन विद्याओं और विद्वानों का मान करने वाले की क़लम से श्रीकृष्ण को इन्द्रजाली लिखा जाना बड़े आश्चर्य और परिताप की बात है!

धर्मपत्नी शङ्करसिंह भूपजी
(मुरादाबाद)

उत्तर।

मेरे जिस लेख से शङ्करसिंह भूपजी की धर्मपत्नी ने कुछ वाक्य उद्धृत करके यह लिखा है कि एक भारतवासी लेखक को उचित नहीं था कि श्रीकृष्ण को इन्द्रजाली बतावे, उसका विषय श्रीकृष्ण-चरित-वर्णन नहीं; बल्कि प्राचीन विद्याओं का गौरव-प्रदर्शन है। जब तक कोई लेखक किसी महात्मा को विशेष रूप से लक्ष्य करके उसकी गुणावगुण-विषयक आलोचना न करे तब तक उस पर वैसा आक्षेप, जैसा कि श्रीमतीजी ने किया है, नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्णजी को विदुषी लेखिकाजी जैसा श्रद्धेय मानती हैं मैं भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें वैसा ही मानता हूँ। मेरा काम श्रीकृष्ण की असीम महिमा को घटाना नहीं। जिस अवसर पर श्रीकृष्णजी ने अपनी इन्द्रजाल-विद्या का चमत्कार दिखाया है उस अवसर पर योगशक्ति-प्रदर्शन अनावश्यक ही नहीं था; किन्तु उसके महत्त्व को घटाने वाला था। वह रासलीला का अवसर था। गोपियों के साथ मनोरञ्जन हो रहा था, वह ज्ञानोपदेश का समय न था। कृष्ण कभी गुप्त हो जाते थे, कभी प्रकट हो जाते थे और कभी गोपियों के साथ नृत्य करने लगते थे। ऐसे अवसर पर गोपियों को अनेक कृष्ण दिखाई देना ऐन्द्रजालिक दृश्य ही था। यदि श्रीकृष्ण ने इन्द्रजाल-विद्या द्वारा गोपियों को यह दिखा दिया कि जितनी गोपियाँ हैं उतने ही कृष्ण हैं तो इससे कृष्ण के योगबल में कुछ भी न्यूनता न आई। इससे तो उनकी कलाकुशलता की अधिकता ही प्रमाणित होती है। योगबल का प्रयोग उन्होंने और और अवसरों पर किया है—जैसे अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा के मृतक पुत्र को पुनर्जीवित करना अथवा अर्जुन को विराट् रूप दिखाना।

प्राचीन-काल में इन्द्रजाल-विद्या केवल शोबदाबाज़ी न थी। उसका भी योगविद्या से सम्बन्ध था। इन्द्रजाल और माया शब्दों का एक ही अर्थ मिलता है। माया शब्द का प्रयोग ईश्वर के सम्बन्ध में भी होता है। परन्तु इससे ईश्वर की महिमा नहीं घट जाती। ईश्वर को उपनिषदों में मायावी कहा है और इस सम्बन्ध में 'जाल' शब्द का भी प्रयोग किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषत् के निम्न-लिखित श्लोक देखिए—

(१) अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः (श्लोक ९, अध्याय ४)

(२) एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे—इत्यादि (श्लोक ३, अध्याय ५)

(३) य एको जालवानीशत—इत्यादि (श्लोक १, अध्याय ३)

इसके सिवा वेदान्तमतानुसार संसार केवल मायापुञ्ज है; वह इन्द्रजाल के सदृश है। जैसे "स्वप्नेन्द्रजालसदृशः खलु जीवलोकः" (शान्तिशतक) इससे यह सिद्ध है कि श्रीकृष्णजी के सम्बन्ध में इन्द्रजाल शब्द का प्रयोग अनुचित नहीं।

कन्नोमल

११—माइसोर में गाँवों की उन्नति।

सरस्वती में माइसोर में शिक्षा-विस्तार की गति का हाल दिया जा चुका है। अब वहाँ की सरकार ने गाँवों की तरक्क़ी के लिए भी प्रयत्न आरम्भ कर दिये हैं। इसका भी कुछ हाल सुन लीजिए—

गाँवों की उन्नति के लिए माइसोर-दरबार ने एक महकमा खोला है। वह इन तीन विषयों पर विचार करेगा—(१) गाँवों की सुन्दरता और आबादी किस तरह बढ़ाई जा सकती है। (२) भिन्न भिन्न पेशेवालों की अर्जन-शक्ति और उनकी आर्थिक दशा की उन्नति किस तरह हो सकती है। (३) देहातियों के लाभ के लिए उन्हें तरह तरह की सूचनायें किस तरह दी जा सकती हैं और उनकी जानकारी कैसे बढ़ाई जा सकती है।

पहले उद्देश की पूर्ति के लिए ये ये काम किये जाने वाले हैं—

(अ) गाँव के भीतर और बाहर नई सड़कें और नये मार्ग निकालना।

(आ) छोटी छोटी नदियों और नालों को पार करने के लिए पुल और पुलियाँ बनाना।

(इ) पानी पहुँचाने के साधनों—अर्थात् कुँआ, बावली, तालाब इत्यादि—का सुधार करना।

(ई) गाँव के गन्दे पानी को बहा ले जाने के साधनों का सुधार करना।

(उ) चौपालें और चबूतरे इत्यादि बनवाना।

(ऊ) चारा और ईंधन इत्यादि का सुप्रबन्ध करना।

(ए) गाँव की दशा का सुधार करने के लिए अन्य आवश्यक व्यवस्थायें करना।

दूसरे उद्देश की सफलता के लिए नीचे लिखे काम सोचे गये हैं—

(अ) लड़के-लड़कियों के मदरसों की तादाद बढ़ाना।

(आ) यात्रियों के सुभीते बढ़ाने का प्रबन्ध करना।

(इ) अनाज की पैदावार तथा भिन्न भिन्न व्यवसायों से होनेवाली आमदनी को कम न होने देना।

(ई) नई रीतियों और नये साधनों का उपयोग करके खेती की पैदावार बढ़ाना।

(उ) सहयोग-समितियाँ अर्थात् देहाती बैंक खोलना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऊ) देहाती उद्योग-धन्धों की उन्नति करना।

(ए) नये नये उद्योग-धन्धे जारी करना और व्यापार की वृद्धि करना।

तीसरे उद्देश की सिद्धि के लिए जो काम किये जायँगे उनकी नामावली नीचे देखिए—

(अ) व्याख्यान दिलवाना, खेल और मेले दिखलाना तथा अजायबघर खोलना।

(आ) पैदावार की प्रदर्शनियाँ खोलना।

(इ) व्यवसाय के बड़े बड़े केन्द्रों में नवयुवकों को शिक्षा-प्राप्ति के लिए भेजना।

(ई) गाँव के लड़कों को ताल्लुका-मदरसों तथा और जगहों में माध्यमिक, उच्च तथा कल-कारख़ाने-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने में सहायता देना।

माइसोर दरबार का यह विचार बड़ा ही उपयोगी अतएव अनुकरणीय है। अन्य रियासतें भी यदि ऐसा ही प्रबन्ध कर दें तो बेचारे देहातियों के भाग्य खुल जायँ।

१२—प्राचीन भारत में युवराजों की शिक्षा।

इस नाम का एक लेख "माडर्न-रिव्यू" की जनवरी १७ की संख्या में प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक हैं—बाबू नरेन्द्रनाथ ला (Law), एम्० ए०, बी० एल्०। उसकी ज्ञातव्य बातें नीचे दी जाती हैं—

प्राचीन समय में प्रायः क्षत्रिय ही राजा होते थे। राजा का नाम लेते ही लोग समझ जाते थे कि वह क्षत्रिय है। कौटिल्य, चन्द्रगुप्त मौर्य्य का समकालीन था। यह ईसा के पहले चौथी सदी की बात है। उसके मत में क्षत्रिय के कर्त्तव्य ये हैं—(१) अध्ययन, (२) यज्ञ, (३) दान, (४) शस्त्राजीव और (५) भूत-रक्षा। पिछले दो कर्त्तव्य प्रायः क्षत्रियों ही के लिए रक्षित थे।

राजपुत्रों को लड़कपन ही से शिक्षा दी जाती थी। शिक्षक नामी होते थे। मुण्डन-संस्कार के बाद ही लिपि और संख्या-ज्ञान अर्थात् गणित की शिक्षा का आरम्भ होता था। ११ वर्ष की अवस्था में क्षत्रियों का यज्ञोपवीत-संस्कार होता था। उस संस्कार के पश्चात् बालक उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी समझा जाता था। उच्च शिक्षा से इन इन विषयों की शिक्षा का बोध होता था—

(१) त्रयी और आन्वीक्षिकी।

(२) वार्त्ता।

(३) दण्ड-नीति।

पहले विषयों की शिक्षा देने वाले शिष्ट कहाते थे। वे पारदर्शी विद्वान् होते थे। दूसरे विषय की शिक्षा अध्यक्षों अर्थात् शासन-विभाग के निरीक्षकों के द्वारा दी जाती थी। वे केवल काल्पनिक शिक्षा न देते थे। उस विषय की पुष्ट व्यावहारिक शिक्षा भी राज-पुत्र पाते थे। तीसरे विषय अर्थात् दण्ड-नीति की शिक्षा वक्ता और प्रयोक्ता के द्वारा दी जाती थी। राज्य-सञ्चालन और शासन-कला में जो पक्का पण्डित होता था, वही इन पदों पर नियुक्त किया जाता था।

इनके अतिरिक्त राजकुमारों को पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, धर्म-शास्त्र, और अर्थ-शास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। उस समय इतिहास में इन्हीं विषयों का समावेश होता था।

सैनिक शिक्षण राजकुमारों के लिए आवश्यक था। हस्ति-विद्या, अश्व-विद्या, रथ-विद्या और प्रहरण-विद्या का अर्थ सैनिक-शिक्षा होता था।

विद्यार्थी को ब्रह्मचारी बन कर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी।

दोपहर के पहले सैनिक शिक्षा और पश्चात् इतिहास-शिक्षा दी जाती थी। शेष समय में, दिन और रात में, वे अपूर्व-ग्रहण—नया पाठ, गृहीत-परिचय—दुहराना—आदि करते थे।

मर्यादा-पालन पर बड़ा ध्यान दिया जाता था। इस प्रकार की शिक्षा के फल का उल्लेख कौटिल्य ने इस प्रकार किया है—

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः॥

सोलह वर्ष की उम्र में विद्यार्थी का पाठशाला-कार्य्य समाप्त हो जाता था। घर जाने के एक दिन पहले गोदान नाम का एक उत्सव होता था। तब विवाह होकर वह अपने जीवन के दूसरे आश्रम में पदार्पण करता था। राज-कुमारों की शिक्षा का अन्त यहीं न हो जाता था। घर जाने पर युवराजों को राज्य के भिन्न भिन्न विभागों में, बड़े बड़े अधिकारियों की देख-रेख में, भिन्न भिन्न विषयों का अनुभव कराया जाता था। उन्हें अपनी ज़िम्मेदारी पर उन उन विभागों का

४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य्य भार उठाना पड़ता था। फिर उन्हें सेना-नायक का काम सौंपा जाता था। इसके पश्चात् राज्य-पदारूढ़ नरपतियों के साथ रह कर उनको शासन-कला का अमली ज्ञान कराया जाता था। इन सब विषयों में प्रवीणता प्राप्त कर चुकने पर वह शासन-योग्य समझा जाता था।

१३—परलोकवासी गोस्वामी श्रीपन्नालालजी महाराज।

जिस महात्मा का चित्र इस संख्या में प्रकाशित है उसका चरित सरस्वती में छप चुका है। खेद है, उसने इस असार संसार को, गत मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन, त्याग दिया। उसकी मृत्यु से हिन्दू-जाति का एक अमूल्य रत्न खो गया। नाद-शास्त्र का एक पारगामी ज्ञाता उठ गया। सङ्गीत-कला का एक उत्तम अधिकारी चल दिया। शारदा का प्यारा पुत्र स्वर में लीन हो गया। दिन रात स्वर में मस्त रहने वाला, अमृतमय वचनों से उपदेश-पुष्प बरसाने वाला, वह भव्य मुख अब फिर नहीं दिखाई देगा। वह कोमल और फुरतीला शरीर, जो ७३ वर्ष की पक्की अवस्था में भी, युवकों को मात करता था, स्वप्न हो गया। विख्यात "नाद-विनोद ग्रन्थ" के रचयिता के देहावसान से सङ्गीत-कला को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा है। हिन्दुओं में यों ही इस कला से घृणा सी हो रही है। ऐसे धुरन्धर गुणियों के लोप हो जाने से शायद हमको अपनी अमूल्य सम्पत्ति से हाथ ही धोना पड़े। हिन्दू-जाति को सावधान होकर अपनी इस पवित्र कला का जीर्णोद्धार करना चाहिए, नहीं तो पछताना होगा। सम्भव है, अब भी हम में छिपे हुए रुस्तम निकल आवें, जिनके चरणों में बैठ कर सङ्गीत-विद्या का जो कुछ बचा खुचा ज्ञान रह गया है वह हम प्राप्त कर सकें। हमारा शिक्षित समाज साहित्य ही की उन्नति में लगा हुआ है; ललित-कलाओं से क्यों रूठा है, कुछ समझ में नहीं आता। अपनी विद्या बुद्धि के बल से वह बूढ़े भारत के अन्य-विषय-सम्बन्धी अज्ञानान्धकार को खोने में दत्त-चित्त है। पर उसका यह भी कर्तव्य है कि अपने आह्लाद की सामग्री नाद-विद्या को भी नष्ट होने से बचावे।

बालकृष्ण शर्म्मा (देहली)

१४—लन्दन में पूर्वी देशों की भाषाओं का शिक्षालय।

जर्मनी, फ्रांस और रूस में तो पूर्वी देशों की भाषाओं की शिक्षा देने के लिए विद्यालय बहुत पहले से हैं; परन्तु इँगलेंड में अब तक न था। यह बहुत बड़ी कमी थी, क्योंकि इँगलेंड का जितना सम्बन्ध पूर्वी देशों से है, पूर्वोक्त देशों का उतना नहीं। कोई तीन वर्ष हुए, जब इँगलेंड ने अनेक पूर्वी भाषाओं की शिक्षा देने की व्यवस्था करने का निश्चय किया था। जून, १९१४, की सरस्वती में इस बात का उल्लेख हो चुका है। अब वह विचार कार्य्य-रूप में परिणत हो गया। १८ जनवरी १९१७ को लन्दन में पूर्वी भाषाओं का एक शिक्षालय अस्तित्व में आ गया। उसमें बीस भाषाओं की शिक्षा दी जायगी। अन्यान्य भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत, पाली, बँगला, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, सिंहाली, हिन्दुस्तानी और हिन्दी भाषायें भी पढ़ाई जायँगी। १९१४ में जो सूचना निकली थी उसमें हिन्दी की शिक्षा का ज़िक्र न था। इस पर हमने कहा था—"हिन्दुस्तानी तो सिखाई ही जायगी; मालूम नहीं, हिन्दी भी सिखाई जायगी या नहीं"। ख़ुशी की बात है, शिक्षालय में हिन्दी को भी स्थान मिल गया। पञ्जाबी और पश्तो भी पढ़ाई जाने वाली है। पर अभी नहीं।

अधिकांश भाषाओं के शिक्षक यूरोपवासी विद्वान् ही नियत किये गये हैं। अरबी के चार अध्यापकों में से एक हाजी अब्दुल मजीद भी हैं। फ़ारसी के तीन अध्यापकों में से जी० एच० दाराबख़्श नामक एक महाशय हैं। हिन्दी और हिन्दुस्तानी पढ़ावेंगे स्टील साहब और ए० यूसुफ़अली। बँगला ऐंडरसन साहब और मराठी नील साहब पढ़ावेंगे। गुजराती की शिक्षा के लिए अभी तक कोई अध्यापक तजवीज़ नहीं हुआ। पिछली सूचना में कहा गया था कि हर भाषा के प्रधान अध्यापक के नीचे एक ऐसा भी अध्यापक रहेगा जिसकी वह मातृ भाषा होगी। पर न मालूम क्यों अभी उस नियम की पाबन्दी नहीं की गई। शायद योग्य अध्यापक न मिले हों। स्टील साहब और यूसुफ़अली महाशय हिन्दी के कितने ज्ञाता हैं, यह बात बहुत कम भारतवासियों को मालूम होगी। इनसे बढ़ कर हिन्दी का ज्ञाता शायद हिन्दुस्तान में और कोई मिला ही नहीं।

इस स्कूल में पूर्वी देशों की तथा अफ़रीक़ा के हबशियों की प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं की शिक्षा के साथ साथ उनके साहित्य, इतिहास, धर्म्म और रीति-रिवाज की भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा दी जायगी। यही बात चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा और मलयद्वीप की भाषाओं आदि के विषय में भी होगी।

भारतवर्षीय क़ानून और इतिहास की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया गया है। शिक्षार्थियों को चीन और भारतवर्ष के धर्म और सम्प्रदाय-भेद का ज्ञान विशेष रूप से कराने की व्यवस्था भी होने वाली है। जो लोग इँगलेंड से अफ़्रीक़ा और एशिया के भिन्न भिन्न देशों में सैर, व्यापार, उद्योग-धन्धा, नौकरी आदि करने आवेंगे उन्हीं के सुभीते के लिए यह स्कूल खुला है।

१५—वीणा की विकृत तान।

भारतवर्ष—नाम का एक बँगला मासिक पत्र कलकत्ते से प्रकाशित होता है। उसके प्रायः प्रत्येक अङ्क में "वीणार तान"—शीर्षक एक लेख निकलता है, जिसमें हिन्दी, संस्कृत, आसामी आदि पत्रों के मुख्य मुख्य लेखों का सारांश और कभी कभी उनकी आलोचना रहती है। यह बहुत अच्छी बात है। पर यह काम सावधानतापूर्वक होना चाहिए, अन्यथा लाभ के बदले हानि हो जाने का डर है। इस तरह का एक हानिकर उदाहरण लीजिए। गत फाल्गुन के भारतवर्ष की "वीणा की तान" में सरस्वती के एक लेख का सारांश है। वह लेख—नवम्बर १९१६ की सरस्वती में "शिक्षा किस भाषा में दी जानी चाहिए"—इस नाम से निकला था। उसके लेखक का कथन है—

वह कौनसी भाषा होगी, आज यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर बहुत सम्भव है, वह हिन्दी ही हो। क्योंकि न्यूनाधिक परिमाण में हिन्दी ही प्रा: समस्त भारत में बोली, लिखी और समझी जाती है। भारत की अन्य कोई भाषा इस विषय में उसका विशेष करके मुक़ाबला नहीं कर सकती।

इसका सारांश "वीणा की तान" के लेखक ने इस प्रकार दिया है—

कोन् भाषा ये मुख्यत: एइ पद पाइये ताहा बला जाय ना। तबे उर्दु भारतेर प्राय सकल स्थानेइ प्रचलित। इहा द्वारा राजनैतिक कार्य्यओ चलिते पारे।

देखिए, इसमें बँगला-लेखक ने कितनी बड़ी भूल की है। उसने "हिन्दी" की जगह "उर्दू" लिख कर अनर्थ कर डाला है। उसने यह बात अपनी तरफ़ से बढ़ा दी है कि उर्दू के द्वारा राजनैतिक काम भी चल सकता है।

आशा है, भारतवर्ष के सम्पादक "वीणार तान" के लेखक को, कृपा करके, आगे के लिए, सावधान कर देंगे।

धनीराम बक्शी

१६—प्रान्तीय कौंसिल में कुछ प्रश्नोत्तर।

२९ जनवरी १९१७ की बैठक में संयुक्त-प्रान्त के कौंसिल में कुछ प्रश्नोत्तर हुए। माननीय सी० वाई० चिन्तामणि ने पूछा—

गत प्रान्तीय-शासन-रिपोर्ट में गवर्नमेंट ने आर्य्य-सामाजिक साहित्य की जो आलोचना की है उसके प्रतिवाद में क्या आर्य्य-समाजों ने कोई आवेदन-पत्र भेजे हैं? यदि हां, तो उन पर गवर्नमेंट क्या कारवाई करने का विचार रखती है? क्या गवर्नमेंट कृपा करके उन कटाक्षपूर्ण आलोचनाओं को रिपोर्ट से निकाल देगी?

उत्तर में माननीय बर्न साहब ने कहा—

गवर्नमेंट ने एक नहीं अनेक आवेदन-पत्र पाये हैं। पर वह उन पर कोई कारवाई न करेगी। प्रतिवाद करने वालों ही की तरह प्रश्नकर्त्ता महाशय ने भी एक बात का विचार नहीं किया। वह यह कि गवर्नमेंट ने आर्य्य समाज के सभी साधारण साहित्य की निन्दा नहीं की। निन्दा उसने उसके विवादात्मक साहित्य की की है—(उस साहित्य की जिसमें प्रतिपक्षियों पर कुटिल कटाक्षों की बौछार की गई है) जिन पुस्तकों में सच्चे दिल से समाज-सुधार की बातें थीं उनके लिए आर्य्य-समाज की यथेष्ट पीठ ठोंकी गई है।

प्रश्नकर्ता महाशय को वे ललित-ललाम लेख देखने चाहिए जिनमें आज कल कविरत्न पण्डित अखिलानन्द शर्म्मा के गले में मन्दार-मालायें पहनाई जा रही हैं। गवर्नमेंट के उत्तर का भाव तब उनके ध्यान में आये बिना न रहेगा। ये वही कविरत्न हैं जिन्होंने आर्य्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती पर एक महाकाव्य रच कर उनकी कीर्त्ति-ध्वजा को ख़ूब ही उड्डीन किया है। एक अखिलानन्द ही क्या, बहुतों पर, समय समय पर, चुने हुए फूलों की वृष्टि हुआ ही करती है।

माननीय चिन्तामणि ने एक और विषय पर भी कुछ प्रश्न किये, यथा—

(क) यदि कोई मुनसिफ़ किसी का बयान देवनागरी-लिपि में लिखे तो क्या उसका यह काम नियम-विरुद्ध समझा जायगा?

(ख) क्या अभी हाल में, किसी मुंसिफ़ को यह हुक्म दिया गया है कि वह गवाहों के बयान देवनागरी में न लिखा करे?

(ग) यदि प्रश्न (क) और (ख) का उत्तर—हाँ—हो तो क्या गवर्नमेंट वह नियम बताने की कृपा करेगी जिसके अनुसार उसने देवनागरी में बयान न लिखने के विषय में हुक्म दिया है और क्या वह वे सब काग़ज़-पत्र दिखाने के लिए उपस्थित करेगी।

(घ) क्या वह कृपा करके एक सूचना प्रकाशित कर देगी कि मुंसिफ़ों का जी चाहे देवनागरी लिपि में बयान लिखें, जी चाहे फ़ारसी-लिपि में?

उत्तर में माननीय बर्न साहब ने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) कौंसिल की २० जनवरी १९१४ की बैठक में माननीय बाबू ब्रजनन्दनप्रसाद ने जो ४९ नंबर का प्रश्न किया था उसका उत्तर देखिए।

(ख) और (ग) हाल में गवर्नमेंट से एक ऐसे ही विषय में पूछ-पाछ हुई थी। पर उसे मालूम नहीं, हाई-कोर्ट ने क्या फ़ैसिला किया।

(च) लफ़्टिनेंट गवर्नर वर्तमान प्रणाली में फेरफार नहीं करना चाहते। कमायूं को छोड़ कर और सब कहीं फ़ारसी-लिपि में ही बयान लिखने की रीति प्रचलित है।

वर्ष दो वर्ष में एक आध प्रश्न कौंसिल में कर देने से ही काम न चलेगा। इस विषय में अनवरत उद्योग की आवश्यकता है।

समन्स और इत्तिलानामे आदि दोनों लिपियों में दिये जा सकें। अर्ज़ी दावे और अपीलें आदि भी दोनों लिपियों में लिखी जा सकें। क्यों? इसी लिए न कि प्रजा को कष्ट न हो; उसे जो लिपि लिखने में सुभीता हो वही वह लिखे? अच्छा तो गवाहों के बयान लिखने के लिए भी वही नियम क्यों न जारी किया जाय? अधिकांश प्रजा के सुभीते की बात तो तब होती जब कचहरी की सारी कारवाई देवनागरी-लिपि में ही होती, क्योंकि मनुष्य-गणना के अनुसार इसी लिपि के लिखने और पढ़ने वाले अधिक हैं। ख़ैर, यदि किसी कारण से गवर्नमेंट ऐसा नहीं करती तो उसे इतनी तो उदारता अवश्य ही दिखानी चाहिए कि जो हाकिम देवनागरी-लिपि लिख सकते हैं उन्हें तो उसे लिखने की आज्ञा दे दे। उसने कौंसिल में जैसा उत्तर दिया है उससे लोगों को यह समझ हो सकती है कि गवर्नमेंट देवनागरी-लिपि का प्रचार बढ़ाना नहीं चाहती और प्रजा के सुभीते की परवा भी कम करती है। जितने बयान कचहरियों में होते हैं सब की नक़लें ली जा सकती हैं। नक़लें यदि फ़ारसी-लिपि में हुईं तो उनको पढ़ने या पढ़ाने में वही दिक़तें पेश आती हैं जो समन और परवाने आदि पढ़ने-पढ़ाने में पेश आती हैं। ये दिक़तें किसी हद तक गवर्नमेंट दूर कर सकती है। पर करेगी तब जब उसे विश्वास हो जायगा कि बिना ऐसा किये अब काम न चलेगा। इसी लिए उद्योग की आवश्यकता है।

पुस्तक-परिचय।

१—कृपारसकोश—इस पुस्तक का रूप रङ्ग बहुत ही मनोहारी है। बड़े ही चिकने बहुमूल्य काग़ज़ पर छपी है। कई चित्रों से समलङ्कृत है। नेत्ररञ्जक पतली जिल्द चढ़ी हुई है। पृष्ठ-संख्या ४२ + ३६ और मूल्य एक रुपया है। सरस्वती में बहुत पहले हीरविजय-सूरि का चरित छप चुका है। उसमें उनके शिष्य शान्तिचन्द्र का भी नाम आया है। यह कोश उन्हीं शान्तिचन्द्र की रचना है। इसका सम्पादन श्रीमुनि जिन-विजयजी ने बड़ी योग्यता से किया है। आरम्भ में एक विस्तृत प्रस्तावना है। उसमें हीर-विजय सूरि की यात्रा का, गुजरात से फ़तेहपुर-सिकरी तक का, वर्णन है। तदनन्तर सूरिजी और अकबर बादशाह के समागम का हाल है। बादशाह ही ने सूरिजी को भक्तिपूर्वक बुलाया था। सूरि महा-राज के विद्वत्त्व और त्याग आदि गुणों पर बादशाह मुग्ध हो गया और साल में कुछ विशेष तिथियों और पर्व्वों में हिंसा-निषेध-विषयक फ़रमान भी लिख दिया। सूरीश्वर की आज्ञा से और भी जैन-धर्म्म-पोषक कई बातें बादशाह ने कर दीं। बादशाह की प्रार्थना पर सूरि-महोदय के शिष्य मुनि शान्ति-चन्द्र वहीं फ़तेहपुर ही में रह गये। वे भी बड़े पण्डित थे। उन्होंने भी अकबर को प्रसन्न करके जैनियों के लिए कितने ही धार्म्मिक सुभीते करा दिये। इस कृपा-रस-कोश में उन्होंने अकबर के यश, प्रताप, औदार्य्य आदि का वर्णन, १२८ श्लोकों में, किया है। मुनि जिनविजयजी ने इन श्लोकों का सारांश, पुस्तकान्त में, हिन्दी में भी लिख दिया है। पर सबसे अधिक महत्त्व की बातों से पूर्ण उनकी प्रस्तावना है। उसके अन्तर्गत उन्होंने उन फ़रमानों का भी उल्लेख किया है जिन्हें अकबर ने दिया था। उनमें से दो का फ़ोटो भी पुस्तक में है। उनके अनुवाद भी हिन्दी और अँगरेज़ी में हैं। आरम्भ में हीरविजय-सूरि और अकबर का एक सम्मिलित चित्र भी है। और दृष्टि के सिवा ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह पुस्तक बड़े मोल की है। इसकी एक कापी भेजने के लिए हम मुनि जिन-विजयजी के कृतज्ञ हैं। पुस्तक-प्राप्ति का पता—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, काठियावाड़।

❋

२—रामायण-सुन्दरकाण्डस्य मानस-भाष्य नाम टीका—इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १७६, छपाई और काग़ज़ बहुत साधारण, पर मूल्य सवा रुपया है।—यह "श्रीवन्दन पाठक जी के गद्दी पर वर्त्तमान श्री ६ व्यास छोटे-लाल जी की कृपा सहायता से काशी-निवासी श्री बाबू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी गोस्वामी श्रीपन्नालाल जी महाराज।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमानदास-वकील-रचित"—है। यह इसकी हिन्दी का नमूना है। इसके टाइटिल पेज की यह पहली विशेषता है। दूसरी विशेषता है इसका संस्कृत-नाम। पुस्तक हिन्दी में, पर नाम संस्कृत में! तीसरी विशेषता है नीचे का अँगरेज़ी वाक्य—

"Registered under Sections 18 and 19 of Act XXV of 1867."

कापी-राइट-सम्बन्धी नया क़ानून बने बहुत दिन हुए। पुस्तक अभी गत वर्ष (संवत् १६७३ में) छपी है। रचनाकार हैं वकील। परन्तु, फिर भी, उन्होंने इसकी रजिस्टरी कराने की आवश्यकता समझी और करा भी दी। किस तरह करा दी यह वही बता सकते हैं। पण्डित वन्दन-पाठक काशी में नामी रामायणी हो गये हैं। उनकी पुस्तक—मानसशङ्कावली—की बड़ी महिमा है। उन्हीं के गद्दीधर व्यास छोटेलाल जी की कृपा और सहायता से यह टीका तैयार हुई है। इसका एक नमूना सुनिए। तुलसीदास की एक चौपाई है—

सीता तै (तैं ?) मम कृत अपमाना।
कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना॥

इसकी टीका इस प्रकार की गई है।

हे सीता तैंने मेरा निरादर किया अतः तेरे सिर को इस कठोर तलवार से काटूंगा।

यह ठीक। पर इसी के आगे इसका भाव इस प्रकार बताया गया है—

भावः—मेरा जो अपमान हुआ है इसकी दवा यह है कि मैं अपने सिर को हे सीते तेरे आगे काट डालूं।

दुहाई तुलसीदास की! यह आपकी चौपाई का भाव नहीं। यह तो आपके भावार्थ का वैपरीत्य है! बाज़ आया हिन्दी-साहित्य और रामायण-प्रेमी जन-समुदाय ऐसे भाव-निदर्शन से! जिसे इस तरह के भावार्णव में निमज्जन करना हो वह .खुशी से इस टीका को ख़रीद सकता है। मिलने का पता—श्रीपण्डित मुरलीधर पाण्डे, अगस्त-कुण्डा, बनारस।

३—संस्कृतप्रवेशिनी—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १७६, मूल्य १ रुपया, लेखक—काव्यतीर्थ व्याकरणशास्त्री श्रीलाल जैन, प्रकाशक—महामन्त्री, जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्था, ६ विश्वकोशलेन, बाग़-बाज़ार, कलकत्ता। इस पुस्तक के पहले भाग की आलोचना सरस्वती में निकल चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का दूसरा भाग है। इसकी भी रचना पहले भाग की रचना के ढँग पर है। इसमें भी व्याकरण के मुख्य मुख्य नियम, उदाहरण-सहित, दिये गये हैं। किस शब्द का प्रयोग कैसे और किस किस अर्थ में होता है, यह अच्छी तरह दिखाया गया है। विभक्ति-युक्त शब्दों के सब लिङ्गों के प्रयोग बताये गये हैं। प्रयोग-सूचक संस्कृत-वाक्यों के अर्थ भी हिन्दी में दिये गये हैं। संस्कृत से हिन्दी और हिन्दी से संस्कृत बनाने तथा वाच्य-परिवर्त्तन करने के लिए भी पाठ दे दिये गये हैं। व्यवहार में आने वाले विशेष विशेष धातुओं के रूप, प्रयोग और उदाहरण आदि भी इसमें हैं। नीचे, पादटीकाओं में, अनेक उपयोगिनी बातें लिखी गई हैं। इस पुस्तक को अच्छी तरह पढ़ जाने पर लघुसिद्धान्तकौमुदी के बराबर व्याकरणज्ञान हो सकता है। इस प्रकार की पुस्तकों की सहायता से संस्कृत-भाषा में शीघ्र प्रवेश हो सकता है और छात्र संस्कृत-व्याकरण के बड़े ग्रन्थ पढ़ने योग्य हो जाता है। इस पुस्तक के लेखक का कथन है कि "शब्दसिद्धि के नियम और धातु तथा प्रत्ययों के अनुबन्ध, सुगमता के लिए, जैनेन्द्रव्याकरण के अनुसार लिखे गये हैं।" इसी लिए आपने "विभक्ति" शब्द को "विभक्ती" लिखा है और इस शब्द पर एक पाद-टीका भी दी है। यह शायद हमारे उस आक्षेप का उत्तर है जो हमने इस पुस्तक के पहले भाग के परिचय में किया था। इस पर हमारा निवेदन है कि आप जैन-व्याकरण का अनुसरण .खुशी से कीजिए। उसके अनुसरण से "सुगमता" होती है या दुर्गमता, इसका विचार जैन तथा पाणिनि-व्याकरण, दोनों, के ज्ञाता ही कर सकते हैं; हम नहीं। हमारा मतलब तो केवल यह था और अब भी यही है कि जब आप संस्कृत-व्याकरण के ज्ञाता हैं तब व्याकरण की महत्ता आप अवश्य ही जानते होंगे। इस दशा में हिन्दी को भी आप व्याकरण के नियमों की अनुवर्तिनी समझिए। विभक्ति को आप विभक्ती लिखिए। पर हिन्दी में यदि उसका प्रयोग बहुवचन में कीजिए तो "विभक्तियाँ" या "विभक्तियें" लिखिए। ऊपर हमने आपके "वक्तव्य" से एक वाक्य उद्धृत किया है। उसमें आपने प्रत्यय-शब्द का बहु-वचन तो "प्रत्ययों" लिखा, पर, धातु-शब्द का बहु-वचन "धातु" ही रहने दिया! वह "धातुओं" क्यों न लिखा जाय? हिन्दी भी भाषा है। उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी व्याकरण है और उसके भी मुहावरे हैं। इस बात का ख़याल न करने से हिन्दी भी संस्कृत ही के सदृश दूषित हो जाती है। एक उदाहरण लीजिए। पुस्तकारम्भ में आपका पहला ही संस्कृत-वाक्य है—

"देवदत्तं वर्धते व्याधिः"

इसका अर्थ आपने लिखा है—

"देवदत्त को व्याधि बढ़ रही है"।

यह संस्कृत-वाक्य का शब्दार्थ तो हुआ, पर यह निर्दोष हिन्दी नहीं। इस तरह कोई नहीं बोलता। बोलता है—

(१) देवदत्त की व्याधि बढ़ रही है,

अथवा

(२) देवदत्त को व्याधि सता रही है।

पूर्वोक्त उदाहरण में "देवदत्तं" का अर्थ "देवदत्त को" लिखना हिन्दी-भाषा के व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं। प्रत्येक भाषा अपनी अपनी विशेषता रखती है। इसी विशेषता के कारण पुस्तक-लेखक महाशय को—

"बन्धवे मोदको रोचते"

इस वाक्य में बन्धु-शब्द के साथ चतुर्थी विभक्ति रखनी पड़ी है। आशा है, आप हमारे निवेदन का आशय अब समझ जायँगे।

❋

४—मानसमुक्तावली—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १०८, 'वितरणार्थ' प्रकाशित। यह पुस्तक, बहुत चिकने और मोटे काग़ज़ पर, सुन्दर टाइप में छपी है। इसका सङ्कलन अज़मतगढ़ (ज़िला आज़मगढ़) की कोठी के मालिक बाबू मुकुन्दलाल गुप्त ने करके इसे श्रीपण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय को समर्पित किया है। आरम्भ में दोनों महाशयों के हाफ़-टोन चित्र हैं। तुलसीदास के रामचरित-मानस में उक्तिरूप अनेक मोती हैं। उन्हीं को ढूँढ़ ढूँढ़ कर गुप्त महाशय ने इस पुस्तकरूपी डिब्बे में बन्द कर दिया है। तप की महत्ता, सत्य की महत्ता, समर्थ की निर्दोषता, स्त्री धर्म्म, सुमित्र और कुमित्र इत्यादि ४८ विषयों के सदुक्तिमय मुक्ता इसमें एकत्र किये गये हैं। संग्रह बहुत सुन्दर हुआ है।

❋

५—श्रीमद्भगवद्गीता—आकार बड़ा, जिल्दबँधी हुई, पृष्ठ-संख्या दो सौ के ऊपर, मूल्य पौने दो रुपया। प्रकाशक बाबू सुबोधकुमार मुकर्जी, ३१। ४, सुकिया स्ट्रीट, कलकत्ता। श्रीसच्चिदानन्द बाल-ब्रह्मचारी ने गीता पर स्वयं-प्रकाश नामक भाष्य की रचना की है। उसी भाष्य का यह बङ्गानुवाद है। साथ ही मूल-गीता भी है। ऊपर मोटे बँगला टाइप में मूल, नीचे छोटे टाइप में भाष्य है। आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका है। उसमें भाष्य का सार समझाया गया है। सुनते हैं, भाष्यकार महाराष्ट्रदेश-वासी हैं। इस कारण बँगला-भाषा में आपका इतना प्रवेश देख कर आश्चर्य्य होता है। आप कवि भी हैं और दर्शन-शास्त्रों के ज्ञाता भी। आपने गीता का बहुत ही अच्छा परिशीलन किया है। उसके तत्त्व को ख़ूब समझा है। अतएव, इस भाष्य में उसके मर्म्म प्रकाशन में आपने अच्छा पाण्डित्य दिखाया है। किसी मत या पन्थ-विशेष की तरफ़ खैंचातानी न करके गीता के शब्दों से ही जो भाव निकलता है वह आपने दिखाया है। ऐसा करने में विसंवाद को कहीं नहीं आने दिया। आपका यह भाष्य उत्तम है। इसके मराठी, हिन्दी और अँगरेज़ी-संस्करण भी निकलने वाले हैं। ऐसी अच्छी पुस्तक भेजने के लिए प्रेषक महाशय को धन्यवाद।

❋

६—पाइअलच्छी नाममाला—अर्थात् प्राकृत-लक्ष्मी-नाम-माला—आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १६४, मूल्य पौने दो रुपये, प्रकाशक—बी० बी० एन्ड कम्पनी, ख़ारगेट, भावनगर। विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में धनपाल नामक एक महाकवि हो गये हैं। राजा मुञ्ज के राज्य-काल में वे धारा-नगरी में थे। अपनी छोटी बहन "सुन्दरी" के लिए उन्होंने इस प्राकृत-भाषा के कोश की रचना की थी। इससे सूचित है कि आठ सौ वर्ष पूर्व भी भारत में थोड़ी-बहुत स्त्री-शिक्षा प्रचलित थी। इस कोश की रचना अमरकोश के ढंग की है। एक एक चीज़ के नाम सब एक ही जगह दे दिये गये हैं। यथा, सूर्य्य के नाम—

अक्को तरणी मित्तो मत्तण्डो दिनमणी पयङ्गो य।
अहिमयरो पचूहो दिअसयरो अंसुमाली य॥

पुस्तक के उत्तरार्ध में इस कोश के सारे शब्द वर्णानुक्रम से लिखे गये हैं। वहीं उनके लिङ्ग, संस्कृत-पर्याय और गुजराती अर्थ भी दिये गये हैं।

इससे प्राकृत-शब्दों का अर्थ जानने में बहुत सुभीता होगा। जैनों की कृपा से अब प्राकृत-भाषा की पुस्तकें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित होने लगी हैं । ऐसी पुस्तकों के भावार्थ-ज्ञान में यह कोश बहुत सहायता दे सकेगा ।

※

७—त्रिवेणी—यह एक छोटी सी मनोमोहक और नेत्ररञ्जक पुस्तक है । बड़े ही सुन्दर टाइप में छपी है । रचना इसकी आरा के कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन ने की है । इसमें त्रिवेणी या तीन की महिमा है । अनेक त्रिवेणियों किंवा त्रितयों का उल्लेख किया गया है । इसे पढ़ने में काव्य का आनन्द आता है । भाषा आलङ्कारिक है । उसमें अनुप्रास भी है ।

※

८—भूपदेव-वंशमाला—आकार कुछ बड़ा, पृष्ठ-संख्या ६८, मूल्य लिखा नहीं; लेखक—मैथिल पण्डित चन्द्रकान्त पाठक, नटवर-हाई-स्कूल, रायगढ़ । यह १८१ श्लोकों का एक छोटा सा काव्य है । इसमें रायगढ़ के नरेश, "राजाबहादुरेत्यादि पदवी-सम्भूषित श्रीभूपदेव सिंहदेव" के पूर्वजों का तथा स्वयं उनका कवि-सम्मत वर्णन है । मूल श्लोक संस्कृत-भाषा और विविध वृत्तों में हैं । पर प्रत्येक श्लोक के नीचे उसका भावार्थ हिन्दी में भी दे दिया गया है । यह बात संस्कृत न जानने वालों के लिए बहुत सुभीते की है । छपाई और काग़ज़ साधारण है । कविता में कहीं कहीं सरसता नहीं ।

※

९—भूमिहार-ब्राह्मण-परिचय—यह बड़े आकार की कोई चार सौ सफ़हों की पुस्तक है । मूल्य इसका २ रुपये है । इसे काशी के दण्डिस्वामि-सहजानन्द सरस्वती ने लिखा है । सम्पादक, "भूमिहार-ब्राह्मण," सराय-गोवर्धन, बनारस को लिखने से यह मिल सकती है । इसमें भूमिहार-ब्राह्मणों के सम्बन्ध की विवेचना है । यह विवेचना बड़े विस्तार और बड़ी खोज से लिखी गई है । श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण आदि के ख़ूब प्रमाण दिये गये हैं । भूमिहार-ब्राह्मण अयाचक ब्राह्मण कहे जाते हैं । यजन-याजन-दान प्रतिग्रह, ब्राह्मणों के ये चार काम हैं । इनमें से पिछले "प्रतिग्रह" को भूमिहार-ब्राह्मणों ने छोड़ दिया है । अतएव इन महाशयों को ब्राह्मणों से बढ़ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । इस देश में ये यदि अपने को अन्य ब्राह्मणों से भी बढ़ चढ़ कर कोई और पदवी पाने का पात्र समझते तो भी उचित ही था । व्यर्थ ही लोग इनके विरुद्ध लेख आदि लिखते और बातें बनाते हैं । कुछ लोगों का ख़याल है कि शास्त्र के अनुसार ब्राह्मणत्व का दावा सही साबित करनेवाले भारत में शायद थोड़े ही पुण्यात्मा पुरुष, इस समय, निकलें । पर इससे क्या ? शास्त्र की दृष्टि में जो है सो है, जो नहीं सो नहीं । आप तो अपनी दृष्टि से ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न कृषकों, व्यापारियों और सिपाहियों तक को ब्राह्मण मान लीजिए ! शास्त्र की बात शास्त्र जाने । अस्तु । यह पुस्तक लिखने में स्वामीजी ने बड़ा परिश्रम किया । अनेक अँगरेज़ी ग्रन्थों और इतिहासों से भी आपने अपने वक्तव्य की पुष्टि की है । भूमिहार-ब्राह्मणों के सम्बन्ध की कोई बात, उपाय भर, नहीं छोड़ी । अनेक शङ्काओं और विरोधिनी आलोचनाओं के समाधान और उत्तर भी आपने दिये हैं । इस गवेषणा और इस उदारता के लिए भूमिहार-ब्राह्मणों को आपका कृतज्ञ होना चाहिए ।

※

१०—स्त्री-जीवन—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १४०, जिल्ददार, मूल्य ६ आने । इसे श्रीयुत सूरजमल्ल, सम्पादक, जैन-प्रभात ने लिखा है और इन्दौर की मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति ने प्रकाशित किया है । समिति के मन्त्री को लिखने से यह पुस्तक मिल सकती है । महाराजा होलकर ने कोई ढाई हज़ार रुपये पूर्वोक्त समिति को हिन्दी की उन्नति के लिए ख़र्च करने को दिये हैं । इसी रुपये की मदद से समिति ने होलकर-ग्रन्थ-माला निकालना शुरू किया है । यह पुस्तक इस माला की दूसरी पुस्तक है । इसमें स्त्रियों के महत्त्व, बाल्यकाल, शिक्षा, विवाहकाल, गृहिणी-जीवन, गृह-व्यवस्था, गृहशासन आदि पर अच्छे अच्छे लेख हैं । अन्त में बहुत सी शिक्षायें और सदुपदेश भी हैं । स्त्रियों को कैसी शिक्षा देनी चाहिए, उनके काम क्या क्या हैं और उन्हें अपनी दिनचर्य्या और व्यवहार कैसा रखना चाहिए, ये सब विषय इसमें योग्यता-पूर्वक वर्णन किये गये हैं । बड़े काम की पुस्तक है । स्त्रियों और लड़कियों के पढ़ने लायक़ है । लेखक के वक्तव्य के अनुसार ही यदि स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा हो तो समाज को बहुत लाभ पहुँचे । पुस्तक की भाषा सरल है ।

※

११—शान्तिमार्ग—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य चार आने, प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-भाण्डार, लखनऊ । जेम्स एलन की लिखी हुई—From Passion to

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Peace—नामक एक छोटी सी पुस्तक अँगरेज़ी में है। उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं—बाबू दयाचन्द्र गोयलीय, बी० ए०। आकांक्षा, उत्कृष्ट जीवन, परम सुख, परम शान्ति आदि सात विषयों पर इसमें छोटे छोटे निबन्ध हैं, जो पढ़ने और शिक्षा ग्रहण करने योग्य हैं। पुस्तक की भाषा और छपाई अच्छी है।

१२—आत्म-रहस्य—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ३८, मूल्य ४ आने, प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-भाण्डार लखनऊ। यह जेम्स एलन की—Out from the Heart नामक अँगरेज़ी पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। बाबू दयाचन्द्र गोयलीय, बी० ए० और बाबू चिरञ्जीलाल माथुर, बी० ए० इसके रचयिता हैं। पुस्तक अच्छी छपी है। इसमें हृदय और जीवन, मन का स्वभाव और उसकी शक्ति, आदत का बनाना, कार्य्य और ज्ञान, और उत्तम जीवन के उपाय, इन पाँच विषयों पर निबन्ध हैं। लेखक के विचार उत्तम और अनुकरणीय हैं। अनुवाद की भाषा कहीं कहीं बे-मुहाविरे है।

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) प्रारम्भिक भूगोल-शिक्षा—लेखक, बाबू दीनानाथ-प्रसाद, १३१ मुक्ताराम-बाबू-स्ट्रीट, कलकत्ता।
(२) वैद्य-सेवा-समिति की नियमावली—प्रेषक, पं० नारायणदत्त शर्म्मा वैद्यराज, हरद्वार।
(३) राजभक्ति—प्रकाशक, सनातन-धर्म्म-मण्डल, युक्त-प्रान्त, मेरठ।
(४) वैतकर्मफलोपदेश—प्रकाशक, स्वामी प्रेमानन्दजी, कानपुर।
(५) जैन-कान्फरन्स के सभापति बाबू माणिक्यचन्द्र जैनी, बी० ए०, एल-एल० बी० का व्याख्यान—प्रकाशक, व्याख्याता महाशय, खँडवा।
(६) मुकुन्दगढ़-सहायक-समिति, कलकत्ता, का प्रथम वार्षिक विवरण—प्रेषक, श्रीयुत वसन्तलाल मुरारका, कलकत्ता।
(७) श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-दातव्य-औषधालय, कलकत्ते का प्रथम वार्षिक विवरण—प्रेषक, बाबू गोविन्दराम जाजोदिया, कलकत्ता।
(८) श्रीमाहेश्वरी-विद्यालय, कलकत्ते, की रिपोर्ट, सन् १९१६–१७—प्रेषक, मन्त्री, माहेश्वरी सभा, कलकत्ता।
(९) सेवा-समिति (बिजनौर) की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट—प्रकाशक, पं० किशोरीलाल शर्म्मा, बिजनौर।
(१०) भारत-विनय—प्रेषक, मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर।
(११) प्रह्लाद—लेखक, विद्यार्थी महावीरप्रसाद चौधरी, असरगंज, मुंगेर।
(१२) हिन्दी-जैन-शिक्षा, तृतीय भाग—लेखक, बाबू लक्ष्मीचन्द्र घीया, प्रतापगढ़।
(१३) ग़ज़ल-बहार—संग्रहकर्ता, बाबू माँगीलाल नोकरी, नीमच।
(१४) अग्रवंशीय सुरीतिप्रचारिणी बाल-सभा, आगरा, का तृतीय वार्षिक विवरण—प्रकाशक, बाबू देवीप्रसाद मन्त्री, आगरा।
(१५) श्रीरामशङ्करप्रसाद—सम्पादक, बाबू रामशङ्करलाल श्रीवास्तव्य, बड़ागाँव, डाकख़ाना जलालपुर, फ़ैज़ाबाद।

चित्र-परिचय।

व्रज में होली।

इस संख्या के रङ्गीन चित्र में व्रज की होली का दृश्य है। नीचे श्रीकृष्ण और उनके साथी ग्वाल-बाल हैं। ऊपर मकानों की खिड़कियों में राधिका और उनकी सखियाँ हैं। दोनों तरफ़ से रङ्ग की मार हो रही है। यह एक प्राचीन चित्र का प्रतिबिम्ब है और उन चित्रों में से है जो कांगड़े की क़लम (Kangra School) के कहलाते हैं। यह हमें टिहरी के श्रीयुत विचित्रशाह की कृपा से प्राप्त हुआ है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग १८, खण्ड १] अप्रिल, १९१७ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २०८

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची ।

पृष्ठ

(१) प्रार्थना—[ले०, श्रीयुत हेमनाथ चन्द्रवंशी १६६
(२) स्वर्गीय गणपतिराव देसाई—[ले०, पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० ... ... १६६
(३) गीता-रहस्य-विवेचन १७२
(४) हिन्दी में विराम-चिह्नों का दुरुपयोग—[ले०, पण्डित कामताप्रसाद गुरु १८३
(५) अवतार—[लेखक, पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ... ... १८७
(६) भाषा की उन्नति (१)—[लेखक, बाबू सुरेन्द्रनाथसिंह, बी० ए० ... ... १८८
(७) शान्ति देवी—[लेखक, बाबू मोतीलाल, बी० ए०, सी० टी० ... ... १६४
(८) गूँगी—[ले०, श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० ... ... १६६
(९) श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस की पुस्तकें—[२] १६७
(१०) साहित्य-सम्मेलन और सहकारिता—[लेखक,—पण्डित गोविन्दनारायण हर्डीकर, बी० ए०, एल-एल० बी० २०२
(११) वेद हैं— [लेखक, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय २०४
(१२) मंसूरी—[लेखक, बाबू गयाप्रसाद गुप्त ... २०६
(१३) विन्दु और सिन्धु—[लेखक, पण्डित लोचन-प्रसाद पाण्डेय २०७
(१४) कौंसिल में हिन्दी २०७
(१५) आलोक-विश्लेषण-यन्त्र तथा नक्षत्रों का शारीरिक सङ्गठन [—लेखक, बाबू अनमोलचन्द्र जैन, बी० एस-सी० ... २१५
(१६) विविध विषय २१६
(१७) पुस्तक-परिचय २२८
(१८) चित्र-परिचय २३२

चित्र-सूची ।

१—काश्मीर का प्रातःकालीन दृश्य (रङ्गीन)।
२—स्वर्गीय गणपतिराव देसाई ।
३—मंसूरी का लाइब्रेरी बाज़ार ।
४—मंसूरी की हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणी
५—मंसूरी का केम्पटी नामक जल-प्रपात ।
६—मंसूरी की डांडी ।
७—मंसूरी की रिकशा नामक गाड़ी ।
८—११—आलोक-विश्लेषण-यन्त्र-सम्बन्धी ४ चित्र ।
१२—सर हरकर्ट बटलर ।

नई पुस्तकें ! नई पुस्तकें !!

हिन्दी में

किरातार्जुनी

(पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित)

महाकवि भारवि की यह वही पुस्तक है जिसकी धूम सैकड़ों वर्षों से संस्कृत-साहित्य में मच रही है। द्विवेदीजी महाराज की कृपा से केवल हिन्दी भाषा से ही परिचय रखने वाले सज्जन भी इसका खूब रसास्वादन कर सकेंगे। इसमें राजनीति, धर्मनीति आदि कूट कूट कर भरी पड़ी हैं। पुस्तक अनुपम है, और ऐसी मनोरञ्जक है कि एक बार शुरू करने से बिना ख़तम किये चैन नहीं पड़ता। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर। मूल्य केवल १॥)

मानस-प्रबोध

(लेखक, पण्डित विश्वेश्वरदत्त शर्मा)

यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। इसमें तुलसीकृत रामायण के वाक्य-प्रयोग, शब्द-प्रयोग आदि उदाहरण देकर ऐसी ख़ूबी से समझा... कि इसके पढ़ने से गोस्वामीजी के ग्रन्थों ... में बड़ी आसानी होगी। पुस्तक मौलिक है ... के प्रेमियों को अवश्य ख़रीदनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या तीन सौ से ऊपर। मूल्य केवल १)

बालशिक्षा ।

(पं० रूपनारायण पांडेय लिखित)

यह पुस्तक कविता में है। इसमें बालकों ... एक से एक बढ़ कर उपदेश भरे हुए हैं; ब... बालकों को कंठ करा देने लायक़ है। मूल्य केवल ≈)

मिलने का पता :—

मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग १८, खण्ड १] एप्रिल १९१७—चैत्र १९७३ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २०८

प्रार्थना।

पुनः हो भारत का उत्थान।
अर्जुन, भीम, द्रोण सम होवें भारत-सुत बलवान।
हरिश्चन्द्र, दशरथ, बलिसम हों सत्य-प्रतिज्ञावान ॥१॥
ब्राह्मण पढ़ें वेद, क्षत्रिय हों शूरवीर गुणवान।
वैश्य करें वाणिज्य, शूद्र हों स्वामि-भक्त सज्ञान ॥२॥
राग अलापें ऐक्य-भाव का तज कर फूट महान।
गूँज उठे घर घर स्वदेश में देश-भक्ति की तान ॥३॥
कर्मवीर हो, धर्म-धीर हो, नीति-निपुण, विद्वान्।
कलाकुशल हो, धैर्यवान हो, भारत की सन्तान ॥४॥
सर्व देश गावें प्रभुवर फिर भारत के गुणगान।
किसी तरह हे नाथ! करो तुम अब इसका कल्यान ॥५॥
ब्रिटिश राज्य के छत्र तले हम पावें उच्च स्थान।
"भारत-भूमि सुखी फिर होवे"—यह कह दो भगवान ॥६॥

हेमनाथ चन्द्रवंशी

स्वर्गीय गणपतिराव देसाई।

लोकान्तरित पुरुषों के जीवनचरित लिखने के लिए कुछ न कुछ ऐसे गुण देखे जाते हैं जिनके कारण वह चरित लिखने योग्य समझा जाता है। कोई धनिक हुआ, तो कहा जाता है कि अमुक पुरुष ने चाहे और कुछ भले न किया हो, पर सार्वजनिक कामों में उसने अपना बहुत सा धन ख़र्च किया था; यदि कोई सरकारी कर्म्मचारी हुआ, तो कहा जाता है कि सरकारी नौकरी करके भी वह प्रजा-हित के कार्यों से अच्छी सहानुभूति रखता था; और छोटी-बड़ी कौन्सिल का कोई अनेक-पदवी-विभूषित माननीय सदस्य हुआ, तो उसके लिए यह पद सदा उमेदवारी करता ही रहता है कि "नृपति-जनपदानां दुर्लभः कार्यकर्त्ता।" परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म-विचार-पूर्वक देखा जाय तो ये बातें ऐसी अपूर्व नहीं जिनका मान इतना अधिक किया जाय। धनी होकर दुराचरणों में प्रवृत्त न हुए और दैवयोग से यदि उसका कुछ विनियोग सत्कार्यों में कर दिया, तो कौन कुवेर का भाण्डार लुटा दिया? सरकारी नौकरी करते समय अपने देश-भाइयों का गला न घोंटा, प्रजा की आकांक्षाओं पर पानी न फेरा और यदि लोकहित के कुछ सत्कार्यों के प्रति सूखी सहानुभूति दिखला दी, तो कौन बड़ी बात हुई? और, कौंसिल की मेम्बरी में यदि उभय दलों की कुछ मङ्गल-कामना करदी, तो कौन सा बड़ा उपकार कर दिया? यह तो साधारण कर्त्तव्य ही था, जो उनके हाथ से हो गया। यदि वे इसे न करते तो अवश्य अश्लाघ्य होते। जो यह जीवनचरित लिखा जा रहा है—जीवनचरित क्या, ये तो केवल कुछ ऐसी बातें हैं जो साधारण लोगों में भी अधिकता से पाई जाती हैं और अलौकिकता की खोज करने वाले जिन पर कुछ भी ध्यान नहीं देते—इसके नायक कोई मोटे आसामी, धुरन्धर विद्वान् या किसी छोटी-बड़ी कौंसिल के माननीय सदस्य न थे। आप मध्यम श्रेणी में जन्म पाये हुए कुशल-हस्त वैद्य थे। परन्तु अपने कुछ साधारण गुणों के ही द्वारा जनता-रूप विराट् भगवान् की पूजा करके उसके भी पूज्य हो गये थे।

आपका जन्म वैक्रमी संवत् १८३७ में मध्य-प्रदेश के सागर नगर में हुआ था। तीन ही वर्ष की आयु में आपकी माता का अन्त हो गया। इससे लालन-पालन का कार्य आपके पिता पर आ पड़ा। परन्तु आपकी पालन-पोषण की व्यवस्था में जब आपके पिता ने न्यूनता देखी, तब पुत्र की संरक्षा के लिए पुनर्वार दारपरिग्रह किया। इन द्वितीय माता पर गणपतिरावजी का अखण्ड प्रेम था। यहाँ तक कि बिना उनके भोजन किये आप भोजन न करते थे।

आपके पिता श्रीयुत श्रीधररावजी देसाई ने, छः वर्ष की आयु में, आपका विद्यारम्भ करा दिया। दस वर्ष की अवस्था में आपने मराठी की शिक्षा समाप्त कर दी। फिर अँगरेज़ी का कुछ अभ्यास करके आप आयुर्वेद का अध्यन करने लगे। अपने पूज्य पिता से आपने माधवनिदान, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश और निघण्टुरत्नाकर आदि ग्रन्थ पढ़ कर एक वर्ष तक विश्राम किया। फिर इक्कीसवें वर्ष तक वाग्भट और चरक का अध्ययन करते रहे। आयुर्वेद का अध्ययन कर चुकने पर आपने उर्दू सीखी और यूनानी हिकमत से भी परिचित हो गये। आपके पिता फ़ारसी में अच्छी योग्यता रखते थे और यूनानी हिकमत भी करते थे।

पण्डित श्रीधरराव देसाई ने सागर में आर्य-चिकित्सालय नामक औषधालय २५ वर्ष से खोल रक्खा था, जिसमें सर्वसाधारण को धर्मार्थ औषध दी जाती थी। इस प्रकार ख़र्च अधिक होने के कारण जब आपके दो गाँव इसी में लग गये, तब धनवान् पुरुषों से फ़ीस ली जाने लगी; परन्तु सर्व-साधारण को पूर्ववत् औषध-प्रदान होता रहा। इस चिकित्सालय में गणपतिराव ने प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया और पिता-पुत्र दोनों मिल कर नगर-वासियों की स्वास्थ्य-रक्षा में सहायता देने लगे।

जब हम वर्तमान नये युग के डाक्टरों का हाल देखते हैं कि जिसके यहाँ रुपये हैं वह दवा पावे; जो द्रव्यवान है, वह डाक्टर साहब की सहायता से रोगों के युद्ध में विजयी हो; परन्तु जो निर्धन है वह सड़ता रहे; उसके लिए न डाक्टर साहब के पास औषध है न डाक्टरी का ज्ञान; तब देसाई महोदय की उक्त प्रणाली के प्रति हृदय में अपार श्रद्धा उत्पन्न होती है। वैद्यक सीखा है तो इस लिए कि सर्वसाधारण को लाभ हो और धनवानों से फ़ीस ली है तो इस लिए कि सर्वसाधारण को बे रोक-टोक दवा दी जा सके। सर्वसाधारण के सुभीते के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए आप ग़रीबों के घर, बिना कुछ लिये दिये ही, रोगी को देखने प्रसन्नतापूर्वक जाते थे। सागर-निवासी जानते हैं कि आपके आगमन की मार्ग-प्रतीक्षा किस चातक-वृत्ति से की जाती थी। आपका प्रसन्नमुख देखते ही रोगी का आधा रोग घट सा जाता था।

आपकी आयु ६९ ही वर्ष की थी कि शहर भर में आपका नाम फैल गया। पुत्र ने पिता से भी अधिक सम्मान प्राप्त कर लिया। कितने ही कठिन रोगियों को चङ्गा कर देने के कारण डाकृर लोग भी आपकी प्रशंसा करने लगे। इसके दो वर्ष पश्चात् आप स्वयं जङ्गलों में जाते और वनौषधियों को पहचानते एवं यथोचित रीति से उन्हें लाकर उनका उपयोग करते थे।

मराठी-साहित्य से आपका बहुत प्रेम था। सागर में रहने के कारण हिन्दी के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। फलितज्योतिष में आपका ख़ूब प्रवेश था। ऋग्वेद का अधिक अंश आपको कण्ठाग्र था। जब आप वक्तृता देते, श्रोता गद्गद हो जाते थे। कण्ठ की माधुरी ने हृदय की सरसता को दूना कर दिया था।

आप बाल्यावस्था से ही स्वदेश के सच्चे प्रेमी थे; स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार करते थे और पोशाक भी पुराने ढङ्ग की रखते थे। विवाह आदि उत्सवों तक में आपके यहाँ देशी रोशनी होती थी—लैम्पों से काम न लिया जाता था। शहर की प्रायः सभी संस्थाओं और सभाओं से आपका कुछ न कुछ सम्बन्ध रहता था। कितने ही विद्यार्थियों को आपने वैद्यक सिखलाया, जिसमें से दो तीन विद्यार्थी अच्छे निकले हैं। चिकित्सालय का प्रबन्ध अब यही लोग करते हैं। अच्छे वैद्यों के प्रायः सभी गुण आपमें थे। सबसे श्रेष्ठ गुण यह था कि आप लालची न थे। आपके यहाँ से दवा तो बिना मूल्य दी ही जाती थी; साथ ही असमर्थ रोगियों को भोजन और स्थान देकर उनकी चिकित्सा भी की जाती थी। प्रति दिन दो ढाई सौ मनुष्य औषध लेने आते थे।

आपकी अवस्था तीस वर्ष की हुई थी कि पिता श्रीधररावजी का देहान्त हो गया। पिता का अन्त हो जाने पर भी काम इस उत्तमता से होता रहा कि कटहल* वालों के शोक को नगरवासी भूल सा गये। पिता से पुत्र सवाया निकला। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का भाव सदा आपके आगे उपस्थित रहा। सागर-निवासियों को आप इस प्रकार लाभ पहुँचा ही रहे थे कि सन् १९१५ में प्लेग का कोप हुआ। नगरवासी बाहर चले गये। आपने भी मकान छोड़ दिया; परन्तु हाय! फिर भी प्लेग ने आपका साथ न छोड़ा। शहर छोड़े दो महीने हुए होंगे कि प्लेग ने उस गाँव पर भी चढ़ाई कर दी जहाँ आप रहने गये थे। आपको उसने, ३४ वर्ष की आयु में, २४ फ़रवरी सन् १९१५ के दिन, सागर-निवासियों से छीन लिया! सब लोग हाय हाय करते रह गये। शहरवालों का यह दुःख तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक आपका कोई शिष्य उसी योग्यता को पहुँच कर सब काम सँभालने योग्य न हो जाय। अब आपके कुटुम्ब में आपकी विधवा पत्नी और तीन छोटी छोटी लड़कियाँ हैं। आपके चचा पण्डित दामोदररावजी देसाई जबलपुर में बड़े नामी और परोपकारी वैद्य हैं। उनके जीवन की अनेक घटनायें शिक्षादायक और मनोरञ्जक हैं। उन्हीं के पास आपके छोटे बन्धु अध्ययन कर रहे हैं।

एक बार आप मथुरा के वैद्यक सम्मेलन में गये थे। वहाँ वाले भी आपसे बहुत सन्तुष्ट रहे। देसाईजी यदि और दो वर्ष बचते तो सम्मेलन का कोई विशेष कार्य अवश्य कर दिखलाते। पर काल को यह कब मञ्जूर था कि एक देशहितैषी वैद्य, अपने

*आपके यहाँ कटहल के कई पेड़ हैं; इस लिए सर्व-साधारण में आप कटहलवाले वैद्य के नाम से प्रसिद्ध थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रत को पहचान कर, राष्ट्र की सेवा करता हुआ, वैद्यनामधारी जन्तुओं से सर्वसाधारण की रक्षा करे। इसीसे उसने उनको यहाँ न रहने दिया।

इस छोटी सी उम्र में ही आप अनेक गुणों के आधार हो गये थे। किसी भी रोगी को आपके यहाँ पहुँच कर बहुत करके विमुख और निराश नहीं होना पड़ा। जिस रोगी को आपने असाध्य देखा उसके घर से आपने कभी फ़ीस नहीं ली; यद्यपि डाक्टर लोग आपके सामने ही फ़ीस लेकर चलते बनते थे। आपका बाना सचाई का था। अपने व्रत से आप कभी पराङ्मुख नहीं हुए। आपके यहाँ से कितनों ही की जीविका भी चलती थी। हमारे देश में ऐसे ही परोपकारी और असाधारण-गुण-सम्पन्न वैद्यों की चाह तथा आवश्यकता है जो अपने कर्त्तव्यों में सदा निमग्न हों। ऐसे ही वैद्यों के विषय में रोगियों का यह भाव होता है कि "वैद्यो नारायणो हरिः"।

माधवराव सप्रे

गीता-रहस्य-विवेचन।

सनातन-हिन्दू-धर्म्म के ग्रन्थरत्नों में श्रीमद्-भगवद्गीता बहुमूल्य रत्न है। वह स्वयं भगवान् की वाणी है; नर को नारायण का उपदेश है; भारत का सार है; मनुष्यों को कर्त्तव्य सिखाने वाला दिव्य गुरु है। पण्डितों ने कहा है—"गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।" सनातन-धर्म के विच्छिन्न पन्थों और सम्प्रदायों को गीता एक सी पूज्य है। आज तक इस ग्रन्थ पर संस्कृत तथा प्राकृत में हज़ारों टीकायें हो गई हैं। बड़े बड़े महात्माओं और महापुरुषों ने गीतामृत का आस्वादन किया है। उन लोगों ने उसका कुछ अंश अपनी लेखनी तथा वाणी द्वारा सर्व-साधारण लोगों को भी दिया है। गीता को प्रेम-पूर्वक "माता" कहना, उसकी शरण में जाना और उसके सारामृत का पान करना, यही सनातन-धर्मावलम्बियों का कर्तव्य है। आज तक अनेक महात्माओं ने गीता का अनुशीलन, अपने अपने सम्प्रदायों अथवा मतों के अनुसार करके, उसके विभिन्न अर्थ किये हैं। परन्तु गीता पर स्वतन्त्र विचार तथा उसी के आधार पर उसका अर्थ करने का प्रयत्न करने से मालूम होता है कि, इन सब टीकाओं और भाष्यों में साम्प्रदायिक अभिमान की मात्रा अधिक है। वर्त्तमान समय में स्वतन्त्र विचार की बड़ी आवश्यकता है। साम्प्रदायिक दृष्टि और विचार को एक ओर रख कर, केवल गीता के अन्तरङ्ग आधार पर यह जानना आवश्यक है कि गीता का अर्थ क्या है। ऐसा प्रयत्न विद्वद्वर बाल-गङ्गाधर तिलक महोदय ने "गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र" नामक ग्रन्थ में किया है। तिलक महोदय की विद्वत्ता प्रसिद्ध है। "आर्कटिक होम इन दि वेदाज़" और "ओरायन" नामक उनके दो ग्रन्थों से उनकी कीर्त्ति तथा शोधक बुद्धि दूर दूर तक प्रसिद्ध हो गई है। आपने लगातार ४० वर्ष तक गीता पर विचार किया है। श्रीशङ्कराचार्य्य, श्रीरामानुजाचार्य्य आदि महापुरुषों के साम्प्रदायिक भाष्यों, आधुनिक देशी तथा विदेशी टीकाओं और बौद्ध, जैन आदि भारतीय तथा यूरोप के भिन्न भिन्न दर्शनशास्त्रों का अच्छी तरह अनुशीलन करके आपने यह गीता-रहस्य लिखा है तथा बड़ी ही योग्यता से सिद्ध किया है कि गीता-प्रतिपादित धर्म ही संसार के सब धर्मों में श्रेष्ठ है। इस गीता-रहस्य के मराठी संस्करण ने, अल्प समय में ही, सारे महाराष्ट्र में अद्भुत विचार-क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। इसके हिन्दी-अनुवाद की भी हज़ारों प्रतियाँ एक ही दो महीने में बिक गईं। अब भी हज़ारों गीता-प्रेमियों की माँग आ रही है। इस कारण, सुनते हैं, इसके हिन्दी-अनुवाद का दूसरा संस्करण फिर से मुद्रित हो रहा है। पण्डित माधवराव सप्रे हिन्दी-भाषा-भाषियों के धन्यवाद के पात्र हैं। यह आपही की कृपा और परिश्रम का फल है जो हम लोग तिलक महाशय के गीता-रहस्य को अपनी मातृभाषा में पढ़ रहे हैं। उसमें प्रतिपादित भिन्न भिन्न विषयों की चर्चा और आलोचना होनी चाहिए।

गीता-रहस्य के प्रणेता कहते हैं कि गीता में भगवान् ने अर्जुन को जिस 'योग' का उपदेश दिया है वह कर्मयोग ही है। महाभारत के शान्तिपर्व में नारायणीय धर्म का प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादन किया गया है। वह भी प्रवृत्ति-प्रधान है। गीता के चतुर्थ अध्याय में वर्णित उपदेश-परम्परा और नारायणीय धर्म की उपदेश-परम्परा एक ही है। छठे अध्याय के कुछ स्थानों को छोड़ कर गीता में प्रायः सर्वत्र 'योग' शब्द का अर्थ कर्म-योग ही है। गीता ही में लिखा है—"योगः कर्मसु कौशलम्।" 'सांख्य' और 'योग' इन दोनों मार्गों का वर्णन गीता में किया गया है और कहा गया है कि "संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ" अर्थात् ये दोनों मार्ग समान भाव से मोक्ष देने वाले हैं; पर इनमें भी योग अर्थात् कर्मयोग श्रेष्ठ है—"कर्मयोगो विशिष्यते।" अतएव इसी योग का उपदेश अर्जुन को भगवान् ने किया है। सांख्य और योग, अथवा ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा, इन दो मार्गों में योग या कर्मनिष्ठा औरों के मत से सांख्य या ज्ञाननिष्ठा का साधन है; पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि भगवद्गीता से यह प्रमाणित नहीं होता। गीता में स्पष्ट लिखा है "लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा" अर्थात् निष्ठा दो प्रकार की है। इस दशा में एक को दूसरे का साधन मानना कभी उचित न होगा, क्योंकि फिर वह स्वतन्त्र निष्ठा न रहेगी। इसलिए ज्ञाननिष्ठा का साधन कर्मनिष्ठा नहीं, किन्तु वह एक स्वतन्त्र निष्ठा है। यदि वह साधन हो तो निष्ठा न कहावेगी। पाँचवें अध्याय में भी लिखा है "यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।" यदि सांख्य का साधन योग होता, तो यह बात कभी न कही जाती कि सांख्य से प्राप्त होने वाला स्थान योग से भी प्राप्त हो सकता है। इससे सांख्य और कर्मयोग की स्वतन्त्रता सिद्ध होती है और साध्य-साधन-सम्बन्ध की कल्पना निराधार हो जाती है। "एकमपि आस्थितः सम्यक्" (गी० ५—४) से भी यही सिद्ध होता है कि दोनों मार्ग स्वतन्त्र हैं। सारांश, जब यह सिद्ध हो गया कि सांख्य और योग दोनों मार्ग स्वतन्त्र हैं, तब यह प्रमाणित करना कि गीता में अर्जुन को कर्मयोग ही का उपदेश दिया गया है, कुछ कठिन न होगा। इसका कारण यह नहीं है कि अर्जुन अज्ञानी थे, किन्तु कृष्ण ने उनको एक सर्वथा स्वतन्त्र मार्ग का—कर्मयोग का—ही उपदेश दिया है।

पुरातन काल से ही सनातनधर्म में ज्ञानी पुरुषों के दो मार्ग प्रचलित हैं—"द्वाविमावथपन्थानौ......"। कुछ ज्ञानी ज्ञानप्राप्ति के बाद संन्यास ग्रहण करके ज्ञानप्राप्ति में ही तत्पर हो जाते हैं; इसे निवृत्ति-मार्ग या सांख्य कहते हैं। और, कुछ ज्ञानी ज्ञानप्राप्ति के बाद भी असक्त रह कर लोक-कल्याणार्थ कर्म किया करते हैं; इसे प्रवृत्तिमार्ग या योग कहते हैं। शुक-याज्ञवल्क्य आदि प्रथम मार्ग के उदाहरण हैं और व्यास-वसिष्ठ-जनक-जैगीषव्य आदि दूसरे मार्ग के। भगवद्गीता का कर्मयोग ज्ञानमूलक है और उसी को कृष्ण ने अपना मार्ग कहा है तथा अर्जुन को उसी का अनुसरण करने के लिए उपदेश दिया है। द्वितीय अध्याय में "एषा तेऽभिहिता सांख्ये" कह कर कृष्ण ने योगमार्ग का वर्णन आरम्भ किया है। गीता में सर्वत्र इसी का प्रतिपादन किया गया है। यह योग सांख्य का साधन नहीं, किन्तु एक स्वतन्त्र मार्ग है और इसी को कृष्ण भगवान् ने अपना निज का योग बताया है। इसी योग के अनुसार "कर्मण्येवाधिकारस्ते" कहा गया है। योगमार्ग का प्रधान तत्त्व यही है कि ज्ञानप्राप्ति के बाद फलाशा का त्याग करके निष्काम बुद्धि से लोक-कल्याणार्थ सदैव कर्म करते रहना चाहिए। गीता कहती है कि पुण्य-पाप का सम्बन्ध कर्म से नहीं, किन्तु कर्त्ता की बुद्धि से है। इसलिए बुद्धि को शुद्ध करके कर्म करना चाहिए, क्योंकि कर्म-त्याग करना असम्भव है। इसी से कहा है—"कर्मयोगो विशिष्यते।" इस विशेषता का परिचय देने के पहले गीता के उपक्रम तथा उपसंहार से भी यह जान लेना आवश्यक है कि गीता प्रवृत्ति पर ही है या नहीं।

"श्रीमद्भगवद्गीता"—इस नाम से ही स्पष्ट दिखाया गया है कि गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया है वह भागवत धर्म का—अर्थात् भगवान् के द्वारा प्रवृत्त किये हुए धर्म का—ही उपदेश होना चाहिए। गीता में भगवान् ने अर्जुन को जो उपदेश दिया है वह कुछ नया नहीं। गीता के चौथे अध्याय के आरम्भ में भगवान् कहते हैं—पहले यही उपदेश मैंने विवस्वान् को, विवस्वान् ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था। अन्त में भगवान् ने अर्जुन से यह भी कहा है कि अब मैंने तुझे उसी योग का उपदेश दिया है जो बीच में भुला सा दिया गया था। महाभारत के शान्तिपर्व के अन्त में नारायणीय अथवा भागवत धर्म का जो वर्णन है उसमें ब्रह्मदेव के भिन्न भिन्न जन्मों में भागवत धर्म की परम्परा के विषय में निरूपण करने के बाद यह कहा गया है कि ब्रह्मदेव के वर्तमान जन्म के त्रेतायुग में—नारायणीय अथवा भागवत धर्म की परम्परा इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान् मनवे ददौ।
मनुश्च लोकभृत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ॥
इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थितः।"

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गीता में दी गई परम्परा और नारायणीय धर्म की परम्परा दोनों एक ही हैं। जब दो भिन्न भिन्न धर्मों की परम्पराओं में एकता होना असम्भव है, तब यही स्पष्ट मालूम होता है कि गीता-धर्म और नारायणीय या भागवत धर्म एक ही होंगे। परन्तु यह बात अनुमान पर ही अवलम्बित नहीं। महाभारत में नारायणीय धर्म के निरूपण में वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा है—

"एवमेष महान् धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः"॥

अर्थात् मैंने तुझसे यह धर्म हरिगीता अर्थात् भगवद्गीता में विधि-सहित संक्षेपतः बतलाया है।" विद्वानों को विदित है कि हरिगीता से भगवद्गीता का ही बोध होता है। उपर्युक्त वर्णन के आगे के अध्याय में वैशम्पायन ने भी यही कहा है—

"समुपोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम्॥

इससे सिद्ध है कि हरिगीता से भगवद्गीता का ही बोध होता है; और यह भी स्पष्ट है कि नारायणीय धर्म तथा गीता-धर्म दोनों एक ही हैं।

परम्परा और साक्षात् शब्दों से जब यह सिद्ध होता है कि गीता में नारायणीय धर्म का ही प्रतिपादन किया गया है, तब गीता-प्रतिपादित धर्म को जानने के लिए यदि नारायणीय या भागवत धर्म देख लिया जाय तो काम चल जायगा। फिर, गीता-प्रतिपादित धर्म आप ही आप ज्ञात हो जायगा। नारायणीय धर्म के वर्णन में लिखा है—

"नारायणपरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः।
प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः"॥ तथा
"प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं ऋषिनारायणोऽब्रवीत्"

अर्थात् यह नारायणीय धर्म मोक्ष देने वाला और प्रवृत्ति-प्रधान भी है। इस प्रकार लक्षण बतला कर इस बात का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है कि यह धर्म प्रवृत्ति-प्रधान कैसे है। इससे यही सिद्ध होता है कि गीता-धर्म प्रवृत्ति-प्रधान है। प्रवृत्ति का यह अर्थ प्रसिद्ध ही है कि संन्यास न लेकर निष्काम बुद्धि से चातुर्वर्ण्य-विहित कर्म्म मृत्यु-पर्यन्त करते रहना चाहिए। अतएव महाभारत से यह सिद्ध है कि गीता में भगवान् ने अर्जुन को प्रवृत्ति-प्रधान धर्म का ही उपदेश दिया है।

आज कल गीता पर जितने भाष्य और जितनी टीकायें उपलब्ध हैं वे सब शङ्कराचार्य्य के बाद की हैं। शङ्कराचार्य्य के पहले भी गीता पर अनेक टीकायें थीं, परन्तु इस समय वे उपलब्ध नहीं। इसलिए हम इस बात का ठीक ठीक निर्णय नहीं कर सकते कि उन टीकाओं में गीता का कौन सा अर्थ निश्चित किया गया था। परन्तु शङ्कराचार्य्य ने अपने गीता-भाष्य में गीता की पहली टीकाओं का जो उल्लेख किया है उससे जान पड़ता है कि उनमें गीता का अर्थ ज्ञान-कर्म-समुच्चयात्मक अर्थात् प्रवृत्ति-प्रधान ही किया गया था—अर्थात् ज्ञानवान् मनुष्य को ज्ञान के साथ ही साथ आमरणान्त स्वधर्मोक्त कर्म भी करना चाहिए। शङ्कराचार्य्य ने अपने गीता-भाष्य के आरम्भ ही में कहा है कि हमें गीता का यह अर्थ मान्य नहीं। इस कारण अपने मतानुसार गीता का अर्थ बतलाने के लिए हमने यह भाष्य लिखा है। परन्तु जान पड़ता है कि शङ्कराचार्य्य के पहले गीता का अर्थ ज्ञान-कर्म-समुच्चयात्मक ही किया जाता था। आचार्य्य का यह सिद्धान्त है कि अद्वैत मत के प्रतिपादन के साथ ही साथ, ज्ञान और कर्म ये दोनों, प्रकाश और अन्धकार के समान, परस्पर विरोधी हो जाते हैं। इसलिए यद्यपि ज्ञान के पहले चित्त की शुद्धता के लिए कर्म करने की आवश्यकता है, तथापि अन्त में पूर्णब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति के लिए सब कर्मों का त्याग करके संन्यास ही लेना चाहिए। और, इसी लिए उन्होंने गीता के ज्ञान-कर्म-समुच्चय के पक्ष का खण्डन करके यह अर्थ किया है कि कर्मयोग ज्ञान का साधन है।

अब, क्षण भर, शङ्कराचार्य्य आदि के किये हुए गीता के अर्थ को ही ठीक न मान कर, हमें स्वतन्त्र रीति से यह देखना चाहिए कि केवल गीता से ही गीता का क्या तात्पर्य निश्चित होता है। किसी भी ग्रन्थ और किसी भी प्रकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के तात्पर्य का निश्चय करने के लिए मीमांसकों ने सात साधन या लिङ्ग कहे हैं; जैसे—

"उपक्रमोपसंहारौ अभ्यासोऽपूर्वताफलम्।
अर्थवादोपपत्तीच लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये॥"

इन्हीं सात साधनों से गीता के भी तात्पर्य का निर्णय करना आवश्यक है। उपक्रम का अर्थ है आरम्भ, और उपसंहार का अन्त। आरम्भ और अन्त, इन दो छोरों के बीच में जो ठीक बैठ जाता है वही ग्रन्थ का सरल तात्पर्य है। आरम्भ और अन्त से सरल तात्पर्य का निश्चय हो जाने के बाद, अन्य साधनों का भी यथा-सम्भव उपयोग किया जाता है। इसलिए हम पहले उपक्रमोपसंहार ही का उपयोग करते हैं। भगवान् ने अर्जुन को गीता सुनाई। कब और क्यों? जब पाण्डवों को कौरवों से अपने राज्य का योग्य भाग प्राप्त न हुआ तब दोनों दलों ने लड़ाई की ठानी। कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर की सेनायें एकत्र हुईं। युद्ध का समय आ गया। दोनों दल सज्जित हुए। एक दूसरे पर आक्रमण करने ही वाला था कि इतने में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा— "मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच ले चलो; देखें, दुष्ट दुर्योधन के पक्ष में मिल कर कौन कौन योद्धा युद्ध के लिए तैयार हैं।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ दोनों दलों के बीच में ला कर खड़ा कर दिया। अर्जुन उन योद्धाओं को देखने लगे जो उनके विपक्षियों का पक्ष अङ्गीकार करके उनके विरुद्ध लड़ने को उद्यत थे। उस समय उन्हें वहाँ वृद्ध पितामह, गुरु द्रोणाचार्य्य, गुरुपुत्र, बन्धु-बान्धव, सुहृद्, चचा, मामा इत्यादि सभी स्वजन देख पड़े। उन्हें देखते ही अर्जुन के मन में विचार उत्पन्न हुआ, कि राज्य की प्राप्ति के लिए अपने आप्तों का ख़ून बहा कर गुरुहत्या और कुलक्षय के समान महान् पातक करने पड़ेंगे। बस, इतना विचार उत्पन्न होते ही उनका चित्त एकदम उद्विग्न हो उठा। एक ओर तो क्षात्र धर्म उनसे कह रहा था कि युद्ध करो; और दूसरी ओर पितृभक्ति, गुरुभक्ति, बन्धुप्रेम आदि उन्हें क्षात्र धर्म के पालन से परावृत्त कर रहे थे। यदि युद्ध करूँ तो स्वजनों ही से करना होगा और घोर पातकों का बोझ सिर पर उठाना पड़ेगा; यदि न करूँ तो क्षात्र धर्म से परावृत्त हो जाने के कारण नरक में जाना पड़ेगा—इस प्रकार अर्जुन की दशा साँप-छुछूँदर की सी हो गई। इस आपत्ति-पाश के कारण अर्जुन का सारा शरीर काँपने लगा, मुँह सूख गया, धनुष हाथ से गिर पड़ा, शरीर रोमाञ्चित हो आया और अस्वस्थ होकर वे यह कहते हुए नीचे बैठ गये कि यदि दुर्योधन आदि मुझे अशस्त्र जान कर मार डालें तो भी मैं कुछ न करूँगा। उनकी यह दशा देख कर भगवान् ने कहा—"अर्जुन! तुम्हें यह भ्रम कैसे उत्पन्न हुआ! इस भीरुता को छोड़ दो और युद्ध के लिए खड़े हो जाव।" परन्तु अर्जुन ने एक न मानी। वे युक्तिवाद करने लगे— पितामह भीष्म आदि को मार कर उनके रक्त से मिश्रित भोग भोगने की अपेक्षा भीख माँगना क्या बुरा है! क्षात्र धर्म भले ही अच्छा हो, परन्तु उसके कारण यदि स्वजनों का वध करना पड़े तो ऐसे क्षात्र धर्म को नमस्कार! ऐसे ही ऐसे अनेक विचारों से अर्जुन का सिर चकराने लगा। तब वे धर्म-मूढ़ होकर श्रीकृष्ण भगवान् की शरण गये और "न योत्स्ये" कह कर चुप हो गये। भगवान् ने उन्हें युद्ध में प्रवृत्त करने के लिए गीता का उपदेश किया। इस तरह वे उन्हें ठीक मार्ग पर ले आये। यद्यपि युद्ध करना अर्जुन का कर्तव्य था, तथापि भीष्म आदि के वध से होने वाले पापों का स्मरण करके, डर के मारे, वे कर्त्तव्य-पराङ्मुख हो रहे थे। उन्हें गीता का उपदेश करके भगवान् ने युद्ध करने के लिए राज़ी कर लिया। इतना ही नहीं; किन्तु अन्त में अर्जुन से उन्होंने ऐसा वचन भी ले लिया कि "मैं आपके इच्छानुसार युद्ध करता हूँ।"

यही गीता का उपक्रम और उपसंहार है। इस उपक्रम-उपसंहार से यह बात सिद्ध होती है कि गीता का प्रधान उद्देश कर्म में प्रवृत्त करना ही है। अब यदि 'फल' पर ध्यान दिया जाय तो यह देख पड़ेगा कि अर्जुन ने सचमुच युद्ध किया है; इससे भी यही निश्चित होता है कि गीता में अर्जुन को युद्ध करने के लिए ही उपदेश दिया गया है।

अब "अभ्यास" साधन का उपयोग करके गीता का तात्पर्यार्थ जानना चाहिए। गीतोपदेश करते समय, कई स्थानों पर, कर्म करने के प्रेरक अनेक कारण बतला कर, आगे 'तस्मात्' (अर्थात् 'इसलिए') शब्द जोड़ कर 'तस्माद्युध्यस्व भारत', 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय', 'तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर,' 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्,' 'मामनुस्मर युध्य च,' 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' इत्यादि रीति से सारे गीता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र में बारम्बार कर्म करने ही के लिए भगवान् ने अर्जुन को उपदेश किया है। और, अन्त में, अठारहवें अध्याय में, भगवान् ने अपनी यह उत्तम तथा निश्चित राय दी है कि 'एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च—कर्तव्यानि'। इस अभ्यास-लिङ्ग से भी यही निश्चित होता है कि गीता कर्म करने की प्रेरणा करती है, अर्थात् वह प्रवृत्ति-प्रधान या कर्म-प्रधान ही है। जब अर्जुन इस कल्पना से भयभीत हो गये थे कि युद्ध में भीष्म, द्रोण आदि का वध करना पड़ेगा, अतएव पाप होगा, तब भगवान् ने उन्हें यही बतलाया है कि बिना पाप-स्पर्श हुए किस प्रकार कर्म करना चाहिए। इस उपदेश का रहस्य क्या है? इसे जानने के लिए यही देखना चाहिए कि पाप से बच कर कर्म किस प्रकार किया जाय। भगवान् ने अर्जुन को ऐसा कौन सा मार्ग बतलाया है जिससे कर्म करके भी कर्म का पाप या बन्धन-प्राप्ति नहीं होती।

परन्तु इसके पहले गीता के 'कर्म' शब्द का अर्थ भी जान लेना चाहिए। कर्म शब्द का अर्थ है—करना, व्यापार या हलचल। हमारे शास्त्रों में कर्म का इतना व्यापक अर्थ नहीं लिया गया। उसका उपयोग श्रौत, स्मार्त और पौराणिक कर्म के ही लिए किया गया है। परन्तु गीता में पश्यन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्, श्वसन्, इत्यादि सभी व्यापार कर्म के अन्तर्गत माने गये हैं। यज्ञचक्र का वर्णन करते समय गीता में कर्म शब्द की व्यापकता स्पष्ट रीति से बतलाई गई है। उसका विस्तृत विवेचन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। उस व्यापक अर्थ के अनुसार, इस संसार में क्षण भर जीना और मरना भी, एक प्रकार का कर्म ही कहा जायगा। तात्पर्य्य यह कि गीता में 'कर्म' शब्द का अर्थ सङ्कुचित नहीं, अत्यन्त व्यापक है।

कर्म की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व का शब्द 'योग' है। आज कल इस शब्द का प्रचलित अर्थ केवल पातञ्जल-योग ही माना जाता है। परन्तु यह अर्थ भी सङ्कुचित है। गीता के केवल छठे अध्याय में उस अर्थ का कहीं कहीं उपयोग किया गया है। बाक़ी सब जगह यह अर्थ विवक्षित नहीं है। योग-शब्द में 'युज्' धातु है, जिसका अर्थ जोड़, सङ्गति, मेल इत्यादि होता है। इसके अतिरिक्त इस शब्द के अर्थ उपाय, साधन, युक्ति, कर्म इत्यादि भी होते हैं। यह सच है कि योग-शब्द का अर्थ युक्ति अथवा साधन होता है; परन्तु यह बतलाने के लिए कि गीता में कौन सी विशेष युक्ति इष्ट है, उसी में योग-शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—"योगः कर्मसु कौशलम्"। कर्म करने की कुशलता इसी बात में है कि बन्धन में न पड़ कर कर्म किये जायँ। इसी का नाम है योग। गीता में योग-शब्द पहले पहल दूसरे अध्याय में वहाँ आया है जहाँ भगवान् ने "एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु" कहा है। अर्थात् वहाँ भगवान् अर्जुन से यह कहते हैं कि तुम्हें पहले सांख्य-मार्ग के अनुसार इस बात की उपपत्ति बतला दी गई कि युद्ध क्यों करना चाहिए। अब योग-मार्ग के अनुसार इसकी उपपत्ति सुनो। इसके बाद यह दिखलाया गया है कि यज्ञादिकों में लिप्त रहने वालों की बुद्धि फलाशा से किस प्रकार व्यग्र हो जाती है। आगे चल कर यह उपदेश है कि बुद्धि को इस प्रकार व्यग्र न होने दो, आसक्ति का त्याग करो, कर्म के त्याग का हठ न करो। फिर जब भगवान् ने कहा है कि "योगस्थः कुरु कर्माणि", तब वहीं पर योग-शब्द का स्पष्ट अर्थ भी इस प्रकार किया है कि "सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते" अर्थात् सिद्धि और असिद्धि के विषय में समत्व-बुद्धि धारण करना ही योग है। इसके बाद यह निश्चय करके कि फलाशा से कर्म करने की अपेक्षा समत्व-बुद्धि का योग ही श्रेष्ठ है, भगवान् ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि बुद्धि की समता हो जाने पर कर्त्ता को कर्म के पुण्य-पाप का स्पर्श नहीं होता; इसलिए तुम योग की प्राप्ति कर लो। और, फिर, एक बार योग का लक्षण इस प्रकार बताया है—"योगः कर्मसु कौशलम्।" इससे यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जाती है कि गीता में, पाप का स्पर्श न होते हुए कर्म करने की समत्व-बुद्धि-रूप जो विशेष युक्ति पहले बताई गई है उसी का नाम 'कुशलता' है और उसी कुशलता अर्थात् युक्ति से कर्म करना गीता का "योग" है। यही योग भगवान् ने अर्जुन को बतलाया है और अर्जुन ने भी उसी अर्थ को 'योऽयं योगः त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन' कह कर स्पष्ट कर दिया है।

पहले कहा जा चुका है कि ज्ञानी पुरुषों के बर्ताव के विषय में शङ्कराचार्य्य के पहले से ही वैदिक धर्म में दो मार्ग प्रचलित हैं। उनमें से एक यह है कि ज्ञान-प्राप्ति होने पर स्वरूपतः सब कर्मों का त्याग कर दिया जाय; और दूसरा यह कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय गणपतिराव देसाई ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-प्राप्ति होने पर भी कर्मों का त्याग न किया जाय; किन्तु इस युक्ति से मनुष्य उन्हें मृत्यु-पर्यन्त करता रहे जिससे कर्त्ता को उनका पाप-पुण्य स्पर्श न करे। इन्हीं दो मार्गों के लिए गीता में 'संन्यास' और 'कर्मयोग' अथवा 'सांख्य' और 'योग' संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। इन्हीं दो मार्गों को क्रम से ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा भी कहते हैं। उपनिषदों में केवल ज्ञाननिष्ठा ही का अधिक विवेचन किया गया है; परन्तु भगवद्गीता में ब्रह्मविद्यान्तर्गत कर्मनिष्ठा की प्रधानता का वर्णन है। यही गीता की अपूर्वता और विशेषता है। भगवान् ने अर्जुन को जिस योग का उपदेश किया है वह उक्त दो मार्गों में से 'योग' अर्थात् कर्मयोग है।

महाभारत में योग की व्याख्या इस प्रकार की गई है—'प्रवृत्तिलक्षणो योगः ज्ञानं संन्यासलक्षणम्।' नारायणीय धर्म में भी 'सांख्य' और 'योग' शब्दों का उपयोग उपर्युक्त अर्थ में ही अनेक बार किया गया है। अर्थात् यह बात पूर्णतः सिद्ध होती है कि गीता में 'योग' शब्द (छठे अध्याय में कहीं कहीं छोड़ कर) कर्मयोग के अर्थ में ही उपयुक्त हुआ है। पहले भगवान् ने योग—कर्मयोग—विवस्वान् आदि को बतलाया और अब गीतोपदेश करते समय वे स्वयं ही कहते हैं कि—'स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।' नारायणीय धर्म में योग शब्द के लिए कर्मयोग या 'प्रवृत्तिलक्षणो योगः' लिखा गया है। नारायणीय धर्म और गीताधर्म एक ही है। गीता के चतुर्थ अध्याय के अन्त में यह कह कर कि योग से जिसने कर्म का त्याग किया है और ज्ञान से संशय को जिसने दूर कर दिया है वह आत्मज्ञानी कर्म-बद्ध नहीं हो सकता—"तस्मादज्ञान-सम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः। छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत"—अर्थात् अज्ञानोत्पन्न संशय को ज्ञानरूपी तलवार से काट कर योग (कर्मयोग) का अवलम्बन करो और (युद्ध के लिए) उठो। अतएव भगवान् ने अर्जुन को ज्ञानमूलक कर्मयोग का ही उपदेश किया है।

जब सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा—"मैंने श्रीभगवान् और महात्मा अर्जुन का अद्भुत संवाद सुना," तब उन्होंने कहा कि "योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम्।" सारांश, उन्होंने भी भगवान् के उपदेश को 'योग' ही कहा है। यह इस बात का प्रमाण है कि भगवान् ने अर्जुन को योग ही बतलाया था; और योग का अर्थ कर्मयोग ही है।

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में यह अत्यन्त प्राचीन सङ्कल्प पाया जाता है—"श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे" इत्यादि। योग-शब्द का अर्थ कर्मयोग निश्चित हो जाने से, यहाँ 'योगशास्त्र' पद से यही सूचित होता है कि गीता कर्मयोग-शास्त्र ही है। और 'ब्रह्मविद्यायां' पद से मालूम होता है कि वह ब्रह्मज्ञान-मूलक है। अतएव यह हर तरह प्रकट होता है कि गीता में योग शब्द का अर्थ कर्मयोग ही है और भगवान् ने अर्जुन को उसी का उपदेश किया है।

अच्छा तो अब यह देखना चाहिए कि गीता में इस मार्ग का किस प्रकार उल्लेख किया गया है, पूर्व आचार्यों ने इसका कैसा अर्थ किया है और इसका वास्तविक अर्थ क्या है। दूसरे अध्याय में, 'अशोच्या नन्वशोचस्त्वं' श्लोक से 'एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिः' श्लोक तक, सांख्य-बुद्धि का वर्णन है; और, आगे 'बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु' कह कर कर्मयोग का आरम्भ किया गया है। इसका सरल अर्थ यह है कि "तुम्हें सांख्य की यह उपपत्ति मैंने बतलाई, अब योग की सुनो।" अर्थात् ये दोनों भिन्न भिन्न मार्ग हैं। ऐसा होने पर भी श्रीशङ्कराचार्य्य से लगा कर प्रायः सभी टीकाकार कहते हैं, कि "अब भगवान् अर्जुन को उस सांख्य-बुद्धि का साधन-भूत उपाय अर्थात् कर्मयोग बतलाते हैं" और यह अर्थ करते हैं कि भगवान् ने अर्जुन को अज्ञानी समझ कर सांख्य-बुद्धि का साधन-योग—कर्मयोग-मार्ग—बतलाया है। पर यह अर्थ कैसे होता है। क्या भगवान् ने अर्जुन से कहीं कहा है कि तुम्हें मैं इस सांख्य का साधन-योग बतलाता हूँ? यदि उन्हें यह कहना ही था तो उन्हें रोक कौन सकता था? यदि अर्जुन को अज्ञानी जान कर भगवान् उन्हें कर्मयोग बतलाना चाहते तो वे स्पष्ट कह सकते थे कि तू अब तक अज्ञानी है; इसलिए तू कर्मयोग ही का आचरण कर।" ऐसा कहने में क्या उन्हें कुछ भय था? परन्तु ऐसी कल्पना के लिए कोई आधार नहीं। टीकाकारों ने स्वयं अपने ही मन से पहले तो यह कल्पना कर ली कि 'योग' सांख्य का साधन है; और फिर ज्योंही उन्होंने 'योग' शब्द देखा त्योंही उसके साथ 'साधनभूत' अर्थ जोड़ दिया! इस कारण, 'बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु' से लगा कर दूसरे अध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समाप्ति तक यद्यपि एक ही योग का वर्णन है, तथापि टीकाकारों को उसके अनेक टुकड़े करने पड़े हैं और 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का अर्थ इस प्रकार करना पड़ा है कि 'तू अज्ञानी है, इस कारण तुझे कर्म ही करने का अधिकार है।' उन्होंने एक बात और भी की है। उन्होंने लिखा है कि अर्जुन ने यह अप्रासङ्गिक प्रश्न किया कि—"स्थितप्रज्ञस्य का भाषा?" वस्तुतः "बुद्धियोगे त्विमां शृणु" से योग-बुद्धि अर्थात् कर्मयोग का आरम्भ किया गया है। इस योग के अनुसार ही "कर्मण्येवाधिकारस्ते" और उसके आगे "योगस्थः कुरु-कर्माणि" उपदेश है। इसके बाद इस योग की व्याख्या की गई और फिर कहा गया कि जब वेद-वाक्यों में फँसी हुई तेरी बुद्धि स्थिर होगी तब तुझे यह योग—समत्वयोग—प्राप्त होगा। अर्थात् तभी अर्जुन ने स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर-बुद्धि के विषय में प्रश्न किया है। मतलब यह कि "सांख्ये बुद्धि" के आगे की "योगे बुद्धि" को सांख्य-बुद्धि का साधन मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं।

तीसरे अध्याय में अर्जुन के प्रश्न पर भगवान् ने स्पष्ट उत्तर दिया है कि—

"लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञान-योगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥"

यदि 'पुरा' शब्द का अर्थ 'पिछले अध्याय में' लिया जाय तो दूसरे अध्याय में सांख्य-बुद्धि और योग-बुद्धि का वर्णन किया ही गया है। और, यदि 'पुरा' शब्द का अर्थ 'सृष्टि के आरम्भ में' लिया जाय तो यह बात प्रकट ही है कि सांख्य और योग का उपदेश अनुक्रम से सनत्कुमार आदि तथा हिरण्यगर्भ आदि को किया गया था। इनके अवलम्बनकर्त्ता ज्ञानयोगी और कर्मयोगी भी भिन्न भिन्न निष्ठावाले कहलाते हैं। 'निष्ठा' शब्द का अर्थ अन्तिम स्थिति या अवस्था है। परन्तु गीता में आयु बिताने का वही मार्ग विवक्षित है जिसके अनुसार जीवन बिताने से अन्त में मोक्ष मिलता है। श्रीशङ्कराचार्य्य ने भी निष्ठा का अर्थ 'अनुष्ठेय तात्पर्य' किया है। ज्ञान हो जाने पर सारे कर्मों को छोड़ कर ज्ञान में ही मस्त रहना ज्ञाननिष्ठा है; और ज्ञान हो जाने पर भी कर्म करते रहने का नाम कर्मनिष्ठा है। उक्त श्लोक में 'द्विविधा निष्ठा', पद स्पष्ट है, जिससे दोनों ही मार्ग स्वतन्त्र सिद्ध होते हैं। अतएव टीकाकारों का किया हुआ यह अर्थ नहीं स्वीकार किया जासकता कि ज्ञाननिष्ठा का अधिकारी होने के पहले उसकी प्राप्ति का साधनभूत योग अथवा कर्मनिष्ठा है, और जो तबतक ज्ञान के पात्र नहीं वे कर्मयोगी हैं। वास्तव में दोनों निष्ठायें स्वतन्त्र हैं। गीता में एक का साधन दूसरी को मानने के लिए कहीं आज्ञा नहीं है। यदि ज्ञान का साधन योग होता तो द्विविधा निष्ठा कहने की ज़रूरत ही न थी। फिर, एक ही ज्ञाननिष्ठा का उल्लेख किया जाता, क्योंकि साधनों को निष्ठा में कहीं गिनाया ही नहीं। साधन यदि निष्ठा हो सकते हैं तो दो ही क्यों, हज़ारों निष्ठायें हो जायँगी। साधन एक या दो ही नहीं; वे तो अनेक हैं। तब साध्य को भी निष्ठा और साधन को भी निष्ठा कह डालने से साध्य-साधन की योग्यता में भेद ही न रह जायगा। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। वास्तव में गीता के उक्त श्लोक का यह अर्थ नहीं कि कर्मयोगियों की योगनिष्ठा, ज्ञानयोगियों की सांख्यनिष्ठा का साधन है। 'द्विविधा' का मुख्य अर्थ स्थिर रख कर दो स्वतन्त्र निष्ठायें मानना ही उचित है।

चतुर्थ अध्याय के अन्त में जब भगवान् ने योगावलम्बन के विषय में यह उपदेश दिया है कि—

"तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥"

तब पाँचवें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने एक ही मार्ग पूछा—

"संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥"

इसका उत्तर भगवान् ने अर्जुन को इस प्रकार देकर एक ही निश्चित मार्ग बतलाया—

"संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते"॥

मोक्षदायक यद्यपि दोनों मार्ग हैं तथापि कर्मयोग की योग्यता विशेष है। कहने की आवश्यकता नहीं, यहाँ संन्यास का अर्थ सांख्य और योग का अर्थ कर्मयोग है। संन्यास और कर्मयोग (सांख्य और योग) यदि पृथक् न होते, और टीकाकारों के मतानुसार योग अर्थात् कर्मयोग संन्यास का साधन (सांख्य का साधन) होता, तो भगवान् के "निःश्रेयसकरावुभौ" इस उत्तर में अनौचित्य आ जाता। और, यदि दो स्वतन्त्र मार्ग पहले ही से प्रचलित न होते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो—"यच्छ्रेय एतयोरेकं" इस प्रश्न का उत्थान ही न होता। अर्थात् दोनों मार्गों को स्वतन्त्र ही मानना होगा।

टीकाकारों को इस बात का पक्का निश्चय कर लेने से कि एक दूसरे का साधन है, बड़ी दिक़्क़त में फँसना पड़ा है। इसी से वे किसी तरह अपने अर्थ की सङ्गति लगाने के लिए बाध्य हुए हैं। इसीसे उन्हें कहना पड़ा है कि अर्जुन को अज्ञानी देख कर ही भगवान् ने वैसा कहा—अर्थात् एक दूसरे का साधन है। पर इस जोड़-तोड़ से भी काम नहीं चल सकता, क्योंकि श्लोक के उत्तरार्द्ध में—तयोरतु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते—कर्मयोग की श्रेष्ठता स्पष्ट बतलाई गई है। जब इस प्रकार टीकाकारों को साध्य की अपेक्षा साधन ही को श्रेष्ठ मानना पड़ा तब उन्होंने 'विशिष्यते' पद को अर्थवाद—केवल स्तुति—कह दिया। परन्तु गीता पर ध्यानपूर्वक विचार करने वालों को इस 'विशिष्यते' पद में अर्थवाद नहीं देख पड़ता। अच्छा, यदि कोई पूछे कि इसमें अर्थवाद है ही क्यों? तो इसका उत्तर कुछ टीकाकार यह देते हैं कि अज्ञानी अर्जुन को कर्म करने के लिए उत्साहित करना था। इस कारण भगवान् ने कर्मयोग की तारीफ़ कर दी! इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् ने अपने प्यारे भक्त को उपदेश देते समय धोखे में डाला! यदि अर्जुन को सिर्फ़ इसी कारण कर्म करने के लिए उत्साहित करना था कि वह अज्ञानी है, तो भगवान् ने उनसे यह बात साफ़ साफ़ क्यों न स्पष्ट कह दी। छिपाने की ज़रूरत क्या थी?

पूर्वोक्त श्लोक को खींच खाँच कर उसका वैसा अर्थ करने के लिए कुछ भी आधार नहीं। सच बात तो यह है कि गीता के अनुसार संन्यास और कर्मयोग—सांख्य और योग—दोनों ही स्वतन्त्र और एक सी मोक्षदायक निष्ठायें हैं; परन्तु कर्मयोग में कुछ विशेषता है। इसी से भगवान् ने वही मार्ग अर्जुन को बतलाया। इस मार्ग की विशेषता, आगे चल कर, गीता से ही बतलाई जायगी।

इसी अध्याय में आगे "सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः" श्लोक है। उसमें स्पष्ट लिखा है—"एकमपि आस्थितः सम्यक्" (यदि एक का भी भली भाँति आचरण करे तो)। इससे भी सिद्ध होता है कि सांख्य का साधन योग नहीं, किन्तु वह स्वतन्त्र है। आगे दोनों मार्गों की भिन्नता और भी स्पष्ट कर दी गई है—यथा, "यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते"—जो पद सांख्यों को मिलता है वही योगियों को भी मिलता है। सारांश, गीता में सांख्य और योग, अथवा ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा, दोनों मार्ग स्वतन्त्र और एक से मोक्षदायक माने गये हैं; हाँ, कर्मयोग में कुछ विशेषता है। इसी से भगवान् ने अर्जुन को उसी का उपदेश किया है। गीता का प्रधान तात्पर्य यही है।

अच्छा तो कर्मयोग में विशेषता क्या है और क्यों है? इसका उत्तर देने के पहले, संक्षेप में, यह बतला देना आवश्यक है कि गीता-प्रतिपादित निष्ठायें कुछ नई नहीं हैं। वे प्राचीन समय से प्रचलित हैं और वही वैदिक धर्म के दो सनातन मार्ग हैं।

सृष्टि के आरम्भ में भगवान् ने हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मा को सृष्टि रचने की आज्ञा दी। ब्रह्मा से मरीचि आदि सात मानस पुत्र हुए। उन्होंने सृष्टि-क्रम को अच्छी तरह जारी रखने के लिए योग अर्थात् कर्ममय प्रवृत्ति-मार्ग का अवलम्बन किया। दूसरे मानसपुत्रों ने (सनत्कुमार आदि ने) उत्पन्न होते ही निवृत्ति-मार्ग अर्थात् संन्यास-मार्ग का अवलम्बन किया। शान्तिपर्व में इस प्रकार दोनों मार्गों की उत्पत्ति बतला कर स्पष्ट कह दिया गया है कि मोक्ष की दृष्टि से ये दोनों मार्ग समान बल वाले, अर्थात् वासुदेवरूपी एक ही परमेश्वर की प्राप्ति करा देने वाले, भिन्न भिन्न और स्वतन्त्र हैं। वहाँ यह भेद नहीं किया गया कि योग के मूल प्रवर्तक हिरण्यगर्भ एवं सांख्य के कपिल हैं; और न यही कहीं बतलाया गया कि आगे हिरण्यगर्भ ने कर्मों का परित्याग कर दिया। प्रत्युत सृष्टि-चक्र का सिलसिला अच्छी तरह जारी रखने के लिए देवताओं से यह स्पष्ट कह दिया गया है कि कर्म करते जाओ। इससे सिद्ध हुआ कि सांख्य और योग दोनों मार्ग मूल से ही स्वतन्त्र हैं।

शुकानुप्रश्न में—

"द्वाविमावथ पन्थानौ यस्मिन् वेदाः प्रतिष्ठिताः।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तिश्च विभाषितः॥"

यह श्लोक गीता के "लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा" की जोड़ का है। इससे यही तात्पर्य निकलता है कि ये दोनों मार्ग भिन्न भिन्न हैं और पहले ही से स्वतन्त्रतापूर्वक—एक दूसरे के साधन के रूप में नहीं—चले आ रहे हैं। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गों से गये हुए महात्माओं के उदाहरण भी हैं; जैसे वसिष्ठ, जनक, व्यास, जैगीषव्य आदि योग (कर्मयोग) निष्ठा वाले हैं; और शुकाचार्य्य, याज्ञवल्क्य आदि संन्यास-निष्ठा वाले।

उपनिषदों में मुख्य करके सांख्य या ज्ञानयोग ही का विचार है। यद्यपि उनमें योग (कर्मयोग) का वर्णन नहीं तथापि कुछ स्थानों में, जैसे ईशावास्य में, इसी कर्मयोग, अर्थात् ज्ञानमूलक कर्मयोग, का विवेचन है। वहाँ "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" का प्रतिपादन करके "विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह"—इस प्रकार ज्ञानकर्मसमुच्चय का वर्णन है। शङ्कराचार्य्य ने इस उपनिषद् के व्याख्यान में इन दोनों मतों का खुलासा भिन्न भिन्न अधिकारी मान कर किया है और विद्या तथा अविद्या का अर्थ भी विभिन्न ही किया है। परन्तु उनकी यह बात समझ में नहीं आती। यथार्थ में ज्ञानकर्मसमुच्चय का प्रतिपादन ही इस उपनिषद् में है और इसका "त्यक्तेन भुञ्जीथाः" गीता के "असक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर" के समान ही है। इसी तरह "न कर्म लिप्यते नरे" भी गीता के "लिप्यते न स पापेन" के समान है। इससे सिद्ध है कि ईशावास्य में भी वही उपदेश है जो गीता में है।

छान्दोग्योपनिषद् के अन्तिम प्रपाठक में भी ब्रह्म-विद्या-सम्प्रदाय का आरम्भ—"एतद्धै ब्रह्मा प्रजापतये"—इस प्रकार करके, इसके अनन्तर परम्परा बतलाई गई है। वहाँ—"कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानः धार्मिकान् विदधत्"—इत्यादि कह कर जो यह प्रतिपादन किया गया है कि "स खलु प्रवर्तयन् यावदायुषम् ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते"—उसका सम्बन्ध कर्मयोग अर्थात् प्रवृत्ति-मार्ग ही से है। वहाँ संन्यास का तो नाम ही नहीं।

ब्रह्म-विद्या-सम्प्रदाय को प्रवर्तक मान कर जो परम्परा दी हुई है उसमें भी कर्म करते रहने वाले ही अनेक देख पड़ते हैं। व्यासदेव ने शुक को—

"एषा पूर्वतरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते।
ज्ञानवानेव कर्माणि कुर्वन् सर्वत्र सिध्यति"॥

इस ज्ञान-युक्त कर्म ही का उपदेश किया है और इसी से सिद्धि की प्राप्ति बतलाई है। इस प्रकार वहाँ भी प्रवृत्ति-मार्ग ही का प्रतिपादन है।

इसमें सन्देह नहीं कि स्मृतियों में कर्मत्यागरूपी चतुर्थ आश्रम की बड़ाई है, पर उसके साथ ही वैकल्पिक रीति से जनक आदि का ज्ञान-युक्त कर्मयोग भी वर्णित है। स्मृतियों में आद्य मनुस्मृति के छठे अध्याय में कहा गया है कि क्रमशः ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ आश्रमों को पार करके मनुष्य कर्मत्यागरूप चतुर्थ आश्रम ग्रहण करे। किन्तु जब यति-धर्म का निरूपण समाप्त हो गया है तब यह प्रस्तावना की गई है कि—"यह यतियों अर्थात् संन्यासियों का धर्म हुआ; अब मैं वेद-संन्यासियों का कर्मयोग बतलाता हूँ"। इसके आगे गार्हस्थ्य-धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन करके संन्यास की वैकल्पिक निष्काम गार्हस्थ्य-वृत्ति के कर्मयोग का वर्णन है। आगे, बारहवें अध्याय में, इसी का नाम "वैदिक कर्मयोग" बतला कर लिखा गया है कि यह मार्ग भी चतुर्थ आश्रम के समान ही मोक्षदायक है। अन्यान्य स्मृतियों और धर्मसूत्रों में भी इस मार्ग का वर्णन है; पर इस छोटे से निबन्ध में उन सब का समावेश नहीं किया जा सकता।

ब्रह्मसूत्र उपनिषदों ही के विचारों के अनुयायी हैं। उनमें यद्यपि इस कर्मयोग का विचार नहीं किया गया, सांख्य का ही विचार किया गया है, तथापि उपनिषदों में 'ईशावास्य' के समान ब्रह्मसूत्रों में भी 'स्तुतयेऽनुमतिर्वा'—यह विकल्प करके कर्म करने की अनुमति दी गई है। सिद्धान्त-पक्ष का 'तुल्यं तु दर्शनं' सूत्र भी कर्मयोग की तुल्यता दिखलाने वाला है। इसके अतिरिक्त—'विहितत्वाच्च आश्रमकर्मापि' इस सूत्र का अर्थ भी कर्मयोग-प्रधान किया जा सकता है। 'यावदधिकारम्' सूत्र में अधिकारियों के लिए कर्म्मों का उपदेश तो है ही; प्रश्न केवल यही रह जाता है कि अधिकारी हैं कौन? स्मरण रहे, ब्रह्मसूत्रों में कर्मयोग का विचार न रहने पर भी कुछ सूचनायें उस विषय की दृग्गोचर होती हैं। ब्रह्मसूत्रों का विषय तो केवल उपनिषदों का विचार करना है। उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों में सांख्य या ज्ञान का विचार है। उनमें योगमार्ग-विषयक यह विचार नहीं किया गया कि ज्ञानी पुरुष को जगत् के कर्म क्यों और किस प्रकार करने चाहिए। यह विचार, अर्थात् कर्मयोग का विचार, गीता में किया गया है; और यही गीता की अपूर्वता है। इसी से गीता को योगशास्त्र अथवा कर्मयोग-शास्त्र कहते हैं।

इस उपपादन से यह बात ध्यान में आ जायगी कि ये दोनों—ज्ञानयोग और कर्मयोग—मोक्ष के स्वतन्त्र मार्ग हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें साध्य-साधन-भाव नहीं। महत्त्व की बात यही है। जब एक बार यह सिद्ध हो गया कि गीता में अर्जुन को जो योग बतलाया गया है वह कर्मयोग ही है, और वह ज्ञान-योग का साधन नहीं, किन्तु स्वतन्त्र एवं ज्ञानयोग के ही समान मोक्षदायक है, तब इस बात को सिद्ध करने में विशेष कठिनाई नहीं रह जाती कि पूरी गीता इसी कर्मयोग का प्रतिपादन करने वाली है। गीता-रहस्य के प्रणेता ने समग्र गीता का कर्मयोग-प्रधान अर्थ विस्तारपूर्वक बताया है। इस निबन्ध में उसका दिग्दर्शन भी करना शक्य नहीं। अतः अब यह देखिए कि गीता में जो 'कर्मयोगो विशिष्यते' कहा गया है उसका कारण क्या है।

कर्मयोग शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं—(१) चातुर्वर्ण्य के यज्ञ-याग आदि श्रौत-स्मार्त कर्म करने से मोक्ष मिलता है। यह मीमांसकों का पक्ष है, जो गीता को मान्य नहीं। इसी से 'यामिमां पुष्पितां वाचं' में इसकी निन्दा की गई है। (२) चित्तशुद्धि के लिए कर्म करना चाहिए—यह ज्ञान का पूर्वाङ्ग है; परन्तु यह भी गीता का कर्मयोग नहीं। (३) अपनी आत्मा के कल्याण का मार्ग जिसे विदित हो गया, उस ज्ञानी पुरुष को भी चातुर्वर्ण्योक्त युद्ध आदि सभी कर्म निष्काम-बुद्धि से करते जाना चाहिए—यही गीता का कर्मयोग है। ज्ञान से इसका विरोध हो ही नहीं सकता, क्योंकि इसका आचरण निष्काम-बुद्धि से किया जाता है।

इस तत्त्व को गीता मानती है कि ज्ञान से मोक्ष मिलता है और यह भी उसे मान्य है कि ज्ञानी मनुष्य को स्वयं अपने लिए कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। 'यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च,' 'तस्य कार्यं न विद्यते', अथवा 'ज्ञानामृतेन तृप्तस्य', 'नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यम्' इत्यादि बातें गीता को मान्य हैं। तो फिर प्रश्न यह है कि कर्म किये ही क्यों जायँ? इस पर गीता का उत्तर है कि—'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्', 'न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः'—किसी भी देहधारी के लिए सब कर्म छोड़ बैठना शक्य नहीं। खाना, पीना, सोना, बैठना यहाँ तक कि साँस लेना अर्थात् जीवित रहना भी जब कर्म ही है, तब सब कर्मों का संन्यास कैसा? ज्ञानी यदि उठना-बैठना नहीं छोड़ता, तो और कुछ, अर्थात् शास्त्रोक्त कर्म, ही क्यों छोड़ बैठे? यदि कोई कहे कि शास्त्रोक्त कर्मों का आचरण करने से बन्धन होगा, इस लिए हम कर्मों का त्याग करते हैं, तो गीता खुल कर कह रही है कि बन्धन कर्म में नहीं, कर्ता की आसक्त बुद्धि या सङ्ग में है। इस लिए 'आसक्ति छोड़ कर—सङ्ग छोड़ कर—कर्म करो'। गीता कर्म नहीं छुड़ाती—छुड़ाती है सिर्फ़ आसक्ति बुद्धि को। 'तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर', 'कुर्याद् विद्वान् तथा असक्तः', 'सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च कर्तव्यानि', 'यस्य नाहङ्कृतो भावो', 'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः' 'लिप्यते न स पापेन', 'यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः', 'त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं' इत्यादि कथन गीता का है। अतः जब ज्ञानी पुरुष का खाना-पीना आदि कुछ भी नहीं छूट सकता, तब वह अन्य शास्त्रोक्त कर्म्म ही क्यों छोड़ दे? ज्ञानी पुरुष को उचित है कि आसक्ति छोड़ कर शास्त्रोक्त कर्म करे। ज्ञानी को इनके बन्धन से कुछ भी भय नहीं। स्मरण रहे, गीता को संन्यास से परहेज़ नहीं; उसे तो संन्यास की बड़ी आवश्यकता है; क्योंकि गीता का कथन है 'न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन' अर्थात् कर्मयोगी को सङ्कल्प-संन्यास करना ही चाहिए। परन्तु कर्मों का नहीं; कर्म-फल और आसक्ति का—

"यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥"

अथवा 'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा' इत्यादि से, और ऊपर दिये हुए अवतरणों से, सिद्ध है कि बुद्धि में संन्यास करके कर्म करने की ही आज्ञा गीता देती है।

यदि कोई कहे कि सब कर्मों का त्याग शक्य नहीं तो जितना बन पड़े उतना ही कर्म छोड़ देने में क्या हानि है? इस पर गीता पूछती है कि इसकी ज़रूरत ही क्या? यदि कहा जाय कि कर्म को छोड़ कर संन्यास लिये बिना मोक्ष न मिलेगा तो सिद्धान्त यही है कि ज्ञानी को ज्ञान से मोक्ष मिलता है, कर्मत्याग से नहीं। कर्म करते करते ही सिद्धि हो जाती है, जैसे "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।" इस पर कहा जा सकता है कि जब ज्ञानी को मोक्ष के लिए कर्मों की अपेक्षा है ही नहीं, तब उनको करने का आग्रह क्यों किया जाता है? इस पर गीता का उत्तर है कि 'तस्य कार्यं न विद्यते' उसे स्वयं अपने लिए कुछ भी करना-धरना नहीं। इसी से अब उसे जगत् के लिए कर्म करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना चाहिए। जो स्वयं कृतकृत्य हो चुका है वह संसार का उपकार करने के लिए ही जीवित रहता है; और इसी लिए—अज्ञानी पुरुषों के हित के लिए—उसे मृत्यु-पर्य्यन्त कर्म करते ही रहना चाहिए। सांख्य-मार्ग की अपेक्षा कर्मयोग-मार्ग में यही विशेषता है। इसके अनुष्ठान से लोकहित-सम्बन्धी सभी कर्म बिना किसी आपत्ति के किये जा सकते हैं। सांख्यमार्गीय ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान का उपयोग केवल अपने ही लिए करते हैं; परन्तु कर्मयोगी, स्वयं सिद्ध होकर भी, समस्त संसार का उपकार करने से नहीं चूकते। इसी लिए जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण का मत है कि "कर्मयोगो विशिष्यते"—अर्थात् कर्मयोगी श्रेष्ठ हैं और कर्मयोग-मार्ग ही सब लोगों के लिए अधिक श्रेयस्कर है। इसी से भगवान् ने अर्जुन को कर्मयोग-मार्ग का उपदेश किया है। स्वयं राजा जनक ने भी कहा है—"मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन"—परन्तु अपने राज्य के सब व्यवहारों को वे यथोचित रीति से करते थे। इसका कारण उन्होंने स्वयं ही बतलाया है—

"देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च भूतेभ्योऽतिथिभिः सह।
इत्यर्थं सर्व एवैते समारम्भा भवन्ति वै।"

इसी से गीता ज्ञानियों को कर्म करते रहने का उपदेश करती है।

प्रकृति के नियमानुसार कर्म किसी के भी छूट नहीं सकते। कर्मों का आचरण सब लोगों के लिए यद्यपि अपरिहार्य है, तथापि ज्ञानियों को उनके बन्धन का भय नहीं; क्योंकि बन्धन कर्म में नहीं, किन्तु कर्त्ता की आसक्त-बुद्धि के कारण होता है।

ज्ञानी पुरुष जब मुक्त हो जाते हैं तब उन्हें स्वयं अपने लिए इस संसार में कर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु अन्य अज्ञानी जीव उन्हीं पर अवलम्बित रहते हैं। अतएव उनके हित के लिए ज्ञानियों को कर्म करते ही रहना चाहिए। इसी को गीता 'लोकसंग्रह' कहती है। यहाँ संग्रह-शब्द का अर्थ सञ्चित करना, पालना, रखना, नियमन करना, पोषण करना इत्यादि होता है। अतएव लोक-संग्रह का यह अर्थ है कि "लोगों को एकत्र संबद्ध करके इस रीति से उनका पालन-पोषण और नियमन करे कि उनकी परस्पर अनुकूलता से उत्पन्न होने वाली समर्थता तथा संघशक्ति उनमें आ जाय, एवं उसके द्वारा उनकी सुस्थिति स्थिर रख कर उन्हें श्रेयःप्राप्ति के मार्ग में लगा दे"। लोक-संग्रह में 'लोक' शब्द का अर्थ केवल मनुष्य ही नहीं; प्रत्युत मनुष्य के साथ ईश्वर-निर्मित्त भूलोक, सत्यलोक, पितृलोक इत्यादि सभी लोकों तथा संसार के सभी प्राणियों का समावेश उसमें हो जाता है। स्मरण रहे, राजा जनक के "देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च" इत्यादि वाक्यों का यही अर्थ है।

इसी लोक-संग्रह की दृष्टि से कर्म करने का उपदेश अर्जुन को (उन्हीं को क्यों सभी ज्ञानियों को) किया गया है। इस विषय में भगवान् ने स्वयं अपना उदाहरण देकर साफ़ साफ़ बतला दिया है कि यद्यपि ज्ञानियों को निज के लिए कर्म करने की आवश्यकता नहीं, तथापि उनको कर्म करते ही रहना चाहिए। इन कर्मों से उनकी मुक्तावस्था में किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती। भगवान् कहते हैं "न मे पार्थास्ति कर्तव्यं × × × वर्त एव च कर्मणि"—यदि मैं कर्म न करूँगा तो सब लोग नष्ट हो जायँगे—"उत्सीदेयुरिमे लोकाः"—और मैं प्रजानाशक समझा जाऊँगा। भगवान् को स्वयं अपने लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं, परन्तु विश्व के समस्त व्यवहार जारी रखने के लिए उनको अवतार-धारण आदि कर्म करना ही पड़ता है। यही अधिकार ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त है; क्योंकि वे भी स्वयं ईश्वर के ही समान पूर्णता को पहुँच जाते हैं। इसी लिए यह स्पष्ट कहा गया है—

"सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तः चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥"

ज्ञानी पुरुष संसार में श्रेष्ठ माना जाता है। वह जैसा आचरण करता है वैसा ही आचरण अन्य लोग भी करते हैं और जो बात उसको सत्य मालूम होती है उसी को अन्य जन सत्य मान कर उसी के अनुसार बर्ताव करते हैं। इस बात की ओर ध्यान देकर ज्ञानी जनों को लोकसंग्रहरूपी अपने सांसारिक कर्मों से कभी पराङ्मुख न होना चाहिए—

"न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥"

ज्ञानी और अज्ञानी के व्यवहार में भेद यही है कि प्रकृति के द्वारा जो कर्म हुआ करते हैं उस विषय में मूढ़ मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं इन्हें स्वयं ही करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु तत्ववेत्ता जानते हैं कि—"गुणा गुणेषु वर्तन्ते"—इस लिए वे उनमें आसक्त नहीं होते । परन्तु इस बात को भूल न जाना चाहिए कि यह भेद आसक्ति का है, कर्मत्याग का नहीं । ज्ञानी पुरुषों में अपने-पराये का भेद-भाव नहीं रहता; उनकी बुद्धि सम हो जाती है । उन लोगों की वृत्ति ऐसी हो जाती है कि 'तुल्यनिन्दास्तुतिः', 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च', 'सर्वभूतहिते रतः" इत्यादि । इस लिए उनका आचरण समाज में सब लोगों के लिए आदर्श और प्रमाणभूत माना जाता है । वही समाज के सच्चे मार्गदर्शक होते हैं । अतएव भगवान् ने अर्जुन को गीता में कर्मयोग के आदेशानुसार समबुद्धि रखने तथा आसक्ति के त्याग का उपदेश किया है और अर्जुन को निमित्त बना कर सब लोगों को यही बताया है कि जब इस संसार में कर्म करना किसी से भी नहीं छूट सकता तब अपने अपने धर्म के अनुसार, अभिमान-रहित बुद्धि से, फलाशा छोड़ कर, कर्तव्य करते रहने और परमेश्वर में विरक्तभाव-पूर्वक चित्त स्थिर करने से ही मनुष्य का आत्यन्तिक हित हो सकता है—

"मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥"

गीता-रहस्य के मुख्य प्रतिपाद्य विषय का संक्षिप्त विवेचन यहाँ तक हो चुका । अब केवल एक बात का विचार करना बाक़ी है । यद्यपि यह बात अधिक विवादग्रस्त नहीं तथापि इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन करा देना आवश्यक प्रतीत होता है । भगवद्गीता में ज्ञान और कर्मयोग के समान भक्ति का भी विस्तृत निरूपण है । परन्तु जिस प्रकार सांख्य और योग दो स्वतन्त्र निष्ठायें हैं उसी प्रकार भक्ति कोई निष्ठा नहीं । वह कर्मयोग का केवल साधन है । 'सर्वभूतों में एक ही परमात्मा है'—इस तरह का परमेश्वर-सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीव्र बुद्धि की आवश्यकता होती है और यह बुद्धि सभी में नहीं रहती । यद्यपि सर्वसाधारण लोगों में इतनी तीव्र बुद्धि का होना सम्भव नहीं, तथापि उनमें श्रद्धा, विश्वास, प्रेम आदि मानसिक भाव स्वाभाविक होते हैं । इस कारण ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रख कर कर्म करते रहने से ईश्वर उन लोगों को वही बुद्धि-योग-प्रदान करता है जिससे ईश्वर-विषयक सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है और मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो जाता है—'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।' इसी लिए भगवान् ने कहा है—

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः तेपि यान्ति परां गतिम् ॥"

सर्वसाधारण लोगों ही के लिए गीता में निर्गुण तथा अव्यक्त परमेश्वर की अनेक सगुण तथा व्यक्त विभूतियों का वर्णन है । उसमें स्पष्ट कह दिया गया है कि किसी भी प्रतीक को लेकर, भक्तगण, अनन्य-भक्ति के साथ उसे परमेश्वर मान कर, उस पर श्रद्धा करते हैं जिससे उनकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है । जिनमें न तो ज्ञान है न श्रद्धा उनके लिए गीता का कथन है कि "अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति" । गीताप्रतिपादित भक्ति कोई स्वतन्त्र मार्ग नहीं; वह स्वधर्मानुसार कर्माचरण करते रहने का और ज्ञानप्राप्ति का एक सुलभ साधन है । भगवान् ने ज्ञान, भक्ति और कर्म, इन तीनों का एकीकरण एक ही श्लोक में इस प्रकार कर दिया है—

"मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥"

इसमें ज्ञानमूलक तथा भक्तिप्रधान निष्काम कर्मयोग का ही उपदेश है ।

हिन्दी में विराम-चिंह्नो का दुरुपयोग ।

अँगरेज़ी भाषा की शिक्षा के कारण हिन्दी में उसके विराम-चिह्नों का उपयोग होने लगा है । यह सुधार हिन्दी के सिवा, और दूसरी आर्य-भाषाओं में भी हुआ है; पर यहाँ उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं है । हम यहाँ इस विषय पर भी कुछ नहीं कहते कि इन विराम-चिह्नों से हिन्दी को क्या लाभ अथवा हानि हुई है । इस लेख में हम केवल यही बताना चाहते हैं कि हिन्दी की अधिकांश पुस्तकों और सामयिक पत्रों में इन विराम-चिह्नों का दुरुपयोग होता है ।

विराम-चिंह्नों के विषय पर हिन्दी में किसी ने विशेष रूप और विस्तार से विवेचन नहीं किया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर अधिकांश विराम-चिह्नों के उपयोग में लेखक लोग एकमत नहीं हैं; इस लिए केवल हिन्दी जानने वाले इनका उपयोग करते समय बहुधा भूलें कर डालते हैं, जिनका फल यह होता है कि कई एक लेखों के यथार्थ अर्थ-बोध में पाठकों को भ्रम हो जाता है।

सब से अधिक दुरुपयोग आश्चर्य-चिह्न का होता है जो प्रायः प्रत्येक सम्बोधन-पद के साथ लगा दिया जाता है; जैसे "मित्र! आप से मैं एक बात कहना चाहता हूँ।" इस प्रकार के वाक्यों में जब तक कोई तीव्र मनोविकार सूचित करने का प्रयोजन न हो, तब तक निरे सम्बोधन में आश्चर्य-चिह्न का उपयोग भ्रामक है। हाँ, यदि कोई यह कहना चाहे कि "मित्र! इस समय मेरी लाज तुम्हारे ही हाथ है!", तो "मित्र" के साथ आश्चर्य-चिह्न उचित होगा। नई प्रणाली के पत्रों में "श्रीमन्"!, "प्रियवर"!, "मान्यवर महोदय"!, प्रभो"!, आदि शब्दों के साथ आश्चर्य-चिह्न देकर लेखक की रुचि पर अवश्य आश्चर्य होता है! इसी प्रकार, वाक्य के अन्त में जहाँ एक भी आश्चर्य-चिह्न की आवश्यकता नहीं है, वहाँ तीन तीन चिह्न लगे हुए मिलते हैं!!! इस प्रकार के चिह्न केवल भड़कीले विज्ञापनों ही में शोभा देते हैं; जैसे, "आइए! देखिए!! लीजिए!!!" नीचे लिखे उदाहरणों में आश्चर्य-चिह्नों का उचित उपयोग हुआ है; क्योंकि उसमें लेखक ने विलायती समाचार-पत्रों और लेखकों के लेखों की जो प्रतिष्ठा सूचित की है उससे हम लोगों के चित्त में अद्भुत रस की उत्पत्ति होती है—

"सन्डे पिक्टोरियल नाम का एक समाचार-पत्र विलायत से निकलता है। वह साप्ताहिक है। विन्स्टन चर्चिल साहब ने उसमें—महायुद्ध के चार अध्याय—नामक चार लेख लिखे, उनके लिए उन्हें १५ हज़ार रुपया दक्षिणा मिली! जिन संख्याओं में उनके ये लेख निकले, उनमें प्रत्येक की २५ लाख कापियाँ बिकीं"!!! (सर०)

यदि इस समाचार को कोई विलायतवाला लिखता, तो सम्भव था कि वह इसमें आश्चर्य का एक भी चिन्ह न लगाता। सारांश यह है कि अनेक स्थानों में आश्चर्य-चिह्न के शुद्ध पर्यायी विराम (,) और पूर्ण विराम (।) ही हैं; पर लोग यथार्थ की अपेक्षा अद्भुत से अधिक रीझते हैं!

उलटे कामाओं (अवतरण-चिह्नों) के उपयोग में भी बहुधा असावधानी और भूल होती रहती है। हिन्दी में इनके उपयोग की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अँगरेज़ी में है; क्योंकि पिछली भाषा में परोक्ष भाषण (Indirect Speech) की अधिकता होने के कारण, प्रत्यक्ष भाषण को चिह्नों द्वारा सूचित किये बिना, उसका अर्थ समझने में कठिनाई होती है। ऐसी अवस्था में हम लोगों को इन चिह्नों का उपयोग एक उचित सीमा के भीतर ही करना चाहिए। अधिकांश लेखक "कहना", "पूछना", "बोलना", "बताना", आदि क्रियाओं के पश्चात् आने वाले आश्रित वाक्यों को नियम-पूर्वक इन चिह्नों के भीतर रखते हैं; परन्तु सब लोग इस बात को आवश्यक नहीं समझते। इस विषय के नीचे जो उदाहरण दिये जाते हैं उनसे जान पड़ेगा कि अवतरण-चिह्नों का उपयोग बहुत करके ऐच्छिक है—

(क) स्वामी ने उत्तर दिया—"भाई, जो मनुष्य दीन, अतिथि और साधु-सन्त का आदर और सत्कार करता, उनको यथेच्छ भोजन देता और यथा-शक्ति द्रव्य-दान देकर उनको विदा करता है, उसी का जीवन सार्थक है"।—ना० प्र० प०।

(ख) उन्होंने कहा कि नई रोशनी के हमारे सजातीय नवयुवक हम लोगों का तो नहीं; परन्तु विजातीय कवियों का अत्यधिक आदर करते हैं।—सर०।

(ग) तब गुरु ने कहा कि तुमने हमारे बिना पूछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायों का दूध क्यों पिया ? ऐसा तुम्हें न करना चाहिए। तब गुरु से—"मैं दूध नहीं पीऊँगा"— ऐसी प्रतिज्ञा कर (वह) फिर गायें चराने को ले गया और लौटते समय गुरु के समीप आकर प्रणाम किया।—विद्यार्थी।

इनमें के तीसरे उदाहरण में यह विशेषता है कि आश्रित वाक्य मुख्य वाक्य के पूर्व और उसके कुछ शब्द पश्चात् आया है। ऐसी अवस्था में आश्रित वाक्य को, स्पष्टता के लिए, अवतरण-चिह्नों के बीच में रखना आवश्यक है। इसके पूर्व जो आश्रित वाक्य आया है वह यथा-स्थान लिखा गया है; इसलिए उसे अवतरण-चिह्नों में रखने की आवश्यकता नहीं हुई।

कोई कोई लेखक अवतरण-चिह्नों का काम डैश (—) से लेते हैं जिसके कारण संयोजक "कि" का लोप हो जाता है; जैसे, स्वामीजी ने हँस कर कहा—लोग कुछ दिनों के लिए गृहस्थ बनना छोड़ दें तो कुछ लाभ होने की सम्भावना है।—सर०।

डैश का यह उपयोग संवाद-मय लेखों (और नाटकों) में तो सर्व-सम्मत है; परन्तु वर्णन के बीच में और विशेष कर प्रस्ताविका क्रिया (कहना, पूछना आदि) के पश्चात् जो संवाद आते हैं उनमें विराम (कामा) ही उपयुक्त जान पड़ता है; जैसे, एक दिन उपमन्यु के परीक्षार्थ गुरुजी ने कहा, वत्स उपमन्यो ! आज तुम वन में जाकर हमारी गायें चरा लाओ।—विद्यार्थी

किसी किसी पुस्तक में एक के बदले तीन तीन चिह्न लगाये जाते हैं; जैसे, वह बच्चा एक दाई को देते समय उसने कहा था,—"इसका पालन-पोषण बहुत अच्छी तरह करना क्योंकि यह विलक्षण और अमानुषी शक्ति का आदमी होगा"।—ना० प्र० प०

इस उदाहरण में "करना" और "क्योंकि" के बीच में तो लेखक ने अर्द्ध-विराम (;) छोड़ दिया; पर जहाँ अकेले एक कामा से काम निकलता था, वहाँ कामा, डैश और उलटे कामा लगा दिये ! यदि वाक्य लम्बा हो, और आश्रित वाक्य दूसरे पैरे में लिखा जाय, तो मुख्य वाक्य के अन्त में डैश लगाना ही ठीक होगा; जैसे, सब कुछ कहते कहते अन्त में उन्होंने यही कहा है कि कहाँ तक कहूँ—

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।
—ना० प्र०प०।

हम समझते हैं कि हिन्दी में अवतरण-चिह्नों का उपयोग केवल नीचे लिखे स्थानों में होना चाहिए।

(क) व्याकरण तथा तर्क के उदाहरणों में।

(ख) किसी के महत्त्व-पूर्ण वचन उद्धृत करने में।

(ग) पुस्तक, समाचार-पत्र, चित्र, पदवी, लेख, आदि के नामों में; जैसे, "गीतारहस्य", "पाटलिपुत्र", "वधू की सहेलियाँ", "रायबहादुर", "शिक्षा का माध्यम", आदि।

(घ) किसी शब्द अथवा अक्षर का प्रयोग केवल शब्द या अक्षर के अर्थ में होने पर; जैसे, अनुवाद के अंश में "एक" शब्द "पहाड़" के पहले रक्खा जाता तो ठीक था।

(ङ) किसी वस्तु के व्यक्तिवाचक नाम और लेखक के उपनाम में; जैसे, "अरेबिया" (जहाज़) "मधुप", इ०।

(च) अप्रचलित विदेशी शब्द में; जैसे, "रैड क्रास", "बैंटी", इ०।

(छ) किसी विशेष प्रचलित अथवा आक्षेप-योग्य शब्द या वाक्यांश में; जैसे, "बल्लमटेर", "प्रस्ताव", "बायकाट", "नाइका", "स्वतन्त्र काव्य की बेड़ियाँ", इ०।

(ज) ऐसे शब्द के लिए जिसका धात्वर्थ भी बताना हो; जैसे, विभक्ति को "विभक्त" करके लिखना चाहिए, इन्द्र "सिंहासन" पर बैठा, इ०।

हम यहाँ यह कह देना आवश्यक समझते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ऊपर लिखे नियम सर्वथा पूर्ण और निरपवाद नहीं हैं।

अर्द्धविराम (;) के उपयोग में बहुधा यह भूल होती है कि कई लेखक "इसलिए", "परन्तु", "और", "क्योंकि" से आरम्भ होनेवाले वाक्यों को सदा पूर्ण-विराम के पश्चात् लिखते हैं; जैसे, "मछलियों पर इस परिवर्त्तन का और भी जल्दी और अधिक प्रभाव पड़ता है। और कीड़े-मकोड़े आदि तो ऋतु-परिवर्त्तन के अनुसार और भी शीघ्र परिवर्त्तित हो जाते हैं"। ना० प्र० प०।

"बङ्गाली भाषा भी इस पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है। क्योंकि फ़रासीसी भाषा की तरह वह बड़ी मधुर है।—सर०। इ०।

ऊपर लिखे समुच्चयबोधक शब्दों से केवल किसी विशेष अवस्था में वाक्यों का आरम्भ हो सकता है; सर्वत्र नहीं। यदि एक लेखांश में बहुत सी युक्तियाँ देकर किसी विषय का मण्डन किया जाय और दूसरे लेखांश में उसका खण्डन किया जाय, तो इस लेखांश को भी "पर" से आरम्भ कर सकते हैं; पर छोटे छोटे वाक्यों के पर नोचना अन्याय है। इस प्रक्रिया से तो व्याकरण और न्याय के "संयुक्त वाक्यों" का अस्तित्व ही लुप्त हो जाने का डर है!

हिन्दी में कोष्ठक का प्रयोग बड़ी ही विचित्र रीति से होता है। इसके भीतर कभी कभी दो दो वाक्य रख दिये जाते हैं; पर यह विचार नहीं किया जाता कि इन वाक्यों के साथ दूसरे वाक्यों या शब्दों का कुछ सम्बन्ध मिलता है या नहीं। उदाहरण के लिए नीचे लिखा वाक्य देखिए—

"स्त्रियाँ भोजन बेगमसाहबा के सम्मुख ले जा कर खोलतीं तब दस्तरख़्वान (जिस कपड़े पर भोजन रक्खा जाता है) पर भोजन विधिपूर्वक रखतीं"।

इस वाक्य में जिस योग्यता से "दस्तरख़्वान" का अर्थ समझाया गया है, उस योग्यता के सामने "खोलतीं" और "तब" के बीच का विराम उड़ गया! फिर "सम्मुख" के पीछे आनेवाला "भोजन" उसके पहले ही आ बैठा! पर इन बातों से हमें यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है; हमारा आक्षेप कोष्ठकगत वाक्य पर है जो "दस्तरख़्वान" का समानाधिकरण है। इस वाक्य के पश्चात् "पर" शब्द पढ़ कर एक बार वैयाकरण भी चक्कर में आ जायगा! वह कहेगा कि क्या कभी वाक्य के पश्चात् भी विभक्ति अथवा सम्बन्ध-सूचक अव्यय आता है! विस्तार-भय से हम यहाँ समानाधिकरण शब्दों और वाक्यों के विषय में कुछ न लिख कर, केवल इसी वाक्य को शुद्ध करते हैं, जो इस प्रकार होना चाहिए—

"तब दस्तरख़्वान (भोजन रखने के कपड़े) पर भोजन रखतीं"। अथवा दूसरे प्रकार से, "तब दस्तरख़्वान पर (जिस कपड़े पर भोजन रखते हैं) भोजन रखतीं"। बिना इस प्रकार के परिवर्त्तन के वाक्य का अर्थ केवल अटकल ही से लगाया जायगा।

कोष्ठक के इस दुरुपयोग के अनेकों उदाहरण मिलते हैं; और ऐसा जान पड़ता है कि लोग इसे कलाई-घड़ी के समान शोभा की वस्तु समझते हैं; फिर चाहे वह ठीक समय बतलावे, चाहे ग़लत। इस दुरुपयोग का एक और उदाहरण यह है—

"इनके लिए सन् १८८४ में एक नाइट-स्कूल (रात्रि की पाठशाला) खोला गया"।

इस उदाहरण में दोनों समानाधिकरण शब्द एक ही लिङ्ग के होने चाहिए। "पाठशाला" के बदले "विद्यालय" लिखने से भूल शुद्ध हो सकती है।

कोष्ठक के समान डैश की भी दुर्गति है। यद्यपि डैश कभी कभी विराम और अवतरण-चिह्नों का पर्यायी हो जाता है, तथापि उसका यथार्थ सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोष्ठक से है और इसी के समान उसका प्रयोग होता है। दोनों में विशेष अन्तर यह है कि कोष्ठक बहुधा शब्दार्थ अथवा अतिरिक्त वर्णन में आता है और डैश कुछ अधिक सम्बद्ध विषय सूचित करता है। हिन्दी में डैश के उपयोग की बहुधा यह भूल होती है कि इसका उपाय (उपयोग ?) कहीं कहीं सीमा के बाहर हो जाता है और डैशों की भरमार से पाठकों का मन ऊब जाता है। इस विषय में सरस्वती के सम्पादक* महाशय की प्रवृत्ति सबसे अधिक दिखाई देती है। डैश के योग से बने हुए वाक्य बहुधा व्याख्यान ही की भाषा में शोभा देते हैं। इस विषय के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) अपनी इस इच्छा को—महत्त्वाकांक्षा को—प्रतिज्ञा को—सदैव जागृत रखने के लिए उसने अपने नेत्रों के सामने P अक्षर लिख रक्खा था!—विद्यार्थी।

(ख) अनेक प्रकार के व्यवहारों में से जो अनुभव हुए हैं—जो तजरुबे हुए हैं—उन्हीं के आधार पर सम्पत्तिशास्त्र के सिद्धान्त निश्चित किये गये हैं।—सं० शा०।

प्रश्नवाचक चिह्न के सम्बन्ध में भी हिन्दी में भूलें मिलती हैं। ये भूलें बहुधा दो स्थानों में होती हैं। एक भूल "बताना", "कहना", "समझाना", और "लिखना", आदि क्रियाओं के विधि-काल में होती है जिसे कुछ अर्द्ध-शिक्षित परीक्षक भूल से प्रश्न-वाचक समझ लेते हैं; जैसे, "सिकन्दर ने भारतवर्ष पर जो चढ़ाई की थी, उसका संक्षिप्त वर्णन लिखो"? दूसरी भूल उन प्रश्नवाचक शब्दों के कारण होती है जो अर्थ में केवल सम्बन्ध-वाचक हैं; जैसे, कई लोग यह नहीं जानते कि रबर कैसे बनता है? ऐसे स्थानों में प्रश्न-चिह्न के बदले पूर्ण विराम का प्रयोग करना चाहिए। कभी कभी आश्चर्य और प्रश्न के चिह्नों की आपस में मुठभेड़ हो जाती है; जैसे, वह मन में चिन्ता करने लगा कि अब मैं क्या करूँ? इस वाक्य में प्रश्न के बदले आश्चर्य का चिह्न चाहिए।

हिन्दी में कोलन (:) का स्वतन्त्र उपयोग नहीं होता; क्योंकि इससे विसर्ग का भ्रम हो जाने की सम्भावना* है; पर डैश के साथ यह चिह्न आगे आनेवाली बात की सूचना देने के लिए प्रयुक्त होता है। इस मिश्रित चिह्न (:—) के उपयोग में हम लोग कभी कभी यह भूल करते हैं कि इसका प्रयोग एक ही पैरे के भीतर कर देते हैं; जैसे, शब्द दो प्रकार के होते हैं:—सार्थक और निरर्थक। इस उदाहरण में केवल डैश चाहिए। कोलन और डैश का उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

इस लेख के लिखने में हमने नीचे लिखे मासिक पत्रों और पुस्तकों से कुछ उदाहरण चुने हैं:—

(१) सरस्वती (२) नागरी-प्रचारिणी पत्रिका।
(३) विद्यार्थी (४) सम्पत्तिशास्त्र।
(५) आत्मोद्धार।

कामताप्रसाद गुरु।

अवतार।

(१)

जो महत्तत्व बन सब में आप समाया;
खुद बन कर जिसने है ब्रह्माण्ड बनाया;

* हम समझते थे कि इससे समानार्थक शब्दों का ज्ञान पड़ता है, आशय स्पष्टतर हो जाता है और यदा कदा मनोरञ्जन भी हो सकता है। पर अब मालूम हुआ कि यह ढँग पाठकों के केवल जी उबाने का कारण होता है। स०सं०।

* इसीसे हमने लेखक महाशय के इस लेख के कोलन-डैशों (:—) में से कोलन निकाल डाले हैं। उनके कथन को स्पष्ट करने के लिए केवल इसमें और नीचे के पैरे में दोनों रहने दिये हैं। स०सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह धारण करके पञ्चतत्त्व-तन आया ;
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।*

(२)

योगीजन जिसका ध्यान न धर सकते थे;
तप करते, पर अनुमान न कर सकते थे;
वह अन्धों का दीपक विचित्र बन आया;
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

(३)

जिसको पाकर वाणी विराम पाती है;
जिस तक न पहुँच मति की गति रुक जाती है;
देखो वह निर्धन का जीवन-धन आया;
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

(४)

इन्द्रियाँ आप विषयों से खिँच जाती हैं,
मन मरा, बुद्धि की आँखें मिच जाती हैं;
यह देखो कैसा वह अचिन्त्य जन आया;
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

(५)

देखो! दिन में यह अन्धकार तो देखो!
क्या रात हुई! यह चमत्कार तो देखो!
निर्मल प्रकाश ही कृष्ण रूप बन आया!
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

(६)

अब रहा नहीं घट-मठ का प्रश्न वहाँ है,
बन गया व्योम ही घट-मठ-रूप जहाँ है;
सच्चिदानन्द ही भवानन्द बन आया;
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

(७)

परमार्थ-स्वार्थ का भेद मिटाने वाला,
यों स्वार्थ-त्याग को नाम धराने वाला,
देखो कैसा निस्स्वार्थ स्वार्थ बन आया;
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

(८)

था नहीं जहाँ कुछ वहीं हो गया सब कुछ;
हो रहा न कुछ भी वही रहा जो सब कुछ;
अवनीतल पर ही अहा श्याम घन आया!
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

(९)

लीलामय की इस छवि के दर्शन करलो;
गुम हो न जाय यह मूर्त्ति हृदय में धर लो;
यह मूर्त्ति नहीं—जड़ में है चेतन आया;
ख़ुद चित्रकार मानों स्वचित्र बन आया।

बदरीनाथ भट्ट

---

* नक्क़ाश आप अपनी ही तसवीर बन गया।" (शैदा)

भाषा की उन्नति।

(१)—हिन्दी का अभाव।

पहला अभाव—महाकाव्य (Epic Poems).
दूसरा अभाव—इतिहास (History).
तीसरा अभाव—विज्ञान-ग्रन्थ Science).
चौथा अभाव—गम्भीर लेख (Thoughtful Writings).
पाँचवाँ अभाव—पुरातत्त्व-विषयक ग्रन्थ (Archæology).
छठा अभाव—हास्यरसात्मक लेख (Humorous Writings).
सातवाँ अभाव—पुस्तक-सूची (Bibliography).
आठवाँ अभाव—अनुवाद (Translations).
नवाँ अभाव—नाटक (Dramatic Plays).
दसवाँ अभाव—समालोचना (Criticism).
एकादश अभाव—भ्रमण-वृत्तान्त (Travels).
द्वादश अभाव—व्याख्यान अथवा वक्तृता-ग्रन्थ (Speeches).
त्रयोदश अभाव—कोष (Dictionaries, Encyclopœdia)

इत्यादि, इत्यादि।

हमने इससे पहले "भारतीय पुनरुत्थान" नामक प्रबन्ध में जातीय जागृति के विषय की आलोचना, करते हुए यह बात स्पष्ट करने की चेष्टा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की थी कि जातीय जीवनी शक्ति तथा उसकी उन्नति और अवनति का पैमाना उसके साहित्य से हो सकता है। किसी जाति-विशेष की उन्नति तथा उसके साहित्य में, कार्य्यकारण-सम्बन्ध के समान, बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध विद्यमान रहता है। अवनत हुई जाति से उच्च कोटि के साहित्य की आशा करना असम्भव बात है। यह कदापि सम्भव नहीं कि नैतिक तथा आत्मिक बल से शून्य, साहस और वीरत्व के उच्च आदर्शों से विमुख, विलासिता तथा अविद्या के पङ्क में मग्न कोई जाति अपने साहित्य को संसार के सन्मुख रख कर प्रशंसा या यश को प्राप्त कर सके। पक्षान्तर में यह भी मानी हुई बात है कि यदि किसी जाति के साहित्य को देखने पर हमें यह पता चले कि वह उन्नत है तो इससे हम अवश्य इस सिद्धान्त पर पहुँच सकते हैं कि वह जाति भी या तो उन्नत है या किसी समय उन्नत अवश्य थी। विज्ञान बतलाता है कि ताप (Heat), ध्वनि (Sound), आलोक (Light), विद्युत् (Electricity), पदार्थ विशेष के स्पन्दन (Vibration) से उत्पन्न होती हैं। इसी तरह हम कह सकते हैं कि साहित्य की सृष्टि मानसिक स्पन्दन से होती है। ताप अथवा ध्वनि की सूक्ष्म अवस्था ईथर (Ether) अथवा वायु के तरङ्ग बताये जाते हैं। इसी प्रकार साहित्य की सूक्ष्म अवस्था, मानव-चित्त में उत्पन्न भाव या अनुभूति के तरङ्ग बताये जा सकते हैं।

हिन्दी की उन्नति का विधान करने, मातृभाषा को पुष्ट करने, तथा जातीय साहित्य को सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने की पुकार आज कल चारों तरफ़ सुनने में आती है। सभा-समितियों का तो कहना ही क्या, मेले-तमाशे में, रेलों और स्टीमरों पर, होटलों और क्लबों में जहाँ दो चार पढ़े-लिखे मनुष्य एकत्र हुए कि झट हिन्दी के सुधार, मातृभाषा के विस्तार इत्यादि विषयों पर विचार और तर्क होने लगते हैं। यह भी एक शुभ लक्षण है। एक मुसलमान-कवि ने कहा है—"ज़रा दस्तोबाज़ू हिलाने लगे हैं; वह सोते हैं, कुछ कुलबुलाने लगे हैं"। परन्तु इन बातों से हल्ला अधिक मचता है, काम कम होता है।

मनुष्य को जब तक अपना अभाव नहीं मालूम हो जाता तब तक वह उसके निवारण का प्रयत्न नहीं कर सकता। सबसे पहले हमें अपनी कमी का, अभाव का, आवश्यकता का ज्ञान हो जाना चाहिए। तभी हम उसकी पूर्ति के लिए यत्नवान् हो सकते हैं। इस लेख का मुख्य उद्देश हिन्दी-साहित्य के अभावों का उल्लेख करना है। हिन्दी-प्रेमियों से निवेदन है कि वे अपनी शक्ति तथा रुचि के अनुसार इन अभावों में से एक अथवा अधिक की पूर्ति के लिए यत्न करें। जाति का काम व्यक्ति अथवा श्रेणी-विशेष के द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता। अतएव हमको चाहिए कि हम सब मिल कर अपनी शक्ति तथा बुद्धि के अनुसार इस काम में लग जायँ। लड़ने का, झगड़ने का, बहस करने का, तथा अनन्त काल तक सोच-विचार करने का ज़माना गया। वर्त्तमान युग कर्म्मप्रधान युग है। हे कर्म्म-वीरो! आओ हाथ लगाओ।

(१) महाकाव्य—साहित्य का प्रारम्भ कविता से होता है। चाहे जिस जाति का साहित्य हो, उसके प्रारम्भ में पद्य, अर्थात् कविता, ही देखने में आती है। हमारे आदिम काल के दो बड़े बड़े ऐतिहासिक काव्य, रामायण और महाभारत के रूप में, स्तम्भ-सदृश विद्यमान हैं। इसी प्रकार ग्रीक लोगों के भी इलियड (Illiad), ओडिसी (Odyssey), तथा हेसियड (Hesiod), नामक महाकाव्य हैं। रोमक लोगों के भी महाकाव्य के रचयिता वर्जिल (Virgil) तथा ओविड (Ovid) हो गये हैं। अँगरेज़ी-साहित्य का प्रारम्भ सिडमन (Cœdmon) कवि से ही कहना चाहिए। बँगला-साहित्य के आरम्भ में चण्डीदास, विद्यापति, कृत्तिवास इत्यादि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवितायें देखने में आती हैं। संस्कृत में कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष इत्यादि हैं। ग्रीक लोगों में इस्काइलस (Æschylus), सफोक्लिस (Sophocles), युरिपिडिस (Euripides) हैं। लैटिन में लुक्रेशियस (Lucretius), कैटेलस (Catallus), होरेस (Horace) हैं। अँगरेज़ी में चासर, स्पेन्सर, शेक्सपियर, मिल्टन, बाइरन, स्काट, पोप, ड्राइडन से लेकर शेली, किट्स, टेनिसन तक कवियों की मण्डली विद्यमान है। अरबी में ओमर, इब्न रब्बिया, जामिल जारीर, अबू तेमान इत्यादि हैं। फ़ारसी में हकीम फ़ीरोज, अबू सालिक, अबू शकूर इत्यादि से लेकर रुदागी, फ़िरदौसी, सादी इत्यादि अनेक कवियों ने अपनी अपनी लेखनी द्वारा भाषा के भाण्डार को परिपूर्ण किया है। ऐसे अनेकानेक नाम और भी गिनाये जा सकते हैं। परन्तु इसकी कोई आवश्यकता नहीं। हमने पहले ही कहा है कि जितनी प्राचीन अथवा आधुनिक भाषायें हैं सब की उन्नति काव्य के द्वारा ही हुई है, चाहे वह भाषा आर्य्य-परिवार के अन्तर्गत हो, चाहे द्राविड़-तामील इत्यादि की तरह अनार्य्य हो। प्राचीन गद्य-लेख भी बहुत हैं—ज़ेनोफ़न, सिसरो, सफोक्लिस इत्यादि प्रधानतः गद्य-लेखक ही थे; उनकी गिनती कवियों में नहीं।

इस से यह प्रमाणित है कि साहित्य का प्रारम्भ तथा आदि-पुष्टि काव्य से होती है और काव्य का आरम्भ महाकाव्यों से होता है। संस्कृत में जो महाकाव्य के लक्षण बताये गये हैं उनसे इन महाकाव्यों की जाँच न करनी चाहिए। मेरा अभिप्राय Epic Poems से है जिनका कि पुराना अर्थ है वीर-गाथा या युद्ध-वर्णन—"A narrative of heroic actions." अब प्रश्न यह है कि हिन्दी में महाकाव्य हैं अथवा नहीं। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि संस्कृत में महाकाव्य के जो लक्षण बताये गये हैं उनमें थोड़ा सा रद्दोबदल करने से तुलसीदासजी की रामायण, चन्द वरदायी का पृथ्वीराज-रासौ इत्यादि महाकाव्य गिने जा सकते हैं। सभी साहित्यों में महाकाव्यों की संख्या थोड़ी ही होती है। उपन्यासों की तरह उनके ढेर के ढेर नहीं होते। फिर भी यही कहा जायगा कि हिन्दी में महाकाव्यों का किसी हद तक अभाव ही है।

लोग कहते हैं कि वर्त्तमान युग विज्ञान का है, कविता का नहीं। मैं इससे सम्पूर्णतः सहमत नहीं। और देशों की बात जाने दीजिए; हम देखते हैं कि भारतवर्ष के ही एक अन्य प्रान्त में "मेघनादवध," "वृत्रसंहार" और "कुरुक्षेत्र" की रचना हो सकती है; तो कोई कारण नहीं, कि हिन्दी में उसी श्रेणी के आधुनिक काव्य न लिखे जा सकें। मैं इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि वर्त्तमान युग में काव्य-रचना के मार्ग में कुछ ऐसी बाधायें हैं जो दूर नहीं की जा सकतीं। डाक्टर रवीन्द्रनाथ ने इस बात को अच्छी तरह साबित कर दिया है।

यहाँ पर एक बात और भी कहनी है। आधुनिक हिन्दी-कविता, वास्तव में, कविता कहलाने योग्य है अथवा नहीं, इसमें मुझे बहुत कुछ सन्देह है। मैं व्यक्तिविशेष की कविता को ध्यान में रख कर उसके दोष दिखाने अथवा उसकी निन्दा करने की इच्छा नहीं रखता। परन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि प्राचीन कविताओं की माधुरी तथा लालित्य आधुनिक कविताओं में कण मात्र* भी नहीं पाई जाती। तुलसीदास, सूरदास, केशवदास इत्यादि कवियों की कविता के आगे आधुनिक कवितायें ऐसी मालूम पड़ती हैं जैसे कि सूर्य्य के आगे दीपक, हीरे के आगे काँच, समुद्र के आगे गोष्पद। बहुत सी कविता तो ऐसी मालूम होती है मानों छोटे छोटे लड़कों को हिन्दी से अँगरेज़ी में अनुवाद करने के लिए कुछ जुमले दे दिये गये हों। गुण-दोष का विचार तो पीछे की बात है। सबसे पहली और

*यह बहुत बड़ी अतिशयोक्ति है—स०सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी आपत्ति तो यह है कि सुनने ही में वह अच्छी नहीं लगती। इस पर किसी को यह न कहना चाहिए—"कविता सङ्गीत तो है नहीं; उसके सुनने में अच्छा बुरा क्या?" माना कि वह सङ्गीत नहीं है। परन्तु कविता में भी सुनने योग्य बहुत कुछ होता है। संसार में श्रव्य विषय एकमात्र सङ्गीत ही नहीं।

वर्त्तमान दशा में आधुनिक कविता प्राचीन कविता के उत्कर्ष को नहीं प्राप्त कर सकती। आधुनिक कविता की भाषा में विशेष रूप से परिवर्त्तन की आवश्यकता है। जब तक ऐसा न होगा तब तक दूसरी जाति के सामने हमारी कविता का समादर भी न होगा; हम घर बैठे चाहे उसकी जितनी प्रशंसा करें। कविता की भाषा में परिवर्त्तन का होना बहुत आवश्यक है। वास्तव में प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही इस कार्य्य को कर सकते हैं; अनारी के हाथ सुधार की जगह भाषा की दुर्दशा होने की सम्भावना ही अधिक है।

आवश्यकता इन बातों की है—(१) भाषा सुललित अर्थात् सुश्राव्य होनी चाहिए। (२) "का", "की", "के", "में", "से" इत्यादि को उड़ा कर मूल शब्दों में स्वर-वर्ण के योग से अथवा कहीं कहीं समानार्थवाचक दूसरे शब्दों से काम लेना चाहिए। (३) क्रियापदों के साथ "है", "था", "होगा" इत्यादि श्रुतिकटु मालूम होते हैं। इस कारण क्रियापदों की बनावट में भी किसी न किसी प्रकार का परिवर्त्तन होना चाहिए। (४) हिन्दी में भी अँगरेज़ी तथा बँगला की तरह अमित्राक्षर छन्द (Blank Verse) की सृष्टि होनी चाहिए। (५) कम से कम कविता में उर्दू के शब्दों का व्यवहार न होना चाहिए। (६) छन्द के विषय में आधुनिक कवि अपने को अत्यधिक निरङ्कुश समझते हैं; ऐसा न होना चाहिए। नये नये छन्दों में कवितायें लिखी जायँ, कोई हानि नहीं; परन्तु छन्द भी किसी नियम के अनुसार बनें।

हमें आशा है कि हिन्दी के आधुनिक कवि इन बातों पर एक बार अवश्य ध्यान देंगे। इन परिवर्त्तनों के विषय में साहस तथा धैर्य्य की बड़ी आवश्यकता है। यह भी सम्भव है कि पहले पहल जो लोग इस काम में हाथ डालेंगे उनकी बड़ी हँसी होगी। परन्तु उन्हें इस बात का स्मरण करके धैर्य्य धरना चाहिए कि जिन बङ्किमचन्द्र और जिन मधुसूदन दत्त के नाम से आज वङ्ग-भूमि गौरवान्वित है उनकी भी पहले पहल बहुत हँसी हुई थी। कारण यह था कि भाषा को तोड़ फोड़ कर नया रङ्ग-ढँग और नई चमक-दमक लाने तथा छन्द, अलङ्कार, पद-विन्यास इत्यादि से विभूषित करने का काम सबसे पूर्व इन्हीं महाशयों ने किया था।

(२) इतिहास—हिन्दी में अच्छे इतिहास-ग्रन्थों का भी बड़ा अभाव है। इतिहास का जो अर्थ हम लोगों को लड़कपन से अब तक सिखाया गया है वह बिलकुल ही भ्रमात्मक है। इतिहास-ग्रन्थों से लोगों को साधारणतया इस तरह की शिक्षा मिलती है—"अमुक सन् में अमुक बादशाह ने अमुक राज्य जीता; अमुक राजा के पश्चात् उसके पुत्र को गद्दी मिली; अमुक बादशाह बहुत नालायक़ तथा क्रोधी था; उसने इतने आदमियों को मार डाला, इतनों के घर जलवा दिये, इतना धन लूट कर ले गया"। ऐसी बातों से मनुष्य-जाति को कुछ भी लाभ नहीं। माना कि ऐसी बातें भी इतिहास के अन्तर्गत होनी चाहिए; माना कि इनको छोड़ देने से घटनावली का सूत्र विच्छिन्न हो जाता है; परन्तु साथ ही इसके इस बात का भी विचार करना चाहिए कि हम मुख्य मुख्य बातों को छोड़ कर गौण बातों को प्राधान्य न दें। अब प्रश्न यह है कि वे मुख्य बातें कौन सी हैं। इस विषय में हमें देखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए कि देश तथा जाति के लिए राजा या बादशाह या सम्राट् ही "सब कुछ" नहीं। केवल उसकी, उसकी सभा की, उसके अमात्यों, सेनानियों, सैन्यबल, नौ-बल, राज्यविस्तार या राज्यध्वंस इत्यादि की रामकहानी से इतिहास के पत्रे भर देना ही देश का इतिहास नहीं हो सकता। देश अथवा जाति के इतिहास में मुख्य बातें वे होनी चाहिए जिनसे हमें पता लगे कि उस समय की सभ्यता, रीति-नीति, चाल-चलन कैसा था। वह कौन सी बात थी जिसकी तरफ़ मनुष्य अधिकतया झुकते थे; वे कौन कौन सी बुराइयाँ थीं जिनसे लोगों को हानि पहुँचती थी; जातीय चरित्र में क्या क्या भलाइयाँ थीं; किस विद्या में—किस कला में—जाति ने उत्कर्ष लाभ किया था; देशवासियों का धार्म्मिक विश्वास क्या था; वे किस तरह रहते थे; उनका सामाजिक तथा गार्हस्थ्य जीवन कैसा था; उन लोगों के त्यौहार, मेले-तमाशे आदि किन किन भावों तथा विचारों से उद्दीप्त होते थे। इत्यादि। विख्यात फ्रेंच दार्शनिक तथा ऐतिहासिक वालटेयर (Voltaire) ने लिखा है—"The question no longer was to inform the world in what year a prince, who did not deserve to be remembered, succeeded another barbarian like himself, in the midst of a rude and coarse nation. The business of the historian was to seek out that which deserves to be known by us—the spirit, the manners, the usage of the nations." आधुनिक इतिहास इसी ढँग पर लिखे जाने चाहिए।

इतिहास-लेखकों को सर्वदा यह बात याद रखनी चाहिए कि वे किसी के वकील नहीं हैं; किसी से उन्होंने मिहनताना नहीं लिया है। किसी जाति, सम्प्रदाय या व्यक्तिविशेष की अन्यायपूर्वक दोषी साबित करना अथवा उसकी मिथ्या प्रशंसा करना उनके लिए महा अधर्म्म है; और वैसा ही अधर्म्म है मूल घटनाओं को किसी तरह अतिरञ्जित या विकृत करना। सत्य के मार्ग पर चलते हुए, सत्य के तुलादण्ड को हाथ में लेकर, सत्य का प्रकाशन करनाही उनका धर्म्म है। इस धर्म्म से उन्हें विच्युत न होना चाहिए।

दूसरी बात है अनुसन्धान अर्थात् खोज। जो लेखक अनुसन्धान करता है उसी का लिखा इतिहास सच्चा होता है। इतिहास में ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनको हम सदियों से ध्रुव सत्य मानते आये हैं। परन्तु विचक्षण ऐतिहासिक ऐसे सत्याभासों को, अनुसन्धान और गवेषणा के द्वारा, भ्रमात्मक सिद्ध कर देता है। कई आधुनिक ऐतिहासिकों का मत है कि कलकत्ते की "काल-कोठरी" (Black Hole) केवल मनगढ़न्त है। सिराजुद्दौला की निर्दयता का एक बहुत काला धब्बा ऐतिहासिकों ने इस प्रकार अनुसन्धान के द्वारा मिटाने की चेष्टा की है। इस अनुसन्धान-कार्य्य के लिए जहाँ तक हो सके हमें देश के बाहर तथा भीतर दोनों जगह उपकरण संग्रह करना चाहिए। काव्य-नाटकादिकों से देश की रीति-रस्म, आचार-व्यवहार की बहुत सी बातें हमें मालूम हो सकती हैं। फिर, यदि, किसी जाति के साथ किसी अन्य जाति का वाणिज्य, शिक्षा, धार्म्मिक अथवा अन्य किसी प्रकार का सम्बन्ध होने के कारण एक दूसरे का एक दूसरे के देश में आवागमन रहा हो, तो दूसरी जाति के साहित्य से भी हम अपने देश की बहुत सी बातों का पता लगा सकते हैं। ग्रीक तथा चीन परिव्राजकों के लेखों से हम भारतवर्ष के विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(३) विज्ञान—विज्ञान से यहाँ पर मतलब जड़-विज्ञान से है, जिसकी उन्नति पाश्चात्य देशों ही में हो रही है। हमारे यहाँ के अधिकांश नर-नारी अँगरेज़ी न जानने के कारण विज्ञान से वञ्चित रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

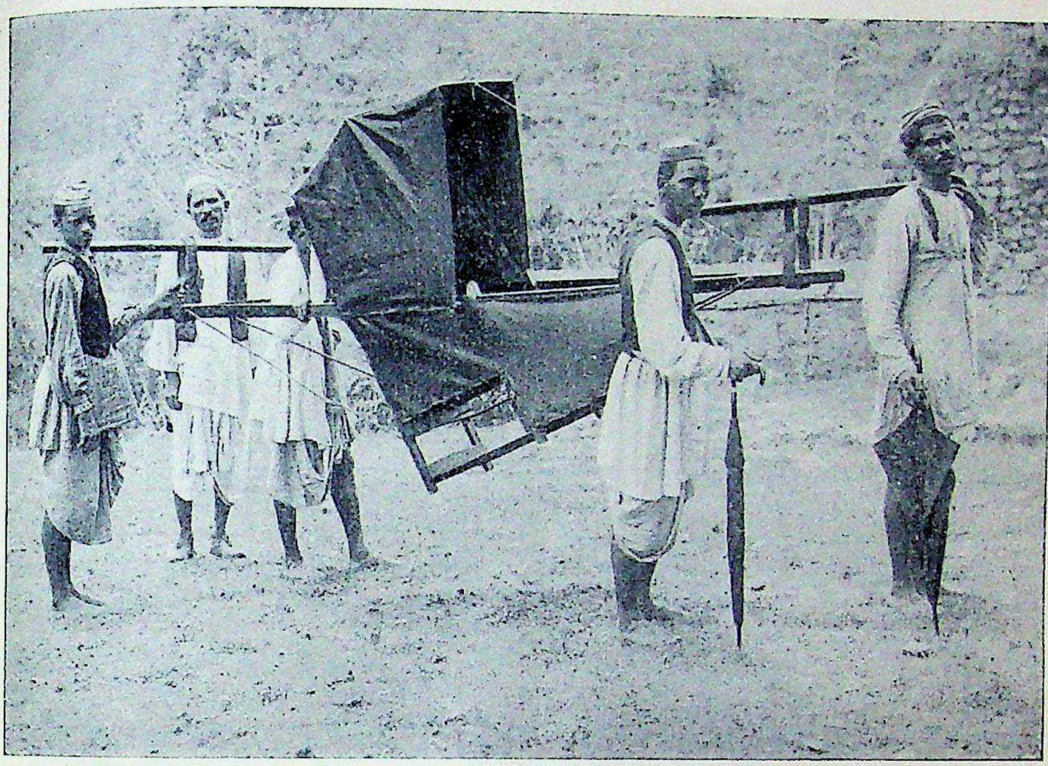

मंसूरी की डांडी ।

मंसूरी की लाइब्रेरी (पुस्तकालय) बाज़ार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जिसका फल यह होता है कि भारतवर्ष में विज्ञानोन्नति सम्यक् प्रकार से नहीं हो पाती। वर्तमान समय में इँगलेंड, फ़्रांस, जर्म्मनी, जापान, अमरीका इत्यादि देशों के वासी इस शास्त्र में, कोई अल्प कोई अधिक, उन्नति कर रहे हैं। परन्तु भारतवासियों की दाल बिलकुल ही नहीं गलती। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि इस विषय का सम्यक् प्रचार कई कारणों से नहीं हो पाता। मुख्य कारण तो यह है कि देशीय भाषाओं में विज्ञान-विषयक पुस्तकें नहीं हैं। हिन्दी, बँगला, मराठी इत्यादि भाषाओं में यदि दो चार पुस्तकें हैं भी तो वे बहुत ही छोटी तथा प्राथमिक (Elementary) अवस्था में हैं। उनसे विशेष लाभ नहीं। उच्च श्रेणी की पुस्तकों के न होने से जनता में विज्ञान की उच्च शिक्षा नहीं प्रचलित हो सकती। हमारे यहाँ के विश्वविद्यालयों से प्रतिवर्ष हज़ारों बी० एस-सी०, एम० एस-सी० निकल रहे हैं सही; परन्तु उनमें से गिने गिनाये दो चार को छोड़ कर किसी ने कुछ भी नहीं किया। कोई भी विद्या क्यों न हो, उसकी उन्नति तभी हो सकती है जब प्रतिभावान् पुरुष उसकी आलोचना करें। हमारे यहाँ की जनता की तुलना में विश्वविद्यालयों के पदवी-प्राप्त जन बहुत ही कम हैं। यह भी सम्भव है कि उनमें वैज्ञानिक प्रतिभा की बहुत कमी हो। यह भी हो सकता है कि उनको परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने तथा विज्ञान के अतिरिक्त अन्यान्य पाठ्य विषयों को अवगत करने की भी चिन्ता लगी रहती है। इसी से वे बेचारे कुछ नहीं कर पाते। विज्ञान में यदि उत्कर्ष लाभ करना है तो जन-साधारण में उसका प्रचार होना चाहिए और जन-साधारण में उसका प्रचार तब तक असम्भव है जब तक कि देशी भाषाओं में पुस्तकें न लिखी जायँ।

प्रादेशिक भाषाओं में विज्ञान-ग्रन्थ-रचना के मार्ग में एक प्रधान रुकावट है पारिभाषिक शब्दों (Technical Terms) का अभाव। परन्तु क्या इस बाधा को हम किसी तरह दूर नहीं कर सकते? मेरा विश्वास तो यह है कि हम इसे सहज ही में दूर कर सकते हैं। आज कल साहित्य-सम्मेलन की धूम है। यदि प्रत्येक सम्मेलन इस विषय को अपनी अपनी विषयसूची के अन्तर्गत कर ले और एक सुवर्ण-पदक अथवा अन्य किसी प्रकार के पारितोषिक का विज्ञापन दे तो आशा है कि बहुत से हिन्दी-प्रेमी वैज्ञानिक परिभाषा की सूची बना बना कर भेजें। फिर इन सब को किसी वृहत अधिवेशन में उपस्थित करके विद्वन्मण्डली के सन्मुख विचार किया जाय। अन्त में ग्रहणीय शब्दों की सूची समाचारपत्रों में प्रकाशित की जाय। यदि कुछ समय तक इसी प्रकार काम होता रहे तो पारिभाषिक शब्दों का अभाव दूर हो जाय।

इस विषय पर एक बात और कहनी है। आज कल मासिक पत्रों में कभी कभी वैज्ञानिक लेख निकलते हैं। परन्तु वे इतने संक्षिप्त होते हैं कि या तो जो लोग उन बातों से यथेष्ट अभिज्ञ हैं वही उन्हें समझ सकते हैं या लेखक स्वयं ही समझ सकते हैं। ऐसे लेखों से विशेष फल नहीं होता। पण्डित को पढ़ाना, अथवा धनी को धन देना, कोई अर्थ नहीं रखता। वैज्ञानिक लेखों में विस्तार की त्रुटि न होनी चाहिए। "अमुक अमुक बातें होती हैं"—कह कर चुप हो जाने से यथार्थ शिक्षा नहीं मिलती। इसके साथ—"क्यों होती है?" यह न बताने से लेख असम्पूर्ण रह जाता है। कार्य्यकारण-तत्त्व स्पष्टतः दिखाना चाहिए, क्योंकि यथार्थ विज्ञान यही है। सम्पादक महाशयों को भी चाहिए कि वे कम से कम वैज्ञानिक लेखों के लिए काफ़ी जगह देने को सर्वदा तैयार रहें।

विज्ञान-विषयक उन्नति के लिए परीक्षागार या यन्त्रशाला (Laboratory) तथा अनुसन्धान-कार्य्य (Research Work) सर्वापेक्षा आवश्यकीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इस लेख से उनका सम्बन्ध नहीं। अतएव यहाँ पर उनकी आलोचना नहीं की गई।

(४) गम्भीर लेख—इसकी तरफ़ अभी तक हमारी दृष्टि यथोचित रूप से आकृष्ट नहीं हुई। गम्भीर लेखों से मेरा अभिप्राय स्वाधीन-चिन्ताप्रसूत लेखों से है, जिनके प्रभाव से जातीय जीवन गठित होता है; जिनसे मनुष्य नये भावों, नई चिन्ताओं, के द्वारा अनुप्राणित होता है; जिनकी उद्दीपना से चिन्ताप्रणाली, सीमा का उलङ्घन करके, बहिर्मुखी होती है और नित्य नये नये सत्यों—नये नये तत्त्वों—को ढूँढ़ कर घर ले आती है। वाल्टेयर, रूसो, कोमत्, मिल, स्पेन्सर, कार्लाइल, डार्विन, गेटे, एमसन इत्यादि के लेखों के साथ मुक़ाबला करने वाले लेख जब तक न लिखे जायँगे तब तक हम अपनी भाषा को पुष्ट नहीं कह सकते।

यह बात सर्वदा स्मरण रखनी चाहिए कि हर किसी के क़लम से ऐसे लेख नहीं निकल सकते। गम्भीर दार्शनिक तथा वैज्ञानिक लेख वर्षों की एकाग्र-चिन्ता की प्रेरणा ही से उत्पन्न हो सकते हैं। उपर्युक्त मनीषियों का सारा जीवन इसी काम में व्यतीत हुआ था। तब उन्होंने ख्याति पाई थी। जिन जिन अभावों की बात मैंने कही है, अथवा कहूँगा, उनमें सबसे अधिक कठिन परिश्रम का काम यही है—क्योंकि सभी प्रकार की कठिनाइयाँ इसमें झेलनी पड़ती हैं। लेखक को चिन्ता, भाषा, शैली, शब्द इत्यादि सभी बातों में अपनी मौलिक शक्ति (Originality) का परिचय देना पड़ता है। चर्वित-चर्वण अथवा पिष्ट-पेषण का यहाँ कुछ काम नहीं। नई बातों को सोच कर, उन पर धैर्य्य के साथ विचार करके, नई भाषा में, नई शैली से, नये नये शब्दों में, संसार के सन्मुख उपस्थित करना पड़ता है। यह सुन कर किसी को आश्चर्य्य न करना चाहिए। स्वाधीन-चिन्ता की कृपा से ऐसे असंख्य नये शब्दों की सृष्टि हो सकती है जो वर्त्तमान दशा में हिन्दी में नहीं हैं। गम्भीर लेखों के प्रभाव से मनुष्य असार विषयों को छोड़ कर गम्भीर विषयों की आलोचना में प्रवृत्त हो जाते हैं। मनुष्य जासूसी क़िस्सों को छोड़ कर इतिहास, दर्शन, अर्थशास्त्र इत्यादि में मनोनिवेश करते हैं। इससे मस्तिष्क पुष्ट होता है, चिन्ताशक्ति बढ़ती है—ऐसा मालूम होने लगता है कि हम धीरे धीरे उच्चता को प्राप्त हो रहे हैं।

[असमाप्त]

सुरेन्द्रनाथसिंह, बी० ए०

शान्ति देवी।

हे देवि! धन्य है तू, है स्वर्ग धाम तेरा; स्वर्गीय सुख चखाना है देवि काम तेरा।
है दिव्य रूप अति ही नयनाभिराम तेरा; आनन्द-दान करता है शान्ति-नाम तेरा॥
शुभ दृश्य स्वर्ग का है तूने हमें दिखाया।
हे देवि! सुखमयी है तेरी अपार माया॥ १॥
तेरे प्रताप से ही हँसती वसुन्धरा है; उद्यान इस जगत् का तुझसे हरा भरा है।
मानव-हृदय-कुसुम है तुझसे विकाश पाता; पाता तुझे जहाँ वह फूला न है समाता॥
है मार्ग आत्म-सुख का तूने हमें बताया।
हे देवि! सुखमयी है तेरी अपार माया॥ २॥
वाणी-विकास तेरे मधु में सने हुए हैं; प्राणी अनेक तेरे प्रेमी बने हुए हैं
तेरा हृदय दया की रखता प्रगाढ़ता है; पर-दुःख देख करके अति ही पसीजता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभनाम प्रेम का है तूने हमें पढ़ाया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ३ ॥

संसार चल रहा है तुझ एक के सहारे ; तेरे बिना न चलते उद्योग कुछ हमारे।
जिस ओर से कभी तू है दृष्टि फेर लेती ; तलवार की चमक है लेने न चैन देती ॥

है पान शान्त रस का तूने हमें कराया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ४ ॥

हे देवि ! गोद खेतों की है भरी तुझी से ; आशा-लता सदा है रहती हरी तुझी से।
शान्ते ! सरस्वती है भगिनी कनिष्ट तेरी ; लक्ष्मी सदा रही है तेरी प्रधान चेरी ॥

बदला सदैव श्रम का तूने हमें चुकाया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ५ ॥

जब अग्नि है किसी के घर में प्रवेश करती ; तब तू वहाँ तुरत है जल का स्वरूप धरती।
जब फूट भाइयों को है खूब ही लड़ाती ; माता तुरन्त बन कर तू है उन्हें मनाती ॥

क्या पाठ मेल का है तूने हमें पढ़ाया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ६ ॥

कलहाग्नि जातियों में है दहकती जहाँ पर ; तोपें गरज गरज हैं मुँह फाड़ती जहाँ पर।
हा ! लाल धार बहती है रक्त की जहाँ पर ; शुभ तान छेड़ती है तू सन्धि की वहाँ पर ॥

दुष्कर्म से सदा है तूने हमें बचाया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ७ ॥

तूने जहाँ जहाँ पर निज कूक जा सुनाई ; ऋतुराज की वहाँ पर फिरने लगी दुहाई।
संसार में न होता तिल मात्र भी उजाला ; यदि शान्ति-देवि तेरा होता न बोलबाला ॥

जञ्जाल से कलह के तूने हमें छुड़ाया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ८ ॥

हे देवि ! मूर्ख तुझसे सर्वत्र ही लड़े हैं ; हा ! दुष्ट सैकड़ों ही तुझसे सदा अड़े हैं।
जिसने परन्तु सहसा मानी न बात तेरी ; उसका विनाश होते कुछ भी लगी न देरी ॥

सन्मार्ग पर सदा है तूने हमें चलाया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ९ ॥

जिस दम मनुष्य सद्गुण सब भूल जायँ तेरे ; हों भक्त अल्प तेरे, पर शत्रु हों घनेरे।
तुझसे करें सभी जग चाहे विरोध जितना ; हे देवि ! तू मुझे तो निज भक्त ही समझना ॥

सब भाँति से सुखी है तूने हमें बनाया।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ १० ॥

मोतीलाल, बी० ए०, सी० टी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूँगी।

गूँगी का नाम था गोतमी। पर वह .खूब बोलती थी। इसी लिए मैंने उसका नाम गूँगी रख दिया था। गूँगी हो जाने पर भी गोतमी की वाक्-शक्ति कम नहीं हुई। तो भी सब लोग उसे गूँगी ही कहते गये।

गूँगी हम लोगों की दासी, विमला, की लड़की थी। नीच-वंश में जन्म देकर भी भगवान् ने उसे कुछ ऐसा रूप दिया था कि उसे देखते ही सब लोग उसे गोद में लेना चाहते थे। वह प्रति दिन अपनी माँ के साथ हमारे घर आती। जब तक विमला घर का काम-काज करती वह मिनी के साथ खेलती। जब मिनी पढ़ने के लिए आती तब वह भी आ जाती। पर वह चुप तो बैठ नहीं सकती थी। इस लिए वह भी मिनी के साथ पढ़ती थी। गूँगी की बुद्धि भी तीव्र थी। मैंने देखा कि थोड़े ही दिनों में वह मिनी से भी आगे बढ़ गई। उसकी ऐसी बुद्धि देख मैं उसे .खूब उत्साह से पढ़ाने लगा। मैं पाँच वर्ष तक बिलासपुर में रहा और गूँगी पाँच वर्ष तक मुझसे पढ़ती रही। जब मुझे बिलासपुर छोड़ कर कलकत्ता जाना पड़ा तब गूँगी ११ वर्ष की थी। पर उस समय भी उसने मुझसे "बालिकाभूषण", "भूगोल" "अङ्कगणित" और "इतिहास" के भी कुछ अंश पढ़ लिये थे। जाते समय मैं उसे "रामचरितमानस" देता गया। मैं जानता था, थोड़े ही दिनों में वह सब भूल जायगी।

कलकत्ता आते ही मेरा भाग्योदय हुआ। साहब की मुझ पर कृपा-दृष्टि हुई। मेरी पदोन्नति होने लगी। मैं भी .खूब परिश्रम करने लगा। कलकत्ते में मैं १५ वर्ष तक रहा। १५ वर्ष के बाद मैं फ़र्स्ट-ग्रेड का डेपुटी मेजिस्ट्रेट होकर श्रीरामपुर चला गया।

शीतकाल का प्रारम्भ ही था। पर ठण्ड पड़ने लगी थी। मैं बाहर धूप में कुरसी डाल कर आराम से "स्टेट्समैन" पढ़ रहा था। कुछ देर पढ़ने के बाद मैंने स्टेट्समैन फेंक दिया और एक बार चारों ओर दृष्टिपात किया। मेरे घर के सामने ही एक पक्का कुआँ था। प्रति दिन वहाँ प्रातःकाल स्त्रियों की बड़ी भीड़ रहती थी। उस दिन भी वहाँ स्त्रियों की संख्या कम न थी। मैंने देखा कि हमारे घर की दासी, मालती, भी गगरा लिये बैठी है। इतने में कुछ स्त्रियाँ लकड़ियों का गट्ठा सिर पर लिये उधर से निकलीं। मालती ने उनमें से एक को पुकार कर कहा, "लकड़ी बेचोगी?"

उसने उत्तर दिया, "क्या दोगी?"

मालती कहने लगी—"तू ही कह दे ना, क्या लेगी?"

उस स्त्री ने कहा, "आठ आना।"

मालती ने कहा, "बस बहिन, हो गया। यह तो लेने देने की बात नहीं है।"

तब उस स्त्री ने कहा, "बहिन, छै आने से कम न लूँगी। तुम्हें लेना हो तो लो; नहीं जाती हूँ।"

यह कह कर वह जाने का उपक्रम भी करने लगी।

मालती ने कहा, "मैं तो पाँच आने दूँगी।" तब वह स्त्री जाने लगी।

इतने में दूसरी लकड़ी वाली ने उससे कहा—"दे दे री, पाँच आने ठीक तो हैं।"

उस स्त्री ने उत्तर दिया, "नहीं, बहिन, मैं न दूँगी; ६ आने से एक कौड़ी भी कम न लूँगी।"

तब तक मालती ने गगरा भर लिया था। वह कहने लगी, "अच्छा लो।"

वह स्त्री मालती के साथ आने लगी। उसकी सङ्गिनी लकड़ी वाली दूसरी ओर चली गई।

मैंने फिर चश्मा साफ़ करके स्टेट्समैन उठा लिया और पढ़ने लगा। थोड़ा ही पढ़ा था कि मालती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

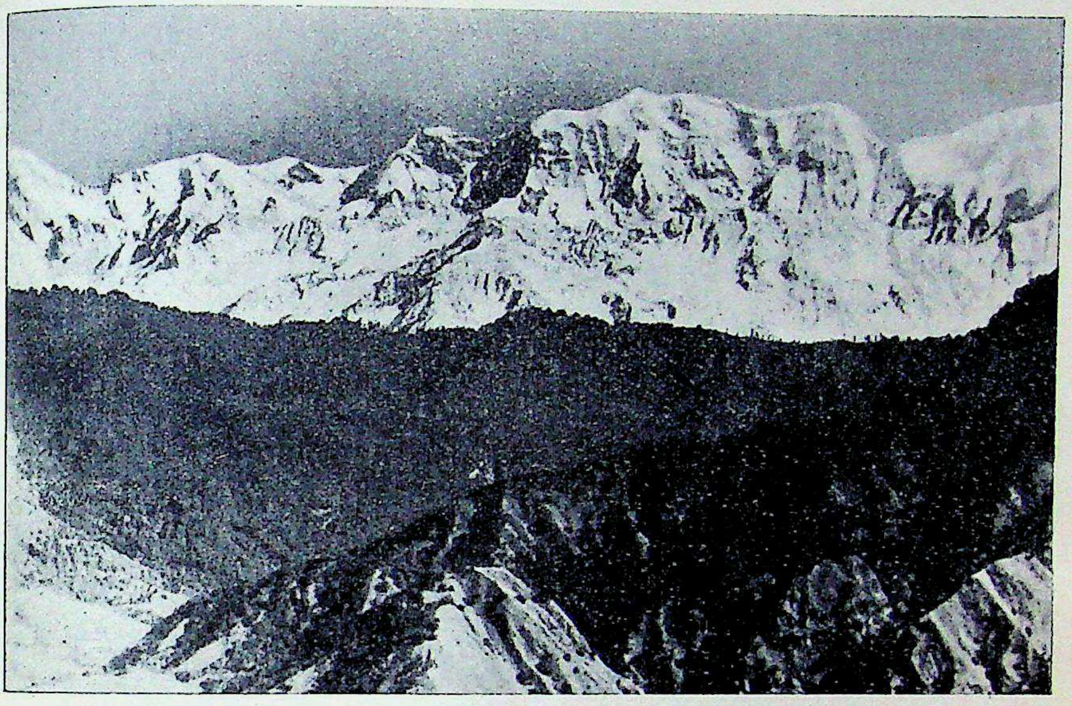

हिमाच्छादित पर्व्वत-श्रेणी (मंसूरी)।

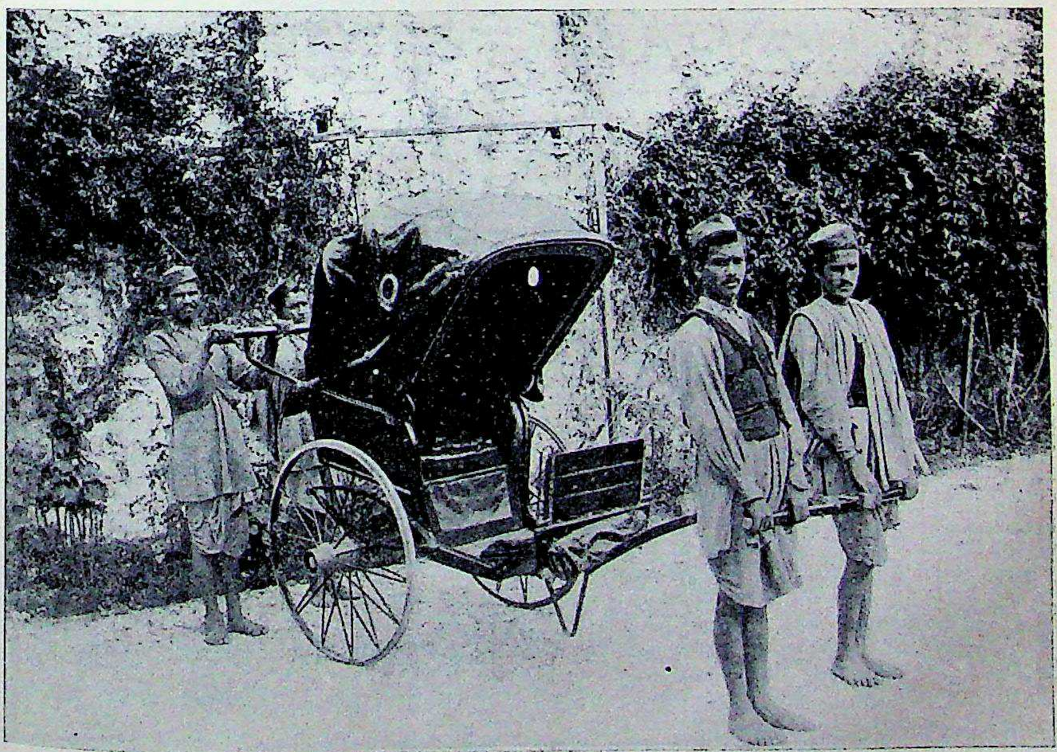

मंसूरी की रिकशा नामक गाड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर कहने लगी "बाबू लकड़ी वाली लकड़ी रख कर कहाँ गई। उसने पैसे भी नहीं लिये!"

मैंने कहा—"आती होगी। उसे क्या अपने पैसों की चिन्ता न होगी"? मालती चुप हो गई। तब तक धूप कुछ तेज़ हो गई थी। मैंने उससे कहा—"मालती, कुरसी भीतर रख दे।"

मालती ने वैसा ही किया। मैं भीतर बैठ गया।

१० बजते ही मैं कचहरी चला गया। दिन भर मैं काम में लगा रहा। संध्या होते ही मैं घर लौट आया। घर में आकर मैंने देखा कि पुरुषोत्तम बाबू मेरे कमरे में बैठे हुए हैं। मैंने प्रसन्नता-सूचक स्वर में कहा—"ओ हो, पुरुषोत्तम बाबू! इतने दिनों में! मिनी कैसी है?"

पुरुषोत्तम बाबू ने कहा—"वह भी तो आई है।"

तब तो मैं पुरुषोत्तम बाबू को छोड़ कर भीतर चला गया। देखा तो मिनी कमला के साथ बैठी हुई है। मिनी ने मुझे प्रणाम किया। मैंने उसे अन्तःकरण से आशीर्वाद दिया। बड़ी देर तक हम लोग बैठे रहे। इधर उधर की ख़ूब गप्पें होती रहीं। ११ बजे हम लोग सोने गये।

दूसरे दिन मैं फिर बाहर कुरसी डाल कर बैठ गया। पुरुषोत्तम बाबू अभी तक सो रहे थे। मैंने "स्टेटस्मैन" उठा लिया। थोड़ी देर बाद मैं फिर कुँवे की ओर देखने लगा। आज भी वहाँ स्त्रियों की वैसी ही भीड़ थी। आज भी मालती गगरा लिये बैठी थी। इतने में कलही की लकड़ी वाली फिर उधर से निकल पड़ी। मालती ने उसे पुकार कर कहा—"ओ लकड़ीवाली! कल तूने पैसे नहीं लिये।"

वह कहने लगी—"बहिन, आज भी तो लकड़ी लाई हूँ। इन्हें भी लेलो। दोनों का दाम साथ ही लेलूँगी।"

मालती ने कहा—"अच्छा।" इतने में पुरुषोत्तम बाबू आ गये। मैं उनसे गप्पें मारने लगा। थोड़ी देर में भीतर से "चोर, चोर", का हल्ला हुआ। हम लोग घबरा कर भीतर दौड़े। देखा, लकड़ीवाली को दरबान ने पकड़ लिया है। मालती आदि ४, ५, और स्त्रियाँ इधर उधर खड़ी थीं; मुझे देख कर सब चुप हो गईं। मैंने पूछा—"माजरा क्या है?"

मालती कहने लगी, "बाबू, मैं इस लकड़ीवाली के पैसे लाने के लिए भीतर गई। लौटने पर देखती हूँ कि यह नहीं है। इतने में आपके कमरे से कुछ आवाज़ आई। मैं चोर चोर कह कर चिल्लाने लगी जब दरबान आया तब यह आपके कमरे में पकड़ी गई।"

दरबान ने कहा—"बाबू, इसने अपने कपड़ों में कुछ छिपा लिया है।"

तब मैंने लकड़ीवाली से पूछा—"क्यों क्या बात है?"

लकड़ीवाली ने एक बस्ता निकाल कर कहा—"बाबूजी, मैं इसे रखने के लिए आई थी।"

मैंने बस्ता खोल कर देखा तो उसमें रामचरितमानस की एक कापी थी। उसके ऊपरी पृष्ठ पर मेरे ही हाथ का लिखा हुआ था, "गूँगी"। मैं चौंक पड़ा। तब मैंने लकड़ीवाली की ओर ध्यान से देखा। वह मेरी "गूँगी" ही थी। "गूँगी!" मैंने इतना कहा ही था कि गूँगी मेरे पैरों पर गिर पड़ी। क्षण भर के लिए सब भूल कर मैंने उसे गोद में उठा लिया। गूँगी मेरी गोद में रोने लगी।

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

—

श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस की पुस्तकें।

(२)

इस प्रेस के स्वामी ने जो पुस्तकें भेजने की कृपा की है उनके नामों का उल्लेख पहले लेख में किया जा चुका है। इन पुस्तकों में वैद्य-विद्या-विषयक पुस्तकें अधिक हैं, और विषयों की कम। कुछ को छोड़ कर ये सारी पुस्तकें प्राचीन ग्रन्थों ही के संस्कृत, सङ्कलित और सानुवाद संस्करण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव ऐसे—और विशेष करके वैद्यक तथा मन्त्रशास्त्र के—ग्रन्थों की आलोचना करना हमारे सामर्थ्य के बाहर की बात है। अतएव हम ऐसी पुस्तकों का परिचय मात्र देकर किसी तरह अपने कर्त्तव्य-पालन की चेष्टा करेंगे। आशा है, हमारी यह त्रुटि उदासीनता या प्रमाद में न परिगणित की जायगी। अच्छा, अब पुस्तकों का परिचय सुनिए—

वैद्यक।

१—**शालिग्रामौषधशब्दसागर**। इसका आकार बड़ा और पृष्ठ-संख्या २०० है। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। मूल्य २ रुपये है। इसमें अकार-क्रम से ओषधियों के संस्कृत-नाम, उनके लिङ्ग-निर्देश और तत्पश्चात् उनके पर्यायवाची हिन्दी नाम हैं। अन्य भाषाओं के नामों का भी उल्लेख कहीं कहीं किया गया है। यथा—

अण्डजा, स्त्री०-मृगनाभि। कस्तूरी। मुश्क, फ़ारसी। मस्क, अँगरेज़ी।

इसमें पहले अण्डजा का पर्यायवाची संस्कृत-नाम मृगनाभि देकर तदनन्तर हिन्दी, फ़ारसी और अँगरेज़ी में भी अण्डजा के वाचक नाम दिये गये हैं। यही क्रम सारी पुस्तक में है। अनेक कोशों और निघण्टुओं को देख कर इसकी रचना की गई है। यह मुरादाबाद के परलोकवासी लाला शालग्राम वैश्य की कृति है। आरम्भ में उन्होंने एक विस्तृत भूमिका भी लिखी है। इस कोश की उपयोगिता में सन्देह नहीं। छोटा होकर भी वैद्यों के बड़े काम का है। और कोशों के सदृश इस कोश से अन्य लोग भी लाभ उठा सकते हैं।

२—**चरकसंहिता**—यह बहुत प्राचीन और बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस ने इसे मोटे मोटे दो खण्डों में अलग अलग प्रकाशित किया है। दोनों पर सुवर्ण-वर्णालङ्कृत जिल्द है। पृष्ठ संख्या दो हज़ार के लगभग है। मूल्य दोनों खण्डों का ६ रुपये है। यह ग्रन्थ पुष्ट काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपा है। मूल संस्कृत बड़े टाइप में है और टीका उससे छोटे टाइप में। आरम्भ में अनेक चित्र हैं। उनमें से कुछ तो नर-शरीर और शरीरावयवों के हैं, कुछ कल्पना के आधार पर अनुमित कई प्रकार के भयङ्कर ज्वरों के, और कुछ देवताओं तथा ऋषियों के। यह ग्रन्थ यद्यपि चरक के नाम से प्रसिद्ध है, तथापि इसके कर्त्ता चरक नहीं। जैसा कि इसमें लिखा है, इसकी मूल-रचना करने वाले अग्निवेश नामक कोई ऋषि हो गये हैं। चरक ने उस मूल-ग्रन्थ का संस्कार मात्र किया है। पर है यह बहुत प्रामाणिक और प्राचीन ग्रन्थ। वैद्यों और पण्डितों की तो बात ही नहीं, अनेक इतर जन भी चरक और सुश्रुत के नाम से परिचित हैं। इसमें गद्य भी है और पद्य भी। गद्य का होना इसकी प्राचीनता का दृढ़ प्रमाण है। अच्छे संस्कृतज्ञ ही इस ग्रन्थ से अब तक उपकृत हो सकते थे। पर इस संस्करण ने इस ग्रन्थ के प्रचार और इससे लाभ उठाने के क्षेत्र का बहुत विस्तार कर दिया। क्योंकि इसमें मूल-संस्कृत का आशय सीधी सादी हिन्दी में प्रकट किया गया है। यह अनुवाद पटियाला-राज्य के वैद्योपाध्याय पण्डित रामप्रसाद ने किया है। चक्रपाणि आदि की लिखी हुई यद्यपि इसकी कई टीकायें प्राप्य हैं, तथापि वे सब की सब संस्कृत में हैं। और अच्छी संस्कृत जानने वाले वैद्य बहुत नहीं। इस दशा में इस प्रतिष्ठित ग्रन्थ पर एक हिन्दी-टीका की बड़ी आवश्यकता थी। उस आवश्यकता की पूर्ति श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस ने कर दी। समर्थ वैद्यों को अब इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

३—**अष्टाङ्ग-हृदय**—इसका दूसरा नाम वाग्भट है। यह नाम इसके रचयिता के नामानुसार है। यह ग्रन्थ चरक और सुश्रुत के बाद का है। इसे बने कई सौ वर्ष हो चुके। ग्रन्थान्त में वाग्भट ने जो कुछ लिखा है उससे सूचित होता है कि वहुत बड़े वैद्य होने के सिवा वे बहुत बड़े विद्वान्, अपने विषय के पारदर्शी पण्डित और उत्तम कवि भी थे। उनके कोई कोई श्लोक बहुत ही सरस और प्रसन्न पदों से परिष्कृत हैं। एक जगह आप लिखते हैं—

अज्ञातशास्त्रसद्भावाञ्छास्त्रमात्रपरायणान्।
त्यजेद् दूराद्भिषक्पाशान् पाशान् वैवस्वतानिव॥

जिन लोगों ने सिर्फ़ शास्त्र रट लिया है, उसका ठीक ठीक आशय नहीं समझा उन वैद्यपाशों को यम के पाशों के सदृश दूर ही से नमस्कार करना चाहिए!

परन्तु वाग्भट को क्या मालूम था कि कोई समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवेगा जब इनके भी "निश्चित प्रमाद" प्रकट करने वाले वैद्यराट इस भारत में उत्पन्न होंगे ! अस्तु।

इस ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या १०४८ और मूल्य ८ रुपये है। जिस तरह के टाइप में चरक-संहिता छपी है उसी तरह के टाइप में यह भी छपा है। सूत्र, शारीर, निदान, चिकित्सा, कल्प और उत्तर—इन ६ स्थानों या भागों में यह ग्रन्थ विभक्त है। ये सब भाग इस एक ही जिल्द में हैं। ऊपर संस्कृत-मूल और नीचे हिन्दी-टीका है। टीका बेरी-गाँव के पण्डित रविदत्त की की हुई है। उनकी हिन्दी कुछ पुराने ढँग की थी। इस कारण पहले उसका संशोधन पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र ने और फिर फर्रुखनगर के निवासी पण्डित मुरलीधर शर्म्मा ने किया। इसी संशोधन की हुई टीका के सहित यह ग्रन्थ अब तीसरी दफ़े छपा है। आरम्भ में पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र की लिखी हुई एक भूमिका है। उसमें आयुर्वेद तथा इस ग्रन्थ के महत्त्व आदि का अच्छा वर्णन है। भूमिका के आगे कोई ५० पृष्ठों में विषयों की अनुक्रमणिका है। उसकी सहायता से किसी को भी अपना अभीष्ट विषय पुस्तक में तत्काल ही मिल सकता है।

४—भावप्रकाश—यह ग्रन्थ यद्यपि बहुत पुराना नहीं, तथापि इसके कर्त्ता भाव-मिश्र को हुए कोई तीन सौ वर्ष ज़रूर हो चुके। इनके पिता का नाम लटकन मिश्र था। इन्होंने काशी में विद्योपार्जन किया और बड़े नामी वैद्य हुए। इनका भी यह ग्रन्थ बड़े आदर की दृष्टि से देखा और बहुत प्रतिष्ठित समझा जाता है। ग्रन्थारम्भ में इन्होंने आयुर्वेद का जो इतिहास लिखा है उससे मालूम होता है, इन्होंने इस विषय के अनेक ग्रन्थों का परिशीलन करके इस ग्रन्थ की रचना की है। अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों के "वचन-मणियों" को उद्धृत करके उनके प्रकाश से इन्होंने चिकित्सा-शास्त्र-सम्बन्धी जाड्यान्धकार को दूर करने का यत्न किया है।

इस ग्रन्थ का आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ११६० और मूल्य ७ रुपये है। इस पर अच्छी जिल्द है। ग्रन्थ का नाम सुनहले अक्षरों में है। काग़ज़ पुष्ट और चिकना है। मूल-संस्कृत साफ़, सुन्दर और बड़े टाइप में है। उसका हिन्दी-भावार्थ पतले टाइप में। इसमें एक विशेषता है। वह यह कि आरम्भ के कोई ढाई सौ पृष्ठों में निघण्टु, अर्थात् नाना द्रव्यों के नाम और गुण आदि हैं। उसके आगे रत्नों, विषों और उपविषों के शोधन की विधि है। तदनन्तर चिकित्सा-शास्त्र के और और अङ्गों का वर्णन है। इसकी हिन्दी-टीका मुरादाबाद-निवासी लाला शालग्राम वैश्य की लिखी हुई है। इस टीका की भाषा यथेष्ट बोध-गम्य है। टीका में टीकाकार ने अपनी ओर से कुछ बढ़ाया भी है—विशेष करके प्रथम खण्ड के पाँचवें प्रकरण में। उसमें उल्लिखित पदार्थों के नामों का विवेचन करते समय आपने ऐसे भी नाम दे दिये हैं जो बँगला, मराठी, कनारी, फ़ारसी आदि भाषाओं में प्रसिद्ध हैं। इस कारण इस प्रकरण की उपयोगिता अधिक हो गई है। यह ग्रन्थ पहले कहीं किसी विरले ही वैद्य के पास पाया जाता था। छापे की कल की कृपा से इसकी दुर्लभता पहले ही कुछ कम हो गई थी; अब तो श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस ने इसे और भी सुलभ कर दिया।

५—वङ्गसेन—इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १०९६ और मूल्य ८ रुपये है। काग़ज़ अच्छा और मूल-संस्कृत का टाइप बड़ा है। हिन्दी-टीका का टाइप छोटा, पर साफ़ और सुन्दर है। पुस्तक पर मनोहर जिल्द है। नाम सुवर्णाक्षरों में है। इसके आरम्भ में वैद्य शङ्करलाल हरि-शङ्कर की लिखी हुई एक विस्तृत भूमिका है। उसमें इस ग्रन्थ के विषय में लिखा है—

"इसकी चिकित्सा-पद्धति अन्य चिकित्सा-शास्त्रों की अपेक्षा अतिशय श्रेष्ठ है। जो विषय अन्य चिकित्सा-शास्त्रों में अपूर्ण हैं वह इसमें पूर्ण रीति से सविस्तर वर्णन किये हैं। × × × ग्रन्थकार ने इसमें कितनेक नवीन रोगों का निदान और चिकित्सा लिखी है, जो आज कल इस देश में अधिकता से देखे जाते हैं। × × × ग्रन्थकार ने विशेष करके इसमें प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के क्रम से अनुभूत सिद्ध योग कहे हैं"।

इसके कर्त्ता वङ्गसेन यद्यपि बहुत प्राचीन नहीं, तथापि चक्रदत्त के वे पहले के हैं। क्योंकि चक्रदत्त ने अपने ग्रन्थ में वङ्गसेन के कुछ प्रयोग उद्धृत किये हैं। इन्हें हुए चार पाँच सौ वर्ष बीते होंगे। ये कान्तिकावास के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम गदाधर था। मिर्ज़ापुर के ज़िले में एक जगह कान्तित है। कान्तिनगर नाम का एक स्थान मुजफ्फ़र-पुर ज़िले में भी है। सम्भव है, ये इन्हीं में से किसी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवासी हों। ग्रन्थान्त में वङ्गसेन ने लिखा है कि श्रीकृष्ण के तिरोधान के बाद यह पृथ्वी रोगाक्रान्त हो गई। उसे रोगरहित करने के लिए ही मैंने जन्मधारण किया है। मेरे जन्म के पहले यह ग्रन्थ अगस्तिसंहिता के नाम से प्रसिद्ध था। उसी का मैंने फिर से संस्कार किया है। अब यदि कहीं अगस्त्य या अगस्ति-संहिता प्राप्त हो तो मालूम हो जाय कि उसमें और इस पुस्तक में कितना न्यूनाधिक्य है। वङ्गसेन ने पूर्वोक्त गर्वोक्ति के साथ ही यह भी लिखा है कि मैंने पृथ्वी पर अपने आगमन की स्मृति बनी रखने के लिए ही इस ग्रन्थ का निर्म्माण या संस्कार किया है। उनका कहना है कि—

ग्रन्थोऽयं सर्वसिद्धान्तसारः शीघ्रफलप्रदः

इस वाक्य की सत्यता के विषय में विद्वान् वैद्य ही कुछ कह सकेंगे। तथापि, इसमें सन्देह नहीं कि इसमें वैद्यक-सम्बन्धी प्रायः एक भी विषय नहीं छूटने पाया। मुरादाबाद के लाला शालग्रामजी वैश्य ने इसकी हिन्दी-टीका लिखना आरम्भ किया था। पर उसकी समाप्ति के पहले ही वे लोकान्तरित हो गये। इस कारण उसकी पूर्ति कुँदरखी गाँव के निवासी श्रीयुत शङ्करलाल जैन ने की। और ग्रन्थों के सदृश इसके आरम्भ में भी एक लम्बी विषयानुक्रमणिका है।

६—**रसरत्नाकर**—इसका आकार वङ्गसेन के आकार से कुछ छोटा है। पृष्ठ-संख्या इसकी ४१२ और मूल्य ५ रुपये है। इस पर भी सुवर्णवर्णाङ्कित सुन्दर जिल्द है। टाइप और काग़ज़ पूर्वोल्लिखित पुस्तकों ही के सदृश है। विशेषता इतनी ही है कि इसकी हिन्दी-टीका का टाइप भी कुछ बड़ा है। टीकाकार मुरादाबाद-निवासी लाला शालग्राम वैश्य हैं। इसके कर्त्ता का नाम सिद्ध नित्यनाथ है। इनके अवस्थिति-काल का पता नहीं। ग्रन्थ में भी कहीं इन्होंने अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। पर इनकी संस्कृत-रचना से जान पड़ता है कि ये आधुनिक नहीं। इसमें इसके नामानुसार रसों ही का वर्णन नहीं। धातुओं के जारण, मारण और शोधन आदि के सिवा और ओषधियों का निरूपण भी है। रोगों के निदान, लक्षण और चिकित्सा भी इसमें है। बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है। आरम्भ में एक अच्छी भूमिका और विस्तृत अनुक्रमणिका है।

७—**पारदसंहिता**—यह बहुत बड़ा ग्रन्थ है। आकार बड़ा और पृष्ठ-संख्या ७०० के ऊपर है। सुन्दर और दृढ़ जिल्द बँधी हुई है। मूल-संस्कृत मोटे और हिन्दी-भावार्थ तथा हिन्दी का लेखांश छोटे टाइप में है। मूल्य इसका ७ रुपये है। वैद्यक में पारद की बड़ी महिमा है। प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि पारद सिद्ध होने से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। जरा का दूर होना तो छोटी बात है, मरण तक का निवारण इससे हो सकता है। पारद के ऊपर किसी समय आयुर्वेद के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थ थे। पर उनमें से अधिकांश नष्ट हो गये। अब भी बहुत से शेष हैं, पर सब सुलभ नहीं। ढूँढ़ने से कहीं कहीं पाये जाते हैं। इसके सिवा अन्यान्य वैद्यक-ग्रन्थों में भी पारद-सम्बन्धिनी बातें हैं। अलीगढ़ के परलोकवासी वकील बाबू निरञ्जनप्रसाद गुप्त को रसायन-विद्या से बड़ा प्रेम था। उन्होंने पचास साठ ग्रन्थों से ढूँढ़ ढूँढ़ कर इस विषय का ज्ञान प्राप्त किया। उसी का फल यह पुस्तक है। यह संग्रह-ग्रन्थ है। जिन ग्रन्थों से जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं उनके नाम दे दिये गये हैं। पारद से सम्बन्ध रखने वाली जो बातें जहाँ मिलीं हैं सब को आपने इस संग्रह में रख दिया है। उन्होंने पारद का शोधन भी किया था। रसशोधन के ३५ बार तक के उनके अनुभव भी इस ग्रन्थ में लिखे हुए हैं। पारद की शोधन-क्रिया में जिन जिन यन्त्रों की आवश्यकता हुई है उनके चित्र भी इसमें दिये गये हैं। साठ अध्यायों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। और और बातों के सिवा इसमें सामग्री का संग्रह, गन्धक-जारण, अभ्रक-जारण, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, जारण, सारण, क्रामण, वेध, भक्षणविधि आदि विषय बड़े परिश्रम से लिखे गये हैं। इसका संग्रह तो पूर्वोक्त वकील साहब का किया हुआ है, पर हिन्दी-टीका जैसलमेर-निवासी व्यास ज्येष्ठमल्ल काव्यतीर्थ की लिखी हुई है। शाही ज़माने में पारा शुद्ध करने के विषय में जो उन्नति हुई थी इसका भी वर्णन इसमें है। उस समय के बने हुए कुछ ग्रन्थों का भी उल्लेख है। आरम्भ में संग्रहकार का जीवनचरित और ३२ पृष्ठों की एक अनुक्रमणिका है। अद्भुत संग्रह है। संग्रहकर्त्ता के अजस्र परिश्रम का परिचायक है।

८—**बृहन्निघण्टु-रत्नाकर**—यह भी संग्रह-ग्रन्थ है। आठ भागों में है। चिकित्सा-शास्त्र के जितने ग्रन्थ सुलभ हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः सभी से उपयोगी विषयों का संग्रह इसमें किया गया है। इसके पहले छः भागों के संग्रहकार मथुरा-निवासी माथुर पण्डित दत्तराम हैं। संस्कृत-श्लोकों के नीचे उन्होंने उनका भावार्थ हिन्दी में भी लिख दिया है। पहले के ६ भाग अलग अलग एक एक जिल्द में हैं। सातवाँ और आठवाँ भाग एक जिल्द में है। उसके कर्त्ता भी और ही हैं। जिल्दें सब की अच्छी हैं। संस्कृत-मूल मोटे और हिन्दी-भावार्थ कुछ छोटे टाइप में है। मूल्य पूरे ग्रन्थ का ३० रुपया है। इसके प्रत्येक भाग का मूल्य और विषय आदि नीचे दिये जाते हैं—

१—भाग—पृष्ठ १ से ३७६ तक; मूल्य ३ रुपये। इसमें शारीरक और शस्त्र-चिकित्सा है। आरम्भ में अनेक शस्त्रों और शरीरावयवों के चित्र हैं।

२—भाग—पृष्ठ ३८० से ८८२ तक; मूल्य ३½ रुपये। इसमें क्षारपाक, प्रतिसारणीय विधि, अग्निकर्म्म, शोणित-वर्णन, दोष-वर्णन, चर्य्याचन्द्रोदय, नाड़ीविज्ञान आदि विषय हैं। इसके भी आरम्भ में कुछ चित्र हैं।

३—भाग—पृष्ठ ८८३ से १४१२ तक, मूल्य ३½ रुपये। इस भाग में मल-मूत्र-आर्तव-परीक्षा, कालज्ञान, मान-परिभाषा, रस-विशेष-विज्ञान, वमन-विरेचन, स्वेदनादि-विधि-वर्णन, द्रव्य-संग्रहण, ज्वरों का निरूपण आदि है। इसमें भी कुछ चित्र हैं।

४—भाग—पृष्ठ १४१३ से १७५६ तक, मूल्य २½ रुपये। इसमें ज्वर, अतीसार, संग्रहणी और बवासीर की विस्तृत चिकित्सा है। कुछ यूनानी दवाओं का भी उल्लेख है।

५—भाग—इसमें ५६७ से १४६८ तक पृष्ठ हैं। मूल्य इसका ५½ रुपया है। मालूम नहीं इसका आरम्भ ५६७ पृष्ठ से क्यों हुआ है। कोई विषय तो छूटा नहीं। या तो १ से पृष्ठाङ्क देने थे, या चौथे भाग के आगे से। अस्तु। इसमें अजीर्ण से लेकर उदर-रोग तक की चिकित्सा है—श्वास, खाँसी, हुचकी, छर्दि, मूर्च्छा, उन्माद, वातरोग, शूलरोग, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह आदि सब इसी के अन्तर्गत है।

६—भाग—इसमें १४६६ से २०१६ तक पृष्ठ हैं। मूल्य इसका ४½ रुपये है। इसमें शोथ, अण्डवृद्धि, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, नाड़ी-व्रण, भगन्दर, उपदंश, विसर्प, विस्फोटक, क्षुद्र-रोग, मुख-नासा-नेत्र-शिरो-रोग, स्त्री-रोग, बाल-रोग, विष-रोग आदि की चिकित्सा है।

७-८ भाग—इसकी पृष्ठ-संख्या १ से १२२६ तक है। मूल्य इसका ८ रुपये है। ये दोनों भाग मुरादाबाद-निवासी लाला शालग्राम के संग्रह किये हुए हैं। दोनों एक ही जिल्द में हैं। इसका दूसरा नाम है—शालग्राम-निघण्टु-भूषण। इसमें नाना प्रकार की ओषधियों का सचित्र वर्णन है। भिन्न भिन्न भाषाओं में उनके नाम भी हैं। आरम्भ में, १३२ पृष्ठों की एक अनुक्रमणिका है। हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती और अँगरेज़ी के नामों की सूचियाँ अलग अलग हैं। ओषधियों के गुण और नामादि के निदर्शक संस्कृत-श्लोक उद्धृत करके नीचे उनका भावार्थ हिन्दी में दिया गया है।

इस परिचय-प्रदान से पाठकों को इस बात का अन्दाज़ा हो जायगा कि यह ग्रन्थ कितना बड़ा और कितने काम का है। इस अकेले ग्रन्थ को रखने से ही चिकित्सा का बहुत कुछ काम निकल सकता है।

९—योग-चिन्तामणि—आकार बड़ा, जिल्द बँधी हुई, पृष्ठ-संख्या २५२, मूल्य एक रुपया छः आने। इसके कर्त्ता का नाम श्रीहर्षकीर्ति था। वे जैन थे। उन्होंने लिखा है कि मैं नया ग्रन्थ बना सकता हूँ। पर नये पर लोगों की श्रद्धा कम होती है। अतएव ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों के वचन उद्धृत करके ही मैंने इसे तैयार किया है—

> नूतनपाठे विहिते नादरमिह पण्डिता यतः कुर्य्युः।
> तस्मादार्षवचोभिर्निबध्यते म स्वसामर्थ्यात्॥

ग्रन्थान्त में लिखा है—

> आत्रेयकरचरकवाग्भटसुश्रुताश्विहारीतवृन्दकालिकाभृगुभेडपूर्वाः।
> येऽमी निदानयुतकर्म्मविपाकमुख्यास्तेषां मतं समनुसृत्य मया कृतोऽयम्॥

इन्हीं आचार्य्यों के ग्रन्थों के आधार पर इसमें पाक, चूर्ण, गुटिका, क्वाथ, घृत, तैल, लेप, रस इत्यादि पर एक एक अध्याय है। पाक लिखे हैं तो अनेकों पाक ही लिख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिये हैं; चूर्ण लिखे हैं तो चूर्ण ही चूर्ण लिख दिये हैं। इसके सिवा वैद्यक की और और बातें भी हैं। ऊपर मोटे टाइप में मूल और नीचे कुछ ही छोटे टाइप में पण्डित दत्तराम-माथुर-कृत हिन्दी टीका है।

१०—योग-तरङ्गिणी—यह भी बड़े आकार की पुस्तक है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३२८ और मूल्य २ रुपये है। पुस्तक जिल्ददार है। यह त्रिमल्लभट्ट की रचना है। ग्रन्थारम्भ में इन्होंने अपना परिचय दिया है। ये आपस्तम्ब-शाखा के तैलङ्ग-ब्राह्मण थे। कोडपल्ली इनका जन्म-स्थान था। काशी में रहते थे। वहीं इन्होंने इस तरङ्गिणी का प्रवाह प्रवाहित किया था। इन्होंने भी अनेक प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर इसकी रचना की है—

चिकित्सा लिख्यते भूरिग्रन्थेभ्यः स्वपरार्थिना।

पुस्तक में ८१ तरङ्ग या अध्याय हैं। प्रायः सभी रोगों के निदान, पूर्वरूप, लक्षण और चिकित्सा इसमें है। वैद्य लोग इस ग्रन्थ का विशेष आदर करते हैं। यह अच्छे टाइप में मोटे और चिकने काग़ज़ पर छपी है। प्रत्येक पृष्ठ दो कालमों (स्तम्भों) में विभक्त है। मूल-संस्कृत के नीचे माथुर-दत्तराम-कृत हिन्दी-टीका है।

११—माधवनिदान—इस पुस्तक में ३८४ पृष्ठ हैं। आकार बड़ा है। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। छपाई और काग़ज़ बहुत अच्छा है। मूल्य २ रुपये है। निदान-ग्रन्थों में यह ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। इसमें प्रायः सारे रोगों का कारण, पूर्वरूप और लक्षण विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यह किसी माधव नामक विद्वान् की रचना है। इसके किसी किसी अंश के पाठ से काव्य-पाठ का सा आनन्द आता है। यह भी सटीक है। इसकी भी हिन्दी-टीका के लेखक पण्डित दत्तराम माथुर हैं। [असमाप्त

साहित्य-सम्मेलन और सहकारिता।

होली के दिनों में श्रीमान् महाराज सवाई तुकोजी राव होलकर की राजधानी, इन्दौर, में भिन्न भिन्न प्रकार के दो उत्सव देखने में आये। एक तरफ़ नाच, राग-रङ्ग, गुलाल इत्यादि की धूम थी। दूसरी तरफ़ महाराष्ट्र-साहित्य के प्रेमी स्त्री-पुरुष अपनी मातृ-भाषा की सेवा में मग्न थे। प्रेम और उत्साह दोनों ही जगह ख़ूब था। परन्तु साहित्य-सम्मेलन के कार्य-क्रम में कुछ बातें ऐसी थीं जिनका अनुकरण सम्पूर्ण आर्यभूमि के सुपुत्रों को करना चाहिए। चार महीने हुए, जबलपुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। उससे यह मालूम हुआ कि थोड़े ही समय में हिन्दी-भाषा-भाषियों ने अपनी मातृभाषा की उन्नति के लिए बहुत प्रयत्न किये हैं और उनके प्रयत्न सफल भी हो रहे हैं। मालूम होता है कि महाराष्ट्रियों ने अपने इन्हीं भाइयों के उदाहरण से सचेत होकर दूसरा उच्च ध्येय अपने सामने रक्खा है, जिसे प्राप्त करने के लिए हिन्दी तथा अन्य-भाषा-भाषियों को साथ ही साथ प्रयत्न करना उचित है। इस वर्ष का महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन अनेक दृष्टियों से अपूर्व था। इस सम्मेलन का पूरा वृत्तान्त देने से बहुत सी जगह ख़र्च होगी। इस कारण मैं कुछ ही विशेष बातों का उल्लेख करता हूँ।

सम्मेलन के प्रारम्भ में छोटी छोटी कोमल बालिकाओं ने अत्यन्त कर्णमधुर गायन से ईशस्तवन करके सभासदों का स्वागत किया। उनके मञ्जुल स्वर ने सम्पूर्ण सभा को रोमाञ्चित कर दिया। कोई कोई तो अपने आनन्दाश्रु के प्रवाह को रोक ही न सके। सभा-जनों के हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो गये। आगे जो कार्य होने वाला था उसी के लिए यह तैयारी थी। इस सम्मेलन में सहकारिता के पाठ का प्रारम्भ हो गया। स्वागतकारिणी सभा के सभापति श्रीयुत राव-बहादुर जनरल गोविन्दराव मतकर ने अपने भाषण में कहा—"हिन्दी और मराठी ये दो सगी बहनें हैं। इनमें पारस्परिक प्रेम बढ़ना चाहिए और इनके सुपुत्रों को आपस में प्रेम-पूर्वक बर्ताव करना चाहिए।"

यदि कोई पूछे कि इस उपदेश की क्या आवश्यकता थी? दोनों बहनों में तो स्वभावतः प्रेम है ही और वह धीरे धीरे बढ़ भी रहा है। यह प्रश्न बहुत ठीक है; परन्तु खेद की बात है कि साहित्य का जो कार्य दोनों बहनों के सुपुत्र अभी कर रहे हैं उसकी सिद्धि के लिए केवल शाब्दिक प्रेम पर्य्याप्त नहीं; सक्रिय प्रेम की आवश्यकता है। सम्मेलन के सभापति श्रीयुत गणेश जनार्दन आगाशे महोदय ने फ़्रांस देश की "ओल्ड अकाडमी आफ़ सायन्सेस" का जो सरस वर्णन अपने भाषण में किया उस पर साहित्य-प्रेमियों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। इस संस्था ने (जिसमें पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठ ही सभासद थे) अपने दीर्घ परिश्रम से राजाश्रय प्राप्त कर लिया। साहित्य की सेवा में इस संस्था ने जो बड़े बड़े कार्य किये उनमें से श्रेष्ठतम कार्य फ़्रेंच भाषा का कोश है।

इसके उल्लेख का कारण यह है कि हिन्दी-भाषा के कोश बनाने का उद्योग नागरीप्रचारिणी सभा कर रही है। महाराष्ट्र-साहित्य के प्रेमी कुछ महाशय भी वैसा ही कोश अपनी भाषा में बनाने का विचार कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में इन दोनों ही भाषाओं के विद्वान् यदि सहकारिता से काम करें तो दोनों का बड़ा हित हो। अन्य-भाषा-भाषी सज्जन भी इसका अनुकरण करके अपने देश का एक बहुत बड़ा काम कर सकेंगे। हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती इत्यादि भाषायें संस्कृत से निकली हैं और संस्कृत के बहुत से शब्द इन भाषाओं में प्रचलित हैं। उनमें से कोई कोई शब्द ऐसे हैं जिनका हिन्दी में कुछ अर्थ होता है, मराठी में कुछ। जैसे शङ्का, आपत्ति, परिभाषा, शास्त्रीय, प्रकृति इत्यादि शब्दों का जो अर्थ मराठी में होता है उससे कुछ भिन्न हिन्दी में होता है। यही हाल अन्य भाषाओं के भी कुछ शब्दों का है।

यह स्थिति समाधानकारक नहीं। वैज्ञानिक विषयों में तो यह कठिनाई और भी कष्टदायक है। सम्मेलन के समय श्रीमान् होलकर महाराज ने अपने भाषण में कहा—"विज्ञान का प्रसार करने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि वैज्ञानिक शब्द अभी तक स्थिर नहीं हुए। यद्यपि योरप में अनेक भाषायें बोली जाती हैं तथापि वैज्ञानिक शब्द सर्वत्र प्रायः एक ही से हैं। इस कारण शास्त्रीय खोज का काम वहाँ सुलभ है। आज कल वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें योरप की भाषाओं का आश्रय लेना पड़ता है। यदि देशी भाषाओं में एक ही सर्वमान्य वैज्ञानिक कोश तैयार हो जाय और यहाँ के लेखक वैज्ञानिक विषयों पर सुगम ग्रन्थ लिखें तो इन विषयों का ज्ञान सामान्य लोगों को भी शीघ्र ही हो जाय। यह हेतु सफल करने के लिए हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती इत्यादि भाषाओं की साहित्य-परिषदों को चाहिए कि वे एकमत और सहकारिता से काम करें।" यह विचार बहुत ही उपयोगी है। आशा है कि सब लोग इसे मान लेंगे।

इस अधिवेशन में सम्मेलन ने एक बहुत अच्छा प्रस्ताव पास किया है। वह यह है—"देशी भाषाओं और उनके साहित्य की उन्नति के लिए योग्य उपाय करके, सम्पूर्ण देशी भाषाओं की साहित्य-परिषदों के साथ सहकारिता से काम करने के लिए महाराष्ट्र-साहित्य-परिषद् तैयार है"। कुछ महीने बाद इसी इन्दौर-नगर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन होगा। मुझे आशा है कि वह भी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्न करेगा। मेरी राय तो यह है कि आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में मराठी, गुजराती, बँगला इत्यादि साहित्य-सम्मेलनों की ओर से कुछ प्रतिनिधि भेजे जायँ। इसी प्रकार अन्य सम्मेलनों में भी अन्य-भाषा-भाषियों के प्रतिनिधि अवश्य जाया करें।

सम्मेलन के सञ्चालकों, प्रतिनिधियों और प्रेक्षकों में अपूर्व उत्साह था। सभामण्डप में ४००० से अधिक लोग उपस्थित थे। उनमें कोई १२० स्त्रियाँ भी थीं। अनेक विद्वानों और विदुषियों ने उत्तम उत्तम भाषण किये। सहकारिता के विषय में कुछ अनुकरणीय बातें इस सम्मेलन में देखने में आईं। उनका उल्लेख करना यहाँ अनुचित न होगा। प्रतिनिधियों के ठहरने के लिए दानवीर रायबहादुर सेठ सरूपचन्द हुकुमचन्द ने अपने जैन-विद्यालय की भव्य इमारत स्वागतकारिणी सभा के हवाले कर दी थी। सभामण्डप का सामान तथा मेज़, कुर्सियाँ इत्यादि चीज़ें बोहरा जाति के एक महाशय ने उक्त सभा को दी थीं। उन्होंने यह भी कह दिया था कि यदि कोई चीज़ टूट-फूट जाय तो आप उसकी चिन्ता न करें। नुक़सान का ज़िम्मेदार मैं हूँगा। इन्दौर के मुख्य मन्त्री श्रीयुत रा० ब० मेजर दुबे (जिनकी मातृभाषा हिन्दी है) सम्मेलन में रोज़ पधारते थे। सम्मेलन से उनकी पूर्ण सहानुभूति थी। मेजर साहब ने स्वागतकारिणी सभा के सभासदों तथा प्रतिनिधियों को अपने बग़ीचे में एक प्रीति-भोज दिया था। इसे एक उदाहरण समझिए। जबलपुर और इन्दौर के सम्मेलनों में ऐसी कई बातें थीं जिनसे भिन्न-भाषा-भाषियों में सहानुभूति का प्रादुर्भाव स्पष्टता-पूर्वक दिखाई दिया। यह शुभ लक्षण है। आशा है, इसी तरह लोग उदार-बुद्धि से एक दूसरे की सहायता करेंगे।

श्रीमान् महाराज होलकर ने १०,००० रुपये के दान से सम्मेलन की एक बड़ी भारी कठिनाई दूर कर दी। सहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुभूति और सहकारिता का यह बीज बो कर महाराज ने बड़ा काम किया। आप का अनुकरण अन्य समर्थ जनों को भी करना चाहिए। आशा है, हमारे हिन्दी-भाषा-भाषी बन्धु इन सद्गुणों का अङ्गीकार करके देश की उन्नति के लिए अन्य-भाषा-भाषी बन्धुओं की अवश्य सहायता करेंगे।

एक बात और भी उल्लेख-योग्य है। सब प्रतिनिधियों के ठहरने की जगह एक ही थी। भोजन तथा पान-सुपारी के लिए सब लोग एक ही मण्डप में एकत्र होते थे। स्वागत-कारिणी सभा के प्रमुख सज्जन—विशेषतः सरदार किबे साहब, डाक्टर तांबे, श्रीयुत मुले इत्यादि महाशय—सुबह-शाम उस जगह पधार कर आनन्द-वृद्धि करते थे। हम बड़े हैं, दूसरे छोटे, यह भाव वहाँ स्वप्न में भी न था। श्रीमान् सम्पतराव गायकवाड़ से लेकर बाल स्वयं-सेवकों तक, सभी महाशय एक स्थान में बैठ कर एक सा भोजन करते और खुले दिल से एक दूसरे के साथ सम्भाषण और विनोद करते थे। स्वयं-सेवकों ने प्रतिनिधियों की सेवा यहाँ तक की कि वह सेवा ग्रहण करने में प्रतिनिधियों को कभी कभी लज्जा आती थी। स्वागतकारिणी सभा के उक्त तथा अन्य महाशय रात दिन इसी फ़िक्र में रहते थे कि यदि कुछ त्रुटियाँ देख पड़ें तो उन्हें दूर कर दें। परन्तु ऐसा मौक़ा उन्हें कभी मिला ही नहीं। हर कार्य ठीक समय पर किया जाता था। सारांश यह कि इन्दौर-निवासी सज्जनों की सम्पूर्ण व्यवस्था और उसकी मूलभूत सहकारिता इत्यादि बातें आदर्श थीं। यही प्रेम, यही सहानुभूति और यही सहकारिता समस्त आर्यभूमि के सुपुत्रों में होनी चाहिए। परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह ऐसा मङ्गल-जनक दिन हमें जल्दी ही दिखावे। मेरी यही कामना है कि आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय भी ऐसा ही आनन्द प्राप्त हो।

जबलपुर,
१८ मार्च १९१७

गोविन्द-नारायण हर्डीकर
बी० ए०, एल-एल० बी०

वेद हैं।

छप्पै।

सब विद्या के मूल, जनक हैं सकल कला के, विविध-ज्ञान-आधार, रसायन हैं अचला के।
सुरुचि विचार विवेक विज्ञता के हैं आकर, हैं अपार अज्ञान-तिमिर के प्रखर प्रभाकर।
परम खिलाड़ी प्रभु-करों के लोकोत्तर गेंद हैं, भव-सागर के सेतु ये जगत-उजागर वेद हैं ॥१॥
जब सारा संसार अचेतन पड़ा हुआ था, निज पाँवों पर जीव नहीं जब खड़ा हुआ था।
रहा जिन दिनों अन्धकार भूतल पर छाया, जब न ज्ञान-रवि-बिम्ब निकलने भी था पाया।
तभी प्रकट हो जिन्होंने बतलाये सब भेद हैं, वे ही सारे लोक के दिव्य विलोचन वेद हैं ॥२॥
जिनके सिर पर मुकुट जगत-गुरुता का राजे, जिनके मुख पर लोक-चकित-कर ज्योति विराजे।
जिनके कर में भुक्ति मुक्ति का सूत्र लसा है, जिनका सारा अङ्ग अलौकिक सुरभि-बसा है।
जिनके पूत प्रभाव से मिटे भव-जनित खेद हैं, सकल अपावनता-दमन ये जगपावन वेद हैं ॥३॥
कामधेनु सी कामद उनकी रुचिर ऋचा है, उनका पूत प्रसङ्ग निराली सुधा-सिँचा है।
वे हैं चिन्तामणि समान चिन्तित-फल-दाता, उनसे सब कुछ जगत कल्पतरु लौं है पाता।
परम अगम भव-पन्थ चल जो जन डूबे स्वेद हैं, उनको मलय-समीर लौं महामोद-प्रद वेद हैं ॥४॥
वे बहु-साधन-विटप-वृन्द के हैं वर थाले, सकल यम नियम गये गोद में उनकी पाले।
श्रद्धा औ विश्वास हुए लालित उनसे ही, विमल सरोवर भक्ति-कमलिनी के हैं वे ही।
अपरा-विद्या-मेदिनी-मूल-भूत इव मेद हैं, सुरभि परा-विद्या-सुमन बुध-जन-वन्दित वेद हैं ॥५॥
इनमें से ही ज्योति जगमगा कर वह फूटी, जिससे विकसित हुई सभ्यता जड़ता छूटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके ही अभिनन्दनीय कल कान्ति सहारे, दमक रहे हैं सकल-जगत-मत के द्दग-तारे।
आँख डाल कर देखिए मिलते अल्प विभेद हैं, सकल-धर्म-सिद्धान्त के अवलम्बन ये वेद हैं ॥६॥
बुद्धदेव का परम दिव्य दीपक अवलोका, ईसा का बहु-विदित दमकता लम्प विलोका।
देखी अति कमनीय शमा ज़रदुस्त-जलाई, निपट कान्त कन्दील मुहम्मद की दिखलाई।
पर विकाश की दृष्टि से ये सर्वथा अभेद हैं, करते आलोकित इन्हें आलोकाकर वेद हैं ॥७॥
चाहे त्रिपिटक निज विभूति उनको बतलावें, चाहे उनको जैन ग्रन्थ निज वस्तु बनावें।
निज-अनुभव-फल उन्हें क्यों न इनजील बखाने, उनको ज़िन्द कुरान भले ही स्व-विभव माने।
किन्तु सत्य हम कथन कर नहिँ करते विच्छेद हैं, सार्वभौम सिद्धान्त के आदि-प्रवर्तक वेद हैं ॥८॥
प्लेटो गेटे का अलाप अनुपम सुन पाया, कैंट के परम ललित लयों ने बहुत रिझाया।
सुपनहार की मधुर तान ने हृदय लुभाया, स्पेंसर के अति सरस राग ने मुग्ध बनाया।
दान्ते के कल-गीत से मिटते मानस क्लेद हैं, पर स्वर से जाना, उन्हें स्वरित बनाते वेद हैं ॥९॥
ऐसा व्यक्ति विशेष सभी मत है बतलाता, जिसके माने बिना मुक्ति कोई नहिँ पाता।
किन्तु एक वैदिक मत ही ऐसा है प्यारे, जिसमें नर तरता है निज व्यक्तित्व सहारे।
रख सुकर्म-रत फलों में उपजाते निर्वेद हैं, केवल ज्ञान-प्रभाव से मुक्ति दिलाते वेद हैं ॥१०॥
किसी जाति, मत, पन्थ का मनुज कोई होवे, जो प्रभु-पद को गहे मलिनता चित की खोवे।
सदाचार-रत रहे पाप तज जग-हित साधे, तो वह होगा मुक्त बिना प्रतिभू आराधे।
गिरा परम गम्भीर से करते भ्रम-उच्छेद हैं, मुक्त कण्ठ से बात यह कहते केवल वेद हैं ॥११॥
जब उपासनायें प्रतीक हैं काम चलाती, नर-उर में विज्ञान-ज्योति है जब जग जाती।
मध्य दशाओं सहित दशा यह आदिम अन्तिम, जिनमें पड़ कर हुई मनुज की महिमा अप्रतिम।
उनके अति व्यापक फलद कहे भेद उपभेद हैं, क्योंकि सर्वदर्शी विशद सर्व ज्ञानमय वेद हैं ॥१२॥
किसी ग्रन्थ, मत, पन्थ धर्म-साधन का खण्डन, वे नहिँ करते मिले क्योंकि वे हैं महि-मण्डन।
वे हैं उनके जनक, विकासक, जीवन-दाता, वे तब थे जब था न किसी का नाम सुनाता।
इसीलिए यद्यपि नहीं वे रखते सम्भेद हैं, तो भी उन पर प्रेम-जल-अर्पण करते वेद हैं ॥१३॥
पञ्चभूत जल, पवन आदि ऊपर है जैसा, प्राणिमात्र-अधिकार वेद पर भी है वैसा।
उनकी ऊँची आँख नहिँ कहीं पर है अड़ती, वह समान सब जाति देश पर ही है पड़ती।
सदा तुल्य उनके लिए यूरप, अन्तर्वेद हैं, सकल-जगत-हित में निरत विश्व-प्रेम-रत वेद हैं ॥१४॥
थोड़ा अन्तर भ्रातृ-भाव में है रह जाता, वैदिक मत है इसी लिए यह पाठ पढ़ाता।
मानव ही को नहीं सभी जीवों को मानो, निज आतमा समान आतमा सब की जानो।
वंश-जाति-गत दृष्टि का वे करते उद्भेद हैं, है कुटुम्ब वसुधा सकल यह बतलाते वेद हैं ॥१५॥
आये दिन ये शैव वैष्णव रगड़े कैसे, धर्म्म-सभा के औ समाज के झगड़े कैसे।
हमें बता दो सौर, शाक्त क्यों हैं लड़ पड़ते, क्यों वेदान्ती लोग कुछ दगों में हैं गड़ते।
लोग परस्पर किस लिए करते वृथा कुरेद हैं, जब कि धर्म के विषय में मान्य सभी के वेद हैं ॥१६॥
हैं विचित्रतायें विचार-रुचि की स्वाभाविक, किन्तु न होगा उचित काक बन जावे यदि पिक।
भिन्न-भिन्न-मत-गत विचित्रता ही है जीवन, यदि समाज के लिए बने वह जड़ी सजीवन।
किन्तु लोक-हित हृदय में जो जन करते छेद हैं, वे न जानते मर्म हैं न तो मानते वेद हैं ॥१७॥
विविध गठन औ रूप, रङ्ग जिनका हैं पाते, वे बाजे हैं सदा मिलाने से मिल जाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रखते हुए स्वकीय भाव सारा ढँग न्यारा, वे मिलते हैं एक-देह-व्यापी स्वर द्वारा।
बने भले ही नित रहें जितने उचित प्रभेद हैं, पर वे हृदय मिले रहें जिनमें बसते वेद हैं ॥१८॥
गजरों में है विविध फूल को सूत्र मिलाता, गहनों में है विविध नगों का मेल दिखाता।
वे सब न्यारा रूप, रङ्ग अपना नहिँ खोते, पर तो भी हैं एक सिद्धि के साधन होते।
यों ही शुभ उद्देश से हम पूछते सखेद हैं, क्या वे मिल सकते नहीं जिन्हें मिलाते वेद हैं ॥१९॥
मिल सकते हैं, जो न भूल अपने को जावें, करें सत्य को प्यार कलह को मार भगावें।
धर्म-ओट में कभी न जी का मैल निकालें, रखें प्रेम का मान सुजनता को प्रतिपालें।
पर को खेदित कर न जो रहते स्वयं अखेद हैं, सुख उनका संसार में उज्ज्वल करते वेद हैं ॥२०॥
प्रभो! प्रभा वैदिक मत की भूतल में फैले, लघु बातों के लिए न होवें मानस मैले।
सब सच्चे जी से कुटुम्ब वसुधा को मानें, विश्व-प्रेम के महा मन्त्र की महिमा जानें।
हुए वितण्डा-वाद में जिनके बाल सुपेद हैं, वे अभिज्ञ हों देवता शान्ति-मन्त्र के वेद हैं ॥२१॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

मंसूरी।

देहरादून से पश्चिम की ओर, १४ मील की दूरी पर, यह छोटी पर अत्यन्त रमणीय पहाड़ी नगरी है। १८२३ ईसवी में पहले पहल कप्तान यंग (Capt. Young) नामी एक अँगरेज़ ने मंसूरी की नींव डाली। फिर ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों मंसूरी के स्वच्छ और नीरोग जल-वायु ने और लोगों का भी मन अपनी ओर आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक कि आज, ९३ वर्ष बाद, मंसूरी की गणना भारतवर्ष के उत्तमोत्तम पहाड़ी स्थानों में है।

१८१५ ईसवी में जब गोरखों और अँगरेज़ों का युद्ध समाप्त हुआ और देहरादून पूर्ण रूप से अँगरेज़ों के अधीन हो गया, तब देहरादूनवासी अँगरेज़ों की आँखें ऊपर की ओर पहाड़ देख देख कर ललचाने लगीं। इस पर गवर्नमेंट ने १८१७ ईसवी में अस्वस्थ गोरों के लिए मंसूरी पर एक "डिपो" स्थापित किया। तभी से मंसूरी की उन्नति का श्रीगणेश हुआ।

जिस समय लकसर-हरद्वार रेलवे की शाखा न थी उस समय मंसूरी आने वालों को बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। १८९९ ईसवी में यह लाइन खुल गई। तब से मंसूरी आने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। थोड़े दिनों से ओ० आर० रेलवे की इलाहाबाद—देहरा मेल ट्रेन चलने लगी है। उससे मंसूरी आने वालों को और भी सुगमता हो गई है। यदि आप इलाहाबाद से १२ बजे दिन को देहरा मेल पर सवार हों तो दूसरे दिन सबेरे ८ बजे आप देहरा पहुँच जायँगे। देहरे से राजपुर तक ७ मील ताँगे या टमटम पर और बाक़ी ७ मील घोड़े या डाँडी की सवारी से चलना पड़ेगा। ऊपर चढ़ने के लिए इन पिछले दो वाहनों के सिवा और कोई साधन नहीं है। आपका असबाब नैपाली क़ुलियों के द्वारा ऊपर पहुँचाया जायगा। मुख्य कर यही लोग बोझ ढोते हैं। ये गढ़वाली क़ुलियों की अपेक्षा अधिक मज़बूत होते हैं।

राजपुर से चल कर जब आप आधे रास्ते पर पहुँचेंगे तब सर्व प्रथम आपको नेपाल के परलोकगत महाराना देव शमशेर जङ्ग बहादुर के० सी०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एस० आई० का सुविशाल महल देख पड़ेगा। वहीं पर सेन्ट जार्ज कालेज, ईस्ट इंडियन रेलवे स्कूल तथा एक और स्कूल आपके दृष्टिगोचर होगा। थोड़ी दूर आगे चल कर, बारलूगञ्ज नाम का एक छोटा सा बाज़ार मिलेगा। वहाँ से दो रास्ते दो तरफ़ को गये हैं। यदि आप लैन्डोर की तरफ़ जाना चाहते हैं तो दाहनी ओर और यदि मंसूरी को तो बाँई ओर का रास्ता लेना चाहिए।

मंसूरी मुख्यतः दो भागों में विभक्त है। एक तो लैन्डोर, जहाँ पर सरकारी छावनी, सरवे इत्यादि के दफ़र तथा एक बहुत बड़ा हिन्दुस्तानी बाज़ार है। दूसरा भाग मंसूरी कहलाता है। वहीं मंसूरी का पुस्तकालय, मंसूरी के मुख्य होटल, तथा अँगरेज़ी दुकानें आदि हैं। पुस्तकालय के सामने एक सुन्दर "बैन्ड स्टैन्ड", महाराजा कपूरथला का बनवाया हुआ है, जहाँ हर दूसरे दिन गोरों का बैंड बाजा बजता है। मंसूरी के होटलों में सवाय, चारलेविल, ग्रैंड सेंट्रल, सिसिल, तथा रायल होटल बहुत प्रसिद्ध हैं। और भी बहुत से छोटे छोटे होटल तथा बोर्डिंग हाउस हैं। वे लगभग ५० के होंगे। मंसूरी में ईस्ट इंडियन रेलवे स्कूल, सेन्ट जार्ज कालेज, सेन्ट फिटलिस हाई स्कूल, कनवेन्ट आफ जीजस मैरी, केलैनविल हाउस स्कूल, उडस्टाक कालेज, हेम्पटन कोर्ट कालेज, माडर्न स्कूल, जूनियर मंसूरी स्कूल, उडलैन्डस् स्कूल, लैन्डोर बोर्डिंग एंड डे-स्कूल, समर होम (गोरे सिपाहियों के लड़कों के लिए) तथा एक मिडिलची म्युनिसिपल स्कूल हैं। इनमें से कुछ लड़कियों के और बाक़ी सब लड़कों के लिए हैं। मंसूरी में अस्पताल भी बहुत से हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—चैरीटेब्ल हासपिटल, यूरोपियन-काटेज हासपिटल, मिलीटरी स्टेशन हासपिटल और सेन्टजान वार ऐम्बुलेन्स हासपिटल।

मंसूरी में जिधर जाइए उधर ही आपको सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलेंगे। बरसात के दिनों में कुल मंसूरी नन्दनकानन के समान फूलों से भर जाती है। जिधर आँख उठा कर देखिए उधर फूल ही फूल नज़र आवेंगे। मंसूरी में मुख्य करके नीचे लिखे स्थान देखने या सैर करने योग्य हैं—महाराज कपूरथला का महल, केम्पटी नामक प्रपात, मकीनन्स पार्क (बाग़), क्लाउड-यंड, केलावली, जबरखेत तथा जमुनाब्रिज।

मंसूरी से शिमला १४४, चकराता ३८, टिहरी ४२, अलमोड़ा १३६, नैनीताल १६८, तथा केदारनाथजी १८९ मील पैदल के रास्ते से हैं। भारत की यह सुविशाल पहाड़ी नगरी समुद्रतल से ७००० फ़ीट ऊँची है।

गयाप्रसाद गुप्त

बिन्दु और सिन्धु।

(बँगला से)

है तू सिन्धु अपार विस्तृत तथा तेरा नहीं अन्त है;
तेरा वीचि-विलास अद्भुत महा तू मान्य श्रीमन्त है।
मैं हूँ क्षुद्र नितान्त तुच्छ सबसे पाता तिरस्कार हूँ—
यों बोला जल-बिन्दु एक जग में मैं हाय निःसार हूँ॥
यों वाणी सुन सिन्धु ने तब कहा गाम्भीर्य्य को प्राप्त हो
मेरे तो तुम देह प्राणमय हो, प्रत्यङ्ग में व्याप्त हो।
होगा सिन्धु कहीं न विश्व भर में देखो बिना बिन्दु के।
सारे वैभव-शक्ति मूल तुम ही हे बिन्दु! हो सिन्धु के॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय

कौंसिल में हिन्दी।

जिस समय सर अन्टोनी मेकडानल इस प्रान्त के लफ्टिनेंट गवर्नर थे उस समय, १६०० ईसवी में, उन्होंने यह नियम कर दिया कि दीवानी, फ़ौजदारी और माल की किसी भी अदालत में, जिसका जी चाहे देवनागरी-लिपि में अर्ज़ी-दावे और अरज़ियाँ दे और जिसका जी चाहे फ़ारसी-लिपि में। उन्होंने यह भी नियम कर दिया कि समन और भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न प्रकार की विज्ञप्तियाँ आदि हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में कचहरियों से जारी की जायँ। अँगरेज़ी के दफ़्तरों को छोड़ कर और कचहरियों के कर्म्मचारियों को साल भर के अन्दर हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषायें सीख लेने का भी हुक्म हो गया। इससे देवनागरी-लिपि में अर्ज़ियाँ इत्यादि लेने और समन इत्यादि निकालने वाली अदालतों के हाकिमों और मुलाज़िमों के लिए दोनों लिपियाँ जानना आवश्यक हो गया। यह सब कुछ तो हुआ, पर जिन लोगों के बाप-दादों की बदौलत नागरी-लिपि उत्पन्न हुई और अब तक जीती है, जिनके धर्म्म-कर्म्म के सारे ग्रन्थ इसी लिपि में हैं, मरने के समय जिनके कान में इसी लिपि में लिखे गये धर्म्मोपदेश और राम-नाम पड़ते हैं उन्हीं की कृपा से सर अन्टोनी मेकडानल की पूर्वोक्त आज्ञा यथेष्ट फलीभूत न हुई। उन्होंने अपनी पूर्वपरिचित भाषा और टेढ़ी-मेढ़ी लिपि लिखना न छोड़ा। यदि किसी ने इस आज्ञा-पत्र के अनुसार देवनागरी-लिपि से काम लेना भी चाहा तो उदारता के इन अवतारों में से अधिकांश ने उसके मार्ग में बबूल के बड़े बड़े काँटे बखेरने से हाथ न हटाया। यदि ये लोग अपने कर्तव्य का पालन करते तो करोड़ों आदमियों को लाभ पहुँचता। अब तक वे देवनागरी में ही कचहरी का काम करने लग जाते और समन, इत्तिलानामे आदि पढ़ाने के लिए उन्हें कोसों न दौड़ना पड़ता। उर्दू की तरह वे हिन्दी (देवनागरी) में भी लिखे जाते। अभी तो समनों की देवनागरी वाली फ़र्दें बहुधा कोरी ही रह जाती है। अभी उस दिन हमने एक ऐसा समन देखा जो छपा देवनागरी में था, पर ख़ानापुरी की गई थी फ़ारसी-लिपि में!

पूर्वोक्त आज्ञा देकर गवर्नमेंट ने अधिकांश लोगों के लिए बहुत सुभीता कर दिया। उसे करना ही चाहिए था। प्रजा-रक्षक राजा का यह कर्तव्य ही है। इन प्रान्तों में हिन्दी भाषा और देवनागरी-लिपि के जानने वाले ही अधिक हैं। इसी से गवर्नमेंट ने यह भी नियम कर दिया है कि—

(१) आई० सी० एस० श्रेणी के बड़े बड़े कर्म्मचारियों, (२) डिपटी कलेक्टरों और (३) पुलिस के असिस्टंट और डिपटी सुपरिंटेंडेंटों के लिए भी देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपियाँ जानना ज़रूरी है। अब तो वह लीडरों, वकीलों और एल-एल० बी० की परीक्षा पास क़ानूनदाँ लोगों को भी देवनागरी-लिपि और हिन्दी भाषा सीखने के लिए मजबूर करती है। याद रहे, यही लोग बहुत करके मुन्सिफ़ और सब-जज नियत होते हैं। अर्थात् नागरी और फ़ारसी, दोनों लिपियों से इनका परिचय पहले ही से रहता है।

एक मुन्सिफ़ साहब ने गवाहों के बयान देवनागरी-लिपि में लिख डाले। इस पर होहल्ला मचा। अख़बारों में लेख निकले। कहा गया कि नागरी-लिपि में बयान क्यों लिखे। फ़ारसी में ही लिखना था। इस पर माननीय चिन्तामणि ने प्रान्तिक कौंसिल में कुछ पूछ-पाछ की। उसका क्या परिणाम हुआ, यह सरस्वती की पिछली संख्या में प्रकाशित ही हो चुका है। गवर्नमेंट ने कह दिया, वर्तमान पद्धति में फेरफार न किया जायगा। अर्थात् इज़हार आदि आज कल सब फ़ारसी-लिपि में लिखे जाते हैं। वे वैसे ही लिखे जायँगे। इससे माननीय महाशय की परितुष्टि न हुई। इस कारण, २६ फ़रवरी १७ की बैठक में, उन्होंने प्रान्तीय कौंसिल में एक प्रस्ताव उपस्थित किया। उसका आशय यह था—

> जो लोग मुन्सिफ़ और सब-जज (सदरआला) नियत हों उनके लिए केवल फ़ारसी-लिपि में हिन्दुस्तानी (उर्दू) भाषा लिख-पढ़ सकना ही लाज़मी न समझा जाय, देवनागरी-लिपि में हिन्दी-भाषा लिख-पढ़ सकना भी लाज़मी समझा जाय।

उन्होंने इस प्रस्ताव का उत्थापन बड़ी योग्यता से किया। अच्छी युक्तियों से काम लिया। तर्क-सङ्गत भाषण किया। अपने कथन की पुष्टि में प्रमाण भी दिये। बलाबल का ख़ूब विचार किया। कहा—गवर्नमेंट ही के कर्म्मचारियों के हाथ से लिखी गई मनुष्य-गणना की रिपोर्टों से मेरे प्रस्ताव के "पास" किये जाने की आवश्यकता सिद्ध है। इस प्रान्त में हिन्दी जानने वाले कोई ४४ करोड़, और उर्दू जानने वाले केवल ४१ लाख हैं। अर्थात् १० हज़ार आदमियों में से ९,११६ आदमी हिन्दी और केवल ८८३ उर्दू बोलने वाले हैं। अतएव, गवर्नमेंट को मेरी बात मान लेनी चाहिए और मुन्सिफ़ों तथा सब-जजों के लिए यह आज्ञा हो जानी चाहिए कि वे देवनागरी-लिपि में हिन्दी-भाषा भी लिख-पढ़ सकने की योग्यता प्राप्त कर लिया करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

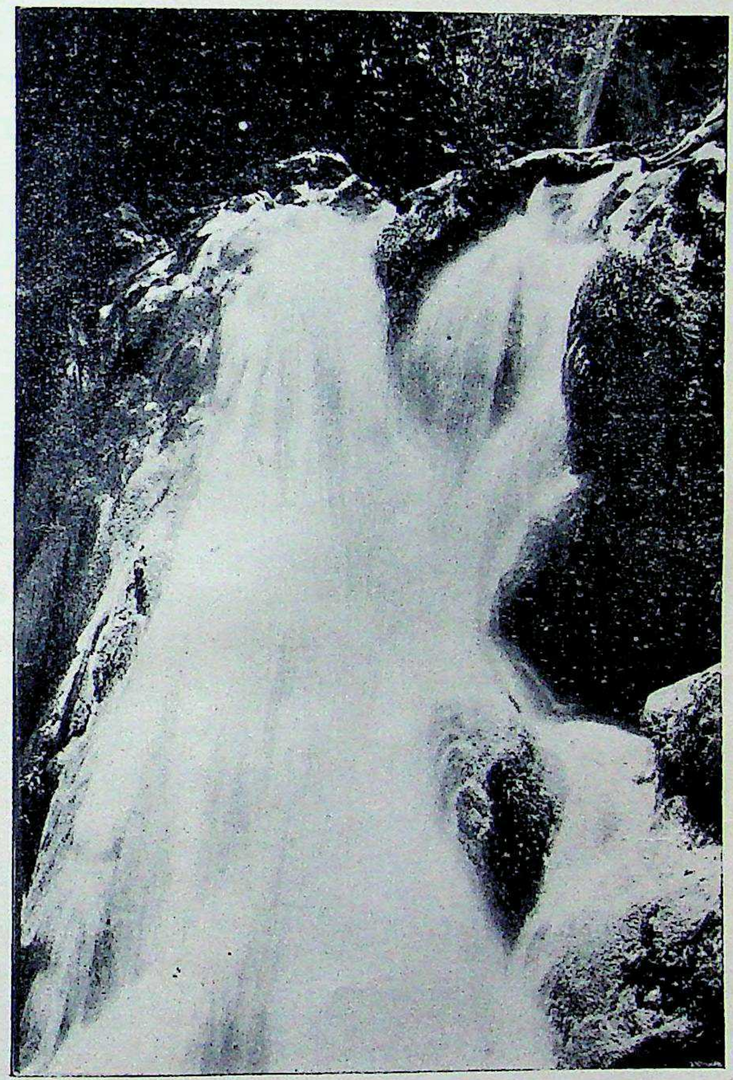

मंसूरी का केम्पटी नामक जल-प्रपात ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय लाला मधुसूदनदयाल ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

इसका विरोध माननीय नवाब अब्दुलमजीद ने किया। आपने प्रस्ताव के शब्दों का कुछ भी ख़याल न करके अधिकतर अप्रासङ्गिक बातों ही के द्वारा अपने हृदय के विकार प्रकट किये। आपने कहा—

(क) हिन्दी-उर्दू का झगड़ा ज़िन्दा रखने के लिए ही यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया है।

(ख) उर्दू-भाषा मुसलमानों ही की बदौलत अस्तित्व में आई और उन्नति को पहुँची है। वह अब सारे भारत की राष्ट्र-भाषा (Lingua Franca) है। देहाती गँवार तक उसे बोल सकते और समझ सकते हैं। जिसे हिन्दी कहते हैं वह सर्वसाधारण की भाषा नहीं।

(ग) अँगरेज़ी राज्य के पहले हिन्दी-भाषा का नाम तक किसी को न मालूम था। हिन्दी-लिपि शायद रही हो, पर उस लिपि में अपने विचार प्रकट करने वाले लोग गँवार ही समझे जाते थे।

(घ) हिन्दी-भाषा अच्छी तरह समझ लेना मुसलमानों के लिए कठिन काम है, क्योंकि उसमें संस्कृत के लम्बे लम्बे शब्द रहते हैं।

(ङ) हिन्दी-लिपि लिखने वाले स्वयं ही उस लिपि को आसानी से नहीं पढ़ सकते। उसे लिखने में फ़ारसी-लिपि से अधिक देरी भी लगती है। मुसलमान कठिनता से उसे सीख सकते हैं।

यह सुन कर कौंसिल के प्रेसीडेन्ट ने कहा कि आपका यह कथन अप्रासङ्गिक है। तब और कुछ कह कर आप बैठ गये।

गवर्नमेंट की तरफ़ से माननीय मिस्टर बर्न ने भी इस प्रस्ताव का प्रतिवाद किया। आप ने जो दलीलें पेश कीं उनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं—

(च) मुन्सिफ़ों और सब-जजों को नागरी-लिपि में लिखी हुई बहुत कम दस्तावेज़ें देखने की ज़रूरत पड़ती है। फ़ारसी-लिपि में ही अधिकांश दस्तावेज़ें पेश की जाती हैं।

(छ) हाईकोर्ट के एक हिन्दुस्तानी जज की राय है कि इस सूबे के शिक्षित आदमियों को हिन्दी पढ़ने में बड़ी दिक़त होती है। एक बारिस्टर ने मुझ से उस दिन यह कहा कि हिन्दी की कुछ दस्तावेज़ें पढ़ सकने वाला एक भी आदमी इलाहाबाद में उन्हें न मिला।

(ज) जो लोग कचहरियों की शरण लेते हैं वे वकीलों और मुख़तारों से अर्ज़ियाँ वग़ैरह लिखाते हैं और ऐसे वकील-मुख़तार बहुत ही थोड़े हैं जो देवनागरी लिख सकते हों, या लिखना चाहते हों।

अतएव हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि का जानना लाज़मी कर देने से कुछ फ़ायदा न होगा।

इसके बाद माननीय मिस्टर रज़ाअली ने यह उपप्रस्ताव पेश किया—

(झ) प्रस्ताव से—"देवनागरी-लिपि में हिन्दी-भाषा"—निकाल दी जाय। उसकी जगह पर—"फ़्रेंच, रशियन, इटालियन या फ़ारसी"—कर दी जाय।

आपने कहा—

(ञ) हिन्दी कोई भाषा नहीं। १९०० या १८९८ ईसवी के पहले का ऐसा एक भी सरकारी लेख या काग़ज़ नहीं पेश किया जा सकता जिसमें गवर्नमेंट ने हिन्दी को भी कोई भाषा माना हो। जब वह कोई भाषा ही नहीं तब फ़्रेंच और रशियन आदि का जानना क्यों न लाज़मी कर दिया जाय? इससे उन मित्र-राज्यों से हमारा सम्बन्ध और भी गहरा हो जायगा जो हमारे साथ लड़ रहे हैं।

(ट) इस प्रान्त में इतने आदमी उर्दू बोलते हैं इतने हिन्दी, इसका हिसाब जैसा बताया गया है, ठीक नहीं। मर्दुमशुमारी के अङ्क विश्वास-योग्य नहीं। मुसलमान शुमारकुनिन्दों ने लोगों की भाषा उर्दू लिख दी है, हिन्दुओं ने हिन्दी।

माननीय ख़ान-बहादुर सैयद अलीनबी और माननीय वज़ीरहसन ने भी प्रस्ताव का विरोध किया। पर अपने कथन की पुष्टि में कोई अच्छी दलील नहीं पेश कर सके। माननीय वज़ीरहसन ने जो कुछ कहा, अधिक असंयत भाषा में नहीं कहा। उन्होंने कहा कि जिस भाषा में रामायण है क्या वही भाषा इस प्रान्त के लोग बोलते या लिखते हैं?

इस प्रस्ताव के विरोध में जो सङ्गत या असङ्गत और प्रासङ्गिक या अप्रासङ्गिक बातें कही गईं सब का युक्तिपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर माननीय पण्डित तारादत्त गैरोला, लाला सुखवीरसिंह, पण्डित राधाकृष्णदास और स्वयं प्रस्तावकर्त्ता महाशय ने दिया । प्रत्येक दलील की असारता सिद्ध कर दी गई । पर प्रस्ताव "पास" न हुआ । जिस प्रस्ताव का विरोध गवर्नमेंट करती है वही नहीं "पास" हो सकता । इसके विरोधी तो हमारे मुसलमान महाशय भी थे । अतएव इसकी जो दशा हुई वही इसके भाग्य में थी । तथापि जिस योग्यता से प्रस्ताव-कर्त्ता ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया और जिस योग्यता से उन्होंने तथा उनके साथी अन्य हिन्दू मेम्बरों ने विरोधियों की बातों का उत्तर दिया, उसके लिए वे हिन्दी के प्रेमियों के धन्यवाद-पात्र हैं ।

मुख्य प्रस्ताव नामंजूर होने पर माननीय रज़ाअली ने अपना फ्रेंच, रशियन आदि भाषाओं से सम्बन्ध रखने वाला उपप्रस्ताव बड़ी ख़ुशी से लौटा लिया और इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि इस प्रस्ताव का यही परिणाम होना चाहिए था ।

इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में विरोधी दल ने जिस प्रकार की युक्तियाँ लड़ाईं, जिस प्रकार के निःसार और निराधार उद्गार निकाले और जिस प्रकार एक ज़रा सी बात का बतङ्गड़ बनाया उससे सूचित हुआ कि या तो इस दल के माननीय मेम्बरों को अपने विषय की कुछ ख़बर ही नहीं, या ज़िद में आकर कुछ का कुछ कहने में उन्हें सङ्कोच ही नहीं हुआ । उनके प्रतिवाद-वाक्यों से अनभिज्ञता कम, पर हठ और आग्रह अधिक प्रकट हुआ । प्रजा के सुशिक्षित प्रति-निधियों में इस दोष का होना बड़े ही परिताप की बात है ।

प्रस्ताव से हिन्दी-उर्दू के झगड़े की ज़रा भी गन्ध नहीं आती । हिन्दी और उर्दू ये दोनों भाषायें इस प्रान्त में प्रचलित हैं । सब-जजों और मुन्सिफ़ों के लिए उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि जानने की क़ैद है । फिर कोई कारण नहीं कि वे हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि क्यों न जानें ? प्रजा का अधिकांश यही पिछली भाषा और पिछली लिपि जानता है । अतएव उनके जानने की तो और भी ज़रूरत है । फिर, प्रस्ताव में इसका कहीं उल्लेख नहीं कि पूर्वोक्त अफ़सर इस भाषा और इस लिपि में भी अपने फ़ैसले और गवाहों के बयान लिखा करें । जिस लिपि या जिस भाषा में वे लिखते आये हों, लिखते रहें । हिन्दी-नागरी से सिर्फ़ जानकारी प्राप्त कर लें । बस, और कुछ नहीं । सो इस इतनी सीधी सादी बात पर बड़े बड़े तूमार बाँधे गये और निराधार कल्पनायें की गईं । उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि को पदच्युत करने के लिए ज़रा भी कोशिश नहीं की गई । कोशिश सिर्फ़ इस बात की की गई कि सब-जज और मुन्सिफ़ थोड़ी सी हिन्दी भी जान लें और देवनागरी-लिपि भी सीख लें, जिससे हिन्दी के दस्तावेज़ और हिन्दी में लिखे हुए अर्ज़ीदावे तो वे पढ़ सकें । परन्तु इस इतनी ही कोशिश—और कोशिश भी ऐसी जो सर्वथा न्यायसङ्गत थी—करने वालों पर अनुदार आक्षेपों की झड़ी लगा दी गई ।

एक बात और भी विचार-योग्य है । गवर्नमेंट की वह आज्ञा तो रद हुई नहीं जिसकी रू से लोगों को अर्ज़ीदावे आदि देवनागरी-लिपि में देने की इजाज़त है । अब प्रश्न यह है कि यदि सब-जज और मुन्सिफ़ यह लिपि न जानेंगे तो इसमें लिखी गई अर्ज़ियाँ पढ़ कैसे सकेंगे ! या तो वह आज्ञा रद कर दी जाय या गवर्नमेंट के "मैन्युअल" में तदनुकूल फेरफार किया जाय । इसी फेरफार के लिए ही यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया था । इससे तो गवर्नमेंट को पूर्वोक्त आज्ञा के अनुसार काम होने में विशेष सुभीता होता ! चाहिए तो यह था कि गवर्नमेंट ख़ुद ही यह फेर-फार कर देती । पर यदि उसने स्वयं ही नहीं किया तो प्रार्थना की जाने पर तो कर देना था । वकालत या एल-एल० बी० की परीक्षा पास करके जो लोग मुन्सिफ़ होते हैं—और मुन्सिफ़ ही तरक़्क़ी पाकर प्रायः सब-जज हो जाते हैं—वे तो थोड़ा बहुत हिन्दी जानते ही हैं । उन्हें तो उसमें परीक्षा भी देनी पड़ती है । इस दशा में कुछ ही मुन्सिफ़ और सब-जज ऐसे होंगे जो हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि से अनभिज्ञ होंगे । तथापि, खेद की बात है, गवर्नमेंट ने, इतने पर भी, इस प्रस्ताव का विरोध किया । इस सम्बन्ध में गवर्नमेंट को उतना दोष नहीं दिया जा सकता जितना प्रतिवा-दकर्त्ता मुसलमान मेम्बरों को । गवर्नमेंट को अपनी नीति का भी पालन करना पड़ता है । किसी बात का विचार करते समय उसे अनेक दृष्टियों से देखना पड़ता है । जो बात उसे आज इष्ट जान पड़ती है, कारण उपस्थित हो जाने पर, वही कल उसे अनिष्ट मालूम होती है । क्योंकि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वेश्याङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा"

अतएव, सम्भव है, गवर्नमेंट ने किसी विशेष नीति के पालन के लिए ऐसे सीधे-सादे और अधिकांश प्रजा के लिए इतने सुभीते के प्रस्ताव का विरोध करना उचित समझा। अस्तु।

इस प्रस्ताव के अन्य विरोधियों की दलीलों का—दलीलों का क्या अप्रासङ्गिक और असार कथन मात्र का—खण्डन वहीं कौंसिल ही में कर दिया गया था। इसके बाद हिन्दी, उर्दू और अँगरेज़ी के अनेक समाचारपत्रों में भी समुचित उत्तर दिये जा चुके हैं। अतएव हमें इस सम्बन्ध में कुछ विशेष निवेदन करने की आवश्यकता नहीं। हम संक्षेप में ही इनकी बातों पर विचार करेंगे।

अच्छा, तो नवाब साहब की बातों का उत्तर लीजिए। कौंसिल में जो "स्पीचें" हुईं उनसे सिद्ध है कि मुसलमान महोदय हिन्दी का नाम सुनते ही चिढ़ते हैं। वे उर्दू को भारत के सारे मुसलमानों की तो भाषा बताते ही हैं; उसे वे संयुक्तप्रान्त के हिन्दुओं की भी भाषा बताते हैं। इतनी ग़लतबयानी करके भी वे शान्तिपूर्वक बहस नहीं करते; बहुत ही कड़वी और उत्तेजक बातें तक कह डालते हैं। विपरीत इसके हिन्दू, वाद-विवाद के समय, शान्ति और संयम को हाथ से नहीं जाने देते; जो कुछ कहते हैं सप्रमाण और तर्कसङ्गत कहते हैं। पर उनकी तर्क-सिद्ध बातों को ही मुसलमान-मेम्बर एक प्रकार का दोष समझते हैं। उन्होंने कौंसिल में यहाँ तक कह दिया कि प्रस्तुत प्रस्ताव में तर्क के सिवा और कुछ सार नहीं। उसके मंजूर हो जाने से कार्य्य-सिद्धि कुछ भी न होगी। जैसे असङ्गत, अनावश्यक और तर्कहीन बातें ही कार्य्य की सिद्धि और आवश्यकता की सूचक हों!

(क) प्रस्ताव में हिन्दी-उर्दू के झगड़े की कहीं बू तक नहीं। पर यदि प्रस्तावकर्त्ता ने हिन्दी को उर्दू का समकक्ष बना देने ही के इरादे से प्रस्ताव किया हो, तो भी उनका यह काम अनुचित नहीं कहा जा सकता। उर्दू को मुसलमान अपनी भाषा समझते हैं, हिन्दी को हिन्दू अपनी भाषा समझते हैं। उर्दू के प्रचार के लिए जिस तरह मुसलमान दत्तचित्त हैं उसी तरह हिन्दी के प्रचार के लिए यदि हिन्दू दत्तचित्त हों तो इसमें अस्वाभाविकता या अनौचित्य कैसा!

उर्दू का अब तक अकण्टक राज्य रहा है। कोई कारण नहीं कि, प्रजा के सुभीते के लिए, उस राज्य के कुछ अंश की अधिकारिणी हिन्दी भी न समझी जाय। जो बात जैसी है उसे वैसी ही रहने देना संसार की गति के सर्वथा प्रतिकूल है। मुसलमानों को पहले अलग "वोट" देने और अपने अलग मेम्बर कौंसिलों में भेजने का अधिकार न प्राप्त था। अब क्यों प्राप्त है? पहले उनके मकतबों के लिए अलग इन्स्पेक्टर्स न थे। अब क्यों हैं? नये म्युनीसिपैलिटी ऐक्ट में उनके लिए जो सुभीते किये गये हैं वे क्या पहले भी थे? यह कहाँ का न्याय है कि जिस बात से उन्हें लाभ पहुँचे उसके सम्बन्ध में तो वे हिन्दुओं से झगड़ा हो जाने की ज़रा भी परवा न करें, पर जिसके सम्बन्ध में उन्हें व्यर्थ ही अपनी हानि हो जाने का भय हो उसका उत्थान होते ही वे उसे दबाने की चेष्टा करें! जिस काम से झगड़े की सम्भावना हो उस पर तो दोनों पक्षों को खुले दिल से और भी अधिक विचार करना चाहिए। बिना विचार किये झगड़े की जड़ ही न जायगी। इसका भय सदा बना ही रहेगा। हिन्दी का प्रचार किसी के दबाने से दब नहीं सकता। अतएव उसका सामना करना ही चाहिए और आपस में फ़ैसला कर ही लेना चाहिए। हज़ारों हिन्दू उर्दू लिखते पढ़ते हैं। पर मुसलमान हिन्दी के नाम से ही कोसों भागते हैं। यह कैसी उदारता है! ऐसे बर्ताव से झगड़ा उत्पन्न होता और बढ़ता है, दबता या घटता नहीं। न हमें उर्दू से नफ़रत है और न हम उसे सीखना ही छोड़ना चाहते हैं; पर अपने सुभीते के लिए हिन्दी का प्रचार अवश्य चाहते हैं।

(ख) यह हम माने लेते हैं कि मुसलमानों ही की बदौलत उर्दू अस्तित्व में आई है। पर उसके उन्नायक एक मात्र मुसलमान ही नहीं। बहुत पुराने ज़माने से हिन्दू उर्दू-फ़ारसी सीखते आये हैं। उनकी लिखी हुई सैकड़ों पुस्तकें मौजूद हैं। अब तक भी कितने ही स्कूलों और कालेजों में उर्दू-फ़ारसी पढ़ानेवाले अध्यापक तक हिन्दू हैं। पञ्जाब और संयुक्तप्रान्त से उर्दू के कोड़ियों अख़बार ऐसे निकलते हैं जिनके लेखक और सम्पादक हिन्दू ही हैं। इस दशा में मुसलमानों को ही उर्दू की उन्नति का कारण समझना भ्रम के सिवा और क्या हो सकता है।

यदि उर्दू भारत की राष्ट्र-भाषा (Lingua Franca),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो उसके लिए इसी प्रान्त के मुसलमान क्यों इतना शोर मचाते हैं ? हिन्दुओं का तो ज़िक्र ही नहीं, और प्रान्तों के अधिकांश मुसलमान भी तो ऐसा नहीं करते। इस प्रान्त के अपढ़ गँवारों की भाषा उर्दू होना तो दूर की बात है, बङ्गाल, मदरास और बम्बई-प्रान्त के शिक्षित मुसलमान भी उर्दू नहीं बोलते। वे सब अपने अपने प्रान्त की बोली या भाषा बोलते हैं। यही हाल इस प्रान्त के देहाती मुसलमानों का भी है। इसके लिए प्रमाण की ज़रूरत नहीं। चाहे जिस मौज़े में चले जाइए। मुसलमानों की बोली में फ़ारसी-अरबी के क्लिष्ट शब्द कहीं ढूँढ़े न मिलेंगे। और जिस भाषा में इस तरह के शब्दों की भरमार नहीं, वह हिन्दी के सिवा और कुछ नहीं। यही इस प्रान्त की प्रधान भाषा है।

(ग) अँगरेज़ी-राज्य के पहले हिन्दी का नाम यदि "हिन्दी" न रहा हो तो इससे हिन्दी का अस्तित्व-लोप तो सिद्ध होता नहीं। ज़रा आप आज़ाद की किताब आबे-हयात तो पढ़िए। कोई २०० वर्ष पूर्व भी मुसलमान-लेखकों तक ने "हिन्दी" का अस्तित्व स्वीकार किया है। जिसे उस समय कुछ लोग "भाषा" कहते थे वही आज कल, विशेषरूप से, हिन्दी कही जाती है। और, इस "भाषा" में अकबर और ख़ानख़ाना तक ने कविता की है। रसखानि, क़ादिर और जायसी आदि और भी कितने मुसलमान कवियों ने इसे अपनाया था, इसकी तो गिनती ही नहीं। सजीव भाषा में सदा ही परिवर्तन होता रहता है। सौ वर्ष पूर्व की उर्दू वैसी भाषा न थी जैसी आज कल की है। हिन्दी भी पहले की सी नहीं। पहले तो हिन्दी-उर्दू में बहुत ही कम अन्तर था। जब से मुसलमान उर्दू में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का मिश्रण बढ़ाने लगे, अतएव जब से वह साधारण हिन्दुओं की समझ में कम आने लगी, तभी से वह हिन्दी से दूर जा पड़ी और तभी से हिन्दी में संस्कृत-शब्दों के मेल की प्रवृत्ति बढ़ी। सच तो यह है कि आपकी उर्दू कोई जुदा भाषा ही नहीं। वह केवल हिन्दी है। हिन्दी-व्याकरण की सहायता के बिना उर्दू का एक भी वाक्य नहीं बोला जा सकता। वर्तमान उर्दू में १५० वर्ष पहले की लिखी हुई एक भी पुस्तक नहीं।

हिन्दी (देवनागरी) लिपि में जो अपने विचार प्रकट करे वह गँवार ! नवाब साहब ही ऐसा कह सकते हैं। यदि यही बात है तो बिहार, मध्य-प्रदेश और मध्य-भारत में जितने नाज़िर, पेशकार, महाफ़िज़ दफ़्र, वकील, मुख़्तार, मास्टर और इन्स्पेक्टर कचहरियों और स्कूलों में देवनागरी-लिपि लिखते हैं वे सभी गँवार ठहरे !!! हिन्दी-लिपि लिखने वालों को हमारे मुसलमान भाई किसी समय पहले शायद गँवार समझते रहे हों, पर अब तो वे गँवार नहीं समझे जाते। अतएव आपको भी अब अपने पुराने विचार बदल डालने चाहिए। पुराने ज़माने में गँवार ही यह लिपि न लिखते थे, संस्कृत के बड़े बड़े पण्डित भी लिखते थे। वे गाँवों में भले ही रहते थे; पर अब भी तो सैकड़ों, हज़ारों विद्वान् सदा नहीं तो कुछ समय तक गाँवों में रहते हैं। इससे वे गँवार नहीं हो जाते। जिस लिपि में गोखले, भाण्डारकर, तिलक और मालवीय अपने विचार व्यक्त करें वह गँवारों की लिपि नहीं।

(घ) मुसलमान अत्यन्त क्लिष्ट अँगरेज़ी भाषा पढ़ कर पण्डित हो सकते हैं; पर संस्कृत-शब्द-प्रचुर हिन्दी समझ लेना उनके लिए कठिन काम है ! वे फ़्रेंच पढ़ लेंगे, बङ्गाल में रह कर बँगला जान लेंगे, महाराष्ट्र-प्रान्त में रह कर मराठी सीख लेंगे। पर हिन्दी उनके लिए हिब्रू है ! डाक्टर ग्रियर्सन, मिस्टर विन्सेंट स्मिथ, मिस्टर ड्यूहर्स्ट, मिस्टर ग्रूज़, मिस्टर पिनकाट, मिस्टर ग्रोलडम आदि अँगरेज़ हिन्दी के ज्ञाते हो सकते हैं, पर हमारे मुसलमान भाई नहीं ! नवाब साहब ही ऐसी बात मुँह से निकाल सकते हैं। उनकी इस असमर्थता पर दया आती है और ऐसे कथन पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। ख़ैर, आपको यदि हिन्दी अँगरेज़ी से भी अधिक कठिन मालूम होती है तो न पढ़िए। हम आपकी भाषा ख़ुशी से पढ़ेंगे। आप इतनी ही उदारता दिखाइए कि हिन्दुओं के सुभीते के लिए उन्हें उसे पढ़ने और उसका प्रचार करने दीजिए।

(ङ) हिन्दी लिखने वाले यदि उसे आसानी से नहीं पढ़ सकते, या देर से लिख-पढ़ सकते हैं तो आपकी बला से। आपसे, और आप जिनके प्रतिनिधि हैं उनसे, तो कोई उसे लिखाने-पढ़ाने की चेष्टा करता नहीं। आप उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि ख़ुशी से लिखिए पढ़िए। कृपा इतनी ही कीजिए कि औरों के मार्ग में काँटे न बखेरिए। जिन प्रान्तों में हिन्दी प्रचलित है वहाँ कोई काम कभी रुका नहीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

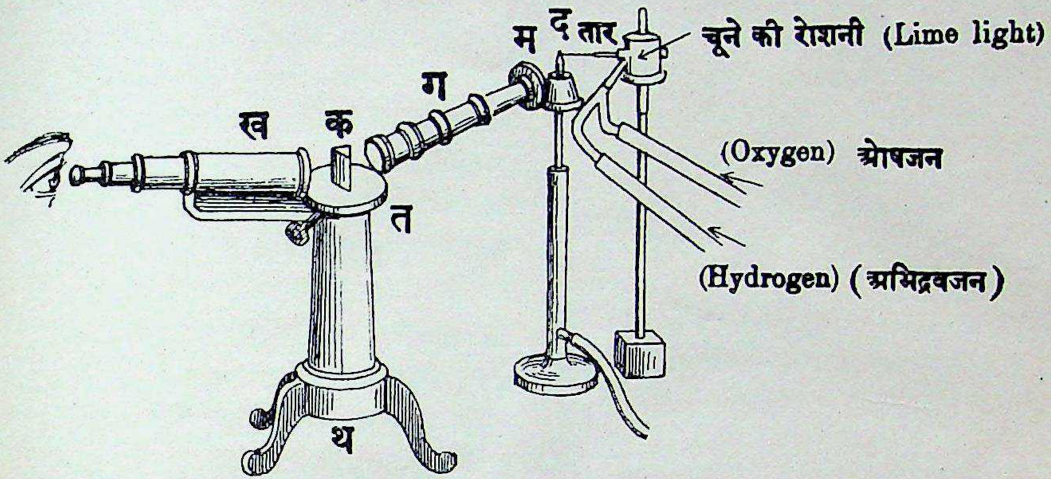

चित्र नं० १

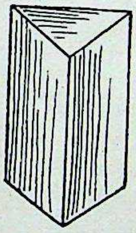

चित्र नं० २

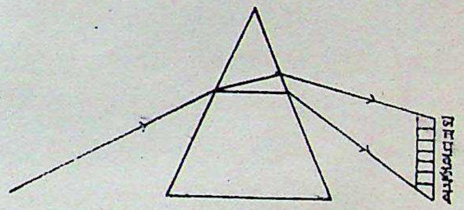

चित्र नं० ३

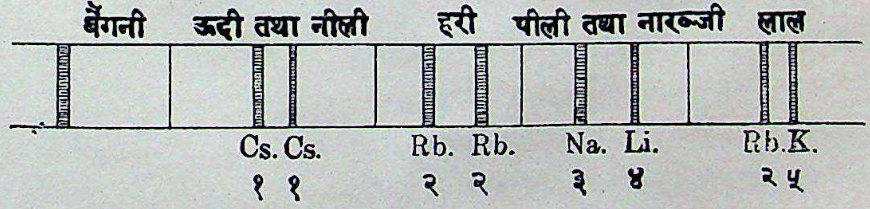

चित्र नं० ४

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न किसी को हिन्दी लिखने-पढ़ने में कुछ कठिनता ही हुई। आपके इस आक्षेप का खण्डन विहार और मध्यप्रदेश की सैकड़ों कचहरियां कर रही हैं।

माननीय बर्न साहब की (च), (छ) और (ज) दलीलों के उत्तर में हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि दस्तावेज़ें कम पेश की जाती हैं या ज़ियादह, इस पर पण्डित तारादत्त गैरोला की "स्पीच" आप सुन ही चुके हैं। पर इससे क्या बहस? जब गवर्नमेंट ने यह नियम कर दिया कि अर्ज़ीदावे देवनागरी-लिपि में भी दिये जा सकते हैं तब मुंसिफ़ों और जजों के लिए उस लिपि का जानना लाज़मी हो गया। कल्पना कीजिए, किसी मुंसिफ़ के यहां दायर किये गये किसी मुक़द्दमे में कोई ऐसी दस्तावेज़ पेश की गई जिसकी निसबत कुछ झगड़ा है—जिसका कुछ अंश एक पक्ष एक तरह पढ़ता है, दूसरा पक्ष दूसरी तरह। ऐसी दशा में यदि मुंसिफ़ वह लिपि जानता होगा तो उस मुक़द्दमे का फ़ैसिला करने में उसे विशेष सुभीता होगा या नहीं।

हाईकोर्ट के किसी जज और किसी बारिस्टर की बात पर विचार करने के पहले यह जानना होगा कि वह हिन्दी जानता भी है या नहीं। यदि वह स्वयं ही उससे अपरिचित है तो उसकी राय की क़ीमत ही कितनी! जिस इलाहाबाद से हिन्दी के एक नहीं कई पत्र और पत्रिकायें निकलती हैं और जहां स्त्रियां तक उनका सम्पादन करती हैं वहीं हिन्दी के दस्तावेज़ पढ़ने वाला एक भी आदमी न मिला! किमाश्चर्य्यमतः परम्! उन दस्तावेज़ों की लिपि मुँड़िया या विकृत कैथी रही होगी, देवनागरी नहीं। मुँड़िया, कैथी या विकृत हिन्दी से तो प्रस्ताव का कुछ सम्बन्ध ही नहीं।

बहुत ही कम अर्ज़ीनवीस, वकील और मुख़तार देवनागरी लिख सकते हैं, यह आपने बहुत ठीक कहा। पर इससे प्रस्ताव की आवश्यकता पूर्ववत् ही बनी रही। अच्छा, जो देवनागरी लिख सकते हैं उन्होंने यदि महीने में दो एक अर्ज़ियां उस लिपि में लिख डालीं और पेशकार तथा जज दोनों उस लिपि से अनभिज्ञ हुए तो? तो फिर यही होगा न—"जाव, उर्दू में लिखा लावो"? परन्तु यह प्रजा के सुभीते की बात न होगी।

माननीय मिस्टर रज़ाअली ने तो अपने साथी अन्य विरोधियों को भी मात कर दिया—

(झ) आप फ्रेंच सीखेंगे, रशियन सीखेंगे, इटालियन सीखेंगे; पर हिन्दी न सीखेंगे और किसी को सीखने भी न देंगे। आपकी इस अनुदारता पर आपके सभी समझदार सजातीयों को दुःख हुए बिना न रहेगा, क्योंकि—

चु अज़ क़ौमे यके बेदानिशी कर्द
न केहरा मंज़िलत मानद न मेहरा

आपके इस उप-प्रस्ताव से दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो हिन्दी से आपकी उत्कट घृणा, दूसरी अपनी भाषा उर्दू पर उत्कट प्रीति। हिन्दी से घृणा का कारण शायद यह होगा कि आप हिन्दी को उर्दू की विरोधिनी और उर्दू को अपदस्थ करने की चेष्टा करने वाली समझते हैं। पर यह आपका भ्रम है। हम आपकी इस घृणा-व्यञ्जक प्रवृत्ति की नक़ल नहीं करना चाहते। हम ज्ञान-प्राप्ति के लिए, व्यवहार-निर्व्वाह के लिए, मनोरञ्जन के लिए और आपकी धार्मिक पुस्तकों के परिशीलन से लाभ उठाने के लिए उर्दू ही नहीं, अरबी और फ़ारसी तक, समय, सदिच्छा और सुभीता होने पर, अवश्य पढ़ेंगे। जिन मुसलमान भाइयों के साथ हम आज कोई ८०० वर्षों से रहते हैं और जिनका और हमारा चोलीदामन का साथ है उनकी भाषा से घृणा करना मनुष्यत्व-सूचक नहीं। आप लोग हिन्दी न पढ़ें; हम आपकी भाषाओं और आपकी लिपि का ज्ञान प्राप्त करने में ज़रा भी अनुदारता से काम न लेंगे। परन्तु हम एक बात अवश्य करेंगे। अपनी भाषा पर आपकी जो उत्कट भक्ति है उससे हम सबक़ अवश्य सीखेंगे। हम आज से हिन्दी पर उसी तरह भक्ति करेंगे जिस तरह आप उर्दू पर करते हैं। अतएव जो लोग आज तक केवल उर्दू ही के कीड़े बने हुए हैं उन्हें अब से हिन्दी भी सीखनी चाहिए। हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हमारे बच्चे स्कूलों, पाठशालाओं और घरों पर सबसे पहले हिन्दी ही सीखेंगे। जो लोग उर्दू भाषा और फ़ारसी-लिपि में अख़बार और मासिक पुस्तकें निकालते हैं उन्हें हज़ार प्रयत्न करके हिन्दी भी सीखनी चाहिए और यदि सुभीता और सम्भव हो तो अपना कारोबार चलाने के लिए हिन्दी का ही आश्रय लेना चाहिए। जिनको अपनी मातृभाषा और अपनी पवित्र लिपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ज़रा भी अभिमान है उनको माननीय महोदय की मातृ-भाषा-भक्ति का अवश्य ही अनुकरण करना चाहिए। यदि हम अब भी उनसे यह गुण न सीखेंगे तो कभी न सीखेंगे।

(ज) हिन्दी सचमुच ही कोई भाषा नहीं! १९०० या १८६८ ईसवी के पहले के किसी भी सरकारी काग़ज़ में सरकार ने उसे कहीं भाषा नहीं माना! जब से इस सूबे में शिक्षा-विभाग बना और जब से स्कूल, कालेज और मदरसे खुले तब से जो हिन्दी और उर्दू की पढ़ाई का अलग अलग प्रबन्ध है वह सब माया-प्रपञ्च है! १९०० के पचीस तीस वर्ष पहले ही पदार्थविज्ञानविटप, जीवविज्ञानविटप, सरल-त्रिकोणमिति, भाषा-काव्यसंग्रह, अवधदेशीय भूगोल, भारत-वर्षीय इतिहास आदि हिन्दी की जो सैकड़ों पुस्तकें गवर्नमेंट के स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं वह सब ऐन्द्रजालिक खेल था! पण्डित वंशीधर वाजपेयी ने कोई ५० वर्ष पहले स्कूलों में पढ़ाई जाने के लिए जो भोजप्रबन्धसार, गणित-पाटी आदि कोड़ियों पुस्तकें प्रकाशित की थीं और जो बहुत समय तक जारी भी रहीं वह भी सब स्वप्न की सम्पत्ति थी! गवर्नमेंट के काग़ज़-पत्रों में फिर भला हिन्दी का नाम!

(ट) हिन्दी बोलने वालों की संख्या का ठीक ठीक हाल मरदुमशुमारी के सुपरिंटेंडेंट ब्लंट साहब को भी नहीं मालूम, शुमारकुनिन्दों को भी नहीं मालूम, हिन्दी बोलने वाले हिन्दू-मुसलमानों को भी नहीं मालूम। और मालूम हो कैसे सकता है! हिन्दी कोई भाषा भी हो! छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुसलमान, देहाती-शहराती सभी तो उर्दू बोलते हैं! फिर गिनती का झंझट कैसा!

माननीय वज़ीरहसन महाशय को सन्देह है कि रामायण की भाषा आज कल लोग नहीं बोलते। अतएव यदि वह हिन्दी मानी जाय तो वैसी हिन्दी आज कल प्रचलित नहीं। पर शेक्सपियर, बेकन और चासर की अँगरेज़ी आज कल ज़रूर बोली जाती है; इसी से अँगरेज़ी का प्रचार है। और उर्दू! अजी वह तो जब से पैदा हुई वैसी ही है। वली और आबरू, शाह हातिम और ख़ान आरज़ू जैसी उर्दू लिखते और बोलते थे वैसी ही आज भी तो लिखी और बोली जाती है! मिलान कर लीजिए। वली का कहना है—

बेवफ़ाई न कर ख़ुदा सों डर
जग-हँसाई न कर ख़ुदा सों डर
आबेहयात, संस्करण १८९६

कहिए, ऐसी ही उर्दू आज कल के शिक्षित मुसलमान बोलते और लिखते हैं न? और यही स्कूलों, कालेजों और कचहरियों में लिखी और बोली जाती है न? इसी से इसका प्रचार भी है। क्योंकि आज कोई १०० वर्षों से वह टस से मस हुई ही नहीं। और हिन्दी? वह तो बदल गई है! रामायण की भाषा कुछ और है और आज कल की कुछ और। रामायण की भाषा आज कल कोई नहीं बोलता। हाँ, वली की भाषा अलबत्ते सब लोग बोलते हैं! इस कारण वही सब के आदर की चीज़ होनी चाहिए।

अस्तु। ये तो प्रस्ताव के विरोधियों की असङ्गत और अप्रासङ्गिक दलीलों के थोड़े में उत्तर हुए। थोड़े में इसलिए कि इस विषय पर एक पुस्तक लिखी जाने की ज़रूरत है। पुस्तक में इस विषय का सविस्तर विवेचन होना चाहिए और उसका एक उर्दू-संस्करण भी निकलना चाहिए। क्योंकि हिन्दी हमारे मुसलमान भाई पढ़ेंगे नहीं। और अपनी बातें हम उन्हें सुनाना ज़रूर चाहते हैं। सो, इस लिए कि उनकी भाषा उर्दू से हमारा तिलमात्र भी विरोध नहीं। हज़ारों, लाखों हिन्दू उसे अब भी लिखते पढ़ते हैं और आगे भी लिखते पढ़ते रहेंगे। हमारी प्रार्थना केवल इतनी ही है कि हिन्दी हमारे घर की भाषा है। देवनागरी-लिपि हमारे धर्म्म-कर्म्म की पुस्तकों की लिपि है। अधिकांश लोग यही भाषा और यही लिपि जानते हैं। उनके सुभीते के लिए अपनी उर्दू के पास बेचारी गँवारू हिन्दी को भी बैठ जाने दीजिए। उर्दू अपने अधिकार पर आनन्द से आरूढ़ रहे। हिन्दी को केवल इतनी अनुमति दी जाय कि यदि कोई भूला भटका उसके पास तक पहुँचे तो वह उसकी सहायता कर सके। बस।

यदि हम लोग अपना कर्तव्यपालन करें तो इस काम के लिए न किसी से कुछ कहने की आवश्यकता, न कोई प्रस्ताव उपस्थित करने की आवश्यकता और न कोई "डेपुटेशन" ले जाने की आवश्यकता। यदि हिन्दी के हितैषी यह प्रतिज्ञा कर लें कि पहले अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ावेंगे, फिर और कोई भाषा; यदि मामले-मुक़द्दमे वाले यह प्रतिज्ञा कर लें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अर्ज़ी देंगे तो और दस्तावेज़ लिखेंगे तो देवनागरी-लिपि में, तो बिना कुछ और कारवाई किये ही सरकारी मैन्युअल में भी उचित फेरफार हो जाय, मुंसिफ़ और सब-जज भी हिन्दी जानने लगें और उर्दू के दास वकील-मुख़तार भी इसे सीख लें। जब पेट दबता है तब आराम, आत्माभिमान और अनुदारता सभी कुछ दब जाता है। पचास मुवक्किलों में से यदि २५ भी डाट कर वकील साहब से कह दें कि हमारा काम हिन्दी (देवनागरी) में कीजिए, नहीं हम और वकील ढूँढ़ लेंगे तो देखिए फिर वे कैसे हिन्दी नहीं सीखते। ये लोग ३० रुपये का मोटर-ड्राइवर और १५ रुपये का कोचमैन ख़ुशी से रक्खेंगे; पर अपने देश, अपनी भाषा और अपने भाइयों के सुभीते के लिए १०) रुपये पर एक हिन्दीदाँ मुहर्रिर न रक्खेंगे! इसका इलाज हमारे ही हाथ में है। और, अब समय आ गया है कि इस इलाज से काम लिया जाय। सरकार के भाव अनुदार नहीं। पर कोई नया काम करने के पहले वह उसकी आवश्यकता की जांच अवश्य कर लेती है। यदि वह उसकी आवश्यकता की क़ायल हो गई तो निःसङ्कोच कर डालती है। इस दशा में भाषा और लिपि से सम्बन्ध रखने वाले जो सुभीते हम चाहते हैं उनका होना, परोक्षभाव से, हमारे ही प्रण, परिश्रम और प्रयत्न पर अवलम्बित है।

आलोक-विश्लेषण-यन्त्र।

तथा

नक्षत्रों का शारीरिक सङ्गठन।

सांसारिक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए परम शक्तिमान् जगदीश्वर ने हम लोगों को नेत्र, कर्ण, त्वचा इत्यादि इन्द्रियाँ दी हैं। पर इन इन्द्रियों के होते हुए भी कितने ही पदार्थ ऐसे हैं जिनका ज्ञान प्राप्त करने के लिए बुद्धि तथा बुद्धि-निर्म्मित यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। ये यन्त्र उस काम में इन्द्रियों की सहायता करते हैं।

सूर्य्य, चन्द्रमा तथा तारागण सब देख पड़ते हैं। पर हम लोगों से हैं वे इतनी दूरी पर कि स्थूल नेत्रों द्वारा देख कर भी उनका कुछ भी वर्णन करना केवल दुष्कर ही नहीं, सर्वथा असम्भव है। उनकी यथार्थता की—उनके वास्तविक स्वरूप और स्थिति की—जाँच करने के लिए कुछ यन्त्रों की आवश्यकता होती है। आलोक-विश्लेषण-यन्त्र इन्हीं यन्त्रों में से है।

सूर्य्य।

यदि काँच के किसी त्रिकोण टुकड़े को (जैसा कि प्रायः रोशनी वाले झाड़ों के नीचे लटका रहता है और जिसे क़लम कहते हैं) आप अपने नेत्रों के निकट रक्खें तो उसके द्वारा देखे गये मकान, दीवार, घोड़े, बैल इत्यादि पदार्थ अपने असली रङ्गों में न दिखाई देंगे; बल्कि लाल, पीले, हरे, ऊदे इत्यादि रेखायुक्त रङ्गों में देख पड़ेंगे। यह तमाशा, बचपन में, अनेक लोगों ने, सैकड़ों बार, किया और देखा होगा। उसी त्रिकोण टुकड़े को अब आप किसी उजली दीवार या काग़ज़ के टुकड़े के निकट इस प्रकार से रखिए कि उसका निकला हुआ एक कोण आपके सामने हो और उस कोण के पीछे वाला समभाग दीवार के निकट हो—जैसा कि चित्र नम्बर २ में, काग़ज़ को दीवार मान कर, दिखलाया गया है। तब इसी निकले हुए कोण पर एक दर्पण-द्वारा सूर्य्य की किरणें डालिए। अब देखिए, त्रिकोण के पीछे, दीवार पर, एक इन्द्रधनुष (Spectrum) बन जायगा। ध्यानपूर्वक देखने से वर्षाकालीन इन्द्रधनुष के सदृश इस कृत्रिम इन्द्र-धनुष में भी सात रङ्गों की गांठें या लहरें देख पड़ेंगी। सबसे निचली गाँठ या लहर बैंगनी, उसके उपरान्त नीली, फिर ऊदी और इसी प्रकार क्रम से हरी, पीली, नारङ्गी तथा सबसे ऊपर वाली लाल होगी, जैसा कि चित्र नम्बर ३ को देखने से मालूम होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप काँच के किसी दूसरे त्रिकोण को, जिसकी लम्बाई तथा चौड़ाई सब प्रकार पहले त्रिकोण के समान हो, इस प्रकार रखिए कि उसका एक निकला हुआ कोण दीवार के निकट हो और उस निकले हुए कोण के पीछें वाला सम भाग पहले कोण के समभाग से मिला हो; अर्थात् दोनों त्रिकोणों को इस प्रकार से मिलाइए कि एक सम-कोण चतुर्भुज बन जाय। तब आप देखेंगे कि दीवार पर छिटके हुए इन्द्रधनुष के स्थान में केवल एक उजली प्रकाश-रेखा रह गई है। पाठको, सोचिए, सूर्य का प्रकाश, जिसे आप एक ही रङ्ग में देखते हैं, पहली क्रिया से सात रङ्गों में देख पड़ता है; और उन्हीं सात रङ्गों के प्रकाश को अब आप, दूसरी क्रिया से, फिर एक ही रङ्ग में पलट देते हैं। एक ही पदार्थ से भिन्न भिन्न पदार्थों का उत्पन्न करना प्रायः असम्भव है; पर कई भिन्न भिन्न पदार्थों को मिलाने से किसी और पदार्थ का उत्पन्न करना सम्भव है। उदाहरणार्थ—यदि आप चाहें कि सुवर्ण को किसी प्रक्रिया द्वारा चाँदी, ताँबा, लोहा इत्यादि धातुओं में बदल दें तो यह असम्भव है; पर यदि चाँदी, ताँबा, लोहा, इत्यादि धातुओं को मिला कर किसी रासायनिक प्रक्रिया से सुवर्णगुण-सम्पन्न कोई पदार्थ बनाना चाहें तो यह कदाचित् सम्भव हो सकता है, जैसा कि आपके प्राचीन महर्षियों ने शायद कभी किया भी है। अतएव कहना पड़ता है कि सूर्य्य का प्रकाश, जिसे हम एक ही रङ्ग में देखते अथवा जानते हैं, वास्तव में भिन्न भिन्न रङ्गों की किरणों के मिश्रण से उत्पन्न हुआ है।

आलोक-विश्लेषण-यन्त्र इन्हीं इन्द्रधनुषों को भले प्रकार देखने तथा उनमें उत्पन्न हुई कुछ विचित्र रेखाओं का ज्ञान प्राप्त करने के काम में लाया जाता है।

चित्र नं० १ को देखिए। "त" तीन पाँवों की एक छोटी सी तिपाई है। उसकी ऊँचाई कोई डेढ़ या दो फुट है। उसी तिपाई में लगा हुआ "ग" एक ज्योतिर्वर्द्धक यन्त्र (Collimator) और "ख" एक छोटी सी दूरबीन (Telescope) है। तिपाई के मध्य में रक्खा हुआ "क" हम लोगों का वही पूर्व परिचित त्रिकोणाकार काँच है। अब आप इस यन्त्र को किसी मेज़ पर इस प्रकार रखिए कि ज्योतिर्वर्द्धक का मुख "म" खुले आकाश की ओर हो।

आकाश में सूर्य्य की विच्छिन्न किरणें ज्योतिर्वर्द्धक यन्त्र से होती हुई तिपाई पर रक्खे हुए त्रिकोण पर पड़ेंगी। ज्योतिर्वर्द्धक को छोड़ कर अब आप आलोक-विश्लेषण-यन्त्र के और हिस्सों को एक काले कपड़े से ढक कर दूरबीन द्वारा देखिए। पहले पहल तो आपको अन्धकार ही अन्धकार देख पड़ेगा; पर दूरबीन तथा नेत्रों को बार बार इधर उधर करने से आपका वही प्यारा इन्द्रधनुष वहाँ देख पड़ेगा। इस चमत्कार को आप ध्यान देकर देखिए। रङ्गीन गाँठों के बीच बीच आपको काली रेखायें देख पड़ेंगी। पहली प्रक्रिया से उत्पन्न हुए इन्द्रधनुष में ये रेखायें न थीं, क्योंकि त्रिकोण से होकर आई हुई किरणों के अतिरिक्त बहुत सी ऊपरी किरणें भी दीवार पर पड़ रही थीं और रेखायें, अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण, स्थूल नेत्रों द्वारा न देख पड़ती थीं।

अब आप चाहें जिस समय इस यन्त्र-द्वारा सूर्य्य की किरणों की परीक्षा कर लीजिए। आपको सदैव एक ही दृश्य देख पड़ेगा। अर्थात् प्रातःकाल हो अथवा सन्ध्या, मध्याह्नकाल हो अथवा अपराह्न—कोई समय क्यों न हो, इस यन्त्र में उत्पन्न हुई उन काली रेखाओं का स्थान तथा उनकी संख्या आप सदैव एक ही सी पाइएगा।

क्रिया १—अब प्रकाश-विश्लेषण-यन्त्र को किसी अँधेरी कोठरी में ले चलिए और ज्योतिर्वर्द्धक के मुख पर गैसबत्ती की रोशनी कीजिए। ऊपर कही हुई रीति से दूरबीन द्वारा देखने पर फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही इन्द्रधनुष देख पड़ेगा; पर उसमें काली रेखायें न होंगी। अतएव यह अवश्य कहना पड़ता है कि सूर्य्य तथा इस कृत्रिम प्रकाश (गैस की रोशनी) की केवल ज्योति में ही भेद नहीं, किन्तु सूर्य्य के प्रकाश में कुछ और भी विचित्रता है।

क्रिया २-(क) थोड़ा सा मामूली नमक किसी तार के टुकड़े पर रखिए। फिर उसे जलती हुई बत्ती के ऊपर इस प्रकार रखिए कि वह भाफ़ होकर जलने लगे। इस प्रकार जलती हुई भाफ़ के प्रकाश को आप आलोक-विश्लेषण-यन्त्र द्वारा देखिए। इन्द्रधनुष की पीले रङ्गवाली गाँठ में आप को एक अत्यन्त चमकीली पीले रङ्ग की रेखा देख पड़ेगी।

(ख) नमक वाले तार को गैसबत्ती के ऊपर से अब हटा दीजिए और एक अन्य स्वच्छ तार पर थोड़ा सा पोटास (K N O,) अथवा पोटासियम् नाइट्रेट लाकर गैसबत्ती के ऊपर जलाइए। नमक की तरह पोटास भी भाफ़ होकर जलने लगेगा।* पोटास के प्रकाश को आप फिर अपने यन्त्र-द्वारा जाँचिए। इस बार आपको लाल रङ्ग की गाँठ में लाल ही रङ्ग की एक चमकीली रेखा देख पड़ेगी।

अब आप पोटास के स्थान पर लीथीयम नामक रसायन जलाइए। इस बार नारङ्गी रङ्ग वाली गाँठ में नारङ्गी रङ्ग की चमकीली रेखा दिखाई देगी।

इन क्रियाओं से यह सिद्ध होता है कि भिन्न भिन्न धातुओं को जलाने से इन्द्रधनुष की भिन्न भिन्न गाँठों में भिन्न भिन्न चमकीली रेखाओं का आविर्भाव होता है। अतएव रेखाओं का स्थान तथा रङ्ग देखने मात्र से यह कहा जा सकता है कि यन्त्र-द्वारा देखा गया प्रकाश किन किन वस्तुओं के जलने से उत्पन्न हुआ है। चित्र नं० ४ देखिए। वह नमक, पोटास तथा और भी मिले हुए, अर्थात् मिश्रित, पदार्थों के प्रकाश से उत्पन्न हुए इन्द्रधनुष का चित्र है।

ऊदे रङ्ग वाली गाँठ में १, १ दो रेखायें कैसियम (Cs) के जलाने से उत्पन्न हुई हैं। हरे रङ्गवाली गाँठ में २,२ तथा लाल रङ्गवाली गाँठ में भी २ से सङ्केत की गई, ये तीन रेखायें रुबीडियम (Rb) के जलाने से प्राप्त हुई हैं।

पीले रङ्गवाली गाँठ में ३ नम्बरवाली रेखा सोडियम (No) (जो नमक के मुख्य घटक द्रव्यों में से है) जलाने से बनी है। नमक जलाने से भी आप इसी रेखा को देखते हैं। नारङ्गी रङ्गवाली गाँठ में ४ नम्बर वाली रेखा लिथीयम (Li) जलाने से तथा लाल रङ्गवाली गाँठ में ५ नम्बर की रेखा पोटासियम (K) (जो पोटास में एक मुख्य पदार्थ है) जलाने से देख पड़ती है।

सूर्य्य के प्रकाश से प्राप्त इन्द्रधनुष में चमकीली रेखाओं के स्थान में काली रेखायें क्यों देख पड़ती हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए आप फिर आलोक-विश्लेषण-यन्त्र का सहारा लीजिए। ज्योतिर्वर्द्धक के मुख पर आप गैसबत्ती-द्वारा थोड़े से नमक को पहले कही हुई विधि से जलाइए। दूरबीन-द्वारा देखने से पीले रङ्गवाली गाँठ में आपको वही पूर्वपरिचित चमकीली रेखा (देखिए चित्र नम्बर ४ में ३ का सङ्केत) देख पड़ेगी। अब गैसबत्ती के पीछे तथा ज्योतिर्वर्द्धक के सामने

---

* कोई भी ठोस, गोल अथवा द्रव पदार्थ, जलने के पहले, भाफ़ का रूप ग्रहण करता है। बाष्परूप होने के लिए उसे ऊपरी गरमी की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि नमक तथा पोटास को जलाने के लिए हम लोग गैसबत्ती के ऊपर रखते हैं। दीपक जलाने के लिए दियासलाई दिखलाते हैं और दियासलाई जलाने के लिए उसे रगड़ कर उसमें गरमी पैदा करते हैं, जिससे वह जल उठती है। क्रिया (२) में गैसबत्ती केवल इन्हीं पदार्थों को जलाने के लिए रक्खी गई है; अन्यथा उसकी कुछ भी आवश्यकता न थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूने की रोशनी* (Lime Light) जैसा कि चित्र नम्बर १ में दिखलाया गया है, रखिए। तब दूरबीन-द्वारा देखने से इन्द्रधनुष सब प्रकार से वैसा ही रहेगा; पर अन्तर यह देख पड़ेगा कि नमक के जलने से उत्पन्न हुई चमकीली रेखा अन्धकारमय हो गई है अथवा पीले रङ्गवाली गाँठ में, चमकीली रेखा के स्थान पर, एक काली रेखा देख पड़ती है। इससे यह सिद्ध होता है कि जलती हुई भाफ़ के पीछे यदि कोई ऐसी वस्तु रक्खी जाय, जो बाष्परूप में जलती न हो, पर अत्यधिक उष्णता के कारण स्वयं प्रकाशमान हो, तो रङ्गीन गाँठों के मध्य, जलती हुई भाफ़ के प्रकाश से बनी हुई चमकीली रेखा के स्थान में, काली रेखा दिखाई देगी।

अब आप भले प्रकार समझ गये होंगे कि सूर्य्य के प्रकाश से उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुष आपके यन्त्र में क्यों काली रेखाओं से युक्त था। सूर्य्य यदि बाष्परूप होकर नमक के समान जलने वाला कोई पदार्थ होता तो गाँठों के मध्य की रेखायें चमकीली होतीं। अथवा यदि वह केवल प्रकाशमान् पिण्ड होता तो, गैसबत्ती से उत्पन्न इन्द्रधनुष के सदृश, उसके प्रकाश से उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुष भी सब रेखाओं से रहित होता। अतः सूर्य्य न तो स्वयं प्रकाशमान पिण्ड है और न जलती हुई बाष्पों का ही समूह है। वह तो चूने के सदृश एक अत्युष्ण स्वतः प्रकाशमान गोलाकार पिण्ड है, जिसकी उष्णता से इस पिण्ड में इसके गर्भस्थ अनेक धातु—यथा सोडियम, पोटासियम, लीथीयम, लोहा, पारा इत्यादि भाफ होकर उसके चारों ओर सदैव प्रज्वलित रहते हैं। इन धातुओं का पता, इन्द्रधनुष में काली रेखाओं का स्थान देखने ही से, जाना जा सकता है।

चन्द्रमा।

चन्द्रमा की ज्योति, सूर्य्य की तरह, स्वयं प्रकाशमान नहीं। अतः आलोक-विश्लेषण-यन्त्र द्वारा उसकी ज्योति की परीक्षा करने के लिए एक बड़ी सी दूरबीन द्वारा चन्द्रमा को देखिए। फिर उसी दूरबीन से ज्योतिर्वर्द्धक के मुख को लगा दीजिए। अब आलोक-विश्लेषण-यन्त्र को छोटे दूरबीन से देखिए। इन्द्र-धनुष देख पड़ेगा। इस प्रकार देखा गया इन्द्रधनुष सब प्रकार सूर्य्य के प्रकाश से उत्पन्न इन्द्रधनुष के सदृश होगा। अर्थात् जितनी काली रेखायें पहले के इन्द्रधनुष में थीं उतनी ही इसमें भी होंगी। अतएव कहना पड़ता है कि चन्द्रमा या तो सूर्य्य के सदृश ही कोई अत्युष्ण पदार्थ है अथवा सूर्य्य के प्रकाश से ही प्रकाशमान है।

सूर्य्य हम लोगों के लोक से १३,३१,००० गुना बड़ा और हम लोगों से नौ करोड़ सत्ताईस लाख मील की दूरी पर है। चन्द्रमा हम लोगों के लोक का उन्तालीसवाँ हिस्सा तथा उसकी दूरी हम लोगों से दो लाख अड़तीस हज़ार मील है। अब, यदि कहा जाय कि चन्द्रमा सूर्य्य के सदृश स्वयं प्रकाशक है तो यह सर्वथा असम्भव जान पड़ता है। क्योंकि ऐसा होने से, हम लोगों के निकटस्थ होने के कारण, चन्द्रमा से आया हुआ प्रकाश, सूर्य्य से आये हुए प्रकाश से कहीं अधिक होता और उसकी उष्णता भी वैसी ही असह्य होती। इस लिए चन्द्रमा न तो

* चूने की रोशनी (Lime Light). बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जो कुछ गरमी पाकर भाफ़ हो जाते हैं। वही भाफ़ अधिक गरमी पाकर जलने लगती है, जिससे हम लोग प्रकाश पाते हैं। तेल, मोमबत्ती, कपूर इत्यादि कितने ही पदार्थ ऐसे ही हैं। कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो गरमी पाकर इतने तप जाते हैं कि स्वयं प्रकाश देने लगते हैं। चूना इन्हीं पदार्थों में से है। यदि चूने के एक टुकड़े को लेकर अभिद्रवजन (Hydrogen) तथा ओपजन (Oxygen) की अत्युष्ण लहर में तपावें तो वह अत्यन्त प्रकाशमान हो उठेगा। मैजिक लालटेनों (Magic Lanterns) में इन्हीं से काम लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं प्रकाशमान अत्युष्ण पिण्ड है और न जलती हुई भाफ़ों का ही समूह है; प्रत्युत अपने प्रकाश के लिए वह सूर्य्य ही का ऋणी है।

चन्द्रमा हम लोगों के लोक की भाँति ठण्डा गोलाकार पिण्ड है। बड़ी बड़ी दूरबीनों द्वारा देखने से इस पर बहुत से ऊँचे ऊँचे पर्वत तथा वैसी ही गहरी खाइयाँ देख पड़ती हैं। ज्योतिर्विद् उन्हें क्रेटर (Craters) कहते हैं। और यही कारण है जो चन्द्रमा पर मनुष्यों का होना असम्भव समझा जाता है।

तारागण।

बहुत सी ताराओं से प्राप्त इन्द्रधनुष सूर्य्य के इन्द्रधनुष के सदृश होता है। कितने ही तारागण इस गगनमण्डल में ऐसे भी हैं जिनके धनुष में विचित्र विचित्र काली रेखायें देख पड़ती हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनका शारीरिक सङ्गठन सूर्य्य में पाई गई धातुओं से नहीं, बल्कि अन्यान्य धातुओं के मेल से हुआ है। अतएव वे ज्योतिष्क, जो प्रति दिन गगनमण्डल में चमक चमक कर रात्रि की शोभा बढ़ाते हैं, हमारी सूक्ष्म दृष्टि में भले ही एक से देख पड़ें, परन्तु वास्तव में सब सांसारिक वस्तुओं के सदृश, अपनी अपनी बनावट में, एक दूसरे से बहुत कुछ अन्तर रखते हैं।

अनमोलचन्द्र जैन, बी० एस-सी०

विविध विषय।

१—कालेजों में देशी भाषायें।

इंडियन यूनीवरसिटी कमीशन ने उस साल अपनी रिपोर्ट में देशी भाषाओं के विषय में ये सिफ़ारिशें की थीं—

(१) एम० ए० की पढ़ाई में अँगरेज़ी के साथ देशी भाषाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिए। एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए वह भी एक विषय नियत किया जाय।

(२) बी० ए० की पढ़ाई की प्रत्येक श्रेणी में देशी भाषाओं में प्रबन्ध-रचना का विषय रखना अनिवार्य्य कर दिया जाय।

अर्थात् बी० ए० में प्रबन्ध-रचना अवश्य ही सिखाई जाय और एम० ए० में भी देशी-भाषाओं की शिक्षा का प्रबन्ध रहे।

१६ फ़रवरी १९१७ को, बड़े लाट की कौंसिल में, मध्य-प्रदेश के माननीय राय विष्णुदत्त शुक्ल बहादुर ने गवर्नमेंट से पूछा कि क्या कमीशन की इन सिफ़ारिशों के अनुसार काम होता है। उत्तर में माननीय सर शङ्कर नायर ने एक काग़ज़ पेश किया और कहा कि भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों में इस सम्बन्ध में जो कुछ होता है वह उसी में लिखा है। साथ ही आपने यह भी कहा कि इस प्रबन्ध में फेर फार करने के लिए की गई किसी सूचना की ख़बर गवर्नमेंट को नहीं। अर्थात् जो कुछ हो रहा है उसमें परिवर्त्तन करने या मीन-मेख निकालने की किसी ने चेष्टा नहीं की और यदि की भी हो तो उसका हाल गवर्नमेंट आव् इंडिया को मालूम नहीं।

पूर्वोक्त "काग़ज़" में क्या लिखा है, इसका सारांश सुनिए—

(१) **कलकत्ता-विश्वविद्यालय** की बी० ए० परीक्षा में और और भाषाओं के सिवा बँगला, उड़िया, आसामी, बर्मी, हिन्दी और उर्दू में भी प्रबन्ध-रचना का एक परचा होता है।

एम० ए० की परीक्षा में देशी भाषाओं का प्रवेश नहीं।

(२) **बम्बई-विश्वविद्यालय** की एम० ए० परीक्षा में अन्यान्य भाषाओं के सिवा मराठी, गुजराती, कनारी और उर्दू को भी स्थान मिला है। पर हिन्दी को नहीं।

बी० ए० में देशी भाषाओं की पढ़ाई का प्रबन्ध नहीं।

(३) **मदरास-विश्वविद्याल** की बी० ए० की परीक्षा में अन्यान्य भाषाओं के सिवा उर्दू, मराठी और उड़िया भाषाओं में भी इतिहास का विषय निर्दिष्ट है।

एम० ए० में देशी भाषाओं का प्रवेश नहीं।

(४) **पञ्जाब-विश्वविद्यालय** की एम० ए० परीक्षा में एक परचा अनुवाद का भी रहता है। अनुवाद अँगरेज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से देशी भाषा में और देशी भाषा से अँगरेज़ी में करना पड़ता है। नाम किसी भाषा का नहीं; केवल, "परीक्षार्थी की भाषा" का उल्लेख है। इससे सूचित होता है कि इस विश्वविद्यालय की एम० ए० कक्षा में हिन्दी और उर्दू दोनों का प्रवेश है।

बी० ए० में देशी भाषायें नहीं पढ़ाई जातीं।

पाठकों को इससे अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि कमीशन की सिफ़ारिशों की पाबन्दी कहाँ तक की जा रही है। उर्दू का प्रवेश कलकत्ता, बम्बई, मदरास और पञ्जाब सब कहीं थोड़ा बहुत है, पर हिन्दी का प्रवेश बम्बई और मदरास के विश्वविद्यालयों में नहीं। आश्चर्य्य नहीं जो वहाँ उसका प्रवेश न हो, क्योंकि वे प्रान्त हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तों से दूर हैं। आश्चर्य्य तो इस बात पर है कि हिन्दी जिस प्रान्त की प्रधान भाषा है उसके भी कालेजों की उच्च कक्षाओं में उसकी गन्ध तक नहीं। इलाहाबाद के विश्वविद्यालय की बी० ए० और एम० ए० कक्षाओं में न हिन्दी है, न उर्दू। यदि होती तो पेश किये गये "काग़ज़" में इस बात का भी उल्लेख होता; पर नहीं है। इस प्रान्त के विश्वविद्यालय के सीनेट का कर्तव्य है कि वह अपने प्रान्त की भाषा का भी प्रवेश विश्वविद्यालय में होने दे। देशी भाषाओं की शिक्षा के लाभों पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। उसे दुहराने और सिनेट को उसके लाभ सुझाने की अब आवश्यकता नहीं। इस दशा में सिनेट की उदासीनता दुःख और परिताप की बात है। उसे अब तो अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

२—हिन्दी का हौवा।

हमारे विशालहृदय और उदाराशय मुसलमान भाइयों के लिए हिन्दी हौवा हो रही है। वे उसका नाम सुनते ही घबरा से जाते हैं। सोते में भी शायद कभी कभी वे हिन्दी के हौवे का स्वप्न देखते हों। हिन्दी के कारण चाहे उनकी रत्तीभर भी हितहानि न हो; पर नहीं, वे हिन्दी का नाम तक नहीं सुनना चाहते। हिन्दुओं के लाखों बच्चे उर्दू पढ़ रहे हैं; हिन्दू-धर्म्म के अनुयायी हज़ारों कर्म्मचारी उर्दू लिखने का काम कर रहे हैं; हिन्दुओं में सैकड़ों वकील और मुख़्तार उर्दू के उपासक बन रहे हैं। इसके लिए शाबाशी नहीं; आफ़रीं की एक भी आवाज़ नहीं; इहसान का एक भी कलमा नहीं। हिन्दू उर्दू पढ़ें, उर्दू लिखें, उर्दू में अख़बार निकालें, उर्दू में पुस्तक-रचना करें—इस प्रकार अनेक मार्गों से वे उर्दू की पुष्टि करें। इसका बदला उन्हें यह दिया जाय कि उर्दू-कानफरेंसों से उर्दू-साहित्य के सेवक हिन्दू अलग रक्खे जायँ और हिन्दी के प्रचार का नाम लेने वालों पर हिन्दी-उर्दू का झगड़ा उठाने और उर्दू का गला घोटने की कोशिश करने का इलज़ाम लगाया जाय! बहुत अच्छा! भाई साहब, यदि आप इसी नीति को—इसी मार्ग को—न्याय्य समझते हों तो इसी के अनुसार आप अपना बर्त्ताव होने दीजिए। हम अनेक कारणों से उर्दू लिखना पढ़ना न छोड़ेंगे—हम उर्दू की उन्नति में बाधा न डालेंगे। पर एक बात ज़रूर करेंगे। हम हिन्दी लिखने पढ़ने और उसकी उन्नति करने की चेष्टा से कभी विरत न होंगे। आप याद रक्खें, आप जो समय असमय में हिन्दी का सदा ही विरोध किया करते हैं उससे आप ही की हानि है। आपको अन्याय-मार्ग का अवलम्बन करते देख जो लोग अब तक हिन्दी के ज्ञान-सम्पादन से विमुख हो रहे हैं वे भी अब अपनी विमुखता छोड़ देंगे। वे भी अब उसकी ओर अवश्य ही आकृष्ट हो जायँगे। सोचिए, क्या इससे आपकी अभीष्ट-सिद्धि होगी?

८ मार्च को, इलाहाबाद में, विश्वविद्यालय के सिनेट की एक बैठक हुई। पण्डित इक़बालनारायण गुर्टू ने प्रस्ताव किया कि हिन्दी, उर्दू और अन्यान्य भाषाओं की पढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिए अब तक सात विद्वानों का एक ही "बोर्ड" (समुदाय) है। अब तीन कर दिये जायँ। एक हिन्दी के लिए, एक उर्दू के लिए, एक गुजराती, बँगला आदि अन्य भाषाओं के लिए। राय-बहादुर जी० एन० चक्रवर्ती, डाक्टर गङ्गानाथ झा, पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र आदि ने इसका अनुमोदन और समर्थन किया। कहा गया कि भाषायें अनेक, विचारक केवल सात। काम ठीक ठीक नहीं होता। सैयद करामत-हुसैन, मिस्टर अब्दुर्रऊफ़ और डाक्टर ज़ियाउद्दीन ने इसका विरोध किया। मिस्टर मेकंज़ी और मिस्टर बरन ने भी विरोधियों का साथ दिया। फल यह हुआ कि इस प्रस्ताव के फलाफल का निश्चय किये बिना ही अगले विषय का विचार आरम्भ कर दिया गया। याद रहे "फैकल्टी आव् आर्टस्" ने अपनी सम्मति इस प्रस्ताव के अनुकूल दी थी! तिस पर भी इसकी यह दशा हुई। मुसलमान मेम्बरों ने कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे तो हिन्दी-उर्दू का झगड़ा खड़ा हो जायगा। इस प्रश्न का उत्थान करना ही बुरा है। विचारकों की संख्या भले ही बढ़ जाय, पर अलग अलग बोर्ड न बनें।

इस प्रस्ताव से हिन्दी-उर्दू के झगड़े का ज़रा भी सम्पर्क न था। इससे हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं को लाभ पहुँचता। उर्दू के ज्ञाता उर्दू की पढ़ाई आदि का प्रबन्ध करते और हिन्दी के ज्ञाता हिन्दी की पढ़ाई आदि का। पर यह बात हमारे मुसल्मान-भाइयों की समझ में न आई। उन्होंने शायद सोचा होगा कि उर्दू को हानि चाहे भले ही पहुँचे, पर हिन्दी के नाम पर कोई काम अलग न किया जाय। पर क्या इससे हिन्दी का अस्तित्व नष्ट हो सकता है? स्कूलों में हिन्दी और उर्दू दोनों ही जारी हैं और उन्हें गवर्नमेंट दो भिन्न भाषायें समझती है। यह भेद तो दूर हो ही नहीं सकता। अस्तु इससे विरोधियों के हृदय-तल का भाव और भी अच्छी तरह सब की समझ में आ गया। आशा है, इससे और कुछ न होगा तो हिन्दी के प्रेमियों की संख्या तो कुछ अवश्य ही बढ़ जायगी।

३—फिजी-द्वीप में हिन्दी-पत्र।

फिजी-द्वीप में हज़ारों भारतवासी हैं। कुछ किसान हैं, कुछ दूकानदार, कुछ अन्य प्रकार के व्यवसाय करने वाले। पर वहाँ के भारतवासियों में अधिक संख्या कुलियों ही की है। उनके दुखदर्द की कहानियाँ, कुछ समय से, यहाँ भी प्रायः प्रतिदिन सुनाई पड़ती हैं। अब तक इस द्वीप में भारतवासियों का कोई समाचार-पत्र न था। ख़ुशी की बात है, अब वहाँ के प्रधान नगर सुवा (Suva) से एक पत्र निकलने लगा है। उसका नाम है इंडियन सेटलर (Indian Settler) वह मासिक है। उसके जनवरी १९१७ के पहले अङ्क पर मूल्य एक शिलिङ्ग, अर्थात् बारह आने, छपा है। यह पत्र एकमात्र भारतवासियों की हितचिन्तना और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए निकाला गया है। यह त्रैमासिक है। अधिकांश अँगरेज़ी भाषा में रहता है। हिन्दी का अंश उससे कम और उर्दू का उससे भी कम रहता है। अँगरेज़ी अंश के सम्पादक कोई राय एम० मायर्स साहब हैं और हिन्दी-उर्दू के स्वामी आर० एम० ए० सरस्वती। पहले अङ्क के आरम्भ में फीजी के गवर्नर और प्रधान सेनापति का एक सुन्दर चित्र है। इस अङ्क में जितने लेख और नोट अँगरेज़ी में हैं सब पत्र के उद्देश के अनुसार हैं। हिन्दी और उर्दू का अंश लोहे के क़लम से लिखा गया है और लीथो पर छपा है। हिन्दी की प्रस्तावना में लिखा है कि इस पत्र के मालिक हिन्दी का टाइप मँगाने, अपना निज का प्रेस खोलने और ३०० ग्राहक हो जाने पर पत्र को सचित्र भी कर देने के विचार में हैं। ईश्वर करे उनकी यह कामना सफल हो। इस पत्र के एक हिन्दी नोट की नक़ल नीचे दी जाती है—

श्रीयुत प० बद्रीदत्तजी को लाट महोदय फिजी ने लेजिसलेटिव कौन्सल का मेम्बर चुने हैं और आप लन्डन के उपनिवेसिक सेक्रेटरी द्वारा नोमिनेट भी हो चुके हैं। फिजी केभारत नरनारि आपको हार्दीक बधाइ देते हैं और पुर्णाशा करते हैं कि आप न्यायारूढ़ होकर उनकि भलाइ करेंगे। श्रिमान गौरनर महोदय का यह प्रथम सुधार है। तदर्थ उनको हमारी हार्दीक धन्यवादें हैं।

यह समाचार बहुत सन्तोषप्रद है। इसकी सूचना भारत में पहले ही पहुँच चुकी है। फीजी-द्वीप के भारतवासियों का सच्चा हाल जानने के लिए भारत में भी इस पत्र के ग्राहकों की संख्या वृद्धि अपेक्षित है।

४—अमृत-बाज़ार-पत्रिका की पूर्व-कथा।

अमृत-बाज़ार-पत्रिका एक नामी अख़बार है। वह कलकत्ते से अँगरेज़ी में दैनिक निकलता है। उसका एक साप्ताहिक संस्करण भी प्रकाशित होता है। उसके प्रधान सम्पादक और आंशिक स्वामी बाबू मोतीलाल घोष पर कलकत्ते की हाई-कोर्ट में एक दीवानी मुक़द्दमा चला था। यह गत फ़रवरी महीने की बात है। उनके कुटुम्ब की किसी स्त्री ने उन पर, पत्रिका-अख़बार और पत्रिका प्रेस की सम्पत्ति के विषय में, यह मुक़द्दमा दायर किया था। इस मुक़द्दमे के दौरान में, हाई-कोर्ट में, मोतीलाल बाबू ने अपने बयान में पत्रिका की जो पूर्व-कथा सुनाई वह बड़े महत्त्व की है। उससे प्रकट है कि उद्योगशील, परिश्रमी और सुयोग्य पुरुष किस प्रकार अपने काम में सफलता-प्राप्ति कर सकता है और किस प्रकार, पास रुपया न होने पर भी, अपनी साख के बल पर धन एकत्र करके एक बहुत बड़ी जायदाद पैदा कर सकता है।

ये लोग चार भाई थे—शिशिरकुमार घोष, हेमन्तकुमार घोष, वसन्तकुमार घोष और मोतीलाल घोष। वसन्तकुमार की मृत्यु के बाद, १८६८ ईसवी के मार्च महीने में, हेमन्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार और मोतीलाल ने अमृत-बाज़ार-पत्रिका बँगला में निकाली। पास से इन लोगों ने एक कौड़ी भी इस काम में न लगाई। जेसोर के कुछ देश-भक्त सज्जनों से रुपया इकट्ठा करके इन्होंने पत्रिका को अमृत-प्रवाहिनी प्रेस से साप्ताहिक प्रकाशित करना आरम्भ किया। यह प्रेस लकड़ी का था और पुराना था। ढाई वर्ष चल कर पत्रिका बन्द हो गई। कारण यह हुआ कि उसके लेखक और प्रिंटर पर मानहानि का एक मुक़द्दमा चला। जिस लेख के कारण यह हुआ उसे शिशिरकुमार ने छापा और वसन्तकुमार ने लिखा था। इस मुक़द्दमे की पैरवी के लिए तीनों भाइयों को बहुत सा रुपया क़र्ज़ लेना पड़ा। मुक़द्दमे से छुटकारा पाने पर प्रेस बेच डाला गया। फिर ये लोग अपना गाँव, अमृत-बाज़ार, छोड़ कर कलकत्ते चले आये। वहाँ थोड़ा सा आर्थिक सुभीता हो जाने पर, मार्च १८७२ से, फिर उन्होंने अमृत-बाज़ार-पत्रिका निकाली। पास रुपया न होने के कारण एक साल तक ये उसे एक किराये के प्रेस पर छापते और बहू-बाज़ार की हृदयराम बैनर्जी की गली से निकालते रहे। १८७३ में इन तीनों भाइयों ने बाबू जानकीनाथ राय से ७०० रुपया उधार लिया और अपना निज का प्रेस ख़रीदा। तब से पत्रिका उसी पर छपने लगी।

कलकत्ते आने पर पत्रिका रही तो साप्ताहिक ही, पर उसका रूप बदल दिया गया। अब उसका कुछ अंश अँगरेज़ी और कुछ बँगला में निकलने लगा। इस समय आल्फ़्रेड स्मिथ नाम के एक साहब ने ८०० रुपये दिये और वे भी पत्रिका और प्रेस में शरीक हो गये। नाम प्रेस का हुआ—स्मिथ-कम्पनी का प्रेस। १८७४ के शुरू में स्मिथ ने कहा—मेरा रुपया दे दो; मैं इस व्यवसाय में शरीक नहीं रहना चाहता। वैसा ही किया गया। चिनसुरा के बाबू अक्षयचन्द्र सरकार से कुछ रुपया उधार लेकर स्मिथ का पावना भुगता दिया गया। तब ये लोग प्रेस को बहू-बाज़ार से बाग-बाज़ार ले गये और वहीं से पत्रिका निकालने लगे। प्रेस के लिए और भी कुछ रुपया उधार लिया गया।

१८७८ ईसवी तक पत्रिका पूर्ववत् अँगरेज़ी और बँगला में निकलती रही। बँगला-विभाग का काम हेमन्तकुमार के सिपुर्द रहा और अँगरेज़ी का शिशिरकुमार और मोतीलाल के सिपुर्द। इतने में प्रेस-ऐक्ट "पास" हुआ। तब लाचार होकर घोष-भाइयों ने बँगला-अंश निकाल कर पत्र को एक मात्र अँगरेज़ी में प्रकाशित करना आरम्भ किया। अब हेमन्तकुमार ख़ाली हो गये। वे अँगरेज़ी न लिख सकते थे। इस कारण पास ही के एक और मकान से वे आनन्द-बाज़ार-पत्रिका, बँगला में, निकालने लगे। वह कारोबार ही अलग कर दिया गया। उसमें रुपया भी हेमन्तकुमार ही ने लगाया; शिशिरकुमार और मोतीलाल का कुछ ख़र्च न हुआ।

इस समय प्रेस और पत्रिका की जायदाद में शिशिरकुमार का अंश ९ और मोतीलाल का ७ आने था। १८८२ में गुलाबलाल घोष ने २०००) रुपये लगाये। तब वे भी ३ आने के हिस्सेदार हुए। शिशिरकुमार और मोतीलाल ने डेढ़ डेढ़ आना अपने हिस्से से उन्हें दे दिया। १८८९ में मृणालकान्ति घोष भी ३ आने के शरीक हुए। तब शिशिरकुमार का ८½ और मोतीलाल का ४½ आना रह गया।

अब, अमृत-बाज़ार-पत्रिका, सुनते हैं, एक कम्पनी की जायदाद है और ख़ूब उन्नत अवस्था में है।

५—ट्रावनकोर-राज्य में शिक्षा-विस्तार।

ट्रावनकोर-राज्य कितने ही विषयों में अच्छी उन्नति कर रहा है। शिक्षा उन सब में मुख्य है। वहाँ के शिक्षा-विस्तार की गति देख कर कहना पड़ता है कि अन्य विषयों की अपेक्षा वहाँ की सरकार शिक्षा पर विशेष ध्यान देती है। होना भी यही चाहिए। शिक्षा ही सब सुधारों की जड़ है। ट्रावनकोर-नरेश इस तत्त्व के क़ायल जान पड़ते हैं। यही कारण है जो वे शिक्षा के प्रचार में विशेष उदारता का परिचय देते हैं। उनके राज्य के शिक्षालयों में जगह की तङ्गी नहीं। इस कारण विद्यार्थियों के भरती होने में रुकावट नहीं होती। जगह की कमी के कारण जो विद्यार्थी भरती नहीं हो सकते उनके लिए छोटे छोटे मदरसे खोले जाते हैं और जो मदरसे पहले ही से क़ायम हैं उनमें दरजे बढ़ा दिये जाते हैं। जिन शिक्षालयों की हालत ख़राब पाई जाती है वे बन्द नहीं किये जाते। उनका सुधार किया जाता है; उनके लिए तरह तरह की रिआयतें की जाती हैं और यथासम्भव उनकी उन्नति की यथेष्ट चेष्टा की जाती है।

१९१६ ईसवी में ट्रावनकोर के मामूली रियासती कामों में जितनी रक़म ख़र्च हुई उसका १३·७४ सिर्फ़ शिक्षा के प्रचार में ख़र्च हुआ। इस रक़म में, शिक्षासम्बन्धिनी इमारतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि में जो १,१२,५४६) खर्च किया गया वह शामिल नहीं है। वह तो अलग ही है। पिछले साल वहाँ के मंज़ूरशुदा मदरसों की संख्या २,०३६ थी। इस साल वह बढ़ कर २,४३६ हो गई और उनमें पढ़ने वालों की संख्या २,६४,९२३ से बढ़ कर ३,१६,२३८ हो गई। सरकारी सहायता पाने वाले मदरसों की संख्या ८७० से १,१०३ हो गई और प्रजा के खोले हुए मदरसों की संख्या १४६ से २६० तक पहुँच गई। नौ माध्यमिक और २२१ प्रारम्भिक शिक्षा देने वाले मदरसों को इस साल सरकारी सहायता मिली। रिपोर्ट के साल गैरमंज़ूरशुदा मदरसों को मिला कर ३,८५१ मदरसे ट्रावनकोर-राज्य में थे, जिनमें ३,६४,३१६ शिक्षार्थी शिक्षा पाते थे। अर्थात् फ़ी दो वर्ग मील और फ़ी ८६० मनुष्यों में वहाँ एक मदरसा था। मदरसे जाने योग्य उम्र के १०० लड़कों में से ६२ लड़के पिछले साल मञ्ज़ूरशुदा मदरसों में पढ़ते थे। उनमें कोई ८१ फ़ी सदी लड़के और ३३ फ़ी सदी लड़कियाँ थीं। दुःख की बात है, हमारे संयुक्त प्रान्त में ऐसे छात्रों की संख्या कुछ ऊपर ११ फ़ी सदी से अधिक नहीं। यह स्थिति सन्तोषदायक नहीं।

६—प्राण-वायु का वज़न।

अमेरिका आश्चर्य्योत्पादक आविष्कारों का अजायबघर है। वहाँ के वैज्ञानिक नित्य-नूतन तथ्यों की खोज में व्यस्त रहते हैं। इसी से आज समस्त भूमण्डल पर अमेरिका की यशोदुन्दुभि निनादित हो रही है। वहाँ के एक डाक्टर ने एक अद्‌भुत काम कर दिखाया है। डाक्टर महोदय का नाम है—डङ्कन मैकडोनल। हेवरहिल नगर के अस्पताल में आप काम करते हैं। आपने एक मरणासन्न रोगी को चारपाई-समेत तराज़ू पर रख दिया और बाँट रख कर दोनों पलड़े बराबर कर दिये। फिर आप रोगी के पास बैठे रहे। आपकी टकटकी तराज़ू की डण्डी पर लगी रही। जब तक रोगी का प्राणोत्क्रमण नहीं हुआ तब तक उसका वज़न क्रमशः कम होता गया। कमी का औसत फ़ी घण्टा ५ तोला था। रोगी की देह से बराबर पसीना निकल रहा था। यही उस कमी का कारण था। रोगी के प्राण ३ घण्टे ४० मिनट बाद प्रस्थान कर गये। प्राणोत्सर्ग होते ही तराज़ू की एक डण्डी सहसा ऊँची उठ गई। तब हिसाब लगाने से ज्ञात हुआ कि ३ तोले ४० माशे वज़न कम हो गया। इससे डाक्टर साहब ने यह नतीजा निकाला कि जो वस्तु, अर्थात् प्राण-वायु रोगी के शरीर से बाहर निकली उस का वज़न ३ तोले १० माशे था। ३० माशे की कमी उन्होंने और धातुओं के ह्रास से हुई समझा।

प्राण-वायु को द्रव्य (Matter) न माननेवाले लोगों को अब शायद अपना मत बदलना पड़ेगा।

७—भारतवासियों के लिए जापानी भाषा सीखने की आवश्यकता।

हिन्दुस्तान से कितने ही विद्यार्थी जापान जाते हैं। वहाँ जाकर वे विज्ञान तथा कलकारख़ाना-सम्बन्धिनी शिक्षा पाते हैं। परन्तु उनमें से बहुतों को, बिना कार्य्य-सिद्धि हुए ही, लौट आना पड़ता है। वहाँ वे अभीष्ट अध्ययन तो करते हैं, किन्तु डिप्लोमा अर्थात् सर्टीफ़िकट नहीं पाते। क्योंकि जापान के विश्वविद्यालयों में यह नियम है कि कोई भी शिक्षार्थी जापानी भाषा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना सर्टीफ़िकट नहीं पा सकता। और हमारे भारतीय विद्यार्थी तो जापान पहुँचने तक जापानी भाषा से प्रायः अनभिज्ञ ही होते हैं। जापानी-भाषा के ज्ञान के बिना वे वहाँ की शिक्षा से अधिक लाभ नहीं उठा सकते; क्योंकि जापान के सभी स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में जापानी भाषा के ही द्वारा शिक्षा दी जाती है। सो, जब तक विद्यार्थी अध्यापकों की भाषा समझने की योग्यता न रखता हो तब तक वह उनके व्याख्यानों से कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। वहाँ की पाठ्य पुस्तकें भी प्रायः जापानी भाषा में हैं। यहाँ से जो विद्यार्थी जापान जाते हैं वे अँगरेज़ी भाषा में ही जापानियों से बात चीत करते हैं। परन्तु जापान में अँगरेज़ी भाषा का विशेष आदर नहीं। वहाँ के निवासी ज्ञानप्राप्ति भर के लिए—अर्थात् दूसरी भाषा में लिखी पुस्तकों का मतलब भर समझने के लिए—इस भाषा के ज्ञान की जितनी आवश्यकता है उतना ही उसे सीखते हैं; उस भाषा में प्रावीण्य प्राप्त करने के झंझट में वे नहीं पड़ते। यही होना भी चाहिए। फलतः वहाँ के अधिकांश वासी अँगरेज़ी भाषा अच्छी तरह नहीं बोल सकते। इस कारण भारतीय विद्यार्थियों को और भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। वहाँ जाने के बाद वे जापानी भाषा सीखते तो हैं, परन्तु उनकी यह कृति "न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे" के अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार आग लगने पर कुआँ खोदने के सदृश है। इससे उनकी बहुत हानि होती है। जितना समय उन्हें वहाँ की भाषा सीखने में लगा देना पड़ता है, यदि वे पहले ही से वह भाषा जानते हों तो, उतने समय में कोई और नया विषय वे सीख सकते हैं। इस भरोसे पर रहना निरी भूल है कि हम अँगरेज़ी पढ़े लिखे हैं; अँगरेज़ी से सारा काम चला लेंगे। अँगरेज़ी के प्रचार की तो बात ही नहीं; जापान में, "जापान मेगज़ीन" को छोड़ कर, शायद कोई और मासिक पत्र तक अँगरेज़ी में नहीं निकलता। वहाँ जितनी पुस्तकें लिखी जाती हैं सब जापानी भाषा में।

इस दशा में, हिन्दुस्तान में कम से कम एक ऐसा स्कूल खुलना चाहिए, जिसमें जापान जाकर शिक्षा पाने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों को जापानी भाषा की शिक्षा दी जाया करे। शुमी ओहकवा (Shumei Ohkawa) नाम के किसी जापानी सज्जन ने, फ़रवरी १९१७ के माडर्न रिव्यू में, इस विषय पर एक लेख प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने यही राय दी है। देश के धनी व्यवसायी और व्यापारी यदि चाहें तो यह काम सहज में हो सकता है। जापान से भारत का व्यवसाय-सम्बन्ध भी है। ऐसे स्कूल से व्यवसायियों और व्यापारियों को भी लाभ हो सकता है। उद्योग-धन्धे की शिक्षा-प्राप्ति के लिए जापान जाने में बहुत सुभीता है। एक तो वह और देशों की अपेक्षा निकट है; दूसरे वहाँ ख़र्च कम पड़ता है। अतएव जापान जाकर शिक्षा-प्राप्ति की इच्छा रखने वालों के लिए तो ऐसे स्कूल की बहुत ही आवश्यकता है।

८—दो आवश्यक कर्तव्य।

भारत की आन्तरिक रक्षा के लिए गवर्नमेंट एक नई सेना का सङ्गठन कर रही है। इस लिए एक क़ानून भी बन गया है। जो भारतवासी अब तक सेना में न भरती हो सकते थे वे भी भरती किये जा रहे हैं। भरती होने के नियम आदि १७ मार्च १९१७ के गैज़ट आव् इंडिया में प्रकाशित हुए हैं। इस मौक़े को हाथ से न जाने देना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, १८ से ३० वर्ष तक की उम्र के शिक्षित और अशिक्षित भारतवासियों को भरती हो जाना चाहिए। हम लोगों का यह पहला आवश्यक कर्तव्य है।

युद्ध के ख़र्च के लिए भारतीय गवर्नमेंट ने विलायत की गवर्नमेंट को डेढ़ अरब रुपया देना निश्चित किया है। इस निमित्त यहाँ की गवर्नमेंट बड़ी अच्छी शर्तों पर ऋण ले रही है। ऋण थोड़ी मुद्दत के लिए भी दिया जा सकता है और लम्बी मुद्दत के लिए भी। डाकख़ाने की मारफ़त लोग १०) तक भी दे सकते हैं। यह रुपया वे जब चाहें वापस भी ले सकते हैं। जितने ही अधिक समय तक वे रुपया रक्खेंगे उतना ही अधिक ब्याज उन्हें मिलेगा। इस ऋण में रुपया लगाना हम लोगों का दूसरा आवश्यक कर्तव्य है। याद रहे यह रुपया युद्ध में विजय-प्राप्ति के साधन सम्पादन के लिए है और गवर्नमेंट की जीत से ही भारत का कल्याण है।

९—रेचन-वटी।

क़ब्ज़ बहुत बुरा रोग है। जब वह पुराना हो जाता है तब जड़ जमा लेता है और मुश्किल से जाता है। जो उसके शिकार हो जाते हैं उनमें से अधिकांश का पीछा वह छोड़ता ही नहीं। इस देश में तो क़ब्ज़ और मन्दाग्नि से बहुत ही कम लोगों की रक्षा होती है। जिन्हें लिखने पढ़ने का दिमाग़ी काम बहुत, पर परिश्रम कम, करना पड़ता है उनका तो यह रोग जन्म का साथी हो जाता है और शरीर को जर्जर कर डालता है। इस रोग को दूर करने में ओषधियाँ भी कम कारगर होती हैं, और होती भी हैं तो थोड़े ही समय तक। हम एक ऐसे आदमी को जानते हैं जो कोई ३० वर्षों से इस रोग से पीड़ित है। कुछ समय से उसे अपना जीवन भारभूत मालूम हो रहा था। बुडापेस्ट (हंगारी) के एक पहाड़ी चश्मे का अपेंटा (Apenta) नामक खनिज जल (Mineral Water) पीने से उसकी यह शिकायत कुछ दबी रहती थी। पर वर्तमान महायुद्ध के कारण इस दवा का मिलना अब प्रायः असम्भव हो गया है। इस दशा में यहाँ कानपुर के नाचघर नामक महल्ले में रहने वाले पण्डित गङ्गाविष्णु वैद्य ने अपनी कल्पना से एक विशेष प्रकार की रेचन-वटी बना कर उसे बहुत लाभ पहुँचाया। उनकी बनाई हुई एक या दो गोलियाँ शाम को खा लेने से दूसरे दिन कोष्ठ-शुद्धि अच्छी तरह हो जाती है। पेट में ज़रा भी मरोड़ नहीं होती; भूख ख़ूब लगती है; चित्त प्रसन्न रहता है। जो काम अन्य अनेक डाक्टरी और आयुर्वेद-विहित ओषधियों से नहीं हुआ वह इस वटी से हो जाता है। क़ब्ज़ के रोगियों के लिए यह ओषधि बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर हरकर्ट बटलर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गुणकारिणी है। मूल्य ५० गोलियों का ८ आना और १०० का १ रुपया है। गुण को देखते यह कुछ भी नहीं है।

१०—संयुक्तप्रान्त के भावी लाट।

इन प्रान्तों के लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर जेम्स मेस्टन, का कार्य्यकाल, नवम्बर १९१७ में, समाप्त हो जायगा। इस समय आप सेक्रेटरी आव् स्टेट को परामर्श देने के लिए विलायत गये हुए हैं और आपकी जगह पर माननीय मिस्टर होम काम कर रहे हैं। आपके बाद इस प्रान्त की लाटगरी सर हरकर्ट बटलर को मिलेगी। सम्राट् पञ्चम जार्ज ने इसकी घोषणा अभी से कर दी है। सर हरकर्ट आज कल ब्रह्मदेश के छोटे लाट हैं। वहीं से बदल कर इस प्रान्त में आवेंगे। आपका अधिकांश कार्य्य-काल इसी प्रान्त में बीता है।

सर हरकर्ट बटलर का जन्म १८६९ ईसवी में हुआ था। आक्सफ़र्ड में आपने शिक्षा पाई। १८९० में, अर्थात् जब आपकी उम्र केवल २१ वर्ष की थी, आपको इस देश की "सिविल सरविस" में जगह मिली। इस हिसाब से आपको मुलाज़िमत करते २६ वर्ष हुए। १८९४ में, २५ वर्ष की उम्र में, आपकी शादी हुई। आपने इलाहाबाद में पहले पहल मुलाज़िमत शुरू की। इसके बाद आपने और भी कितने ही ज़िलों में काम किया। काम भी आपको कई प्रकार के मिले। लखनऊ में बहुत समय तक आप डिपटी कमिश्नर रहे। १९०८ में आप गवर्नमेंट आव् इंडिया के वैदेशिक विभाग के सेक्रेटरी हुए। बड़े लाट के दफ़्र में, शिक्षा-विभाग खुलने पर, १९१० ईसवी में आप शिक्षा-सदस्य नियत किये गये। १९१५ में आप ब्रह्मदेश के छोटे लाट हुए और वहीं से अब फिर अपने पुराने प्रान्त में आ रहे हैं। १९०१ में आपको सी० आई० ई० का और १९११ में के० सी० एस० आई० का ख़िताब मिला। बनारस-विश्वविद्यालय के क़ायदे-क़ानून आपही के निरीक्षण में बने और "पास" हुए। आपकी योग्यता जग-जाहिर है। सुनते हैं, जहाँ कहीं आप गये हैं और जो काम आपने किया है, सर्वत्र अपना सिक्का जमा दिया है।

११—कौंट ज़ेपलिन की मृत्यु।

कई वर्ष हुए, कौंट ज़ेपलिन और उनके ईजाद किये हुए ज़ेपलिन नामक व्योमयानों का सचित्र वर्णन सरस्वती में छप चुका है। इन ज़ेपलिन का देहान्त हो गया। जिन ज़ेपलिन व्योमयानों ने संसार में तहलका मचा दिया है और जिनसे बम के गोले बरसा कर कैसर के क्रूरकर्म्मा सैनिक और उड़ाके निरीह और निःशस्त्र लोगों—यहाँ तक कि बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों तक—की हत्या करते ज़रा भी नहीं हिचकते उनके बनानेवाले ने बहुत सा पुण्य-सञ्चय करके, ७८ वर्ष की उम्र में, परलोक को प्रस्थान कर दिया।

कौंट ज़ेपलिन एक जर्मन सरदार के लड़के थे। थोड़ी ही उम्र में वे सेना में भरती हुए। १८६६ ईसवी में प्रशिया और आस्ट्रिया के बीच जो युद्ध हुआ था उसमें वे भी शरीक थे। १८७० ईसवी में फ़्रांस और जर्मनी में युद्ध हुआ। उस युद्ध में भी ज़ेपलिन को जर्मनी की तरफ़ से लड़ना पड़ा। उसी समय वे कर्नल बनाये गये। १८९१ में वे जनरल के पद को पहुँचे और इसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने पेंशन ले ली। तब से मृत्युपर्य्यन्त वे वायुयान-सम्बन्धिनी विद्या सीखने और वायु-यान बनाने ही में लगातार लगे रहे। जिस समय आपके सिर पर यह धुन सवार हुई उस समय आपकी उम्र ५६ वर्ष की थी। इस उम्र के आदमी पूर्वी देशों में राम-भजन करने, माला फेरने या पड़े पड़े खाँसने ही के काम के रह जाते हैं। पर ज़ेपलिन, इस उम्र में, दुबारा विद्यार्थी बने। उन्होंने वायुयानविद्या, धातुविद्या, विद्युद्विद्या और यन्त्रविद्या अच्छी तरह सीखी। इस प्रकार वर्षों के कठिन परिश्रम के अनन्तर उन्होंने अपने उद्दिष्ट विषय की सिद्धि के लिए अपने को योग्य पाया। अच्छी तरह तैयार होकर वे एक इतना बड़ा और इस तरह का व्योमयान बनाने की चेष्टा में लगे जो जल और थल के ऊपर, आकाश में, सैकड़ों कोस दूर की यात्रा कर सके, बहुत से आदमी और बहुत सा माल-अस-बाब ले जा सके, इच्छानुसार आकाश में उड़ाया और ठहराया जा सके, और इच्छित स्थान में बिना विघ्न-बाधा के उतारा जा सके। इस काम में उन्होंने अपना सारा धन ख़र्च कर दिया। व्योमयानों के अनेक नमूने बनाये और बिगाड़े। अपने देशवासियों और मित्रों के उपहास और भर्त्सना के पात्र भी बने। उनके सहायकों ने भी उनका साथ छोड़ दिया। रुपये के लिए की गई अपीलें व्यर्थ हुईं। इतने पर भी उन्होंने साहस न छोड़ा। अन्त को उन्होंने सफलता प्राप्त ही कर ली। उनका ३ नम्बर का ज़ेपलिन २०० मील उड़ा। तब जर्मनी की गवर्नमेंट ने उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३,७५,००० रुपये दिये और कहा, अभी और तजरिबा करो; इस व्योमयान में जो दोष रह गये हैं उन्हें दूर कर दो। जब लोगों को मालूम हो गया कि ज़ेपलिन पागल नहीं, वे ज़रूर अपने उद्दिष्ट कार्य्यों में पूर्णतः सफल होंगे, तब उन्हें ४५ लाख रुपया दिया गया। इस रुपये से उनकी अर्थ-कृच्छ्रता जाती रही। उन्होंने अपने कार्य्य के सहायक सभी साधन प्राप्त कर लिये और धीरे धीरे अपने व्योमयानों को उस दशा को पहुँचा दिया जिस दशा में वे आज कल युद्ध में काम दे रहे हैं। ज़ेपलिन अपने काम में सफल ज़रूर हुए, पर उनके व्योमयानों से जिस प्रकार का नृशंस काम लिया जा रहा है उसे देख कर अन्य सभ्य और शिक्षित जातियाँ कौंट ज़ेपलिन तथा जर्मनी की प्रशंसा नहीं कर सकतीं।

१२—बग़दाद।

जिस बग़दाद को हमारी सरकार ने ११ मार्च १९१७ को हस्तगत किया है वह बहुत पुराना और बड़ा प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। पर इस समय वह एक साधारण शहर रह गया है।

इस शहर को मुसलमानों के अब्बासिया ख़लीफ़ा मंसूर ने, ७६२ ईसवी में, बसाया। ७७५ ईसवी में उसने उसे अपनी राजधानी बना दिया। इसके बाद कोई १०० वर्षों तक बग़दाद संसार का सबसे प्रसिद्ध और धनशाली शहर रहा। उन्नति के समय उसकी आबादी कोई बीस लाख थी। उस समय वह अरबी भाषा में अनेक विद्याओं का केन्द्र था। अथवा यह कहना चाहिए कि मुसलमानों का वह विश्व-विद्यालय था। बग़दाद के ख़लीफ़ों ने वहाँ पर एक बहुत बड़ा पुस्तकालय स्थापित किया था। वे बड़े विद्याव्यसनी थे। उनके दरबार में सैकड़ों कवि, दर्शनशास्त्री और विज्ञान-वेत्ता रहा करते थे। यूनानियों, हिन्दुओं और चीनियों की अच्छी अच्छी पुस्तकों का अनुवाद कराया जाता था। अन्यान्य देशों में जो विद्यायें या कलायें थीं उनका प्रचार अपने यहाँ करने की ख़ूब चेष्टा की जाती थी। बग़दाद में इतने बड़े बड़े महल, मसजिदें, मदरसे और सरायें आदि थीं जिन्हें देख कर अन्य देश वाले आश्चर्य्यचकित रह जाते थे। हारूनुर्रशीद बड़ा नामी ख़लीफ़ा हुआ। उसने ७८६ से ८०९ ईसवी तक राज्य किया। उसके समय में बग़दाद ने बड़ी ही उन्नति की। उसके राज्यकाल में धन-धान्य और विद्या-कला आदि की अत्यधिक वृद्धि हुई।

इसके कुछ समय बाद फूट ने अपना काम आरम्भ कर दिया। बुरे दिन आने लगे। फल यह हुआ कि बग़दाद के ख़लीफ़ा के राज्य का विस्तार सङ्कुचित होते होते केवल बग़दाद और उसके इर्द गिर्द कुछ ही दूर तक रह गया। ख़लीफ़ा लोग अपने वज़ीरों और फ़ौजी अफ़सरों के हाथ की कठपुतली मात्र बन गये। होते होते यह नौबत आई कि, १२५८ ईसवी में, अर्थात् राज्य-स्थापित होने के कोई ५०० वर्ष बाद, बग़दाद बुरी तरह लूटा और फूँका गया। वहाँ क़त्लेआम हुआ। बग़दाद की ऊर्जितावस्था मिट्टी में मिल गई। हलाकूख़ाँ मुग़ल ने यह सब किया। उसी ने आख़िरी ख़लीफ़ा को, २१ मार्च १२५८ के दिन, फाँसी पर लटका दिया। झुण्ड के झुण्ड नगर-निवासी, बराबर ४० दिन तक, शहर के बाहर निकाल निकाल कर, मार डाले गये। बग़दाद का विख्यात पुस्तकालय और अनेक उमदा उमदा इमारतें जला दी गईं।

बग़दाद में मुग़लों या मंगोलों के मुख़तलिफ़ फ़िरक़ों का अमल-दख़ल १२५८ से १५०८ ईसवी तक रहा। इसके बाद वह फ़ारिस के बादशाहों के अधिकार में आया। १६३८ ईसवी में रूम के सुल्तान मुराद ने ३ लाख सेना लेकर उसे छीन लिया। तब बग़दाद में फिर एक दफ़े बड़ा भारी क़त्लेआम हुआ। तब से बग़दाद पर तुर्कों ही की सत्ता रही। अठारहवीं सदी में नादिरशाह ने उसे घेरा, पर ले न सका। इन्हीं आक्रमणों और राज्य-परिवर्तनों के कारण बग़दाद का वैभव दिन पर दिन नष्ट होता चला गया। अब तो वह एक मामूली शहर रह गया है। न वहाँ पहले के सदृश बड़ी बड़ी इमारतें हैं, न पुस्तकालय, न विश्वविद्यालय, न धन-वैभव। तथापि एशिया माइनर का वह अब भी प्रसिद्ध नगर है। कई अच्छी अच्छी मसजिदें और सरायें हैं। व्यापार भी वहाँ ख़ूब होता है। कई राज्यों के राज-दूत भी वहाँ रहते थे। अनेक जातियों के लोग वहाँ वाणिज्य-व्यापार करते हैं। पुराने नगर के ध्वंस दूर दूर तक पाये जाते हैं।

वर्तमान बग़दाद टाइगरिस नदी के दोनों किनारों पर घना बसा हुआ है। उसकी आबादी कोई डेढ़ लाख होगी। गलियाँ तङ्ग और बेक़ायदे हैं। कूड़ा उठाने और गन्दा पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालने का ठीक प्रबन्ध नहीं। आबोहवा अच्छी नहीं। पीने का पानी नदी से आता है। शहर के आसपास पेड़ नहीं। बसरा से बग़दाद तक टाइगरिस नदी में धुआँकश और बड़ी बड़ी नावें आ जा सकती हैं। इनके द्वारा अब भी बहुत व्यापार होता है। आशा है, सरकार अँगरेज़ की कृपा से अब उसके दिन फिर पलटेंगे। अनेक दृष्टियों से यह नगर बड़े महत्त्व का है। वहाँ तक रेल भी है। फ़ारिस, टर्की, आसीरिया आदि से वहाँ व्यापार होता है। सैकड़ों क़ाफ़िले आते जाते रहते हैं। ख़लीफ़ों के समय में टाइगरिस और यूफ्रटिज़, ये दोनों नदियाँ एक नहर से जोड़ दी गई थीं और शहर के क़रीब क़रीब सभी मकानों में नहरों से पानी पहुँचाया जाता था। ये नहरें मौजूद हैं। कुछ ही परिश्रम से वे फिर अपना काम कर सकती हैं।

१३—अवन्ति-देश।

अवन्ति-देश बहुत प्राचीन है। आधुनिक पुरातत्त्व-वेत्ताओं का मत है कि आर्य्यावर्त में आर्य्य-सभ्यता के विस्तार के बाद, आर्य्यों ने, दक्षिण देश में, बहुत दिनों तक निवास किया था। इस विषय में प्रायः मतभेद नहीं। आर्य्यों का प्राचीन निवास-स्थान प्रत्नौकस और उत्तर-कुरुवर्ष था। ऋग्वेद (१। ३०। ६) में लिखा है—"अनु प्रत्नस्यौकसो हु वे—यं ते पूर्वं पिता हु वे"। वहाँ से दक्षिणाभिमुख जाते हुए बाल्हीक, गान्धार, पञ्चनद, कुरुक्षेत्र, मध्य-देश, उत्तर-कोशल, काशी, विदेह, मगध, अङ्ग, दक्षिण-कोशल आदि देशों का अतिक्रमण करके वे अन्य देशों में फैले। इन देशों को छोड़ कर उन्होंने प्रथम ही अरण्य-व्याप्त विन्ध्य-पर्वत का अतिक्रमण किया, यह सम्भावना नहीं मानी जा सकती। वैदिक काल में, आर्यों ने अवन्ति आदि देशों में निवास किया था, इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि वेद, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थ इसका साक्ष्य देते हैं। जब सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए नाना देशों को वानर भेजे थे तब उन्होंने और और देशों के साथ अवन्ती का भी नाम लिया था—

> " आम्रवन्तीमवन्तींश्च सर्वमेवानुपश्यत।
> विदर्भान्‌ऋष्टिकांश्चैव रम्यान् माहिषकानपि॥
> अधिगच्छ दिश पूर्वां सशैलवनकाननाम्।
> मत्समालान् विदेहांश्च मालवान् काशिकोशलान्॥"
>
> (रामायण, किष्किन्धाकाण्ड)

और, कुरुक्षेत्र के युद्धारम्भ के पूर्व सञ्जय ने भी धृतराष्ट्र से भारतवर्ष के पर्वतों, नदियों और देशों का वर्णन किया था। उसमें भी अवन्ति का नाम है। इसके सिवा कई पुराणों में भी अवन्ति-देश का उल्लेख है। अवन्ति का दूसरा नाम मालव है। कोई कोई कहते हैं कि इस देश का मालव नाम पीछे से हुआ है। परन्तु मालव नाम भी प्राचीन ही है। अवन्ती और मालव भिन्न भिन्न देश नहीं—

> "अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ।
> मालका मल्लवाश्चैव, अथैवापरवल्लभाः॥
>
> (महाभारत, भीष्म-पर्व)

महाभारत में जिस प्रकार भिन्न भिन्न स्थलों में मालव नाम देखा जाता है उससे अनुमान होता है कि अवन्ती से बहुत दूर दक्षिण में मालव नामक एक सभ्य जाति निवास करती थी। उसी के वास-स्थान होने से इस देश का मालव नाम हुआ है। सम्भवतः रामायण और महाभारत की रचना के बाद मालव-जाति ने इस प्रदेश पर अधिकार जमाया होगा। प्राचीन कोशकार हेमचन्द्र के मत से अवन्ती और मालव शब्द एकार्थक और देश-वाचक हैं। प्राचीन समय में इस देश में किन किन राजाओं ने राज्य किया था, इसका विश्वास-योग्य इतिहास नहीं प्राप्त होता। महावंश नामक बौद्ध-ग्रन्थ में लिखा है कि ईसा के २६३ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने अवन्ति-देश में राज्य किया था। उसके भी बहुत वर्षों पहले यह प्रदेश महाराज विक्रमादित्य के पूर्व-पुरुषों के हस्तगत हुआ था।

महाराज प्रथम विक्रमादित्य (ईसवी सन् के ५७ वर्ष पहले) के समकालिक कालिदास ने रघुवंश और मेघदूत में अवन्ति-देश के राजाओं का, और उसी सम्बन्ध में उज्जयिनी के प्राकृतिक दृश्यों का, वर्णन किया है। इसी रीति का अवलम्बन करके पद्मगुप्त कवि ने "नवसाहसाङ्कचरित" काव्य में जी खोल कर उज्जयिनी के सौन्दर्य का चित्र खींचा है। सरस्वती के संस्कृत-पाठकों के विनोदार्थ उसमें से कुछ श्लोक सुनाता हूँ—

> "अस्ति क्षितावुज्जयिनीति नाम्ना पुरी विहायस्यमरावतीव।
> बबन्ध यस्यां पदमिन्द्रकल्पः श्रीविक्रमादित्य इति क्षितीशः॥
> हिमच्छटाहारिभिरंशुजालैः प्रालम्बिमुक्ताफलजालकानि।
> विलासिनीविभ्रममन्दिराणि यस्यां हसन्तीव परस्परस्य॥
> यस्यां समुन्मीलति सुन्दरीणां सा कापि सौभाग्यविशेषलक्ष्मीः।
> विलासमुक्तागुणवद्भ्रदासां सदा प्रियस्तिष्ठति कण्ठलग्नः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतासु तीरं तिमिघट्टनेन ससंभ्रमं पौरविलासिनीषु ।
यत्रोल्लसत्फेनततिच्छलेन मुक्ताट्टहासेव विभाति सिप्रा ॥" इत्यादि

गोकर्णदत्त त्रिपाठी

पुस्तक-परिचय ।

१—सिद्धान्तकौमुदी की बालमनोरमा टीका ।

सम्प्रति, भारतवर्ष में, पाणिनीय व्याकरण का ही सर्वाधिक प्रचार है। लघुकौमुदी और सिद्धान्तकौमुदी पढ़ना सब के लिए परमावश्यक है। व्याकरण-ज्ञान के बिना किसी भाषा में व्युत्पत्ति नहीं हो सकती। प्राचीन काल में ऋषियों ने जैसे सब शास्त्रों के मूलतत्त्वों को सूत्ररूप में प्रकाशित किया था वैसे ही व्याकरण भी अष्टाध्यायी के रूप में प्रचलित था और उसको लोग कण्ठ करके अपना काम चलाते थे। परन्तु, अब, जगत् में ज्ञान-विकाश के साथ ही साथ प्रायः सभी प्राचीन रीति-नीतियों में परिवर्तन और वैलक्षण्य हो गया है और होता जा रहा है। ऐसे ही अब अष्टाध्यायी मात्र से काम नहीं चल सकता। अब तो सिद्धान्त-मनोरमा-शेखर-मञ्जूषा पढ़ो-घोटो और परीक्षायें पास करो, तब कहीं उद्धार की आशा है। काल-गति से सब भार उठाना ही पड़ता है। अस्तु। कुछ वर्ष हुए मदरास-प्रान्त से कौमुदी की "बालमनोरमा" नामक बड़ी उत्तम और विस्तृत टीका प्रकाशित हुई है। उसके कर्ता श्रीवासुदेव दीक्षित हैं, जो, बहुत वर्ष हुए, परलोकवासी हो गये हैं। प्रकाशक श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, मदरास हैं। इसके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध, दो भाग हैं। दोनों का मूल्य, समर्थों के लिए २०) और विद्यार्थियों के लिए १७) है। यह कहने को है तो "बालमनोरमा", परन्तु वास्तव में इसे "प्रौढ़मनोरमा" समझना चाहिए। कौमुदी की कठिनता और उस पर प्राचीन पण्डितों के क्रोड़-परिष्कार-शङ्का आदि का घन-घोर लदाव किसी से छिपा नहीं। जहाँ कहीं पाठशालाओं में पढ़ने जाइए, कुछ विचित्र ही अध्ययन-शैली देखने में आवेगी। अर्थात् उसकी कोई सीमा निर्दिष्ट नहीं। बालमनोरमा में मूल ग्रन्थ का आशय, आवश्यक शङ्कायें, महाभाष्य आदि से अधिक प्रमाणों का न्यास, प्रयोग-साधन आदि बहुत विमल रीति से किया गया है। विद्यार्थियों का कष्ट सर्वथा दूर किया गया है। सबके देखने और ख़रीदने लायक़ है। पण्डितों को भी कृपापूर्वक देखना, और, समयानुसार, उसी के ढँग का पाठ पढ़ाना चाहिए, जिसमें व्यर्थ कालक्षेप न हो। अब पहाड़ खोद कर चुहिया निकालने का समय नहीं। आचार्य्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में प्रसङ्गवश एक अच्छा श्लोक लिखा है;—

प्रायेण सूत्रेण विना कृतानि प्रकाशरन्ध्राणि चिरन्तनानि ।
रत्नानि शास्त्राणि च योजितानि नवैर्गुणैर्भूषयितुं क्षमाणि ।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

२—श्री गोस्वामी तुलसीदास का जीवनचरित-

आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ४३०, काग़ज़ और छपाई अच्छी, मूल्य दो रुपये, लेखक अख़तियारपुर, ज़िला आरा, के रहने वाले बाबू शिवनन्दनसहाय, प्रकाशक—मैनेजर, बिहार-स्टोर, आरा। लेखक महाशय ने इस पुस्तक को लिख कर हिन्दी का बहुत उपकार और तुलसीदास की कविता के प्रेमियों पर बड़ी कृपा की है। उन्होंने बहुत परिश्रम और बहुत खोज से इसका प्रणयन किया है। पुस्तक दो खण्डों में है। पहले खण्ड के १७ परिच्छेदों में तुलसीदास के चरित से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी बातों का समावेश है। उनके विषय में जो किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं उन सब का उल्लेख करके उनकी सम्भवनीयता या असम्भवनीयता पर विचार किया गया है। साथ ही और लोगों के वक्तव्यों और मतों की आलोचना करके उनके औचित्य या अनौचित्य पर सम्मति भी दी गई है। दूसरे खण्ड के ३० परिच्छेदों में तुलसीदास की कविता और उनके ग्रन्थों आदि की विस्तृत और विचारपूर्ण आलोचना है। तेरह चौदह परिच्छेदों में केवल रामायण से सम्बन्ध रखने वाली बातें हैं। शेष परिच्छेदों में गोस्वामीजी की अन्यान्य पुस्तकों पर विचार है। अन्त में उनकी संस्कृतज्ञता और उनके मत का विवेचन है।

पुराने कवियों और महात्माओं के चरित लिखने में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सामग्री न मिलने और अभिलषित प्रमाण न प्राप्त न होने से अनेक विषयों में अनुमान से काम लेना पड़ता है। यह बात प्रस्तुत पुस्तक में भी की गई है। अतएव खोज से यदि इसकी कुछ बातें विचारणीय सिद्ध हों तो आश्चर्य्य नहीं। ऐसे कामों में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। पर इससे ग्रन्थ का महत्त्व कम नहीं हो सकता। सामग्री के अभाव में भ्रमजनित त्रुटियाँ खटकती नहीं। हाँ, इसकी भाषा परिमार्जित नहीं। प्रूफ़-संशोधन भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावधानता से नहीं किया गया। यह बात अवश्य खटकती है। पर यह त्रुटि अगले संस्करण में दूर हो सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि इस पुस्तक ने हिन्दी-साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति कर दी। इसका आदर करना और इसे पढ़ना प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी—विशेष करके तुलसीदासजी की कविता के प्रेमी—का कर्तव्य है।

❋

३—**मिलन-मन्दिर**—अनुवादक—पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा; प्रकाशक—बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०, मालिक, भीष्म एंड ब्रदर्स, पटकापुर, कानपुर; आकार डबलक्राउन १६ पृष्ठ, पृष्ठ-संख्या ३४४; मूल्य, काग़ज़ की जिल्द १।, और कपड़े की जिल्द १॥; छपाई अच्छी; जिल्दबन्दी बढ़िया। बाबू सुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य्य, वङ्गभाषा के नामी उपन्यास-लेखक, ने बँगला में मिलन-मन्दिर नामक एक उपन्यास लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी-अनुवाद है। इसमें यह दिखाया गया है कि "घर की फूट का क्या परिणाम होता है, आपस का विरोध क्या रङ्ग लाता है, कुसङ्ग में पड़ कर मनुष्य की क्या दुर्दशा होती है और घोर विपद् आने पर भी सज्जन किस प्रकार अपने मन तथा धर्म्म की रक्षा करते हैं।" अनुवाद की भाषा बामुहावरा और सब के समझने लायक़ है। इस पुस्तक की एक पात्र यूथिका सुशिक्षिता है, वह बी० ए० पास है। उसका चरित्र लेखक ने बहुत ही निन्द्य खींचा है। उसके प्रेमी दानीशचन्द्र का भी चरित आक्षेप-योग्य है। यह शायद घर की फूट दिखाने के लिए किया गया है। पर खटकता है। फूट और तरह भी दिखाई जा सकती थी। यदि उच्च शिक्षा के दोष दिखाने के लिए ऐसा चरित्रचित्रण किया गया है तो यह अपवाद माना जा सकता है, क्योंकि अशिक्षितों की तरह शिक्षितों में भी अधार्म्मिक और दुराचारी होते हैं; केवल शिक्षित होने ही से मनुष्य सदाचारी नहीं हो सकता। दुराचारी होना सबके लिए बुरा है, परन्तु शिक्षितों के लिए तो और भी बुरा है। इस एक बात को छोड़ कर पुस्तक से अनेक शिक्षायें मिल सकती हैं। वह प्रत्येक गृहस्थ के पढ़ने योग्य है।

❋

४—**पैरोकार हाई-कोर्ट**—भाषा उर्दू, लिपि फ़ारसी, आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १००, मूल्य १ रुपया, लेखक पण्डित मदनमोहन शर्म्मा, ४३१, कर्नलगंज, इलाहाबाद, उन्हीं से प्राप्य। यह बड़े ही काम की किताब है। इलाहाबाद-हाई-कोर्ट में अपील करने वालों के लिए जिन बातों का जानना ज़रूरी है वे सब इसमें लिखी गई हैं। जो लोग अपील करने बाहर से जाते हैं उनके लिए तो यह पुस्तक और भी अधिक उपयोगिनी है। इसे पढ़ लेने या किसी से पढ़ा कर अपने मतलब की बातें सुन लेने से अपील करने वालों को अहलकारों के पास व्यर्थ दौड़ने, फ़िज़ूल रुपया फेंकने और फिर भी ग़लतियां करने से नजात मिल सकती है। इसमें होटलों, धर्म्मशालाओं और वकील-बारिस्टरों आदि के नाम और पते भी दिये गये हैं। और भी कितनी ही आवश्यक बातें हैं। ऐसी पुस्तक हिन्दी में भी होनी चाहिए। माल, दीवानी और फ़ौजदारी की नीचे की अदालतों के विषय में इस तरह की पुस्तकें यदि निकल जायँ तो बहुत अच्छा हो।

❋

५—**श्रीकृष्णकीर्त्तनम्**—इस ३२ सफ़े की अच्छी छपी पुस्तक में १०० दोहे हैं। वे सब के सब संस्कृत-भाषा में हैं। छपे बड़े टाइप में हैं। नीचे छोटे टाइप में उनका हिन्दी-अनुवाद उसी छन्द में है। पुस्तक का नाम ही उसके विषय का यथेष्ट सूचक है। इसकी संस्कृत-कविता बहुत सरस है। वह सरल भी है। एक उदाहरण—

कोमलानि मधुराणि शुचि-सुखद-भक्ति-भरितानि।
नाशयन्ति दुरितानि किल राधाहरिचरितानि॥

हिन्दी

भक्तिभरित कोमल मधुर सुन्दर सुखद पवित्र।
नासत सारे पाप को राधाकृष्ण-चरित्र॥

पटना-कालेज के व्याख्याता पण्डित अक्षयवट मिश्र ने इसकी रचना की है। मूल्य इसका दो आने है। पाटलि-पुत्र प्रेस, बाँकीपुर, से मिलती है।

❋

६—**तत्त्वज्ञानतरङ्गिणी**—यह खुले पन्नों की पोथी-नुमा पुस्तक है। पृष्ठ-संख्या इसकी २१६ है। अच्छे पुष्ट काग़ज़ पर, सुन्दर टाइप में, छपी है। मूल श्लोक बड़े टाइप में हैं, उनका हिन्दी-भावार्थ और विवरण छोटे टाइप में। विक्रम-संवत् १२६० में जैन विद्वान् भट्टारक ज्ञानभूषण ने इसकी रचना की थी। पण्डित गजाधरलाल न्यायतीर्थ ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका हिन्दी-भाष्य किया है। भारतीय जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी सभा ने इसे छपा कर प्रकाशित किया है। उसी के महामन्त्री, श्रीपन्नालाल वाकलीवाल, के ९ विश्वकोश लेन, कलकत्ते, के पते पर लिखने से यह पुस्तक मिलती है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। पुस्तक में १८ अध्याय और ५३६ श्लोक हैं। उनमें शुद्धचिद्रूप के लक्षण और तदनन्तर उसकी प्राप्ति के साधनों और उपायों का वर्णन है। इस पुस्तक के कर्ता बड़े विद्वान् और अध्यात्म-विद्या के अच्छे ज्ञाता थे। यह बात उनकी कृति से प्रकट होती है। उन्होंने निर्दिष्ट विषयों का निरूपण जैन-धर्म्म के तत्त्वज्ञों के ज्ञानानुकूल खूब किया है। यह निरूपण व्याख्याकार की हिन्दी टीका से अब सर्व-साधारण के लिए भी सुलभ है। अतएव अध्यात्मविद्या के प्रेमियों को इस पुस्तक के आकलन से लाभ उठाना चाहिए।

※

७—**माला**—यह ४० पृष्ठों की एक छोटी सी बँगला-पुस्तक है। इसमें श्रीसूर्य्यप्रसन्न वाजपायी (वाजपेयी) की फुटकर कवितायें हैं। वाजपेयीजी इसी प्रान्त के रहने वाले युवक हैं। पर आपकी ज़मींदारी बङ्गाल के बरीसाल ज़िले में है। इस कारण आपका रहना वहीं अधिक होता है। इस प्रान्त के रहने वालों में से आप शायद पहले ही साहित्यसेवी हैं जिन्होंने बँगला-भाषा में कविता की है। पुस्तक की भूमिका बाबू कालीप्रसन्नदास-गुप्त, एम० ए० की लिखी हुई है। उन्होंने वाजपेयीजी की कविता की प्रशंसा की है। प्रसन्नता की बात है, इस प्रान्त के हिन्दी-भाषाभाषी काव्यरसिक को बँगला की पद्य-रचना में इतनी सफलता हुई कि बङ्गालियों के भी वे अभिनन्दन-पात्र हुए। मूल्य ४ आने। प्राप्ति-स्थान—कमला प्रिंटिंग् वर्क्स, ३ काशिमित्र घाट स्ट्रीट, कलकत्ता।

※

८—**शिक्षा-सुधार**—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १४०, मूल्य ८ आने, लेखक—बाबू काशीनाथ, प्रकाशक—प्रकाश-पुस्तकालय, फीलखाना बाज़ार, कानपुर। इसमें लेखक महाशय ने अपने तजरिबे से शिक्षा-विषयक ६० भूलों का निर्देश किया है। भूलों का सम्बन्ध शिक्षा के उद्देश, स्कूल के प्रबन्ध, शिक्षा के ढँग, शासन, दण्डनीति और नैतिक शिक्षा से है। विद्यार्थियों के अभिभावकों, अध्यापकों, स्कूलों के प्रबन्ध-कर्ताओं आदि के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। जिन बातों को लेखक महोदय ने भूलों में गिना है वे निःसन्देह भूलें हैं या नहीं, इसका निर्णय अनुभवशील अध्यापक और शिक्षा-विधि के अच्छे ज्ञाता ही कर सकेंगे। पुस्तक की भाषा कुछ कम "सरल और सुबोध" है।

९—**प्रातःस्मरणीय चरितमाला**—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ५०, मूल्य ४ आने, अनुवादक—बाबू उमाप्रसाद जायसवाल, न्यू डोबरना कोलियारी, पोस्ट छोरा, ज़िला बर्दवान, अनुवादक से प्राप्य। इसमें विश्वामित्र, चैतन्य, गुरुगोविन्दसिंह और विलियम टेल आदि के संक्षिप्त चरित लिख कर यह दिखाया गया है कि दरिद्रभोगी मनुष्य भी आत्मोत्सर्ग द्वारा संसार का बहुत कल्याण कर सकते हैं। पर इसके लिए दरिद्रता के आह्वान की ज़रूरत नहीं। आत्मोत्सर्ग करने वाले लक्ष्मी का त्याग करके भी औरों का सुख-साधन कर सकते हैं।

※

१०—**हमारा जातीय भाव**—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य दो आने, मिलने का पता—पण्डित सिद्धगोपाल शुक्ल, भारतीय ग्रन्थ-भाण्डार-कार्य्यालय, हसनगंज, लखनऊ। यह पुस्तक बाबू रजनीकान्त गुप्त के एक बँगला निबन्ध का अनुवाद है। अनुवादक हैं—पण्डित रामदेव त्रिपाठी। इसमें भारतीय भाव, भाषा, आचार, रीति-रवाज आदि की रक्षा का महत्त्व वर्णित है। जिन लोगों ने इन बातों का आंशिक त्याग किया है उनके व्यवहार की कड़ी आलोचना भी है। लेखक महाशय के विचार उदार और अनुकरणीय हैं। अनुवाद की भाषा परिमार्जित नहीं।

※

११—**विनयमालिका**—पटना कालेज (बाँकीपुर) के संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याता पण्डित अक्षयवट मिश्र के रचे हुए १७ श्लोक इस छोटी सी पुस्तक में हैं। १६ शार्दूलविक्रीडित और १ स्रग्धरा वृत्त में है। नीचे उनका भावार्थ हिन्दी-गद्य में है। कविता प्रसादगुण-पूर्ण है। इसमें श्रीकृष्ण की स्तुति-प्रार्थना है। मिश्रजी को डाक महसूल का आध आना भेजने से यह पुस्तक मुफ़्त मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—समाज—इस नाम का एक मासिक पत्र इलाहाबाद से निकलने लगा है। आरम्भ इसका इसी साल के जनवरी महीने से हुआ है। अब तक दो अङ्क निकले हैं। दोनों में दो दो कालमों के बत्तीस बत्तीस पृष्ठ हैं। इन दोनों अङ्कों में जो सम्पादकीय विचार प्रकट हुए हैं वे महत्त्व के हैं और अनुमोदनीय हैं। कई लेख भी अच्छे हैं। प्राचीन सामाजिक जीवन—नामक लेख में लेखक ने पुराने समय के जन-समाज और राज-कुटुम्ब के साधार दोष दिखाने में ज़रा भी कोर-कसर नहीं रक्खी। एक और लेख में उस समय के सामाजिक जीवन के गुण भी दिखाने चाहिए। इस पत्र में पद्य-लेख भी रहते हैं। लक्षणों से ज्ञान पड़ता है, यह अपने कर्तव्य का पालन अच्छी तरह करेगा। मूल्य इसका दो रुपया साल है। मिलने का पता—व्यवस्थापक, समाज, दारागञ्ज, इलाहाबाद।

१३—जनरल वाशिंगटन का जीवनचरित्र—आकार मँझोला, जिल्द बँधी हुई, पृष्ठ-संख्या १७६ + ४, मूल्य १ रुपया; लेखक—पण्डित रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, प्रकाशक—शारदा बुकडिपो, कालभैरव, काशी। इस पुस्तक में अमेरिका के उद्धारक—उसे स्वातन्त्र्य दिलाने वाले—वाशिंगटन का जीवनचरित है। पुस्तक के प्रिंटर के शब्दों में "यह जीवनी स्वतन्त्रता और स्वार्थत्याग का साक्षात्‌रूप है और देश हितेच्छु को पथप्रदर्शक है"। इससे अमेरिका की तत्कालीन स्थिति का भी ज्ञान हो सकता है और अनेक शिक्षायें भी मिल सकती हैं। छपाई साफ़-सुथरी और भाषा साधारण है। यह किसी पुस्तक का "भाषान्तररूप" है। पर किसका, यह कहीं नहीं लिखा। शायद मूल लेखक का नाम बताना बुरा समझा गया है! ऐसा न हो जो कोई मूल पुस्तक से अनुवाद का मिलान करे; अतएव उसे व्यर्थ ही कष्ट उठाना पड़े! और किसी को व्यर्थ कष्ट देना बुरा नहीं तो क्या है!

१४—स्वामी विवेकानन्द, भाग त्रीजो—यह गुजराती भाषा की पुस्तक है। इसका आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ३२० और मूल्य ८ आने है। इसका प्रकाशन अहमदाबाद और बम्बई के सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्य्यालय ने किया है। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। आरम्भ में स्वामी विवेकानन्द का एक चित्र है। स्वामीजी ने अमेरिका-यात्रा से लौट कर सिंहलद्वीप और मदरास-प्रान्त में जो व्याख्यान और उनको समर्पण किये गये मानपत्रों के जो उत्तर दिये थे उन्हीं का अनुवाद इस पुस्तक में है। इन व्याख्यानों और उत्तरों में वेदान्त की महिमा और भारत के प्राचीन धर्म्म-गौरव आदि का बहुत अच्छा विवेचन है। इस अनुवाद को अँगरेज़ी और बँगला-पुस्तकों के आधार पर श्रीयुत वसनजी दयालजी गणात्रा ने किया है। पुस्तक सुविचारों का सागर है।

१५—स्वामी रामतीर्थ—श्रीयुत भास्कर विष्णु फड़के, बी० ए० (माटुंगा, बम्बई) और श्रीयुत रामकृष्ण वासुदेव बर्वे, मराठी में स्वामी रामतीर्थ पर जो पुस्तक-माला निकाल रहे हैं उसका यह बारहवाँ भाग है। इसकी पृष्ठ-संख्या दो सौ के लगभग है। मूल्य है बारह आने। फड़के महाशय को लिखने से यह पुस्तक मिलती है। इसमें स्वामीजी के पत्रों का मराठी-अनुवाद है। पुस्तक में तीन भाग हैं। पहले में संन्यास लेने के पहले के पत्र हैं, दूसरे में उसके बाद के, और तीसरे में वे जिन्हें स्वामीजी ने अपने हिमालयस्थ कुटीर से लिखा था। आरम्भ में स्वामीजी के गुरु-तुल्य, भक्त धन्नाराम, का जीवनचरित और एक विस्तृत विषय-प्रवेश है।

१६—भावना-शतक—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ३५४, मूल्य १० आने, जिल्द बँधी हुई, मिलने का पता—शाह बन्द्रावनदयाल माँगरोलवाला, कोट, बाज़ार गेट, बम्बई। इसकी रचना शतावधानी पण्डित मुनि-रत्नचन्द्र ने की है। परिशिष्ट छोड़ कर इसमें एक सौ श्लोक संस्कृत में हैं। उनकी लिपि देवनागरी है। नीचे गुजराती-लिपि और गुजराती-भाषा में उन श्लोकों का भावार्थ और विस्तृत विवेचन है। भावनाओं से मतलब जैन-धर्म्म-प्रोक्त अनित्य-भावना, अशरण-भावना, संसार-भावना आदि बारह प्रकार की भावनाओं से है। परिशिष्ट में चार और भावनाओं का भी वर्णन है। कविता प्रासादिक है।

१७—पूजा-फूल—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २०८, मूल्य ८ आने, लेखक—पाण्डेय मुरलीधर शर्म्मा और पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुकुटधर शर्म्मा, बालपुर, ज़िला विलासपुर। यह पुस्तक इटावे के ब्रह्मप्रेस में छपी और वहीं से प्रकाशित हुई है। इसमें लेखकों की ७४ कविताओं का संग्रह है। कवितायें अनेक विषयों की हैं। भाव प्रायः सभी कविताओं के अच्छे हैं। पद्य अनेक प्रकार के प्रयुक्त हुए हैं। कवि-युग्म के वयःक्रम को देखते उनका कविता-प्रेम और रचनाकौशल प्रशंसा का पात्र है।

*

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) कुवलयानन्दाचीं गाणीं—प्रकाशक, जुम्मादादा-व्यायामशाला, बड़ोदा।

(२) यूरोपियन पतिव्रता स्त्रियों के जीवनचरित — प्रेषक, बाबू केशवचन्द्र, सरसा, इलाहाबाद।

(३) श्रीरामपञ्चाङ्गम्—प्रेषक, श्रीयुत खेमराज रामकुमार, नागपुर।

(४) शङ्कराष्टकम्—लेखक, पं० मन्नीलाल मिश्र, चौक, कानपुर।

(५) फूलों का गुच्छा—प्रकाशक, वर्म्मन एंड-फ्रेंड्स, १०८ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(६) दान-प्रथा का सुधार—प्रेषक, दान-प्रचारिणी सभा के मन्त्री, मुज़फ्फ़रपुर।

(७) गङ्गागन्धर्वः—प्रणेता, पण्डित रामदयालु तिवारी, ढाढोल, मुरादाबाद।

(८) दिल्ली की नवल-प्रेस-सभा का कैलेंडर, सन् १९१७ का — प्रेषक, पं० ईश्वरीप्रसाद पाण्डेय, सनातन-धर्म्म-प्रेस-विद्यालय, दिल्ली।

(९) पाँच पायांची गाय—प्रकाशक, गङ्गाराम आत्माराम राणे, बम्बई।

(१०) नागरीप्रचारिणी सभा, रायबरेली, के प्रथम वार्षिकोत्सव का विवरण — प्रेषक, मन्त्री, सभा रायबरेली।

(११) जैनबस्ती मां मरण-प्रमाण, इत्यादि—प्रेषक, ना०म० शाह, बम्बई।

(१२) उपदेश-चिन्तामणि—लेखक, बाबू जवाहरलाल लोढ़ा, लखनऊ।

(१३) धात्री विद्या—लेखक पं० घनानन्द पन्त विद्यार्णव, मुरादाबाद।

(१४) धर्म्मप्रवेशिका—लेखक श्रीयुत दत्तात्रेय महादेव गोडसे, इन्दौर।

(१५) भावना-लहरी—लेखक, कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, आरा।

(१६) राजभक्तिप्रकाशः—लेखक, म० म० पण्डित बाँकेराय नवल-गोस्वामी, देहली।

(१७) भारत में भूत—संग्रहकर्त्ता—श्रीयुत हनूमान् शर्म्मा, जयपुर।

(१८) अमेरिकानो प्रवास—प्रेषक, सस्तु-साहित्य-वर्धक कार्य्यालय, बम्बई।

(१९) गयादीन-सरोवर-सरोज—लेखक, बाबू जानकीप्रसाद साहु, नाथनगर, भागलपुर।

(२०) देवाधिदेवरचना—प्रेषक, बाबू परमानन्द, बी० ए०, वकील, कसूर, पञ्जाब।

चित्र-परिचय।

काश्मीर का प्रातःकालीन दृश्य।

इस संख्या का रङ्गीन चित्र चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा का बनाया हुआ है। उसमें काश्मीर का एक प्रातःकालीन दृश्य दिखाया गया है। समय सूर्योदय के कुछ ही बाद का है। पहाड़ पर सूर्य्य की कोमल किरणों के आलोक का रङ्ग दिखाई दे रहा है। बरफ़ गल रही है। सूर्य्य की गरमी से कुहासा कुछ कुछ दूर हो रहा है। हरी हरी घास तथा फूल-पत्तों की शोभा दृश्य को और भी मनोहर बना रही है। पहाड़ी पेड़ों और पत्थरों के बीच से बहता हुआ पानी बहुत ही सुहावना मालूम हो रहा है। इस प्रकार इस दृश्य में प्राकृतिक सौन्दर्य्य की वृद्धि की सभी सामग्री प्रस्तुत है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग १८, खण्ड १]　　　　मई, १९१७　　　　[संख्या ५, पूर्ण संख्या २०९

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ४)　　　सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी　　　[प्रति संख्या ।≈)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची । पृष्ठ

(१) काला रङ्ग—[लेखक, पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ... ... २३३
(२) पण्डित सदानन्द शुक्ल—[लेखक, पण्डित बालदत्त पाण्डेय २३३
(३) मदिरा-पान पर कुठार-प्रहार—[ले०, सेंट निहालसिंह, लन्दन २३५
(४) पृथ्वी की उत्पत्ति—[लेखक, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ० ... २३८
(५) साकेत, चतुर्थ सर्ग—[ले०, बाबू मैथिलीशरण गुप्त २४२
(६) साकची में लोहे का कारख़ाना—[ले०, पण्डित जोखू पाण्डेय, साकची २४६
(७) जीवन क्या है? २५२
(८) भाषा की उन्नति (२)—[लेखक, बाबू सुरेन्द्रनाथसिंह, बी० ए० ... ... २५६
(९) प्रौढ़ प्रेम—[ले०, पण्डित रामचरित उपाध्याय २६४
(१०) श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस की पुस्तकें—(३) २६५
(११) छोटों का काम—[ले०, श्रीयुत विश्वनाथसिंह २६८
(१२) विहार की ऐतिहासिक प्रधानता—[ले०, श्रीगङ्गापतिसिंह २६९
(१३) प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव—[लेखक, श्रीयुत कोसलेन्द्रप्रताप साही ... २७२
(१४) कुछ न किया—[लेखक, "सनेही" ... २७७
(१५) विविध विषय २७८
(१६) पुस्तक-परिचय २८४
(१७) चित्र-परिचय २८८

चित्र-सूची ।

१—अति-विलम्ब (रङ्गीन)।
२—राय साहब डाक्टर एस० चक्रवर्ती, साकची।
३—मिस्टर जे० एन० दस्तूर, बी० ए०, साकची।
४—श्रीयुत पण्डित मुन्नालाल तिवारी, साकची।
५—ताता के लोहे के कारख़ाने और कार्यालय का दृश्य, साकची।
६-७—प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव—नामक लेख से सम्बन्ध रखने वाले दो चित्र।
८—बाबा गम्भीरनाथजी।

नई पुस्तकें ! नई पुस्तकें !!

हिन्दी में

किरातार्जुनीय

(पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित)

महाकवि भारवि की यह वही पुस्तक है जिसकी धूम सैकड़ों वर्षों से संस्कृत-साहित्य में मच रही है। द्विवेदीजी महाराज की कृपा से केवल हिन्दी भाषा से ही परिचय रखने वाले सज्जन भी इसका ख़ूब रसास्वादन कर सकेंगे। इसमें राजनीति, धर्मनीति आदि कूट कूट कर भरी पड़ी हैं। पुस्तक अनुपम है, और ऐसी मनोरञ्जक है कि एक बार शुरू करने से बिना ख़तम किये चैन नहीं पड़ता। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर। मूल्य केवल १॥)

मानस-प्रबोध

(लेखक, पण्डित विश्वेश्वरदत्त शर्मा)

यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। इसमें तुलसीकृत रामायण के वाक्य-प्रयोग, शब्द-प्रयोग आदि उदाहरण देकर ऐसी ख़ूबी से समझाये गये हैं कि इसके पढ़ने से गोस्वामीजी के ग्रन्थों को समझने में बड़ी आसानी होगी। पुस्तक मौलिक है। रामायण के प्रेमियों को अवश्य ख़रीदनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या तीन सौ से ऊपर। मूल्य केवल १)

बालशिक्षा ।

(पं० रूपनारायण पांडेय लिखित)

यह पुस्तक कविता में है। इसमें बालकों के लिए एक से एक बढ़ कर उपदेश भरे हुए हैं; बल्कि यह बालकों को कंठ करा देने लायक़ है। मूल्य केवल ≈)

मिलने का पता :—

मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

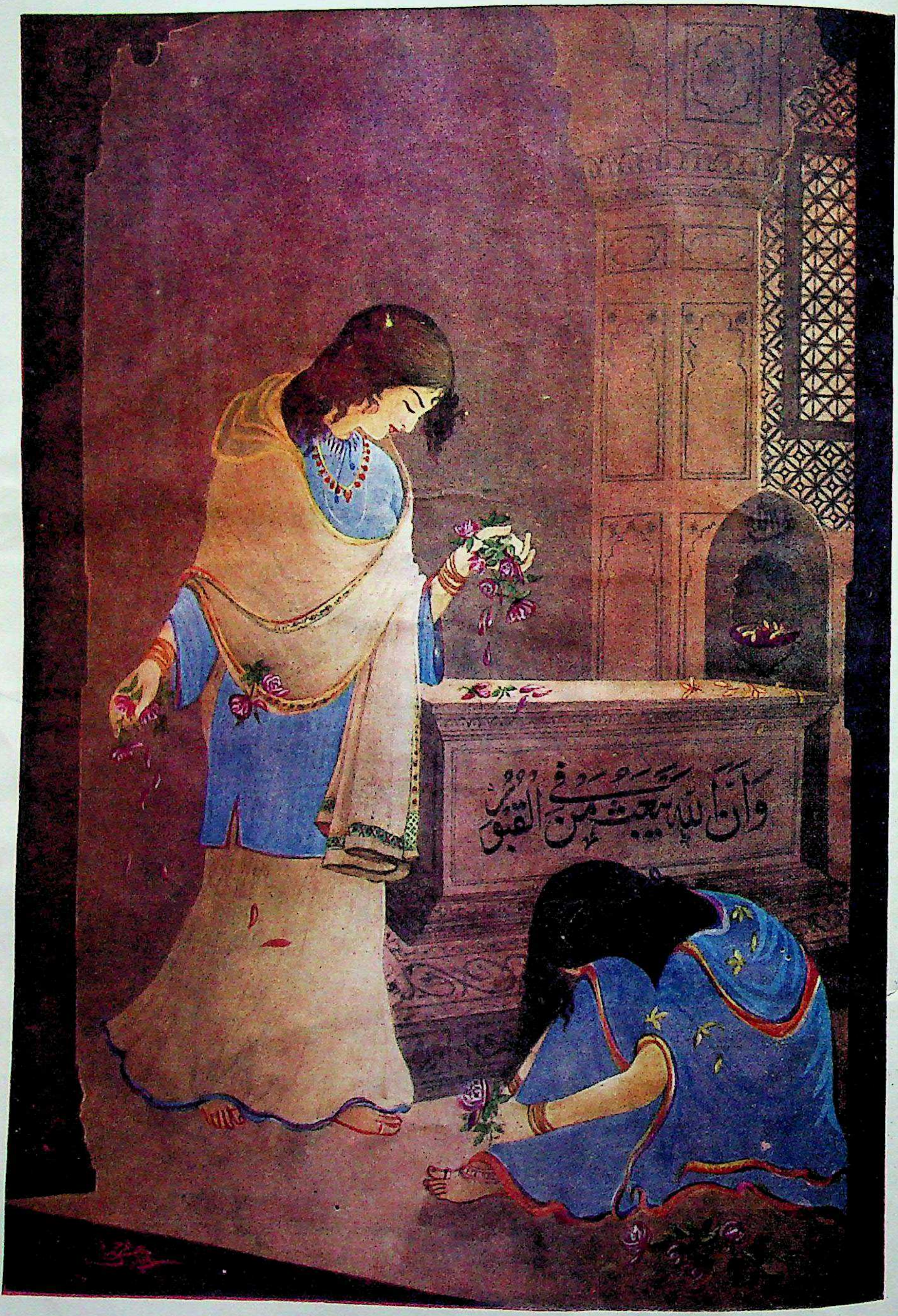

अति-विलम्ब—"Too Late."

[By M.A Rahman Chughtai.]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग १८, खण्ड १] मई १९१७—वैशाख १९७४ [संख्या ५, पूर्ण संख्या २०९

काला रङ्ग।

कहूँ क्या भगवन् ! हूँ हैरान,
मिटी जा रही अपने और पराये की पहचान !
सभी रङ्ग बदरङ्ग हुए—बन रहे एक ही रङ्ग,
कैसे कहूँ कि है वह कैसा, हुई अहो मतिभङ्ग।
सुनता हूँ वह श्याम रङ्ग है—यानी गरल समान,
किन्तु अमृत से भी बढ़ कर वह करता जीवन-दान !
नहीं नहीं, यह बात नहीं, वह तो है गरल महान,
जो चौरासी लाख जनों के छिन में हरता प्रान।
अहो ! श्यामघन ने ढहा दिये कितने ही घर-बार,
पर घनश्याम-प्रेम-वारिधि ने बहा दिया संसार !
हे विरोधमय ! मेरी तो है विनय, जोड़ कर हाथ,
जीवित हूँ तो मृत, मृत हूँ तो जीवित करिए नाथ !

बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०

———

पण्डित सदानन्द शुक्ल।

गत १० जनवरी १९१७ ईसवी को हिन्दी-साहित्य के वयोवृद्ध सेवक, पण्डित सदानन्दजी शुक्ल, का देहान्त कलकत्ते में होगया। मृत्यु के समय पण्डितजी की अवस्था कोई पचास वर्ष की थी। उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट था। वे प्रायः सदैव स्वस्थ रहते थे। पर इधर एक वर्ष से आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। कोई न कोई व्याधि लगी ही रहती थी। शरीर-पात होने के कोई एक सप्ताह पहले आपको सामान्य ज्वर तथा खाँसी का विकार हुआ था। आप उससे क्रमशः नीरोग हो रहे थे कि सहसा काल का निमन्त्रण आगया! उस दिन प्रातःकाल कोई पाँच छः बजे उठ कर आप शौचादि से निवृत्त होने का उपक्रम कर ही रहे थे कि खाँसी का दौरा हुआ और सहसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय-गति के रुक जाने से आपका शरीरान्त हो गया।

शुक्ल जी का जन्म गया ज़िले के टिकारी नामक स्थान में हुआ था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण, बाला के शुक्ल, थे। आपके पिता का नाम पण्डित सीताराम शुक्ल था। उनका आदि-निवासस्थान रायबरेली ज़िले के डुमटहर ग्राम में था। पर टिकारी में उनका ननिहाल था। इसीसे वे वहाँ बस गये थे।

सदानन्दजी बड़े कुशाग्र-बुद्धि थे। सात आठ वर्ष की अवस्था में आपका विद्यारम्भ-संस्कार कराया गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा टिकारी के मिडिल स्कूल में हुई। वहीं के हाई स्कूल में आपने अँगरेज़ी पढ़ी। अचानक अध्ययन-काल में ही आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। पर पण्डित सदानन्द ने पूर्ववत् पढ़ने का क्रम जारी रक्खा। इस काम में उन्हें अपनी माता से बड़ी सहायता मिली। सौभाग्यवश आपको आर्थिक सहायता के लिए किसी का मुँह न ताकना पड़ा। आपने उक्त स्कूल से एंट्रेंस की परीक्षा सफलता के साथ "पास" की। तत्पश्चात् पटना जाकर आपने कुछ दिन कालेज में भी अध्ययन किया। परन्तु, बिना किसी परीक्षा में सम्मिलित हुए ही, आपने पढ़ना छोड़ दिया और घर ही पर रहने लगे।

इसके बाद दरभङ्गा-ज़िले के समस्तीपुर नामक नगर में पुलिस के दफ़र में एक लेखक की जगह ख़ाली हुई। आपने प्रयत्न करके वह प्राप्त कर ली। वहाँ पर आप दस वर्ष तक रहे। पीछे इस्तेफ़ा देकर घर चले गये। समस्तीपुर में रहते हुए ही कुछ मित्रों के सहवास से आपका ध्यान हिन्दी-साहित्य की ओर आकर्षित हुआ।

कुछ दिन घर पर रह कर आप कलकत्ते चले गये। वहाँ कुछ दिनों तक कई जगहों पर आपने अस्थायी रूप से काम किया। अन्त में आप हिन्दी-बङ्गवासी के सम्पादकीय विभाग में नियुक्त हुए। कई वर्षों तक योग्यता-पूर्वक आपने वह काम किया। फिर कारणवश आपको वह पद छोड़ देना पड़ा। आप हिन्दी-बङ्गवासी के सहकारी सम्पादक थे।

इसके बाद कहीं भी आपने कोई नौकरी स्थायी रूप से न की। आप कई बार, समय समय पर, कितने ही पत्रों का सम्पादन करने के लिए बुलाये गये; पर कहीं न गये। इधर वर्षों से आप कलकत्ते की एक पुस्तक-प्रकाशक कम्पनी की संरक्षा में केवल पुस्तक-प्रणयन ही किया करते थे। कुछ दिनों तक इस कम्पनी के बड़ाबाज़ार-गज़ट नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन-भार भी प्रायः आप ही पर था। शुक्लजी बँगला भाषा अच्छी जानते थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं; यथा—ऐतिहासिक उपन्यास—शीसमहल, जासूसी उपन्यास—डबल जासूस, तथा प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक रेनाल्ड के ग्रन्थ मिस्ट्रीज़ आव् दि कोर्ट आव् लन्दन (Mysteries of theCourt of London) का अनुवाद लन्दन-रहस्य। इसके सिवा और भी कितनी ही छोटी मोटी पुस्तकें आपने लिखीं। लन्दनरहस्य के आपने अट्ठाईस ही भाग लिख पाये। इनमें से छब्बीस भाग आपके सामने ही निकल चुके थे।

पण्डित सदानन्द जी सीधे-सादे साधु-पुरुष थे। उनमें सरलता और सहृदयता ख़ूब थी। सदैव प्रसन्न-वदन रहते थे। जो कोई आपसे मिलता, आप उससे बड़े ही प्रेम से बात-चीत करते। क्रोध तो मानो आपको छू तक न गया था। वे स्वयं किसी से बहुत कम मिलते-जुलते थे। नित्य-नैमित्तिक कार्यों से निवृत्त होकर आप निरन्तर पुस्तक-प्रणयन ही में लगे रहते थे। आपने ख्याति-लाभ की कभी चेष्टा न की। बल्कि उससे वे कोसों दूर भागते थे। यहाँ तक कि अपनी बनाई अधिकांश पुस्तकों में आपने अपना नाम तक भी नहीं दिया और न आपने कभी अपना चित्र ही उतरवाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी सहधर्म्मिणी अभी जीवित हैं। वे अपने निवासस्थान टिकारी में ही रहती हैं। आपके एक सौभाग्यवती कन्या के अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं।

बालदत्त पाण्डेय

मदिरा-पान पर कुठार-प्रहार ।

(लेखक, श्रीयुत सेंट निहालसिंह, लन्दन)

जब से योरप में प्रचण्ड सङ्ग्राम छिड़ा है तब से वहाँ वाले मद्यपान के घातक परिणामों का पूरा पूरा अनुभव करने लगे हैं। ऐसा अनुभव उन्हें पहले कभी न हुआ था। क्या रूस, क्या फ्रांस और क्या ग्रेटब्रिटन, सभी अब जान गये हैं कि शराब का व्यापार बे रोक टोक जारी रहने से समर-सञ्चालन में बाधा पड़ती है, राष्ट्रीयता क्षीण होती है और धन का ध्वंस भी होता है। शराब के अति-सेवन या व्यसन से युद्ध-सामग्री तथा अन्य राष्ट्रीय महत्ता रखने वाले कारख़ानों में काम करने वाले मनुष्य असमय-सेवी, अनियमनिष्ठ और अविश्वास-पात्र हो जाते हैं। अर्थात् वे न तो समय की, न नियम की पाबन्दी करते हैं और न विश्वास करने के योग्य ही रह जाते हैं। इतना ही नहीं, जो सामान वे कारख़ानों में तैयार करते हैं उसकी मात्रा भी कम होती है और वह ख़राब भी होता है। शराब की चाट मनुष्य को जुआरी बना देती है। इस आदत की बदौलत लोग मारपीट, आक्रमण तथा अन्य अपराध करने लगते हैं। जो बात यहाँ काम करने वालों के विषय में कही गई है वही, न्यूनाधिक मात्रा में, फ़ौजी लोगों तथा जीवन-निर्वाह के अन्यान्य मार्गों का अनुसरण करने वाले लोगों, अर्थात् जुदा जुदा पेशे वालों, पर भी घटती है। अतएव पूर्वोक्त देशों के अधिकारियों ने मद्य का मान और पान यथासम्भव कम करने के लिए उपाय आरम्भ कर दिये हैं।

रूस की सरकार ने अपने यहाँ शराब का बनाना, बेचना और ख़र्च करना बन्द कर दिया है। इस रूसी मद्य को वहाँ वोदका (Vodka) कहते हैं। वोदका का अर्थ है—हलका पानी। यह एक प्रकार का तीव्र मद्य है। यह मदिरा राई नाम के अनाज, जौ या आलू की बनाई जाती है। इस अनुमानियत से रूस के राष्ट्रीय कोष में डेढ़ अरब रुपये की बचत प्रति वर्ष होगी। अर्थात् रूस की प्रजा जो डेढ़ अरब रुपया हर साल शराब-ख़ोरी में गँवा देती थी वह अब बच रहेगा। रूस के भूतपूर्व सम्राट् ज़ार ने जिस समय वोदका के देश-निकाले के आज्ञापत्र पर दस्तख़त किये उस समय यह बात अच्छी तरह उनके ध्यान में थी कि इस आज्ञापत्र को जारी करके मैं अपनी प्रजा के कल्याण की, अतएव अपने साम्राज्य की, अभिवृद्धि कर रहा हूँ। इसी कारण, कहा जाता है कि उस आज्ञापत्र पर दस्तख़त करने में आपने ज़रा भी आगा-पीछा न सोचा—आपको कुछ भी सङ्कोच न हुआ।

रूस की प्रजा पहले अपने सम्राट् तथा उनके वंशजों की श्री-वृद्धि के नाम पर शराब का सेवन करती थी। पर अब सिर्फ़ करतल-ध्वनि से ही अपना कार्य्य सम्पन्न कर लेती है। सच बात तो यह है कि रूस-सम्राट् के क़लम हिलाने मात्र से ही वहाँ बड़ी भारी क्रान्ति हो गई।

फ़्रांस की सरकार ने भी वहाँ की बनी हुई एक प्रकार की मदिरा का उपयोग बन्द कर दिया है। युद्ध के पूर्व फ़्रांस की समस्त श्रेणियों के नरनारी उसका सेवन करते थे। चिकित्सक या औषध-शास्त्री इस मद्य को तेज़ शराब का ज़हरीला स्वरूप समझते हैं। अर्थात् उनकी राय में यह मदिरा सबसे ज़ियादह विषैली है। कितने ही देशभक्तों ने इस बात की चेष्टा की कि उनके देशबन्धु इस विष-प्राशन से बाज़ रहें, पर उन्हें सफलता न हुई। वे लोग इस प्रथा का विरोध न करके बहुत सा धन हर साल उड़ाते ही रहे परन्तु अब, जब फ़्रांस में सुरापान का निषेध हो गया है, वहाँ के निवासी किस प्रकार बिना शराब के अपनी मन-स्तुष्टि कर लेते हैं, यह बात ध्यान देने योग्य है। फ़्रांस में भी, युद्धारम्भ के कुछ ही दिनों बाद, इस निषेध-नियम की सृष्टि हुई। वहाँ अब कोई इस शराब को छूने नहीं पाता। हाँ, स्फोटक सामग्री के कारख़ानों में, अलबत्ते, यह, अब भी, काम में लाई जाती है। फ़्रांस की सरकार एक क़ानून बना कर अन्य मादक द्रव्यों के सेवन के निषेध का भी प्रयत्न कर रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु ग्रेटब्रिटन अब तक विशेष सचेत न हुआ था। अब कुछ कुछ होने लगा है। तथापि यहाँ की सरकार ने न तो किसी तरह की शराब बनाने की रोक ही की है, न लाने की, न पीने की और न बेचने ही की। हाँ, समर के शुरू शुरू में अलबत्ते सम्राट् पञ्चम जार्ज ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक सङ्ग्राम जारी रहेगा, हमारे परिवार में मदिरा न फटकने पावेगी। उन्हीं दिनों स्वर्गवासी लार्ड किचनर ने भी ऐसा ही प्रण किया था। तब वे समर-कार्य्यालय के प्रधान थे। तथापि यहाँ की सरकार बिलकुल ही निश्चेष्ट नहीं है। उसने सब प्रकार के तेज़ शराब पर चुङ्गी बढ़ा दी है। विषैली अर्थात् अतिमादक मदिरा का ख़र्च कम करने के विषय में क़ानून बना दिया गया है। युद्ध छिड़ने के पहले इँगलेंड के शराबख़ाने जितनी देर तक खुले रहते थे, अब नहीं रहने पाते। अब तो उन्हें सिर्फ़ उसके आधे समय तक खुले रहने की इजाज़त है। मामूली समय से दो ढाई घण्टे पहले ही अब शराब की दुकानें बन्द करा दी जाती हैं। इस कारण लोग आधी रात तक बैठ कर शराब नहीं पी सकते, जैसा कि युद्ध के पूर्व करते थे। कोई मनुष्य किसी दूसरे के लिए शराब नहीं ख़रीद सकता—चाहे कितने ही निकटवर्ती सम्बन्धी वे क्यों न हों! क्या बड़े लोगों के विश्राम-गृह (Clubs), क्या मामूली भोजनालय और दुकानें, क्या नाट्य-मन्दिर तथा प्रमोद-भवन, और क्या छोटी बड़ी दुकानें, सब पर ये नियम समानभाव से व्यवहार्य्य हैं। सिपाहियों के निवासस्थान और सङ्ग्राम-सामग्री के कारख़ानों के समीपवर्ती शराबख़ानों के लिए और भी कड़े प्रतिबन्ध किये गये हैं।

इन क़ानूनों से देश का थोड़ा बहुत हितसाधन अवश्य हुआ है। परन्तु इतने से देश के हितैषियों को समाधान नहीं। आप यहाँ किसी भी गली में, ट्राम गाड़ी में, सार्वजनिक स्थान में चले जाइए, अब मुश्किल से आप किसी को शराब में चूर पाइएगा। अब समर-साहित्य तैयार करने के कारख़ानों में न तो काम करने वालों की ग़ैरहाज़िरी की शिकायत सुनी जाती है न उनके बेवक्त आने जाने की, न सुस्ती और लापरवाही से काम करने की ही।

युद्ध के पहले से ही ग्रेटब्रिटन में शराब का शौक़ कम हो चला था। बीस, तीस या पचास वर्ष पहले की अपेक्षा तो अब यहाँ सुरा सेवन बहुत ही कम हो गया है। मद्यपान-निषेधक आन्दोलन ने कितनों ही को शराब का शत्रु बना दिया है। कितने ही लोग अब शराब छूते तक नहीं। लोगों के मद्य-मत्सर की इयत्ता यहीं तक नहीं। कुछ लोग तो मद्य-मिश्रित दवाओं तक से परहेज़ करते हैं और कितने ही चिकित्सकों को अपने नुसख़ों में फेरफार करना पड़ता है। कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने तो अपने साहस की मात्रा यहाँ तक बढ़ा दी है कि दावतों में भी सुरा का स्पर्श नहीं होने देते। किसी की मङ्गल-कामना के उपलक्ष्य में भी अब शराब बहुत कम पी जाती है। परलोकगत सम्राट् सप्तम एडवर्ड ने कह दिया था कि हमारी प्रजा हमारी मङ्गल-कामना के उपलक्ष्य में केवल जल पी लिया करे। समरारम्भ से यहाँ के लोगों से यह निश्चय कराने का दृढ़ प्रयत्न किया जाने लगा है कि शराब का शौक़ देश का शत्रु है।

इतना आकाश-पाताल करने पर भी शराब की दुकानें शराबियों से खचाखच भरी रहती हैं। जितने थोड़े समय तक खुली रहने की उन्हें इजाज़त है उतने ही समय में यहाँ शराब की दुकानों पर ख़ूब बिक्री होती है। भिन्न भिन्न होटलों और भोजनालयों में, जहाँ धनी और मध्यम स्थिति के लोग आया जाया करते हैं, स्पिरिट और वाइन नाम की शराबों की बोतलें ख़ूब ढुलकाई जाती हैं। पर वहाँ उतनी ही देर तक शराब बेंची जाती है जितनी देर तक बेचने की इजाज़त है। पिछले साल २,४७,४०,००,०००) से भी ज़ियादह रक़म शराबख़ोरी में स्वाहा हो गई! ऐसे समय में, जब वर्तमान युद्ध कोई ८ करोड़ रुपये प्रतिदिन खा जाता है, इतनी भारी रक़म इस तरह बहा देना बहुत ही अनुचित है। इस धनक्षय से देश के दूरदर्शी नेताओं का गहरा सम्बन्ध है, अर्थात् इसके जवाबदेह वही समझे जा सकते हैं। इस समय तो जनसाधारण को चाहिए कि वे कौड़ी कौड़ी की बचत करें। इसके लिए जनता से अपीलें की जा रही हैं कि इस फ़िज़ूलख़र्ची से लोग बाज़ आवें। कुछ लोग सरकार से भी प्रार्थना कर रहे हैं कि सब तरह की शराबों का बनाना, बेचना, ख़रीदना और पीना क़ानूनन बन्द कर दिया जाय। कुछ समय पहले मिस्टर लायड जार्ज ने, जो अब प्रधान मन्त्री बनाये गये हैं, कहा था—यदि हमें जर्मनों की सेना को कमज़ोर करना है तो हमें सबसे पहले शराबख़ोरी कम करनी चाहिए। मिस्टर लायड जार्ज बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावशाली पुरुष हैं; पर ग्रेटब्रिटन के कलार भी ऐसे वैसे नहीं। इससे डर लगता है कि कहीं यह आन्दोलन असफल न हो।

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों के कितने ही प्रदेशों में तीक्ष्ण शराबों का बनाना, ख़रीदना, बेचना और पीना बिलकुल बन्द कर दिया गया है। हाँ, सिर्फ़ दवाओं के लिए शराब काम में लाई जा सकती है। जिस आन्दोलन की बदौलत यह सुधार हुआ है उसकी नींव पड़े कोई ७० वर्ष हो गये। परन्तु १८८४ ईसवी तक उसकी जड़ अच्छी तरह न जमी थी। तब से दिन पर दिन उसका प्रभाव अधिकाधिक होता गया। इसका फल यह हुआ कि अमेरिका के संयुक्त-राज्यों की अब तीन चौथाई से भी अधिक सीमा में शराब का व्यापार प्रायः बन्द सा हो गया है। उस महान् देश की दो तिहाई से भी ज़ियादह प्रजा को किसी भी प्रकार की तेज़ शराब बनाने, लाने और बेचने का निषेध क़ानूनन कर दिया गया है। हाँ, दवाओं के लिए अलबत्ते शराब के इस्तेमाल की इजाज़त है; सो भी तभी जब कोई अधिकारी चिकित्सक सिफ़ारिश करे। इस आन्दोलन ने वहाँ की कोई २३ रियासतों में विजय-प्राप्ति की है। मद्य-निषेधक मण्डली उत्साहपूर्वक अपना काम कर रही है। वह तब तक अपना काम बन्द न करेगी जब तक सारे देश से शराब की गन्ध दूर न हो जायगी।

शराब की भट्टी चढ़ाने वाले, ख़रीद और बिक्री करने वाले तथा इनसे सम्बन्ध रखने वाले और पक्के शराबी मदिरा-पान के निषेध का विरोध करते हैं। उनके लिए यह बात स्वाभाविक ही है। वे कहते हैं कि सरकार को कोई अधिकार नहीं कि वह व्यक्तियों के खान-पान की स्वतन्त्रता में बाधा डाले; रियासतों को अपने नागरिकों की व्यक्ति-विषयक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप न करना चाहिए।

पर विरोधी दल एक बात भूल जाता है। सरकारी क़ानून कहता है कि औषधों के उपयोग के अतिरिक्त विषैले द्रव्य बेचना अपराध है और ऐसे अपराधों का अपराधी दण्डनीय होता है। इस दशा में क़ानून के इन नियमों की व्याप्ति विषाक्त मदिरा के लिए भी क्यों नहीं कर दी जाती? क्योंकि इनका असर विषयुक्त पदार्थों से कम नहीं। विपक्षी दल इस बात का भी ख़याल नहीं करता कि अपराधी को बेड़ियाँ पहननी पड़ती हैं, मदोन्मत्त क़ैदख़ानों में रक्खे जाते हैं और छूत के रोगों के रोगी एकान्तवास-सेवन के लिए बाध्य किये जाते हैं। सरकार माँ-बाप को अपने बच्चे मदरसे भेजने के लिए मजबूर करती है और जो माता-पिता अपने बाल-बच्चों की अच्छी तरह सँभाल नहीं करते या जो सन्तान के भरण-पोषण के अयोग्य समझे जाते हैं उनसे उनके बच्चे छीन लेती है। पूर्वोक्त बुराइयों से शराब की बुराइयाँ कम नहीं। इस दशा में यदि सरकार प्रजा को शराब के शौक़ से—मद्य के घृणित और हानिकर परिणाम से—बचाने की चेष्टा करे तो उसकी दलीलों के खण्डन में विरोधी दल कोई युक्तिसङ्गत कारण नहीं दिखा सकता।

मदिरा के पान और प्रचार के विरोधकों की चमू में कितने ही बड़े बड़े धनी और प्रभुताशाली लोग हैं। यही कारण है जो उनसे लोहा लेना कठिन हो रहा है।

परन्तु निषेधक मण्डली का पक्ष न्याय्य और श्रेयस्कर है, यह निर्विवाद है। वे लोग नीति और सदाचार के नाम पर—स्वयं मद्यपियों, उनकी स्त्रियों, उनके बालकों और उनके समस्त आश्रितों तथा अपनी जाति के हित के लिए—यह धर्मयुद्ध कर रहे हैं।

सत्य और सदाचार के लिए किये गये इस समर में सत्पक्ष की ही जीत हुई है। निषेधकों का लोहा विरोधियों को मान लेना पड़ा है। समस्त देश में निषेधकों के तत्त्वों का प्रसार और आदर हो रहा है। प्रति वर्ष अधिकाधिक रियासतें शराब को देशनिकाला दे रही हैं। अब एक बड़ा भारी प्रयत्न हो रहा है। संयुक्त-राज्यों की राष्ट्रीय सभा से एक क़ानून पास कराया जाने वाला है, जिसके द्वारा शराब का बनाना, बेचना, ख़रीदना और पीना सब बन्द हो जायगा। यह क़ानून उन्हीं देशों से सम्बन्ध रक्खेगा जिनमें मदिरा-पान-निषेधक दल के आन्दोलन का प्रभाव नहीं पड़ा।

जहाँ जहाँ शराब का उपयोग बन्द कर दिया गया है वहाँ वहाँ सड़कों पर मदिरा-पान, दुराचार अर्थात् बदचलनी का नामोनिशान मिट गया है। पुलिस के अड्डों पर अब कुचाली और उपद्रवी लोगों की भीड़ नहीं होती। हर तरह के जुर्मों की संख्या घट गई है। उदाहरण के लिए, डेनेवर और कोलोराडो को ही लीजिए। जिस दिन से वहाँ शराब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अर्द्धचन्द्र दिया गया है, बारह महीने के भीतर ही मुजरिमों की संख्या आधी घट गई। उतनी ही अवधि में उस शहर के ५ प्रधान बैङ्कों में २,५०० नये खाते खुले और १७ लाख से भी ऊपर रक़म सेविंग् बैंक के खाते जमा हुई। इस निषेधक आन्दोलन की बदौलत व्यक्ति-विषयक और पारिवारिक सुख-स्वास्थ्य की तो वृद्धि हुई ही है, आर्थिक वृद्धि भी बहुत हुई। उन देशों में यात्रियों पर भी ये निषेध-नियम घटित होते हैं। जिस क़स्बे में शराब का व्यवसाय होता है और जिसमें बन्द है उन दोनों में आपको ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ दिखाई देगा। कानसास नगर और मिसौरी का ही उदाहरण लीजिए। ये क़स्बे पास ही पास हैं। एक तङ्ग नदी इनको एक दूसरे से जुदा करती है। कानसास में कुछ समय पहले शराब बन्द कर दी गई थी। इससे वहाँ के निवासियों का इतना हितसाधन हुआ कि यह बात नदी पार के लोगों के ध्यान में आये बिना न रही। फल यह हुआ कि पिछले वर्ष उन्होंने भी अपने कल्याण के लिए कानसास का अनुकरण किया।

संयुक्त-राज्यों के जिस प्रान्त में जब मदिरा का निषेध किया गया तभी वहाँ के क़ानून-विरोधी लोगों ने तरह तरह के उत्पात मचाये। लोग चुरा छिपा कर शराब ले आते और पीते थे। यहाँ तक कि लोग झूठ ही बीमार बन जाते और डाक्टरों से झूठा नुसख़ा भी लिखवा लेते, जिसमें शराब भी लिखी होती। ऐसे कितने ही विचारहीन डाक्टर शराबख़ोरों की दुर्व्यसन-वृद्धि के कारण होते थे। समय पाकर यह दुष्प्रवृत्ति भी, क़ानून के प्रचार और विवेकपूर्वक व्यवहार से, जाती रही।

जिन यन्त्रों का उपयोग पहले शराब तैयार करने में किया जाता था उनसे अब अङ्गूर का रस और सिरका आदि बनाया जाता है; दूध औटाया जाता है; और भी ऐसी ही अनेक चीज़ें, जो हानिकारक नहीं हैं, तैयार की जाती हैं। जिन दुकानों में पहले शराब बेची जाती थी अब वे कहीं भोजनालय, कहीं कार्य्यालय और कहीं वस्तुसङ्ग्रहालय में परिणत देख पड़ती है। जो सामग्री पहले शराब तैयार करने के लिए लाई गई थी, वह अब ऐसे उपयोगी कामों में लाई जाती है कि आगे चल कर किसी को यह कहने का साहस ही न होगा कि शराब का व्यवसाय जारी रहेगा।

योरप और अमेरिका से तो वारुणी राक्षसी का बहिष्कार हो ही रहा है; पर, भारत में इसका ख़र्च बढ़ रहा है। क्या यह आश्चर्य और खेद की बात नहीं? भारतवासियों को इस भयङ्कर दुर्व्यसन से सचेत हो जाना चाहिए।

पृथ्वी की उत्पत्ति।

हमारी पृथ्वी की तरह इस ब्रह्माण्ड में और भी कितने ही लोक हैं। इन लोकों के कई विभाग किये गये हैं। उन विभागों में सबसे बड़ा और प्रधान विभाग सूर्य्यलोक (Solar System) है। इस विभाग का सबसे बड़ा पिण्ड सूर्य्य है और हमारी पृथ्वी इसी विभाग का एक लोक है। इनके अतिरिक्त आकाश में और भी कितने ही लोक हैं जिन्हें हम रात को तारों के रूप में चमकते हुए देखते हैं।

गणित-ज्योतिष-विद्या के द्वारा पता लगा है कि सूर्य्य का कम से कम एक भाग गैस—धुँवे—से बना है। किन्तु अन्य लोक, जैसे चन्द्रमा इत्यादि, ठण्डे और ठोस पदार्थों के बने हैं। इसलिए वृक्षों या जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति और निवास के लिए सूर्य्य बहुत गरम है और चन्द्रमा बहुत ठण्डा। सूर्य्य इत्यादि लोकों से गरमी बराबर निकलती रहती है। अतएव यदि उनमें गरमी बार बार न भरी जाय तो एक समय ऐसा आवेगा जब वे सब ठण्डे अर्थात् ताप-शून्य हो जायँगे। विज्ञान का नियम है कि जो पदार्थ जितना बड़ा होता है उतनी ही देर उसमें से गरमी निकलते लगती है। भूलोक, चन्द्रलोक इत्यादि अन्य लोकों से सूर्य्य-लोक अधिक बड़ा है। इस कारण सबसे छोटा चन्द्र-लोक अपना सारा ताप ख़र्च करके ठण्डा हो गया है और सबसे बड़ा सूर्य्य-लोक अपना ताप अभी काफ़ी ख़र्च न कर सकने से बहुत गरम बना हुआ है। हमारा भूलोक, ताप ख़र्च कर चुकने पर, इतना ठण्डा हो सका है कि हम उसमें वास कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी नियम के अनुसार यह अनुमान किया गया है कि कोई ऐसा समय रहा होगा जब सभी लोक बहुत गरम रहे होंगे। उनमें गरमी इतनी रही होगी कि उस गरमी के कारण ये समस्त लोक "गैस" अर्थात् धुवें के रूप में रहे होंगे। धुवें का यह गुण है कि वह जितना स्थान अपने आसपास पाता है उतना ही चारों ओर फैल जाता है। धुवाँ खुले स्थान में कभी ठहरा नहीं रह सकता। इससे जाना जाता है कि जब भूलोक, सूर्य्य-लोक, चन्द्र-लोक इत्यादि समस्त लोक धुवें का रूप रहे होंगे तब उनकी ऐसी शकल न रही होगी जैसी हमें आज देख पड़ती है; अर्थात् वे पृथक् पृथक् लोक न रहे होंगे; बल्कि सारे लोक, आदि-काल में, एक दूसरे में सम्मिलित रहे होंगे और चारों ओर धुवें के अतिरिक्त और कुछ न रहा होगा। धीरे धीरे जब इस धूममय गोलाकार लोकों के समूह से गरमी निकल कर चारों ओर फैलने लगी और वह समूह ठण्डा होने लगा तब इसके कई भाग हो गये। सबसे बड़ा भाग सूर्य्य-लोक हुआ, जो बहुत बड़ा होने के कारण और काफ़ी गरमी न निकल जाने के कारण, अभी तक धूममय बना हुआ है और जिसकी तेज़ गरमी से दूसरे लोक प्रकाश पाते हैं।

जो लोक जितने छोटे हैं उतने ही वे अधिक ठण्डे हो गये हैं। जाड़े या गरमी की स्वच्छ रात में आकाश से गिरते हुए तारे हमें अक्सर नज़र आते हैं। वे और कुछ नहीं, केवल छोटे छोटे लोक हैं, जो सूर्य्य-लोक के चारों ओर सदैव बड़ी तेज़ी से घूमा करते हैं। हमारे भूलोक के बहुत निकट आ जाने पर वे इसकी आकर्षिणी शक्ति से खींच लिये जाते हैं, जिससे उनकी चाल बड़ी तेज़ हो जाती है। तीव्र वेग के कारण वे वायु से बड़े ज़ोर की रगड़ खाते हैं, जिससे वे गरम होकर प्रज्वलित हो उठते हैं। बस इसी समय हम उन्हें गिरते हुए देखते हैं। ध्यानपूर्वक देखने से उनके गिरने के बाद तक, उनकी पतन-रेखा अर्थात् गिरने के मार्ग में, कुछ कुछ रोशनी बनी रहती है। हम कभी कभी सुनते हैं कि अमुक स्थान पर आकाश से पत्थर या धातु की वर्षा हुई। ये पत्थर या धातु और कुछ नहीं, यही गिरा हुआ लोक होता है, जो हमारे भूलोक की तरह पत्थर और धातु का समूह था। वह इतना ठण्डा हो जाता है कि उसमें किसी जीव-जन्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कहते हैं कि मुसल्मानों के पवित्र तीर्थ, मक्के शरीफ़, में जो काबे का प्रसिद्ध पत्थर है और जिसे चूमने के लिए संसार के समस्त भागों से प्रति वर्ष लाखों मुसलमान यात्रा करते हैं, वह और कुछ नहीं, यही आकाश से गिरा हुआ किसी लोक का एक टुकड़ा है। आकाश से गिरने के कारण, मुसलमान लोग उसे उसी प्रकार ईश्वरीय पवित्र पदार्थ मानने लगे हैं जिस प्रकार हिन्दू पृथ्वी के भीतर से निकलती हुई ज्वालामुखी की ज्योति को दैवी ज्योति मान कर पूजते हैं।

किसी झाड़ या फ़ानूस के लटकनेवाले त्रिकोण काँच में यदि हम कोई साधारण रोशनी डाल कर नेत्रों द्वारा देखें तो उस काँच से पार होकर वह उज्ज्वल रोशनी वर्षाकालीन इन्द्रधनुष के सदृश नीले, लाल इत्यादि कई रङ्गों में परिवर्तित होकर दिखाई पड़ने लगती है। अर्थात् साधारण रोशनी जब इस त्रिकोण काँच के द्वारा हमारे नेत्रों तक आती है तब उसके सात रङ्ग हो जाते हैं। यदि इस साधारण रोशनी को पहले किसी ख़ास धातु के भीतर से छान लें और तब उस त्रिकोण काँच पर डालें तो वह धातु स्वयं रोशनी के सात रङ्गों में से एक ख़ास रङ्ग को हज़म कर लेता है, जिससे हम फिर छः ही रङ्ग देख सकते हैं और सातवें अदृष्ट रङ्ग के स्थान पर एक काली लकीर दिखाई देती है। विशेष पदार्थ के विशेष रङ्ग को हज़म कर जाने के गुण के नियम के अनुसार हम पता लगा सकते हैं कि सूर्य्य की या अन्य लोकों की रोशनी किन किन रासायनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों से पार होकर और छन कर हमारे पास तक आती है। इस नियम के अनुसार सूर्य्य-लोक जिस गैस का बना हुआ है अथवा चन्द्रमा इत्यादि दूसरे लोक जिन जिन पदार्थों के बने हुए हैं उन सब का पता लगाया गया है।

इस खोज का सारांश यह है कि अखिल लोक आदि-काल में धूममय थे। धीरे धीरे ठण्डे हो जाने पर अलग अलग होकर वे ठोस बन गये हैं। उनमें से सूर्य्य-लोक तो अभी तक इतना गरम बना हुआ है कि उसमें किसी जीव या वृक्ष का गुज़ारा नहीं हो सकता। दूसरी ओर चन्द्रमा इत्यादि लोक, छोटे होने के कारण, इतने ठण्डे हो गये हैं कि उनमें भी जीवधारियों या वृक्षों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। एक मात्र हमारा यह भूलोक ही ऐसा है जो न बहुत ठण्डा है और न बहुत गरम, जिससे यहाँ जीव-जन्तुओं और वृक्षों की उत्पत्ति हो सकती है। बस, इसी प्रकार, धुवेँ से हमारी पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। अब प्रश्न यह है कि पृथ्वी की उत्पत्ति हुए कितना समय हुआ?

इस विषय पर तीन प्रकार के मत अधिकतर प्रचलित हैं। एक यह कि कुछ हज़ार वर्ष पहले इस पृथ्वी की रचना हुई। दूसरा यह कि कुछ करोड़ वर्ष हुए जब इसकी उत्पत्ति हुई। तीसरा यह कि हमारी भूमि की उत्पत्ति हुए इतना अधिक समय हुआ कि हम उसका अनुमान तक नहीं कर सकते।

इनमें से पहला मत भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों का है। ईसाई-धर्मवाले कहते हैं कि कोई पाँच-छः हज़ार वर्ष हुए जब ईश्वर ने कुछ शब्द उच्चारण किये, जिससे पृथ्वी, सूर्य्य और चन्द्रमा इत्यादि लोक बन गये। इसी प्रकार दूसरे धर्मानुयायी भी पृथ्वी की रचना का समय, कम या ज़ियादह, कुछ हज़ार वर्ष पूर्व बताते हैं।

दूसरा और तीसरा मत विज्ञानवेत्ताओं का है। उनके मत का आधार प्राकृतिक घटनायें हैं। नदियाँ जब पर्वतों से निकल कर नीचे आती हैं तब अपने प्रवाह से मार्ग की चटानों को काट कर घाटियाँ बना देती हैं। इसमें बहुत समय लगता है। विज्ञान-वेत्ताओं ने किसी ख़ास नदी का आश्रय लेकर यह देखा कि एक वर्ष या दस वर्षों में वह किसी चटान का कितना भाग काटती है। फिर उसकी घाटी के कुल काट को मालूम करके हिसाब लगा लेते हैं कि उस नदी को बहते कितने वर्ष हुए होंगे। इस प्रकार हिसाब लगाने से पता लगा है कि पृथ्वी बहुत पुरानी है। उसकी रचना हुए करोड़ की कौन कहे, अरब खरब वर्ष हो गये।

विज्ञानवेत्ताओं का एक अन्य दल है, जो इस प्रकार पृथ्वी की रचना का अनुमान करने के प्रति-कूल है। इस दल के पण्डितों का कहना है कि जब कोई नदी किसी पहाड़ के ऊपर से निकल कर नीचे आती है तब वह अपने तेज़ प्रवाह के साथ बड़े बड़े पत्थरों को बहा लाती है। उन पत्थरों की रगड़ खा खा कर नदी के नीचे की ज़मीन गहरी बनती जाती है। इस कारण नदी के किनारे नोकदार बन जाते हैं। उन किनारों को वर्षा और तूफ़ान काट कर पीछे को हटा देते हैं। तब घाटी बन जाती है। इस प्रकार नदी स्वयं अपनी शक्ति से केवल घाटी ही नहीं बनाती; बल्कि, आरम्भ में, पृथ्वी की नवीनता के कारण, नदी की धारायें बह बह कर पत्थर इत्यादि की रगड़ या वर्षा और तूफ़ान से घाटियाँ बना देती हैं। जब नदी को बहते बहुत समय हो जाता है और उसके मार्ग में पत्थर इत्यादि नहीं रह जाते तथा उसके किनारे नुकीले न रह कर सम हो जाते हैं तब निस्सन्देह नदी की धारा ही घाटियों को अधिक विस्तृत करती है।

इस श्रेणी के विज्ञान-वेत्ता दूसरे ही प्रकार से पृथ्वी की रचना का अनुमान करते हैं। वे पहले इस बात का पता लगाते हैं कि एक फुट बालू, मिट्टी और मछलियों की हड्डियाँ आदि पदार्थों को समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राय साहब डाक्टर एस० चक्रवर्ती चीफ़ मेडिकल आफ़ीसर, साकची।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पेंदे में जमा होते कितने वर्ष लगते हैं। तब इस बात का पता लगाते हैं कि पृथ्वी के ऊपर की चटानें कितनी मोटी हैं। पृथ्वी की चटानें वास्तव में इन्हीं बालू इत्यादि पदार्थों की बनी हैं। इसलिए चटानों की मुटाई के परिमाण को एक फ़ुट जमा हुए पदार्थों की काल-गणना से भाग देने से अनुमान कर लेते हैं कि इन चटानों के बनने में कितने वर्ष लगे। चटान की औसत मुटाई १,००,००० फ़ुट मानी गई है। इस मुटाई से, हिसाब लगा कर, विज्ञान-विशारदों ने अनुमान किया है कि चटानों को बने प्रायः चालीस करोड़ वर्ष हो गये। इसके अतिरिक्त जब चटान अधिक मोटी हो जाती है तब उसके नीचे के भाग पर ऊपर के भाग का अधिक बोझ पड़ता है, जिससे चटान ठोस बन कर सिकुड़ जाती है। अनुमान किया गया है कि अपने बोझ के कारण चटान सिकुड़ कर अपनी असली मुटाई की चौथाई रह गई है। इसलिए चालीस करोड़ को चार से गुणा करने से एक अरब साठ करोड़ वर्ष निकलते हैं। इतने हीं वर्ष पहले पृथ्वी की उत्पत्ति हुई थी।

पृथ्वी की उत्पत्ति के अनुमान का एक और भी तरीक़ा है। नदी के जल में कई प्रकार के पदार्थ मिले रहते हैं। चूना, गन्धक, बालू, साधारण नमक, पोटाश और लोहा इत्यादि। उनमें से ये समस्त पदार्थ नदी में बह कर उसके जल के साथ समुद्र में आकर गिरते हैं। सूर्य्य की गरमी से फिर समुद्र में भाफ बनती है, जो ऊपर उठ कर और बादल के रूप में परिवर्तित होकर पानी बरसाती है। भाफ शुद्ध मीठे जल की ही बन सकती है। इस लिए समुद्र से शुद्ध जल भाफ़ बन कर ऊपर को उठ जाता है और समुद्र में नमक इत्यादि पदार्थ पड़े रह कर दिन पर दिन जमा होते जाते हैं। उनमें से कुछ पदार्थ, किसी न किसी रूप में, समुद्र से निकल आते हैं। जैसे—समुद्र में रहने वाले अनेक प्रकार के जीव-जन्तु चूने को खा जाते हैं, जिससे उनकी हड्डी और सीप बनती है। दूसरे प्रकार के जानवर और वृक्ष बालू को हज़म कर जाते हैं। लोहा और पोटाश, भारी होने से, समुद्र के पेंदे में जमा हो जाते हैं, किन्तु नमक ऐसी वस्तु है जिसे न कोई जन्तु ही खाते हैं और न वह समुद्र के पेंदे ही में, हलका होने के कारण, जम सकता है। नमक समुद्र के पानी में घुला रहता है और ज्यों ज्यों अधिक समय होता जाता है त्यों त्यों समुद्र का जल, नमक की अधिकता के कारण, अधिकाधिक खारी होता जाता है। हिसाब लगाया गया है कि समुद्र में अब तक कोई एक खरब बीस अरब टन नमक जमा हुआ है और प्रति वर्ष एक करोड़ छप्पन लाख टन जमा होता है। इस लिए यदि हम मान लें कि आरम्भ में समुद्र का पानी शुद्ध और मीठा था और नदियाँ आज ही कल की तरह सदा समान भाव से नमक बहा कर समुद्र में डालती जाती हैं तो हिसाब लगता है कि पृथ्वी को उत्पन्न हुए सात करोड़ सत्तर लाख वर्ष हो गये।

बहुत से विज्ञानवेत्ता इस प्रकार पृथ्वी की उत्पत्ति का हिसाब लगाने के भी प्रतिकूल हैं। उनका कहना है कि यह कैसे मान लिया जाय कि आरम्भ में समुद्र का जल मीठा और शुद्ध था और नदियाँ सदा से नमक, समान परिमाण में बहा कर, समुद्र में डालती रही हैं। इसके अतिरिक्त समुद्र में प्रायः बड़े बड़े तूफ़ान उठा करते हैं, जो समुद्र के जल को फौवारे के रूप में पृथ्वी पर डालते हैं। इन फौवारों के साथ बहुत सा नमक मिला रहता है, जिससे समुद्र में नदियों के द्वारा लाये गये नमक का बहुत सा भाग पृथ्वी पर चला जाकर जमा हो जाता है।

पृथ्वी के भीतर, उसकी ऊपरी सतह की अपेक्षा, अधिक गरमी होती है। किसी खान के भीतर जाने पर या किसी कुवें के नीचे उतरने पर अधिक गरमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम पड़ती है। पृथ्वी की सतह पर और उसके भीतर की गरमी में जो अन्तर है उसका हिसाब लगा कर अनुमान किया गया है कि पृथ्वी की रचना हुए कोई दस करोड़ वर्ष हो गये।

पहाड़ों की चटानों पर भिन्न भिन्न प्रकार की धातुयें पाई जाती हैं। पता लगा है कि चटानों पर यूरेनियम नाम की एक धातु होती है, जो कई पदार्थों से बनी होती है। समय पाकर उसमें से कितने ही पदार्थ अलग अलग हो जाते हैं। इसी नियम के अनुसार समय पाकर उसमें से हेलियम नामक पदार्थ अलग हो जाता है। वह पदार्थ फिर समय पाकर जस्ता धातु के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार किसी चटान से यूरेनियम धातु लेकर विद्वान् यह देखते हैं कि उसमें कितना जस्ता बन गया है। इससे उस चटान की आयु का अनुमान किया जा सकता है। इस तरह हिसाब लगाने से कई चटानों की आयु का अनुमान एक अरब वर्षों से भी अधिक किया गया है। इस रीति से भी पृथ्वी की उत्पत्ति का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार भिन्न भिन्न वैज्ञानिक घटनाओं और नियमों के द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति के भिन्न भिन्न अनुमान किये गये हैं। यद्यपि इस बात का ठीक ठीक पता लगना असम्भव है कि पृथ्वी कब बनी; किन्तु पूर्वोक्त वैज्ञानिक प्रमाणों से जाना जाता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति हुए कई करोड़ या कई अरब—खरब वर्ष हो गये।

जगन्नाथ खन्ना, बी० एस०-सी०, इ० इ०

साकेत।

चतुर्थ सर्ग।

करुणा-कञ्जारण्य रवे ! गुण-रत्नाकर, आदि-कवे !
कविता-पितः ! कृपा-वर दो, भाव-राशि मुझ में भर दो ॥१॥
चढ़ कर मञ्जु-मनोरथ में, आकर रम्य राज-पथ में।
दर्शन करूँ तपोवन का, इष्ट यही है इस जन का ॥२॥
सुख से सद्यः स्नान किये, पीताम्बर परिधान किये।
पवित्रता में पगी हुई, देवार्चन में लगी हुई ॥३॥
मानों मूर्तिमयी माया, कौशल्या कोमल-काया।
थीं अतिशय आनन्दयुता, पास खड़ी थीं जनक-सुता ॥४॥
गोट जड़ाऊ घूँघट की—बिजली जलदोपम पट की,
परिधि बनी थी विधु-मुख की, सीमा थी सुषमा-सुख की ॥५॥
भाव-सुरभि का सदन अहा ! विमल कमल-सा वदन अहा !
अधर छबीले छदन अहा ! कुन्द-कली-से रदन अहा ! ॥६॥
साँप खिलाती थीं अलकें, मधुप पालती थीं पलकें।
और कपोलों की झलकें ? उठती थीं छवि की छलकें ! ॥७॥
गोल गो[illegible]गोरी बाँहें— आँखों की दो राहें।
भाग-सुहाग पक्ष में थे, अञ्जलबद्ध कक्ष में थे ! ॥८॥
थीं कमला-सी कल्याणी, वाणी में वीणापाणी।
"माँ ! क्या लाऊँ ?" कह कह कर—पूछ रही थीं रह रह कर ॥९॥
सास चाहती थीं जब जो—देती थीं उनको सब सो।
कभी आरती, धूप कभी, सजती थीं सामान सभी ॥१०॥
देख देख उनकी ममता, करती थीं उसकी समता।
आज अतुल उत्साह-भरे, थे दोनों के हृदय हरे ॥११॥
दोनों शोभित थीं ऐसी—मेना और उमा जैसी।
मानों वह भू-लोक न था, वहाँ दुःख या शोक न था ! ॥१२॥
प्राणप्रद था पवन वहाँ, ऐसा पुण्यस्थान कहाँ ?
अमृततीर्थ का तट-सा था, अन्तर्जगत् प्रकट-सा था ! ॥१३॥
इसी समय प्रभु अनुज-सहित—पहुँचे वहाँ विकार-रहित।
जब तक जाय प्रणाम किया—माँ ने आशीर्वाद दिया ॥१४॥
सीता ने घूँघट काढ़ा, मुख का रङ्ग हुआ गाढ़ा।
नत लक्ष्मण-हित मन ही मन—कहे कलित कल्याण-वचन ॥१५॥
"बहू ! तनिक अक्षत-रोली, तिलक लगा दूँ" माँ बोलीं—
"जियो, जियो, बेटा ! आओ, पूजा का प्रसाद पाओ" ॥१६॥
लक्ष्मण ने सोचा मन में—"जाने देंगी ये वन में ?
प्रभु इनको भी छोड़ेंगे—तो किस धन को जोड़ेंगे ? ॥१७॥
मझली माँ ! तू मरी न क्यों ? लोक-लाज से डरी न क्यों ?"
लक्ष्मण ने निःश्वास लिया, माँ के जान सु-वास लिया ! ॥१८॥
बोले तब श्रीराघव यों—धर्म्मधीर नवघन-रव ज्यों—
"माँ ! मैं आज कृतार्थ हुआ, स्वतः स्वार्थ परमार्थ हुआ ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावनकारक जीवन का, मुझ को राज्य मिला वन का।
जाता हूँ मैं अभी वहाँ, राज्य करेंगे भरत यहाँ'' ॥२०॥
माँ को प्रत्यय भी न हुआ, इसी लिए भय भी न हुआ!
समझी सीता किन्तु सभी, झूँठ कहेंगे प्रभु न कभी ॥२१॥
हुई हृदय पर भय-रेखा, पर माँ ने न उधर देखा।
बोलीं वे हँस कर—''रह तू—यह न हँसी में भी कह तू॥२२॥
तेरा स्वत्व भरत लेगा? वन में तुझे भेज देगा?
वही भरत जो आता है, तू मुझको डरवाता है! ॥२३॥
लक्ष्मण, यह दादा तेरा—धैर्य्य देखता है मेरा!
एँ, लक्ष्मण तो रोता है! ईश्वर! यह क्या होता है!'' ॥२४॥
उनका हृदय सशङ्क हुआ, उदित अशुभ आतङ्क हुआ।
''सच हैं तब क्या वे बातें? दैव! दैव! ऐसी घातें!'' ॥२५॥
काँप उठीं वे मृदुदेही, धरती घूमी या वे ही॥
बैठीं फिर गिर कर मानों, जकड़ गईं घिर कर मानों ॥२६॥
आँखें भरी, विश्व रीता, उलट गया सब मनचीता!
सीता से थामीं जाकर—रहीं देखतीं टक लाकर ॥२७॥
प्रभु बोले—''माँ! भय न करो, एक अवधि तक धैर्य्य धरो।
मैं फिर घर आ जाऊँगा, वन में भी सुख पाऊँगा'' ॥२८॥
''हा! तब क्या निष्कासन है? यह कैसा वन-शासन है?
तू सब का जीवन-धन है, किसका यह निर्दयपन है? ॥२९॥
क्या तुझ से कुछ दोष हुआ? जो तुझ पर यह रोष हुआ।
मैं प्रार्थिनी अभी हूँगी, नृप से क्षमा माँग लूँगी ॥३०॥
क्या प्रथमापराध तेरा—और विनीत विनय मेरा।
क्षमा दिलावेगा न तुझे? वत्स! हुआ क्या, बता मुझे ॥३१॥
अथवा तू चुप ही रह जा, बेटा लक्ष्मण! तू कह जा।
कठिन हृदय प्रस्तुत ही है, डर न, दण्ड तो श्रुत ही है'' ॥३२॥
''माँ! यह कोई बात नहीं, दोषी मेरे तात नहीं।
दोष-दूरकारक हैं ये, भूमि-भार-हारक हैं ये ॥३३॥
छू सकता कब पाप इन्हें? प्राप्त पुण्य है आप इन्हें।
प्राप्य राज्य भी छोड़ दिया, किसने ऐसा त्याग किया? ॥३४॥
किन्तु पिता-प्रण रखने को—सबको छोड़ बिलखने को।
कर मझली माँ के मन का, पथ लेते हैं ये वन का!'' ॥३५॥
''समझ गई, मैं समझ गई, कैकेयी की रीति नई।
मुझे राज्य का खेद नहीं, राम-भरत में भेद नहीं ॥३६॥
मझली बहन राज्य लेवें, उसे भरत को दे देवें।
पुत्र-स्नेह धन्य उनका, हठ है हृदय-जन्य उनका ॥३७॥
मुझे राज्य की चाह नहीं, उस पर कुछ भी डाह नहीं।
मेरा राम न वन जावे, यहीं कहीं आश्रय पावे ॥३८॥
उनके पैर पड़ूँगी मैं, कह कर यही अड़ूँगी मैं।
भरत-राज्य की जड़ न हिले, मुझे राम की भीख मिले!'' ॥३९॥
रुकें राम-जननी जब तक—गूँजी नई गिरा तब तक!
''नहीं, नहीं, यह कभी नहीं, दैन्य विषय बस रहे यहीं'' ॥४०॥
चकित दृष्टियाँ व्याप्त हुईं, वहाँ सुमित्रा प्राप्त हुईं।
वधू ऊर्म्मिला अनुपद थी, देख गिरा भी गद्गद थी! ॥४१॥
देख सुमित्रा को आया—प्रभु ने सानुज सिर नाया।
बोलीं वे कि—''जियो दोनों, यश का अमृत पियो दोनों'' ॥४२॥
सिंही-सदृश क्षत्रियाणी—गरजी फिर कह यह वाणी—
''स्वत्वों की भिक्षा कैसी? दूर रहे इच्छा ऐसी ॥४३॥
उर में अपना रक्त बहे, आर्य्य भाव उद्दीप्त रहे।
पाकर वंशोचित शिक्षा—माँगेंगी हम क्यों भिक्षा? ४४॥
प्राप्य याचना वर्जित है, आप भुजों से अर्जित है।
हम पर-भाग नहीं लेंगी, अपना त्याग नहीं देंगी ॥४५॥
वीर न अपना देते हैं, न वे और का लेते हैं।
वीरों की जननी हम हैं, भिक्षा, मृत्यु हमें सम हैं ॥४६॥
राघव! शान्त रहोगे तुम? क्या अन्याय सहोगे तुम?
मैं न सहूँगी, लक्ष्मण! तू? नीरव क्यों है इस क्षण तू?'' ॥४७॥
''माँ! क्या करूँ? कहो मुझ से, क्या है कि जो न हो मुझ से?
अङ्गीकार आर्य्य करते—तो कब के द्रोही मरते! ॥४८॥
आज्ञा करें आर्य्य अब भी, बनें विनष्ट कार्य्य अब भी।''
लक्ष्मण ने प्रभु को देखा, न थी उधर कोई रेखा! ॥४९॥
बोले वे कि—''रहो भ्रातः! और सुनो तुम हे मातः!
यदि न आज वन जाऊँ मैं—किस पर हाथ उठाऊँ मैं? ॥५०॥
पूज्य पिता या माता पर? या कि भरत-से भ्राता पर?
और किस लिए? राज्य मिले! है जो तृण-सा त्याज्य, मिले? ॥५१॥
माँ की स्पृहा, पिता का प्रण, नष्ट करूँ, करके सव्रण?
प्राप्त परम गौरव छोड़ूँ? धर्म्म बेच कर धन जोड़ूँ? ॥५२॥
अम्ब! क्या करूँ, तुम्हीं कहो; सहसा अधिक अधीर न हो।
त्याग प्राप्त का ही होता, मैं अधिकार नहीं खोता ॥५३॥
अबल तुम्हारा राम नहीं, विधि भी उस पर वाम नहीं।
वृथा क्षोभ का काम नहीं, धर्म्म बड़ा, धन-धाम नहीं ॥५४॥
किसने क्या अन्याय किया, कि जो क्षोभ यों जाय किया?
माँ ने पुत्र-वृद्धि चाही, नृप ने सत्य-सिद्धि चाही ॥५५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मझली माँ पर कोप करूँ? पुत्र-धर्म्म का लोप करूँ!
तो किससे डर सकता हूँ? तुम पर भी कर सकता हूँ! ॥५६॥
भैया भरत अयोग्य नहीं, राज्य राम का भोग्य नहीं।
फिर भी वह अपना ही है, यों तो सब सपना ही है ॥५७॥
मुझको महा महत्त्व मिला, स्वयं त्याग का तत्त्व मिला।
माँ! तुम तनिक कृपा कर दो, बना रहे वह, यह वर दो!" ॥५८॥
मौन हुए रघुकुलभूषण, मानों प्रभा-पूर्ण पूषण।
कहाँ गई वह क्षोभ-घटा? छाई एक अपूर्व छटा! ॥५९॥
सब का हृदय-द्राव हुआ, रोम रोम से स्राव हुआ!
मोती जैसे बड़े बड़े—टप टप आँसू टपक पड़े ॥६०॥
सीता ने सोचा मन में—"स्वर्ग बनेगा अब वन में!
धर्म्मचारिणी हूँगी मैं, वन-विहारिणी हूँगी मैं" ॥६१॥
तनिक कनोंखी अँखियों से, अजब अनोखी अँखियों से।
प्रभु ने उधर दृष्टि डाली, दीख पड़ी दृढ़ हृदयाली ॥६२॥
सङ्गमन-हित सीता के—प्रस्तुत परम पुनीता के।
उच्च व्रत पर अड़े हुए—रोम रोम थे खड़े हुए! ॥६३॥
उठी न लक्ष्मण की आँखें, जकड़ी रहीं पलक-पाँखें।
किन्तु कल्पना घटी नहीं, उदित ऊर्म्मिला हटी नहीं ॥६४॥
खड़ी हुई हृदयस्थल में—पूछ रही थी पल पल में—
"मैं क्या करूँ? चलूँ कि रहूँ? हाय और क्या आज कहूँ?" ॥६५॥
आः कितना सकरुण मुख था, आर्द्र-सरोज-अरुण मुख था!
लक्ष्मण ने सोचा कि—"अहो! कैसे कहूँ चलो कि रहो! ॥६६॥
यदि तुम भी प्रस्तुत होगी—तो सङ्कोच सोच दोगी।
प्रभुवर बाधा पावेंगे, छोड़ मुझे भी जावेंगे! ॥६७॥
नहीं, नहीं, यह बात न हो, रहो, रहो, हे प्रिये! रहो।
यह भी मेरे लिए सहो, और अधिक क्या कहूँ, कहो?" ॥६८॥
लक्ष्मण हुए वियोगजयी, और ऊर्म्मिला प्रेममयी?
वह भी सब कुछ जान गई, विवश भाव से मान गई ॥६९॥
श्रीसीता के कन्धे पर—आँसू बरस उठे झर झर।
पहन तरल-तर हीरे-से, कहा उन्होंने धीरे से— ॥७०॥
"बहन! धैर्य्य का अवसर है" वह बोली—"अब ईश्वर है।"
सीता बोली कि—"हाँ, बहन! सभी कहीं, गृह हो कि गहन" ७१
कौशल्या क्या करती थीं? कुछ कुछ धीरज धरती थीं।
प्रभु की वाणी कट न सकी, युक्ति एक भी अट न सकी! ॥७२॥
प्रथम सुमित्रा आन्त हुईं, फिर क्रम क्रम से शान्त हुईं।
खड़ी रहीं, न हिली डोलीं, तब कौशल्या ही बोलीं— ॥७३॥

"जाओ, तब बेटा! वन को, पाओ नित्य धर्म्म-धन को।
जो गौरव लेकर जाओ—लेकर वही लौट आओ ॥७४॥
पूज्य-पिता-प्रण रक्षित हो, माँ का लक्ष्य सुलक्षित हो।
घर में घर की शान्ति रहे, कुल में कुल की कान्ति रहे ॥७५॥
होते मेरे सुकृत कहीं, तो क्यों आती विपद यहीं!
फिर भी हों तो त्राण करें, देव सदा कल्याण करें ॥७६॥
और कहूँ क्या मैं तुमसे—वन में भी विकसो द्रुम-से।
फिर भी है इतना कहना, मुनियों के समीप रहना ॥७७॥
जिसे गोद में पाला है, जो उर का उजियाला है।
बहन सुमित्रे! चला वही—जहाँ हिंस्र-पशु-पूर्ण मही! ॥७८॥
यह गौरव का अर्जन है, या सर्वस्व-विसर्जन है?
त्याग मात्र इसका धन है, पर मेरा माँ का मन है ॥७९॥
हा! मैं कैसे धैर्य्य धरूँ? क्या चिन्ता से दग्ध मरूँ?
यदि मैं मर भी जाऊँगी, तो भी शान्ति न पाऊँगी!" ॥८०॥
कहा सुमित्रा ने तब यों—"जीजी! विकल न हो अब यों।
आशा हमें जिलावेगी, अवधि अवश्य मिलावेगी" ॥८१॥
राघव से बोलीं फिर वे, थीं उस समय अनस्थिर वे।
"वत्स राम! ऐसा ही हो, फल इसका कैसा ही हो ॥८२॥
लेकर उच्च हृदय इतना, नहीं हिमालय भी जितना।
तुमने मानव-जन्म लिया, धरणीतल को धन्य किया! ॥८३॥
मैं भी कहती हूँ, जाओ, लक्ष्मण को भी अपनाओ।
धैर्य्य सहित सब कुछ सहना, दोनों सिंह-सदृश रहना ॥८४॥
लक्ष्मण! तू बड़भागी है, जो अग्रज-अनुरागी है।
मन ये हों तन तू वन में, धन ये हों जन तू वन में" ॥८५॥
लक्ष्मण का तन पुलक उठा, मन मानों कुछ कुलक उठा।
माँ का भी आदेश मिला, पर वह किसका हृदय हिला? ॥८६
कहा ऊर्म्मिला ने—"हे मन! तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग-भरा! हो अनुराग विराग-भरा! ॥८७॥
तू विकार से पूर्ण न हो, शोक-भार से चूर्ण न हो।
भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे, भू पर स्वर्ग-भाव सरसे!" ॥८८॥
प्रस्तुत हैं प्राण-स्नेही, चुप थी अब भी वैदेही।
कहतीं क्या वे प्रिय जाया, जहाँ प्रकाश वहीं छाया ॥८९॥
इसी समय दुख से छाये, सचिव सुमन्त्र वहाँ आये।
वे परिवार-मुक्त-से थे, अति अविभिन्न युक्त-से थे ॥९०॥
प्रभु जो उनकी ओर बढ़े, प्रथम अश्रु फिर वचन कढ़े।
"राम! क्या कहूँ मैं अब हा! बन कर भी बिगड़ा सब हा! ॥९१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख तुम्हारा निष्कासन , कैकेयी-सुत का शासन ।
नहीं चाहती कभी प्रजा, उड़ी क्रान्ति की कहीं ध्वजा ? ॥९२॥
विदित तुम्हें हैं नृप-गति भी , कैकेयी की दुर्मति भी ।
ऐसी विषमावस्था है , फिर भी वन-व्यवस्था है ! ॥९३॥
पितृ-स्पृहा क्या ज्ञेय नहीं ? प्रजा-भाव का ध्येय नहीं ?"
प्रभु बोले—"यह बात नहीं, तात ! तुम्हें क्या ज्ञात नहीं ? ॥९४॥
स्पृहा बड़ी या धर्म्म बड़ा ? किसमें है शुभ कर्म्म बड़ा ?
और प्रजा में द्रोह कहाँ ? है बस मेरा मोह वहाँ ! ॥९५॥
मैंने क्या कर दिया किसे , कर न सकेंगे भरत जिसे ?
उनके निन्दावाक्य मुझे—होंगे विष के बाण बुझे ॥९६॥
उनकी निन्दा मेरी है , प्रजा प्रीति की प्रेरी है ।
पर वे मेरे भ्राता हैं , मँझली माँ भी माता हैं" ॥९७॥
अब सुमन्त्र कुछ कह न सके , पर नीरव भी रह न सके !
खड़े रहे वे मुँह खोले , फिर धीरे धीरे बोले—॥९८॥
"नहीं जानता मैं रोऊँ , या आनन्द-मग्न होऊँ !
राम ! तुम्हारा मङ्गल हो , प्राप्त हमें आत्मिक बल हो ॥९९॥
तुम भूतल से भिन्न नहीं , हम सबसे विच्छिन्न नहीं ।
उर से किन्तु अलौकिक हो, निज पतङ्ग-कुल के पिक हो ! ॥१००॥
अन्तःकरण अपार्थिव है , उदित वहाँ दिव ही दिव है !
अमरवृन्द नीचे आवें , मानव-चरित देख जावें ॥१०१॥
वन में ही यदि रहना है, तो नृप का यह कहना है—
"तुम सुमन्त्र ! रथ ले जाओ, पुत्रों को पहुँचा आओ ॥१०२॥
भरत यहाँ आवें जोलों , बचा रहा यदि मैं तोलों ।
तो मैं उन्हें राज्य दूँगा , वन में स्वयं प्राप्त हूँगा" ॥१०३॥
सबने ऊर्द्ध्व श्वास लिया, या उर को आश्वास दिया !
प्रभु बोले—"तो देर न हो, रथ जुतने के लिए कहो ॥१०४॥
अब वल्कल पहनूँ बस मैं , बनूँ वनोचित तापस मैं ।
यहीं रजोगुण-लेश रहे , वन में सात्विक वेश रहे" ॥१०५॥
रोते हुए सुमन्त्र गये, आये वल्कल वस्त्र नये ।
बढ़े प्रथम कर कोमल दो, या मृणालयुत शतदल दो ! ॥१०६॥
सीता चुप, सब रोती थीं , दृग-जल से मुँह धोती थीं ।
"बहू ! बहू !" माँ चिल्लाईं , आँखें दूनी भर आईं ! ॥१०७॥
"हाथ हटा, ये वल्कल हैं , मृदुतम तेरे करतल हैं ।
यदि ये भी छू जावेंगे— तो छाले पड़ आवेंगे ! ॥१०८॥
कोशल-वधू ! विदेह-लली ! मुझे छोड़ कर कहाँ चली ?
वन की काँटों भरी गली , तू है मानस-कुसुम-कली ॥१०९॥

दैव ! हुआ तू वाम किसे ? रोको, रोको राम ! इसे ।
क्या यह वन में रह लेगी ? तप, वर्षा, हिम सह लेगी ? ॥११०॥
सौ कष्टों की कथा रहे , वन की सारी व्यथा रहे ।
जब आँधी-सी आवेगी—यह सहसा उड़ जावेगी !" ॥१११॥
आ पड़ता जब सोच कहीं—रहता तब सङ्कोच नहीं ।
प्रभु ने जो निदेश पाया , प्राणसखी को समझाया ॥११२॥
वन के सारे कष्ट कहे , जो जो भय थे स्पष्ट कहे ।
जो सुन कर भी मुँह सूखे, देह दुःख पाकर दूखे ! ॥११३॥
किन्तु वृथा, सीता बोलीं , डर से नेक नहीं डोलीं—
"नाथ ! न कुछ होगा इससे, क्या कहते हो तुम किससे ? ११४
समझो मुझको भिन्न न हा ! करो ऐक्य उच्छिन्न न हा !
तुमको दुख तो मुझको भी, तुमको सुख तो मुझको भी ॥११५॥
सुख में आ आ कर घेरूँ , सङ्कट में अब मुँह फेरूँ !
देखेगा तो कौन उसे ? मरना होगा मौन उसे ॥११६॥
जो गौरव लेकर स्वामी ! होते हो काननगामी ।
उसमें अर्द्ध भाग मेरा , करो न आज त्याग मेरा ॥११७॥
मातृ-सिद्धि, पितृ-सत्य सभी , मुझ अर्द्धाङ्गी बिना अभी ।
है अर्द्धाङ्ग अधूरे ही, सिद्ध करो तो पूरे ही ॥११८॥
सब के हित में वन में भी, निर्जन, सघन, गहन में भी ।
सब व्रत-नियम निबाहूँगी, सब का मङ्गल चाहूँगी ॥११९॥
सास-ससुर की स्नेह-लता—बहन ऊर्म्मिला महाव्रता ।
सिद्ध करेगी वही यहाँ, जो मैं भी कर सकी कहाँ ? ॥१२०॥
वन में क्या भय ही भय है, मुझको तो जय ही जय है ।
यदि अपना आत्मिक बल है, जङ्गल में भी मङ्गल है ॥१२१॥
कण्टक जहाँ कुसुम भी हैं, छाया वाले द्रुम भी हैं ।
निर्झर हैं, दूर्वादल हैं, मीठे कन्द, मूल, फल हैं ॥१२२॥
रहते हैं मिष्टान्न पड़े, लगते हैं फल मधुर बड़े ।
वधुयें लङ्घन से डरतीं—तो उपवास नहीं करतीं ! ॥१२३॥
मुक्त गगन है, मुक्त पवन, वन है प्रभु का खुला भवन ।
सलिल-पूर्ण सरितायें हैं, करुण-भाव-भरितायें हैं ॥१२४॥
उटज लताओं से छाया, विटपों की ममता माया ।
खग, मृग भी हिल जावेंगे, सभी मेल मिल जावेंगे ॥१२५॥
देवर एक धनुर्धारी—होंगे सर्व सौख्यकारी ।
वे दिन रात साथ देंगे, मेरी रक्षा कर लेंगे ॥१२६॥
मदकल कोकिल गावेंगे, मेघ मृदङ्ग बजावेंगे ।
नाचेंगे मयूर मानी, हूँगी मैं वन की रानी ! ॥१२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंस्र जीव हैं घोर जहाँ, ऋषि-मुनि भी क्या नहीं वहाँ ?
यहाँ नहीं जो शान्ति वहीं, भव-विकार या भ्रान्ति नहीं ॥१२८॥
भ्रञ्चल होगा फूल-भरा, कल जल होगा कूल-भरा।
मन होगा दुख-भूल-भरा, वन होगा सुख-मूल-भरा ॥१२९॥
अथवा कुछ भी न हो वहाँ, तुम तो हो जो नहीं यहाँ ?
मेरी यही महामति है—पति ही पत्नी की गति है ॥१३०॥
नाथ ! न भय दो तुम हमको, जीत चुकी हैं हम यम को।
सतियों को पति-सङ्ग कहीं—वन क्या, अनल अगम्य नहीं !" ॥
सीता और न बोल सकीं, गद्गद कण्ठ न खोल सकीं।
इधर उर्म्मिला मुग्ध निरी—कह कर "—हाय !" धड़ाम गिरी !॥
लक्ष्मण ने दृग मूँद लिये, सबने दो दो बूँद दिये।
माँ ने कहा कि—"हा बेटी ! आज मही पर तू लेटी !" ॥१३३॥
"बहन ! बहन" कह कर भीता, करने लगी व्यजन सीता।
"आज भाग्य जो है मेरा, वह भी हुआ न हा ! तेरा !"॥१३४॥
व्यग्र हुए प्रभु धर्म्म-धनी, रही सुमित्रा मूर्ति बनी।
रख गोदी में उसका सिर— बोलीं यों कौशल्या फिर—॥१३५॥
"देव-वृन्द ! देखो नीचे, मत मारो आँखें मींचे।
जाओ, वत्स ! कहा मैंने, जो आ पड़ा सहा मैंने ॥१३६॥
जो जी सकी—और जीने की चेष्टा किया करूँगी,
चौदह वर्ष बीतने पर तो मानों फिर न मरूँगी।
देख उस समय तुम तीनों को छूटा धैर्य्य धरूँगी,
मानों तीन लोक के धन से अपना भाग्य भरूँगी" ॥१३७॥
इसके बाद ? विरह विषाद।
इधर मिलाप, उधर विलाप ! ॥१३८॥

मैथिलीशरण गुप्त

साकची में लोहे का कारख़ाना।

भौगोलिक वर्णन।

भारत के कला-कौशल का कितना ह्रास हो गया है, यह छिपा नहीं है; पर इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि धनी भारतीयों का ध्यान अब कला-कौशल की ओर कुछ कुछ खिँचा अवश्य है। अब वे समझ गये हैं कि केवल सूद ही पर रुपये देने से कल्याण नहीं; भारत की यथेष्ट उन्नति तब तक न होगी जब तक भारत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं न करेगा—व्यापार और उद्योग-धन्धों की शिक्षा और प्रयोग के द्वारा अपनी प्रयोजन-पूर्त्ति न करेगा। जापान, अमेरिका आदि देश वाणिज्य ही के बल पर दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति कर रहे हैं। इन सब देशों के दृश्य को देख कर हमारे देश के भी कुछ सज्जन चेतते जाते हैं। साकची में देश-भक्त श्रीयुत जे० एन० ताता का स्थापित किया हुआ लोहे का कारख़ाना हमारी इस उक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह चौबीसों घण्टे चिल्ला चिल्ला कर कह रहा है कि भाइयो, चेतो; इस देश-भक्त का अनुकरण करो; कारख़ाने खोलो; धन उपार्जन करो और देश से दरिद्रता को दूर कर दो ! अच्छा तो अब आदर्श व्यवसायी ताता के इस आदर्श कारख़ाने का हाल सुनिए। मैं यहाँ पर सिर्फ़ उसकी बानगी दिखाता हूँ। असली आनन्द तो इस व्यवसायतीर्थ के दर्शन से ही प्राप्त हो सकता है।

कहते हैं कि मुग़ल सम्राट् अकबर ने इस प्रान्त को विजय करने के लिए कई बार अपने कितने ही वीर सेनापतियों को भेजा; पर सब के सब अपना सा मुँह लेकर वापस गये। तब उसने मानसिंह को भेजा। उन्होंने अपने चातुर्य्य के बल पर इस प्रान्त को एक ही रात में जीत कर सम्राट् की कांक्षायें पूर्ण कर दीं। इसके उपलक्ष्य में सम्राट् ने उन्हीं के नाम पर तीन ज़िलों में इस प्रान्त को बाँट दिया। अर्थात् वीरभूमि, मानभूमि तथा सिंहभूमि नाम से ये ज़िले प्रसिद्ध हुए। मैं नहीं कह सकता कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात कहाँ तक सत्य है; परन्तु यहाँ के कतिपय लोगों को मैंने यही कहते सुना है। इनमें से सिंहभूमि ज़िले के अन्तर्गत पूर्वोक्त साकची नामक शहर है। यह हाल ही में आबाद हुआ है—पुराना नहीं है। यहाँ पर २०, २५ घरों की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरानी बस्ती भी है। उसका नाम है—साँची। उसमें इस प्रान्त के आदिम निवासी वास करते हैं। यहाँ पर एक बाज़ार भी है। यहाँ पानी, कोयला, लोहे की ख़ान तथा रेलवे आदि का पूरा पूरा सुभीता है। इसलिए इसी स्थान को श्रीयुत ताता ने इस कारख़ाने के लिए पसन्द किया। यहाँ पर गुरमासानी से, लोहा आता है, जो यहाँ से कोई ४०, ४५ मील दक्षिण, मोरभञ्ज राज्य में, है।

इस स्थान में पहले घना जङ्गल था। रात दिन शेर आदि वन्य पशु विचरा करते थे। ऐसा घोर अरण्य था कि दो तीन हाथ पर की वस्तुयें भी न देख पड़ती थीं। परन्तु आज न तो जङ्गल है, न वन्य जन्तु; वरन्, एक नये ढँग का शहर है, जहाँ पर भारत के ही नहीं, बल्कि योरप और अमेरिका के भी सैकड़ों मनुष्य काम कर रहे हैं। इस कारख़ाने में सब मिला कर १४, १५ हज़ार मनुष्य प्रति दिन कार्य्य करते हैं।

इस स्थान का प्राकृतिक सौन्दर्य्य अनुपम और दर्शनीय है। जल-वायु आरोग्य-वर्धक है। चतुर्दिक् पहाड़ियों से परिवेष्टित है। पश्चिम में खोलखाई नाम की नदी बह रही है। वर्षाकाल में तो उसमें प्रलयकाल का सा जल रहता है, परन्तु अन्य ऋतुओं में केवल बालू। हाँ, यदि एक दो दिन भी वृष्टि हो जाय तो वह अपनी उमङ्ग में आपे से बाहर हो जाती है और बड़े ज़ोरो शोर से गर्जने लगती है। किन्तु वृष्टि बन्द होने के दो ही तीन दिनों के पश्चात् उसका जोश, उसका उत्साह, हवा हो जाता है। ऐसे ही दृश्य का वर्णन करते हुए श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ने क्या ही ठीक कहा है—

छुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई।

इसके पश्चिमी किनारे पर ऊँचे ऊँचे साल के वृक्ष आकाश से बातें कर रहे हैं। नदी के बाद कुछ खेत तथा दो तीन छोटी छोटी बस्तियाँ हैं। फिर एक महान् जङ्गल है। उसमें भालू, बाघ, हरिण तथा नाना प्रकार के सर्प आदि वन्य जन्तु निवास करते हैं। अस्त्र-आईन के प्रताप से कितने ही निरीह जनों को हर साल इन हिंस्र जन्तुओं के नख और दाँतरूपी अस्त्रों की बदौलत अपने प्रिय प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। बीच बीच में बहुत से छोटे छोटे नाले भी हैं, जो बरसात को छोड़ कर अन्य ऋतुओं में सूखे ही पड़े रहते हैं। जङ्गल में विशेष कर साल के ही वृक्ष हैं। पर कितने ही प्रकार के जङ्गली वृक्ष भी हैं, जिनके फल यहाँ के निवासी बड़े प्रेम से खाते हैं। वास्तव में ये फल हैं भी बड़े सुस्वादु।

यहाँ के निवासी कोल-भील-युवाओं की कौन कहे, उनके बच्चे भी बड़े निडर होते हैं। चार-पाँच एक साथ हो लेते हैं और जङ्गल में निडर विचरा करते हैं।

साकची के उत्तर, कोई १½ मील पर, सुवर्णरेखा नाम की एक नदी है। उसके दोनों किनारों पर साल के हरे भरे जङ्गल हैं। नदी के उत्तर डलमा नाम का एक पहाड़ तथा निबिड़ जङ्गल है। उसमें हाथी, बाघ और बड़े बड़े अज़दहे हैं। वहाँ बहुत कम लोग जाते हैं। कहते हैं कि इस नदी की बालू धोने और छानने से सोना मिलता है; और, इसी कारण, इसका नाम स्वर्णरेखा है। मैं जब जब उसके किनारे जाता हूँ बालू धोता और छानता हूँ; परन्तु एक रत्ती भी सोना कभी हाथ नहीं आया। कदाचित् भविष्यत् में कभी मिल जाय तो मिल जाय।

साकची से एक सीधी सड़क इस नदी के किनारे तक गई है। यहीं पर "पम्पहाउस" (Pump House) है तथा इसी जगह नदी की धारा एक बाँध के द्वारा बाँध दी गई है। बाँध के पश्चिमी किनारे, धारा के अन्तर्गत, एक तालाब सा खोद दिया गया है। उसमें पानी जमा रहता है और विद्युच्छक्ति से खींचा जा कर ४८ इञ्च व्यास वाले पाइप के द्वारा कारख़ाने में आता है। वहाँ भी एक बड़ा भारी तालाब है। यह सारा पानी उसमें जमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है और वहाँ से "फ़िल्टर" अर्थात् साफ़ हो कर कारख़ाने तथा शहर में पहुँचता है।

इस सड़क के पूर्वी किनारे पर पुराना साकची गाँव है। वहीं योरोपियनों, अमेरिकनों और बल्लमटेरों के लिए चाँदमारी तथा घुड़-दौड़ के लिए मैदान बने हैं। किरस्तानों का श्मशान भी इसी सड़क के किनारे है।

कार्य्यालय के पूर्व का दृश्य भी बड़ा मनोहारी है। इधर भी बड़े बड़े वृक्षों के जङ्गल हैं। कुछ दूर से पहाड़ियाँ भी अपने मस्तक उठा कर इस कारख़ाने को देख देख हर्षित हो रही हैं। बड़े बड़े गढ़े हैं, जिनको कम्पनी पाटती जाती है। सुनते हैं, इधर भी शहर बसाया जायगा। कुछ मकान तो बन भी चुके हैं। और भी बनेंगे। यहीं पर, शहर से अलग, कम्पनी ने एक मकान बनाया है, जहाँ चेचक वाले रोगी रक्खे जाते हैं। विशेष कर प्रातःकाल, जब सूर्य्य भगवान् इस कारख़ाने को प्रभावान् करने के लिए खिलखिलाते हुए आते हैं, इस ओर का दृश्य बड़ा ही मनोहारी हो जाता है।

दक्षिण में कोई एक डेढ़ मील पर, बी० एन० रेलवे की सड़क है। यह वही लाइन है जो हबड़ा से नागपुर होती हुई बम्बई गई है। सड़क के बाद जुगसलाई नामक एक बाज़ार है, जहाँ शायद अब म्युनिसिपैलिटी होनेवाली है। वहाँ मारवाड़ी तथा अन्य लोग अपने अपने घर बना रहे हैं और बसते जाते हैं। इसके बाद जङ्गल और पहाड़ हैं। जुगसलाई एक अच्छा व्यापारिक स्थान है।

साकची से अग्निकोण में कालीमाटी नामक रेलवे स्टेशन है। साकची आने के लिए वहीं पर उतरना पड़ता है। वहाँ से कारख़ाना दो ढाई मील है। स्टेशन पर ताँगा, पालकी-गाड़ी, बैलगाड़ी आदि मिलती हैं। कालीमाटी से साकची तक बैलगाड़ी तथा ताँगे के लिए एक एक रुपया और पालकी-गाड़ी के लिए सवा रुपया दक्षिणा देनी पड़ती है। हाँ, कम्पनी की तरफ़ से मोटर-सर्विस भी है। उस में पहला और दूसरा (First और Second) दो दरजे हैं। पहले दरजे का १) तथा दूसरे दरजे का आठ आना किराया है। पर ताँगे को एक ही रुपया देने से तीन और पालकी-गाड़ी को सवा रुपया देने से चार आदमी आ सकते हैं।

साकची में यात्रियों के ठहरने के लिए बड़ी दिक़्क़त है। यहाँ कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ सर्वसाधारण आकर ठहर सकें। हाँ, साहबों के लिए डाक-बँगले अवश्य हैं और बड़े बड़े लोगों के लिए कम्पनी स्वयं प्रबन्ध कर देती है। हाल ही में मैसोर तथा इन्दौर के कला-कौशल-विभाग के उच्च कर्मचारी आ कर यह कारख़ाना देख गये हैं। उनके ठहरने का प्रबन्ध बहुत अच्छा था।

प्रत्येक भारतीय को चाहिए कि इस कारख़ाने का दर्शन एक बार अवश्य करे।

आधुनिक साकची को तीन भागों में बाँट सकते हैं—पहला उत्तरीय शहर (Northren Town) दूसरा दक्षिणीय शहर (Southern Town) और तीसरा कारख़ाना (Work-Shop)। उत्तरी भाग में पश्चिमी सभ्यता के अभिमानी तथा विदेशी सज्जन रहते हैं। दक्षिणी भाग हिन्दुस्तानियों के लिए है। हाँ, कतिपय पारसी तथा देशी किरस्तान भी इसी तरफ़ रहते हैं। उत्तरी भाग के घरों में बिजली के पङ्खे तथा बत्तियाँ लगी हैं। प्रत्येक चौराहे पर रोशनी होती है। पर दक्षिणी भाग में ये बातें नहीं। दो एक चौराहों पर अलबत्ते यहाँ भी रोशनी है। यहीं, उत्तरी भाग में, प्रोटेस्टेंट क्रिश्चियन लोगों का एक गिरजाघर तथा टिस्को इन्स्टीट्यूट है। इस इन्स्टीट्यूट की एक शाखा दक्षिणी भाग में भी है। सड़कों के नाम जी० रोड, पी० रोड, ओ० रोड आदि हैं। मुहल्ले भी वैसे ही जी० टाउन, एच्० टाउन, एल्० टाउन के नाम से प्रसिद्ध हैं। दक्षिणी भाग में रोमन कैथोलिक क्रिश्चियनों के लिए भी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरजाघर बनने वाला है। इन्स्टीट्यूट में खेलने तथा समाचारपत्र पढ़ने का विशेष प्रबन्ध है। परन्तु पुस्तकें बहुत नहीं हैं। जो हैं वे सब विदेशी भाषाओं में हैं। उसकी फ़ीस कर्म्मचारियों के वेतन के अनुसार है।

जल-वायु।

यहाँ का जल-वायु उत्तम है। हैज़ा, प्लेग, मलेरिया आदि का तो यहाँ नामो-निशान नहीं। यहाँ जाड़े में असाधारण जाड़ा, गरमी में ख़ूब गरमी और बरसात में ख़ूब वर्षा होती है। गरमी तथा बरसात के दिनों में यहाँ बड़े अन्धड़ आया करते हैं। अभी पश्चिम से एक अन्धड़ आया ही था कि, तुरन्त ही, पूरब से भी एक अन्धड़ आ गया। कभी उत्तर से, कभी दक्षिण से भी, एक न एक अन्धड़ आया ही करता है। बात की बात में बादल उमड़ आते हैं, और, थोड़ी देर के बाद, आकाश निरभ्र हो जाता है। वर्षाकाल में कभी कभी तुषार-वृष्टि भी होती है। जब बादल यहाँ के पहाड़ों से कम उँचाई पर रहते हैं तब उस तरफ़ की शोभा अकथनीय हो जाती है।

यहाँ पर कभी कभी चेचक की बीमारी होती है, पर बहुत नहीं। मलेरिया का तो यह स्थान परम शत्रु है, बङ्गाल के बहुत से रुग्ण मनुष्य यहाँ आकर अल्प-समय में ही अपने नष्टप्राय स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कर लेते हैं। अतएव यह स्थान तो मलेरिया की राम-बाण दवा है।

स्वास्थ्य-विभाग का प्रबन्ध।

यहाँ पर स्वास्थ्य-विभाग (Sanitary Dept.) का जैसा उत्तम प्रबन्ध है, शायद ही और कहीं वैसा हो; कम से कम मेरे देखे हुए शहरों में तो नहीं है। सड़कें ऐसी साफ़ सुथरी हैं जैसे कलकत्ते का राजपथ हो। सड़कों के दोनों किनारों पर आम, जामुन और नीम आदि के वृक्ष बराबर बराबर दूरी पर लगे हुए हैं। शौचस्थान सुबह शाम साफ़ किये और "फ़ीनाइल" आदि दुर्गन्ध-नाशक दवाओं से धोये जाते हैं। सर्वसाधारण के लिए जो शौचस्थान सड़कों के किनारे बने हैं उनमें पानी के नल लगे हुए हैं। उन्हीं से वे साफ़ हो जाते हैं। स्वास्थ्य-विभाग के प्रधान अधिकारी तथा चीफ़ मेडिकल आफ़िसर (Chief Medical Officer) श्रीयुत राय शान्तिराम चक्रवर्त्ती साहब हैं। आपके कार्य-कलाप से प्रसन्न होकर भारत-सरकार ने गत वर्ष राय साहब की उपाधि से आपको विभूषित किया है। यहाँ के लोगों ने आपके नाम से एक स्कालर्शिप फण्ड (Scholarship Fund) खोला है, जिससे तीन लड़कों को, साल भर, वृत्ति दी जाती है। इस फण्ड में सर रतन ताता ने एक हज़ार रुपये दिये हैं।

एक बहुत लम्बा-चौड़ा अस्पताल है, जिसमें बाहर के रोगियों तथा कारख़ाने के घायलों के इलाज का पूरा पूरा प्रबन्ध है। सुनते हैं कि तीन चार लाख की लागत का एक नया अस्पताल शीघ्र ही बनने वाला है।

शहर में स्वच्छता का काफ़ी प्रबन्ध है। कहीं भी कूड़ा-कर्कट नहीं रहने पाता। मकान सिलसिले से बने हुए हैं। सड़कों पर दोनों तरफ़ एक ही प्रकार के मकान हैं। प्रत्येक मकान के चारों तरफ़ काफ़ी खुली जगह छोड़ी गई है। नालियाँ पक्की हैं। शहर में कहीं दुर्गन्ध का नाम नहीं।

शिक्षा का प्रबन्ध।

कम्पनी अपने कर्म्मचारियों की सन्तान की शिक्षा के लिए अच्छा प्रबन्ध कर रही है। यहाँ पर एक मिसेज़ पेरिन मेमोरियल स्कूल (Mrs. Perin Memorial School) है। उसका उद्घाटन १९ मार्च १९१५ ईसवी को श्रीमान् छोटेलाल साहब बहादुर, बिहार और उड़ीसा ने, मिसेज़ पेरिन की,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादगार में, किया था। मिस्टर पेरिन न्यूयार्क-निवासी हैं। आप ताता-कम्पनी के परामर्श-दाता (Consulting Engineer) हैं। यह स्कूल इन्हीं की पत्नी का स्मारक-स्वरूप है। इसमें आज कल हिन्दी तथा बँगला के द्वारा मिडिल तक अँगरेज़ी (Middle English) की शिक्षा दी जाती है। आशा है, दो एक वर्ष में यह हाई इँगलिश स्कूल हो जायगा।

यहाँ पर भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त के लोग हैं। अतएव यहाँ तामिल, तेलगू, मराठी, गुजराती, पञ्जाबी तथा उर्दू आदि अनेक भाषाओं के पक्षपाती निवास करते हैं। ठीक ऐसी ही आबादी खड़गपुर की भी है। वहाँ पर बी० एन्० रेलवे का एक इंडियन हाई स्कूल है। उसमें अनेक भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जाती है। यदि यहाँ भी कम्पनी के मैनेजर श्रीयुत एम्० एल्० तिवारी आदि उच्च अधिकारियों को यह न बताते कि हिन्दुस्तान की प्रधान भाषा हिन्दी है तो इसमें सन्देह है कि यहाँ हिन्दी को स्थान मिलता। यह इन्हीं महोदय के उद्योग का फल है कि भारत के प्रत्येक प्रान्त के निवासी यहाँ पर अपने बच्चों को राष्ट्र-भाषा हिन्दी की शिक्षा देते हैं। आपने यद्यपि कोई पुस्तक लिख कर या समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में लम्बे लम्बे लेख छपा कर मातृभाषा की सेवा नहीं की, तथापि आप हिन्दी के उत्साही और सच्चे भक्त हैं। आपकी यह इच्छा सदा बनी रहती है कि यहाँ पर हिन्दी को प्रधान पद कैसे मिले। आप सर्वसाधारण तथा कम्पनी के अधिकारियों के बड़े प्रेमपात्र हैं। आप ताता-कम्पनी के पुराने विश्वास-पात्र तथा प्रतिष्ठित कर्म्मचारी हैं। यहाँ पर जितनी समितियाँ हैं, सबके आप मेम्बर हैं। यह कह देना अत्युक्ति न होगी कि यह स्कूल भी आप ही के उद्योग का सुखद फल है। आप जबलपुर के निवासी हैं।

इसी स्कूल की एक शाखा रात्रि-पाठशाला (Night School) भी है। उसमें वे लड़के पढ़ते हैं जो दिन को कार्य्यालय में काम करते हैं। इन लड़कों को केवल अँगरेज़ी तथा अङ्कगणित की शिक्षा दी जाती है—मातृभाषा की नहीं! यह बड़े खेद की बात है। जिन बालकों को अपनी मातृभाषा का कुछ भी ज्ञान नहीं वे अँगरेज़ी आसानी से नहीं सीख सकते। गणित की शिक्षा भी अँगरेज़ी ही में दी जाती है! हाँ, जो लड़के नहीं समझते उन्हें हिन्दी में भी मतलब समझा दिया जाता है। आशा है, तिवारीजी महोदय इस ओर भी ध्यान देंगे। ये लड़के अँगरेज़ी क्यों पढ़ते हैं? इसका उत्तर यह है कि जिन साहबों के अधीन ये काम करते हैं उन्हें अँगरेज़ी छोड़ कर अन्य किसी भाषा का व्यवहार न करना पड़े, इसी सुभीते के लिए। पर मैं नहीं समझता कि ये लड़के क्या जीवन भर उन्हीं के अधीन कार्य्य करते रहेंगे? अपने घर वालों और सगे सम्बन्धियों को कुछ लिखना होगा तो क्या अँगरेज़ी ही में लिखेंगे? आशा है कि प्रबन्ध-कारिणी समिति के सदस्यों का ध्यान इस ओर अवश्य खिंचेगा।

इस स्कूल की एक दूसरी शाखा, म्यकेनिक्स स्कूल (Mechanics School) है। उसमें औद्योगिक शिक्षा दी जाती है। यहाँ भी अँगरेज़ी ही की भरमार है, यद्यपि कितने ही छात्र अँगरेज़ी से एक दम अनभिज्ञ हैं। कारण इसका यह है कि शिक्षक महोदय हिन्दी के जानकार नहीं। ख़ैर, जो कुछ हो। नहीं से कुछ तो है; छात्रों को कुछ लाभ अवश्य ही होगा।

एक बड़े आनन्द की बात यह है कि इस स्कूल में अछूत जाति के बालकों को भी शिक्षा दी जाती है। शिक्षक इन बालकों को ख़ुशी से पढ़ाते हैं। उन के लिए यह प्रशंसा की बात है। हेड मास्टर महाशय एक बिहारी सज्जन हैं। आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय के बी० ए० हैं। आप का शुभ नाम बाबू दुर्गाप्रसाद है। इस स्कूल के अवैतनिक सेक्रे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टरी मिस्टर जे० एन० दस्तूर, बी० ए० हैं। आप पारसी हैं। आप इस स्कूल की उन्नति के लिए जी-जान से उद्योग करते हैं। स्कूल-सम्बन्धी कार्य्यों में आप अपना बहुत समय लगाते हैं तथा इसी धुन में रहते हैं कि कैसे इस पाठशाला की उन्नति हो। आप बड़े सज्जन और उत्साही पुरुष हैं।

सुना है कि शीघ्र ही एक योरोपियन स्कूल (European School) और एक हिन्दुस्तानी लड़कियों का स्कूल (Girls School for Indians) खुलने वाला है। लड़कियों के स्कूल की बड़ी आवश्यकता है।

बाज़ार।

यहाँ पर प्रायः सब तरह की दूकानें हैं। रवि, मङ्गल, तथा बृहस्पतिवार को बाज़ार लगता है। रविवार का बाज़ार बहुत बड़ा होता है, जिसमें कोई १०, १२ हज़ार से अधिक मनुष्य एकत्र होते हैं। तरकारियाँ बाहर ही से आती हैं। वे यहाँ पर बहुत महँगी मिलती हैं। अन्नादि की भी वही दशा है। यहाँ पर जितने व्यापारी हैं प्रायः सभी मारवाड़ी हैं। ये परस्पर सलाह करके निर्ख़ निश्चित कर लेते हैं। इसलिए, ये जो कहते हैं उसी भाव माल लेना पड़ता है। न लें तो चारा नहीं! परन्तु सुना है कि शीघ्र ही एक बाज़ार-समिति कम्पनी की ओर से सङ्गठित होनेवाली है, जिसका काम बाज़ार का बन्दोबस्त करना और निर्ख़ आदि ठीक करना होगा। यदि यह कमिटी स्थापित हो जाय तो ख़रीदारों को बड़ा सुभीता हो।

रविवार के दिन बाज़ार में मुर्गों की लड़ाई होती है। इस मार-काट का दृश्य बड़ा ही हृदय-विदारक होता है। यह प्रथा बड़ी ही निर्दय है। क्यों? सुनिए। बाज़ार के समीप ही थोड़ा सा स्थान घेर लिया गया है। उसी में नीच जाति के लोग अपने अपने मुर्गे ले कर जाते हैं। प्रत्येक मुर्गेवाले को एक एक पैसा कर देना पड़ता है। मुर्गे के एक पैर में तुरन्त की सान धराई हुई, बहुत ही तेज़ धारवाली, एक छुरी बाँध दी जाती है। जब मुर्गे लड़ने लगते हैं तब वह छुरी प्रतिपक्षी मुर्गे को बेतरह घायल कर देती है। इस घाव से मुर्गे प्रायः मर भी जाते हैं। जिस का मुर्ग़ा जीतता है, हारा हुआ मुर्ग़ा भी उसी को मिल जाता है। इस मुर्ग़-युद्ध में प्रति सैकड़े ८०, ८५ मुर्गे घायल होकर यमसदन को सिधार जाते हैं। वास्तव में यह रीति (छुरी बाँध कर लड़ाना) बहुत ही बुरी है। ऐसी निठुर प्रथा जितना शीघ्र बन्द कर दी जाय उतना ही अच्छा। यहाँ के अधिकारियों को उचित है कि इस निर्दय प्रथा का लोप ही कर दें। यदि लड़ाई हो भी तो छुरी बाँधना तथा बाज़ी लगाना * अवश्य बन्द कर देना चाहिए।

बाज़ार में मुर्गे, बकरियाँ, भेड़ें तथा बत्तकें आदि जानवर बहुतायत से बिकने के लिए आते हैं, जो यहाँ के मांसाहारियों की उदरपूर्ति करते हैं। रविवार के दिन कोई छः सात सौ टोकरियाँ चावल आस पास के जङ्गली लोग यहाँ बेचने के लिए लाते हैं। पहले तो मारवाड़ी भाई सारा माल ख़रीद कर मनमाने मूल्य पर बेचा करते थे। परन्तु अब कम्पनी ने यह नियम कर दिया है कि कोई व्यापारी दिन में नहीं ख़रीद सकता; बिकते बिकते जो चावल सन्ध्या को बच रहेगा उसी को व्यापारी ख़रीद सकते हैं। यह नियम बना कर कम्पनी के अधिकारियों ने सचमुच अपने एक उत्तम कर्त्तव्य का पालन किया है।

पुलिस-प्रबन्ध (PUBLIC SAFETY)

जन-साधारण की रक्षा के लिए सरकारी प्रबन्ध बहुत अच्छा है। कोई ४० कान्स्टेबल, दो दारोग़ा, एक योरोपियन इन्स्पेक्टर, दो सरजेण्ट तथा दो

* दर्शकगण परस्पर बाज़ी भी लगाते हैं। इसे एक प्रकार का जूआ ही समझिए। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमादार इस काम के लिए तैनात हैं। गया, शाहाबाद, पटना आदि ज़िलों से पुलिस के जवान यहाँ एक वर्ष के लिए आते हैं। इन लोगों को साकची-अलौंस (Sakchi-Allowance) भी मिलता है; क्योंकि यहाँ पर प्रायः सभी चीज़ें महँगी हैं।

इसके अतिरिक्त ताता पुलिस भी है, जिसमें सरकारी फ़ौज से पेन्शन-प्राप्त जवान काम करते हैं। इतना उत्तम प्रबन्ध होने पर भी यहाँ चोरी बहुत होती है।

सभा-समितियाँ (PRIVATE CLUBS)

यहाँ पर सर्व-साधारण के कई क्लब आदि भी हैं—जैसे साकची ड्रामेटिक क्लब, टिस्को शिवपुर कालेज-युनियन, सरस्वती-सम्मिलनी समिति तथा महाराष्ट्र-मण्डल। इनमें प्रथम तीन तो बङ्गालियों के हैं और चौथा मराठों का। तैलङ्गियों तथा मदरासियों की भी अपनी अपनी समितियाँ हैं। पर, खेद है, हम हिन्दी वालों का एक भी क्लब या समिति नहीं। साकची ड्रामेटिक क्लब का पक्का मकान बन रहा है। बङ्गालियों में दो दल हैं—एक शान्तिपुरियों का और दूसरा अन्य ज़िले वालों का।

कार्य्यालय (WORK SITE)

अच्छा, इधर उधर का हाल तो आप बहुत सुन चुके; अब कार्य्यालय का भी विवरण सुनिए—जनरल मैनेजर श्रीयुत टी० डबल्यू० टटविलर साहब हैं, जिनकी सज्जनता तथा हम भारतियों के प्रति उदारता का परिचय समाचार-पत्रों के पढ़ने वालों से छिपा नहीं। औद्योगिक कमीशन (Industrial Commission) के सम्मुख गवाही देते समय आपने भारत के हित के लिए बड़ी ही उदारता-पूर्ण राय दी थी। यहाँ पर एक गवर्नमेंट की प्रयोगशाला (Government Laboratory) है, जिसमें यहाँ की बनी वस्तुओं की जाँच होती है।

इस कार्य्यालय में रेल, बीम, फ़िश-प्लेट (जो दो रेलों को जोड़ने के काम आते हैं) स्लिपर (जिस पर रेल बिछाई जाती है) ऐंगिल-बार्स, ईसपात, पिग आयरन (Pig Iron), कोलटार तथा सल्फ़ेट आव एमोनिया आदि बनता है। इन वस्तुओं को बनाने में विद्युत् अर्थात् बिजली ही प्रधान है। यदि क्षण भर के लिए बिजलीघर (Power House) बन्द कर दिया जाय तो सारा काम बन्द हो जाय। तीन करोड़ साठ लाख की लागत से यह कार्य्यालय और भी बढ़ाया जाने वाला है। कार्य्य का आरम्भ भी हो गया है। वर्त्तमान कार्य्यालय कोई डेढ़ वर्ग मील के घेरे में है। गत वर्ष कोई ६८ लाख रुपये इस कार्य्यालय को मुनाफ़ा हुआ था। परमात्मा करे, इस कम्पनी की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो।

जोखू पाण्डेय (साकची)

जीवन क्या है?

जीवन क्या है, इस छोटे से प्रश्न का उत्तर पण्डित, मूर्ख, दार्शनिक, अदार्शनिक, वैज्ञानिक, अवैज्ञानिक इत्यादि सभी मनुष्यों ने अनेक प्रकार से दिया है। उन लोगों ने इस सम्बन्ध में इतनी बातें कही हैं जिनकी गिनती नहीं। मालूम होता है, जिस समय से मनुष्य ने चिन्ता करने की शक्ति प्राप्त की है उसी समय से इस प्रश्न का उचित उत्तर देने की चेष्टा की जा रही है। पर आज तक इसका उचित उत्तर कोई नहीं दे सका। उच्च श्रेणी के दार्शनिक अपना पोथी-पत्रा खोल कर शायद गम्भीर-भाव से कहें, तुम, मैं और घट-पट आदि जो कुछ संसार में देख पड़ता है, सभी माया की रचना है। पर, उनके इस उत्तर से मन सन्तुष्ट नहीं होता। यह संसार माया की रचना भले ही हो, पर इस तत्त्व-ज्ञान से मन को शान्ति नहीं मिल सकती। जो वस्तुयें जड़ हैं उनमें किस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतन शक्ति उत्पन्न होती है, किस प्रकार उनमें जीवन के अनेक अद्भुत कार्य्य होते देख पड़ते हैं, मन इसी बात के जानने को उत्सुक रहता है। इस दशा में पूर्वोक्त प्रश्न तत्त्व-ज्ञान की सीमा से निकल कर विज्ञान के हाते में आ पहुँचता है। आधुनिक विज्ञान-शास्त्र इसका उत्तर किस प्रकार देता है, इस लेख में हम यही दिखाने की चेष्टा करेंगे।

वर्तमान काल के वैज्ञानिक कहते हैं—दूध में जामन, अर्थात् दही का बीज, देने से वह जिस प्रकार जम कर दूसरे रूप में बदल जाता है, उसी प्रकार जीवन का कार्य्य दूसरे रूप में परिणत हो जाने पर ही यथावत् चलता है। जामन से सिर्फ़ दही ही नहीं जमता, मैदा और सूजी भी जमती है। जब हम ख़मीर का जामन देते हैं तब वे भी दोनों ही जम जाते हैं। उन्हीं की हम डबल रोटी पकाते हैं। विज्ञान की भाषा में जिसे हम जीवन कहते हैं, वह इसी प्रकार के जामनों या मिश्रणों से बना हुआ है। पहले पहल सुनने पर यह बात असम्भव सी मालूम होती है। पर इसकी सचाई के इतने प्रमाण मौजूद हैं कि हमें इसे सच ही मानना पड़ता है।

कभी किसी बड़े सिद्धान्त का निश्चय एक ही दिन में अथवा एक ही व्यक्ति के द्वारा नहीं हुआ। किसी ने उपादान ढूँढ़े, किसी ने उन्हें एकत्र किया और किसी ने उनकी सचाई का पता लगाया। वर्षों बाद एक एक सिद्धान्त पूर्ण रूप से निश्चित होता है। हम जिस सिद्धान्त की यहाँ आलोचना करने चले हैं उसका भी निश्चय धीरे ही धीरे होता आया है। उसके निश्चय में प्राचीन तथा वर्तमान समय के अनेक शरीर-तत्त्व विशारदों का हाथ लगा है। पहले पहल जिन लोगों ने उसकी नींव डाली थी उनका स्मरण करते ही हमें फ्रांस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पास्टुर (Pasteur) का नाम याद आता है। दूध में दही का बीज और मैदे तथा सूजी में ख़मीर का बीज देने से वे क्यों जम कर दूसरा रूप धारण करते हैं, इस विषय पर उन्होंने पहले पहल खोज की। उससे उन्हें मालूम हुआ कि दूध तथा मैदे में एक प्रकार के छोटे छोटे जीव पैदा हो जाते हैं। अतएव हम जब जमाने के लिए दूध में दही का जामन देते हैं तब उसके साथ ही कुछ थोड़े से जीवाणु उसमें छोड़ देते हैं। तब वे सारे जीवाणु बढ़ने लगते हैं और दूध को ढक लेते हैं। उस समय दूध दही का रूप धारण कर लेता है। केवल इन्हीं वस्तुओं में नहीं, कुछ रोगों में भी ये कीटाणु अपना कार्य्य करते हैं। इसका भी प्रमाण पास्टुर साहब को मिल चुका था। रोगों के जीवाणु, मनुष्य अथवा अन्य प्राणियों के शरीर में जाकर, जब अपना वंश-विस्तार करते हैं तभी उन रोगों के उद्भव का विशेष लक्षण प्रकट होता है। यह बात प्रत्यक्ष देखी गई है। इसके अतिरिक्त पास्टुर साहब ने यह भी दिखाया कि विशेष विशेष जीवाणुओं का कार्य्य प्राणियों की तन्दुरुस्ती का भी कारण होता है। अर्थात् मनुष्य की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए कुछ कीटाणुओं के कार्य्य करते रहने की आवश्यकता है। पास्टुर साहब बड़े भारी विज्ञानवेत्ता थे। रसायन-शास्त्र का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। उन्होंने स्पष्ट दिखला दिया कि जीवाणुओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में तथा अनेक जड़-पदार्थों में भी जो परिवर्तन होता है वह रासायनिक परिवर्तन है। पर, इस बात को सर्व-साधारण में प्रकाशित करने का पाप वे अपने ऊपर न ले सके। जीवन के कार्यों के साथ रासायनिक कार्यों का सम्बन्ध है, यह बात प्रकाशित करना उस समय सचमुच ही बड़ा पाप समझा जाता था। बड़े बड़े धुरन्धर विज्ञानवेत्ता भी उस समय जीवन के कार्य्य को एक प्रकार का सृष्टि-रहस्य ही समझते थे। उस समय के विज्ञानवेत्ताओं का ख़याल था कि परीक्षा करने के समय अनेक प्रकार के संयोग-वियोग से जो रासायनिक घटनायें होती हुई हम देखते हैं और उस समय जिन प्राकृतिक नियमों का साक्षात्कार करते हैं प्राणियों की देह के कार्यों से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। इसी कारण वे प्राणियों की देह में होने वाले जीवाणुओं के कार्य्य को जीव का ही कार्य्य मानते थे। अतएव यह सिद्धान्त ज्यों का त्यों अटल बना रहा। जीव के कार्य्य के साथ रासायनिक कार्य्य का भी संयोग है, यह उस समय किसी के ध्यान ही में न आता था।

पास्टुर के मरने के बाद जर्मनी में बुकनर (Buchner) नामक एक असाधारण प्रतिभाशाली वैज्ञानिक का जन्म हुआ। वह बड़ा स्वाधीनचेता था। जीवाणुओं का कार्य्य मुख्यतः जीव का कार्य्य होने पर भी वह रासायनिक कार्य है, इस बात का प्रतिपादन बुकनर बड़े ज़ोर से करने लगा। केवल प्रतिपादन ही नहीं, सबके सामने उसने यह बात प्रत्यक्ष करके दिखला भी दी। उसने एक प्रकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जामन लेकर उसे ख़ूब ज़ोर से दबाया। इससे जामन के कोष (Cells) टुकड़े टुकड़े हो गये और उनसे एक पतला रस निकलने लगा। इस रस की परीक्षा करके बुकनर ने दिखाया कि ताज़े जीवाणुओं से युक्त कोई पदार्थ—कोई जामन—डालने पर दूध और चीनी आदि पदार्थों में जो परिवर्तन होता है, जीव-कोषों का यह रस डालने से भी उनमें वही परिवर्तन होता है। उसी समय से लोग समझने लगे कि जीवाणुओं के कार्य्य का सम्बन्ध जीवनी शक्ति नामक सृष्टि के किसी रहस्य से नहीं। उस समय इसका तो निश्चय न हो सका कि जीवाणु अपनी देह में रस किस प्रकार बनाते हैं; पर, इसमें किसी को सन्देह न रहा कि जीवाणुओं का यह रस ही अनेक पदार्थों में मिल कर रासायनिक क्रिया पैदा करता है। पास्टुर साहब जिस जीवनी शक्ति के भय से अपना सिद्धान्त प्रकाशित न कर सकते थे उसकी नींव अब हिल उठी।

इसके थोड़े ही दिनों बाद बरट्रेंड (Gabriel Bertrand) नामक एक फ़रासीसी विज्ञान-वेत्ता ने इस विषय की गवेषणा प्रारम्भ की। उसकी इस गवेषणा के फल से जीवन के कार्य्य के साथ रासायनिक कार्य्य की एकता और भी स्पष्ट हो गई। इसके पहले भी जीवनी शक्ति और रासायनिक शक्ति की एकता की बात लावोसियर नामक एक फ़रासीसी विद्वान् ने प्रकट की थी। परीक्षा-भवन में आक्सिजन सङ्ग्रह करते समय हम लोग जिस प्रकार कभी कभी वायु के नाइट्रोजन का वर्जन करके आक्सिजन ग्रहण करते हैं, प्राणियों का फेफ़ड़ा भी ठीक उसी प्रकार आक्सिजन ग्रहण करके जीवन का कार्य्य चलाता है। यह बात भी बहुत समय पहले लावोसियर साहब ने ही प्रकट की थी। बरट्रेंड साहब दिखलाने लगे कि प्राणियों का फेफड़ा ऐसी वस्तु है जिसका काम वायु से आक्सिजन सङ्ग्रह करना ही है। उत्ताप से फेफड़ा नष्ट हो जाता है; क्षार (एसिड) अथवा विष का सम्पर्क होने पर उसकी गति बन्द हो जाती है। उसका प्रत्येक कार्य्य, पास्टुर साहब के आविष्कार किये हुए ख़मीर के कार्य्य से ज्यों का त्यों मिल गया। बरट्रेंड साहब ने इसका नाम रक्खा—Oxybase.

इस आविष्कार के पहले प्राणितत्त्ववेत्ता और शारीरशास्त्रवेत्ता लोग निश्चिन्त न थे। पास्टुर साहब के पैदा होने के बहुत पहले ही वैज्ञानिकों ने बीज से अङ्कुर निकलने की क्रिया का विवेचन किया था। उन्होंने यह अनुभव प्राप्त किया था कि नव-अङ्कुरित बीज में कोई ऐसी वस्तु है जो बीज के श्वेत-सार, मांडी या निशास्ते (Starch) को अलग करके अन्य कई प्रकार के पदार्थों में बदल देती है। प्राणियों के मुख की लार में भी एक प्रकार की ऐसी ही वस्तु मिली हुई है, यह बात भी उस समय विदित हो गई थी। इसके बाद प्राणियों के मेदे या पाकाशय में पेपसिन (Pepsin) नामक एक वस्तु पाई गई। इसी वस्तु के गुण से प्राणी मांस और अण्डे आदि खाद्य पदार्थ पचा सकते हैं। प्राणियों की देह में यकृत से जो पित्तरस (Bile) पैदा होता है वह किस प्रकार तैल-युक्त भोज्य पदार्थ को शरीर के काम में लगाता है, इसका भी कुछ कुछ आभास लोगों को मिला। इसके अतिरिक्त पाकाशय में होनेवाले अन्यान्य रसों के कार्यों का लक्षण भी वैज्ञानिकों को मालूम हो गया। पास्टुर साहब का आविष्कार और बरट्रेंड साहब की परीक्षा का फल प्रकाशित होने से लोगों का ध्यान इन सब बातों की ओर और भी आकृष्ट हुआ। प्राणियों की देह में विद्यमान अनेक प्रकार के रसों के कार्य्य के साथ पास्टुर के आविष्कार किये हुए ख़मीर के कार्य की एकता देख कर सब लोग अवाक् रह गये। विज्ञानवेत्ता उन रसों के अनेक नाम रखने लगे, जिससे ख़मीर के सजीव जीवाणुओं और प्राणियों की देह के अनेक रसों की विभिन्नता जानी जा सके। कोई उन्हें Enzymes और कोई Zymases कहने लगे।

जिस समय पास्टुर के आविष्कार किये हुए जीवाणु के कार्य्यों के साथ अनेक प्रकार के शारीरिक कार्य्यों की एकता धीरे धीरे मालूम की जा रही थी, उसी समय अचानक एक ऐसी बाधा आ पड़ी जिसने खोज की गति को एक दम बन्द कर दिया। वैज्ञानिकों ने सोचा कि पास्टुर के आविष्कृत जीवाणुओं का कार्य केवल वस्तु के टुकड़े टुकड़े करना है, और कुछ नहीं। जब शकर में हम विशेष जीवाणुयुक्त ख़मीर डालते हैं तब शकर टुकड़े टुकड़े होकर मद्य (Alcohol) और अङ्गारक-वाष्प (Carbonic Acid) उत्पन्न करती है। पाकाशय का पेपसिन नामक रस भी ठीक इसी प्रकार पेट में पहुँचे हुए खाद्य पदार्थ को टुकड़े टुकड़े करके उससे अनेक प्रकार के नवीन पदार्थ पैदा करता है। पर, प्राणियों के शरीर में पदार्थों के भङ्ग होने का ही काम नहीं होता। उनके सङ्गठन का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम होता है। इस सङ्गठन-कार्य्य की व्याख्या कैसे हो ? उन पदार्थों के टुकड़े टुकड़े होने ही से तो जीवन का काम नहीं चलता। जीवन का काम चलने के लिए पदार्थों के बनने की भी आवश्यकता है। इससे जो लोग जामन के द्वारा शरीर में उबाल, उफान या जोश को ही जीवन का कारण मान कर हर्षित हो रहे थे, उन्हें कुछ दिनों के लिए चुप्पी साधनी पड़ी।

पर खोज का अन्त न हुआ। अनेक देशों के अनेक वैज्ञानिक इस बात का अनुसन्धान करने लगे कि उबाल या जोश से कोई नई वस्तु तैयार होती है या नहीं। कई प्रकार की वस्तुओं में कई प्रकार का जामन दिया गया, पर किसी में कोई नवीन वस्तु बनी न दिखाई दी। अन्त में एक अँगरेज़ रसायनशास्त्री, हिल साहब, (Croft Hill) ने एक परीक्षा में जामन द्वारा एक नवीन बनी हुई वस्तु दिखाकर सब लोगों को विस्मित कर दिया। जामन देने पर श्वेतसार अर्थात् निशास्ता (Starch) शकर आदि पदार्थों में विश्लिष्ट हो जाता है। जब तक श्वेतसार का एक भी कण बाक़ी रहता है तब तक यह परिवर्तन जारी रहता है। श्वेतसार ख़तम हो जाने पर विश्लेषण बन्द हो जाता है और नया श्वेतसार डालने पर वह फिर शुरू होता है। हिल साहब ने एक पात्र में श्वेतसार के साथ ख़मीर मिला कर उसे पूर्णरूप से विश्लिष्ट कर दिया। इसके बाद धीरे धीरे वे उसमें शकर डालने लगे। ऐसा करने पर उन्हें देख पड़ा कि शकर के योग से श्वेतसार का सङ्गठन फिर होने लगा। इस दशा में पास्टुर के जामन द्वारा उबाल या जोश के कार्य्य से जिस प्रकार पदार्थ का विश्लेषण होता है, उसी प्रकार उससे नवीन पदार्थ का सङ्गठन भी होता है, यह बात पूर्णरूप से सिद्ध हो गई।

हिल साहब का यह आविष्कार, थोड़े ही दिन हुए, प्रकाशित हुआ है। इसे प्रकाशित हुए सम्भवतः १०—१२ वर्ष से अधिक न हुए होंगे। पर, वैज्ञानिक लोग इस एक ही उदाहरण से सन्तुष्ट न हुए। सभी देशों के विद्वान् नये नये उदाहरण संग्रह करने के लिए खोज करने लगे। हाल ही में जर्मनी के एक प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री इमरलिंग साहब (Emmerling) ने एक और उदाहरण देकर लोगों को आश्चर्य्य में डाल दिया है। उन्होंने बादाम के तेल में एक प्रकार का जामन दिया। फल यह हुआ कि वह शकर और हाईड्रोसाइनिक एसिड (Hydrocyanic Acid) नामक विषाक्त पदार्थ में विश्लिष्ट हो गया। पर, इसके बाद ही उन्होंने उसमें एक प्रकार का और जामन दे दिया। इस जामन के पड़ते ही वह फिर बादाम का तेल हो गया।

इस आविष्कार के बाद से प्रति वर्ष जामन के संयोग से और और नवीन वस्तुओं की उत्पत्ति का समाचार मिल रहा है। पास्टुर का आविष्कार किया हुआ तत्त्व पदार्थों का विश्लेषण करने ही तक सीमाबद्ध नहीं है, आज कल वैज्ञानिकों को इस बात का पूर्ण रूप से निश्चय हो गया है। इसी लिए मानना पड़ता है कि एक प्रकार के जामन से जिस तरह हम श्वेतसार को विश्लिष्ट करके शकर आदि में परिणत करते हैं और इसके बाद एक दूसरे प्रकार के जामन से जिस तरह हम उसे फिर श्वेतसार बना देते हैं उसी तरह प्राणियों के शरीर में भी निरन्तर विश्लेषण और संश्लेषण का कार्य्य चलता रहता है। देह में रहने वाला कोई जामन तो पेट में पहुँचे हुए मांसल खाद्य को टुकड़े टुकड़े करता है और कोई तैल-विशिष्ट खाद्य का विश्लेषण करता है। इसके सिवा एक और प्रकार का नया जामन इन सब वस्तुओं के साथ मिल कर सम्भवतः इनसे ऐसी अनेक वस्तुयें तैयार करता है जो स्थायी रूप से देह का ही अंश हो जाती है।

इन सब आविष्कारों के द्वारा शारीर-तत्त्व ने मानों एक नया जीवन प्राप्त कर लिया है। वर्तमान समय के वैज्ञानिक इस विषय की जितनी ही खोज करते हैं उतने ही नये नये तत्त्व प्रकट होते हैं। आज कल के शारीरतत्त्व-विशारद कहते हैं कि सुई की नोक इतने शरीर के भाग में करोड़ों जीवकोष (Cells) वर्तमान हैं। इन जीवकोषों में से प्रत्येक कोष एक बहुत बड़े विज्ञानागार के सदृश है। एक ही विज्ञानागार में जिस प्रकार अनेक मनुष्य अनेक पदार्थ तैयार करते हैं उसी प्रकार एक एक कोष के भीतर ही अलग अलग दस बारह कोठरियों में दस बारह तरह के जामन अपने ही आप तैयार होते रहते हैं। काम होते ही ये सब रस विश्लेषण और संश्लेषण का कार्य्य करते हुए जीवन का कार्य्य चलाते हैं। प्राणियों के यकृत में असंख्य अतीन्द्रिय सूक्ष्मकोष रहते हैं। उनमें से प्रत्येक कोष में जो जामन तैयार होता है उसमें से कुछ तो यूरिया (Urea) बनाता है और कुछ पित्तरस। उसका कुछ भाग अनेक प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रङ्ग बनाने में भी लगा रहता है। इसके सिवा कुछ जामन देह के विष को अलग अलग करके नष्ट करता है; कुछ पाकाशय में पैदा हुए अम्ल पदार्थ को दूसरे से मिलाता है। यकृत ही में नहीं, प्लीहा, मूत्राशय और फेफड़े आदि देह के सभी अवयवों में करोड़ों जीव-कोषों का कार्य्य नियमित रूप से चलता रहता है। यहाँ तक कि मस्तिष्क एवं स्नायु-समूह में भी इसी प्रकार का कोई जामन पैदा होकर संश्लेषण-विश्लेषण के द्वारा जीवन का कार्य्य चलाता है। अतएव जामन से दही का बनना और जीवन का कार्य्य दोनों एक ही बात है। हमने लेख के प्रारम्भ में जो बात कही थी वह निरर्थक नहीं। परीक्षाओं से वह स्पष्ट सिद्ध हो चुकी है।

यहाँ पर पूछा जा सकता है कि आज कल वैज्ञानिक लोग प्राणियों की देह के जिन सब जामनों को जीवनी शक्ति का मूल कारण मानते हैं, वे Enzymes और Zymases हैं क्या चीज़? वर्तमान समय के वैज्ञानिक अभी तक इसका यथार्थ उत्तर नहीं दे सके। पर, इसका यथार्थ उत्तर देना ही आज कल वैज्ञानिकों का मुख्य कर्तव्य हो रहा है। इसी उत्तर के लिए अनेक देशों के अनेक वैज्ञानिक बड़ी शान्ति और परिश्रम के साथ प्रयत्न कर रहे हैं। किस शुभ दिन में उनका यह कार्य्य सफल होगा, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। आश्चर्य्य का विषय तो यह है कि रासायनिक रीति से विश्लेषण करने पर हाइड्रोजन, आक्सिजन, नाइट्रोजन और अङ्गारक के सिवा और कोई वस्तु इन पदार्थों में नहीं मिलती। विज्ञान की इस समय यही मुख्य समस्या हो रही है कि किस प्रकार ये उपर्युक्त पदार्थ परस्पर संयुक्त होकर जीवनी शक्ति का विकास करते हैं। रसायन-शास्त्री जिस प्रकार आक्सिजन और हाइड्रोजन को एकत्र करके परीक्षागार में जल बना सकते हैं, उसी प्रकार जिस दिन वे अङ्गार, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन इत्यादि को परस्पर मिला कर एक बूँद जामन या एक जीवकोष तैयार कर सकेंगे, उसी दिन विज्ञान-शास्त्र अपने को धन्य मानेगा।*

—

* "प्राकृतिकी" से अनुवादित।

भाषा की उन्नति।

(२)

पाँचवाँ अभाव—पुरातत्त्व (Archæology)—इस विषय पर भी हिन्दी में अभी तक ऐसी कोई पुस्तक नहीं लिखी गई जो साहित्य में स्थायी रूप से अपना आसन लगा सके। बङ्गाल के डाकृर राजेन्द्रलाल मित्र महाशय ने इस विषय की आलोचना में बहुत कुछ सफलता लाभ की थी। परन्तु उनके पश्चात् भारतवर्ष में किसी ने इस विषय पर उस तरह का उत्साह तथा उद्योग नहीं दिखलाया। गर्म्मियों की अथवा बड़े दिनों की छुट्टियों में कोई उद्योगी प्रोफ़ेसर साहब दो चार उत्साही छात्रों को लेकर हफ़्ते दो हफ़्ते के लिए किसी पुराने बौद्ध मठ या विहार अथवा स्तूप की कुछ बातों का अनुसन्धान कर लाते हैं, कहीं से कुछ पत्थर के सामान अथवा भूगर्भ से वर्त्तन या शिलालेख के टुकड़े उठा लाते हैं; परन्तु इससे ठीक ठीक काम नहीं हो सकता। यह दिल बहलाने का एक कैसा ही अच्छा उपाय क्यों न हो, परन्तु सम्यक् लाभदायक काम नहीं समझा जा सकता।

पुरातत्त्व के गाम्भीर्य्य पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि यह पुरातत्त्व भूगर्भशास्त्र (Geology) तथा इतिहास की मध्यवर्ती विद्या है। इसकी उत्पत्ति भूगर्भशास्त्र के ऊपर प्रतिष्ठित है और इसका अन्त इतिहास का प्रारम्भ है। इतिहास का सम्बन्ध केवल मनुष्य-जाति से है; पुरातत्त्व भी मनुष्य ही से सम्बन्ध रखता है। परन्तु मनुष्य के अतिरिक्त अन्यान्य विविध जन्तुओं तथा वस्तुओं से भी इसका सम्बन्ध है। इस विषय के सामने इतिहास को निरा बच्चा समझना चाहिए।

सभी विद्याओं—सभी शास्त्रों—की उत्पत्ति किसी न किसी प्रकार की आवश्यकता को पूरी करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्टर जे॰ एन॰ दस्तूर, बी॰ ए॰ [साकची]।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेष्टा से हुई है। मनुष्य को रोग-मुक्त तथा दीर्घायु करने के लिए आयुर्वेद का जन्म हुआ—भविष्यत् की अनुसन्धानरूपिणी आवश्यकता को पूरी करने के लिए ज्योतिष की उत्पत्ति हुई। इसी तरह भूतकाल के अनुसन्धान के लिए पुरातत्त्व की आवश्यकता समझी गई। भविष्यत् के ज्ञान अर्थात् "आगे क्या होगा" इस बात के ज्ञान के लिए हम जितना उत्सुक रहते हैं, भूतकाल के ज्ञान अर्थात् "क्या था" इसके लिए भी हममें उतना ही कुतूहल होता है। दोनों ही बातें मानवप्रकृति के साथ जकड़ी हुई हैं।

मेरी समझ में पृथ्वी की उत्पत्ति अथवा सृष्टि इस विषय के अन्तर्गत नहीं। परन्तु पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद से लेकर इतिहास के निश्चित अंश तक इसका राज्य है; और इतिहास के अनिश्चित अंश भी (Pre-historic Period) इसी के अन्तर्गत हैं। इस विषय के पण्डितों ने अनुसन्धान द्वारा इस बात को सिद्ध किया है कि पृथ्वी की प्राकृतिक अवस्था में पहले से बहुत कुछ परिवर्त्तन देखा जाता है; पृथ्वी की उष्णता (Temperature) में भी पहले से बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ है; पृथ्वी में पहले ऐसे अनेक प्रकार के जीव-जन्तु थे जिनका पता अब केवल हड्डियों अथवा हड्डियों के प्रस्तरविकल्प (Fossil Remains) से लगता है। पृथ्वी पर मनुष्य-जाति के आविर्भाव के पहले भी दूसरे अनेकानेक प्रकार के जीव रहते थे। संसार से उनके लुप्त होने का प्रधान कारण मनुष्य की उत्पत्ति ही बतलाई जाती है—अर्थात् मनुष्य ने ही आत्म-रक्षा के कारण उनको मार कर उनके नाम तक को मिटा दिया। उपर्युक्त "पहले" शब्द से दो सौ या चार सौ वर्ष न समझना चाहिए; उससे मतलब हज़ारों वर्ष से है।

मनुष्य के अस्तित्व का चिह्न संसार में पीछे से पाया जाता है। अनुसन्धान के फल से हमें उस की अवस्था के सम्बन्ध में बहुत कुछ मालूम होता है। और इस विषय के अनुसन्धान के लिए भूगर्भ-शास्त्र को छोड़ कर और कोई सहारा नहीं। प्रत्न-तत्त्व-सम्बन्धी बातें मालूम करने के लिए भूगर्भ ही की सहायता लेनी पड़ती है, क्योंकि मनुष्य शीत-ग्रीष्मादि तथा हिंस्र जन्तुओं से अपनी रक्षा करने के लिए मिट्टी के नीचे गुफाओं में रहता था। यह उस समय का ज़िक्र है जब वह बिलकुल ही आदिम अवस्था में था; अर्थात् उसे ईंट-पत्थरों से घर बनाने का, पशम या कपास से वस्त्र बुनने का, धातुओं के द्वारा अस्त्र शस्त्र बनाने का, यहाँ तक कि आग जलाने तक का उपाय मालूम न था। जिन गुफाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है वे प्राकृतिक संयोग से बनी बनाई मिल जाती थीं। फिर, काल-क्रम से, अपनी आवश्यकताओं के अनुसार, मनुष्य ने पत्थरों के अस्त्रादि बनाना और उन अस्त्रों से जान-वरों को मार कर उनकी खालों से अपना शरीर ढकना सीखा। इसके पश्चात् हज़ारों वर्ष व्यतीत हुए। तब मनुष्य ने ब्रांज तथा ताँबे का व्यवहार सीखा; वह तीर, तलवार, बल्लम इत्यादि बनाने लगा; पेड़ों के तनों को खोखला करके उसने किश्ती का काम निकाला। इसी तरह युग पर युग व्यतीत होते चले गये। मनुष्य की भी सभ्यता तथा ज्ञान का धीरे धीरे विकाश होता गया।

भूगर्भ से निकली हुई वस्तुओं में से अधिकता इन चीज़ों की है—(१) जन्तुओं की हड्डियाँ (२) पत्थर, ब्रांज, लोहे के तीर-बल्लम इत्यादि (३) मिट्टी तथा भिन्न भिन्न धातुओं के सादे अथवा नक़्शदार बर्त्तन (४) पत्थर तथा धातु की मूर्त्तियाँ (५) शिलालेख तथा ताम्र-लेख (६) सोने, चाँदी के पुराने ढँग पर बने हुए आभूषण (७) नगरों अथवा घरों के ध्वंसा-वशेष। इस प्रसङ्ग में सबसे प्रधान बात यह है कि यदि हम पृथ्वी के किसी स्थल को कुछ अधिक दूर तक नीचे खोद डालें तो हम ऊपर से लेकर नीचे तक बराबर सभी जगह एक सी न पावेंगे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि पृथ्वी की बनावट स्तरों (Strata) से हुई है। इन भिन्न भिन्न स्तरों को देख कर उनके समय का अनुमान करना, अर्थात् कितने हज़ार वर्ष पहले उस स्तर अर्थात् तह की सृष्टि हुई थी, इस बात का निरूपण करना भूशास्त्र-वेत्ताओं की सबसे अधिक प्रयोजनीय शिक्षा है। इसी शिक्षा के आधार पर वे बता सकते हैं कि पृथ्वी के भीतर से निकली हुई कौन चीज़ कितने वर्षों की पुरानी है। फिर इन्हीं चीज़ों की परीक्षा तथा वयःक्रम की जाँच से उनके बनाने वालों की सभ्यता तथा रीति-नीति का भी पता लगाया जाता है।

इस विषय की विस्तृत आलोचना वर्त्तमान प्रबन्ध का उद्देश नहीं। मुझे तो केवल यही दिखाना है कि इस विषय के ज्ञान से वञ्चित रहने से हमारी कितनी हानि है।

अधिकांश पाश्चात्य पण्डितों ने दर्शन, साहित्य, इतिहास, ललित-कला इत्यादि विषयों की आलोचना करने में ग्रीस और रोम से अपने को जितना निकट सम्बद्ध समझा है उतना और किसी देश से नहीं—भारतवर्ष का तो कहना ही क्या। पुरातत्त्व-विषयक आलोचना में भी यही बात पाई जाती है। भारत की तरफ़ तो उनकी (मैक्समूलर इत्यादि दो एक विद्वानों को छोड़ कर) टेढ़ी दृष्टि सदा से ही रहती आई है। सभ्यता के प्राचीनत्व पर विचार करने के समय भारतवर्ष को बड़ी मुश्किल से जगह दी जाती है। बिना कुछ सोचे समझे कह दिया जाता है कि भारत के लोगों ने अरब-निवासियों से गणित तथा ज्योतिष की शिक्षा पाई थी। ज्योतिष-शास्त्र की अत्युत्तम उन्नति के एकाधिक निदर्शन होते हुए भी हमारी मौलिकता के ऊपर पाश्चात्य पण्डितों का विश्वास नहीं है। ज़रा इस दिल्लगी को तो देखिए—

"We are in possession of the tables from which they (Hindus) compute the eclipses and places of the planets, and of the methods by which they effect the computation; we have, in short, an Indian Astronomy committed to writing, which represents the celestial phenomena with considerable exactness, and which, therefore, could only be produced by a people far advanced in science. But the difficulty the problem presents is the determination of the sources whence this science originated and the epoch of its existence—the question whether it was created by the people who now blindly follow its precepts without understanding its principles, or was communicated to them by another race of a more original genius, through channels with which we are unacquainted. * * * * * Another opinion is that astronomy was conveyed to India by the Arabs in the 9th century of our era and that the Brahmins are only entitled to the humble merit of adapting the rules and practices of that people to their own peculiar methods of calculation."

यह सब कहने का उद्देश यह है कि गणित अथवा विज्ञान में हम चाहे युरोपीय विद्वानों से कितना ही शिक्षालाभ क्यों न करें, परन्तु पुरातत्त्व-विद्या में हम कुछ नहीं कर सकते। कारण यह कि उन्हें ग्रीस, रोम से फ़ुरसत ही नहीं मिलती; और यदि मिलती भी है तो उनके लिए फ़्रांस, जर्म्मनी, इजिप्ट, एसिरिया, बेबिलोन पड़े हुए हैं—भारतवर्ष से उन्हें क्या प्रयोजन जो वे हमारे यहाँ की बातों के विचार में अपना समय नष्ट करें। यह भी बड़ी लज्जा तथा खेद की बात है कि हमारे घर की बातों का पता हम ख़ुद न लगा सकें, और, जब तक कोई दूसरा बाहर से आकर हमें न सुझावे तब तक अन्धे ही बने बैठे रहें।

मनुष्य कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। हम कितनी ही क्यों न ज्ञान-प्राप्ति करें हमारा ज्ञान असम्पूर्ण ही रहेगा। हम अपनी प्राचीन सभ्यता की उमङ्ग में फूले नहीं समाते और उस सभ्यता की बुनियाद हम वेदों, उपनिषदों और दर्शन-शास्त्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रखते हैं। परन्तु वेदों और उपनिषदों से दस हज़ार वर्ष पहले हमारी क्या दशा थी; उस समय भारत की प्राकृतिक अवस्था कैसी थी; भारत के महाकान्तारों में कैसे कैसे जीव-जन्तु विचरण करते थे; गिरि, नदी, वन, उपत्यकादि जैसी अब हैं वैसी ही उस समय भी थीं अथवा नहीं; मनुष्य-जाति का जन्म उस समय से पहले हुआ था अथवा पश्चात्; मनुष्य की ज्ञान-बुद्धि उस समय कैसी थी; वह अपनी रक्षा कैसे करता था; भाषा किस अवस्था में थी; इत्यादि बहुत सी बातें हैं जिनके विषय में हम सम्पूर्णतया मूक बने बैठे हैं। कदाचित् कोई यह भी कहने के लिए उद्यत होंगे कि इन बातों से वास्तव में विशेष लाभ नहीं। माना कि लाभ नहीं है, परन्तु हमारे साहित्य का एक अङ्ग जो अपूर्ण रह जाता है उसकी पूर्त्ति फिर कैसे हो?

ऐतिहासिक युग में पहुँच कर भी हम देखते हैं कि हमें दूसरे ही का मुखापेक्षी बनना पड़ता है। प्राचीन नगरों तथा जनपदों के ध्वंसावशेषों के अनुसन्धान से हम बहुत कुछ ज्ञान-प्राप्ति कर सकते हैं। अवन्ती, हस्तिनापुर, श्रावस्ती, प्राग्ज्योतिषपुर, काञ्ची, सौराष्ट्र, मथुरा, पाटलिपुत्र इत्यादि नगरों के प्राचीन इतिहास के विषय में पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से कुछ अवगत होने की चेष्टा हममें से कितनों ने की है? भारत में फल्गू, सरस्वती आदि बहुत सी नदियाँ थीं, जो अब अन्तःसलिला हो गई हैं (प्राचीन सभ्यता के साथ नदियों का घनिष्ट सम्बन्ध है। दृष्टान्त के लिए मिश्र की नील, मध्य एशिया की युफ्रेटिस तथा टाइग्रिस, भारत की गङ्गा-यमुना इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है) इन नदियों के विषय में हम इनके नाम के अतिरिक्त कुछ अधिक नहीं जानते। पुराने सिक्कों (Numismatics) के विषय में हमारा ज्ञान बहुत ही कम है। ताम्रलेखों तथा शिलालेखों के सम्बन्ध में इधर कई वर्षों से थोड़ी थोड़ी आलोचना होने लगी है। परन्तु कलकत्ते तथा लाहौर के अजायबघरों में मैंने बहुत से ऐसे शिलालेख देखे हैं जिनके नीचे "Unknown Script" अर्थात् "अज्ञात अक्षर" लिखा हुआ है और ऐसा मालूम पड़ता है कि वे सर्वदा के लिए अज्ञात ही रहेंगे। मिस्र की चित्रलिपि (Hieroglyphics) भी पहले अज्ञात ही थी; परन्तु मनुष्य अपने यत्न, परिश्रम, अध्यवसाय तथा निरवच्छिन्न अनुसन्धान के द्वारा अब उसे समझने लगे हैं। अब प्रश्न यह है कि किसी ने उपर्युक्त अज्ञात अक्षरों के शिलालेखों के लिए भी क्या कुछ यत्न, परिश्रम तथा अध्यवसाय किया है? क्या यह सम्भव नहीं कि इन शिला-लेखों के द्वारा हम सैंकड़ों नई बातों के ज्ञाता हो जायँ और विदेशी ऐतिहासिकों की बतलाई हुई बहुत सी बातों को असत्य सिद्ध करदें? यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि ऐसे कामों के लिए इतने धन की आवश्यकता है जो हम गवर्नमेंट से प्राप्त होने की आशा नहीं कर सकते। ऐसी दशा में देश के धनियों के साहाय्य के सिवा दूसरा उपाय नहीं।

महाराज अलवर ने श्रीरामचन्द्र के समय के सिंहासन और राजमुकुट की आकृति तथा तत्सम्बन्धी अन्यान्य विषयों के निश्चय के लिए कलकत्ता, मदरास, पूना इत्यादि प्रधान प्रधान नगरों को एक अनुसन्धान-मण्डली भेजी है। इस प्रकार महाराज ने भारतीय राजन्यवर्ग के लिए अनुसन्धान का एक नया मार्ग बतलाया है सही, किन्तु मेरी समझ में अलवर-नरेश का अवलम्बित मार्ग सम्यक् फलदायक न होगा। जिन बातों की अवगति के लिए महाराज ने इस मण्डली को भेजा है उनको यदि कोई जानता है और अपनी उक्ति के समर्थन के लिए प्रमाण दे सकता है तो कोई बात ही नहीं। परन्तु ऐसी अवस्था में केवल संवादपत्रों में विज्ञापन तथा पुरस्कार-घोषणा द्वारा ही यह काम सिद्ध हो सकता था; लोगों के यहाँ वहाँ जाने से कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक लाभ होना सम्भव नहीं। यदि कोई विद्वान् ठीक ठीक कुछ भी न बता सका तो, उस दशा में, क्या करना होगा?

कलकत्ता, मदरास इत्यादि दो दिन के नये शहरों में की गई खोज से कुछ भी पता नहीं लग सकता। यदि कहीं पता लगने की सम्भावना है तो अयोध्या में अनुसन्धान होना चाहिए। ज़बानी प्रमाण हैं। पर यदि वे मिल भी जायँ तो विशेष लाभ नहीं। राज-मुकुट तथा सिंहासन आदि के विषय में ज्ञान-प्राप्ति होने के पहले रामचन्द्रजी की राजधानी अयोध्या का ठीक ठीक पता लगना चाहिए। फिर, सम्भव है, वहाँ के किसी ध्वंसावशेष, शिलालेख अथवा पत्थर के ऊपर की नक़्क़ाशी या चित्रकारी से हम किसी सिद्धान्त पर पहुँच सकें।

इस प्रकार के अनुसन्धानों के फलों को लिपि-बद्ध करना भी भाषा की उन्नति चाहने वालों का काम है। अपने घर की बातों का पता हमें आप लगाना चाहिए; फर्गुसन, पन्डरसन तथा वर्जेस इत्यादि की रिपोर्टों के ऊपर अवलम्बन करके चुप बैठना कदापि उचित नहीं।

छठा अभाव—हास्यरसात्मक लेख

(Humorous Writings) साहित्य-क्षेत्र में ऐसे लेखों की भी बड़ी भारी उपयोगिता समझी जाती है। मनुष्य एक ही प्रकार के रसास्वादन से तृप्ति-लाभ नहीं कर सकता। दर्शन, विज्ञान इत्यादि की आलोचना सर्वदा आनन्द-प्रद नहीं हो सकती। रुचि में छेद उत्पन्न हो जाने पर कभी कभी विश्राम तथा विनोद की आवश्यकता होती है। उस समय ऐसे लेखों का अभाव अनुभूत होता है। डिकेन्स के Picwick Papers, कूपर के John Gilpin, दीनबन्धु मित्र के "जामाइ वारिक" और "सधवार एकादशी", द्विजेन्द्रलाल राय के "हासिर् गान" का समादर आज भी हो रहा है और भविष्यत् में भी होगा। केवल लोगों को हँसाना ही इस प्रकार के लेखों का मुख्य उद्देश नहीं। हास्य-रस-रूपी आवरण के भीतर लोगों को शिक्षा देने तथा समाज-संस्कार करने का गम्भीर उद्देश छिपा रहता है। अश्लीलता अर्थात् भाँड़ों की अवलम्बित पद्धति का पक्षपाती मैं नहीं; मैं निर्दोष अपि च शिक्षाप्रद हास्यरस की अवतारणा चाहता हूँ।

सातवाँ अभाव—पुस्तकसूची (Bibliography)

इसका न होना ऐसा अभाव है जिसके कारण अन्धा आदमी और अन्धा बन जाता है। मान लीजिए कि हम किसी विषय के अनुशीलन अथवा आलोचना में प्रवृत्त हैं। अतएव हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि उस विषय से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाली और कौन कौन सी पुस्तकें लिखी गई हैं। वर्त्तमान दशा में हम नहीं बता सकते कि कृषि-विद्या या वनस्पतिविद्या अथवा गृहनिर्म्माण-शास्त्र की कौन कौन सी पुस्तकें विद्यमान हैं और उनके अन्तर्गत विषयों की सूची क्या है। और बातें जाने दीजिए, हममें से बहुत से मनुष्य ऐसे निकलेंगे जो हिन्दी के प्रधान प्रधान गद्य-ग्रन्थों के भी नाम न बता सकेंगे।

इस विषय की पुस्तकों की सबसे अधिक उपयोगिता पुस्तकालयों में लक्षित होती है। उनके बिना कभी किसी पुस्तकालय का काम ठिकाने से नहीं चल सकता। इसके सिवा भाषा की उन्नति अथवा अवनति, पुष्टि अथवा दैन्य इत्यादि की सच्ची अवस्था ज्ञात करने का मतलब भी इन पुस्तकों से अच्छी तरह हल हो सकता है। इनके न होने से हमें ठीक ठीक नहीं मालूम हो सकता कि हमारे यहाँ कौन कौन और कैसी कैसी पुस्तकें लिखी गईं, तथा कैसी कैसी पुस्तकें लिखी जानी चाहिए और कितने समय में हमने अपनी भाषा की कितनी उन्नति की। इसके लिए अभी समय है; पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

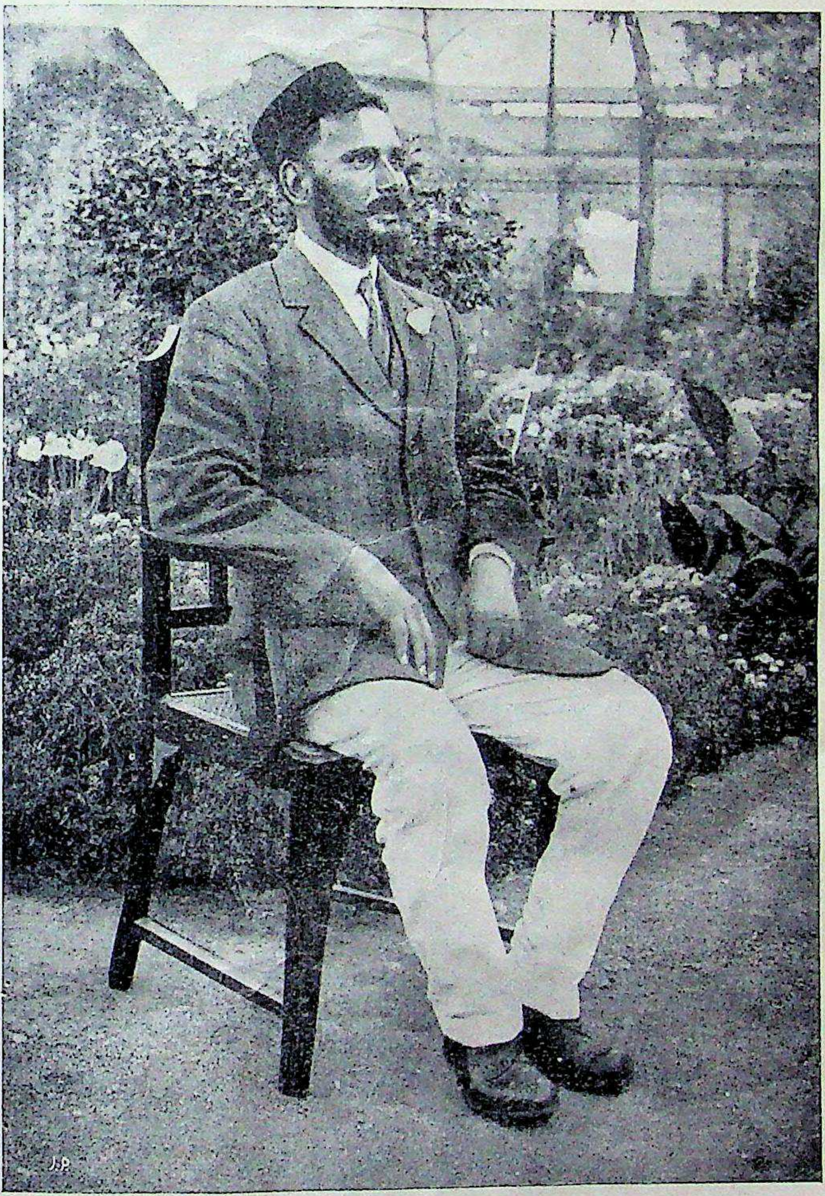

श्रीयुत पण्डित मुन्नालाल तिवारी, [साकची]

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें लिखी जायँ, फिर उनकी सूची बन जायगी। परन्तु कार्य्य का आरम्भ हो जाना अच्छा ही है।

आठवाँ अभाव—अनुवाद (Translations)

मैंने जितने अभावों की बात यहाँ पर लिखी है उन सब में अल्पायास से दूर होने वाला अभाव यही है। सब कोई इस बात से सहमत होंगे कि मौलिक ग्रन्थों की रचना से अनुवाद का काम किसी हद तक सहज है। जब तक हमसे और कुछ नहीं बन पड़ता तब तक हम इसी काम को क्यों न करें? अनुवाद के द्वारा हम कई तरह से लाभवान् हो सकते हैं। (१) ऐसे बहुत से विषय हैं जिन पर हिन्दी में एक भी पुस्तक नहीं लिखी गई। इसका फल यह हुआ है कि अँगरेज़ी, संस्कृत, फ्रेंच इत्यादि अन्य भाषाओं से अनभिज्ञ मनुष्य उन विषयों के ज्ञान से एकदम वञ्चित हैं। (२) पाश्चात्य अथवा एशिया-भूभाग के अन्यान्य प्रदेशों के साहित्य में क्या है क्या नहीं, इस बात का ज्ञान अनुवादों के द्वारा बहुत ही सुगमता के साथ जनता में फैलाया जा सकता है। (३) अनुवादों के द्वारा हम अन्यान्य देशों की नवीन चिन्ताओं तथा भावों से परिचित हो सकते हैं। (४) अनुवाद-ग्रन्थ देखने से हमें अपनी भाषा के दैन्य का ज्ञान होता है; अतएव हम उसकी उन्नति के लिए अधिकतर उद्योग कर सकते हैं। (५) भाषा में नये नये शब्दों की सृष्टि होने का एक अच्छा उपाय अनुवाद है। इस कारण अनुवाद से साहित्य के सिवा भाषा की भी पुष्टि हो सकती है।

अनुवाद के द्वारा भाषा की उन्नति करना कोई हीन कार्य्य नहीं। पृथिवी की सभी भाषाओं में अँगरेज़ी को ही लोग पुष्ट बतलाते हैं। अँगरेज़ी में भी लैटिन, ग्रीक, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, फ्रेंच, जर्म्मन इत्यादि भाषाओं के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हो चुका है और अब भी हो रहा है—यहाँ तक कि हिन्दी, उर्दू, बँगला की भी पुस्तकों का अनुवाद करना हीन काम नहीं समझा जा सकता। अनुवाद से भाषा की मर्य्यादा को हानि नहीं पहुँचती। साथ ही इसके यह भी कहना उचित होगा कि मौलिक ग्रन्थों की रचना भी होनी चाहिए; केवल अनुवादों से साहित्य नहीं पूर्ण हो सकता।

नवाँ अभाव—नाटक (Dramatic Plays)

इस विषय में मेरा जो वक्तव्य है उसे एक अलग प्रबन्ध में सविस्तर लिखूँगा।

दसवाँ अभाव—समालोचना (Criticisms)

इसकी प्रधान उपयोगिता यह है कि भाषा में कूड़ा कचरा इकट्ठा नहीं होने पाता। सभी कोई चाहते हैं कि भाषा का कलेवर वृद्धि-प्राप्त करे; परन्तु यह कोई नहीं चाहता कि रद्दी चीज़ों का ढेर लग जाय। सारशून्य निष्प्रयोजनीय पुस्तकों का होना अच्छा नहीं। उच्च कोटि के सारवान् ग्रन्थों की रचना की सृष्टि होनी चाहिए। सत्समालोचनाओं में गुण तथा दोष दोनों ही यथोचित रूप से दिखाये जाते हैं। यदि किसी ग्रन्थ की समालोचना ग्रन्थकार के अनुकूल तथा विस्तृत होती है तो हम उस समालोचना को भाष्य या टीका (Comentary) का नाम देते हैं। हमारे यहाँ समालोचना का काम केवल सम्पादक महाशयों के द्वारा ही प्रधान रूप से सम्पन्न होता है। परन्तु ऐसा न होना चाहिए, क्योंकि उनके पास समय तथा स्थान दोनों ही की कमी रहती है। केवल सम्पादक महाशयों के ऊपर इस काम का भारार्पण करके हमें निश्चिन्त हो जाना उचित नहीं। हमें चाहिए कि देश के योग्य व्यक्तियों की दृष्टि इस तरफ़ आकर्षित करें। पनडुब्बों के न होने से समुद्र से मुक्ता, प्रवाल आदि नहीं निकाले जा सकते; मणिकार के न होने से हीरे की दीप्ति नहीं प्रकट हो सकती; योग्य समालोचकों के न होने से भाषा का विकाश नहीं हो सकता। जर्म्मन समालोचक गेटे (Goethe) ने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेक्सपियर के नाटकों के सौन्दर्य्य की अपूर्व छटा को जन साधारण के सन्मुख उद्भासित किया; मैक्समूलर ने ही संस्कृत के गुप्त रत्नों का भाण्डार-द्वार युरोपीय विद्वन्मण्डली के सन्मुख खोल दिया।

एक बात की तरफ़ समालोचकों की दृष्टि विशेष सावधानता के साथ आकृष्ट होनी चाहिए। अत्यन्त तीव्र समालोचना के द्वारा पाण्डित्य-प्रचार करना यथार्थ समालोचना नहीं है, क्योंकि इससे जातीय उन्नति के पथ में बाधायें उपस्थित होती हैं। वङ्ग-देश के सुप्रसिद्ध औपन्यासिक तथा मनीषी श्रीयुक्त बङ्किमचन्द्र चैटरजी "वङ्ग-दर्शन" के सम्पादक थे। उनका कहना है—"मुझे इस बात का खेद है कि वङ्गदेश के बहुत से नवीन लेखकों की लेखनी मेरी तीव्र समालोचना के कारण एक दम रुक गई।" समालोचकों को सर्वदा सतर्क रहना चाहिए। उन्हें देखते रहना चाहिए कि उनकी आलोचनाओं से प्रतिभा और उद्योग का अङ्कुर ही विनष्ट न हो जाय। उन्हें तो उत्साह-वारि के सिञ्चन से इन वस्तुओं को वर्द्धित करना चाहिए।

ग्यारहवाँ अभाव—भ्रमण-वृत्तान्त तथा काम की बातें बतानेवाली पुस्तकें (Travels and Books of Useful Information)—

ऐसी पुस्तकों द्वारा जनता में साधारण ज्ञान की वृद्धि होती है। अँगरेज़ी तथा अन्यान्य भाषाओं में भी बहुत सी पुस्तकें ऐसी हैं जिनमें देश-भ्रमण करने वाले पर्य्यटकों ने देश, नगर, नदी, पर्वत, जलप्रपात, अरण्य, उपवन इत्यादि के ऐसे ऐसे नये तथा अद्भुत विवरणों को लिपिबद्ध किया है जिनसे उनको भी लाभ पहुँच सकता है जिन्होंने उन्हें नहीं देखा। भिन्न भिन्न देशों की रीति-नीति, आचार-व्यवहार आदि का विवरण भी हम घर बैठे जान सकते हैं। जापान, अमरीका इत्यादि से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी दो चार पुस्तकें यहाँ लिखी भी गई हैं, परन्तु अभी और सौ पचास की आवश्यकता है

"काम की बातें बताने वाली पुस्तकें" हिन्दी में नाम लेने के लिए भी शायद ही होंगी। इस विभाग के अन्तर्गत ऐसे ग्रन्थों को हम रख सकते हैं जिनसे निम्नलिखित विषयों का ज्ञान हो—(१) भिन्न भिन्न प्रकार की चीज़ों को सहज ही में घर पर बना लेने की तरकीबें। (२) किस देश में कौन वस्तु अधिकता से तथा सस्ती मिलती है। (३) किस शहर में कितने और कौन कौन से स्कूल, कालेज, होटल, पुस्तकालय, अजायबघर, क्लब, औषधालय, धर्म्म-मन्दिर, समाज-मन्दिर, क्रीड़ाकौतुक-भवन, बड़ी बड़ी दुकानें, संवादपत्र इत्यादि हैं। (४) खेल-तमाशे—जैसे, फुटबाल, क्रिकेट, कबड्डी, ताश, शतरञ्ज, बायस्कोप इत्यादि का वर्णन; व्यायाम—जैसे, कुश्ती लड़ना, वज़नी चीज़ें उठाना, घूँसे-बाज़ी, तैरना, घोड़े की सवारी, सरकस, जिमनास्टिक इत्यादि का विवरण; कौशल—जैसे जञ्ज़ीर तोड़ना, मोटर रोकना, लकड़ी-तलवार-धनुर्बाण इत्यादि चलाना, मैजिक दिखाना इत्यादि; शिल्प और कला—जैसे चित्रकारी, पत्थर का काम, सङ्गीत, बढ़ई का काम, धातुओं का काम इत्यादि। इन सभी विषयों पर पुस्तकों की आवश्यकता है।

बारहवाँ अभाव—व्याख्यान-ग्रन्थ

(Speeches)—इस विषय में केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि अन्यान्य देशों के प्रसिद्ध वक्ताओं की वक्तृतायें पुस्तकाकार छाप कर रक्खी जाती हैं, पर हमारे यहाँ के हिन्दी-व्याख्यान सब के सब हवा हो जाते हैं। अच्छे वक्ता प्रायः वही हैं जो देश के नेताओं में गिने जाते हैं। इन्हीं के व्याख्यान से, अथवा इन्हीं की लिखी हुई पुस्तकों से, हम तात्कालिक जातीय विचार तथा चिन्ताप्रणाली से परिचित हो सकते हैं। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ने यदि अनावश्यक ग्रन्थ-रचना की, अथवा ग्रन्थ-रचना में अशक्त होने के कारण केवल व्याख्यानों ही के द्वारा देश की सेवा की, तो यह निश्चय है कि चाहे वह कितना ही विद्वान् मेधावी तथा विचारशील क्यों न हो, उस के विचार, युक्ति, तर्क, अनुभव, सिद्धान्त सब के सब उस के साथ ही लोप हो जाते हैं। यदि वह अँगरेज़ी का ज्ञाता हुआ हो तो अलबत्ते सम्भव है कि उसकी मृत्यु के पीछे भी हम उसकी वक्तृता-शक्ति तथा उसके विचारों आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकें, परन्तु हिन्दी-व्याख्यानों के डूब जाने के लिए विस्मृति का विशाल समुद्र सदाही लहराया करता है। हिन्दी में संक्षिप्त लेखन-प्रणाली (Short-hand) का निर्म्माण तो, सुनते हैं, हो गया है; पर उससे कोई लाभ नहीं उठाता। इस दुर्दशा का यही कारण है। दृष्टान्त के लिए हम बनारस-हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना से सम्बन्ध रखने वाले उन व्याख्यानों का उल्लेख कर सकते हैं जो श्रीमान् मदनमोहन मालवीय तथा अन्यान्य देश-भक्तों के द्वारा हिन्दी में दिये गये थे। उन सब का सम्पूर्ण संग्रह पुस्तकाकार निकलना उचित न था क्या? दस, बीस अथवा सौ, दो सौ वर्ष बाद यदि हम उन बातों की खोज करें जिन के कारण उक्त विश्वविद्यालय की स्थापना उचित समझी गई थी, और जिन के लिए इतने यत्न और परिश्रम से रुपये इकट्ठे किये गये थे, तथा सरकार और प्रजा के बीच तर्क-वितर्क के पश्चात् जिसकी स्थापना निश्चित हुई तो हमें इन बातों का कुछ भी पता न लगेगा। अभी तो जागृति तथा पुनरुत्थान का प्रारम्भ ही है। इसके पश्चात् बहुत सी ऐसी बातें तथा घटनायें उपस्थित होंगी जिन को लिपिबद्ध करना अत्यन्त ही अनिवार्य समझा जायगा और जातीय सम्मान-रक्षा के लिए यह बात अत्यन्त आवश्यक भी होगी। अतएव इस के लिए हमें अभी से, बिना वृथा कालक्षेप के, प्रस्तुत हो जाना चाहिए।

तेरहवाँ अभाव—कोष (Books of Reference) कोष से मेरा उद्देश अभिधान (Dictionaries) नहीं है; मुख्यतः मेरी दृष्टि उन पुस्तकों की तरफ़ है जिन्हें हम सहायक पुस्तकें अथवा हवाले की किताबें (Books of Refernce) कहते हैं। इनमें शब्दों के अर्थ रहें चाहे न रहें, विषयों का संक्षिप्त अथवा विस्तृत वर्णन अवश्य रहना चाहिए; जैसे अङ्गरेज़ी में "एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका", बँगला में "विश्वकोष" इत्यादि। हिन्दी में ऐसी पुस्तकें हैं ही नहीं और इनका न होना एक बहुत बड़ा अभाव है। जातीय शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं की दृष्टि इस तरफ़ अवश्य आकर्षित होनी चाहिए। अँगरेज़ी "एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका" के ढँग पर हमारे यहाँ हिन्दी में एक "भारतीय कोष" की रचना कोई असम्भव बात नहीं। चाहिए केवल उत्साह तथा प्रबन्धकारिणी शक्ति। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में उपयुक्त विद्वानों का अभाव नहीं है। यदि एक ऐसी कमिटी बने जो उन विद्वानों की एक तालिका बना कर उनसे भिन्न भिन्न विषयों पर प्रबन्ध लिखने की प्रार्थना करे तो इसका सूत्रपात हो सकता है। लेखों की भाषा लेखक की रुचि तथा सुभीते के अनुसार हो। पीछे से उनका हिन्दी में अनुवाद हो जाना कोई बड़ी बात नहीं।

इन अभावों के अतिरिक्त और भी बहुत से अभाव हिन्दी में वर्त्तमान हैं। मैंने उनमें से मुख्य मुख्य अभावों ही को दिखलाया है। आशा है देशवासी इस तरफ़ ध्यान देंगे।

सुरेन्द्रनाथसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रौढ़ प्रेम।

यद्यपि हम हैं दूर क्रूर भी यद्यपि हम हैं; किन्तु आप में प्रेम हमारा तनिक न कम है।
सभी भाँति सर्वदा आपके कहलाते हैं; किये आपका ध्यान चित्त को बहलाते हैं।
हम कभी किसी विध आपको पल भर भूलेंगे नहीं।
मानस में मानस लीन है, हंस रहे चाहे कहीं ॥१॥

मुझको बन्धन मिले आपके लिए भले ही; दे देते हैं प्राण प्रेम-पालन में देही।
अपना अपने आप आप को मैंने माना; सुख सपने सम बिना आपके मैंने जाना।
जो कुछ हो पर मैं आपको छोड़ कहीं रहता नहीं।
क्या मधुप कमल की गोद में वध, बन्धन सहता नहीं? ॥२॥

मारा मारा फिरूँ कहाँ तुमसे विहीन हो, होकर चिन्ता-लीन, क्षीण हो, दुखी, दीन हो।
हा! ये मेरे प्राण त्राण पावेंगे कैसे? मेरे दृग के अजिर आप आवेंगे कैसे?
मैं तो आश्रित हूँ प्रेम का, पर प्रेमाश्रय आप हैं।
मैं जलाधीन सा मीन हूँ, पर सलिलाशय आप हैं ॥३॥

अभी मिलें, या कभी मिलें, पर आप मिलेंगे; मम उर-सर में कमल अभी या कभी खिलेंगे।
यदपि आपके बिना दुःख प्रतिपल पाऊँगा; पर निज तप का सुफल अचानक ही पाऊँगा।
यदि अमित दिनों के बाद भी मेघ-ओघ उमड़े कहीं।
तो उसे देख सुख से शिखी नाँच उठेंगे क्या नहीं? ॥४॥

दयाधाम हो निठुर आज चाहे बन जाओ; तिरस्कार के सहित मुझे तुम मार मिटाओ।
तो भी तुममें प्रेम कभी क्या घट सकता है? तुम्हें छोड़ मन कहीं भला क्या बँट सकता है?
घन चाहे जल या उपल की वृष्टि सृष्टि-घातक करे।
पर प्रेम-नेम से विमुख हो चातक क्यों पातक करे? ॥५॥

अपने कर से आप जलाते रहिए हमको; चाहे दुर्बल दुष्कुलीन भी कहिए हमको।
किन्तु आपको सदा समझते हम लायक़ हैं; और हमारे लिए आप ही सुखदायक हैं।
प्रिय किसी भांति के आप हों किन्तु हमारे प्राण हैं।
क्या बिना सूर्य्य के भी कहीं सरसिज पाते त्राण हैं? ॥६॥

दोषाकर हों आप, आप चाहे गुणवाले; ऊपर के हों स्वच्छ, हृदय के होवें काले।
जैसे ही हों आप हमें कुछ ज्ञान नहीं है; तदपि आपको छोड़ अन्य का ध्यान नहीं है।
हम नहीं जानते किस लिए आप हमें सुख-धाम हैं।
कैसे ही हो, पर कुमुद को एक शशी से काम है ॥७॥

मिलें न जब तक आप क्यों न चुपचाप रहें हम? तब तक कैसे नहीं विरह के ताप सहें हम?
काटेंगे हम काल किसी विध, छिपे रहेंगे; अपने दुख की बात किसी से नहीं कहेंगे।
जग में न हमें कुछ रम्य है न है सौख्यदाता कहीं।
जब तक वसन्त आता नहीं तब तक पिक गाता नहीं ॥८॥

यथा नीर में क्षीर, क्षीर में दधि है जैसे, घृत है दधि में यथा, आप मुझ में हैं वैसे।
यथा धरा में गन्ध, व्योम में नाद भरा है, तथा आप में मेरा प्रेमास्वाद भरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर तो भी मैं हूँ आपका कभी न मेरे आप हैं।
ज्यों ऊर्मि उदधि का है सही उदधि न ऊर्मि-कलाप है ॥९॥
हम मानेंगे तुम्हें, हमें माने मत मानो ; हम वारेंगे प्राण तुम्हीं पर सचमुच जानो।
हमें जला कर राख करो, तुमसे न जलेंगे, तुम्हें मान निज शरण चरण से नहीं टलेंगे।
मम नेत्र-ओट होना नहीं हट कर कभी समीप से।
तुम हमें शलभ करना नहीं होकर निर्दय दीप से ॥१०॥
उच्चासन पर आप बड़े होकर बैठे हैं ; क्षुद्र जन्तु हम तदपि गर्व से अति ऐंठे हैं।
उपकारी हैं आप, निरर्थक हम हैं जग में ; सदा सुखी हैं आप, दुखी हम हैं पग पग में।
यदि बड़े बड़ों का सामना करते हैं करते रहें।
पर विधु-छादक-घन-छाँह में जुगनू क्यों डरते रहें ! ॥११॥
अति उदार हो आप कृती, हम कृपण बड़े हैं ; हो स्वतन्त्र तुम सदा हमी परतन्त्र पड़े हैं।
गुण-ग्राहक हैं आप, दुर्गुणों के गाहक हम ; आप हमारे हृदय हृदय के हैं वाहक हम।
हैं पवन आप हम गन्ध हैं जो चाहे सो कीजिए।
मन चाहे रखिए साथ में फेंक या कहीं दीजिए ॥१२॥
चाहें हमको जला गला भी कोई डाले ; सुधा-वृष्टि से या कोई चाहे प्रतिपाले।
वज्र-पात या करे हमारे ऊपर कोई, या रहने दे नहीं हमें इस भू पर कोई।
परिभव भव में चाहे सहें तुम्हें कभी मिल जायँगे।
क्या शरत्काल पाकर नहीं सप्तपर्ण खिल जायँगे ? ॥१३॥
कभी सुधा सी गिरा निकालोगे सित मुख से ? कभी हमारे कान सुनेंगे उसको सुख से ?
खुश हो उसके लिए निछावर हम होवेंगे ; धन्य सदा के लिए दुःख को हम खोवेंगे।
चाहे धोखा दो, आपका किन्तु हमें विश्वास है।
अतिमग्न विपञ्ची-नाद में मृग को तनिक न त्रास है ॥१४॥
तुम भूलो यदि मुझे पर तुम्हें मैं क्यों भूलूँ ? मुझ से फूले रहो तुम्हीं, मैं किससे फूलूँ ?
मेरे सिर उपकार आपका लदा हुआ है ; ठोकर खाना मुझे विश्व में बदा हुआ है।
मैं बिछुड़ा हूँ फिर जब मिलूँ हाल कहूँगा तब सभी।
शुक-शिशु सेमर से स्वप्न में उऋण न होने का कभी ॥१५॥

रामचरित उपाध्याय

श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस की पुस्तकें।

(३)

धर्मशास्त्र।

१—निर्णय-सिन्धु—इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ९०० के लगभग और मूल्य ६ रुपये है। सुन्दर सुवर्ण-वर्णा-ङ्कित जिल्द बँधी हुई है। छपाई और काग़ज़ उत्तम है। मूल मोटे टाइप में और हिन्दी-टीका छोटे टाइप में है। धार्म्मिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली बातें श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों में जगह जगह भरी हुई हैं। अतएव किसी विषय के निर्णय के लिए अनेक ग्रन्थों के अवलोकन की आवश्यकता होती है। सब ग्रन्थ सब कहीं मिलते नहीं। मिलें भी तो उनके वचनों की सङ्गति लगाना सहज नहीं। यही देख कर कमलाकर भट्ट नामक एक विद्वान् ने, विक्रम-संवत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६६८ में, इस ग्रन्थ की रचना की । तबसे धार्म्मिक बातों की व्यवस्था जानने में पण्डितों को बहुत सुभीता हो गया । प्रस्तुत पुस्तक से उस सुभीते की व्याप्ति और भी बढ़ गई है । क्योंकि इसमें मूल के नीचे हिन्दी-टीका भी है । यह टीका विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र की लिखी हुई है। मूल में प्रमाण के लिए जिन वचनों का उल्लेख है उन्हें मिश्र जी ने पादटीकाओं में लिख कर पुस्तक की उपयोगिता और भी अधिक कर दी है । आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची है ।

ज्योतिष-शास्त्र ।

१—बृहत्पाराशर-होराशास्त्र—यह भी बड़े आकार की जिल्ददार पुस्तक है । इसमें ८०० के लगभग पृष्ठ हैं । मोटे चिकने काग़ज़ पर छपी है । मूल्य ५ रुपये है । ज्योतिष-शास्त्र पर सूर्य, पितामह, व्यास, वशिष्ठ, अत्रि आदि १८ ऋषियों ने ग्रन्थ-रचना की है । पर उनके ग्रन्थ इस समय दुष्प्राप्य क्या प्रायः अप्राप्य हैं । उन्हीं में पराशर-कृत होराशास्त्र भी है । इस शास्त्र में १०० अध्याय थे—८० पूर्वार्द्ध में, २० उत्तरार्द्ध में । पर यह समग्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं । जयपुर के ज्योतिर्विद् पण्डित श्रीधरजी ने कई साल के परिश्रम से अनेक पुस्तकें एकत्र कीं । पर इस ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध के केवल ५१ ही अध्याय उन्हें मिले । हाँ, उत्तरार्द्ध के पूरे बीसों अध्याय मिल गये । अतएव पूर्वार्द्ध का सारांश मात्र देकर उत्तरार्द्ध की टीका भी उन्होंने, सामन्तवाड़ी के निवासी श्रीकृष्ण शास्त्री की सहायता से, संस्कृत और हिन्दी में लिख दी । यह वही पुस्तक है । फलित-ज्योतिष का शायद ही कोई विषय इसमें न हो । सम्पादक और टीकाकार महाशय ने स्थान स्थान पर इसमें चक्र आदि भी दिये हैं, जिनकी संख्या सैकड़ों होगी । विद्वान् ज्योतिषी इस ग्रन्थ पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं । ऋषि-प्रणीत होने के कारण, श्रद्धा का पात्र यह है भी ।

कर्म्म-काण्ड ।

१—व्रतराज—यह खुले पत्रों में है । पृष्ठ-संख्या ४२४ × २ = ८४८ है । मोटे टाइप में छपी है । मूल्य ३) है । गोपाल के पुत्र दैवज्ञ-शर्म्मा सङ्गमेश्वर नाम के एक चित्तपावन (दक्षिणी) ब्राह्मण काशी में रहते थे । अनेक ग्रन्थों का परिशीलन करके उन्हीं के आधार पर, उन्होंने, विक्रम-संवत् १७१३ में, इस ग्रन्थ की रचना की थी । उसीका सम्पादन अप्पाशास्त्री खाडिलकर और कृष्णशास्त्री महाबल ने किया । सम्पादन करने में उन्होंने हेमाद्रि आदि के ग्रन्थों से मिलान करके इसका संशोधन भी किया और यत्र तत्र टिप्पणियां भी लगाईं । इस प्रकार संशोधन हो जाने पर श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेस ने इसे प्रकाशित किया । इसमें सारे व्रतों, उद्यापनों और कथाओं का संग्रह, निर्णय और पूजन-प्रकार आदि है । कर्म्मकाण्डी पण्डितों के लिए यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है ।

२—गोविन्दार्चनचन्द्रिका— इसके भी पत्रे खुले हुए हैं । उनकी संख्या ४७० × २ = ९४० है । मोटे टाइप में छपी है । टीका नहीं है । मूल्य ५ रुपये है । सीकर के गोविन्द-मन्दिर के पुजारी श्रीयुत वैष्णवदासजी ने नाना ग्रन्थों के आधार पर इसका सम्पादन किया है । यह संग्रह-ग्रन्थ है और वैष्णवों के लिए है । इसमें १६ उल्लास हैं । उनमें दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या, व्रतोत्सवादिनिर्णय, शुद्धि और भक्ष्या-भक्ष्य-निर्णय, वास्तुविद्या और वास्तुशान्ति, प्रतिष्ठाकर्म्म, गर्भाधानादि संस्कार, अशौच-निर्णय, संक्रान्ति और मलमास आदि का निर्णय है । इससे सिद्ध है कि वैष्णव-गृहस्थों के काम की सभी बातें इसमें हैं । इस अकेली ही पुस्तक से कर्म्मकाण्ड-सम्बन्धी सभी विषयों का ज्ञान हो सकता है । अतएव कर्मठ और संस्कृतज्ञ वैष्णवों को इसे अपने संग्रह में रखना चाहिए ।

३—ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड—आकार बड़ा, जिल्ददार, पृष्ठ-संख्या ६१६, सटीक, मूल्य ४ रुपये । टाइप, पूर्व-निर्दिष्ट पुस्तकों के सदृश है । औरङ्गाबाद-निवासी औदीच्य पण्डित हरिकृष्ण शास्त्री ने चतुर्लक्षश्लोकात्मक बृहज्ज्योतिषार्णव नामक एक ग्रन्थ बनाया है । वह कई स्कन्धों में विभक्त है । उसी के छठे स्कन्ध का यह सोलहवां अध्याय है । इसमें ८४ ब्राह्मणों की उत्पत्ति, गोत्र, प्रवर, शाखा इत्यादि का वर्णन है । पञ्चगौड़ और पञ्चद्राविड़ों के सिवा और भी कितने ही ब्राह्मणों का हाल, बड़ी खोज से, इसमें लिखा गया है । भाटिया, अग्रवाल आदि कुछ ब्राह्मणेतर-जातियों का भी वर्णन है । पुस्तकान्त में जैनाचार्य्य और शङ्कराचार्य्य के प्रादुर्भाव का वर्णन है । सारी पुस्तक संस्कृत-पद्य में है । पद्यों का भावार्थ पुराने ढंग की पण्डिताऊ हिन्दी में लिखा गया है । यह सुभीते की बात हुई है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्त्रशास्त्र।

१—मन्त्रमहोदधि—यह खुले हुए २४० पत्रों का ग्रन्थ है। ऐसे ग्रन्थों में पृष्ठ के एक ही तरफ़ पृष्ठाङ्क दिये जाते हैं। अतएव इसे कोई ५०० पृष्ठों का ग्रन्थ समझिए। अच्छे पुष्ट काग़ज़ पर मोटे टाइप में छपा है। मूल्य ३ रुपये है। तीन सौ वर्ष पूर्व दक्षिण-देशवासी महीधर नाम के एक विद्वान् थे। वे अपना देश छोड़ कर काशी में आ रहे थे। वहीं उन्होंने नाना तन्त्र ग्रन्थों का मन्थन करके इस ग्रन्थ की रचना की। साथ ही नौका नामक टीका भी उन्होंने स्वयं ही इसकी बनाई। ग्रन्थ की समाप्ति विक्रम-संवत् १६४५ में हुई। उसी का यह सुन्दर संस्करण है। यह बड़ी प्रसिद्ध पुस्तक है। तान्त्रिकों में इसका बड़ा आदर है। इसमें काली, तारा, छिन्नमस्ता, धूमावती आदि महाविद्याओं के; गणेश, हनूमान्, विष्णु, मृत्युञ्जय आदि देवताओं के; यक्षिणी, वाराही, कर्णपिशाचिनी, स्वप्नेश्वरी, कालरात्रि आदि शक्तियों के मन्त्र, यन्त्र, पूजाप्रकार, शान्त्यादि षट्कर्म्म तथा और भी अनेक विषयों का वर्णन है। आरम्भ में लगभग एक सौ यन्त्र हैं। जिन लोगों की रुचि तन्त्रशास्त्र में है उन्हें इसे अवश्य अपने संग्रह में रखना चाहिए।

२—मन्त्रमहार्णव—यह भी खुले पत्रों का ग्रन्थ है। पत्रे खूब लम्बे चौड़े हैं। पत्र-संख्या ६०० है। अतएव यह कोई १८०० सफ़े का बृहद् ग्रन्थ है। मोटे और साफ़ टाइप में, पुष्ट काग़ज़ पर, छपा है। मूल्य १० रुपये है। इसके संग्रहकर्त्ता माधवराय नामक कोई मन्त्रशास्त्री हैं। संग्रह प्रयाग में किया गया है। संग्रहकार ने न तो अपना ही विशेष परिचय दिया है और न ग्रन्थ-समाप्ति-सूचक समय ही लिखा है। इसे देख कर माधव महाशय के परिश्रम और खोज पर आश्चर्य्य होता है। यन्त्र-मन्त्र-विषयक ग्रन्थों को लोग बेहद छिपाते हैं। इस प्रकार के ग्रन्थ बहुत हैं भी नहीं। पहले शायद बहुत रहे हों। पर अब वह बात नहीं। अब तो लोगों का विश्वास इनके ऊपर से उठता जा रहा है। तथापि देहात के पण्डित इनका आदर अब भी पूर्ववत् ही करते हैं। सैकड़ों, हज़ारों पूजा-पाठ करने वाले पण्डितों की जीविका इनकी कृपा से चलती है। माधव-महाशय ने ऐसे अनेकानेक दुर्लभ ग्रन्थों की छान बीन करके इस ग्रन्थ की सृष्टि की है। इसे उन्होंने तीन खण्डों में बाँटा है। एक में पुरुष-देवताओं की मन्त्र-विधि है, दूसरे में स्त्री-देवताओं की और तीसरे में यक्षिणी, कर्णपिशाचिनी आदि की। एक एक तरङ्ग में एक एक देवता के अनुष्ठान का वर्णन है। जिस देवता के मन्त्र-यन्त्र आदि की विधि आप देखना चाहें, सब एक ही जगह मिल जायगी। देवताओं के मन्त्र आदि के सिवा इसमें और भी सैकड़ों अजीब अजीब बातें हैं। वशीकरण, मारण, मोहन, उच्चाटन, मुख-स्तम्भन आदि की क्रियायें भी इसमें हैं। यक्षिणी, रक्षिणी, डाकिनी, कपालिनी आदि के साधन की विधि भी है। अदृश्य-विद्या, गड़ा हुआ धन ढूँढ़ निकालने की विद्या, साँप-बिच्छू-भूत-प्रेत आदि के कारण उत्पन्न हुई पीड़ा दूर करने के मन्त्र भी इसमें हैं। और भी सैकड़ों प्रकार के प्रयोग इसमें भरे हुए हैं। यहाँ तक कि इन्द्रजाल-सम्बन्धिनी बातें भी हैं। और सारा ग्रन्थ तो संस्कृत में है, पर इन्द्रजाल-विषयक तेरहवें तरङ्ग में हिन्दी-गद्य-पद्य का भी प्रयोग किया गया है। संग्रहकर्त्ता को वह वैसा ही प्राप्त हुआ है। इस पिछले तरङ्ग में पैसे का रुपया बनाने, चित्रगत मूर्त्ति को हँसाने, बिना खूँटी की खड़ाऊँ पर चलने, नारियल के भीतर से बादाम निकालने, तेल को घी बना देने—इसी तरह की और भी न मालूम कितनी ऐन्द्रजालिक युक्तियों का उल्लेख है। नहीं कह सकते, इनमें सम्भवनीयता का अंश कितना है। इसका निश्चय परीक्षा करने ही से मालूम हो सकता है। यथास्थान इसमें यन्त्र भी दिये गये हैं। अस्तु। इस इतने परिचय से ही पाठकों को मालूम हो जायगा कि यन्त्र-मन्त्र-विद्या का कितना बड़ा संग्रह इस ग्रन्थ में सञ्चित है। यदि और किसी दृष्टि से नहीं तो इस विद्या को अपने पूर्वजों की छोड़ी हुई निधि समझ कर ही ऐसे ग्रन्थों को हमें अपने संग्रह में रखना चाहिए।

इतिहास।

१—राजस्थान-इतिहास—इसके परिचय की आवश्यकता नहीं। शिक्षित जनों में इसे कौन नहीं जानता? यह टाड साहब के—"राजस्थान"—का हिन्दी-अनुवाद है। यह मोटी मोटी दो जिल्दों में है। पहले भाग की पृष्ठ-संख्या ५८+११४४+८० है और दूसरे की ११६८। मूल्य प्रत्येक का १० रुपये है। दोनों जिल्दों पर बड़ी सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिल्द है। पहले भाग का पूरा अनुवाद पण्डित बलदेव-प्रसाद मिश्र का किया हुआ है। संशोधन उसका विद्या-वारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र ने किया है। दूसरा भाग समाप्त न होने पाया था कि पण्डित बलदेवप्रसाद परलोक-गामी हो गये। इस कारण उनके लिखे हुए उतने अंश का संशोधन भी विद्यावारिधिजी ने किया और अवशिष्ट अनुवाद की पूर्ति भी उन्हींने की। दूसरे भाग की ऐतिहासिक त्रुटियों के दूरीकरण में जोधपुर के मुंशी देवीप्रसाद ने सहायता की और जगह जगह पर टिप्पणियाँ देकर पुस्तक के महत्त्व को बढ़ा दिया।

पण्डित बलदेवप्रसाद ने इस ग्रन्थ का अनुवाद टाड साहब के मूल ग्रन्थ ही को देख कर नहीं किया। उसके बँगला, गुजराती और मराठी-अनुवाद का भी अवलोकन करके किया है। जहाँ उन्हें कोई बात मूल में असङ्गत देख पड़ी वहाँ परिवर्तन भी कर दिया है। इस प्रकार के परिवर्तन के सिवा अपनी ओर से भी कुछ बातें उन्होंने लिखी हैं। वे चार अध्यायों में हैं। मूल में राजपूतों के पर्वोत्सव और आत्म-शासन-प्रणाली पर जो अध्याय पहले थे उन्हें अनुवादक महाशय ने पहले भाग में पीछे लिखे हैं। फिर—पहले भाग के अन्त में—हिन्दुओं का पुरातन इतिहास, परिशिष्ट के रूप में, छः अध्यायों में लिखा है। टाड-साहब के भ्रमण-वृत्तान्त को ग्रन्थारम्भ में न रख कर दूसरे भाग के अन्त में कर दिया है। इन परिवर्तनों के कारण अनुवाद का महत्त्व बढ़ गया है। टाड साहब ने जो नक़शे, चित्र और वंशावलियाँ दी थीं वे भी इसमें हैं। सारांश यह कि पुस्तक को सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने में कोई कसर नहीं की गई। अनुवाद की भाषा भी अच्छी है।

प्राचीन-इतिहास लिखने में बड़े बड़े इतिहासवेत्ताओं से भूलें हो जाती हैं। इसका कारण असावधानता कम, विश्वसनीय सामग्री की अप्राप्ति या अल्प-प्राप्ति ही अधिक समझना चाहिए। इस दशा में, टाड साहब के समय से लेकर अब तक जिन नये नये ऐतिहासिक तत्त्वों का पता लगा है वे सभी यदि इस अनुवाद में समाविष्ट न हुए हों तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। बड़ी बात तो यह है कि इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित तो हो गया। इसके पाठ से हम लोगों में आत्माभिमान की वृद्धि नहीं तो थोड़ी-बहुत उत्पत्ति अवश्य ही हो सकती है। भारत की प्राचीन शासन-प्रणाली, वीरता, देश-प्रीति, शरणागतरक्षा, नीति-निपुणता आदि सैकड़ों बातों का ज्ञान इससे हो सकता है। इस ग्रन्थरूप-रत्न से लाभ उठाना, अब तक केवल हिन्दी जानने वालों के लिए असम्भव था। वह अब, इस अनुवाद की कृपा से, सम्भव और सुलभ हो गया। एतदर्थ हिन्दी-भाषा के प्रेमियों और स्वदेश-भक्तों को अनुवादक और प्रकाशक दोनों का कृतज्ञ होना चाहिए।

फुटकर विषय।

१—शुक्रनीति—आकार मँझोला, जिल्द बँधी हुई, पृष्ठ-संख्या ४ + ३२ + २१५, मूल्य १¾ रुपये। शुक्राचार्य्य नीति के बहुत बड़े वेत्ता थे। उनके इस ग्रन्थ के कई अँगरेज़ी-अनुवाद टीका-टिप्पणियों के सहित प्रकाशित हो चुके हैं। इसके आधार पर अँगरेज़ी के विद्वान् बहुधा लेख लिख लिख कर प्रकाशित करते हैं और उनमें शुक्राचार्य्य के समय के राज्य-शासन, राज-नीति और आचार-व्यवहार की बातों का निर्देश करते हैं। इस पुस्तक में नीति की सामान्य बातों के सिवा युवराजों की शिक्षा, युद्ध के नियम, सेना-सञ्चालन, शत्रुभेद, साम-दानादि उपायों की योजना, चरों और मन्त्रियों की नियुक्ति, दण्ड-विधान आदि सैकड़ों विषयों का वर्णन है। यहाँ तक कि हाथियों, घोड़ों, रथों और शस्त्रास्त्रों तक पर बहुत कुछ लिखा गया है। इस पुस्तक से भारत की प्राचीन राज्य-प्रणाली का चित्र सा आँखों के सामने आ जाता है। बड़े महत्त्व की पुस्तक है। मूल-संस्कृत के नीचे पण्डित मिहिरचन्द्रकृत हिन्दी-टीका भी है।

२—भुवनेशलौकिकन्यायसाहस्री—आकार मँझोला; जिल्द बँधी हुई, पृष्ठ-संख्या २० + ३२०, मूल्य २ रुपये। इस पुस्तक में एक हज़ार लौकिक न्यायों का संग्रह है। लोक-प्रसिद्ध उक्ति का नाम न्याय है। यहाँ मतलब लोकोक्ति से है। संस्कृत में स्थाली-पुलाक-न्याय, शश-विषाण-न्याय, देहलीदीप-न्याय के सदृश सैकड़ों, हज़ारों, लोकोक्तियाँ हैं। वे प्रसिद्ध प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थों में पद पद पर आती हैं। पर प्रसिद्ध लोकोक्तियों को छोड़ कर औरों का आशय सब की समझ में नहीं आता। इसी कठिनता को हल करने के लिए मुलतान-निवासी पण्डित ठाकुरदत्त शर्म्मा ने इस पुस्तक का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादन किया है। अकाल ही में परलोकवासी हुए अपने जेठे लड़के भुवनेशदत्त के नाम पर उन्होंने इसका नामकरण किया है। व्याकरण, वेदान्त, न्याय, मीमांसा, काव्य, इतिहास, पुराण आदि से इन लोकोक्तियों का संग्रह हुआ है। प्रत्येक न्याय के नीचे संस्कृत ही में टीका भी लिखी है और उस न्याय के प्रयोग के उदाहरण भी दिये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस न्यायावली का संग्रह बड़े परिश्रम से किया गया है। ऐसी पुस्तक की आवश्यकता भी बहुत थी।

३—अष्टादशपुराण-दर्पण—आकार मँझोला, जिल्द बँधी हुई, पृष्ठ-संख्या ४२०, टाइप बड़ा, काग़ज़ मोटा, मूल्य २ रुपये। इसकी रचना मुरादाबाद-निवासी पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र की की हुई है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। इसका "दर्पण" नाम सार्थक है। आरम्भ में पुराणों के विषय में एक विस्तृत लेख है। उसमें पुराणों की उत्पत्ति, उनकी प्राचीनता, उनकी संख्या, उनमें वर्णन की गई उपासना, उनका मुख्य उद्देश और उनके विषय में किये गये आक्षेपों का उत्तर है। इसके आगे प्रत्येक पुराण की कथा-सूची, विवेचनीय बातों पर विचार और शङ्काओं का समाधान है। पुराण बहुत प्राचीन हैं। वे अपने आदि-रूप में उपलब्ध नहीं। वर्तमान पुराण उनके बाद के हैं। उनमें कुछ अंश प्रक्षिप्त भी हैं। इन सब बातों पर पुस्तक-प्रणेता ने अपने विचार योग्यतापूर्वक प्रकट किये हैं। अट्ठारह पुराण पढ़ जाना सब का काम नहीं। उनका आशय समझना तो और भी कठिन काम है। संस्कृतज्ञ ही उन्हें पढ़ कर समझ सकते हैं। ऐसी दशा में इस पुस्तक से सारे पुराणों की कथा-सूची मालूम हो जाने के सिवा पुराणों के विषय की और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं। अतएव पुराण-प्रेमियों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है।

४—दशकुमार-चरित—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १७२, टाइप छोटा-पतला, परन्तु साफ़ है। महाकवि दण्डी के इसी नाम के संस्कृत-ग्रन्थ का यह हिन्दी-अनुवाद है। पर यह अनुवाद मूल का प्रतिबिम्ब नहीं। उसका आशय-मात्र है। यह पुस्तक भी पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र की लिखी हुई है। भाषा सीधी सादी है। इसे पढ़ लेने से पाठक दण्डी की मूल आख्यायिका से अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं। इति।

छोटों का काम।

१—हरि वामन अवतार धार बलि को पाताल पठाते हैं;
महावीर लघु-रूप ग्रहण करने पर लङ्का जाते हैं।
अँधियारी भारी भादों की छोटा जुगनू हरता है;
गगनोन्मुख होने के पहले बाष्प-रूप जल धरता है॥

२—गज के बड़े दाँत दर्शन को, छोटे चारा खाते हैं;
अति ही सूक्ष्म बीज उपवन के पीपल तरु उपजाते हैं।
युद्ध-विशारद सेना-नायक केवल आज्ञा देता है;
किन्तु सिपाही-दल ही अरि से सच्चा लोहा लेता है॥

३—नासा-द्वार फेफड़ों में जो वायु हमारे जाती है,
सूक्ष्म सूक्ष्म नलियों के बल ही रुधिर स्वच्छ कर पाती है।
नर-शरीर में सभी कार्य्य छोटों ही के बल होते हैं;
रुधिर और पित्तादि बना कर वे ही सब दुख खोते हैं॥

४—विद्यार्थी, मज़दूर, कृषक ही सच्चा राष्ट्र बनाते हैं;
इनके बिना राव, राजागण कहीं न कुछ कर पाते हैं।
हाथी के दाँतों की समता नेता, राजा कर सकते,
किन्तु देश-उद्धार, उचित उपकार-समय पीछे हटते॥

५—नेता, राजा आदि निरर्थक हों, ऐसी भी बात नहीं;
नायक बिना न सेना चलती, बिना मतङ्गज दाँत नहीं।
छोटे, बड़ा काम करते हैं और करेंगे, करते थे;
सृष्टि आदि से अब तक अगुआ केवल आगे चलते थे॥

६—कृषको उठो! छात्र गण जागो! मज़दूरो सोना छोड़ो!
अपना सच्चा रूप देख लो, गली गली रोना छोड़ो।
विद्युत्-घटमाला प्रकाश जो नगरों में फैलाती है,
छिपी पड़ी रहती कोने में, छोटी समझी जाती है॥

विश्वनाथसिंह

विहार की ऐतिहासिक प्रधानता।

विहार प्रान्त बहुत प्राचीन समय से राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्म्मिक बातों के कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध है।

उत्तर-मीमांसा और अष्टादश पुराण आदि के कर्त्ता वेदव्यास ने अपने प्रिय पुत्र शुकदेवजी को जिन जनक महाराज से ज्ञानोपदेश प्राप्त करने का आदेश किया था, तथा जिनके सदुपदेश से शुकदेवजी की शङ्कायें निवृत्त हुई थीं, उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन्मुक्त जनक महाराज की राजधानी इसी विहार-प्रान्त में थी। जिन सतीशिरोमणि मैथिली सीता का नाम उनके अतुलनीय पातिव्रत-धर्म्म, उनकी सच्चरित्रता, तथा उनकी सुशीलता के कारण भारतवर्ष ही भर में क्यों, सम्पूर्ण शिक्षित संसार में चिरस्मरणीय है, उनका भी जन्म-स्थान इसी प्रान्त में था।

शिशुनाग, नन्द तथा मौर्य्य-वंशों की वीरता किसी से छिपी नहीं। भारत के इतिहासावलोकन से ज्ञात होता है कि अजातशत्रु ने नगाधिराज हिमालय की ओर से आई हुई तूरानी जाति को जीतने के लिए अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित की थी। जिस नन्दवंश के अन्तिम राजा के समय में जगद्विख्यात सिकन्दर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी उस नन्दवंश के राजाओं की भी राजधानी पाटलिपुत्र ही में थी। जिस मौर्य्यवंश का संस्थापक वीरवर और राजनीतिज्ञ-शिरोमणि चन्द्रगुप्त था उसके राजाओं की राजधानी भी इसी पटने में थी।

महाराज अशोक की ख्याति भारत ही में नहीं, किन्तु जापान, लङ्का, तिब्बत, स्याम आदि देशों में है। उनकी विजय-पताका बङ्गाले की खाड़ी से पञ्जाब तक तथा हिमालय से विन्ध्य—पर्वत तक फहराई थी। उनकी सुकीर्त्ति के वर्णन से इतिहास भरे पड़े हैं। उन्होंने मनुष्यमात्र के ही लिए नहीं किन्तु पशुओं और पक्षियों के लिए भी औषधिशालायें बनवाई थीं। अनेक तड़ाग तथा कूप भी उन्होंने खुदवाये थे। सड़कों के दोनों तरफ़ प्रचण्ड मार्त्तण्ड के प्रखर किरणों से पीड़ित और श्रान्त पथिकों के सुखार्थ वृक्ष लगवाये थे। प्रजा की शिक्षा के लिए उन्होंने बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया था। प्रजा का चरित्र सुधारने की भी उन्होंने यथासाध्य चेष्टा की थी। ऐसे प्रतापी महाराज अशोक विहार-प्रान्त से ही देश-शासन करते थे।

विहार-प्रान्त के अन्तर्गत भागलपुर नामक एक शहर है। वहाँ से कुछ दूर दक्षिण चम्पानगर नाम का एक गाँव है। वहाँ भी कुछ प्रसिद्ध राजाओं की राजधानी थी। दशकुमारचरित के अवलोकन से ज्ञात होता है कि किसी समय सिंहवर्म्मा नाम के राजा वहाँ राज्य करते थे।. "चम्पेश्वरोपि-सिंहवर्म्मा सिंह इवासह्यविक्रमः × × × रुरोध च बलभर-दत्तकम्पश्चम्पाम्" इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि चम्पेश्वरसिंह वर्म्मा की राजधानी वहीं थी। भागलपुर के समीप ही कर्णगढ़ नाम का एक स्थान है। सुनते हैं, दानवीर राजा कर्ण का दुर्ग वहीं था। सम्प्रति वहाँ पर कर्णगढ़-पाठशाला नाम की एक संस्कृत-पाठशाला है।

मुङ्गेर शहर भी विहार ही के अन्तर्गत है। बङ्गाल के नवाब मीर क़ासिम ने मुङ्गेर ही को अपनी अस्थायी राजधानी बनाया था। उसने अँगरेज़ी सेना की तरह अपनी सेना को भी युद्ध-विद्या में ख़ूब निपुण किया और अन्त में अँगरेज़ों के विरुद्ध खड़ा हो गया। किन्तु कटवा, घेरिया और उदय नाले की लड़ाइयों में उसकी हार हुई और वह कष्टहरणीघाट की सुरङ्ग की राह से अवध को भाग गया। मुङ्गेर के क़िले का चिह्न अब तक विद्यमान है। मुङ्गेर के समीप ही विक्रमचण्डी नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। मैथिल-कवि-कोकिल विद्यापति ठक्कुर की बनाई "पुरुष-परीक्षा" से पता चलता है कि दानवीर राजा बल्लाह की राजधानी यहीं पर थी। सुना जाता है कि इन्हीं के दान की परीक्षा महाराज विक्रमादित्य ने दौवारिकत्व स्वीकार करके स्वयं ली थी।

गौतमबुद्ध ने अपने मत का प्रचार भारतवर्ष ही में नहीं, किन्तु चीन, जापान, सिंहल आदि में भी किया। इस कारण इन देशों के लोग श्रद्धापूर्वक भारत आते हैं और विहार का दर्शन करके अपने को कृतकृत्य समझते हैं। बहुत पुरातन समय से गया हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान है। वह विहार ही के अन्तर्गत है। बौद्धमत वाले कहते हैं कि उनके मतप्रवर्त्तक गौतमबुद्ध को गया में ही एक वृक्ष के नीचे बुद्ध-भाव प्राप्त हुआ था।

बौद्ध धर्मावलम्बियों के उद्योग से स्थापित नालन्द नामक प्राचीन विश्वविद्यालय से प्रायः सभी इतिहासज्ञ परिचित हैं। उसमें दस सहस्र विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी तथा उनके भोजनादिक का प्रबन्ध भी विद्यालय ही की ओर से होता था। सभी शास्त्रों की शिक्षा यहाँ दी जाती थी। चीन, स्याम, सिंहल आदि देशों से भी विद्यार्थी शिक्षा पाने तथा अपनी शङ्का-निवृत्ति के लिए यहाँ आते थे।

जिस मिथिला का माहात्म्य लिखने में महाभारतकर्त्ता द्वैपायन व्यासजी को कई अध्याय ख़र्च करने पड़े, जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथिला ने न्याय-सांख्य सदृश दर्शन-शास्त्रों को जन्म देकर सम्पूर्ण जगत् का उपकार किया, जिस मिथिला ने विदेहादि राजाओं के शासन-समय में उन्नति के शिखर पर विराजमान होकर अपनी अतुलनीय कीर्त्ति की पताका उड़ाई, जिस मिथिला ने संस्कृत-शास्त्रों में—विशेष करके न्याय-शास्त्र में—परम पारदर्शिता प्राप्त की वह पुण्य-भूमि मिथिला श्री विहार ही में है।

न्याय-दर्शन के रचयिता गौतम तथा सांख्य-दर्शन के जन्मदाता कपिल मुनि को कौन नहीं जानता? इन दोनों महापुरुषों के रचे न्याय तथा सांख्य-शास्त्रों ने जो उपकार किया है वह किसी से अविदित नहीं। एतदर्थ भारतवर्ष इनका ऋणी है। जब तक इस जगत् में भगवती वाग्देवी का अस्तित्व है तब तक इन महर्षियों की कीर्त्तिध्वजा फहराती ही रहेगी। जिस मिथिला ने ऐसे ऐसे महानुभावों को उत्पन्न किया उसकी महिमा अवर्णनीय है।

याज्ञवल्क्य मुनि का निवास-स्थान भी मिथिला ही में था। उन्होंने याज्ञवल्क्य-स्मृति नामक धर्मशास्त्र की रचना करके इस देश को अनन्त लाभ पहुँचाया है।

मिथिला के इतिहास में दरभङ्गा-राज्य भी स्मरण रखने योग्य है। यह राज्य विद्या ही के बल से उपार्जित हुआ था। अकबर के शासन-समय में परम विद्वान् महेश ठकुर ने अपने विद्या-बल से ही मिथिला का राज्य पाया था। उस दिन से आज तक यह राज्य इन्हीं के वंशजों के अधिकार में है। हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रधान उद्योग-कर्त्ता तथा हिन्दू मात्र के प्रधान नेता सर रमेश्वरसिंह बहादुर, जी० सी० आई० ई० सम्प्रति इसी राज्य की शोभा बढ़ा रहे हैं।

महाराज शिवसिंह भी मिथिला के महीपों में बड़े नामी हो गये हैं। उन्होंने ग़ज़नी के शासकों का दर्प चूर्ण किया था। पुरुष-परीक्षा ग्रन्थ के अन्त में कवि-कोकिल विद्यापतिजी इस विषय में लिख गये हैं।—

"यो गौड़ेश्वर-गज्जनेश्वर-रणक्षोणीषु लब्धवा यशः"।

विद्यापति इन्हीं शिवसिंह के सभा-पण्डित थे। जिस समय नदिया के संस्कृत-विद्यापीठ का नाम तक न था उस समय मुख्यतः बङ्गाल के और अमुख्यतः अन्य प्रान्तों के भी अधिकतर विद्यार्थी संस्कृत-शिक्षा—विशेषतः दर्शनशास्त्र की शिक्षा—के लिए मिथिला ही आते थे। प्राचीन समय के विख्यात बङ्गाली पण्डितों के जीवनचरितों में बहुधा यही लिखा पाया जाता है—"तिनि न्यायशास्त्र अध्ययनार्थ मिथिला गमन करिलेन"।

जिन मीमांसकाचार्य्य मण्डन मिश्र से जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य का शास्त्रार्थ हुआ था वे मैथिल ही थे। उनके विषय में लिखा है—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
शिष्यैरसंख्यैरपि गीयमानमवेहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥

असंख्य शिष्यों से गीयमान कीर्त्ति मण्डन मिश्र का मकान दरभङ्गे से पाँच कोस श्रोत्रियपुरा में था।

बङ्गाल के प्रसिद्ध पण्डित रघुनाथ भी महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र* के विद्यापीठ के न्यायखण्ड की तृतीय श्रेणी के विद्यार्थी थे।

पुरातत्त्व-विभाग के अन्वेषणकर्त्ताओं ने खोज निकाला है कि भागलपुर के समीप कहलगाँव (Colgong) नामक ग्राम में किसी समय एक विश्वविद्यालय था।

ऐसे तो विहार में—विशेषतः मिथिला में—अनेकानेक दिग्गज विद्वान् हो गये हैं।† किन्तु यहाँ पर मुझे दो चार उन नामी नामी विद्वानों का उल्लेख करना है जो बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

बौद्ध, जैन और चार्वाक आदि के जाल से भारतवासियों का उद्धार करने वालों में तीन महात्मा प्रधान माने जाते हैं—कुमारिलभट्ट, उदयनाचार्य्य‡ और शङ्कराचार्य्य। इनमें से पहले दो विहार ही के अधिवासी थे।

---

* इन्हीं पक्षधर मिश्र के विषय में कहा गया है—"शङ्करवाचस्पत्योः शङ्करवाचस्पती सदृशौ। पक्षधरप्रतिपक्षी लक्ष्यीभूतो न भूतले क्वापि"। ये जिस विषय का पक्ष लेते थे उसी में विजय पाते थे।

† सुनते हैं, मिथिला के महाराज भैरवसिंह के समय में एक बार मैथिल विद्वानों की गणना की गई तो तेरह सौ केवल मीमांसक निकले!

‡ "वयमिह पदविद्यातर्कमान्वीक्षिकीं वा।
यदि पथि विपथे वा वर्त्तयामः स पन्थाः॥
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा,
नहि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः"॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिल-कवि-कोकिल विद्यापति के नाम से हिन्दी-कविता के प्रायः सभी प्रेमी परिचित हैं। इन्होंने अपनी कविता की स्रोतस्वती से बङ्गाल और मिथिला को प्लावित कर दिया था। उस समय घोर शाक्त-निद्रा में प्रसुप्त बङ्गाल को जगा कर मुरली की मनोहर ध्वनि सुनाने वाले यही थे। परम राजनीतिज्ञ चाणक्य का नाम किस साक्षर ने न सुना होगा? इनके अर्थशास्त्र ने अनायास प्रकट होकर उनकी कीर्त्ति-कौमुदी को और भी उज्ज्वल कर दिया है। शत्रुओं का पराभव करके चन्द्रगुप्त को राजासन दिलाने वाले अमात्य चाणक्य भी विहार ही के थे।

अब मैं विहार की कुछ विदुषी स्त्रियों का उल्लेख करके इस क्षुद्र लेख को समाप्त करता हूँ।

जगज्जननी भगवती सीता के विषय में कुछ लिखना व्यर्थ है। अतएव उनके नाम का स्मरणमात्र करा देता हूँ।

मिथिला के राजा शिवसिंह की रानी लखिमा ठकुराइन मिथिला की विदुषी स्त्रियों में रत्नरूपा हो गई हैं। इन्हीं का कहा हुआ है—"किं रघुवंशमपि काव्यं, तस्यापि टीका, सापि संस्कृतमयी"। अर्थात् क्या रघुवंश को भी लोग काव्य समझते हैं? और, वह भी क्या इतना कठिन है कि लोगों ने उसकी टीका की है! और यदि टीका की भी आवश्यकता थी तो प्राकृत में करना था; संस्कृत-टीका करने योग्य तो वह है ही नहीं।

मिथिला की विदुषी स्त्रियों में शिरोमणि मण्डन मिश्र की स्त्री कही जा सकती है। जब मीमांसकाचार्य्य मण्डन मिश्र और परिव्राजकाचार्य्य शङ्करस्वामी के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ होने योग्य और कोई न मिल सका तब मण्डन मिश्र की स्त्री भारती ही को मध्यस्थता का भार सौंपा गया। उस कार्य्य को भारती ने बड़ी बुद्धिमानी से सम्पादन किया। सुना जाता है कि बाल-ब्रह्मचारी शङ्कराचार्य्य शृङ्गाररस-विषयक शास्त्रार्थ में भारती से परास्त हो गये थे। इसी से अमरु राजा के शरीर में प्रवेश करके कुछ दिनों तक स्वामीजी को अनङ्गशास्त्र का रहस्य सीखना पड़ा था।

इस गौरवान्वित वाक्य के कथयिता तथा कुसुमाञ्जलि के कर्ता उदयनाचार्य्य ही थे। इनको भी विद्यापति की तरह बङ्गालियों ने अपनाना चाहा था, पर वे कृतकार्य्य नहीं हुए। वस्तुतः ये मैथिल ही ब्राह्मण थे।

ऐसे ऐसे विद्वान् और विदुषी स्त्रियाँ उत्पन्न करने वाले विहार-प्रान्त की कहाँ तक प्रशंसा की जाय।

श्रीगङ्गापतिसिंह

प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव।

आज कल, शिक्षित समाज में, पाश्चात्य विज्ञान की बड़ी प्रतिष्ठा है। यह उचित भी है। क्योंकि आधुनिक विज्ञान से मनुष्य को जो सुख मिल रहा है वह छिपा नहीं। भू-मण्डल का बढ़ता हुआ अन्तर्वाणिज्य-व्यवहार, चिकित्सा-शास्त्र के नये नये परमोपयोगी आविष्कार, इत्यादि विज्ञान की उपयोगिता को अच्छी तरह सिद्ध करते हैं। किन्तु, साथ ही साथ, विज्ञान से अद्भुत हानिकारक शक्तियाँ भी प्रकट हो रही हैं। वर्तमान योरोपीय महायुद्ध का वृत्तान्त पढ़ने से यह बात अच्छी तरह मालूम हो सकती है। इस लिए थोड़े में यह कहना कदाचित् अनुचित न होगा कि मनुष्य विज्ञान से दुःख और सुख दोनों उठा सकता है।

मनुष्य को उचित नहीं कि विज्ञान से केवल सांसारिक सुख ही की वृद्धि करे—केवल इन्द्रियाराम ही में निमग्न होता जाय। ऐसा करने से पहले भी हानि हुई है और भविष्यत् में भी होने की सम्भावना है। अतएव, वास्तव में, मनुष्य को चाहिए कि विज्ञान के द्वारा अपने विचारों का परिमार्जन करके अन्त में केवल वेदान्त की ओर प्रवृत्त हो। हमारे प्राचीन ऋषियों ने विज्ञान से अन्त में यही सार खींचा था।

कितने ही लोगों का यह ख़याल है कि भारत-वर्ष में विज्ञान की चर्चा कभी थी ही नहीं। और, यदि, थी भी तो उतनी गहरी और पूरी कदापि न थी जितनी आज कल पाश्चात्य देशों में है। विचार करने पर यह कहना पूर्ण सत्य नहीं सिद्ध होता। सच पूछिए तो पाश्चात्य विज्ञान का स्वरूप अभी स्थूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

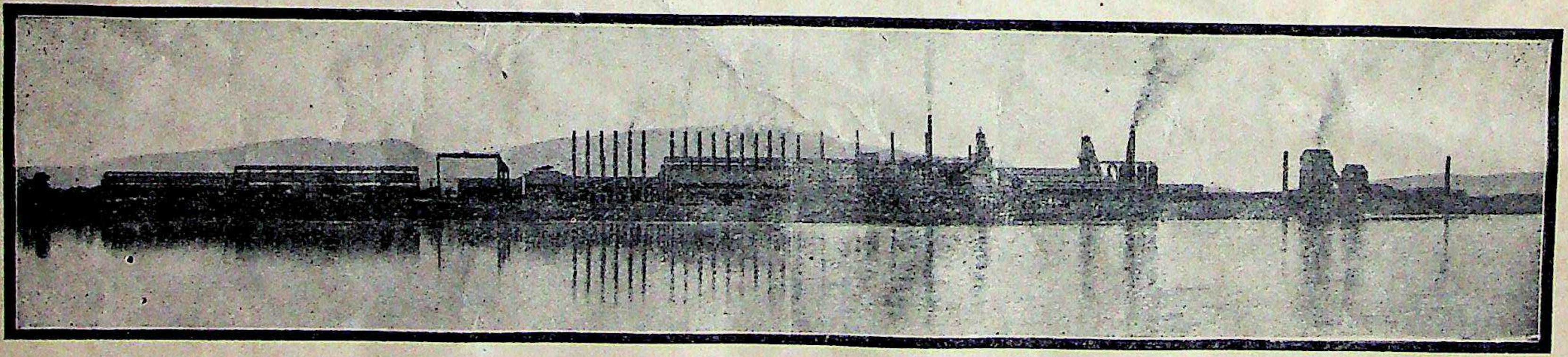

ताता के लोहे के कारख़ाने और कार्य्यालय का दृश्य, साकची।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है। योरुप के कुछ विद्वान् भी अब यही कहते हैं। अब बहुधा ऐसी पुस्तकें और लेख प्रकाशित होने लगे हैं जिनको देखने से मालूम होता है कि वैज्ञानिक विचार प्रति दिन बदलते जाते हैं। उदाहरण के लिए पदार्थ-विज्ञान की कल्पनाओं को लीजिए। जो वस्तुयें कल अक्षय्य मानी गई थीं वही आज वियोज्य सिद्ध हो रही हैं। रेडियम और इलेक्ट्रान का पता चलने से वैज्ञानिक प्रमेयों में बड़े बड़े परिवर्तन होते हैं। क्या आश्चर्य्य जो एक दिन ऐसा आवे जब समस्त वैज्ञानिक विचारों की पराकाष्ठा केवल धार्मिक चर्चा ही रह जाय और भारतवर्ष के प्राचीन शास्त्रोक्त नियमों का पुनरुद्धार हो।

प्राचीन ऋषियों के अनुभूत वाक्य इस समय सम्पूर्ण रूप से हमारे ग्रन्थों में नहीं मिलते। जो उपलब्ध हैं वे भी प्रायः सूत्ररूप में पाये जाते हैं। अतएव वे साधारणतः गूढ़ हैं। सरसरी तौर पर उनका समझना कठिन है। हमारे पूर्वजों के विचार बहुधा केवल मानसिक-कल्पना-मूलक समझ लिये जाते हैं। उन पर विशेष विचार करना व्यर्थ समझा जाता है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में कुछ ऊपरी बातें मिली हुई अवश्य पाई जाती हैं, किन्तु कुछ थोड़ी सी बुराइयों के कारण—जो सामयिक हैं और कदाचित् किसी विशेष अभिप्राय का फल हों—बहुत सी भलाई से वञ्चित होना उचित नहीं। संसार में सूक्ष्म वस्तुयें स्थूल वस्तुओं की अपेक्षा अधिक गुह्य होती हैं। किन्तु कठिनाइयों से शोधकों को हताश होना उचित नहीं। क्योंकि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि॥

भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक ४७

मनुस्मृति के आरम्भ ही में सृष्टि-प्रकरण को लीजिए। सृष्टि की रचना से सम्बन्ध रखने वाली जिन बातों पर पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान अब जा रहा है उनका पता हमारे यहाँ हज़ारों वर्ष पहले ही लग चुका था। अनेक वाद-विवाद के उपरान्त अब जाकर पश्चिमी विद्वानों को यह मालूम हो रहा है कि सृष्टि की आदि में अण्डे के आकार में बाष्पारम्भ हुआ। इसके बाद उस सृष्टिकारक अण्डे के दो टुकड़े हुए। प्रमाण के लिए अध्यापक सोल्हास का कथन नीचे अँगरेज़ी में दिया जाता है—

"One of the latest attempts to frame a nebular hypothesis is that of Prof. J. H. Jeans. His reasoning is of a highly mathematical character and his conclusions are expressed in the most general terms. Starting with a spherical nebula of gas or meteorites, endowed with a small amount of rotation, he shows that, as it cools or loses energy, the temperature of the interior will not fall continuously in precise correspondence with the cooling of the outer parts, and this 'lag' of the interior temperature will bring about a tendency to instability. The contraction of the nebula due to cooling will increase the velocity of rotation and this again will lead to instability. As a result of the instability so produced, the nebula will change its form and become more or less pear-shaped. The narrow end of the pear will then separate from the body and assume an independent existence as a primitive planet. The process will recur again and again till the nebula is resolved into a sun with its attendant planets........." (Harmsworth History of the World, Vol. I, page 83.)

इसका सारांश मनुजी ने निम्नलिखित श्लोकों के द्वारा सूत्ररूप में पहले ही से कह रक्खा है—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

× × × × ×

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिञ्च निर्ममे॥
मध्ये व्योमदिशश्चाष्टावपां स्थाने च शाश्वतम्॥

यहाँ यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि अध्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जीन्स की कल्पना भी कदाचित् कभी ग़लत ठहरे। किन्तु विचार करने से ऐसा मालूम होता है कि अध्यापक जीन्स का मत बड़े महत्त्व का है। हिसाबी प्रमाण तो अध्यापक महाशय ही ने दे रक्खे हैं। अतएव मैं यहाँ उन प्राकृतिक सिद्धान्तों के विषय में, जो इस मत के अनुकूल मालूम होते हैं, निवेदन करता हूँ।

वृक्षयोनि के किसी साधारण बीज को लीजिए। ध्यान देकर देखने से सभी बीज कुछ न कुछ अण्डाकार अवश्य दिखाई देते हैं। कोणयुक्त अथवा बिलकुल गोल कम देखने में आते हैं। पशुयोनि में क़रीब क़रीब सभी पशुओं के मस्तक, मुख, गर्भाशय और अण्डकोश सर्वदा अण्डाकार ही होते हैं। यह सर्व-साधारण-सादृश्य, मेरे विचार में, एक आवश्यकीय समता है। खोज से यह बात बिलकुल प्राकृतिक नियमों के अनुसार सिद्ध हो सकती है। जिन पाठकों की रुचि और अनुराग सामान्य-जीव-विद्या में है और जिनको सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा कैन्द्रिक विभाग-क्रिया देखने का अवसर प्राप्त हो चुका है वे अवश्य ही जानते होंगे कि मामूली कैन्द्रिक विभाग, जन्तुओं और वनस्पतियों, दोनों में, प्रायः एक ही सा होता है। सुभीते के लिए इस लेख के साथ दो चित्र भी दिये जाते हैं। चित्र नम्बर १ का मिलान चित्र नम्बर २ के साथ करने से उनमें समता अवश्य दिखाई पड़ेगी। मेरे विचार में ये सब बातें पूर्वोक्त अध्यापक महाशय की कल्पना को सत्य सिद्ध करने वाली हैं।

अब, आदि में, पृथ्वी को पैदा करने वाले बाष्प के तरलत्व का विषय लीजिए। प्रोफ़ेसर सेल्हास के मत के अनुसार बाष्प अर्थात् भाफ़, आदि में, तरल था। उनका कथन यह है—

The earth was once a fluid haze of light. The whole solar system once formed a vast nebula, consisting of glowing gas or a swarm of meteorites. Our planet was slowly shaped into a globe out of this primitive nebula. This globe was at first intensely hot and probably liquid......(Harmsworth History of the world, Vol. I.)

अब आप आदि-पङ्क या जीवतत्त्व (Protoplasm) के तरलत्व पर विचार कीजिए। फिर देखिए मनुजी किन शब्दों में और किस भाव में इसी आशय को प्रकट करते हैं—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

'आप' से मनुजी का अभिप्राय तरलत्व से है, जो आदिभौतिक पञ्चमहाभूतों में से एक मूल तत्त्व है। इसी प्रकार कुछ और बातों को भी लीजिए। हमारे यहाँ के चारों वर्णों के रहस्य पर ध्यान दीजिए। गीता में लिखा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धि कर्तारमव्ययम्॥

विचार करने से यह मालूम होता है कि यह वर्ण-भेद पृथ्वी के प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में पाया ही जाता है। क्या समस्त जनसमुदाय चार भागों में नहीं बांटा जासकता? क्या धर्मात्मा, रणप्रिय, वाणिज्य-परायण और नीच कर्म करने वाले मनुष्य हर जगह नहीं मिलते? मनुष्य-समाज में ही नहीं, पशुओं तक में भी यह भेद पाया जाता है। परन्तु स्थूल और अप्रत्यक्ष रूप से। क्या जानवरों में गाय और हंस की तरह शान्ति-प्रिय, सिंह और मगर के सदृश लहू बहाने वाले, मधुमक्खियों की तरह कार्य्यकुशल, और गीध, काक, तथा घरेलू मक्खियों की तरह नीच आचरण करने वाले प्राणी नहीं मौजूद?

एक प्रसिद्ध अँगरेज़ी पुस्तक में मैंने पढ़ा है कि घड़ियाल जब शिकार से पेट भर कर नदी के तट पर आराम करने लगता है तब अपने विशाल मुख को खब फैला देता है। उस राक्षसी मुख में एक छोटी जाति का पक्षी निर्भय होकर बैठ जाता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घड़ियाल के दाँतों में चिपके हुए मांस-तन्तुओं और छोटे छोटे कीड़ों को चुगा करता है । घड़ियाल भी पक्षी की इस सेवा को पसन्द करता है । इस व्यवहार में क्या एक प्रकार का सेव्य-सेवकभाव नहीं पाया जाता ? खोज करने वालों को इसी प्रकार के और भी प्रमाण मिल सकते हैं । सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण वनस्पतियों में भी मिल सकते हैं । हाँ, जिस प्रकार स्पष्टता-पूर्वक वे मनुष्यों और पशुओं में पाये जाते हैं, वनस्पतियों में अवश्य ही नहीं मिलते । तथापि वनस्पतियों में भी जैसे अत्यन्त स्वादिष्ट और गुणकारी फल होते हैं वैसे ही विषाक्त और अमरीका के मांसाहारी पौधे भी होते हैं । ऊपर की बातों का यह अभिप्राय नहीं कि मनुष्य नीच से उच्च नहीं हो सकता । पुराण, रामायण और महाभारत आदि में नीच से उच्च होने के प्रमाण मिल सकते हैं ।

अब चारों युगों के विषय को लीजिए । हमारे यहाँ सबसे ज़ियादह दिन सत्ययुग में, उससे कम त्रेता में, त्रेता से कम द्वापर में और अन्त में सबसे कम कलियुग में रक्खे गये हैं । दिनों की यह क्रमशः कमी कपोल-कल्पित नहीं । क्योंकि जब पृथ्वी की गति दिन पर दिन घटने लगी तब दिन लम्बे होने लगे । फलतः दिनों की तादाद क्रमशः घटने लगी । नीचे अँगरेज़ी में एक विद्वान् का मत, इस बात के प्रमाण में, दिया जाता है—

It is well-known that owing to the frictional effects produced by the tides, the earth is being gradually slowed down as it rotates upon its axis. Thus the day is constantly getting longer, so that in a few million years it will have increased in length from twenty-four to twenty-five hours. On the other hand, in past time it must have been shorter than at present. A few million years ago it was only twenty-three hours in length, and many million of years earlier it was still less, only some five hours or so......

अब दशावतारों की बात लीजिए । हमारे यहाँ क्रमशः मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि अवतार माने गये हैं । वास्तव में इनकी भी भित्ति विज्ञान पर है । यह केवल पौराणिक दन्त-कथा नहीं । पाश्चात्य विद्वानों ने भी पृथ्वी के विकाश को चार प्रधान अवधियों में बाँट कर दशावतार के इस क्रम के महत्त्व के प्रमाण दे रक्खे हैं । पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार पृथ्वी के विकास का क्रम, बहुत थोड़े में, सुन लीजिए—

THE FIRST PERIOD OF THE EARTH.

पृथ्वी की प्राथमिक दशा—

Cambrian system. Silurian system. Divonian system. Carboniferous system. Permian system.	अधिकांश पृथ्वी का जलाच्छादित रहना । सूक्ष्म जलजन्तुओं का प्रादुर्भाव । फिर रीढ़दार जलगामी जन्तुओं का मत्स्यरूप में पैदा होना । मत्स्यों के शरीर की बनावट में विकास होना । जल तथा स्थलगामी सर्पणशील अर्थात् पेट के बल चलने वाले प्राचीन अण्डजों का प्रकट होना ।

THE SECOND PERIOD OF THE EARTH.

पृथ्वी की द्वितीय दशा ।

Triassic system. Jurassic system. Cretaceous system.	प्राचीन वनस्पतियों का प्रकट होना । पृथ्वी पर भयानक अण्डजों का प्रादुर्भाव । पक्षियों की उत्पत्ति । प्राचीन दुग्धपायी अर्थात् दूध पिलाने वाले पिण्डजों का छोटे रूप में प्रकट होना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE THIRD PERIOD OF THE EARTH.

पृथ्वी की तृतीय दशा।

Eoscene system. Mioscene system. Plioscene system.	थूथननुमा दुग्धपायी पिण्डजों का प्रकट होना। सिंह इत्यादि मांसाहारी पशुओं, पुच्छहीन बन्दरों और झुण्ड के झुण्ड तृण-भक्षी पशुओं का उत्पन्न होना।

THE FOURTH PERIOD OF THE EARTH.

पृथ्वी की तुरीय दशा।

Pleistecene system Human or recent system.	मनुष्यों का प्रकट होना— इत्यादि।

पृथ्वी की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का विवरण, लेख-विस्तार के भय से, संक्षेप ही में दिया गया है। इसका विशेष विवरण और स्पष्टीकरण भूगर्भ-शास्त्र की पुस्तकों में मिलेगा।

ऊपर के विवरण में हमारे दशावतार के तत्त्व से मिलती हुई बातें अवश्य पाई जाती हैं। विष्णु ने सबसे पहले मत्स्यावतार ही क्यों धारण किया, यह रहस्य थोड़े ही विचार से ध्यान में आ सकता है। क्या विज्ञान यह नहीं प्रमाणित करता है कि मत्स्य के रूप को छोड़ कर और किसी रूप में, पहले पहल, समस्त जलाच्छादित भूमण्डल पर जीवों का प्रादुर्भाव असम्भव था? तदुपरान्त, जब पृथ्वी यत्र तत्र प्रकट हो आई, तब कूर्म की जाति के जीवों का विकास हुआ। क्या यह कूर्म, जल तथा स्थलचर (Amphibious) और रेंगने वाले समस्त अण्डजों (Reptiles) का एक आदर्श भौतिक उदाहरण नहीं? क्या वराह से उन प्रारम्भिक पिण्डजों से मतलब नहीं जो थूथननुमा मुख और खड्गाकार दो दाँत धारण करते थे? क्या हमारे मुनियों का यह वाक्य "भूगोलमुद्बिभ्रते" वराहावतार के सम्बन्ध में अनुचित है? जब कि आधुनिक विज्ञान भी यही कहता है कि पिण्डजों के विकास के समय में पृथ्वी पर एक प्रचण्ड उत्क्षेप (Upheaval) हो चुका है तब ये बातें क्यों सम्भव न मानी जायँ? इसी प्रकार नृसिंहावतार से उन मांसाहारी पिण्डजों से मतलब है जो वनमानुसों के पूर्वज थे। वामन-अवतार से यह दिखाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार छल-पूर्वक अपने बुद्धि-बल के द्वारा पृथ्वी की सभ्यता बढ़ाने का यत्न, बड़े बड़े पशुओं की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह, प्राकृतिक नियमों के अनुसार, करने लगा। इससे यह भी सूचित होता है कि मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में ठिंगना था। विकास-सिद्धान्त भी इसका साक्ष्य देता है। परशुरामावतार से यह अभिप्राय है कि हिंसक और लड़ाके मनुष्यों की संख्या कम करने के लिए, अर्थात् सभ्यता की वृद्धि के लिए, यह अवतार हुआ था। इसके बाद रामावतार हुआ। वास्तव में यही सांसारिक सभ्यतारूपी नाटक का पेसा प्रथम दृश्य या प्रारम्भिक लीला थी जिसने, भविष्यत् में, मनुष्य-जाति को धार्मिक जीवन के अपरिमित महत्त्व को स्पष्ट करके दिखा दिया। तुलसीदासजी ने अवतार के तत्त्व को एक ही दोहे में कह डाला है—

विप्र, धेनु, सुर, सन्त, हित, लीन्ह मनुज-अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, मायागुणगोपार॥

क्या विचार करने से इस दोहे का यथार्थ आशय नहीं जाना जा सकता? इसी प्रकार कृष्णावतार का रहस्य महाभारत के पठन और मनन से समझा जा सकता है। मेरे विचार में इसी अवतार के समय हल के द्वारा कृषिकर्म करने का अधिक प्रचार हुआ होगा। नवाँ अवतार बुद्धदेव का हुआ। क्या विष्णु-भगवान् के लिए, जो सत्वगुण (Equilibrium Constant) के रूप हैं और जिनका यह लक्ष्य है कि ब्रह्मा (Action) और रुद्र (Reaction) की परस्पर विरुद्ध शक्तियों के पलड़ों को समान रक्खें—यह अनावश्यक था कि बौद्धावतार के द्वारा, यज्ञकर्मों के बिना भी, मुक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

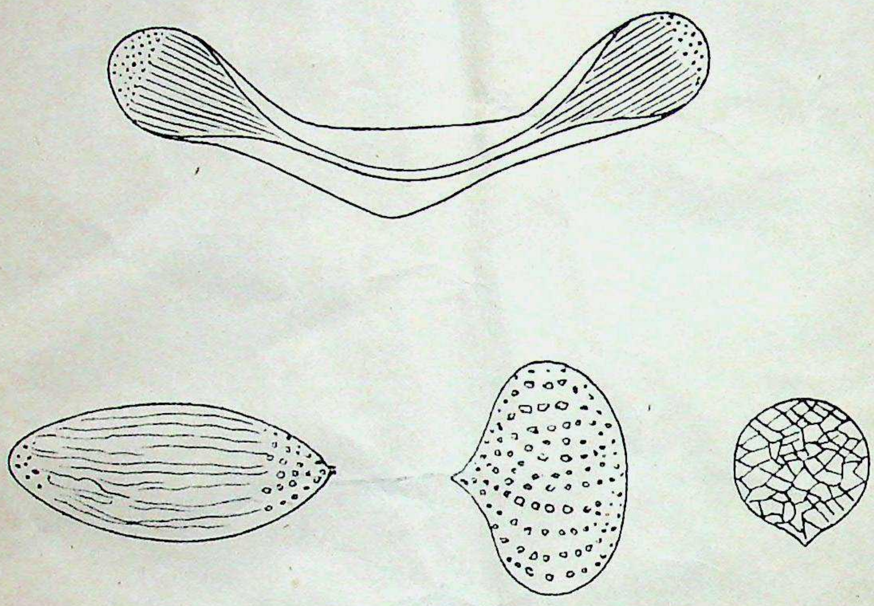

प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव—नामक लेख से सम्बन्ध रखने वाला चित्र नं० १ ।

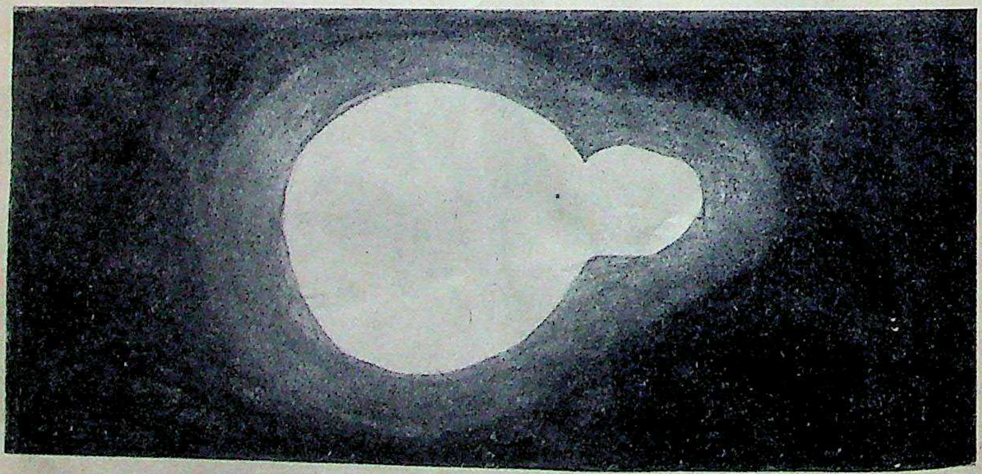

प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव—नामक लेख से सम्बन्ध रखने वाला चित्र नं० २ ।
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाने की युक्ति सुख-प्रिय मनुष्य को बताते ? मेरी समझ में यही अवतार सन्त-मत का, उसकी समस्त शाखा-सम्प्रदायों का, इसलाम और ईसाई मत का, मूल था। अन्तिम अवतार किस अभिप्राय से होने वाला है, इसकी सूचना पुराण दे ही रहे हैं। अतएव यहाँ इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। सारांश यह कि अवतारों के बहाने, सभ्यता का क्रम-विकास हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने पहले ही से वर्णन कर रक्खा है। आवश्यकता है सूक्ष्म-दृष्टि-शोधकों और विचारकों की।

भूगर्भ-शास्त्र का सारांश निम्नलिखित श्लोक में बड़ी अद्भुत रीति से वर्णन किया गया है—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते,
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्र-क्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते,
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

कोसलेन्द्रप्रताप

कुछ न किया।

(१)

जिसने बढ़ कर नहीं दीन जन को अपनाया, पतित बन्धु को पुनः उच्च जिसने न बनाया।
सुन कर सकरुण-नाद न जिसने कान हिलाया, दया-सलिल-साहाय्य तृषित को नहीं पिलाया।
बस आप जिया अपने लिए, जिया किन्तु वह क्या जिया ?
इस कर्म्म-भूमि में आप ही कहिए क्या उसने किया ?

(२)

करके अत्याचार अनाथों पर जो अकड़ा, रह कर पापासक्त पुण्य का पन्थ न पकड़ा।
भरता हर दम रहा कुटिल कलुषों का छकड़ा, रहा स्वार्थवश विकट मोह-बन्धन में जकड़ा।
संसार-वनस्थल छान कर, खोज विषम विष-फल लिया।
इस कर्म्म-भूमि में आप ही कहिए क्या उसने किया ?

(३)

निज बल से काठिन्य-अचल जिसने न हटाया, लख कर विपद् प्रवाह हटा, हौसला घटाया।
करके देश-प्रेम मातृ-भू-ऋण न पटाया, बन कर जीवन-समर-शूर निज सिर न कटाया।
उस कुल-कपूत से क्या हुआ कुचल काल-बल ने दिया।
इस कर्म्म-भूमि में आप ही कहिए क्या उसने किया ?

(४)

निज भुज-विक्रम से न शत्रु का सिर यदि तोड़ा, तो है सब बल व्यर्थ बहुत हो या हो थोड़ा।
सन्मित्रों से नहीं प्रेम का नाता जोड़ा, अथवा मतलब साध साथ फिर छल से छोड़ा!
उस अधम अन्ध ने सुधा तज तुच्छ ताल का जल पिया।
इस कर्म्म-भूमि में आप ही कहिए क्या उसने किया ?

सनेही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय।

१—भारत के प्राचीन नरेशों की दिनचर्य्या।

स्मृति और पुराण इत्यादि अनेक संस्कृत-ग्रन्थों में इस विषय का वर्णन मिलता है। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में भी इसका उल्लेख है। कौटिल्य के मतानुसार राजाओं की दिन-चर्य्या अर्थात् दैनिक कार्य-क्रम इस प्रकार था—

दिन—(१) ६ बजे से ७½ बजे तक—देश-रक्षा का विचार और कोष की देख-भाल

(२) ७½ बजे से ९ बजे तक—नगर और प्रान्त-निवासियों के अभियोगों पर विचार

(३) ९ बजे से १०½ बजे तक—स्नान, भोजन और अध्ययन

(४) १०½ बजे से १२ बजे तक—माल के अफ़सरों से रुपये पैसे का हिसाब

(५) १२ बजे से १½ बजे तक—अनुपस्थित मन्त्रियों से पत्र-व्यवहार

(६) १½ बजे से ३ बजे तक—मनोरञ्जन या आत्म-विचार

(७) ३ बजे से ४½ बजे तक—हय, गज, रथ और पदाति का निरीक्षण

(८) ४½ बजे से ६ बजे तक—सेनापति से परामर्श और सायं समय सन्ध्यावन्दन।

रात्रि—(१) ६ बजे से ७½ बजे तक—जासूसों तथा अन्य गुप्त कार्य्य-कर्त्ताओं से बातचीत

(२) ७½ बजे से ९ बजे तक—भोजन और अध्ययन

(३) ९ बजे से १०½ बजे तक—अन्तःपुर-प्रवेश

(४), (५) और (६) १०½ बजे से ३ बजे तक निद्रा, विजय घोष के साथ निद्रात्याग और प्रातःस्मरण

(७) ३ बजे से ४½ बजे तक—राजसभा का आवाहन और गुप्तचरों को अपने अपने काम पर भेजना

(८) ४½ बजे से ६ बजे तक—उपाध्यायों और पुरोहितों से आशीर्वाद-ग्रहण, वैद्यों, ज्योतिषियों और प्रधान पाचक से वार्तालाप और बछड़े सहित गाय की परिक्रमा करके दरबार में पदार्पण।

यह दिन-चर्य्या सर्व-सामान्य है। नरेश-विशेष, अपने अपने सुभीते के अनुसार, इसमें परिवर्तन भी कर लिया करते थे। इससे यह भी जाना जाता है कि प्राचीन समय में भारतीय नरपति राजकाज में अपना कितना अधिक समय लगाते थे। निद्रा के समय को छोड़ कर सिर्फ़ ३ घण्टे उन्हें राजकाज से छुट्टी रहती थी। इस सूची से यह जाना जाता है कि प्रातःकाल ७½ बजे से ९ बजे तक राजा लोग प्रजा-जनों से मिलते और उनकी शिकायतें स्वयं सुनते थे। आज कल के बहुत कम राजाओं में यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

२—नालन्द के धुसों की खुदाई।

सर रतन ताता के दिये हुए रुपये से पाटलिपुत्र के ढूहों की जो खुदाई होती थी वह अब बन्द हो गई। इस खुदाई का हाल सरस्वती में कई दफ़े प्रकाशित हो चुका है। यह काम डाक्टर स्पूनर की निगरानी में हुआ है। खुदाई से जैसी चीज़ें मिलने और जैसे ऐतिहासिक तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त होने की आशा सर रतन ताता को थी वह कुछ नहीं हुआ। पुरातत्त्व-विभाग के पूर्वी सरकिल की, १९१५-१६ की, वार्षिक रिपोर्ट में पूर्वोक्त डाक्टर साहब ने स्वयं ही यह बात लिखी है। इसीसे कुम्हरार, बुलन्दीबाग़, पांच पहाड़ी और बारा पहाड़ी के धुसों की खुदाई का काम बन्द कर दिया गया है। अब डाक्टर साहब ने नालन्द (नालेन्द्र) में काम शुरू किया है। गुप्त-वंशी नरेशों के समय में नालन्द बड़ा नामी विश्वविद्यालय था। सन् ईसवी की पाँचवीं सदी में बहुत करके इस विद्यालय की स्थापना हुई थी। इसका वर्णन, बहुत पहले, सरस्वती में निकल चुका है। यह राजगृह से कुछ ही दूर था। जहाँ पर यह विश्वविद्यालय था वहाँ अब सिवा ऊँचे ऊँचे ढूहों के और कुछ नहीं। खोदे जाने के लिए ये सब ढूह गवर्नमेंट ने ले लिये हैं। रायल एशियाटिक सोसायटी ने इस काम के लिए कुछ रुपया दिया है। कुछ रुपया पुरातत्त्व-विभाग ने स्वयं ख़र्च करना निश्चय किया है। काम जारी है। कुछ मूर्तियाँ मिट्टी की, कुछ मुहरें और एक मन्दिर का कुछ भग्नांश, ये सब चीज़ें अब तक प्राप्त हुई हैं। डाक्टर स्पूनर को यहाँ अनेक ऐतिहासिक वस्तुओं के मिलने की आशा है।

३—संसार के कुछ पुराने पुस्तकालय।

यों तो पुस्तकालयों अथवा पुस्तकों के सङ्ग्रहों का पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत प्राचीन काल में भी लगता है ; परन्तु सब से पहला विख्यात पुस्तकालय, जिसका पता अभी तक चला है, अकद या अगेद में था। मेसोपोटामिया के अन्तर्गत अकद एक छोटा सा शहर था। ईसवी सन के कोई ३ हज़ार वर्ष पहले वहाँ सरगान नाम का एक राजा था। उसी ने इस पुस्तकालय को अपने राजमहल में स्थापित किया था। इसके पहले वहाँ के पुजारी अपने मन्दिरों में, विशेष करके देवी देवताओं से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकों ही का सङ्ग्रह किया करते थे।

इसके कोई २५०० वर्ष बाद असीरिया की राजधानी, निनवा, में एक पुस्तकालय स्थापित किया गया। उसका स्थापन-कर्ता था वहाँ का नरेश असुर-बनीपाल। वह स्वयं बड़ा विद्वान् और विद्याव्यसनी था। यह बात, ईसवी सन् के ६६७ वर्ष पहले की है।

आज से सौ वर्ष पहले तक इन दोनों पुस्तकालयों का पता किसी को भी न था। पर अब तो उनमें रक्खी गई पुस्तकों तक को आप देख और पढ़ सकते हैं। उनमें सब पुस्तकें मिट्टी की ईंटों पर खुदी हुई हैं और कितनी ही मिट्टी के गोल गोल बेलनों पर। पूर्वोक्त शहर जब लूटे गये और बरबाद हुए तब ये पुस्तकालय मिट्टी के ढेरों में दब गये थे। कोई १०० वर्ष हुए, पुराने ढीह खोद खोद कर ये निकाले गये हैं।

ग्रीस की सभ्यता के विकाश के साथ साथ, अर्थात् ईसवी सन् के पहले तीसरी या चौथी शताब्दी से—पुस्तक-सङ्ग्रहों की विशेष बढ़ती होने लगी। कितने ही स्थानों पर पुस्तकालय खुले। परन्तु उनमें से बहुत बड़ा और विख्यात पुस्तकालय अलेक्ज़ैंड्रिया का था। ग्रीस और ईजिप्ट अर्थात् यूनान और मिस्र देश की भाषाओं में फुटकर विषयों पर लिखी गई दो तीन लाख पुस्तकें उसमें सङ्ग्रह की गई थीं। उस समय मिस्र में काग़ज़ की जगह पर पेपरिस नाम की एक चीज़ काम में लाई जाती थी। उसी पर विशेष करके ये पुस्तकें लिखी गई थीं। वे जन्म पत्रियों के सदृश लम्बी लम्बी थीं और लपेट कर रक्खी गई थीं। उस समय तक जितनी विद्यायें ज्ञात थीं सब पर पुस्तकें प्राप्त की गईं और लिखा कर रक्खी गई थीं। यह पुस्तकालय प्रायः पाँच सौ वर्षों तक विद्या-वृद्धि करता रहा। पीछे ईसाइयों के दो फिरक़ों में लड़ाई हुई और यह पुस्तकालय जला दिया गया।

ईसवी सन् के शुरू होने के बाद से तो पुस्तकें एकत्र करने का रिवाज बहुत ही बढ़ गया। हर एक ईसाई महन्त के मठ में और हर राजमहल में भी छोटा मोटा पुस्तकालय स्थापित हो गया। परन्तु ३०० ईसवी से लेकर १५०० ईसवी तक दो ही सुप्रसिद्ध पुस्तकालय थे। एक तो कुस्तुन्तुनिया (कान्स्टेन्टिनोपल) के बादशाह के राजमहल का और दूसरा रोम के पोप के राजमहल का। इस समय काग़ज़ पर लिखने की प्रथा प्रचलित हो गई थी। परन्तु पुस्तकों की जिल्दें न बाँधी जाती थीं। हमारी पोथियों की तरह पत्रे अलग अलग होते थे।

पन्द्रहवीं सदी में छापने की कल जारी हुई। तब से तो पुस्तक-संग्रहों और पुस्तकालयों की संख्या बहुत ही बढ़ गई। अब तो बड़े बड़े आदमियों के घरों में भी इतने बड़े पुस्तकालय हैं जितने पहले राजमहलों में भी न थे। इस समय लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क और बर्लिन के पुस्तकालय दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक में दस दस लाख से ज़ियादह पुस्तकें हैं।

इस नोट में महात्मा कनफूसियस के चेलों ने चीन में जो ग्रन्थ-संग्रह किया तथा महात्मा बुद्ध के चेलों ने भारत में जो पुस्तकें एकत्र कीं, उनका ज़िक्र नहीं किया गया ; क्योंकि उनकी विशेष प्रसिद्धि नहीं है। चीन में तो ईसवी सन् के पहले की दो चार किताबें मिलती भी हैं ; परन्तु भारतवर्ष में वे भी नहीं। भारत में ईसवी सन् के पहले की पुस्तकों के हवाले अलबत्ते मिलते हैं। उस समय लोग बड़ी बड़ी पुस्तकें कण्ठाग्र कर लेते थे। इस कारण भी उस समय की अनेक प्राचीन पुस्तकों की रक्षा हुई है। पर उस समय की हस्त-लिखित पुस्तकें यहाँ नहीं मिलतीं।

४—रेलवे का प्रबन्ध किसके हाथ में रहना चाहिए ?

भारतवर्ष में कितनी ही रेलवे लाइनें हैं। उनमें से कुछ की मालिक तो सरकार है, कुछ की कम्पनियाँ और कुछ के देशी राज्य। सरकारी रेलवे का मूल धन इस समय ५,२२,००,००,००० रुपया है। १९१३-१४ ईसवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भारत की समस्त रेलों की आमदनी ६३ करोड़ रुपये थी और खर्च कोई ३३ करोड़। अर्थात् ३० करोड़ रुपये की बचत हुई। परन्तु सरकार को लाभ सिर्फ़ छः ही करोड़ रुपये हुआ। कुछ ऊपर २४ करोड़ रुपये वार्षिक सूद के रूप में विलायत चले गये। १९१३-१४ में कोई ६ लाख आदमी रेलों में मुलाज़िम थे। भारतवर्ष की कुल रेलों की लम्बाई ३५ हज़ार मील है। इसमें से २६ हज़ार मील सरकार के, ५ हज़ार मील कम्पनी के और ४ हज़ार मील देशी राज्यों के अधीन है। सरकारी लाइनों का प्रबन्ध दो तरह से होता है। (१) स्वयं सरकार के द्वारा और (२) कम्पनियों के द्वारा। स्वयं सरकार के द्वारा ७,५०० मील लाइन का प्रबन्ध हो रहा है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ये तीन रेलवे लाइनें हैं—(१) नार्थ वेस्टर्न रेलवे, (२) अवध और रुहेलखण्ड रेलवे और (३) ईस्टर्न बेंगाल रेलवे। शेष का इन्तज़ाम सरकार ने कम्पनियों को सौंप रक्खा है। कम्पनियाँ ठेके पर काम करती हैं। किन किन कम्पनियों को ठेका दिया गया है और वह कब ख़तम होगा इसका विवरण सुनिए—

कम्पनियों के नाम।	ठेके की समाप्ति का समय।	लम्बाई मील
(१) ईस्ट इंडिया रेलवे	१९१९ ईसवी	२,७१७
(२) तिरहुत स्टेट रेलवे (बेंगाल और नार्थ-वेस्टर्न रेलवे कम्पनी इस का काम करती है)	,,	७८८
(३) आसाम बेंगाल रेलवे	१९२१	८९६
(४) ग्रेड इंडियन पेनिनशुला रेलवे	१९२५	३,०२५
(५) बर्मा रेलवे	१९२८	१,३४१
(६) मदरास और सदर्न मराठा रेलवे	१९३७	३,१३२
(७) बांबे बरौदा और सेन्ट्रल इंडिया रेलवे	१९४१	३,६३७
(८) साउथ इंडियन रेलवे	१९४५	१,७५२
(९) बेंगाल नागपुर रेलवे	१९५०	२,६७३

सरकार ने १८७८ ईसवी में ग्यारंटीड़ रेलवे ख़रीदना शुरू किया और १९०८ ईसवी में आख़िरी ग्यारंटीड रेलवे ख़रीदी गई।

पूर्वोक्त विवरण से पाठक जान गये होंगे कि भारत में किन रेलों का प्रबन्ध किनके द्वारा हो रहा है और इस कारोबार में किसको कितना लाभ हुआ।

पिछली २७ जून को भारत सरकार ने एक संरकुलर निकाला है—इस हेतु से कि सरकारी (State) रेलों का प्रबन्ध कम्पनी ही के अधिकार में रहे या सरकार के, इस विषय पर सर्वसाधारण की राय ली जाय। इस पर कम्पनी के तरफ़दारों की ओर से कम्पनी के प्रबन्ध का समर्थन बड़े ज़ोरशोर से होने लगा। उन्होंने अपने पक्ष की पुष्टि में छोटे-बड़े, उचित-अनुचित, १० कारणों की एक सूची बना दी और कम्पनी के प्रबन्ध की ख़ूब प्रशंसा की। इन कारणों में से पहले छः कारण सामान्य हैं; पिछले चार का सम्बन्ध भारतवर्ष से बहुत घनिष्ठ है।

प्रयाग से अँगरेज़ी में एक मासिक पत्र निकलता है। उसका नाम है—हिन्दुस्तान रिव्यू। उसकी दिसम्बर १६ की संख्या में इस विषय पर एक लेख निकला है—सरकार बनाम हिन्दुस्तानी रेलों का कम्पनी-प्रबन्ध। उसे लिखा है मिस्टर एस० बी० डोराईस्वामी, बी० ए० ने। आपने उसमें बड़ी ही योग्यता से पूर्वोक्त कारणों का खण्डन किया है। आपने दिखाया है कि वे कारण निस्सार, निर्मूल और लोगों की आँखों में धूल झोंकने वाले हैं।

कम्पनी के तरफ़दार चाहे जितना चिल्लायँ, कम्पनी-प्रबन्ध के कुफल प्रत्यक्ष हैं। कम्पनी के प्रबन्ध की हानियों के ज्ञान से लोक अपरिचित नहीं। उसके दुष्परिणाम स्वयं-प्रकाश्य हैं। इससे नफ़े की वह रक़म जो सरकार को मिलनी चाहिए, सूद के रूप में, विलायत चली जाती है। यह बात हम नहीं कहते, भारत-सरकार के भूतपूर्व परामर्शदाता इञ्जिनियर सर गिल्डफ़र्ड मोल्सवर्थ (Sir Guildford Molesworth) साहब स्वयं ही कहते हैं। ईस्ट इंडिया एसोसिएशन में आपने कहा है—"कुछ ऊपर २४ करोड़ रुपया प्रति वर्ष, सूद के नाम से, विलायती महाजनों की जेबों में चला जाता है। यदि सरकारी प्रबन्ध हो तो यह रुपया इस देश की पैदावार और उद्योग-धन्धों की उन्नति आदि कल्याणकारी कामों में लग सके"।

३० वर्ष पहले, लार्ड रिपन के ज़माने में, इन्हीं गिल्डफर्ड साहब ने कहा था कि सरकारी प्रबन्ध से ख़र्च कम और आमदनी ज़ियादह होगी। इससे सरकार और प्रजा दोनों को लाभ होगा। कम्पनी के प्रबन्ध से, सरकारी रेलों के कर्मचारी जितनी हानि होना बताते हैं, वास्तव में उससे भी कहीं अधिक हानि हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बई के प्रसिद्ध व्यापारी सर इबराहीम रहिमतुल्ला के शब्दों में सरकारी प्रबन्ध से ये लाभ हैं—

(१) शेयरों का जो मुनाफ़ा कम्पनियों को मिलता है वह बच जायगा।

(२) आज कल माल का महसूल इतना बढ़ा चढ़ा है कि उससे स्वाभाविक रीति पर व्यापार नहीं चल सकता। सरकारी प्रबन्ध से यह बात न होगी।

(३) इस देश के उद्योग-धन्धों की वृद्धि और उन्नति होगी।

(४) अन्तर्जातीय व्यापार बढ़ जायगा।

(५) अभी रेलों का काम, लन्दन में, बोर्ड आव् डाइ-रेक्टर्स के द्वारा होता है। परन्तु भारत-सरकार का प्रबन्ध हो जाने पर यह काम भारत ही में होगा। अतएव उसे भारतीय लोगों की सम्मति भी लेनी होगी।

इसके अतिरिक्त और भी लाभ हैं। पर वे किसी न किसी रूप में प्रायः इन्हीं में समाविष्ट हो जाते हैं।

मान लिया कि सरकारी व्यवस्था लाभकारिणी है और कम्पनी की हानिप्रद है। अब प्रश्न यह है कि सरकार को रेलों का शासन अपने अधीन करना किस तरह चाहिए। कम्पनियों को सरकार ठेका दे चुकी है। इस दशा में दो उपाय हो सकते हैं। कुछ लोगों की राय है कि जब जिस कम्पनी का ठेका ख़तम हो, उसका शासन सरकार अपने अधिकार में ले ले। कुछ लोगों का ख़याल है कि इससे सरकार की हानि होगी। पिछले ५०-६० वर्षों तक सरकार .ख़ूब हानि उठा चुकी है। अतएव एक नया क़ानून बना कर उसके अनुसार दो वर्ष की मीयादी नोटिस कम्पनियों को दे दी जाय और मीयाद के बाद कुल कम्पनियों से रेलों का काम सरकार ले ले। जापान, प्रशिया, इटाली, स्विटज़रलैंड इत्यादि देशों ने ऐसा ही किया है। चाहे आज सरकार रेलों को अपने कब्ज़े में ले ले, चाहे कल और चाहे दस बीस वर्ष बाद, यह निर्विवाद है कि रेलों का प्रबन्ध सरकार द्वारा होना ही लाभ-दायक है।

५—भारतीय सैनिकों की शूर-वीरता।

भारत का प्राचीन साहित्य भारतवासियों की युद्ध-पटुता, बल-पराक्रम और शौर्य्य-वीर्य्य की गुण-गाथाओं से भरा पड़ा है। वर्तमान योरोपीय महाभारत ने भी इस बात को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है।

१९११ ईसवी के देहली-दरबार से पहले भारतवासी सैनिक "विक्टोरिया क्रास" नामक शूरता-सूचक पदक पाने के अधिकारी न समझे जाते थे। उसके बाद से सरकार हमें भी उसके दान का पात्र समझने लगी। फल यह हुआ कि हिन्दुस्तानी सिपाहियों को भी धड़ाधड़ विक्टोरिया क्रास मिलने लगे। विक्टोरिया क्रास उस सिपाही को मिलता है जिसने समर-स्थल में असाधारण वीरता और आत्मत्याग का परिचय दिया हो। यह क्रास सैनिकों के लिए अत्यन्त सम्मान का सूचक है। विक्टोरिया क्रास पाने वाले कुछ भारतीय सैनिकों का परिचय नीचे दिया जाता है—

१—सिपाही .ख़ुदादाद, बारहवीं बलूची पलटन—३१ अक्तूबर १९१४ ईसवी को बेलजियम में एक जगह एक अँगरेज़ अफ़सर घायल हो गया। वह अफ़सर .ख़ुदादाद ही की टोली का था। इसके बाद एक गोला लगने से उसकी टोली की दूसरी मैशीन-गन बे-काम हो गई। सिपाही .ख़ुदादाद भी घायल हो गया। पर जब तक उसकी टोली के बाक़ी बचे हुए पाँच आदमी मर न गये तब तक वह बराबर अपनी मैशीन-गन चलाता रहा।

२—नायक दराबनसिंह नेगी, एक-उन्तालीसवीं गढ़वाल रायफ़ल्स—२३—२४ नवम्बर १८१४ की रात को फ़्रांस के मैदान में उसके दो जगह, सिर में और हाथों में, चोट आ गई। जहाँ उसकी पलटन तैनात थी वहाँ बम के गोले और गोलियाँ बरस रही थीं। ऐसी दशा में उसने शत्रुओं को मोरचे से भगाने में बड़ी वीरता दिखाई।

३—जमादार मीरदस्त, पचपनवीं कोक्स रायफ़ल्स—२६ अप्रेल १९१५ को एक स्थान में शत्रु पर धावा किया गया। उस समय जमादार मीरदस्त ने असाधारण वीरता और योग्यता का परिचय दिया। धावे के बाद भी, जब कोई अँगरेज़ अफ़सर वहाँ न रह गया था, जमादार ने अपनी पलटन का सञ्चालन बड़ी .ख़ूबी से किया। इसके पश्चात् गोलियों की वर्षा की परवा न करके ८ अँगरेज़ और हिन्दुस्तानी अफ़सरों को उसने सुरक्षित स्थान में पहुँचाया। उस समय भी उसने बड़ी वीरता दिखलाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—रायफल-मैन कुलवीर थापा, दूसरी-तीसरी गुरखा रायफल्स—जर्मनों के साथ युद्ध में एक जगह वह घायल हुआ। उसी दशा में, २५ सितम्बर १९१५ को, उसने जर्मन मोरचों के पास से कितने ही गुरखा, हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ सैनिकों को रक्षा और आराम की जगह पहुँचाया। उसकी निज की दशा इतनी ख़राब थी कि लोगों ने उसे जर्मन मोरचों के पास ठहरने से मना किया। पर उसने न माना और अपनी जान ख़तरे में डाल कर भी—शत्रुओं की गोलियों की परवा न करके भी—सच्ची बहादुरी का परिचय दिया।

५—लैन्स नायक लाला, इकतालीसवीं डोगरा पलटन—इसने एक और पलटन के एक अँगरेज़ अफ़सर को शत्रु के पन्जे से बचा कर एक सुरक्षित स्थान में ला रक्खा। इस स्थान पर वह पहले भी ४ चार घायलों की मरहम-पट्टी कर चुका था। नये घायल अफ़सर के घावों को वह बाँध ही रहा था कि इतने में अपनी पलटन के एक और घायल अफ़सर की आवाज़ उसने सुनी। शत्रु १०० गज़ से ज़ियादह दूर न था। इस दशा में उस घायल अफ़सर के पास जाना अपनी जान गवाना था। तथापि लैन्स नायक उसे ले आने को तैयार हो गया। बड़ी कठिनता से उसे वहाँ जाने की आज्ञा मिली। उसने अपने कपड़े उतार कर अपने घायल अफ़सर पर डाले। अँधेरा होने पर, उसने उस अफ़सर को अपने मोरचों पर पहुँचाया।

६—सिपाही चत्तासिंह, नवीं भोपाल इन्फन्ट्री—इसका कमांडिंग अफ़सर घायल हो गया। वह खुले मैदान में निस्सहाय पड़ा था। चत्तासिंह ने उसके घावों पर पट्टी चढ़ाई और उसकी रक्षा के लिए एक गढ़ा खोद दिया। इस समय चारों ओर से गोलियों की वर्षा हो रही थी। पाँच घण्टे तक उसने उसे अपनी आड़ में रक्खा कि कहीं उसे और चोट न लग जाय। रात हो जाने पर उसने उसे आराम की जगह पहुँचा दिया।

७—नायक शाहमदख़ाँ, पन्जाबी पलटन—शत्रु के मोरचे से कोई १५० गज़ के फ़ासिले पर मशीन-गन-विभाग में यह तैनात था। उसने शत्रुओं के तीन लगातार आक्रमणों को विफल किया। प्रशंसा की बात तो यह कि उस समय वह अकेला था—उसके और साथी मर चुके थे। तीन घण्टे तक वह वहीं डटा रहा और गन चलाता रहा। जब शत्रु के गोलों से मशीन-गन लुढ़क गई तब वह बन्दूक़ लेकर गोलियाँ चलाने लगा। जब लौटने का हुक्म मिला तब उसने वह जगह छोड़ी। अगर उस समय वह ऐसी बहादुरी न दिखाता तो शत्रु मोरचा छीन लेते।

इसके अतिरिक्त भारतीय सेना ने, अभी हाल में, मेसोपटेमिया में जिस अद्भुत वीरता का परिचय दिया है उसकी प्रशंसा सभी कर रहे हैं। बग़दाद के पतन का अधिकांश श्रेय हिन्दुस्तानी फ़ौज ही को दिया जा रहा है।

बात यह है कि भारतीय अब भी वैसे ही शूर, वीर, साहसी, पराक्रमी और आत्मत्यागी बने हुए हैं। आवश्यकता है केवल अनुकूल अवसर दिये जाने की। जब जब उन्हें अवसर मिला है उन्होंने अपने गुणों का पूरा पूरा परिचय दिया है।

६—बच्चों के जन्म का परिमाण।

क्या आप जानते हैं कि अधिक से अधिक बच्चे किन देशों में पैदा होते हैं—अर्थात् सन्तानोत्पत्ति में कौन देश आगे बढ़े हुए हैं? यदि नहीं तो, इसका ब्योरा नीचे देखिए—

रूस	४४	फ़ी हज़ार
रूमानिया	४४	,,
भारतवर्ष	३८.४८	,,
हंगरी	३६.३	,,
जापान	३३.९	,,
इटाली	३२.४	,,
आस्ट्रिया	३१.३	,,
जर्मन राज्य	२८.८	,,
आस्ट्रेलिया	२८.३	,,
हालेंड	२८.१	,,
स्काटलेंड	२५.६	,,
इँगलेंड और वेल्स	२३.८	,,
आयरलेंड	३३.०	,,
बेलजियम	२२.६	,,
फ़्रांस	१९.०	,,

पूर्वोक्त देशों के सामने जो संख्यायें लिखी गई हैं वे एक वर्ष में फ़ी हज़ार मनुष्य पीछे सन्तानोत्पत्ति की सूचक हैं। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध होता है कि जो देश जितने ही अधिक सभ्य हैं उनमें उतनी ही कम सन्तानोत्पत्ति होती है। कहीं कहीं तो, सुनते हैं, कृत्रिम उपायों से सन्तानोत्पत्ति रोकी जाती है। इसका परिणाम भयङ्कर होगा। इसीसे फ़्रांस में स्त्रियों के सन्तान-जनन के उपलक्ष्य में कुछ इनाम देने का नियम किया गया है।

७—नीरोगता-निदर्शक शरीर-स्थिति।

बहुत कम लोग बता सकते हैं कि कौन मनुष्य नीरोग है और कौन नहीं। अतएव एक ऐसा नक़शा नीचे दिया जाता है जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य के शरीर की जाँच करने से उसके नीरोग अथवा सरोग होने का पता लग जाता है। यह बात आवश्यक नहीं कि प्रत्येक नीरोग मनुष्य के शरीर की स्थिति ऐसी ही होनी चाहिए। तथापि सामान्यतः यह तालिका प्रमाण-योग्य है। पहले अपने शरीर की उँचाई मालूम कर लीजिए, फिर नीचे लिखा हुआ नक़शा देखिए। यदि आपके शरीर की स्थिति इस नक़शे से मिलती जुलती है तो आप नीरोग हैं।

उँचाई	वज़न	छाती	कमर	भुजदण्ड	हाथ की पिँडली	जाँघ	पैर की पिँडली	गर्दन
फ़ीट—इञ्च	पौंड	इञ्च	इञ्च	इञ्च	इञ्च	इञ्च	इञ्च	इञ्च
५—०	११६	३४	२५ १/४	११ ३/४	११	१८	१२	१२ १/२
५—१	१२०	३५	२५ ३/४	१२	११ १/४	१८ १/२	१२ १/४	१२ ३/४
५—२	१२६	३६	२६ १/२	१२ १/४	११ १/२	१९	१२ १/२	१३
५—३	१३३	३७	२७ १/४	१२ १/२	११ ३/४	१९ १/२	१२ ३/४	१३ १/४
५—४	१३६	३८	२८	१२ ३/४	१२	२०	१३	१३ १/२
५—५	१४२	३८ १/२	२८ ३/४	१३	१२	२० १/२	१३ १/४	१३ ३/४
५—६	१४३	३९	२९ १/४	१३ १/४	१२ १/४	२१	१३ १/२	१४
५—७	१४६	३९ १/२	३० १/४	१३ १/२	१२ १/४	२१ १/२	१३ ३/४	१४ १/४
५—८	१५५	४०	३० ३/४	१३ ३/४	१२ १/२	२२	१४	१४ १/२
५—९	१६१	४० १/२	३१ १/२	१४	१२ ३/४	२२ १/२	१४ १/४	१४ ३/४
५—१०	१६६	४१	३२ १/४	१४ १/४	१२ ३/४	२३	१४ १/२	१५
५—११	१७४	४१ १/२	३२ ३/४	१४ १/२	१३	२३ १/२	१४ ३/४	१५ १/४
६—०	१७८	४२	३३ १/४	१४ ३/४	१३	२४	१५	१५ १/२

नोट—एक पौंड कोई आध सेर के बराबर होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—बाबा गम्भीरनाथ का शरीर-त्याग ।

गोरखपुर में गुरु गोरखनाथ की एक गद्दी है। उसके महन्त बाबा गम्भीरनाथ अच्छे महात्मा थे। कोई ८० वर्ष की उम्र में, २१ मार्च १९१७ को, उनका शरीर छूट गया। उनका संक्षिप्त चरित एक सज्जन ने लिख भेजने की कृपा की है। उनके लेख का आशय नीचे दिया जाता है—

बाबा गम्भीरनाथ के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनायें बहुत ही कम ज्ञात हैं। तथापि इतना अवश्य मालूम हुआ है कि उनका जन्म जम्बू के एक राज-पुरोहित के घर में हुआ था। गोरखनाथ के सम्प्रदाय के अनुयायी महन्त गोपालनाथ से उन्होंने दीक्षा ली। उस समय गम्भीरनाथ की उम्र १६ वर्ष की थी। इसके बाद उन्होंने केवल एक कौपीन और एक कमण्डलु लेकर तीर्थाटन के लिए प्रस्थान किया। चिरकाल तक वे नाना स्थानों में घूमते, सत्सङ्ग का सुख लूटते और तपस्या करते फिरे। खाने-पीने की बहुत ही कम अपेक्षा रख कर वे कठिन साधनाओं में निरत रहे। फल यह हुआ कि युवावस्था ही में उन्हें अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं। जहाँ वे जाते वहीं जन-समुदाय उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ता। उनके शिष्य भी बहुत हैं। आठ सौ के क़रीब तो बङ्गवासी ही उनके शिष्य हैं। प्रयाग के पास झूँसी और गया में ब्रह्मयोनि के नीचे कपिलधारा में वे बहुत समय तक रहे। वहाँ उनकी गुफ़ायें अब तक विद्यमान हैं। हिमालय के कई प्रदेशों में भी उनकी गुफ़ायें सुनने में आती हैं। रुपया-पैसा, चीज़-वस्तु जो कुछ उनको भेंट में दिया जाता उसे वे स्पर्श तक न करते। जब वे गया में थे तब हफ़्ते में केवल एक बार अपनी गुफ़ा से बाहर निकलते और थोड़ा सा दूध पीकर फिर गुफ़ा के भीतर चले जाते। जो साधु वहाँ पर आपकी सेवा के लिए थे उनकी सम्मति है कि बाबा गम्भीरनाथ का निर्विकार भाव और समदर्शित्व चरम सीमा को पहुँच गया था।

कोई २० वर्ष हुए, जब बाबा गम्भीरनाथ गोरखपुर की गद्दी सनाथ करने के लिए अपने सम्प्रदाय के द्वारा बुलाये गये थे। तब से अन्त समय तक आप वहीं रहे। आपकी प्रकृति जैसी भव्य थी, आकृति भी वैसी ही थी। आपके दर्शनों से दर्शकों का दह्यमान हृदय भी शीतल हो जाता था। आप पूरे योगी थे। दुःख की बात है, ऐसा सिद्ध पुरुष और ऐसा महात्मा संसार से उठ गया!

पुस्तक-परिचय ।

१—प्रसूति-शास्त्र, प्रथम भाग—इस पुस्तक को देख कर पुराना दुःख नया हो गया। राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता-पुत्र का जैसा है। पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्तति के भरण-पोषण ही का नहीं, किन्तु उसकी शिक्षा और आरोग्य-रक्षा का भी प्रबन्ध करे। राजा का भी यही कर्त्तव्य है। इसी लिए गवर्नमेंट ने स्कूल, कालेज, मदरसे और शफ़ाख़ाने खोल रक्खे हैं। नीरोग रहने ही से मनुष्य शिक्षा-प्राप्ति कर सकता है। पर शिक्षा-प्राप्ति का जितना सुभीता गवर्नमेंट कर सकी है, आरोग्य-रक्षा का उतना नहीं। प्रत्येक ज़िले के सदर मुक़ाम में अब तक एक ही शफ़ाख़ाना है। कहीं कहीं, बड़े बड़े क़सबों में भी, छोटे छोटे सरकारी दवाख़ाने हैं। पर इतने दवाख़ाने पर्य्याप्त नहीं। उधर गवर्नमेंट आयुर्वेद की चिकित्सा को उत्तेजना नहीं देती। उसके विषय में उसकी राय अच्छी नहीं। वह उसे वैज्ञानिक भित्ति पर स्थित नहीं समझती। पर अधिकांश प्रजा को लाभ उसीसे पहुँचता है, डाक्टरी चिकित्सा से नहीं। डाक्टरी चिकित्सा में ख़र्च अधिक पड़ता है। फिर इस चिकित्सा से शहरों और बड़े बड़े क़सबों के ही निवासी लाभ उठा सकते हैं, देहाती नहीं। तथापि गवर्नमेंट को कर के रूप में जो करोड़ों रुपया मिलता है उसका अधिकांश इन्हीं अपढ़ और अकिञ्चन देहातियों की बदौलत मिलता है। इस दशा में यही लोग औरों की अपेक्षा आरोग्य-रक्षा के अधिक मुस्तहक़ हैं। अस्तु।

ख़ज़ाने में रुपये की कमी के कारण जब तक गवर्नमेंट सारी प्रजा के रोग-निवारण का प्रबन्ध नहीं कर सकती तब तक प्रजा ही को यह काम क्यों न करना चाहिए? परन्तु, दुःख की बात है, डाक्टरी चिकित्सा ने हमारा प्रेम आयुर्वेद पर कम कर दिया है। इस भूल का परिमार्जन हो जाना बहुत आवश्यक है। जो लोग डाक्टरी की शिक्षा पाये हुए हैं और जो हमारे आयुर्वेद के भी ज्ञाता हैं वे यदि चाहें तो आयुर्वेद की महिमा का पुनरुज्जीवन कर सकते हैं। डाक्टर यदि आयुर्वेद की उपयोगिता सब को बताने की चेष्टा करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

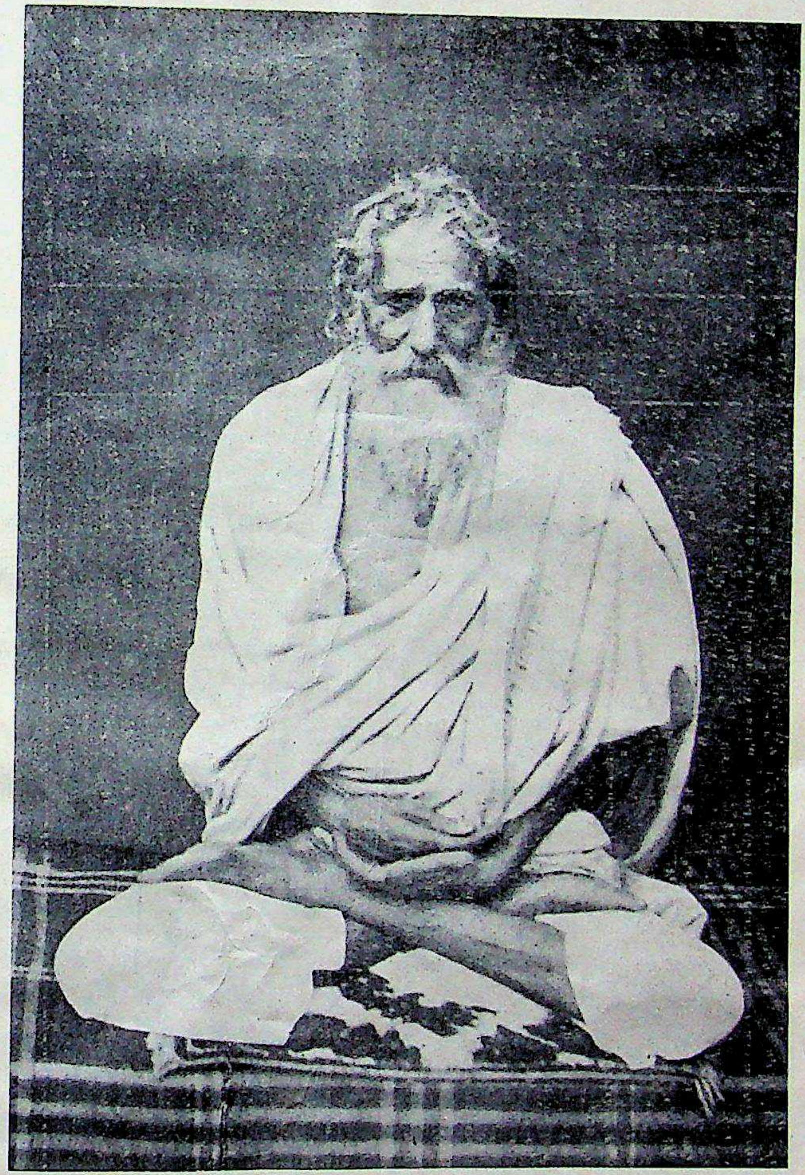

बाबा गम्भीरनाथजी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अधिक वैद्य तैयार हों और लोगों की श्रद्धा वैद्यक पर बढ़ जाय। फल यह हो कि वैद्यों की संख्या भी बढ़े और लोग डाक्टरी इलाज के लिए लालायित न होकर अपने घर की दवाओं से लाभ उठावें।

डाक्टर प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस०, सुयोग्य डाक्टर भी हैं और आयुर्वेद-ग्रन्थों के ज्ञाता भी हैं। हिन्दी में कई उपयोगिनी पुस्तकें भी आप लिख चुके हैं। "आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा" नाम की एक पुस्तक, जो बहुत समय से प्रचलित है, आप ही की लिखी हुई है। इसके सिवा प्लेग, हैज़ा, जूड़ी-बुख़ार और गर्भ-रक्षा पर भी आपने छोटी छोटी पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं। ये सभी पुस्तकें सर्व-साधारण के बड़े काम की हैं। अब आपने एक और पुस्तक प्रकाशित की है। यह उन सबसे अच्छी है। इसमें क्या है, यह बात इसका नाम—प्रसूति-शास्त्र—ख़ुद ही बता रहा है। इसे पढ़ने पर हम लोगों की श्रद्धा आयुर्वेद पर यदि बढ़ेगी नहीं, तो थोड़ी-बहुत उत्पन्न अवश्य हो जायगी। क्योंकि इसमें डाक्टर साहब ने आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों से जगह जगह पर वचन उद्धृत करके उनकी और डाक्टरी चिकित्सा के अनेक सिद्धान्तों की एक-वाक्यता सिद्ध की है। इस शास्त्र के सम्बन्ध में डाक्टरी चिकित्सा में कुछ बातें ऐसी हैं जो हमारे यहाँ नहीं। पर आश्चर्य्य की बात तो यह है कि कुछ ऐसी भी हैं जो इस बढ़े हुए विज्ञान के ज़माने में भी डाक्टरी चिकित्सा में नहीं। बिना सूक्ष्मदर्शक या और किसी यन्त्र के ही हमारे प्राचीन आचार्य्यों ने गर्भ की प्रारम्भिक दशा के रूप-रङ्ग और आकार-प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। यह ज्ञान किसी अंश तक आज कल के भी शरीर-शास्त्रियों और डाक्टरों को नहीं प्राप्त हुआ।

इस पुस्तक की पृष्ठ-संख्या डेढ़ सौ के ऊपर है। बड़े सुन्दर और चिकने काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपी है। अनेक चित्रों से अलङ्कृत है। सभी आवश्यक विषय चित्र देकर समझाये गये हैं। चित्राधिक्य ही के कारण पुस्तक की क़ीमत ढाई रुपये रखनी पड़ी है। आरम्भ में ४ पृष्ठों की एक भूमिका अँगरेज़ी में है। जो वैद्य अच्छे संस्कृतज्ञ नहीं, अतएव जो चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों से लाभ नहीं उठा सकते वे इस पुस्तक की बदौलत आयुर्वेद के प्रसूति-विषयक लुप्तप्राय सिद्धान्तों से अवश्य ही परिचित हो जायँगे। अँगरेज़ी पढ़े हुए शिक्षित मनुष्य और डाक्टर भी यदि कृपा-पूर्वक इस पर एक नज़र डालेंगे तो उन्हें भी आयुर्वेद की थोड़ी-बहुत महत्ता और उपयोगिता ज्ञात हो जायगी। आज कल देहात में प्रसूति-सम्बन्धी काम अपढ़ और उजड्ड दाइयाँ ही करती हैं। इस कारण प्रसूता पर कभी कभी घोर आपत्तियाँ आ जाती हैं। बच्चे की मृत्यु हो जाती है और यदा कदा माता को भी अपने प्राण खोने पड़ते हैं। इस दृष्टि से यह पुस्तक पढ़ी-लिखी स्त्रियों और साधारण गृहस्थों के लिए अनमोल है। इस शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाली मोटी मोटी बातें मालूम कर लेने पर प्राणनाशक भूलें होने का डर कम हो सकता है। इसमें प्रसूति-विषयक आवश्यक अवयवों के वर्णन और उनके कार्य्य-निरूपण के सिवा चिकित्सा का भी उल्लेख है। चिकित्सा यद्यपि डाक्टरी सिद्धान्तों का अनुसरण करती है, तथापि यथासम्भव कहीं कहीं पर देशी दवायें भी लिख दी गई हैं। लेखक ने डाक्टरी के वैज्ञानिक शब्दों के पर्य्यायवाची संस्कृत-शब्दों की खोज और रचना में बड़ी योग्यता दिखाई है। जो भाव अँगरेज़ी या लैटिन के शब्द से सूचित होता है वही संस्कृत के शब्द से भी सूचित होता है। आपने पाद-टीकाओं में कितने ही संस्कृत-ग्रन्थों के वचन उद्धृत करके यह दिखाया है कि कौन सा पर्य्यायवाची संस्कृत शब्द किस ग्रन्थ में मिलता है। आयुर्वेद-ग्रन्थों में कुछ अवयवों के नाम ऐसे पाये जाते हैं जिनके स्थान का निश्चय नहीं। प्राचीन आचार्य्यों में उस विषय में मत-भेद है। डाक्टर साहब ने इस पुस्तक में उनका स्थान भी स्थिर करने की चेष्टा की है। यह भी इस पुस्तक की एक विशेषता है। डाक्टर लोग प्रायः समझते हैं कि आयुर्वेद में प्रसूति-शास्त्र है ही नहीं। पर यह पुस्तक पढ़ने पर उनका वह भ्रम दूर हो जायगा। आर्य्य-वैद्यक में इस विषय का भी अच्छा विवेचन है।

यह इस पुस्तक का पहला ही भाग है। सम्भव है, इसके अगले भाग भी शीघ्र ही निकलें। मिलने का पता (१) पण्डित श्रीहरदेवनारायण झा, अहियापुर, इलाहाबाद और (२) मैनेजर, नारायण मेडिकल हाल, माल, कानपुर।

❋

२—चिकित्सक। इस नाम का एक नया मासिक पत्र कानपुर के जगद्भास्कर औषधालय से निकला है। इस औषधालय के मालिक पण्डित किशोरीदत्तजी शास्त्री हैं। वही इस पत्र के प्रकाशक हैं। आप अच्छे विद्वान् और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत अच्छे वैद्य हैं। एक लड़के को हलका सा उन्माद हो गया। उसके कई दौरे हुए। डाक्टरी इलाज से कुछ लाभ न हुआ। तब किशोरीदत्तजी का आश्रय लिया गया। आपने उसे देखा। अपने मित्र पण्डित रामेश्वरजी वैद्य-शास्त्री को भी दिखाया। फिर ऐसी चिकित्सा की कि लड़का तीन ही चार रोज़ में आराम हो गया। तब से कोई ६ महीने हुए, फिर उस रोग का दौरा नहीं हुआ। अतएव ऐसे सद्वैद्य के आश्रय में इस नये पत्र की उन्नति होने की पूर्ण आशा है। यह भी आशा है कि इससे सर्वसाधारण को विशेष लाभ पहुँचेगा। इसका नाम ही कह रहा है कि यह वैद्य-विद्या-विषयक पत्र है। इसका जन्म इसी चैत्र से हुआ है। वार्षिक मूल्य केवल १।) है। इसके पहले अङ्क में एक कविता, तीन लेख, कई "प्रयोग" और कितने ही नुसख़े हैं। कुछ प्रश्नोत्तर और समाचार-संग्रह भी हैं।

❋

३—प्रतिभा। यह एक नई मासिक पत्रिका है। मुरादाबाद के लक्ष्मीनारायण प्रेस से निकली है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित ज्वालादत्तजी शर्म्मा इसके सम्पादक हैं। सरस्वती के पाठक आपसे ख़ूब परिचित हैं। वे जानते होंगे कि शर्म्माजी सरस, बामुहावरा और साथ ही प्रौढ़ भाषा लिखने में कितने पटु हैं। ऐसे सुयोग्य सम्पादक के तत्त्वावधान में, आशा है, प्रतिभा का उत्तरोत्तर विकास होगा।

इसका पहला अङ्क अप्रेल १९१७ में प्रकाशित हुआ है। उसमें छोटे बड़े १० लेख और ४ कवितायें हैं। साहित्य, शिक्षा, उद्योगधन्धा, विज्ञान, जीवनचरित और आख्यायिका—इतने विषयों पर इसमें लेख प्रकाशित हुए हैं। लेखों के सम्बन्ध में सामयिकता और रोचकता का बहुत कुछ ख़याल रक्खा गया है।

विवाद-ग्रस्त राजनैतिक और साम्प्रदायिक लेखों से यह पत्रिका निर्लिप्त रहेगी। इसके इस अङ्क में ३२ पृष्ठ हैं। छपाई सफ़ाई अच्छी है। हम इस नवीन पत्रिका के विकास की हृदय से अभिलाषा रखते हैं। वार्षिक मूल्य इसका दो रुपये है।

❋

४—आई बापांस चार शब्द—लेखक और प्रकाशक श्रीयुत विनायक सीताराम सरवटे, बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰, इन्दौर। आकार डबल क्राउन १६ पृष्ठ; पृष्ठ-संख्या ३८; मूल्य ।~) श्रीयुत सी॰ वि॰ सरवटे, देवास, से प्राप्य। छपाई बम्बई के निर्णयसागर प्रेस की। इस पुस्तक की भाषा मराठी है। बच्चों का पालन-पोषण किस तरह करना चाहिए, आजकल के माँ-बाप कहलाने वाले गृहस्थ इस विषय से कितने अनभिज्ञ हैं, उनका कर्तव्य क्या है, बच्चों के साथ कैसा बरताव करना चाहिए, इत्यादि बड़े महत्त्व की ज्ञातव्य बातें इसमें लिखी गई हैं। पुस्तक बाल-बच्चेदार गृहस्थों के बड़े काम की है।

❋

५—कर्म-दर्पण—इस ३२ पृष्ठों की पुस्तक की रचना मौज़ा मौरावां, ज़िले उन्नाव के रहने वाले पण्डित रामनाथ पाठक ने की है। दाम डेढ़ आने है। छपाई और काग़ज़ बहुत साधारण है। पुस्तक कान्यकुब्ज-ब्राह्मणों के आचार-व्यवहार में सुधार करने के इरादे से लिखी गई है। ख़ूब खरी खरी बातें सुनाई गई हैं। स्मृत्यादिकों के प्रमाण भी दिये गये हैं। भाषा देहाती है। इस कारण उसमें एक अनोखा रस है।

❋

६—साहित्यदर्पणः। संस्कृत में यों तो साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ हैं। पर काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण, यही दो ग्रन्थ अधिक प्रचलित हैं। काव्यप्रकाश क्लिष्ट ग्रन्थ है; साहित्यदर्पण वैसा नहीं। इसी से विद्यार्थी और साहित्य-प्रेमी पिछले ग्रन्थ को अधिक पढ़ते हैं। संस्कृत-परीक्षाओं के पाठ्य-ग्रन्थों में भी वह नियत है। उसके रचयिता हैं "कविसूक्तिरत्नाकराष्टादशभाषावारविलासिनीभुजङ्ग" महापात्र विश्वनाथ कवि। साहित्यदर्पण में साहित्य के अन्यान्य अङ्गों के निरूपण के साथ दृश्यकाव्य; अर्थात् नाट्य-विषय, का भी विस्तृत विवेचन है। दशरूपक को छोड़ कर अन्य ग्रन्थों में यह बात अधिक नहीं। साहित्यदर्पण की कई टीकायें उपलब्ध हैं, पर वे सब बहुत बड़ी नहीं हैं। उनमें विशेष करके क्लिष्ट स्थलों पर ही टीका की गई है। इस त्रुटि को दूर करने के लिए पण्डित शिवदत्तजी कविरत्न ने रुचिरा नाम की एक टीका रची है। यह टीका क्या, बड़ी विशद व्याख्या है। व्याख्याकार ने मूल का एक भी पद टीका करने—उसका आशय समझाने—से नहीं छोड़ा। प्रस्तुत पुस्तक को इसी विस्तृत व्याख्या से समलङ्कृत करके बम्बई के श्रीवेङ्क-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेश्वर प्रेस ने प्रकाशित किया है। पुस्तक बड़े आकार के कोई ६०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। काग़ज़ अच्छा है। मूल का टाइप बड़ा और व्याख्या का छोटा है। जिल्द बँधी हुई है। मूल्य ५) है। इस ग्रन्थ की इतनी विस्तृत व्याख्या लिखने में कविरत्नजी ने बड़ा परिश्रम किया है। आप अच्छे विद्वान् और साहित्यशास्त्र के उत्तम ज्ञाता मालूम होते हैं। अट्ठारह भाषायें जानने का गर्व-वहन करने वाले विश्वनाथजी के आशय को आपने बड़ी ख़ूबी से, सुन्दर और सरल संस्कृत में, समझाया है। परीक्षायें पास करने के अभिलाषी छात्रों के लिए तो यह पुस्तक बहुत ही उपयोगिनी है। संस्कृत-साहित्य के अन्य प्रेमी भी इससे यथेष्ट ज्ञान-लाभ और आनन्द-प्राप्ति कर सकेंगे।

❋

७—जातकतत्त्व (हिन्दी भाषा टीकासहित)—लेखक—दैवज्ञ श्रीमहादेव शर्म्मा; टीकाकार और प्रकाशक—ज्यौतिषरत्न श्रीनिवास शर्म्मा, रतलाम (मध्यभारत); आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ३२६; जिल्द कपड़े की; मूल्य ढाई रुपया; प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक का विषय फलित-ज्योतिष है, यह इसके नाम—जातकतत्त्व—से ही प्रकट है। पुस्तक के लेखक, श्रीमहादेव शर्म्मा, नामी ज्योतिषी थे। पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि आपने "पाराशरी होरा, लोमश-संहिता, जैमिनि-सूत्र, जातकाभरण × × × इत्यादि जितने प्राचीन तथा अर्वाचीन फलितशास्त्र के उपलब्धग्रन्थ हैं, उन अनेक ग्रन्थों का सार लेकर एक श्लोक का तात्पर्य्य चार चार छः छः अक्षरों में खींच कर" इस ग्रन्थ की रचना की है। सुनते हैं, कहीं कहीं ज्योतिष के विद्यार्थियों को यह पुस्तक पढ़ाई भी जाती है।

पण्डित श्रीनिवास शर्म्मा पुस्तक-प्रणेता के पुत्र हैं। आप ही ने इसकी हिन्दी-टीका लिखी है। टीका की भाषा सरल है। पर उसमें प्रान्तीयता की झलक आ गई है। तथापि विशेषतः फलित ज्योतिष के विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। मूल-पुस्तक संस्कृत-गद्य में क्या, एक प्रकार के छोटे छोटे सूत्रों में है। वह ५ मुख्य भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग की तत्त्व संज्ञा है। यथा—(१) संज्ञा-तत्त्व, (२) सूतिका-तत्त्व, (३) प्रकीर्ण-तत्त्व, (४) स्त्री-जातक-तत्त्व और (५) दशा-तत्त्व। इनके अन्तर्गत फलित-ज्योतिष-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य विषयों का वर्णन है। ज्योतिषी इससे अवश्यमेव लाभ उठा सकते हैं।

❋

८—The Study of Jainism—यह पुस्तक अँगरेज़ी भाषा में है। आकार इसका मँझोला और पृष्ठ-संख्या सौ के ऊपर है। मूल्य १२ आने है। इस पुस्तक की रचना सरस्वती-पाठकों के परिचित लाला कन्नोमलजी, एम० ए०, ने की है। इसमें चार अध्याय हैं। पहले में जैनों के तत्त्व-विचार, दूसरे में जैनों के तीर्थङ्कर, तीसरे में जैन साधुओं के आदर्श और चौथे में जैन गृहस्थों के आदर्श का विवेचन है। इस प्रकार जैन धर्म्म से सम्बन्ध रखने वाली अनेक ज्ञातव्य बातों का वर्णन इसमें है। पुस्तक अच्छे टाइप और अच्छे काग़ज़ पर छपी है। पढ़ने लायक़ है। मिलने का पता—आत्माराम-जैन-पुस्तक-प्रचारक मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा।

❋

९—भारतीय घरों में रोगी-सेवा। आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या २३६; छपाई, काग़ज़ और भाषा साधारण; मूल्य १ रुपया; अनुवादकर्त्री—प्रोफ़ेसर हशमतराय की धर्म्मपत्नी श्रीमती कौशल्या देवी, प्रोफ़ेसर, क्वीन मेरी कालेज, लाहोर से प्राप्य। यह मेजर आर० जे० ब्लैकहम साहब, सी० आई० ई० की एक अँगरेज़ी-पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। पुस्तक सचित्र है। डाक्टरों के विचारों और डाक्टरी चिकित्सा के नियमों के अनुसार रोगी का घर कैसा होना चाहिए, उसे किस तरह रखना चाहिए, औषधोपचार का कैसा प्रबन्ध करना चाहिए, परिचारक या परिचारिका में क्या गुण होने चाहिए—इन्हीं बातों का इसमें वर्णन है। बड़े काम की पुस्तक है। पढ़ी-लिखी स्त्रियों को इसमें उल्लिखित बातों से अवश्य जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

❋

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी मिल गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) आदर्श हिन्दू-विवाह—प्रकाशक, तिर्हुत-विद्याप्रचारिणी सभा, मुज़फ़्फ़रपुर।

(२) रिपोर्ट सालाना, आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर
(३) गुरु-घण्टाल का दूसरा व्याख्यान
} प्रकाशक, ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) चानक्य-नीति-दरपन, हिस्सा अव्वल व दोम
(५) अनमोल बूटी
(६) जैन-वैराग्य-शतक
(७) भोज-प्रबन्ध-नाटक
} लेखक— ख़ादिमुल-मुल्क बिहारीलाल मास्टर बुलन्दशहरी।

(८) साधुबेला तीर्थ—लेखक, व्यास मोतीराम शर्म्मा, शिकारपुर (सिन्ध)।

(९) जानकी-माई-हित-विनय—प्रेषक, पं० दयाशङ्कर वाजपेयी, खरौद, बिलासपुर।

(१०) पञ्चशर—लेखक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा, आरा।

(११) काशीनरेश की संक्षिप्त जीवनी—प्रेषक, पं० हरिहरप्रसाद शर्म्मा, बरियारपुर, स्टेट बनारस।

(१२) नागरी-प्रचारिणी सभा, इटावा, की वार्षिक रिपोर्ट } प्रकाशक, बाबू सूर्य्यनारायण अग्रवाल, इटावा।

(१३) श्रीरघुराज गुणकीर्तन
(१४) विक्टोरिया-वियोग
(१५) श्रीकरुणापचीसी
(१६) प्रह्लाद-नाटक
} लेखक, पण्डित सुन्दरलाल शर्म्मा त्रिवेदी, राजिम।

(१७) अञ्जलिः—लेखक, श्रीनीलकमल भट्टाचार्य्य, एम० ए०, संस्कृताध्यापक, हिन्दू-कालेज, बनारस।

(१८) वेश्या का फन्दा—लेखक, बाबू हरसुखराय छावछरिया, कलकत्ता।

(१९) श्रीरामनामामृत—संग्रहकर्त्ता, ,, ,,

(२०) मनमोहनी—लेखक, लाला अनूपचन्द्र आफ़्ताब पानीपती।

चित्र-परिचय।

अति-विलम्ब।

अपने ही आलस्य, अनुद्योग और अविवेक से पराहत किसी जाति-विशेष ने अपनी उन्नति की सारी आशायें नष्ट कर दीं। यहाँ तक कि इन विनष्ट आशाओं को पृथ्वी के पेट में गड़ जाना पड़ा—वे एक क़बर में दफ़ना दी गईं। आशाओं की यह दशा होने पर वह जाति अपरिमेय दुःख और शोक के समुद्र में निमग्न हो गई। निराशा से उत्पन्न हुए आकुल-भाव से सन्तप्त-हृदय होकर वह उस क़बर के पास गई। वहाँ वह बाल बखेरे और घुटनों पर सिर टेके विलाप करने लगी। उसका वह कारुणिक विलाप सुन कर एक उत्कट-देशानुराग-पूर्ण और अनेक-गुण-गण-मण्डित जाति को दया आई। वह उस विषण्ण और शोकाकुल जाति का उद्धार करने की इच्छा से उसके पास पहुँची। पर कब? जब बहुत देर हो चुकी थी—जब उद्धार का अवसर हाथ से निकल गया था—जब उस अभागिनी जाति की आशा-कुसुम-कलिकाओं पर तुहिन-पात हो चुका था। इस प्रकार अपने आने में अति-विलम्ब हुआ जान उस सौभाग्यशालिनी आगन्तुक जाति को पराकाष्ठा का दुःख हुआ। जो हृदय-विदारक दृश्य उसने देखा उससे वह काँप उठी; विषाद से वह अभिभूत हो उठी। उसके होश ठिकाने न रहे और जो फूल वह हाथ में लिये थी उनमें से अधिकांश भूमि पर गिर गये।

इस संख्या के आरम्भ में "अति-विलम्ब" (Too Late) नामक जो रङ्गीन चित्र प्रकाशित है उसमें लाहोर के चित्रकार एम० ए० रहमान चुग़ताई ने यही दृश्य अङ्कित किया है। यह दृश्य कितना सच्चा, कितना समयानुरूप और कितना प्राकृतावस्था-व्यञ्जक है; इसके बताने की ज़रूरत नहीं। वह तो स्पष्ट ही है। यह दुःखदायक दृश्य देखनेवालों के लिए थोड़े बहुत सन्तोष की बात क़ुरान के उस वाक्य का भावार्थ है जो चित्रगत क़बर पर खुदा हुआ दिखाई देता है। उसका आशय है—

"क़बर में दफ़न किये गये भी किसी दिन फिर उठ खड़े होंगे"

और यदि उन्होंने प्रयत्न किया तो अपनी विनष्ट हुई आशा-लता को पुनर्वार पल्लवित कर सकेंगे।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १८, खण्ड १] जून, १९१७ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २१०

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।≈)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची ।

	पृष्ठ
(१) श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी—[ले०, पण्डित गणेशराम मिश्र	२८६
(२) शिव सङ्कल्प—[लेखक, कर्ण ...	२६१
(३) योरप और भारत का तत्त्वज्ञान—[ले०, बाबू शारदाप्रसाद, एम० ए०, वकील, हाईकोर्ट	२६२
(४) मित्र-स्मृति—[लेखक, "सनेही" ...	२६६
(५) कवि-वर तीर्थराज—[ले०, पण्डित शिवाधीन मिश्र, बी० ए०	२६७
(६) ऐतिहासिक हिन्दू-सम्राट् [१]—[ले०, लाला कन्नोमल, एम० ए०	२६६
(७) पुष्पाञ्जली—[लेखक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३०३
(८) भिन्नता और वंश-परम्परा—[ले०, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ० ...	३०३
(९) स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता—[लेखक, बाबू शालग्राम गुप्त	३०६
(१०) महत्ता और क्षुद्रता—[लेखक, पाण्डेय मुकुटधर	३०६
(११) हिन्दी में प्रत्यक्ष और परोक्ष भाषण—[लेखक, पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	३१०
(१२) बूढ़े का ब्याह—[लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा	३१३
(१३) राना राजसिंह का पत्र [प्रभावती के पत्र का उत्तर] ले०, बाबू द्वारकाप्रसाद गुप्त ...	३१८
(१४) किसानों की शिक्षा—[लेखक, पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०	३२०
(१५) चाहमान बीसलदेव का एक शिलालेख—[लेखक, पण्डित रामकर्ण	३२२
(१६) कालिदास की रीति-शिक्षा—[लेखक, पण्डित जनार्द्दन भट्ट, एम० ए०	३२५
(१७) विविध विषय	३३३
(१८) पुस्तक-परिचय	३३८
(१९) चित्र-परिचय	३४४

चित्र-सूची ।

१—"आस प्रसाद" (रङ्गीन)
२—श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी
३—रामघाट, हुशङ्गाबाद
४—पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट
५—संक्षिप्त-नाम-लेखन के नमूने
६—वर्णाकृतियों के नमूने [१]
७— " " [२]
८—संस्कृत सूक्तियों के नमूने
९—महाराजा चरखारी के नाम का तुग़रा

नई पुस्तकें ! नई पुस्तकें !!

हिन्दी में

किरातार्जुनीय

(पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित)

महाकवि भारवि की यह वही पुस्तक है जिसकी धूम सैकड़ों वर्षों से संस्कृत-साहित्य में मच रही है। द्विवेदीजी महाराज की कृपा से केवल हिन्दी भाषा से ही परिचय रखने वाले सज्जन भी इसका खूब रसास्वादन कर सकेंगे। इसमें राजनीति, धर्मनीति खूब कूट कूट कर भरी पड़ी हैं। पुस्तक अनुपम है, और ऐसी मनोरञ्जक है कि एक बार शुरू करने से बिना ख़तम किये चैन नहीं पड़ता। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर। मूल्य केवल १॥)

मानस-प्रबोध

(लेखक, पण्डित विश्वेश्वरदत्त शर्म्मा)

यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। इसमें तुलसीकृत रामायण के वाक्य-प्रयोग, शब्द-प्रयोग आदि उदाहरण देकर ऐसी ख़ूबी से समझाये गये हैं कि इसके पढ़ने से गोस्वामीजी के ग्रन्थों को समझने में बड़ी आसानी होगी। पुस्तक मौलिक है। रामायण के प्रेमियों को अवश्य ख़रीदनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या तीन सौ से ऊपर। मूल्य केवल १)

बालशिक्षा ।

(पं० रूपनारायण पांडेय लिखित)

यह पुस्तक कविता में है। इसमें बालकों के लिए एक से एक बढ़ कर उपदेश भरे हुए हैं; बल्कि यह बालकों को कंठ करा देने लायक़ है। मूल्य केवल ≈)

मिलने का पता :—

मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

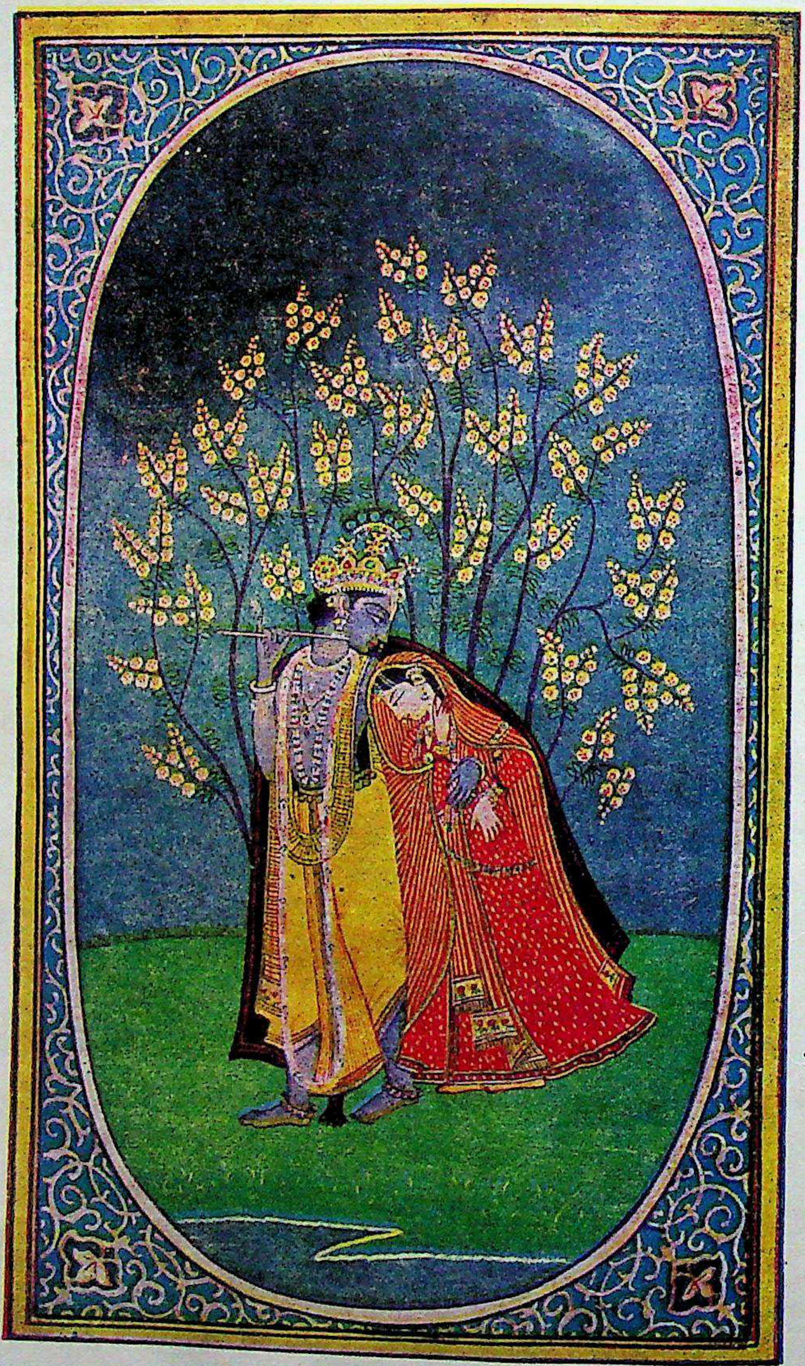

"आस असाढ़"।

घूमि घटा चहुधा ते उठी चमकाति छटा बरसैं घन बाढ़े।
भींजत-लता तमाल तरे तहाँ आय गई सखी घूँघुट काढ़े॥
कामरी लीन्हीं उढ़ाय तुरन्त लगाय लियो हिय में अति गाढ़े॥
मास सु-सावन को कवि तोष [illegible]॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

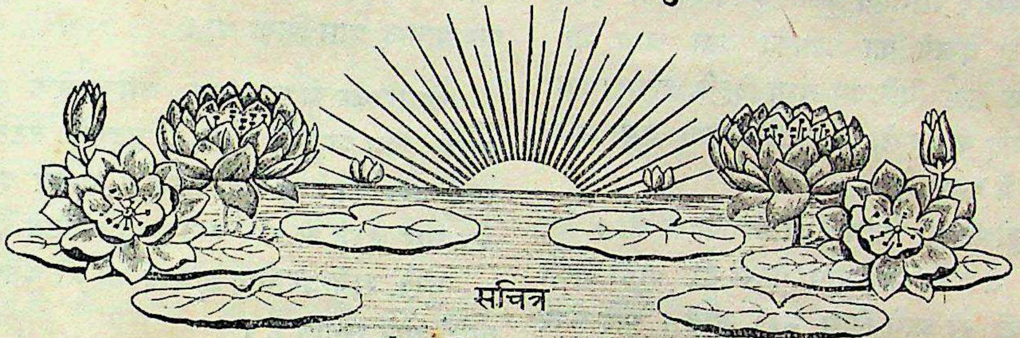

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग १८, खण्ड १] जून १९१७—जेष्ठ १९७४ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २१०

श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी।

आज मैं एक ऐसे शान्तरूप महात्मा का परिचय सरस्वती के पाठकों से कराना चाहता हूँ जो वयोवृद्ध भी हैं और ज्ञान-वृद्ध भी। आप प्राचीन प्रणालियों और व्यवस्थाओं के पक्के प्रतिपादक होकर भी आधुनिक विषयों के पूर्ण ज्ञाता हैं। आप नये विचारों के पृष्ठपोषकों पर नास्तिकता का आरोप नहीं करते।

आपके पञ्चभूतात्मक शरीर का नाम श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी है। आप दक्षिणी ब्राह्मण हैं। जन्मभूमि कहीं नासिक के पास है। आयु आपकी लगभग ९२ वर्ष की होगी। बाल सफ़ेद, शरीर सशक्त और गठीला, ललाट उन्नत और मुखचर्य्या प्रतिभाशालिनी है।

महाभारत, रामायण, योगवाशिष्ठ और भगवद्गीता आपके प्यारे ग्रन्थ हैं। आपकी स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र है। पुरानी बातों का साङ्गोपाङ्ग और रोचक वर्णन आप कर सकते हैं। यह आपके योगाभ्यास का फल है जो आप अभी तक शरीर-सम्पत्तिमान्, बुद्धिमान् और शान्तचित्त बने हुए हैं। जरावस्था केवल बालों की सफ़ेदी से ही प्रतीत होती है, शरीर से नहीं।

आपके इष्टदेव मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी हैं। सदा उन्हीं की मानसिक अर्चना और ध्यान में आप मग्न रहते हैं।

आपको ज्योतिष और आयुर्वेद का अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास था और अब भी है। संस्कृत, मराठी, गुजराती, हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी आदि भाषाओं के आप ज्ञाता हैं। हिन्दी से आपको विशेष प्रेम है। महाराष्ट्रों से मराठी में बातचीत करने पर भी, आप औरों से हिन्दी-भाषा में ही सम्भाषण करते हैं।

विद्याभ्यास की समाप्ति के अनन्तर आपने गृह-त्याग करके चारों धामों की यात्रा का सङ्कल्प किया। यात्रा के समय मार्गस्थ मुख्य मुख्य स्थान, दृश्य, क़िले आदि देखने का आपको बड़ा चाव था। कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम तथा दिल्ली, इलाहाबाद, आगरा आदि के क़िलों का वर्णन आप बड़ी मनोहर भाषा में करते हैं।

श्रीगङ्गोत्री की यात्रा आपने पैदल की। पैर गले जाते थे। तो भी आप पैदल ही यात्रा करते थे। गङ्गोत्री से आगे लोग नहीं जाते। यदि कोई जाना भी चाहे तो धर्म-मर्य्यादा की दुहाई देकर रोक दिया जाता है। पर स्वामीजी ने इस बात को न माना। आपने गोमुख के अवलोकनार्थ प्रस्थान किया। तीसरे रोज़, १२ कोस की दूरी पर, श्रीगिरिराज की गुफा से सुरसरि का अन्तिम दृश्य दिखाई दिया। जल दुग्ध-धारा के सदृश एक कुण्ड में गिर रहा था। गुफा में अन्धकार छाया था। चारों तरफ़ बर्फ़ ही बर्फ़ था। प्रवाह के दोनों तरफ़ कुछ ऊँचा किनारा सा बन गया था। उसी पर से स्वामीजी ने, अपने साथियों समेत, भीतर कुछ दूर तक प्रवेश किया। प्रपात की घनघोर ध्वनि कलेजा दहलाती थी। बर्फ़ की शीतलता पीछे को लौटाती थी। कुछ पता न था कि कहाँ से, कितनी दूर से, कितनी ऊँचाई से प्रपात गिर रहा है।

वहाँ से स्वामीजी के लौटने पर एक अँगरेज़-यात्री ने भी मशाल जला कर गुफ़ा के भीतर प्रवेश किया। पर बर्फ़ का एक बड़ा सा टुकड़ा गिरने से वह दब गया। निकाले जाने पर बड़ी कठिनता से उसके प्राण बचे।

उन ऊँचे और हिमाच्छादित स्थानों में प्रकृति ने मनुष्य के खाने पीने का सुभीता भी कर दिया है। वहाँ गरम पानी का एक कुण्ड चूल्हे का काम देता है। उसमें चपातियाँ और कपड़े में बाँध कर डाले हुए दाल-चावल अच्छी तरह पक जाते हैं। इसी तरह सोने के लिए वहाँ गरम गुफा भी है, जिसमें मनुष्य बिना वस्त्र के भी आराम से रह सकता है। स्वामीजी ने उसमें कई दिन रह कर योगाभ्यास का आनन्द प्राप्त किया था।

केदारेश्वर के पास एक चमत्कारिक कुण्ड है। उसमें "बम् शङ्कर" कहते ही बुदबुदे उठते हैं, पर अन्य शब्द कहने से नहीं उठते। अभीष्ट शब्दोच्चार बार बार करने से बार बार बुदबुदे उठते हैं।

पुरी, रामेश्वर और द्वारका की भी अनेक अद्भुत बातें आप सुनाते हैं।

आपसे कई जगह लोगों ने ठहर जाने का आग्रह किया। गुजरात के कितने ही राजाओं तथा ज़मींदारों ने भी आपको ठहराना चाहा। हरद्वार में नाभा-निवासी बाबू भोलाराम आदि ने मठ बनवा कर निवास करने का आग्रह किया, पर आपने किसी का आश्रित बन कर रहना उचित न समझा।

यह सौभाग्य मध्य-प्रान्त ही का था जो आप अन्य सब स्थानों को छोड़ कर होशङ्गाबाद में, श्रीनर्मदा के किनारे, कोई ३०, ४० वर्षों से निवास कर रहे हैं। जिस समय आप वहाँ पधारे, एक टूटी सी झोपड़ी में रहते थे। पर अब उसी स्थान पर एक उत्तम शान्ति-आश्रम बन गया है। साधना के लिए एक गुफा भी बन गई है। आप कहते हैं कि जङ्गल में भी रहने पर शरीर का भोक्तव्य कर्म नहीं छूटता। प्रयत्न करने पर भी—सर्वस्व त्याग करके भटकते रहने पर भी—और अन्त को संन्यास धारण करके एकान्तवास करने पर भी, 'श्री' ने शरीर पर थोड़ी बहुत सत्ता जमा कर ही कल की।

CC-0: In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना ही उसे धुतकारा उतना ही उसने और भी पीछा किया।

हाल में आपने नर्मदा के बीचोंबीच "रामघाट" नाम का एक स्थान बनवाया है। उस पर सङ्गमरमर का एक पत्थर, बीजक के रूप में, लगा दिया गया है।

मध्यप्रान्त और बरार में आपके अनेक नामी नामी पुरुष शिष्य हैं। स्वामीजी जिज्ञासु की कड़ी परीक्षा लिये बिना मन्त्रोपदेश नहीं करते।

आप जीवमात्र से प्रेम रखते हैं। रामघाट की मछलियाँ आपको बहुत ही प्रिय हैं। जल के पास जाते ही मछलियाँ आपको घेर लेती हैं। जब तक आप घाट पर बैठ कर सन्ध्या आदि करते हैं, मछलियाँ बराबर घेरे रहती हैं। और किसी के जाने पर वे इतना प्रेम नहीं प्रकट करतीं।

स्वामीजी ने हठयोग का अभ्यास कई साल तक किया है। अब आप राजयोग में रत रहते हैं। दोनों मार्गों को आपने अपने ढँग के साधकों के लिए वे अच्छा समझते हैं। आपका कथन है कि साधारण जनों के चित्त-निरोधार्थ हठयोग ही लाभकारी है।

आप योग-साधना को मुक्ति का द्वार मानते हैं। अन्य मार्गों का न तो आपने अनुसरण ही किया है और न आप उनके विषय में अपनी सम्मति ही प्रकट करना चाहते हैं। हठयोग की आँतें धोने वाली बात को आप निर्मूल बताते हैं। अपनी सिद्धियों को आप सर्वसाधारण पर प्रकट नहीं करना चाहते। कभी कभी अनिवार्य्य अवसरों पर आपके शिष्यों को उनका पता लग जाता है। पर उन्हें प्रकट न करने की उन्होंने दृढ़ आज्ञा दे रक्खी है।

आपके दर्शनों से मैं कृतार्थ हुआ हूँ। आपने अपने विषय में जो दो चार बातें मुझे बताईं तदर्थ मैं आपका परम कृतज्ञ हूँ।

गणेशराम मिश्र

शिव सङ्कल्प।

(१)

मेरा है यह विमल विचार—
करूँ निरन्तर धर्म्माचार।
दूँ सारा ही स्वार्थ विसार;
धार हृदय लूँ परोपकार ॥१॥

(२)

माने मैंने पन्थ अनेक;
रहा न मुझमें सत्य-विवेक ॥
लूँ अब ज्ञानामृत कर पान;
छाया रहे न उर अज्ञान ॥

(३)

धर्म्म-कर्म्म का कर विस्तार;
लूँ दोनों ही लोक सुधार।
मायिक बन्धन डालूँ तोड़;
बनूँ तात्विक, तत्व निचोड़ ॥

(४)

करूँ न कोई ऐसा काम—
जिससे बिगड़े कुल का नाम।
खो दूँ सभी मानसिक रोग;
सज्जन कहें मुझे सब लोग ॥

(५)

सत्सङ्गति का पड़े प्रभाव;
शुद्ध रहें आत्मा के भाव।
रहे ध्यान में ध्येय सदैव;
शुभ चिन्तन, शुभ लक्ष्य तथैव ॥

(६)

रक्खूँ मैं उद्देश पवित्र;
हो न कलङ्कित कभी चरित्र।
पाऊँ शान्ति-सौख्य भरपूर;
हो सारा मद-मत्सर दूर ॥

(७)

करूँ न भूल किसी से द्वेष;
बन्धु-भाव उर रहे विशेष।
मिटे हृदय का भाव परत्व;
प्राप्त करूँ पूरा मनुजत्व ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection; Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

हों विनष्ट मन के सब राग ;
दुर्गुण-गढ़ में दूँ मैं आग।
बढ़ने दूँ न लोक में पाप ;
शोधूँ अपना कर्म्म-कलाप॥

(९)

श्रेष्ठ भाव को होकर प्राप्त ;
पढ़ूँ पाठ हित का पर्य्याप्त।
जन्म व्यर्थ ही करके नष्ट ;
भोगूँ नहीं कभी भी कष्ट॥

(१०)

जनता के प्रति प्रेम पसार ;
सीखूँ होना परम उदार।
होकर शीलनिधान सुजान ,
दूँ उद्देश-पूर्ति पर ध्यान॥

(११)

परम पिता की करके भक्ति—
धारण करूँ विशेष विरक्ति।
रख विशुद्ध आचार-विचार ;
पाऊँ जीवन के फल चार॥

—कर्ण

योरप और भारत का तत्त्वज्ञान।

(लेखक, बाबू शारदाप्रसाद, एम० ए०, वकील, हाईकोर्ट)

आर्य्य-जाति का निवासस्थान मध्य एशिया समझा जाता है। वहाँ से प्रस्थान करके जब वह अन्य देशों में जाकर बसी तब उसकी एक शाखा ने भारत को अपना नवीन निवास-स्थान बनाया और दूसरी शाखा ने, उसी प्रकार, योरप के कुछ देशों में रहना आरम्भ किया। योरप के देशों में इस आर्य्य-जाति के निवास-स्थान ग्रीस या यूनान, लैटिन देश या रोम, स्लेवानिक देश या सर्विया इत्यादि, टिउटानिक देश या जर्मनी हुए। इसके सिवा भिन्न भिन्न जातियाँ, जिनकी आदिम उत्पत्ति उसी एक आर्य-जाति से थी, इन अनेक देशों में बसने लगीं। इन विविध जातियों की संज्ञा उनकी भाषा की संज्ञा के अनुसार हुई, और उनकी भाषा तथा जाति दोनों ही की संज्ञा ग्रीक, लैटिन, स्लेवानिक और टिउटानिक हुई। इससे ज्ञात होता है कि ग्रीस और रोम इत्यादि के निवासी, उत्पत्ति के विषय में, अपने पूर्वीय सहवर्त्ती मनुष्यों से भिन्न न थे—अर्थात् दोनों का उत्पत्ति-केन्द्र एक ही था। योरप के ग्रीस और रोम देशों में, सभ्यता के समस्त अङ्ग—कला-कौशल और साहित्य आदि—की जितनी उन्नति प्राचीन समय में हुई थी उतनी योरप के किसी और देश में न थी। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि भारत के और इन देशों के निवासियों के पूर्वज एक-ही थे तथापि इन सभी देशों के निवासियों ने विचार-सम्बन्धी संस्थितियों को, अपनी अपनी स्वतन्त्र रीति से, बिना एक दूसरे के किसी प्रकार के आश्रय तथा सहायता के, स्थापित किया और उसी प्रकार पृथक् रीति से क्रमशः उनकी उन्नति भी की।

प्राचीन समय में भारत और ग्रीस, इन दोनों ही देशों के विद्वानों ने विचार और बुद्धि में जो उन्नति की थी वह वर्त्तमान समय को देखते भी आश्चर्य-जनक है। उन लोगों ने विचार-विषयक भिन्न भिन्न अङ्गों के लिए भिन्न भिन्न संस्थायें स्थापित की थीं—तत्त्वज्ञान, व्याकरण, ज्योतिष, ईश्वर-ज्ञान इत्यादि भिन्न भिन्न विचार-विषयों के लिए विविध प्रकार की संस्थायें उन्होंने निर्म्मित की थीं। इन संस्थाओं के संस्थापक विद्या और बुद्धि से प्रायः परिपूर्ण और बड़े विचारवान् व्यक्ति थे। वे अपने अनुगामियों के सन्मुख अपने विचारों को भले प्रकार प्रकट करते और अपना सिद्धान्त उनको सिखलाते थे। अनुगामियों के द्वारा वे सिद्धान्त समाज में फैलते और क्रमशः उनके मानने वालों का एक सम्प्रदाय सा बन जाता था। सम्प्रदाय आदिम स्थापक के नाम से पुकारा जाता था। ग्रीस देश के प्रसिद्ध विद्वान् प्लेटो ने तत्त्वज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी ही एक संस्था स्थापित की थी। अब भी योरप के तत्त्व-ज्ञाता उसके सिद्धान्तों का अनुकरण अथवा उनके सम्बन्ध में विचारों का विकाश, अर्थात् उन्हीं सिद्धान्तों की नीव पर नये नये विचार-मन्दिरों की सृष्टि, करते हैं। भारत में भी, उसी प्रकार, शङ्कराचार्य्य ने तत्त्वज्ञान-विषयक संस्था स्थापित की। अब भी वह अपने विषय की सर्वमतप्रशस्त संस्था है। परन्तु, जैसा कि हमने ऊपर कहा है, इतिहास से प्रकट है और यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्व-ज्ञानियों के विचारों पर एक दूसरे का प्रभाव वस्तुतः कुछ भी नहीं पड़ा। जो संस्थायें उन लोगों ने स्थापित की थीं तथा उनके जिन विचारों और सिद्धान्तों का प्रचार और विकास उनके अनुगामियों ने किया था उनका न तो एक दूसरे से कुछ सम्बन्ध ही था, न एक का दूसरे पर किसी प्रकार का प्रभाव ही पड़ा था। अर्थात् दोनों प्रकार के सिद्धान्त स्वतन्त्र और भिन्न भिन्न थे।

अब हम वर्त्तमान समय के भारतीय और योरोपीय तत्त्वज्ञान के जन्मदाता श्रीशङ्कराचार्य्य और प्लेटो के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन करते हैं। साथ ही उनकी परस्पर समानता और भिन्नता का भी दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करते हैं।

प्रथम प्लेटो ही को लीजिए। उसके तत्त्वज्ञान का मुख्य सिद्धान्त "डाक्ट्रिन् आव् ऐडियाज़्" (Doctrine of Ideas) अर्थात् मनुष्यों में मानसिक विचार-सम्बन्धी मत या सिद्धान्त है। प्लेटो का यह मत है कि बाह्य जगत् के स्थूल पदार्थ मनुष्य के शरीर के बाहर हैं। उनके विषय में उत्पन्न हुए मनुष्य के मानसिक विचार बाह्य पदार्थों से भिन्न हैं। बाह्य जगत् में जो स्थूल पदार्थ हैं इनका अभाव नहीं—इनकी भी स्थिति है। परन्तु हमारे मन में उनके सम्बन्ध में जो ध्यान या विचार उत्पन्न होता है वह भी एक पदार्थ है। वह पदार्थ बाहय पदार्थों से भिन्न है। कल्पना कीजिए कि बाहय जगत् में एक वृक्ष है। हम में उसके मानसिक ध्यान या विचार की उत्पत्ति होती है। अर्थात् हम मन में उसका ध्यान कर सकते हैं। प्लेटो के मत के अनुसार यह स्थूल वृक्ष और वृक्ष का ध्यान या ज्ञान * भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। किसी स्थूल पदार्थ को हम तभी जान सकते हैं और उसका ज्ञान हमें तभी हो सकता है जब उसी समय उसके, अर्थात् उस पदार्थ के, साथ ही हमको उसका मानसिक ध्यान हो और उसका चित्र हमारे मन में अङ्कित हो जाय। इस प्रकार का ज्ञान और ध्यान दोनों ही परस्पर-सम्बद्ध हैं। वस्तुतः वे भिन्न नहीं हैं। जब तक हम किसी वस्तु का मन में तत्त्वण ध्यान न कर लें तब तक "ज्ञान होना"—इस पद का कोई अर्थ ही नहीं। प्लेटो के "ऐडियाज़्" शब्द का आशय यही है। इस प्रकार प्लेटो का यह सिद्धान्त है कि बाहय जगत् के स्थूल पदार्थ सब अयथार्थ और विकारवान् हैं। उन स्थूल पदार्थों की वस्तुतः कोई स्थिति ही नहीं। वे कारण से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार उनमें विकार उत्पन्न होता है और इनका परिवर्तन हो जाता है। परन्तु प्लेटो के मतानुसार हमारे मन में इन पदार्थों के सम्बन्ध के भिन्न भिन्न ध्यान उत्पन्न होते हैं। वे ध्यान यथार्थ अर्थात् स्थिर होते हैं और विकार को नहीं प्राप्त होते। इन ध्यानों के आकार होते हैं। उनसे सम्बन्ध रखने वाले बाहय जगत् के स्थूल पदार्थ उसी आकार के मालूम होते हैं। जैसे—हमने एक पुस्तक छुई। स्पर्शेन्द्रिय द्वारा छूने के ज्ञान के साथ ही उसी के सदृश आकार का ध्यान हमारे मन में उत्पन्न हुआ। पुस्तक और पुस्तक का ध्यान, दोनों, भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। उनमें पुस्तक अयथार्थ और विकारवान् तथा उसका ध्यान अविकारी, स्थिर और यथार्थ पदार्थ है।

* यहाँ पर हमने ध्यान और ज्ञान दोनों ही शब्दों को ऐडिआ (Idea) शब्द के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

अध्यापक रिचि ने इस सिद्धान्त को और भी स्पष्ट कर दिया है। उनका दिया हुआ एक उदाहरण लीजिए—एक मूर्ति है। उसे देखते समय हम प्रश्न करते हैं कि यह किस की मूर्ति है। इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं कि वह किस वस्तु की अर्थात् धातु या मिट्टी इत्यादि की बनी हुई है। किन्तु हमारे प्रश्न का आशय यह होता है कि वह किस व्यक्ति की है और जब हमको मालूम हो जाता है कि वह गणेश या दुर्गा की है तब उस मूर्ति के आकार के सदृश आकार का ध्यान हमारे मन में उत्पन्न होता है। प्लेटो के सिद्धान्त के अनुसार मूर्ति का यह साकार ध्यान सदैव स्थिर और सूक्ष्म तथा सारवान् है, बाहर की स्थूल मूर्ति चाहे जिस वस्तु की बनी और चाहे जितनी असारवान् क्यों न हो।

इस प्रकार प्लेटो ने ध्यानों का एक समूह माना है। उसमें विविध प्रकार के और असंख्य ध्यान हैं। उन्हीं के आकार के सदृश बाहय जगत् के स्थूल पदार्थ हैं; परन्तु हैं ये दोनों परस्पर भिन्न। यही मत साक्रेटीस (सुक़रात) और अरिस्टाटल (अरस्तू) नामक प्रसिद्ध यूनानी विद्वानों का भी था। अरिस्टाटल का मत है कि ये सब ध्यान पृथक् पृथक् अनेक समूहों में विभक्त हैं। समूह-विशेष में एक ही प्रकार के ध्यान हैं और उस समूह में जितने ध्यान हैं उन्हीं के आकार के सदृश बाहय जगत् के पदार्थ मालूम होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरिस्टाटल ने इन अनेक समूहों की संज्ञायें (केटेगरीज़) नियत की हैं। "केटेगरीज़" का शब्दार्थ "समूह-विशेष" है। अँगरेज़ी भाषा में केटेगरी की वर्त्तमान वैज्ञानिक संज्ञा स्पिशीज़ है, जिसका शब्दार्थ है अनेक कक्षा-विशेषों का समाहार।

प्लेटो के मतानुसार सबसे उच्च प्रकार का ध्यान-समूह वह है जो अत्यन्त विशुद्ध गुणों का आधार रखता है। इस प्रकार के ध्यान परमेश्वर के विषय के होते हैं। इन ध्यानों का सारांश यह है कि परमेश्वर अति विशुद्ध है, समस्त सद्-गुणों से परिपूर्ण है, जगत् का कर्ता है और मानुषी सदाचारों के नियम उसी परमेश्वर के सद्गुणों के अनुयायी हैं। जिन नियमों के अनुसार ध्यान उत्पन्न और स्थिर होते हैं, वर्त्तमान तत्त्वज्ञान में उनकी संज्ञा "लाज़ आव् थाट्" (Laws of Thought) है। उसका शब्दार्थ है ध्यानों के नियम।

वर्त्तमान विद्वानों का मत है कि प्लेटो के सिद्धान्त में भूल है। प्लेटो ने व्यर्थ ही द्वैत-भाव का निरूपण किया है। जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी केन्ट ने प्रमाण-पूर्वक दिखलाया है कि पृथक् पृथक् दो पदार्थ मान लेने से प्लेटो का मत सदोष हो गया है। यह कहना बिलकुल ही बुद्धि के विरुद्ध है कि स्थूल पदार्थ बाह्य जगत् से भिन्न हैं और मनुष्य के मन में उनके सम्बन्ध में होनेवाला ध्यान भी भिन्न है। ऐसी दशा में तो ये सभी ध्यान निःसार हो जाते हैं। इसी से केन्ट ने इस द्वैत-भाव को उड़ा कर एकता—अद्वैत—के सिद्धान्त की स्थापना की है।

अब शङ्कराचार्य्य के मत को देखिए। वर्तमान भारत का तत्त्वज्ञान प्रायः उन्हीं के सिद्धान्तों का अनुयायी है। शङ्कर ने अपने समय के प्रचलित सभी मतों का खण्डन अपने वेदान्त-सूत्रों में किया है। उन्होंने अपने शारीरक-भाष्य में उपनिषदों के प्रमाण देकर यह दिखलाया है कि उनके पूर्ववर्ती मतों में क्या भूल है। बौद्ध और वैशेषिक-दर्शनों के अनुयायी अपने मत का आधार केवल स्थूल जगत् मानते हैं। वे परमाणुओं से ही जगत् की सृष्टि मानते हैं। सांख्य-मत के अनुयायी प्रकृति और पुरुष की प्रधानता मानते हैं। नैयायिक भी द्वैतवादी हैं और कहते हैं कि पदार्थों की यथार्थता का पूर्ण ध्यान और ज्ञान हो जाना ही मोक्ष का साधन है। मीमांसावादी कहते हैं कि कर्मद्वारा मनुष्य को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। योगशास्त्र के अनुसार ध्यानावस्थिति ही मोक्ष है। इसी प्रकार के और भी कितने ही मत हैं जो पूर्वोक्त प्रधान मतों के आधार पर बद्धमूल हुए हैं। शङ्कर ने इन सब मतों का अच्छी तरह खण्डन करके अपने वेदान्त-सिद्धान्तों का निरूपण किया है।

शङ्कराचार्य्य के मत का सारांश सुनिए—उन्होंने माया के सिद्धान्त के आधार पर बाह्य जगत् और मनुष्य का सम्बन्ध स्थिर किया है। उनका मत है कि केवल परमात्मा ही सारवान् है। वह मनुष्य के मन और इन्द्रियों से परे है। अर्थात् बाह्य जगत् के पदार्थ माया या उपाधि के कारण उसी परमात्मा में सन्निविष्ट मालूम होते हैं। माया—शब्द "मा" धातु से बना है। उसका अर्थ है—मीयन्ते अनया इति माया—अर्थात् जिसके द्वारा हम पदार्थों की माप करते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि एक परमात्मा ही इन अनेक पदार्थों के द्वारा मानों एक प्रकार से मापा जाता है। परन्तु, जैसा कि उपनिषद् कहते हैं—नेति नेति अर्थात् उसकी थाह नहीं लगती। वह परमात्मा वस्तुतः इन पदार्थों में से कोई भी नहीं। हम अपने प्रमाद-वश उस परमात्मा पर आकार-विशेष का आरोप करते हैं, जिसे अध्यास कहते हैं। परमात्मा एक है और जगत् के ये सब पदार्थ माया के द्वारा उसमें समाविष्ट मालूम पड़ते हैं, परन्तु वे हैं वास्तव में उससे भिन्न। इस प्रकार परमात्मा, जो मन और बुद्धि से परे है, जब माया के द्वारा साकार मालूम होता है, अर्थात् उपाधियों को ग्रहण करता है, तब भी वह परमात्मा एक ही रहता है, दो नहीं हो जाता। जगत् केवल सङ्कल्प मात्र है। प्लेटो के "ऐडियाज़" का नाम शङ्कराचार्य्य के ग्रन्थ में "वृत्ति" है। वृत्ति से वही आशय ग्रहण करना चाहिए जो "ऐडियाज़" से ग्रहण किया जाता है। शङ्कराचार्य्य कहीं कहीं वृत्ति के स्थान पर सङ्कल्प शब्द का भी प्रयोग करते हैं। समूह को योरप के तत्त्वज्ञानियों ने "स्पिशीज़" और "केटेगरी" की संज्ञा दी है। उसे शङ्कराचार्य्य ने आकृति की संज्ञा दी है। ये अनेक समूह "आकृतयः" कहे गये हैं।

शङ्कराचार्य्य के मतानुसार परमात्मा के रूप का ज्ञान इन्द्रियों और मन से परे है। परन्तु उसका सामान्य ज्ञान माया के प्रसार द्वारा मनुष्यों को हो सकता है। इस दशा में शङ्कराचार्य्य के मतानुसार, प्राधान्यवादियों के समान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति और पुरुष—इन दो को जगत् की सृष्टि का हेतु मानने की कोई आवश्यकता नहीं। शङ्कराचार्य्य ने स्पष्ट करके दिखलाया है कि केवल आत्मा को मान कर भी जगत् के कारण और कार्य्य, दोनों ही, अच्छी तरह समझे जा सकते हैं।

इस विषय में प्लेटो से शङ्कराचार्य्य का मत अधिक स्पष्ट है; क्योंकि प्लेटो ने यद्यपि मनुष्य की जीवात्मा को माना है, परन्तु परमात्मा को उसने उससे भिन्न समझा है। उसने जगत् में स्थूल पदार्थों की भी स्थिति मानी है। वर्तमान समय के अनेक यूरोपीय तत्त्वज्ञानी भी आत्मा ही को प्रधानता देते हैं और उसी के आधार पर जगत् के समस्त पदार्थों का रहस्य समझाते हैं। कैंट (Kant) कहता है कि परमात्मा ट्रान्सेन्डेन्ट (Transcendent) भी है; अर्थात् वह मन और इन्द्रियों से परे भी है और इमिनेन्ट (Imminent) अर्थात् समीपवर्ती भी है। भाव यह कि वह जाना भी जा सकता है। मालेब्रांस (Mallebranche) नामक फ़्रांस देश का तत्त्वज्ञानी कहता है कि यह समस्त जगत् परमात्मा ही में उत्पन्न होता है और उसी में उसकी स्थिति रहती है। परन्तु बुद्धिग्राह्य शुद्ध तात्त्विक सिद्धान्त का वर्णन जितनी स्पष्ट रीति से शङ्कराचार्य्य ने किया है उतनी स्पष्टता से किसी ने भी नहीं किया। इसी से ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में हुए, योरप के अति प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी शापेनहार (Schopenhauer) ने वेदान्त-मत को पूर्णतया सन्तोषजनक माना है। शङ्कराचार्य्य ने इतनी स्पष्ट रीति से माया के द्वारा जगत् की सृष्टि का निरूपण किया है कि बिलकुल सन्देह नहीं रह जाता। वे कहते हैं—परमात्मा एक है। परन्तु उसने अनेक जीवात्माओं को उत्पन्न किया है। परमात्मा की इच्छा हुई कि अनेक पदार्थ जगत् में उत्पन्न हो जायँ। बस इसी से उनकी सृष्टि हुई। इसके अनन्तर अनेक स्थूल शरीर उत्पन्न करके उनमें उसने जीवात्मा का सञ्चार किया। इस सिद्धान्त में भ्रम का कोई कारण नहीं। शङ्कराचार्य्य कहते हैं कि जब माया का रहस्य समझने में भ्रम होता है तब अविद्या उत्पन्न हो जाती है और बुद्धि और विचार पर परदा सा पड़ जाता है। परन्तु जब अनुचित इच्छा, व्यर्थ आशा इत्यादि चित्त को भ्रम में डालने वाली वृत्तियाँ हटा दी जाती हैं और मन तथा बुद्धि शुद्ध हो जाती है तब इस अविद्या का परदा उठ जाता है तथा परमात्म-विषयक तत्त्वज्ञान के सिद्धान्त मनुष्य की समझ में अच्छी तरह आ जाते हैं। तब स्थूल पदार्थ, मानवी प्रकृति, बाह्य जगत् की प्रकृति और परमात्मा में, ज्ञानी की दृष्टि में, कोई भेद नहीं रह जाता।

जब शङ्कराचार्य्य का मत योरोप के बुद्धिग्राह्य सिद्धान्तों के अनुकूल है तब लोग उसमें जो त्रुटि निकालते हैं वह केवल उनका भ्रम है। आज कल कुछ समाज-संशोधक लोग कहते हैं कि शङ्कराचार्य्य के मायावाद के सिद्धान्त ही के कारण भारतवर्ष की अधोगति हुई है। परन्तु उनका यह कहना कहाँ तक ठीक है, इसका निर्णय, पाठक, अब, स्वयं ही कर सकते हैं। क्योंकि उनके सम्मुख मायावाद के सिद्धान्तों के मुख्य तत्त्व का विवेचन ऊपर किया जा चुका है। सच बात तो यह है कि मनुष्य के बाह्यस्थ जगत् में, और उसी के सदृश उसके अन्तस्थ जगत् में भी, जो कार्य्य हो रहे हैं उन सब के रहस्य समझने के लिए सदा ही से प्रत्येक देश में सद्विचारवान् लोग चेष्टा करते चले आये हैं। हमारे इस कथन की पुष्टि ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा होती है। इस सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये गये हैं उनमें से कुछ तो बुद्धयनुकूल हैं, पर कुछ बुद्धि की कसौटी पर नहीं ठहरते। शङ्कराचार्य्य का मत इन सिद्धान्तों के अनुसार जाँचे जाने से पूर्णतया सन्तोषजनक और यथार्थ मालूम पड़ता है। यही नहीं, कैन्ट आदि वर्तमान समय के प्रामाणिक तत्त्वज्ञानियों के मत से भी उसका सादृश्य है। जब कैन्ट आदि के मत का प्रभाव योरोप की राजनैतिक संस्थाओं पर कुछ ऐसा नहीं पड़ा कि उसके कारण उनकी अधोगति हुई हो तब कैसे कहा जाय कि शङ्कराचार्य्य के मत ने, जो उसी तरह का है, असन्तोषजनक प्रभाव डाला होगा। इतिहास से भी तो भारत की राजनैतिक अथवा सामाजिक अधोगति के अन्य ही कारण लक्षित होते हैं। हाँ, यह सच है कि सभ्यता पर साहित्य के विविध अङ्गों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। तत्त्वज्ञान के दूषित सिद्धान्त समाज के विचारों को अवश्यमेव दूषित कर देते हैं। यह भी सम्भव है कि मायावाद के सिद्धान्तों की विवेचना इस प्रकार की जाय और उनकी मीमांसा इस ढँग से की जाय कि उनका एक नवीन ही आशय प्रकट हो, जो सिद्धान्तनिरूपक के आशय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बिलकुल ही भिन्न निकले। हम यह नहीं कहते कि मायावाद के सिद्धान्तों का भी अर्थ कुछ नवीन-मत-प्रवर्तकों ने, समय समय पर, अपनी इच्छा के अनुसार नहीं किया है और यह कि वह अर्थ समाज के लिए किसी प्रकार हानिकर नहीं हुआ। परन्तु किसी भी मत के सिद्धान्त इस प्रकार उलट-पलट दिये जा सकते हैं। जैसा कि हमने ऊपर दिखलाया है, शङ्कराचार्य्य का मत माया के विषय में वस्तुतः बहुत स्पष्ट और बुद्धिग्राह्य है। सभ्यता-वृद्धि के लिए ये सिद्धान्त सहायक हैं, बाधक नहीं। ये सिद्धान्त विशेष कर उदार-स्वभाव के वे सज्जन उत्पन्न करने में उपयोगी हो सकते हैं, जिनके ऊपर राजनैतिक और सामाजिक उन्नति बहुत कुछ अवलम्बित है। परन्तु इसके लिए यह परम आवश्यक है कि मायावाद के इन सिद्धान्तों की मीमांसा वैसी ही और उसी दृष्टि से की जाय जैसी और जिस दृष्टि से शङ्कराचार्य्य ने की है।

मित्रस्मृति।

(१)

तव चित्र चित्त में लाऊँगा, पुलकित हूँगा बलि जाऊँगा।
दिन दूना प्रेम जताऊँगा, दिन जप कर नाम बिताऊँगा॥
आनन्द इसी में पाऊँगा।
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(२)

तुम मुझे प्राण सम प्यारे हो, जीवन सर्वस्व हमारे हो।
मेरी आँखों के तारे हो, पल भर न ध्यान से न्यारे हो॥
फिर कहाँ परमनिधि पाऊँगा।
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(३)

अपना यों मुझे बनाया है, सब भाँति दीन अपनाया है।
प्रेमामृत मुझे पिलाया है, मरते ही हुए जिलाया है॥
उपकार भूल क्या जाऊँगा।
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(४)

वह भी तो एक ज़माना था, दुःखों से दिल दीवाना था।
खल-दल के पत्थर खाना था, तब दयाछत्र जो ताना था॥
क्या उसे न मन में लाऊँगा!
तुमको क्या भला भुलाऊँगा!

(५)

दुःखानल हृदय जलाती थी, क्षण भर भी शान्ति न आती थी।
तव कृपावारि बरसाती थी, तब शीतल होती छाती थी॥
किस मुँह से उसे न ध्याऊँगा!
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(६)

भर आती दुख से छाती थी, अविराम अश्रु बरसाती थी।
तव कर-करुणा मन भाती थी, वह बढ़ कर ताप मिटाती थी॥
यह ऋण किस तरह चुकाऊँगा?
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(७)

किस प्रेम-दृष्टि से लखते थे, कुछ भी तो भेद न रखते थे।
तुम मन की बात परखते थे, रसभरा प्रीति-फल चखते थे।
वह हृदय कहाँ से लाऊँगा?
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(८)

अब यहाँ कहाँ वे बातें हैं, वे दिन हैं और न रातें हैं।
हर तरफ़ स्वार्थमय घातें हैं, मन, कालिख-भरी दवातें हैं॥
उनसे क्यों मुँह न छिपाऊँगा?
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(९)

वह प्रेम कहाँ है यारों में, शशि-दीप्ति कहाँ है तारों में।
वह जोश नहीं उद्गारों में, तुम तो थे एक हज़ारों में॥
दिल में फिर किसे बिठाऊँगा?
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

(१०)

मैं रखता एक सहारा हूँ, तुमको जो जी से प्यारा हूँ।
हूँ दीनदुखी, बेचारा हूँ, जो कुछ हूँ मित्र! तुम्हारा हूँ॥
कहिए कब दर्शन पाऊँगा?
तुमको क्या भला भुलाऊँगा?

सनेही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर तीर्थराज।

पाठक, आज मैं आपको एक ऐसे गुप्तरत्न से भेंट कराता हूँ जो व्रजभाषा के अच्छे कवि हैं। यद्यपि इनकी गणना प्रथम श्रेणी के कवियों में नहीं हो सकती तथापि इन्हें आज कल के यत्र तत्र घूमने वाले भाटों में गिनना भी उचित न होगा। कारण यह है कि आपकी कविता में प्राचीन कवियों की छटा बहुत कुछ पाई जाती है। आपका जन्म संवत् १९२८, आषाढ़ कृष्ण पञ्चमी को हुआ था। आप ज़िला प्रतापगढ़ के अन्तर्गत बीछुर-ग्राम-निवासी भारद्वाजगोत्री ब्रह्मभट्ट हैं। आपके पिता का नाम सीताराम था। उनकी भी रुचि काव्य की ओर विशेष थी। तीर्थराजजी कविवर भगवन्त के भाई हैं। आपने सुप्रसिद्ध कवि लछीराम से शिक्षा प्राप्त की है। आपका हाल पूछने पर आप निम्नलिखित कवित्त पढ़ सुनाते हैं—

मातु विन्ध्यवासिनी से बीस कोस उत्तर है,
काशी से तीस कोस पच्छिम निवास है।
रामचन्द्र-भूमि शुभ अवधनगर जी से,
दच्छिण दिशा से तीस कोस सई पास है।
कड़े की भवानी ताते तीस कोस पूरब है,
बीशपुर कृष्णपाल-राज बसौं खास है।
तीर्थराज कवि सुत सीताराम कविजी को,
बीछुर है ग्राम, कविकुल देवीदास है।

आपके वंश में काव्य की विशेष चर्चा होने के कारण और पिता का उस पर अनन्य प्रेम देख कर आपकी भी इच्छा काव्य ही पढ़ने की हुई और इसी उद्देश से आप १० वर्ष की अवस्था में सुप्रसिद्ध कवि लछीराम के यहाँ गये। गुरुजी के यहाँ रह कर आप ने प्राचीन कवियों के ग्रन्थों को एक एक करके पढ़ डाला। इससे आप में काव्य-रचना की पूरी शक्ति आ गई। आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और गुरुजी में आपकी अटल भक्ति होने के कारण वे आप का प्यार सब शिष्यों से बढ़ कर करते थे।

शिक्षा समाप्त होने पर आप घर आने को थे। पर गुरुजी ने आप की योग्यता का परिचय लेना चाहा। दैवयोग से मौक़ा भी मिल गया। संवत् १९५० में दरभङ्गा-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के यहाँ कवियों की एक सभा होने वाली थी, जिसमें कवि लछीरामजी भी बुलाये गये थे। लछीरामजी अपने शिष्य तीर्थराज को भी साथ लेते गये। वहाँ पर, कवियों की सभा में, आपने एक ऐसी मनोहारिणी कविता बना कर सुनाई जिसे सुन कर सब लोग दङ्ग हो गये और इन्हें प्रथम श्रेणी के कवियों में गिनने लगे। पुरस्कार-स्वरूप जो कुछ मिला उसका तो कहना ही क्या है।

कवि लछीरामजी जैसी आशा रखते थे शिष्य ने वैसा ही कर दिखलाया। इससे इनका नाम चारों ओर फैल गया और बनैली-नरेश राजा पद्मानन्दसिंह महोदय ने, जो स्वयं काव्य के बड़े प्रेमी थे, इन्हें अपनी सभा में बुला कर इनकी परीक्षा ली। सभा में अच्छे अच्छे कोई १४ कवि उपस्थित थे। उनमें कवि शिवहर्ष आदि भी थे। राजा पद्मानन्दजी ने एक समस्या पूर्ति के लिए दी। समस्या थी—"एक नाल तिरपन कमल"। सब कवियों की बुद्धि चकराने लगी। किसी का किया कुछ न हुआ। अन्त में कवि तीर्थराजजी ने एक छप्पय बना कर समस्या की पूर्ति कर दी। छप्पय अच्छा हो या बुरा, वह उनके प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचायक अवश्य है। अतएव पाठकों के विनोदार्थ मैं उसे यहाँ उद्धृत कर देना उचित समझता हूँ—

दोय पांय हिय एक बीस वर बाहु विराजत।
दस आनन-वर अच्छि बीस सुखमा छवि छाजत॥
भनत सुतीरथराज नाथ लङ्का इमि भ्राजत।
उपमा अति कमनीय काम कोटिक जेहि लाजत॥
भयो न हैहै वीर अस, अचल राज लङ्का अचल।
जो चाहै सो देखिए, एक नाल तिरपन कमल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी चातुरी और बुद्धि पर मुग्ध होकर राजा पद्मानन्दजी ने आपको सौ रुपये नक़द और एक बहुमूल्य शाल देकर बड़े मान के साथ विदा किया। दूसरी दफ़े राजा पद्मानन्दसिंहजी ने एक और समस्या दी। समस्या थी—"कुहू निशि में शशि पूरण देखा"। इसकी भी पूर्ति आपने उसी बुद्धिमानी और योग्यता के साथ कर दी। देखिए—

दीप दिवारी के पूजन हेत लगी सब साजन थार विशेखा।
वाही समय वृषभानुजा आय कढ़ी गृह ते मनु रूप की रेखा।
ता प्रतिबिम्ब निहारि सबै जन लागे करै भ्रम की यह लेखा।
पण्डित आज बताइ गयो मैं कुहू निशि में शशि पूरण देखा।

महाराज उचेहरा के दरबार में आपने कुछ कविता, उनकी दानवीरता और वीरता पर, सुनाई। महाराज सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए थे। उसमें से कुछ कवित्त नीचे दिये जाते हैं—

दानिया तिहूँपुर में कौन बरदानिया है,
पूरब जे तूही में कहानी दरसत है।
जोई जन नेम अरु याचना कियो है तो पै,
ताके भौन सम्पति कुबेर दरसत है।
तीर्थराज जन पै दया की कोर ताक मैया,
तेरे पदपङ्कज की आस परसत है।
एरी जगदम्बा नित तिहारी दानधारा पाय,
बारहो महीना मेघमाला बरसत है ॥१॥
सैन समरत्थ चतुरङ्गिनी चमू को साजे,
देखे अनहद्द शत्रु-बधू विललानी है।
परम अखण्ड यह पुरन्दर समान आज,
आवत दिखात लीन्हें कर में कृपाणी है।
तीर्थराज भाखत सो जङ्ग मों जुरैगो कौन
अभय वरदानी जाकी विन्ध्याचल-रानी है।
नजर चढ़ी है जा पै भूप यादवेन्द्र जी की,
ता पै मानों काली कपर्दिनी रिसानी है ॥२॥
छत्र छिति-मण्डित अखण्डित प्रताप-पुञ्ज,
कोटिन कलानिधि कला जस उदण्ड है।
धरमधुरन्धर जो धन्य धरणीशन में,
धाक सुनि काँपत अरीन को घमण्ड है।
दारिद दरेरि दरि टारी दुनी को दुख,
हेरि खल-झुण्डन सँहारि वरिवण्ड है।
बरवै महीपति महीप यादवेन्द्रसिंह,
तख़्तनशीन जनु दूजो मारतण्ड है ॥३॥
काली ते कराल विकराल कालदण्ड हूँ ते,
वाड़व ते ज्वाल ते जमाल जाल जेरी है।
चन्द्र हू ते चक्रवान शूल हू ते हल हू ते,
वज्रघात मूल ते घमक घन घेरी है।
बरवै महीपति महेन्द्र यादवेन्द्रसिंह,
भनै तीर्थराज यह काल ते करेरी है।
माहुर ते मीचहू ते साँपहू ते काल हूँ ते,
गाज ते गजबते अजब तेग तेरी है ॥४॥

आप बड़े धर्मनिष्ठ और शुद्धाचारी हैं। आपका कहना है कि यदि कविता में हार्दिक तथा शुद्ध भावों का उद्गार हो तो वह मनुष्य क्या देवताओं को भी मुग्ध कर सकती है। यही कारण है कि काव्य द्वारा देवताओं की प्रार्थना करके बहुत से कवि भारी से भारी दुःखों से मुक्त हुए हैं। अपना ही उदाहरण देते हुए आप बतलाते हैं कि एक समय जब मुझे बहुत सी आपदाओं ने आ घेरा था तब मैंने व्याकुल होकर महावीरजी की स्तुति की थी। उससे सब आपदायें एक एक करके आपही आप दूर हो गईं। यह स्तुति पुस्तक-रूप में खड्गविलास-प्रेस से प्रकाशित हो चुकी है। पुस्तक का नाम हनुमानाष्टक है। आपकी बनाई एक पुस्तक और भी उसी प्रेस में छपी है, जिसका नाम देवीविलास है। पुस्तक छोटी, पर अच्छी है।

आपकी बनाई शृङ्गार-रस की कविता बड़ी ही मनोमोहक होती है। पद बड़े कोमल होते हैं और उनको समझने में तनिक भी प्रयास नहीं पड़ता।

आपका बनाया हुआ नायिका-भेद एक सुन्दर ग्रन्थ है। पर उसे प्रकाशित होने का सौभाग्य अभी तक नहीं प्राप्त हुआ। आपकी रची हुई वीररस-पूर्ण कुछ फुटकर कवितायें भी हैं। पर वे भी ज्यों की त्यों अप्रकाशित पड़ी हैं। सचमुच निर्धनता बड़ी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखदायिनी होती है। बेचारे पेट की फ़िक्र करें, या कविता बनावें। अब भी तीर्थराज जैसे ब्रजभाषा के अच्छे अच्छे कवि मौजूद हैं। पर उन पर नई रोशनी न पड़ने के कारण उनकी विद्याबुद्धि में ज़ंग लग रहा है। ऐसी अवस्था में स्थानीय सभाओं को उचित प्रबन्ध करके इन लोगों से समयानुकूल कविता लिखवानी चाहिए, जिससे इन विद्वानों की लेखनी से सर्व-साधारण को लाभ पहुँचे। हमने देखा है कि मामूली विषयों पर भी ये लोग इस शीघ्रता से कविता बनाते चले जाते हैं, मानो कोई किसी से बात-चीत कर रहा हो। पर खेद के साथ लिखना पड़ता है कि तीर्थराजजी खड़ी बोली के बड़े विरोधी हैं। इसका कारण मेरी समझ में यही है कि इन्हें ऐसी शिक्षा नहीं मिली जिससे ये देश-काल की महिमा को समझ सकें। आप केशवदास के सब ग्रन्थों के तथा पिङ्गल, रससारांश, काव्यनिर्णय, भाषाभूषण, जगद्विनोद, बिहारी-सतसई तथा और भी कई प्राचीन कवियों के प्रणीत ग्रन्थों के पूर्ण ज्ञाता हैं। आप का पता है—

ग्राम बीछुर, पो० जामताली, ज़िला प्रतापगढ़।

शिवाधीन मिश्र, बी० ए०

ऐतिहासिक हिन्दू-सम्राट्।

[१]

प्राचीन भारतवर्ष में अनेक तेजस्वी, प्रतापी और चक्रवर्त्ती सम्राट् हो गये हैं; जैसे रघु, भरत, रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि। उनका सविस्तर वर्णन हिन्दू-पुराणों और महाभारत आदि इतिहासों में है। परन्तु उनके विषय में अर्वाचीन ऐतिहासिक पण्डितों का कथन है कि "उनका काल प्रामाणिक इतिहास की परिधि के बाहर है और, इस लिए, उनके जीवन-वृत्तान्तों की तुलना ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं हो सकती।" अर्वाचीन इतिहासज्ञों ने भारतीय इतिहास का आदि-काल महात्मा बुद्ध के समय से माना है। अतएव इस समय के पश्चात् जो सम्राट् और राजा हुए हैं उन्हीं को वे ऐतिहासिक मानते हैं। उनके मत के अनुसार महात्मा ईसा के जन्म से ५०० अथवा ६०० वर्ष पहले का समय ही ऐतिहासिक आरम्भ-काल है। इस हिसाब से भारतीय इतिहास की उम्र कोई ढाई हज़ार वर्ष होती है। परन्तु इस काल का भी पूरा पूरा इतिहास उपलब्ध नहीं, तथापि उसकी पूर्ति करने में आधुनिक इतिहासज्ञों ने कोई कसर नहीं की। ऐतिहासिक पुस्तकों के अभाव में इतिहास के सङ्कठन का कार्य्य बहुत कठिन हो गया है। जितना इतिहास सङ्कठित हुआ है उसका आधार यह है—

१—प्राचीन समय के अवशिष्ट राज्य-इतिहास, कवियों की राज-स्तुतियाँ, पुराने सरकारी काग़ज़ों और पुराणों में किया गया राजवंशों का वर्णन। टाड साहब ने अपनी राजस्थान नामक पुस्तक इन्हीं सब के आधार पर लिखी है।

२—शिला अथवा ताम्रपत्र-लेख—ये लेख छोटे छोटे हैं; तथापि इनसे राजाओं के जीवन-काल और तत्कालीन घटनाओं का पता लगाने में बड़ी सहायता मिलती है।

३—सिक्के—जो हाल इन पर खुदा हुआ मिला है उससे कितनी ही ऐतिहासिक बातें मालूम हुई हैं।

४—साहित्य-परम्परा—साहित्य-ग्रन्थों में बहुत प्रकार की परम्परायें चली आती हैं। हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि के ग्रन्थों में ऐसे कितने ही उल्लेख हैं जिनसे इतिहासज्ञों को बड़ी सहायता मिली है। प्राचीन व्याकरण-ग्रन्थों से भी सहायता मिली है। नाटकों से और भी अधिक सहायता मिली है। मुद्राराक्षस-नाटक से बहुत सी प्राचीन राष्ट्रीय और सामाजिक बातों का पता लगा है।

५—प्राचीनकालीन भवन अथवा कला-सम्बन्धिनी वस्तुयें—इनसे उन प्रमाणों की पुष्टि हुई है जो शिलालेख, सिक्के और साहित्य-ग्रन्थों के उल्लेखों से उपलब्ध हुए हैं।

६—पौराणिक कथायें—इनसे भी प्रचुर सहायता मिली है। बाण-रचित हर्ष-चरित, राजतरङ्गिणी आदि के सदृश ग्रन्थों से भी बहुत सहायता मिली है।

७—विदेशीय लेखकों के लेख—जैसे यूनानी और चीनी लेखकों के ग्रन्थ। इनसे भी प्रचुर सहायता मिली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें से कुछ लेखक तो स्वयं भारत में यात्रा कर गये थे और कुछ ने अपने लेख दूसरों के लेखों के आधार पर लिखे हैं।

यूनानी लेखकों में से ये प्रधान हैं—

१—हेरोडटस और केसिअस, जो ईसा के पहले पाँचवीं शताब्दी में हुए थे।

२—वे लेखक जो सिकन्दर बादशाह के साथ, ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी में, हिन्दुस्तान आये थे।

३—मेगस्थनीज़, जो सीरिया के राजा सिलूकस नेकटर की तरफ़ से, सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य के दरबार में, ईसा के पहले तीसरी सदी में, रहा था और जो भारत का आँखों देखा हाल लिख गया है।

चीनी लेखकों के नाम ये हैं—

१—फहीन (Fahein) यह चौथी शताब्दी में भारत की यात्रा करने आया था। उस समय भारत में चन्द्रगुप्त द्वितीय अर्थात् विक्रमादित्य का राज्य था। इसने उस समय का वृत्तान्त अच्छा लिखा है।

२—हैानच्वांग (Huen Tsang) यह चीनी यात्री भारत में ६२९ से ६४५ ईसवी तक रहा था। इसने सम्राट् हर्ष के राज्य का हाल लिखा है।

३—चीन देश के और और ऐतिहासिक लेखक।

इन सब मार्गों से प्रमाण एकत्र करके प्राचीन इतिहास का सङ्कठन किया गया है। इस इतिहास से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मुसल्मानी बादशाहत के पहले बड़े बड़े प्रतापी और गौरवशाली हिन्दू-राजा और सम्राट् हो गये हैं। उनमें से कुछ ऐसे ऐश्वर्यवान्, प्रख्यात और तेजस्वी सम्राट् थे जिनके सामने मुग़लवंशीय बादशाहों का गौरव मलिन था। उनके राज्य भी इन बादशाहों से कहीं अधिक विस्तृत थे। उनके समय में भारत-राज्य की सीमा पश्चिम में ईरान तक, उत्तर-पूर्व में खोटान और यारक़न्द तक—जो अब चीन में है—उत्तर में काश्मीर और उसके भी आगे के प्रदेशों तक और दक्षिण में कृष्णा नदी तक थी।

अकबर और औरङ्गज़ेब के राज्य इससे अधिक विस्तृत न थे। जैसे मुसलमानी राजवंशों ने—अर्थात् ग़ोरी, ग़ज़नी, ग़ुलाम, ख़िलजी, तुग़लक, सैयद, लोधी और मुग़लों ने—भारतवर्ष में राज्य किया है वैसे ही हिन्दू-राजवंशों ने, अर्थात् शिशुनाग, नन्द, मौर्य्य, शुङ्ग, कण्व, कुशिन, गुप्त, आन्ध्र आदि वंशों ने—भी राज्य किया है। मुसलमानी राजवंशों का वर्णन आधुनिक इतिहास में विस्तारपूर्वक हो चुका है; परन्तु हिन्दू-राजवंशों का वृत्तान्त अभी नाममात्र को ही लिखा गया है। उनमें कई ऐसे प्रतापी और ऐश्वर्य्यशाली सम्राट् हुए हैं जिनसे दूसरे बादशाहों की तुलना ही नहीं की जा सकती। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य, अशोक, कनिष्क, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय अर्थात् विक्रमादित्य, हर्ष आदि कितने ही सम्राट् ऐसे ही थे।

इन सम्राटों ने अनेक विशाल भवन, मन्दिर, स्तूप, मठ, विहार आदि बनवाये थे। उनके जो अंश बच रहे हैं उन्हें देख कर आश्चर्य होता है। राजा अशोक के स्तम्भ और शिलालेख, साँची के मन्दिर, अजन्ता की गुफायें इत्यादि देखने योग्य हैं। उस समय विद्या और धर्म्म का प्रचार तथा साहित्य और सङ्गीत आदि का विकास पूर्ण-रूप से हो गया था। उस समय की समस्त सभ्यता भारतीय थी। यदि इन सब सम्राटों का पूरा पूरा वर्णन शिक्षा-विभाग की प्रचलित अर्थात् पाठ्य-पुस्तकों में किया जाय तो हिन्दू-नवयुवकों तथा हिन्दू-समाज को अपने जातीय सम्राटों के गौरव से परिचित होने और उस पर अभिमान करने का अवसर मिले। हिन्दुस्तान का जो इतिहास मदरसों और पाठशालाओं में पढ़ाया जाता है वह अधूरा है। उसमें मुसलमानी और अँगरेज़ी राज्यों का तो ख़ूब गौरवपूर्ण वर्णन है, परन्तु हिन्दू-राज्यों की चर्चा नाममात्र ही के लिए है। हिन्दू-जाति को अपने इतिहास से पूर्ण परिचित होना चाहिए। पौराणिक कथायें ऐतिहासिक न समझी जायँ तो न सही; उनके पीछे का भी बहुत सा इतिहास ऐसा है जो भारत के गौरव-प्रदर्शन के लिए काफ़ी है। जो जाति अपने पूर्वजों के प्रभावशाली कार्यों से परिचित नहीं और जिसे उन पर अभिमान भी नहीं है उसकी उन्नति का मार्ग बहुत ही सङ्कुचित समझिए। सङ्कुचित क्या उसे तो कण्टकाकीर्ण समझिए। पूर्वजों के गौरवशाली कार्य्य ही जाति को समुन्नत करने की उत्तेजना देते हैं। हिन्दू-जाति का प्राचीन गौरव अतुलनीय है। सभी हिन्दुओं को उसका ज्ञान होना चाहिए, जिससे उनका उन्नति-मार्ग प्रशस्त हो जाय।

अब कुछ ऐतिहासिक हिन्दू-सम्राटों का वर्णन सुनिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

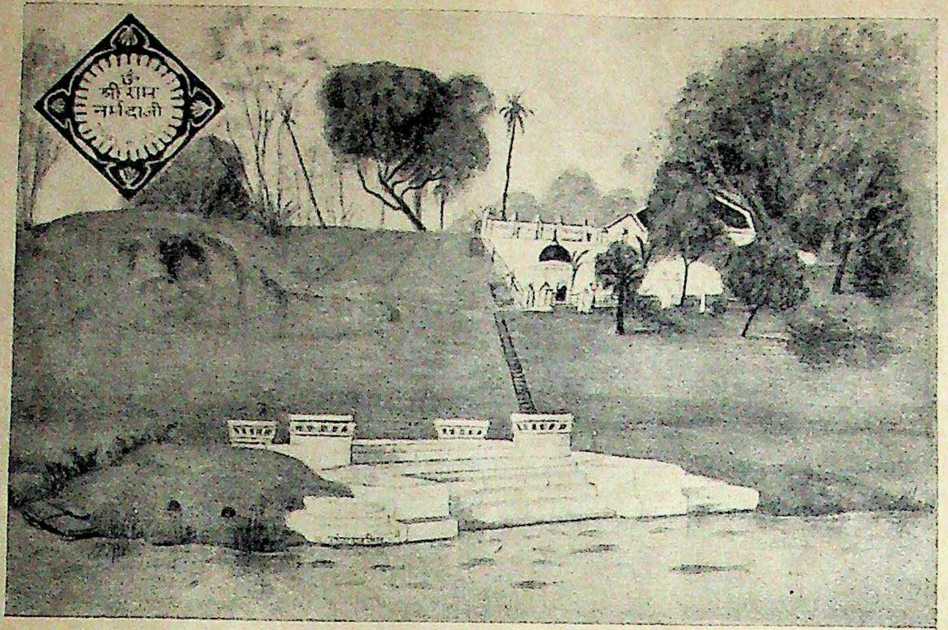

रामघाट, हुशङ्गाबाद।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य।

ऐतिहासिक हिन्दू-सम्राटों में चन्द्रगुप्त पहला है। वह मगध-देश के राजकुमारों में से था। नन्दवंशीय नरेशों के अत्याचार से मगध देश छोड़ कर वह पञ्जाब चला गया था। उन्हीं दिनों भारतवर्ष पर सिकन्दर बादशाह ने चढ़ाई की थी। वह सिकन्दर से मिला और उसकी सेना की युद्ध-कला से अच्छी तरह परिचित हो गया। सिकन्दर का देहान्त ईसवी सन् के ३२३ वर्ष पहले हुआ। उस समय उसके विस्तृत राज्य को आपस में बाँटने के लिए उसके सेनापतियों में झगड़ा हुआ। इससे हिन्दुस्तान का जो भाग सिकन्दर ने जीता था उसका प्रबन्ध ढीला हो गया। इस अवसर पर चन्द्रगुप्त ने कुछ सेना एकत्र की और पञ्जाब पर अपना अधिकार कर लिया। उधर मगध-देश में भी नन्दवंशीय राजा को हरा कर वह ईसवी सन् के ३२२ वर्ष पहले राज-सिंहासन पर बैठ गया।

सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके एक सेनापति ने, जिसका नाम सिलूकस नेकटर (Seleucus Nektor) था, हिन्दुस्तान के पश्चिमी देशों में एक बड़ा राज्य स्थापित किया। वह सिरिया (Syria) राज्य के नाम से विख्यात हुआ। बेबीलन अर्थात् बाबुल उसकी राजधानी हुई। इस प्रतापी राजा ने चाहा कि हिन्दुस्तान में सिकन्दर बादशाह के जीते हुए जो सूबे हैं उन पर फिर से अधिकार कर लूँ। इस लिए उसने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। परन्तु चन्द्रगुप्त ने उसे कई दफ़े हराया। अन्त में उसे लाचार होकर चन्द्रगुप्त से सन्धि करनी पड़ी। उसने बलूचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी सीमा का सूबा, ५०० हाथी लेकर, चन्द्रगुप्त को दे दिया। इसके बाद उसने अपनी पुत्री का विवाह भी चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया और मेगेस्थनीज़ नाम का अपना एक एलची चन्द्रगुप्त के दरबार में रख दिया। यह राजदूत बहुत काल तक चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा। उसने यहाँ की तत्कालीन दशा के वर्णन में एक पुस्तक लिखी। उससे सम्राट् चन्द्रगुप्त का बहुत कुछ हाल ज्ञात होता है। यद्यपि असली पुस्तक अनुपलब्ध है, तथापि उसके बहुत स्थल और और ग्रन्थों में उद्धृत हो जाने के कारण, उस समय का वृत्तान्त सुरक्षित है। उसी के आधार पर सम्राट् चन्द्रगुप्त का वृत्तान्त लिखा गया है।

उसकी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। राजधानी के विषय में पूर्वोक्त पुस्तक में लिखा है कि वह दस मील लम्बी और दो मील चौड़ी थी, और गङ्गा तथा सोन नदियों के बीच में बसी हुई थी। नगर के चारों तरफ़ कोट बना हुआ था, जिसमें ६४ दरवाज़े थे। कोट पर ५७० शिखर थे। चन्द्रगुप्त का राजमहल बड़ा ही अद्भुत, अपूर्व और विशाल था। उसके चारों तरफ़ एक बड़ा सुन्दर उद्यान था, जिसमें स्थान स्थान पर जलाशय थे। राजभवन में अधिकांश काम लकड़ी का था; परन्तु वह था इतना सुन्दर और चमत्कार-पूर्ण कि उसकी तुलना संसार के और किसी भवन से न हो सकती थी। ईरान (Persia) में भी उस राजमहल के समान कोई भवन न था। उसकी सजावट तो अद्वितीय ही थी। सजावट में सुवर्ण और अमूल्य रत्नों की प्रचुरता थी। राजमहल में जितने बरतन थे, सब रत्न-जटित और सुवर्ण के थे। चन्द्रगुप्त का राज्य बड़ा विस्तृत था। वह पश्चिम में अरब के समुद्र से लेकर पूर्व में बङ्गाल की खाड़ी तक और उत्तर में हिन्दूकुश-पर्वत से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी, तथा और भी आगे तक, फैला हुआ था। बलूचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रदेश उसके राज्य के अन्तर्गत थे। अर्थात् दक्षिण देश को छोड़ कर समस्त भारतवर्ष पर अकेले सम्राट् चन्द्रगुप्त की ध्वजा फहरा रही थी। इस विशाल राज्य के स्थापन-कार्य्य में उस सम्राट् के अद्वितीय राजनीतिज्ञ मन्त्री चाणक्य ने बहुत कौशल दिखाया था। वही उसकी स्थापना का प्रधान कारण था। वह जाति का ब्राह्मण था और राजनीति विषय का पारदर्शी था। उसकी लिखी चाणक्यनीति नाम की पुस्तक अभी तक बहुत आदर की दृष्टि से देखी जाती है। उसका एक और ग्रन्थ अभी हाल में उपलब्ध हुआ है। वह अर्थशास्त्र से सम्बन्ध रखता है। चन्द्रगुप्त की सेना के विषय में लिखा है कि वह संसार के तत्कालीन सब राजाओं की सेना से अधिक थी। उसके चार अङ्ग थे; अर्थात् (१) लड़ाई के हाथी, (२) लड़ाई के रथ, (३) सवार और (४) पैदल। प्रत्येक अङ्ग की संख्या इस प्रकार थी—

लड़ाई के हाथी—६,०००। इन पर सवार होने वाले ३६,००० योद्धा थे।

सवार—३०,०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदल—६,००,०००
लड़ाई के रथ—८,००० से अधिक

सारा सैनिक प्रबन्ध छः पञ्चायतों (Boards) के सिपुर्द था। चार पञ्चायतें (Boards) सेना के चारों अङ्गों का प्रबन्ध करती थीं। पाँचवीं के हाथ कमसरियट और बार-बरदारी आदि का प्रबन्ध था। छठी पञ्चायत का कार्य्य समुद्री-सेना-सम्बन्धी प्रबन्ध था। इससे ज्ञात होता है कि उस समय सामुद्रिक सेना और लड़ाई के जहाज़ भी थे।

राज्य-प्रबन्ध की शैली इस तरह थी—पाटलिपुत्र राजधानी के शासन के लिए छः पञ्चायतें (Boards) थीं। प्रत्येक पञ्चायत में पाँच पाँच मेम्बर थे। हर पञ्चायत का कार्य्य अलग अलग था।

राज्य के दूसरे नगरों का शासन-प्रबन्ध भी इसी तरह होता था। प्रबन्ध बड़ा सुन्दर और सन्तोषदायक था। गाँव गाँव में पञ्चायतें स्थापित थीं। उन्हीं के द्वारा प्रत्येक गाँव का प्रबन्ध होता था। प्रत्येक सूबे में एक एक राजप्रतिनिधि था। इन प्रतिनिधियों की निगरानी गुप्त दूतों-द्वारा होती थी। प्रत्येक नगर अथवा गाँव में ऐसे रजिस्टर रहते थे जिनमें मनुष्यों के जन्म-मरण का हाल लिखा जाता था। बाहर से जो लोग आते थे उनके आतिथ्य और उनके साथ किये जाने वाले बरताव-सम्बन्धी नियम भी सविस्तर निर्दिष्ट थे। सम्राट् का दूसरे राज्यों से घना सम्बन्ध था; क्योंकि अन्य देशों के राज-दूत उसके यहाँ आया करते थे।

माल-विभाग का प्रबन्ध बड़ा कड़ा था। वह राज्य की आमदनी का मुख्य साधन था। खेतों की पैदावार का चतुर्थांश कर-रूप में राजा को भेंट किया जाता था। एक अलग महकमा नहरों का भी था। नहरों के जल से खेत सींचे जाते थे और किसानों से उसका महसूल लिया जाता था। उस महकमे का प्रबन्ध भी अच्छा था। इन करों के अतिरिक्त व्यापारिक वस्तुओं की आमदनी और रफ़्नी पर भी चुङ्गी ली जाती थी। जिस तरह अब, समय समय पर, ज़मीन का बन्दोबस्त (Settlement) होता है उसी तरह उस समय भी होता था। राज्य में फ़ौजदारी के बड़े कड़े क़ानून थे। चोर और झूठे गवाहों को बड़ी सख़्त सज़ा मिलती थी। कोई किसी कारीगर की आँख फोड़ देने अथवा उसका हाथ तोड़ देने का अपराध करता था तो उसे फाँसी का दण्ड मिलता था। इससे ज्ञात होता है कि उस समय कारीगरों और शिल्पकारों की बड़ी क़दर थी, और इसी कारण भारत की शिल्पविद्या ख़ूब समुन्नत थी। चुङ्गी-कर न देने वालों को कठिन दण्ड मिलता था। और अपराध करने वालों के लिए भी, अपराध की गुरुता के अनुसार, दण्ड नियत थे। बेतों की सज़ा के सात प्रकार थे। फ़ौजदारी क़ानून के कड़े होने से राज्य में ख़ूब अमन-चैन था और चोरी तो कहीं नाम को भी न होती थी। आबकारी का महकमा भी था; उसका भी प्रबन्ध प्रशंसनीय था।

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष तक राज्य किया। उसका देहावसान ईसवी सन् के २९२ वर्ष पहले हुआ। उसके पश्चात् उसका वंश "मौर्य्य-वंश" के नाम से, ईसवी सन् के १८४ वर्ष पूर्व तक, चलता रहा।

इस सम्राट् के समय का जो हाल मेगेस्थनीज़ ने लिखा है उसका कुछ अंश यहाँ पर हम लिखते हैं, जिससे भारत की तत्कालीन दशा का दिग्दर्शन हो जाय। मेगस्थनीज़ लिखता है—

"इस समय राज्य-प्रबन्ध बहुत अच्छा है। भारतवासी मितव्ययी हैं। यहाँ चोरी बहुत कम होती है। यहाँ के लोग चाल-ढाल में बड़े सीधे सादे हैं। इस कारण ये सुख से रहते हैं। यज्ञ के अवसरों को छोड़ कर मदिरा कभी नहीं पीते। यहाँ चावल बहुत कसरत से खाया जाता है। भारतवासियों के सीधे-सादे और नेक होने का यही प्रमाण है कि ये न्यायालयों में बहुत कम जाते हैं। ये एक दूसरे पर इतना विश्वास करते हैं कि इनमें गिरवी और धरोहर के मुक़द्दमे होते ही नहीं। इन्हें अपने घर और अपनी धन-सम्पत्ति की रक्षा के लिए कोई प्रबन्ध नहीं करना पड़ता। ये वस्तुओं को अरक्षित ही छोड़ देते हैं; कोई चीज़ चोरी नहीं जाती। भारतवासी सुनहले और रत्नजटित वस्त्र पहनते हैं। बड़ी ही महीन फूलदार मलमल के कपड़े भी काम में लाते हैं। इन्हें सुन्दर वेश-भूषा से बड़ा प्रेम है। इनमें सचाई और सदाचार की बड़ी प्रतिष्ठा है। राजा दिन भर राज-कार्य्य में लगा रहता है; काम रुकने नहीं देता। प्रसङ्ग आने पर अपने शरीर-सम्बन्धी कार्य भी वह राजदरबार में ही कर लेता है। भारतवासी सूद पर रुपया नहीं देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न उधार लेना ही जानते हैं। उनमें न तो लेन-देन-विषयक क़ौल-क़रार होता है और न ज़मानत करने कराने ही की प्रथा है। एक दूसरे पर पूरा पूरा विश्वास करता है। यदि कोई रुपया लेकर अदा न करे तो उसके लिए कोई चारा नहीं और न इस विषय का कोई क़ानून ही है। अपराधी की केवल निर्भर्त्सना कर देना ही—उसको धिक्कार देना ही—काफ़ी दण्ड समझा जाता है।" [अपूर्ण

कन्नोमल

पुष्पाञ्जली।

मेरे आँगन का एक फूल
सौभाग्य-भाव से मिला हुआ
श्वासोच्छ्वासों से हिला हुआ
संसार-विटप में खिला हुआ
झड़ पड़ा अचानक झूल झूल
मेरे आँगन का एक फूल
ऊषा ने अपना उदय किया
दीपक ने निज निर्वाण लिया
मुझको मारुत ने जगा दिया
देखा कि दे गया हृदय-शूल
मेरे आँगन का एक फूल
वह रूप कहाँ, वह रङ्ग कहाँ
हिलने-डुलने का ढङ्ग कहाँ
हो गया हरे! रस-भङ्ग यहाँ
उड़ गई गन्ध की हाय! धूल
मेरे आँगन का एक फूल
करता समीर था साँयँ साँयँ
भूतल लगता था भाँयँ भाँयँ
बकता था मैं भी आँयँ बाँयँ
दिखलाई देता था न कूल
मेरे आँगन का एक फूल
आये इतने में श्रीनिवास
था उसी फूल-सा मन्द हास
बोले—"उसमें थी स्वर्ग-वास
वह गई, सूक्ष्म थी, रहा स्थूल"
मेरे आँगन का एक फूल
बोला तब मैं हे राज-राज!
क्या है इसके अतिरिक्त आज
जिसकी अञ्जलि दूँ तुम्हें साज
लो, इसको भी सब दोष भूल
मेरे आँगन का एक फूल

मैथिलीशरण गुप्त

भिन्नता और वंशपरम्परा

(Variation and Heredity.)

प्रकृति का यह विचित्र नियम है कि संसार में एक तरह की दो वस्तुयें एक सी नहीं मिलतीं। एक माता-पिता से उत्पन्न हुए यमल भाई भी बिलकुल एक से नहीं होते; कुछ न कुछ भिन्नता उनमें भी अवश्य पाई जाती है। इसी प्रकार एक वृक्ष से उत्पन्न हुए दो फल एक से आकार-प्रकार और रङ्ग-रूप के नहीं होते—किसी न किसी बात में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है।

मनुष्य मनुष्य में, अथवा पदार्थ पदार्थ में, इस प्रकार की भिन्नता होने पर भी हम बहुत सी बातों में समानता पाते हैं। एक जाति के चेतन या जड़ पदार्थों को, इस समानता के आधार पर, हम एक को दूसरे से पृथक् करते हैं। हमने उन जीवधारियों का नाम मनुष्य रक्खा है जिन सब में कुछ ऐसे समान गुण हैं जो किसी अन्य जीवधारी में नहीं मिलते। इसी प्रकार किसी विशेष गुण और विशेष लक्षण वाले जीवों का नाम गाय रक्खा गया है। वृक्षों और फल-फूलों तथा अन्य जड़ पदार्थों का नाम-करण भी इसी प्रकार, ऐसेही नियमों के आधार पर, किया गया है।

एक जाति के पदार्थों में यद्यपि भिन्नता कम या अधिक मिलती है, तथापि यह देखने में आता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औसत दरजे के पदार्थ अधिक होते हैं। जैसे—मनुष्य-श्रेणी में यद्यपि कुछ लोग बहुत लम्बे, या बहुत छोटे अथवा कम बुद्धि वाले या अधिक बुद्धि वाले सब स्थानों में मिलेंगे; किन्तु, यदि, मनुष्य-मात्र की जाँच की जाय तो पता लगेगा कि उनमें सबसे अधिक संख्या औसत दरजे के क़द या बुद्धिवालों की है—बहुत लम्बे या बौने अथवा पागल या बहुत बुद्धिमान् मनुष्यों की संख्या बहुत कम मिलेगी।

इस प्रकार की भिन्नता के दो प्रधान कारण होते हैं—एक बाहरी, दूसरा भीतरी। भिन्न भिन्न देशों के जल वायु एक ही जाति के पदार्थों में भिन्नता उत्पन्न कर देते हैं। दूसरी ओर, पिता या माता के वीर्य या रज, परस्पर कम या अधिक संयोग के कारण, उनकी सन्तान में भिन्नता उत्पन्न कर देते हैं।

इस भिन्नता के होते हुए भी सन्तान अपने पूर्वजों से अधिक या कम मिलती-जुलती होती है। विशेष करके समस्त जीवधारी पदार्थों की पहली सन्तान सबसे अधिक समता वाली उत्पन्न होती है। सन्तान अपनी माता-पिता से बहुत बातों में मिलती जुलती उत्पन्न होती है, क्योंकि वास्तव में वह उनके शरीर का ही एक अंश होती है।

पशु या वृक्ष की किसी भी जाति के समस्त व्यक्ति (Individuals) अधिक या कम समता वाले होते हैं। इसीसे हम उन्हें दलबद्ध करके उनका नाम रखते हैं। नीम की जाति के किसी भी वृक्ष को हम आम के वृक्ष से पृथक् कर सकते हैं। इसी प्रकार मङ्गोल-जाति के किसी चीनी को हम आर्य्य-जाति के भारतवासी से अलग कर सकते हैं, क्योंकि मनुष्य होने पर भी उनमें अन्तर है। इस प्रकार भिन्न भिन्न जातियों में अन्तर होता है और एक ही जाति के भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भी बहुत कुछ भेद होता है। भिन्नता की न्यूनता या अधिकता इस बात के आधार पर होती है कि दो जातियों या व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध कितने निकट या दूर का है। अँगरेज़-जाति के किसी मनुष्य और भारतवासी में, रङ्ग के अतिरिक्त रूप में, चीनी की अपेक्षा बहुत कम भेद है; क्योंकि अँगरेज़ और भारतवासी आर्य्य-जाति के एक ही वंश से उत्पन्न हुए हैं। सदियों की जुदाई और दूसरी जातियों के मिलाप से बहुत दिनों बाद इनमें भेद आ गया है, यद्यपि ये हैं एक ही आदि-पुरुष की सन्तति।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, सन्तान अपने सबसे अधिक निकटवर्ती पूर्वज से अधिक समता रखती है। इस नियम के अनुसार किसी जाति के अनेक व्यक्तियों में से यदि सब से उत्तम व्यक्ति चुन कर उससे सन्तान उत्पन्न कराई जाय तो वह औसत दरजे से अच्छी हो। उनमें से फिर सब से उत्तम व्यक्तियों को चुन कर उनसे सन्तान उत्पन्न कराई जाय तो वह और भी अच्छी हो। इसी प्रकार चुन चुन कर सन्तान पैदा कराने से जाति किसी समय बड़ी गुणवती हो सकती है। यह देखा गया है कि चुन कर सन्तान पैदा करने की एक सीमा होती है, जिसके आगे उत्तम सन्तान नहीं उत्पन्न हो सकती। चुन कर सन्तान पैदा करने के इस नियम का उपयोग अमेरिका में बहुत किया गया है। कैलीफ़ोर्निया प्रान्त में नारङ्गियाँ बहुत होती हैं। वहाँ के विद्वान् एक वर्ष की तमाम पैदावार में से सब से बड़ी और कम बीज वाली नारङ्गी का सब से उत्तम बीज दूसरे साल बोते हैं; उनसे उगे हुए वृक्षों की सब से बड़ी नारङ्गी लेकर उसके सर्वोत्तम बीज को फिर तीसरे साल बोते हैं। कई वर्ष लगातार ऐसा करने से अब वहाँ की नारङ्गियाँ बहुत बड़ी और मीठी तथा बिना बीज की होने लगी हैं, जिससे उनके दाम बहुत चढ़ गये हैं। इसी प्रकार वहाँ उत्तम जाति के गाय, बैल और घोड़े छाँट कर उनसे सन्तान उत्पन्न की जाती है। यहाँ तक कि आज कल वहाँ इस बात का आन्दोलन हो रहा है कि जाति के सर्व-गुण-सम्पन्न बालक और बालिकाओं का ही विवाह होने देना चाहिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे जाति की उन्नति हो। आज कल भी योरप और अमेरिका में युवकों और युवतियों के इच्छानुसार विवाह होने के कारण किसी दरजे तक स्वभावतः कन्यायें कुरूप या निकम्मे पुरुषों का तिरस्कार करती हैं और पुरुष भी कुरूपा तथा अशक्त कन्याओं को पसन्द नहीं करते। अतएव वहाँ विवाह उन्हीं में होता है जो योग्य गुणवान् होते हैं। इसका फल यह होता है कि सन्तान उत्तम पैदा होती है और जाति की शारीरिक और मानसिक अधोगति एकबारगी नहीं होने पाती। हमारे देश में, और विशेष करके हिन्दुओं में, उलटी प्रथा है। यहाँ पति-पत्नी बनने वाले, भविष्यत् में एक दूसरे के सुख-दुःख के साथी होने वाले, तथा जाति को स्थायी रखने वाले, लड़कों और लड़कियों को अँधेरे में रख कर उनका विवाह कर दिया जाता है। यही नहीं, कच्ची उम्र में उनका विवाह हो जाता है, जिसका परिणाम प्रत्यक्ष है कि हिन्दू-जाति धीरे धीरे अशक्त हो रही है। याद रहे कि चेतन और जड़, दोनों की, सदैव वृद्धि हुआ करती है। अतएव सन्तान और कुछ नहीं, अपने माता-पिता के वृद्धि-स्वरूप उनके शरीर का एक भाग ही है। यदि माता-पिता का शरीर ही यथोचित पुष्ट न हो और वे स्वयं गुणहीन हों तो उनकी सन्तान या तो उत्पन्न होते ही मर जाती है या अल्पायु, बलहीन और गुणशून्य होती है। यहाँ तक कि एक समय ऐसा आता है जब जाति के लोगों में इतनी भी शक्ति नहीं रह जाती कि उनके शरीर बीमारियों के कीड़ों के आक्रमण को टाल सकें। यही कारण है जो हमारे देश में आज कल तरह तरह की बीमारियाँ फैल रही हैं। उनके कारण विदेशी जातियों के लोग नहीं मरते और न जाति-प्रथा से मुक्त मुसलमान भाई ही इतने मरते हैं जितने हिन्दू-जाति के लोग उनका शिकार बनते हैं। दूसरी बात जाति-प्रथा है, जिसके कारण एक जाति के बालक दूसरी जाति में विवाह और सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते। फलतः योग्यों और अयोग्यों का मिश्रण हो जाता है। जब हिन्दूजाति के नेत्र खुलेंगे और ये घातक प्रथायें हटेंगी तभी हमारा अभ्युदय होगा।

परीक्षा से मालूम हुआ है कि किसी लम्बे और ठिँगने दो व्यक्तियों के संयोग से उत्पन्न हुई एक सन्तान तो लम्बी होती है दूसरी ठिँगनी। इस लम्बी सन्तान की एक सन्तान कम लम्बी और दूसरी ठिँगनी होती है। ठिँगनी सन्तान की सन्तान सभी ठिँगनी होती है। इस प्रकार कुछ ही पीढ़ियों के उपरान्त सारी सन्तान ठिँगनी हो जाती है। जो जाति योग्य और अयोग्य व्यक्तियों का संयोग करा कर उन्हें सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा देती है और उनका उत्साह बढ़ाती है, वह आत्म-हत्या करती है और भविष्य में नाश को प्राप्त होकर संसार से मिट जाती है।

साधारण लोग समझते हैं कि सन्तान अपने माता-पिता की बीमारियों को लेकर पैदा होती है। किन्तु विज्ञान ने परीक्षा द्वारा इस बात का निर्णय कर दिया है कि ऐसा नहीं होता। जैसा कि पहले कहा गया है, बीमारी स्वयं कोई वस्तु नहीं; वह तो कारण मात्र है। मनुष्य के शरीर में एक प्रकार के क्षुद्र किन्तु ज़हरीले कीड़े घुस जाते हैं। वे अपना गुज़र मनुष्य के शरीर के ख़ून पर करते हैं, जिससे एक प्रकार का ज़हर ख़ून में मिल जाता है। जब तक मनुष्य का शरीर इतना दृढ़ और इस योग्य रहता है कि इस ज़हर को हज़म कर सके तब तक वह तन्दुरुस्त रहता है। पर कुछ ही कमज़ोरी आने पर, इस ज़हर के बरदाश्त न कर सकने के कारण, बीमार हो जाता है। हाँ, माता-पिता की गन्दी बीमारियों के कीड़े सन्तान के भी शरीर में प्रवेश पाकर उसे उसी बीमारी से पीड़ित करते हैं। साधारण बीमारी होने से तो सन्तान शुद्ध उत्पन्न होती है। किन्तु अशक्त माता-पिता के निर्बल शुक्र-शोणित से उत्पन्न हुई सन्तान इस प्रकार कमज़ोर होती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उन कीड़ों के ज़हर का मुक़ाबला नहीं कर सकती और सदैव बीमारी का शिकार हुआ करती है।

देखा गया है कि बहरे मनुष्य की सन्तान प्रायः बहरी हुआ करती है। इसी प्रकार नेत्रों के कई दोष सन्तान में उसी प्रकार आ जाते हैं जिस प्रकार नेत्रों और बालों के रङ्ग माता-पिता से प्राप्त होते हैं। ख़ून की बीमारियाँ भी ऐसी कितनी ही हैं जो माता-पिता अपनी सन्तान को दे जाते हैं। तथापि यदि किसी कोढ़ी मनुष्य की सन्तान अपने कोढ़ी माता-पिता से हटा कर रक्खी जाय तो वह कोढ़ी नहीं होती। इसी प्रकार पागल की सन्तान पागल नहीं होती, यद्यपि माता-पिता की बदौलत उसके दिमाग़ में पागलपन के कीड़े आ जाते हैं।

योरप और अमेरिका में इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि उन्हीं मनुष्यों और स्त्रियों के विवाह होने देना चाहिए जो बल और बुद्धि में परिपूर्ण हों, जिससे उनकी सन्तान सुदृढ़ और बुद्धिमान् हो और देश की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहे।

जगन्नाथ खन्ना

स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता।

समय परिवर्तनशील है। एक समय था जब स्त्रियों को शिक्षा देना—उन्हें पढ़ाना, लिखाना—बुरा समझा जाता था। किन्तु ज्यों ज्यों शिक्षा का प्रचार होता गया त्यों त्यों स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। जाहिल, जड़, निरक्षर भट्टाचार्य्यों की बात तो नहीं कहते, किन्तु जिन्हें शिक्षा के लाभों का ज़रा भी ज्ञान है वे स्त्री-शिक्षा के विरोधी कदापि नहीं हो सकते। अब केवल मत-भेद है तो यही कि एक दल तो ऐसी शिक्षा देना चाहता है जिससे स्त्रियाँ आदर्श वधुयें, आदर्श पत्नियाँ और आदर्श मातायें बन सकें; दूसरा दल उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा देने का पक्षपाती है। इस लेख में विचार इसी बात का करना है कि इन दो मार्गों में से कौन मार्ग स्त्रियों के लिए श्रेयस्कर है।

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि स्त्री-जाति पर ही अवलम्बित है। स्त्रियाँ यदि गर्भ-धारण न करें और सन्तान का लालन-पालन न करें तो सृष्टि कदापि नहीं चल सकती। खेत में बीजारोपण करना किसान का काम है सही; किन्तु पृथ्वी यदि धारणा-शक्ति त्याग दे तो बीज बोना निष्प्रयोजनीय हो जाय। इसी लिए स्त्रियाँ शक्तिरूपा कही गई हैं। मनु ने तो स्पष्ट ही लिखा है कि स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करती हैं, इस लिए वे विशेष सत्कार करने योग्य हैं। गर्भिणी स्त्री की रक्षा किस यत्न से करनी चाहिए; उसके लिए आहार-विहार की क्या व्यवस्था होनी चाहिए; यही नहीं, प्रसव के बाद भी, कुछ काल तक, उसे किन नियमों का पालन करना चाहिए—इत्यादि बातें वैद्यक-शास्त्र के अध्ययन से मालूम होती हैं। इस दशा में कब सम्भव है कि स्त्रियाँ, पुरुषों के सदृश, धनोपार्जन-कार्य्य का कठिन श्रम उठा सकेंगी। कब सम्भव है कि वे वाणिज्य, व्यवसाय अथवा नौकरी के लिए देश-देशान्तरों में भ्रमण कर सकेंगी। यदि करें भी तो उनका वैसा करना, सन्तानोत्पत्ति और उसके लालन-पालन में घोर प्रतिबन्धक होगा। इसी लिए धनोपार्जन का भार स्त्रियों पर न रख कर पुरुषों पर रक्खा गया है। ऐसी दशा में स्त्रियों को धनोपार्जन-सम्बन्धिनी शिक्षा देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यदि यह शिक्षा उनके कार्य्यों में बाधा न डालती तो सभी विचारशील पुरुष इसका अनुमोदन हृदय से करते; क्योंकि आर्थिक अभ्युदय की अभिलाषा मनुष्यों में स्वभावतः सिद्ध है।

अब प्रश्न यह है कि जब स्त्रियों के लिए धनोपार्जन-सम्बन्धिनी शिक्षा की आवश्यकता नहीं तब उन्हें किस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए।

ऊपर कहा जा चुका है कि सन्तान का पालन-पोषण करना स्त्रियों का प्रधान कर्तव्य है। यह कर्त्तव्य बड़े महत्त्व का है। जिस सन्तान पर कुल, जाति और देश की भावी उन्नति अवलम्बित रहती है, जिसके नाम इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखे जा सकते हैं, जिसके सदाचार-रत, धर्म्म-निष्ठ और परोपकारी होने से देश का देश पवित्र हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, यही नहीं, जिसकी पूजा ईश्वर-तुल्य की जा सकती है उसी के लालन-पालन और रक्षण का कार्य्य माताओं के लिए सचमुच बड़े दायित्व का है। धन्य हैं वे मातायें जिन्होंने शङ्कराचार्य्य, रामानुजाचार्य्य, राजा राममोहनराय जैसे धर्मशील महात्माओं को अपनी गोद में पाला। धन्य हैं वे जिनके प्रसाद से भारतवर्ष ने आज बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, डाक्टर रासविहारी घोष, डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और कर्मवीर गांधी जैसे नर-रत्नों को पाया। ऐसे हज़ारों उदाहरण मौजूद हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जिस उत्तमता, सुगमता, एवं शीघ्रतापूर्वक मातायें अपनी सन्तानों के हृदय-कमल को शिक्षा-सूर्य्य की किरणों से प्रफुल्लित कर सकती हैं—उनके हृदय-पटल पर शिक्षा के आदर्श विचारों को अङ्कित कर सकती हैं—वैसा अन्य शिक्षक और पिता भी नहीं कर सकते। चाहे जन्म भर गुरु या शिक्षक के चरणों पर पड़े रहिए, पर शिक्षा के उच्च सिद्धान्तों का ज्ञान माता ही के द्वारा हो सकता है। बच्चों को जितना स्नेह माता से होता है उतना और किसी से नहीं होता। जहाँ स्नेह होता है वहीं विश्वास का अङ्कुर उत्पन्न होता है। विश्वसनीय जन की ही समझाई हुई बातें ध्रुववत् सत्य प्रतीत होती हैं और हृदय में अमिट रूप से सदा बनी रहती हैं। इसके सिवा बच्चों का हृदय गीली मिट्टी के पात्र की तरह कोमल होता है। वह बड़ी आसानी से भिन्न भिन्न रूपों में लाया जा सकता है। अतएव माताओं को उचित है कि कम से कम सात आठ वर्ष तक अपनी सन्तानों का पालन-पोषण करने के साथ साथ उन्हें आचार और धर्म्म-विषयक उत्तमोत्तम शिक्षायें सदा दिया करें। किन्तु इस कार्य्य के लिए प्रथम उन्हें स्वयं विदुषी और शिक्षिता होना चाहिए। जगत् के महान् पुरुषों तथा आदर्श-महिलाओं के जीवनचरित एवं नीति और धर्म्मशास्त्र की बातों का उन्हें ज्ञान होना चाहिए। यही नहीं, उन्हें सच्चरित्रा और धर्मपरायणा होने की भी आवश्यकता है। क्योंकि, ज़बानी उपदेश की अपेक्षा चरित्र का प्रभाव बच्चों पर अधिक पड़ता है। इसके सिवा, बच्चों के अनेक छोटे मोटे रोगों को दूर करने के लिए उन्हें चिकित्सा-शास्त्र का भी थोड़ा बोध होना चाहिए। क्या ये सब बातें बिना सुशिक्षा पाये कभी जानी जा सकती हैं? कदापि नहीं। कुछ लोगों का अब भी यही ख़याल है कि विद्वान् और महात्माओं की सङ्गति से जब शिक्षा की प्राप्ति हो सकती है तब स्त्रियों को पढ़ने लिखने की उतनी आवश्यकता नहीं। यह ठीक। पर यदि वे संसर्ग के दोषों पर भी थोड़ा विचार करते तो शायद उन्हें ज्ञात हो जाता कि इस अविद्यान्धकारपूर्ण समय में, ख़ास कर स्त्री-जाति के लिए, ग्रन्थावलोकन द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करना उत्तम मार्ग है। अब यदि कहिए कि भ्राता, पिता, ससुर अथवा स्वामी की सङ्गति से दोष की सम्भावना नहीं, तो इसका उत्तर यह होगा कि इन्हें अपनी चक्की पीसने से ही फ़ुरसत नहीं। ये शिक्षा देंगे तो कैसे देंगे। सङ्गति के गुण बड़े विलक्षण होते हैं अवश्य, किन्तु जब तक विदुषी और शिक्षिता स्त्रियों की संख्या अधिक न होगी तब तक सर्वसाधारण स्त्रियों को न तो सुसङ्गति से लाभ हो सकता है और न पढ़ाने लिखाने वाली स्त्रियाँ ही उन्हें मिलसकती हैं।

ऊपर स्त्रियों के जिन कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया उनसे यह न समझ लेना चाहिए कि स्त्रियों के कर्तव्यों की इतनी ही सीमा है। गृहस्थाश्रम का भार साधारण नहीं। जब तक स्त्री और पुरुष कन्धे से कन्धा मिला कर यह भार उठाने का श्रम न करेंगे तब तक ऋद्धि-सिद्धि की वृद्धि कदापि न होगी। अँगरेज़ी-भाषा में स्त्रियाँ पुरुषों की Better Half और संस्कृत में अर्द्धाङ्गिनी कही गई हैं। तीन वर्ष हुए जब यह लेखक काशी में था। वहाँ एक कन्या-युग्म महाराष्ट्र देश से आया हुआ था। उस युग्म के और सब अङ्ग तो जुदे जुदे थे, पर उन दोनों की कमर के पिछले हिस्से ऐसे जुड़े हुए थे कि एक के चलने पर दूसरी भी चल पड़ती थी। जगदीश्वर की इस रचना को देख कर आश्चर्य्य होता था। उनकी सब इन्द्रियों की क्रिया पृथक् पृथक् थी अवश्य; पर सच पूछिए तो वे दोनों ही एक दूसरी की आश्रित थीं। इसी प्रकार विधाता ने स्त्री-पुरुष के प्रारब्धों को ऐसा मिला दिया है कि उनके कर्तव्य और उनके नाम-रूप पृथक् पृथक् होने पर भी वास्तव में वे दोनों एक ही हैं, दो नहीं। इसी लिए विद्वानों ने दम्पति शब्द की रचना की है। एक कवि की उक्ति है—

एक से जब दो हुए तब लुत्फ़ एकताई नहीं।
इस लिए तसवीर जानां हमने खिँचवाई नहीं॥

धनोपार्जन पुरुषों का कर्तव्य है सही; पर यह नहीं कह सकते कि इस कार्य्य से स्त्रियों का कुछ सरोकार ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनोपार्जन में पुरुष भले ही प्रवीण हों, किन्तु धन की रक्षा और उसे किफ़ायत से ख़र्च करना स्त्री ही जानती है। प्रत्यक्ष प्रमाण यही कहता है कि पुरुषों में इस कार्य्य की योग्यता नहीं। धन का लोभ स्त्रियों को स्वभाव ही से होता है। लोभ होने से धन का अच्छा संग्रह किया जा सकता है। धन-संग्रह होने पर गृहस्थाश्रम की अनेक आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती है। पूर्त्ति होने पर ही अर्थागम का सच्चा सुख प्राप्त होता है। इसके सिवा, गृहस्थी में किन सामग्रियों के किस समय न रहने से कैसी तकलीफ़ होती है, किस वस्तु की किस समय आवश्यकता है और किसकी नहीं, इत्यादि बातों का विशेष ज्ञान स्त्रियों ही को होता है। इसी लिए मनु की राय है कि धन-संग्रह और उसे व्यय करने का कार्य्य स्त्रियों को सौंप देना चाहिए। किन्तु, इस कार्य्य के लिए उन्हें गणित, नीति और अर्थशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि लक्ष्मी की कृपा बिना सरस्वती की सेवा नहीं होती। एक उन्मत्त जौहरी पर लोगों ने पत्थर फेंकने शुरू किये। जौहरी ने पत्थर का जवाब पत्थर से ही दिया। अर्थात् वह भी मणियों को लोगों पर फेंकने लगा। बात यह थी कि वह जौहरी होकर भी अविवेकी था। इसी से लक्ष्मीवानों अथवा लक्ष्मी की कृपा चाहने वालों को नीतिमान्, विवेकी और सुशिक्षित होना चाहिए। माना कि पूर्व-संस्कारों के कारण कुछ अशिक्षित स्त्रियाँ भी अपने कर्तव्यों का पालन ठीक ठीक करती देखी गई हैं; पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उन संस्कारों को स्थिर रखने के लिए शिक्षा की कोई आवश्यकता ही नहीं। संस्कार या स्वभाव क्या बदलता नहीं? यदि संस्कार निर्बल हुए और उनके शत्रु सबल, तो निर्बल का सबल के पञ्जे में पड़ जाना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। महर्षि वाल्मीकि पहले क्या थे और फिर क्या हो गये। ऐसे और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। स्वभाव बीज-रूप से हृदय में रहता है। यदि सद्भावों का बीज हुआ तो शिक्षा के जल से उसका सिञ्चन करना चाहिए। ऐसा न करने से उस बीज का वृक्ष के रूप में आना और उससे उत्तम फल-फूल मिलने की आशा करना दुराशा मात्र है। शिक्षा का कुछ चमत्कार ही ऐसा है कि उसके अभ्यास से सद्भावों का विकाश और असद्भावों का नाश हो जाता है। अतएव, इससे हर हालत में लाभ ही होता है, हानि नहीं।

यों तो स्त्रियों के और भी अनेक छोटे छोटे कर्तव्य हैं, पर उनका मुख्य कर्तव्य यह है कि रसोई इत्यादि बना कर परिवार के लोगों के बल-वीर्य्य की पुष्टि करना। यह बड़े महत्त्व का कार्य्य है। शरीर में पाकस्थली ऐसी वस्तु है जिससे शरीर के सभी छोटे बड़े अवयवों को पुष्टि-प्राप्ति होती है। अतएव गृहस्थाश्रमी स्त्रियों का रसोई बनाने में निपुण होना अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है जो स्त्रियाँ साक्षात् अन्नपूर्णा कही गई हैं। विधाता ने उनके हाथों में ऐसा रस दिया है कि उनकी बनाई हुई चीज़ों से जैसा स्वाद मिलता है वैसा पुरुषों की बनाई हुई चीज़ों से नहीं मिलता। यह बात अनुभव-सिद्ध है। इस कर्तव्य का ठीक ठीक पालन करने से स्त्रियाँ आदर्शभगिनी, आदर्शकन्या, आदर्शवधू, आदर्शमाता और आदर्शपत्नी बन सकती हैं। यद्यपि यह कला विशेषतः अभ्यास पर ही अवलम्बित है, तथापि इसमें प्रवीणता प्राप्त करने के लिए रसायन-शास्त्र का अध्ययन बहुत सहायता देता है। धन्य हैं लक्षाधीशों की वे बहुयें और बेटियाँ जो अनेक दास, दासियाँ और रसोइयों के रहते हुए भी इस पुनीत कार्य्य को स्वयं अपने हाथों से नित्य करती हैं।

अब तक स्त्रियों के लौकिक कर्तव्यों का ही उल्लेख किया गया। किन्तु पुनर्जन्म के मानने वालों की राय में मानवी जीवन का उद्देश केवल लौकिक कर्तव्यों से ही पूरा नहीं होता। वे परलोक की भी ख़बर रखते हैं। ऐसे लोगों में सभी यह चाहते हैं कि परलोक में हम सुखपूर्वक रहें। पर स्त्रियों के पारलौकिक कर्तव्यों में इस समय बड़ा मतभेद है। एक समुदाय कहता है कि स्त्रियों के लिए पति ही गुरु, देवता और परमेश्वर है। उसी की पूजा, उसी की सेवा, उसी की आज्ञाओं के पालन से स्त्रियों का उद्धार होगा। उनके लिए परमेश्वर की पूजा-अर्चा उतनी आवश्यक नहीं। दूसरा समुदाय कहता है कि नहीं, स्त्रियाँ पुरुषों की सहधर्म्मिणी हैं। वे उनके मित्रतुल्य हैं। अतएव जो पारलौकिक धर्म पुरुषों के हैं, वही स्त्रियों के भी होने चाहिए। इस झगड़े का फ़ैसिला करना इस लेख का विषय नहीं। तथापि इतना कहना अनुचित न होगा कि पूजा चाहे जिसकी की जाय—चाहे पति की, चाहे परमेश्वर की—पर इन दोनों ही मार्गों के लिए अन्तःकरण की शुद्धि की बड़ी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तःकरण शुद्ध होने ही से मन स्थिर होता है। मन स्थिर होने पर अनन्य-भाव की स्फूर्ति होती है। तभी किसी की पूजा ठीक ठीक की जा सकती है। एकपत्नीव्रतधारियों एवं पातिव्रत-धर्म के पक्षपातियों की राय में बिना मन स्थिर हुए इन धर्मों का पालन होना सम्भव ही नहीं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—कि "हे अर्जुन! मन निःसन्देह बड़ा चञ्चल है। किन्तु वैराग्य और अभ्यास से वह वश में किया जा सकता है। उसे तू मुझ में ही लगा। समस्त कर्मों को करता हुआ भी तू यही समझ कि मैंने कुछ किया ही नहीं। कर्मों के फल की वासना को मुझको ही अर्पण कर दे। अनन्य-भाव से मेरा ही आश्रय ले। मेरा ही स्मरण कर। मुझे ही नमस्कार कर। अन्त में तू मुझको ही प्राप्त होगा"। गीता-शास्त्र का यही सार है। कर्मयोग का यही रहस्य है। अतएव पति या परमेश्वर में अपना मन परायण करना स्त्रियों का भी कर्तव्य होना चाहिए। राजहंस जिस तरह पानी पर तैरता हुआ भी अपने पङ्खों को ऊपर ही रखता है उसी तरह गृहस्थाश्रम के समस्त कर्तव्यों को करते हुए भी स्त्रियों को उनमें लिप्त न होना चाहिए। कर्मों को केवल कर्तव्य-बुद्धि से करना चाहिए। मन को रत करने का रहस्य भी यही है कि मन तो एक तरफ़ लगा हुआ है, इन्द्रियाँ, बुद्धि की सहायता से, कर्तव्यों का पालन कर रही हैं। ऐसी दशा में कर्मों के फल की कांक्षा करने वाला कोई रहता ही नहीं। इस प्रकार के अभ्यास से स्त्रियों की आत्मायें बलिष्ठ होंगी, उनकी मानसिक व्याधियाँ दूर होंगी, पति या परमेश्वर में अनन्य-भक्ति उत्पन्न होगी और सबसे बढ़ कर यह बात होगी कि गृहस्थाश्रम के शोक, मोह, काम, पीड़ा, भय, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, इत्यादि दुःखों से वे बची रहेंगी। वे इस लोक में सुखपूर्वक रह सकेंगी और परलोक में उनके लिए सुख का द्वार खुला रहेगा। किन्तु इन सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए उन्हें वैराग्य और ज्ञानप्रदीपक गीता एवं वेदान्त-शास्त्र का अध्ययन करना पड़ेगा।

दान-धर्म भी पारलौकिक कर्त्तव्यों का एक प्रधान अङ्ग है। उससे गृहस्थाश्रम की शोभा है। इसीसे यह आश्रम अन्य आश्रमों की अपेक्षा उत्तम कहा गया है। जब लक्ष्मी से गृहलक्ष्मी का सम्मेलन होना उचित है तब दान-धर्म का अधिकार भी उन्हीं गृह-लक्ष्मियों को मिलना उचित प्रतीत होता है। किन्तु इसके लिए उन्हें देश, काल और पात्र का ज्ञान होना चाहिए। किस समय, कैसी वस्तु, किसे देने से, कितना उपकार होता है यह तथा और भी ऐसी ही अनेक लौकिक तथा पारलौकिक बातों को जानने के लिए रामायण, महाभारत जैसे उत्तमोत्तम ग्रन्थ पढ़ने पड़ेंगे।

अच्छा तो स्त्रियों को शिक्षा अँगरेज़ी में दी जानी चाहिए या हिन्दी में? इस समय जब पुरुषों की शिक्षा के लिए भी अँगरेज़ी जैसी कठिन और विदेशी भाषा का विरोध अनेक विद्वान् कर रहे हैं तब स्त्रियों के लिए यह प्रश्न उठाना अपना उपहास मात्र कराना है। अँगरेज़ी तो दूर रही, इस लेखक की राय में तो संस्कृत पढ़ाना भी स्त्रियों के लिए उतना आवश्यक नहीं। सर्वगुण-आगरी देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा से उनका काम मज़े में चल सकता है। संस्कृत का ग्रन्थ अब शायद ही कोई ऐसा हो जिसका अनुवाद मातृ-भाषा में न हुआ हो। किन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी लड़कियों को पादड़ी मेमों के द्वारा शिक्षा दिलाते हैं। ऐसी शिक्षा क्या शिक्षा कही जा सकती है? नहीं। ऐसी शिक्षा से तो स्त्रियों का अशिक्षिता रहना ही अच्छा है; क्योंकि शिक्षिता होकर दूसरों का धर्म स्वीकार करने की अपेक्षा अशिक्षिता रह कर अपने धर्म में मरना ही भला है—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः

(भ० गी०)

शालग्राम गुप्त

महत्ता और क्षुद्रता।

ज्येष्ठ मास की दोपहरी में पथिक एक अति व्याकुल-प्राण
किसी ताड़-तरु से जा बोला—"कर सकता है तप से त्राण?"
पर रूखा जवाब पा करके, कहा पथिक ने हो कुछ म्लान—
"मैंने बड़ी मूर्खता की जो, माँगा तुझसे आश्रय-दान।
देख दूर ही से पथ ऊपर, तेरा यह गर्वोन्नत-भाल,
बड़ी बड़ी आशायें करके, पहुँचा मैं तप से बेहाल।
नहीं जानता था मैं तेरा हृदय बना ऐसा सङ्कीर्ण
देख किसी की व्याकुलता क्या, पत्थर होगा कभी विदीर्ण?
लोभ-विवश जो कहीं फलों को, रक्खा ले मस्तक ऊपर;
भला श्रान्त पथिकों के हित कुछ छाया तो रखता भू पर?"
खिन्न पथिक आगे चल पहुँचा, क्षुद्र आम्र-पादप के पास।
"स्वागत, अहो बन्धुवर!"—इसने, कर फैला कर कहा सहास॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिठा छाँह में सादर उसने किये विविध उसके सत्कार।
चलते समय नम्र हो अतिशय, दिये प्रेम से फल-उपहार॥
कहा पथिक ने—"क्षुद्र आम्र-तरु! तू है उदारता की खान।
तू छोटा है तो इससे क्या, तेरा तो है हृदय महान्॥
हृदय-हीन जो बड़ा हुआ तो वह है केवल भू का भार।
सहृदय ही बस कर सकता है, इस जग का सच्चा उपकार"॥

मुकुटधर—

हिन्दी में प्रत्यक्ष और परोक्ष भाषण।

इस लेख का शीर्षक पढ़ कर पाठकों को कदाचित् इस बात का अचरज होगा कि हिन्दी को यह कौन सी नई व्याधि आ लगी। पर अचरज की कोई बात नहीं है; क्योंकि राज अँगरेज़ी है, जिसके कारण लोग अँगरेज़ी पढ़ कर अपनी भाषा में भी उसी भाषा का स्वप्न देखा करते हैं। ये लोग अपनी गिटपिट बोली के सामने किसी और भाषा को तथा अपनी विद्या के आगे कोई दूसरी भाषा जानने वालों की विद्या को कुछ भी नहीं समझते। यही लोग हमारी भाषा को अँगरेज़ी के विदेशी वस्त्र पहिना कर उपहास-पात्र बना रहे हैं। कुछ दिनों से इन लोगों ने हिन्दी में प्रत्यक्ष के बदले परोक्ष भाषण की भरती करके हमारी भाषा की स्वाभाविक सुन्दरता को बिगाड़ने का बीड़ा उठाया है। इन लोगों को न इस बात का ध्यान है और न ध्यान करने की आवश्यकता है कि संसार में "अपना" भी कोई पदार्थ है।

हिन्दी में जहाँ पुराने लेखक इस प्रकार लिखते हैं कि अहल्या ने गङ्गाधर से कहला भेजा कि सुन, एक राजा की तो मैं स्त्री थी और दूसरे की माँ, वहाँ ये अहम्मन्य लेखक इस प्रकार लिखते हैं कि कमला बोली कि वह (कमला) अभी जायगी। यह पिछली रचना अँगरेज़ी के परोक्ष भाषण की नक़ल है, जो अँगरेज़ी-पढ़े बाबुओं के सिरों में दिन-रात घूमा करती है। इस रचना का एक और उदाहरण यह है—वह यह नहीं कहता कि वह (मैं) भूला हुआ है।

यद्यपि हिन्दी में परोक्ष भाषण नहीं है और निरङ्कुश लेखक व्यर्थ ही उसकी कठिनाइयाँ हिन्दी में भर रहे हैं, तथापि हमारी भाषा में एक दो स्थान अवश्य ऐसे हैं जिनमें यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि यहाँ कौन सा सर्वनाम लाना चाहिए। यह बात नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट होगी—

मान लीजिए कि गोपाल ने राम से कहा कि कृष्ण बड़ा चतुर है; और राम गोपाल का यह भाषण कृष्ण को सुनाना चाहता है। तो अब राम वह बात कृष्ण से किस प्रकार कहे? यदि वह इस प्रकार कहता है कि गोपाल मुझ से कहता था कि तुम (अर्थात् कृष्ण) बड़े चतुर हो तो "तुम" शब्द प्रत्यक्ष भाषण में स्वयं "राम" का प्रतिनिधि हो सकता है; यथार्थ में कृष्ण के लिए गोपाल की ओर से "तुम" शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता; क्योंकि गोपाल के सम्बन्ध से कृष्ण मध्यम नहीं, किन्तु अन्य पुरुष है। ऐसी अवस्था में राम या तो कृष्ण का नाम लेकर उससे गोपाल की बात दुहरावेगा या उसके लिए अन्य पुरुष "वह" (सम्बोधन में आदरार्थ "वे") का उपयोग करेगा; जैसे, गोपाल मुझ से कहता था कि कृष्ण बड़े चतुर हैं या गोपाल मुझसे तुम्हारे विषय में कहता था कि वे बड़े चतुर हैं। ये उदाहरण हिन्दी के प्रत्यक्ष भाषण के हैं और व्यवहार में भी आते हैं; पर कभी कभी ऐसे वाक्यों में लोग भ्रम-वश मध्यम पुरुष का प्रयोग कर बैठते हैं, जिससे कुछ समय के लिए अर्थ में गड़बड़ हो जाती है। दूरवर्ती "वे" के बदले निकटवर्ती "ये" का प्रयोग हो सकता था, यदि गोपाल और राम के सम्भाषण के समय कृष्ण उनके पास ही, पर बातचीत से दूर, खड़ा होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मान लीजिए कि स्वयं गोपाल अपना भाषण, जो उसने राम से कृष्ण के विषय में किया है, कृष्ण के पास आकर दुहराता है तो वह कृष्ण से इस तरह बोलेगा कि मैंने राम से तुम्हारे विषय में कहा था कि वे बड़े चतुर हैं। यहाँ गोपाल अपने सामने खड़े हुए कृष्ण के लिए भी अन्य पुरुष का प्रयोग करेगा; क्योंकि वह अपनी पहली बात अविकल रूप से दुहराता है और उसके सम्बन्ध से कृष्ण अन्य पुरुष था। यदि गोपाल "वे" का प्रयोग न करना चाहे तो वह मूल संज्ञा (अन्य पुरुष) "कृष्ण" शब्द का उपयोग कर सकता है; जैसे, मैंने राम से कहा था कि कृष्ण बड़े चतुर हैं। यहाँ इन सब उदाहरणों में बहुवचन का प्रयोग आदर के लिए किया गया है; क्योंकि किसी से उसके समक्ष एकवचन में बोलना अशिष्ट समझा जाता है।

जब स्वयं कृष्ण अपने विषय की बातचीत, जो गोपाल और राम के बीच में हुई थी, उन दोनों में से किसी एक के पास अथवा किसी दूसरे मनुष्य के पास दुहरावेगा तब वह भी अपने लिए अन्य पुरुष का उपयोग करेगा; क्योंकि मूल भाषण कृष्ण के सम्बन्ध से अन्य पुरुष में है। वह केवल इतना रूपान्तर करेगा कि दूरवर्त्ती अन्य पुरुष "वे" को अपने सम्बन्ध से निकटवर्त्ती "ये" कर देगा। उदाहरण—गोपाल राम से मेरे विषय में कहता था कि यह बड़ा चतुर है।

इन सब उदाहरणों से यह नियम निकलता है कि किसी के मूल भाषण में जो सर्वनाम आते हैं वे उस भाषण के दुहराये जाने पर नहीं बदलते। उनमें केवल दूरवर्त्ती अन्य पुरुष निकटवर्त्ती कर दिया जाता है; पर यह तभी होता है जब मूलभाषण का अन्य पुरुष ही उस भाषण का संवाद-दाता हो अथवा भाषण दुहराने के समय उपस्थित हो; जैसे, कोतवाल—छोड़ दो। महाराज कहते हैं कि अँगूठी का वृत्तान्त हम जानते हैं। धीमर का कुछ अपराध नहीं। इसे छोड़ दो। इससे भिन्न अँगरेज़ी की परोक्ष-भाषण-प्रणाली का स्वीकार करने से बड़ा गड़बड़ उत्पन्न होती है और उससे हिन्दी में कोई सुधार भी नहीं हो सकता।

अब हम प्रत्यक्ष भाषण का एक ऐसा उदाहरण देते हैं जिसमें ऐसे दो भाषण सम्मिलित हों। "गोपाल ने राम से कहा कि तुम कृष्ण से क्यों नहीं कह देते कि तुम उनकी पुस्तकें भेज दो", इस वाक्य में "उनकी" शब्द (अन्य पुरुष) गोपाल (वक्ता) की ओर सङ्केत करता है। "उनकी" पद गोपाल, राम और कृष्ण से भिन्न किसी और व्यक्ति के लिए भी आया हुआ समझा जा सकता है; पर यहाँ वैसा अर्थ लेने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इस वाक्य में किसी चौथे का उल्लेख नहीं। तो अब यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि वक्ता अपने लिए अन्य पुरुष का प्रयोग क्यों करता है? क्या वह ऐसा नहीं कह सकता था कि "तुम कृष्ण से क्यों नहीं कहते कि वह हमारी पुस्तकें भेज देवे"? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर यह है कि पहले वाक्य में वक्ता (गोपाल) मानो उन शब्दों को दुहरा रहा है जो दूसरा वक्ता (राम) कृष्ण से कहेगा और कृष्ण के प्रति राम के भाषण में गोपाल का उल्लेख अन्य पुरुष में होगा। राम कृष्ण से यही आकर कहेगा कि गोपाल मुझ से तुम्हारे विषय में यह कहता था कि तुम उनकी किताबें भेज दो। यदि गोपाल राम के शब्दों को दुहराने की कल्पना न करके स्वयं ही राम के द्वारा कृष्ण को सूचना देने का विचार करे, तो वह ऊपर लिखी हुई दूसरी रीति से भी भाषण कर सकता है—अर्थात् वह राम से कहेगा कि तुम कृष्ण से क्यों नहीं कहते कि वे हमारी किताबें भेज दें। इस पिछले वाक्य में "हमारी" शब्द से राम की ओर भी सङ्केत हो सकता है; पर उसका निराकरण "वे" शब्द से हो जाता है, जो गोपाल की ओर से कृष्ण के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयुक्त हुआ है। यदि "हमारी" शब्द राम के लिए आता तो वह (राम) कृष्ण के लिए "तुम" शब्द का प्रयोग करता; जैसे, गोपाल ने मुझ से कहा कि तुम कृष्ण से क्यों नहीं कहते कि तुम (कृष्ण) हमारी (राम की) किताबें भेज दो। इस प्रकार के वाक्यों में भी यदि सर्वनामों के मूल अर्थ का ध्यान रक्खा जाय और वक्ता अथवा श्रोता की उपस्थिति की घटना के कारण भ्रम उत्पन्न न हो, तो हिन्दी में सर्वनामों को बदलने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इस विषय की स्पष्टता के लिए हम "शकुन्तला नाटक" से कुछ उदाहरण देते हैं—

"तप०—उस जगह तपस्वियों के धर्म-कार्य्य निर्विघ्न होते देख कर आप भी जानेंगे कि मेरी (दुष्यन्त की) इस भुजा से, जिसमें प्रत्यञ्चा की फटकार के चिह्न भूषण हैं, कितने सत्पुरुषों की रक्षा होती है।"

"शकु०—तब तुमने हँस कर कहा कि तुम दोनों (शकुन्तला और मृगछौना) एक ही वन के वासी हो"।

"दुष्यन्त—रैवतक, तू जाकर सारथि को आज्ञा दे कि (वह) रथ लावे, और मेरा धनुष-बाण भी लेता आवे।"

अब कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं जिनमें उत्तम पुरुष सर्वनाम का अर्थ सन्दिग्ध रहता है। "विश्वा०—(तू) जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?" इस वाक्य में यदि यह न मालूम हो कि विश्वामित्र क्रोधपूर्वक अपना परिचय दे रहे हैं तो यह नहीं जाना जा सकता कि मैं प्रथम वक्ता के लिए आया है अथवा दूसरे हरिश्चन्द्र के लिए। राम० में एक उदाहरण मिलता है जिसकी सहायता से ऊपर लिखे वाक्य का अर्थ स्पष्ट हो जाता है—

"पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाऊँ" इस वाक्य में "मैं" शब्द का अध्याहार है और यह "मैं" वाल्मीकि के लिए नहीं, किंतु राम के लिए आया है। दूसरा "मैं" अवश्य ही वाल्मीकि के लिए प्रयुक्त हुआ है। इन दोनों वाक्यों में "मैं" शब्द का अर्थ भिन्न भिन्न है, यद्यपि रचना एक ही सी है। दोनों वाक्यों में "मैं" के प्रयोग में केवल यही भिन्नता है कि एक में क्रोध तथा निषेध का भाव है और दूसरे में शान्ति तथा स्वीकार का; पर इस अन्तर से शब्दों का अर्थ जानने में कोई सहायता नहीं मिलती। यदि ये वाक्य इस तरह लिखे गये होते (जो यथार्थ में इनका आशय है) तो अर्थ-भ्रम न होता—

(१) विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से पूछा कि क्या तू (मुझे) नहीं जानता कि मैं कौन हूँ ?

(२) वाल्मीकि ने राम से कहा कि तुमने मुझ से (अपने विषय में) पूछा कि मैं कहाँ रहूँ; (पर) मैं आपसे पूछते हुए सकुचाता हूँ।

इस प्रकार के वाक्यों में उत्तम पुरुष सर्वनाम का यथार्थ सङ्केत प्रसङ्ग ही से जाना जा सकता है; पर इनमें एक नियम यह जान पड़ता है कि दो मनुष्यों के परस्पर सम्भाषण में जिस व्यक्ति की प्रधानता हो उसी के लिए उत्तम पुरुष की योजना होती है। यदि गोपाल राम से लड़ता हुआ उससे यह कहे कि क्या तू समझता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, तो इस भाषण के "मैं" शब्द से यह निर्णय करना कठिन है कि वक्ता ब्राह्मण है अथवा श्रोता। इस सन्देह का निवारण केवल ऊपर कही हुई रीति से हो सकता है। परन्तु यदि गोपाल अपने भाषण में किसी का कुछ भी उल्लेख कर दे तो "मैं" का यथार्थ सङ्केत तुरन्त स्पष्ट हो जा सकता है; जैसे, (गोपाल ने राम से कहा) क्या तू समझता है कि मैं (गोपाल) तेरा नौकर हूँ, अथवा क्या तू समझता है कि मैं (राम) इससे (गोपाल से) जीत जाऊँगा ? कहने का सारांश यह है कि ऐसे वाक्यों में उत्तम पुरुष सर्वनाम के विशेष अर्थ पर ध्यान रखने की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख के द्वारा हिन्दी के लेखकों से प्रार्थना है कि वे अपनी भाषा में अँगरेज़ी के परोक्ष भाषण की विदेशी भरती न करें और उसकी स्वाभाविक सुन्दरता को बनाये रक्खें।

कामताप्रसाद गुरु

—

बूढ़े का ब्याह।

(१)

पण्डित शिवानन्द और बाबू मुरलीमनोहर की प्रकृति भिन्न भिन्न होने पर भी उनमें ख़ूब मित्रता थी—ख़ूब घनिष्ठता थी। वे आपस में प्रायः रोज़ मिलते और घण्टों विभिन्न विषयों पर वार्त्तालाप किया करते थे। यह उनका एक दिन का नियम न था। पण्डित शिवानन्द जब से ज़मींदारी का काम अपने बड़े लड़के रामानन्द के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त हुए थे और बाबू मुरलीमनोहर जब से ओवरसियरी के पद से पेंशन लेकर घर आये थे—तभी से बाल्यकाल के ये दोनों अभिन्न मित्र रोज़ ही मिलते थे। शिवानन्द के पास अच्छी ज़मींदारी थी। किन्तु सबसे बड़ी सम्पत्ति—जिसकी बदौलत अन्य सम्पत्तियों का भी थोड़ा बहुत सुख नसीब हो जाता है—सन्तोष या परितृप्ति भी उन्हें प्राप्त थी। वे अब ईश-भजन करते थे। अनेक सांसारिक बन्धनों को उन्होंने एक तरह से काट ही दिया था। उनके दो लड़के थे। छोटे लड़के के जन्म के एक वर्ष बाद ही उनकी साध्वी और पतिप्राणा स्त्री सुलोचना का स्वर्गवास हो गया था। कहना चाहिए, उसी दिन से शिवानन्द का शोक-सन्तप्त मन संसार के सभी कामों से हट गया था। रामानन्द उस समय स्कूल में पढ़ रहा था। उसकी पढ़ाई पूरी होने में दो तीन सालों की कसर थी। इसी लिए इच्छा न रखते हुए भी शिवानन्द को घर-बार का काम देखना पड़ता था। नियत समय पर रामानन्द ने प्रवेशिका परीक्षा पास करके कृषि-कालेज की साधारण शिक्षा भी प्राप्त कर ली। पिता ने उसे यहीं तक पढ़ाना स्थिर किया था। अब वे उसे मनोयोग से ज़मींदारी का काम सिखाने लगे, असामियों से परिचित कराने लगे और २५ वर्षों के लम्बे समय में प्राप्त ज़मींदारी के अनुभवों से उसके तरुण मस्तिष्क को पुष्ट करने लगे। ज़मींदारी के पड़ोसी रामनिधान तिवारी की कन्या के साथ रामानन्द को विवाह-सूत्र में बाँध कर जहाँ बूढ़े शिवानन्द ने पुत्र के विवाह से निवृत्ति पाई तहाँ पड़ोसी ज़मींदार की शरारत से होने वाले—रोज़ के झगड़ों से पैदा होने वाले—अपनी ज़मींदारी के अनेक विषैले काँटों को भी प्रेम की प्रशान्त धार से काट डाला। दो वर्ष के छोटे से समय में ही रामानन्द ने कृषि-कार्य्य में ख़ूब उन्नति की। ग्राम में—जहाँ तहाँ—उसने कुँवे खुदवाये, बाग़ लगाये और कृषि-कार्य्य में अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों का प्रचार किया। सुशील, विद्वान् और नये ज़मींदार को पाकर किसान लोग प्रसन्नता के साथ साथ सुख-शान्ति का भी उपभोग करने लगे। पण्डित शिवानन्द भी सब काम छोड़ कर गीता और योगवासिष्ठ का सुखपूर्वक पारायण करने लगे। उनके दिन का अधिक भाग या तो पठन और मनन में व्यतीत होता था या हरे भरे खेतों या वर्द्धमान बाग़ों के चारों ओर घूम कर वायुसेवन करने में। बाल्य-सखा बाबू मुरलीधर प्रायः रोज़ ही उनके साथ घूमते और बातचीत करते थे।

किन्तु मुरली बाबू का स्वभाव शिवानन्द से बिलकुल अलग था। वे भारी अर्थदास थे। ओवरसियरी में उन्होंने "बहुत कुछ" पैदा किया था। स्त्री के नाम से कुछ जायदाद भी ख़रीदी थी। बेंक में भी रुपया जमा था। सन्तान भी तीन थीं—एक कन्या, जिसका विवाह वे कर चुके थे, और दो पुत्र। किन्तु फिर भी पहली स्त्री के मरने पर पूरे पचास वर्ष के असंयमी मुरलीधर ने १४ वर्ष की कन्या का पाणिग्रहण किया। उस समय मित्र शिवानन्द ने उन्हें बहुत समझाया, पर उन्होंने एक न मानी और यही कहा—"अपना सुख स्त्री से ही होता है।" पण्डित शिवानन्द ने योगवासिष्ठ के अनेक श्लोक सुना कर बूढ़े मित्र के भ्रम को दूर करने का बहुत यत्न किया। पर भोगासक्त मुरली बाबू को कुछ चेत न हुआ।

विवाह के दो वर्ष बाद ही उनका बड़ा लड़का राधे—जिसकी अवस्था १६ वर्ष की थी और जो हाईस्कूल में नवें क्लास में पढ़ता था—कुछ अपने दुष्ट स्वभाव के कारण, कुछ विमाता के अनेक घरेलू अत्याचारों के कारण और सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बढ़ कर पिता की उदासीनता के कारण भग्न-हृदय होकर कुछ रुपया और ज़ेवर लेकर बम्बई चला गया। छोटा लड़का जानकी, जो अपेक्षाकृत अच्छे स्वभाव का और मिहनती था, किसी तरह घर में रहता और स्कूल में पढ़ता था। घर में कुहराम मच रहा था। शान्ति का कोसों पता न था। बाबूजी के कहार की तो घर में इज़्ज़त थी, पर बाबूजी की न थी। कुछ ही समय बाद माता के हर्ष को, किन्तु पिता के विषाद को, प्रति दिन बढ़ाने वाली कन्या का जन्म हुआ। अब बहू गौरी वर के काम को हाथ न लगाती थी। रोटी के लिए ब्राह्मणी, सेवा के लिए दासी, शिशु-कन्या के लिए छोकड़ी और घरेलू काम के लिए अलग नौकरानी की व्यवस्था हुई। ओवरसियरी की धूप-छाँह की कमाई बेतरह ख़र्च होने लगी। बाबू मुरलीधर दम न मार सकते थे। वे जानते थे—ख़ुद कर्दह रा इलाजे नेस्त।

एक दिन ब्राह्मणी न आई। भोजन न बना। गौरी ने बाज़ार से मिठाई-पूड़ी मँगा कर पेट-पूजा की। बाबूजी ने नियत समय पर घर में आकर चौके को साफ़ पाया। पूछने पर बहुत साहस और इतमीनान के साथ कारण बता दिया गया। उस पर उन्होंने कुछ कहा ही था कि गौरी ने तड़क कर कहा—"तुम्हारे लिए क्या मैं भोजन भी बनाऊँ? भोजन बनाने के लिए मैं नहीं आई हूँ। मेरी नन्हीं सी लड़की है। ज़रा में ठण्ड लग जायगी तो मैं क्या कर लूँगी। ज़रूरत पड़ने पर बाज़ार का खाना दुनिया खाती है। तुम्हारा पेट अनोखा है कि बाज़ार का खाना खाते ही फ़ूल आता है। इसीलिए मैंने तुम्हारे लिए खाना नहीं मँगाया। चाहो बाज़ार से मँगा कर खालो, या शाम तक भूखे रहो। ब्राह्मणी आवेगी, बना देगी।"

नई स्त्री की नवेली बातें सुन कर मुरली बाबू के कमज़ोर दिमाग़ का पारा भी गर्म हो गया। उन्होंने भी प्रेयसी की प्रेम-परीक्षा के लिए कहा—"जब हर बात में मेरी बेइज़्ज़ती की जाती है तब ऐसी ज़िन्दगी से क्या फ़ायदा? कहीं जाकर डूब मरूँगा। तुम सुख से रहो। दुनिया में स्त्रियाँ कहाँ पति की सेवा थोड़े ही करती हैं जो तुम करोगी। बुरे कुल की कन्या से विवाह करके—"

मुरली बाबू की शेष बात को उनके मुँह में ही "लाक्ड" करके "संहतिरूपा" गौरी ने सप्तम स्वर में अलापना शुरू किया—"ज़रूर डूब मरो। डूब तो इसी दिन मरे थे जिस दिन बुरे कुल की कन्या के साथ बुढ़ापे में व्याह रचाया था। स्त्रियाँ पति की सेवा करती हैं; पर जो पति बुढ़ापे में सिर्फ़ दासी बनाने के लिए बच्चियों को अपने पाप की कमाई से ख़रीदते हैं उनके मुँह पर वे जूता मारती हैं—समझे या नहीं। तुमने बुढ़ापे में व्याह करके अपने खरे कुल का अच्छा सबूत दिया है—"

ओवरसियरी का ओहदा बुरा नहीं होता। सैकड़ों मज़दूरों, कुलियों और ठीकेदारों पर हुक्म चलता है। सैकड़ों मतलबी सलाम मिलते हैं। झिड़की का स्वाद तो कभी कभी इञ्जीनियर साहब के बँगले की चौहद्दी के अन्दर ही चखना पड़ता है। और सब जगह तो अफ़सरी की मर्य्यादा अक्षुण्ण ही रहती है। इसी लिए अफ़सर मुरली बाबू कलहकारिणी स्त्री की बातों को सुन कर बहुत दुखी हुए। वे वहाँ न ठहर सके। सीधे बाहर चले आये और कपड़े पहन कर पण्डित शिवानन्दजी के पास पहुँचे।

दोपहर का समय था। पण्डित शिवानन्द भोजनोपरान्त पुत्र के नाम आने वाले किसी दैनिक पत्र को लेटे हुए पढ़ रहे थे। रामानन्द का दो वर्ष का दिगम्बर लड़का सुबोध बाबा के शान्तिपूर्ण चेहरे को देख कर मन ही मन खिला जाता था। इसी समय बाबू मुरलीधर का प्रादुर्भाव हुआ। पण्डित शिवानन्द उन्हें असमय आया देख बहुत विस्मित हुए। उन्होंने आग्रह से पूछा—कहिए बाबूजी कुशल तो है?

शिवानन्द ने कहा—महाराज, जिस घर में दुष्टा भार्य्या हो उस घर में कुशल कहाँ?

सुचतुर शिवानन्द समझ गये कि बाबूजी स्त्री से लड़ कर क्या, हार कर आ रहे हैं। उन्होंने इधर उधर की बातों से उन्हें ठण्डा करके उनसे पूछा—भोजन न किया हो तो कर लीजिए, तैयार है।

बाबू मुरलीधर शिवानन्द के बाल-सखा थे। उन्होंने सब बातें कह सुनाईं और भोजन करने की इच्छा प्रकट की। आयु से बूढ़े, पर शरीर से तगड़े, शिवानन्द ने अपने छोटे लड़के यज्ञदत्त को पुकारा। वह तत्काल आकर उपस्थित हुआ। यज्ञदत्त के तेजःपूर्ण और सरलता-व्यञ्जक स्वस्थ चेहरे को देख कर मुरली बाबू को अपने लड़कों के निस्तेज और म्लान वदनों का ध्यान हो आया। बूढ़े को अपने ऊपर घृणा होने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन से निवृत्त होकर मुरली बाबू ने कहा—पण्डितजी, आपके यहाँ कौन ब्राह्मणी भोजन बनाती है। भाई, ऐसी पतली और मुलायम रोटियाँ और स्वादिष्ट दाल मैंने बहुत कम खाई है। तुम्हारे यहाँ के चावल ख़ूब बिखरे और काफ़ी गले हुए होते हैं। पर हमारे यहाँ तो कैसे ही बढ़िया चावल हों, पाचिका देवी घोट घाट कर पिण्ड बनाने योग्य कर देती हैं।

पण्डितजी ने वृद्ध-जन-सुलभ गम्भीरता प्रदर्शित करते हुए कहा—बाबूजी, हमारे यहाँ तो सुबोध की माँ ही भोजन बनाती है। रोटी बनाने के लिए कोई नौकर नहीं। सच तो यह है कि नौकर लोग अच्छी तरह भोजन बना भी नहीं सकते। वे किसी तरह समय पूरा करके अपनी तनख़्वाह चढ़ा देते हैं। हाँ, सदानन्द महाराज, कभी कभी गाँव वालों के आने पर, बाहर भोजन बना लेते हैं। आप लोगों के यहाँ शायद घर भोजन बनाना हीनतासूचक या निन्द्य समझा जाता है।

बाबूजी ने पश्चात्ताप करते हुए कहा—मित्र, हम तो विवाह करके घोर नरक में पड़ गये। न घर में चैन है और न घर की चिन्ता के कारण बाहर। पहले ७०) की पेंशन में से २०) बचा लेते थे। अब तो बैंक से और रुपया निकाल कर भी काम नहीं चलता। जो कुवाच्य सुनने पड़ते हैं वे घाते में समझिए।

पण्डितजी ने मुसकराते हुए कहा—हमने तो आपसे पहले ही कहा था।

(२)

शाम को बाबू मुरलीमनोहर जिस समय पण्डित शिवानन्द के घर से लौट रहे थे उस समय उनके मस्तिष्क में अनेक सुविचार और कुविचार दौड़ लगा रहे थे। वे अपने गत और वर्त्तमान जीवन पर दृष्टि डालते और ठोकरें खाते हुए चले आते थे। द्वितीय और असामयिक परिणय के छिपे हुए विषानल से वे अब बुरी तरह जल रहे थे।

उन्होंने घर आते ही देखा कि घर का धीमर बाज़ार से गरमागरम पूड़ियाँ ला रहा है। बाबू साहब का रोष, जो कुछ कुछ कम हो चला था, मलेरिया के ज्वर की तरह फिर बढ़ गया। घर पहुँच कर उन्होंने भीतरी आग को शान्त करने के लिए विलायतवासिनी वारुणी का एक ग्लास चढ़ाया। किन्तु उससे भीतर की ज्वाला घटने के बदले और प्रचण्ड हो गई। असंयमी मुरलीधर का शिथिल स्नायुमण्डल उत्तेजित तो हो गया, पर उसके मानसिक घोर सङ्ग्राम की कोई सुमीमांसा न हुई।

बाबू मुरलीधर समझते थे कि उनकी स्त्री ने क्रोध में आकर उनका अपमान किया है सही, पर अब उसे अपने किये पर ज़रूर पश्चात्ताप हो रहा होगा। अब वह ज़रूर उनके लिए चिन्ता करती होगी। उसे अपने अकाल-वैधव्य का भय ज़रूर सता रहा होगा। किन्तु जब बूढ़े बाबू को इनमें से किसी भी बात का चिह्न घर में न मिला तब उसके भाव-प्रवण मन पर वज्र ही सा टूट पड़ा। उसकी झुकी हुई कमर और दो इञ्च झुक गई।

मुरली बाबू को अपनी पहली स्त्री का स्मरण हो आया। उसके अनिन्द्य सुन्दर मुख का स्मरण हो आया। उसके प्रेम-पूर्ण व्यवहारों का उसे स्मरण हो आया। बूढ़े का शिथिल स्नायु-मण्डल कुछ पूर्व-स्मृति से, कुछ मानसिक संघातों से और कुछ अन्यतम रक्त सुरा के प्रसाद से और उत्तेजित हो गया। मुरली बाबू ख़ूब भाव-प्रवण थे। उस रिक्त उत्तेजना में, उस निराशा में, उस दिग्भ्रष्ट दशा में पहली स्त्री के प्रेममय व्यवहार और आदर-सत्कार का ध्यान करके वे रोने लगे। वृद्ध के गरमागरम आँसुओं से उसकी दाढ़ी भीगने लगी। प्रबल गरमी के बाद वर्षा के अनन्त बिन्दुओं से जिस तरह पृथ्वी की तपन बुझ जाती है उसी तरह बूढ़े का पका हुआ हृदय भी रोने के बाद बहुत कुछ शान्त हो गया। पहली स्त्री की मधुर स्मृति ने भी उसे बहुत कुछ आश्वस्त कर दिया। मुरली बाबू ने अपने छोटे लड़के जानकी को बुलाया। उसके उतरे हुए चेहरे को देख कर बूढ़ा बहुत कातर हुआ। उसके म्लान चेहरे में मुरली बाबू ने अपनी पूर्व स्त्री का सोलहों आने दर्शन किया। स्त्री के अधर पर हास्य, पर आँख में घोर कातरता थी। अपनी सन्तान की सुध लेने के लिए उसकी आँखों में बड़ा ही मार्मिक भाव था। भाव-प्रवण मुरली बाबू स्त्री के उस कातर भाव को देख कर बहुत दुखी और साथ ही साथ लज्जित भी हुए। उन्होंने विशेष स्नेह के साथ अपने लड़के से सुस्त होने का कारण पूछा। उसने उत्तर में किसी घरेलू व्याधि का नाम ले लिया। अनेक आश्वासन की बातें करके पिता ने कहा—बेटा, तुम्हीं बताओ तुम अपने लिए क्या अच्छा समझते हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकीप्रसाद बहुत दिनों बाद पिता के स्नेह से सिञ्चित होने पर रो पड़ा। स्वस्थ होकर उसने कहा—बाबूजी, अम्मा की मृत्यु के बाद मुझे घर में रहना मुश्किल हो गया है। मुझे आप बारिस्टरी के लिए विलायत भेज दीजिए। आपके दस हज़ार रुपये ज़रूर ख़र्च होंगे। पर मैं—आपका पुत्र—घरेलू आग से निकल कर आदमी बन आऊँगा। इस वर्ष एफ़० ए० की अन्तिम परीक्षा हो ही जायगी।

मुरली बाबू के पास क़रीब ३० हज़ार के रुपया था। घर की अवस्था, स्त्री का कलह, लड़के की उन्नति और पूर्व-पत्नी के पवित्र प्रणय का विचार करके उन्होंने पुत्र जानकी-प्रसाद को इँगलेंड जाने की अनुमति दे दी।

संसार में कोई काम अकारण नहीं होता। हर घटना के अन्दर एक न एक गुप्त भेद रहता ही है। ईश्वर के सिवा उन भेदों को और कोई नहीं जानता। मुरली बाबू और उनकी स्त्री के—उस दिन के कलह—में भी एक गुप्त भेद था। उसमें भी किसी के प्रारब्ध और जीवन के अनेक परि-वर्तन छिपे हुए थे। युवक जानकीप्रसाद घरेलू व्याधि से छूट गया। वह स्वतन्त्र भूमि पर बसी लन्दन महानगरी के अनेक दृश्यों को कल्पना की आँख से देख कर मन ही मन प्रसन्न होने लगा।

(३)

जानकी को इँगलेंड गये एक वर्ष बीत गया। पिता के नाम कभी कभी उसका पत्र आता था। पिता ने उसके ख़र्च का प्रबन्ध बैंक आफ़ इँगलेंड (Bank of England) की मार्फ़त कर दिया था। रुपये के लिए उसे चिन्तित न होना पड़ता था।

जानकी के जाने से घर की अशान्ति घटने के बदले और बढ़ गई। बाबूजी की स्त्री गौरी को यह बात बहुत बुरी लगी। पुत्र के लिए इस क़दर रुपये ख़र्च करना उसे बहुत अखरा। वह नये नये ढँगों से बाबूजी को तङ्ग करने लगी। मृत्यु के द्वार पर खड़े मुरली बाबू तरुण स्त्री के दुष्ट स्वभाव को किसी तरह ठिकाने न ला सके। वे बेचारे बात बात पर झिड़की सहते थे—बात बात पर खोटी-खरी सुनते थे।

एक दिन किसी साधारण बात पर कलह की मात्रा अधिक बढ़ गई। बाबू मुरलीधर को घर में ठ़हरना मुश्किल हो गया। वे मित्र शिवानन्द के बाग़ में चले गये। रात भर वहीं रहे। प्रातःकाल आकर देखा तो घर में सफ़ाई। न गौरी है, न ज़ेवर है, न बढ़िया कपड़े हैं, न क़ीमती सामान है और न चितुआ कहार है। छोटी लड़की मुन्नी भी ग़ायब है। बाबू का बूढ़ा माथा ठनका। जो कुछ हुआ था मुरली बाबू एक मिनट में समझ गये। एक ओर घर का कण्टक दूर हुआ था, किन्तु दूसरी ओर यश की चादर काँटों से बुरी तरह छिन्न भिन्न नज़र आती थी।

बूढ़े ने घर का मुआयना किया। क़रीब क़रीब सभी क़ीमती माल ग़ायब था। बूढ़े के कमज़ोर पाँव काँपने लगे, आँखें ज्योतिहीन हो गईं और दिल की धड़कन बन्द होने की तैयारी करने लगी।

घात का प्रतिघात अवश्यम्भावी है। घोर निराशा और आशा में कोई भेद नहीं। बड़ी आवाज़ भी कानों को बहरा कर देती है; अतएव नहीं सुनाई पड़ती। उत्कट दीप्ति भी आँखों को बेकार कर देती है। पूर्ण शोक के भीतर भी साहस और सान्त्वना छिपी रहती है। मुरली बाबू के मन में भी बल का सञ्चार हुआ। उनकी आँखों में ज्योति वापिस आ गई। उनकी टाँगें भी काँपते काँपते रुक गईं। अब वे स्वस्थ हो गये। स्वस्थ-चित्त मुरली बाबू ने भी गृह-त्याग का निश्चय किया। मित्र शिवानन्द को एक पत्र लिखा। उसमें सब बातें लिखीं। घर छोड़ने की बात भी लिखी। मकान को बन्द कर दिया। उसकी चाभी भी पत्र के साथ बाल्य-सखा शिवानन्द के पास भेज दी।

अभी अच्छी तरह दिन नहीं निकला था। अँधेरे में ही मुरली बाबू शहर से बहुत दूर निकल गये।

(४)

चार वर्ष बीत गये।

रामानन्द के चारों बड़े बाग़ों में बड़े ज़ोर की फ़सलें उतरती हैं। बीसियों तरह के आम आते हैं। दूर दूर तक जाते हैं। अँगरेज़ी और भारतीय विभिन्न भाषाओं के पत्रों में विज्ञापन रहते हैं। बीज के लिए सभी तरह के अनाज सुरक्षित रक्खे जाते हैं। क़लम-पौधों का विभाग भी बहुत बढ़िया है। रामानन्द का छोटा भाई यज्ञदत्त इन सब कामों का तत्त्वावधान करता है। रामानन्द खेती के कामों में अनेक नई बातें निकाल चुका है। उसका सारा समय इसी काम में लगता है। सूबे भर में उसके खेतों और बाग़ों की बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त-नाम-लेखन के नमूने ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा है। गवर्नमेंट ने भी उसे इस काम के लिए बहुत कुछ सहायता दी है। आम, लीची और लुकाटों के मौसम में उसके यहाँ से फलों की सैकड़ों टोकरियाँ या पारसल बाहर जाया करते हैं। ज़मींदारी को छोड़ कर दोनों भाइयों को सिर्फ़ बाग़ों से कई सौ रुपये महीने की बचत हो जाती है। बीसियों आदमियों की वृत्ति भी लगी हुई है। मनुष्य के स्वाभाविक खाद्य फलों की सदा भरमार रहती है।

पण्डित शिवानन्द का मन बहुत दिनों से तीर्थ-यात्रा के लिए क्या—घर छोड़ने के लिए—व्याकुल हो रहा था। गीता और योगवासिष्ठ को समझ कर पारायण करते करते अब उनका तृप्त मन संसार से एकदम उपरति प्राप्त कर चला था। अब उन्हें घर में "कमलपत्रवत्" रहना भी अच्छा न मालूम होता था। माया की सबसे मज़बूत और चिकनी मोहरूप डोरी को वे एकदम काटना चाहते थे। इसी लिए उन्होंने अपने सुपुत्र रामानन्द से तीर्थ-यात्रा के लिए अपना विचार प्रकट किया। पिता की बात को सुन कर पुत्र प्रसन्न हुआ। उसने भी साथ चलने की इच्छा प्रकट की। किन्तु घर और ज़मींदारी की देख-भाल का बहाना बता कर पिता ने उसे साथ ले चलने से इनकार किया। आज्ञाकारी पुत्र अधिक न कह सका। शुभ दिन देख कर पण्डित शिवानन्द ने घर से काशी को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने किसी योग्य संन्यासी से यथाविधि उपनिषद् पढ़ कर संन्यास ग्रहण किया। बूढ़े शिवानन्द का संयमी और तेजोमय चेहरा कषायवस्त्रों में और भी भला मालूम होने लगा। गुरु की आज्ञा लेकर वे एक नगर से दूसरे नगर में घूमने लगे। उत्तर-पश्चिम के अनेक नगरों में घूम कर अन्त में वे हृषीकेश पहुँचे और वहाँ एकान्त में पड़ी एक कुटिया में रहने लगे।

(५)

सायङ्काल का समय था। चारों ओर खड़े ऊँचे ऊँचे पहाड़ों ने अस्त होने से पहले ही सूर्य को अपने अङ्क में छिपा कर गोधूलि-वेला उपस्थित कर दी थी। गङ्गा का कलकलनाद-युक्त प्रबल प्रवाह अनन्त के मार्ग में अनन्त सागर से मिलने के लिए बड़ी तेज़ी से चला जाता था। तट पर जहाँ तहाँ साधु बैठे हुए थे। उनमें कश्चित् "मृग-मुख-व्याघ्र" थे और कश्चित् "व्याघ्र-मुख-मृग" थे।

गङ्गा के एकान्त तट पर स्वामी ब्रह्मानन्दजी शिष्यों सहित विराजमान हैं। अनेक मनुष्य सामने बैठे हैं। शिष्य लोग उपनिषद् पढ़ रहे थे। गोधूलि के क्षीण आलोक में स्वामी ब्रह्मानन्द का शान्त चेहरा ख़ूब उद्भासित हो रहा था। वह एक दम भाव-शून्य था। उनके गेरुए वस्त्रों के साथ पश्चिम दिशा की लाली प्रतिद्वन्द्विता कर रही थी सही, पर उसमें वह मनोहरता कहाँ—वह आकर्षण कहाँ? अनेक पुरुष, जो केवल साधु-सङ्ग के लिए ही वहाँ तक आये थे, अनेक तरह के प्रश्न करके अपने अपने सन्देहों को दूर कर रहे थे। स्वामी ब्रह्मानन्द सभी की बातों का युक्तियुक्त, पर संक्षिप्त, उत्तर देते जाते थे। उनके उत्तरों को सुन कर निस्सन्देह सभी के सन्देह दूर होते जाते थे; सभी की हृदय-ग्रन्थियाँ मानों खुल जाती थीं। एक आदमी ने नम्रता दिखाते हुए पूछा—"स्वामिन्, संसार में सबसे बड़ा बन्धन क्या है?"

"वासना। इसी बन्धन में पड़ कर जीव भव-सागर में डुबकियाँ खा रहा है।"

"इससे छूटने का भी कोई उपाय है।"

"संसार में सभी बातों के उपाय हैं, सभी रोगों की औषध है। जहाँ काँटा है वहीं काँटे की दवा भी है। विचार से ही बन्धन है; विचार से ही वासना है; विचार से ही उसका नाश है। उसके लिए सदसद्विवेचन की आवश्यकता है—विवेक की आवश्यकता है। असत् के त्याग और सत् के ग्रहण से वासना धीरे धीरे नष्ट हो जाती है। संसार के झूठे विषयों से मन हट कर सच्चे विषय (ईश्वर) में जा लगता है। इसी अवस्था की परिपक्व दशा का नाम पूर्ण-ज्ञान या साक्षात्कार है। सद्विषय के चिन्तन से मनुष्य की मानसिक वृत्ति शतधा सहस्रधा न होकर एक सी हो जाती है—क्या—कुछ दिनों में तदाकार बन जाती है। फिर वासना का खेल समाप्त हो जाता है।"

शाम होने पर सभी प्रणाम करके उठने लगे। स्वामीजी, उनके दो संन्यासी शिष्य और एक स्त्री रह गई। स्त्री एक ओर सिकुड़ी हुई बैठी थी। स्वामीजी ने अभी तक उसे न देखा था। उन्होंने उससे पूछा—" मां, आप क्या चाहती हैं" ?

स्त्री ने रोते हुए कहा—"स्वामीजी, मेरा मन पाप की अग्नि से बेतरह जल रहा है। मैं दुष्टा हूँ, मैं पापिनी हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके पास आकर सन्तप्त-हृदय मनुष्यों को शान्ति मिलती है, यह सुन कर मैं भी आई हूँ। निस्सन्देह आप पूर्ण महात्मा हैं। आपके पास बैठे रहने से मेरे मन को बहुत कुछ शान्ति मिली है। महाराज, क्या मुझे शान्ति न मिलेगी? क्या मेरे पाप का कोई प्रायश्चित्त नहीं" ?

स्त्री रो रो कर अपने पाप का वृत्तान्त कहने लगी।

उसकी कहानी पापमय होकर भी ख़ूब करुणपूर्ण थी। उसमें विषाद भरा हुआ था, शोक भरा हुआ था और सबसे बढ़ कर अनुताप भरा हुआ था। निस्सहायावस्था में उसके एक मात्र शिशु के मरण की बात सुन कर स्वामी के भावहीन मन में भी दया का उदय हो आया। जिस दुष्ट पर उसने विश्वास किया था उसने उसका सर्वस्व हरण करके उसे घर घर की भिखारिनी बना दिया। यद्यपि यह स्वाभाविक था। पर फिर भी क्षमाशील स्वामी को उसके लिए दुःख हुआ। पापों के परिणाम-स्वरूप अनेक सांसारिक दुःखों, तापों और क्लेशों को सह कर दुःखिनी को अब चेत हुआ था। अनुताप की अग्नि के सामने अब उसे सांसारिक दुःखों की अग्नि ठण्डी मालूम पड़ती थी।

स्त्री अभी अपनी बात समाप्त न कर पाई थी कि दूसरी तरफ़ झाड़ी से आवाज़ आई—"स्वामीजी, मैं हूँ इस दुष्टा का परित्यक्त पति।"

आवाज़ के साथ ही कहने वाला भी गैरिक वस्त्र धारण किये हुए बाहर निकल आया। स्त्री काँप रही थी। अनुताप के आँसुओं की अञ्जलि भर कर विषण्णवदना दुष्टा स्त्री अपने पति के चरणों पर गिर पड़ी। पाप की प्रचण्ड अग्नि में जलते हुए भी उसने पति के पवित्र पाद-पद्मों में अपूर्व शान्ति अनुभव की।

गङ्गा का अनन्त प्रवाह, सुनील आकाश में चमकते हुए सप्तर्षि और चारों ओर खड़ी हुई पर्वतश्रेणी चुपचाप इस दृश्य को देख रही थी। इनमें से किसी को कुछ भी बोलने का साहस न हुआ। अन्त में स्वामीजी ने जलद-सम-गम्भीर स्वर में कहा—आपकी स्त्री को अपने कृत कर्म्म के लिए ख़ूब अनुताप है। वह पाप की अग्नि से बेतरह जल रही है। फिर उसके पापकर्म्म में प्रत्यक्ष रूप से न सही, परोक्षरूप से तो आप भी सहायक थे। अतएव इस पाप-पूर्ण पृथ्वी पर अपनी अपनी बुराइयों पर ध्यान देकर एक दूसरे को क्षमा कर दो। सबल मनुष्य जब मानसिक वेग को नहीं रोक सकता तब अबला स्त्री से क्या आशा हो सकती है।

चारों ओर खड़ी पर्वत-श्रेणी भी स्वामीजी की बात का समर्थन प्रतिध्वनि के रूप में करने लगी। निस्तब्ध प्रकृति ने भी गङ्गा के कल-कल शब्द से इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

गैरिक-वस्त्र-धारी आगन्तुक ने कहा—स्वामिन्, आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। किन्तु इस घोर कलङ्क को माथे पर लगा कर संसार में रहना क्या आप एक गृहस्थ के लिए अच्छा समझते हैं?

स्वामीजी ने कहा—जानते हो शहर में तुम्हारे विषय में क्या प्रसिद्धि है? असल बात प्रसिद्ध नहीं हुई। प्रसिद्ध यह हुई है कि तुम अपनी स्त्री को साथ लेकर तीर्थयात्रा करने गये हो। जिस दिन तुम मकान से चले थे उस दिन शहर भर में इस वृत्तान्त को एक आदमी के सिवा और कोई न जानता था।

स्वामीजी की बात समाप्त होते न होते आगन्तुक उनके चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा—स्वामिन्, आप निस्सन्देह अन्तर्य्यामी हैं।

स्वामीजी ने उसे हृदय से लगाते हुए कहा—अन्तर्य्यामी नहीं, तुम्हारा बाल्यसखा शिवानन्द हूँ।

ज्वालादत्त शर्म्मा

राना राजसिंह का पत्र।

(प्रभावती के पत्र का उत्तर)

(१)

"वीर-बाले! लिपि तुम्हारी है मिली;
पढ़ उसे मन की कली अति ही खिली।
धन्य हो तुम सती साहस-धारिणी;
उभय कुल की हो सुयश-विस्तारिणी।

(२)

कौन कह सकता तुम्हें असहाय है—
जब स्वयं तुम में भरा सदुपाय है।
श्वान कैसे सुधा का रस पायगा;
विष वही उसके लिए हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

सिंहिनी का सिंह है जब पक्ष में—
स्यार हत हो जायगा उपलक्ष में।
हंसिनी पर काग अड़ना चाहता ;
मृत्यु-मुख में स्वयं पड़ना चाहता।

(४)

हंसिनी का कहाँ रक्षक जायगा ?
काक को नीचा न क्या दिखलायगा ?
इन्द्र के रहते हुए, मख-भाग की—
दनुज की आशा दुराशा है सभी।

(५)

मुकुट में जो स्थान पाने योग्य है—
रत्न, भूपों को भले वह भोग्य है।
नीच के क्योंकर गले बस जायगा ?
सर्प बन कर वह उसे डस जायगा।

(६)

कुल-सुताओं की हुई है चाह जब—
क्या बना ही वह रहेगा शाह तब ?
नीति उससे बड़ों की बह जायगी ;
राज्य की श्री क्या भला रह जायगी ?

(७)

रूपगढ़ जो है घिराया फ़ौज से—
चाहता है तुम्हें पाना मौज से।
सहज सो क्या फल सकेगी कामना !
आपदाओं से पड़ेगा सामना।

(८)

बेगमों के महल में सुख पायँगी ;
अधम भूपों की सुतायें जायँगी।
वीर-बालायें भला क्यों चूकतीं ?
इस तरह के सौख्य पर जो थूकतीं।

(९)

"प्राण दूँगी पर न जाऊँगी वहाँ"—
कौन कह सकता सती के बिन यहाँ ?
आर्य्य-ललने ! योग्य ही तुमने कहा ,
हृदय मेरा धन्य तुमको कह रहा।

(१०)

किन्तु यह क्यों कठिन साहस कर लिया—
जो बिना समझे मुझे है वर लिया।
काम आतीं पूर्ण क्या बातें सुनीं ?
अगर निकलूँ क्रूर, कायर, निर्गुणी।

(११)

तो न होगा कष्ट क्या हृद्धाम को !
सोच लेना योग्य था परिणाम को।
पर तुम्हारी लाग इसमें क्या रही ?
पूर्व से सिद्धान्त निश्चित है यही—

(१२)

जो हृदय में सत्य निश्चल भक्ति है—
तो वहीं उत्पन्न विद्युच्छक्ति है।
चित्त को बस खींच लेती है वही ;
क्या हमारा मन बिना खींचे रही ?

(१३)

जब कुमुदिनी है स्वयं अनुरागिनी—
हो सकेगी चन्द्र से क्या त्यागिनी ?
क्या न लेता मधुप दौड़ पराग है ?
प्राप्त लक्ष्मी कौन सकता त्याग है ?

(१४)

नेत्र की पुतली बनेगी जो कहीं—
वह टहलिनी बन कभी सकती नहीं।
त्याग दो यह व्यर्थ की है भावना ;
धर्म-हित में हूँ स्वयं अनुचर बना।

(१५)

कृत्य उनके तुल्य ही जब हैं किये ,
क्यों न तुमको रुक्मिणी समझूँ प्रिये ?
सोच लो अब कर सका शिशुपाल क्या ?
अन्त में हरि ने किया था हाल क्या ?

(१६)

क्या न अब रक्षा करेंगे हरि वही ?
भक्त-वत्सल नाम उनका है सही।
त्राण-कर्त्ता मुख्य त्रिभुवन-नाथ है ;
लाज सब की बस उसी के हाथ है।

(१७)

अस्तु जो प्रभु की कृपा होगी कहीं—
तो तुम्हारी लाज जाने की नहीं।
शाह-सेना से कभी डरता न मैं ;
प्राण का भय भूल कर करता न मैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८)

एक दिन मरना लगा है साथ में ;
मृत्यु भी रहती किसी के हाथ में ?
किन्तु जावे धर्म पर यदि प्राण यह—
श्रेष्ठ है, जो कर सके पर-त्राण वह ।

(१९)

अस्तु आऊँगा, न मिथ्या बात है ;
धर्म पर अर्पण किया यह गात है ।
शीघ्र पहुँचूँगा तुम्हारे पास मैं ;
मेट दूँगा सब तुम्हारा त्रास मैं ।

(२०)

शीघ्रता से काम कर लेना न तुम ;
व्यर्थ ही झट प्राण दे देना न तुम !
सत्य ही उद्धार अपना जानियो ;
निकट ही मुझको उपस्थित मानियो" ।

द्वारकाप्रसाद गुप्त ।

किसानों की शिक्षा ।

रोग प्रायः सभी को होते हैं; चाहे राजा हो चाहे रङ्क; चाहे स्वतन्त्र हो चाहे परतन्त्र । जो समर्थ हैं उनको हाथ-पैर हिलाने में कोई रोक-टोक नहीं । वे अपनी चिकित्सा की चिन्ता आप ही कर लेते हैं । इसके लिए वे पहले उपाय-योजना करते हैं । नमूने के ढंग पर उसका प्रयोग करते हैं । प्रयोग करते समय जो कठिनतायें उपस्थित होती हैं उनको सरल करने की युक्तियाँ ढूँढ़ ली जाती हैं । और, अन्त में, परिणाम देख कर उसको सार्वजनिक स्वरूप दे दिया जाता है कि अमुक औषध अमुक रोग पर अमुक प्रकार से लाभदायक है । जो बात व्यक्ति की है, वही समष्टि की—देश और राष्ट्र की है । ऐसी ही एक उपाय-योजना का वर्णन इस लेख का विषय है ।

डेनमार्क अभी नेपोलियन की टक्करों से सँभला न था कि बलाढ्य जर्मनी ने उसके स्लेसविग और हॉलस्टेन नामक परगने छीन लिये । इन परगनों की उपज ऐसी ही है जैसी कि हमारे यहाँ गङ्गा-जमुना के दोआब की । इन परगनों के निकल जाने पर बेचारा डेनिश राष्ट्र क्षीण हो गया । वहाँ के किसान निराश हो गये और भुखमरों की संख्या बढ़ने लगी । इस सङ्कट से बचाने के लिए राष्ट्र ने अपने ज़मीन-सम्बन्धी क़ानून में इतना सुधार कर दिया, लगान इतना घटा दिया और तक़ावी देने की ऐसी व्यवस्था कर दी कि लोग आसानी से पड़ती ज़मीन उठा सकें और भीख माँगना छोड़ कर किसानी से पेट भर अन्न पा सकें । किन्तु इतना होने पर भी विशेष लाभ न हुआ । खेती करने का यथेष्ट ज्ञान न होने के कारण राजा और प्रजा दोनों के किये हुए प्रयत्नों में उपयुक्त सफलता न हुई । इस कष्ट से बचने के लिए उपाय सोचे जाने लगे । अन्त में उन्हें एक उपाय सूझ गया । उसी का अवलम्ब करके भारत की भाँति कृषि-प्रधान डेनिश-राज्य अब केवल कृषि की ही बदौलत फूल फल रहा है ।

जब धरती का इस्तमरारी हक़ देने और ख़र्च के लिए धन देने पर भी उस देश की ग़रीबी दूर न हुई तब खोज करने से ज्ञात हुआ कि जो ग़रीब पेट पालने के लिए खेती करने पर उतारू हुए हैं वे मिहनत तो काफ़ी करते हैं, पर उन्हें कृषि का यथेष्ट ज्ञान नहीं है । इसी से वे भारतीय किसानों की भाँति सिर पीट कर रह जाते हैं और दरिद्रता से अपना पल्ला नहीं छुड़ा सकते । भूखों मर कर जो लोग कृषि के लिए जी तोड़ परिश्रम करने पर भी ज़मीन से उपयुक्त बदला नहीं पाते, यदि उनकी दशा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना है तो भारत के ग्रामों में जाइए । वहाँ इसका सजीव दृश्य आपको देखने को मिलेगा ।

इस अज्ञान से पीछा छुड़ाने के लिए डेनमार्क की सरकार ने देहातों में स्थान स्थान पर ऐसे मदरसे खोले जिनमें किसानों को उनके पेशे की शिक्षा दी जाय । इन मदरसों में शिक्षा पाने वाले सभी अवस्थाओं के लोग होते थे । जवानों की तो बात ही क्या, बुड्ढे भी अध्ययन करने आते थे । उन्हें सिखाया जाता था कि अमुक फ़सल के लिए ज़मीन को अमुक रीति से जोतना चाहिए; अमुक बीज को अमुक ढंग से बोना चाहिए और अमुक खाद देनी चाहिए; यदि फ़सल में कीड़ा लग जाय तो अमुक प्रकार से उसकी रक्षा करनी चाहिए; दूध देने वाले जानवरों की हिफ़ाज़त अमुक ढंग से करनी चाहिए; दूध-दही, अनाज, फल और फूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि की बिक्री इस ढंग से करनी चाहिए—इत्यादि इत्यादि। सबसे बढ़ कर शिक्षा किसान लोग इस बात की पाते थे कि मिल-जुल कर व्यवसाय कैसे किया जाता है। इन स्कूलों में ज़बरदस्ती शिक्षा दी जाने लगी; क्योंकि इनमें शिक्षा पाने के लिए जाने की अपेक्षा, पेट के लिए दो पैसे कमाने या कोई न कोई व्यवसाय करने वाले लोग, अपना काम छोड़ कर, इनमें अपने मन से थोड़े ही जाने लगे थे? राष्ट्र ने रोग को पहचाना और मरीज़ को ज़बरदस्ती दवा पिलाई; तब कहीं रोगी की दशा सुधरी। फल इसका यह हुआ कि अब वही क्षुद्र दरिद्र देश कुछ का कुछ हो गया है। इँगलेंड के एक प्रसिद्ध धनवान् ज़मींदार ने डेन्मार्क में जाकर वहाँ की खेती और शिक्षा का आँखों देखा हाल लिखा है। आपका नाम है एच० राइडर हेगर्ड। आपका मत है कि—डेन्मार्क का अदना से अदना किसान, नहीं नहीं मज़दूर भी, पूर्ण स्वतन्त्र और निश्चिन्त है। इँगलेंड जैसा समुन्नत देश अन्धे, लूले, लँगड़े आदि अपाहिजों का पेट सरकारी ख़ज़ाने से भरता है। किन्तु यह दशा डेन्मार्क जैसे छोटे से देश में नहीं। वाणिज्य-व्यापार में सब से बढ़े चढ़े जर्मन देश की राजधानी में २०,००० भिखारी (युद्ध से प्रथम) अन्न-वस्त्र-विहीन घूमते फिरते थे। ग्लासगो के प्रति १२ निवासियों में एक बिना घर-द्वार का है। किन्तु इस छोटे से डेन्मार्क देश में अपनी छोटी सी कुटिया में स्वावलम्बी, आत्मविश्वासधारी और हट्टे कट्टे जवान तैयार होते हैं। खेती के (सन् १९१० के) विशेष क़ानून ने कोई पाँच हज़ार मनुष्यों को, दो वर्ष के भीतर, भीतर स्वतन्त्र किसान बना दिया है।

अब यदि देखा जाय कि डेन्मार्क के (पुराने) अशिक्षित किसानों की अपेक्षा भारत के किसान कितने शिक्षित हैं तो उत्तर शून्य मिलेगा। पढ़ना लिखना तो दूर, वे फ़सल बढ़ाना, रोगों से उसे बचाना अथवा उपयुक्त समय में बेचना भी या तो भली भाँति जानते नहीं और यदि जानते भी हैं तो उसका उपयोग नहीं कर सकते। पढ़ने लिखने में वे निरक्षर भट्टाचार्य्य हैं ही। इस अज्ञता से वे तो दुःख पाते ही हैं; साथ ही राष्ट्र भी पङ्गु हो रहा है। पानी बरसने में ज़रा भी देर हुई कि बेचारों के पैर उखड़ गये! एक फ़सल ज़रा सी बिगड़ी कि गाय-बैल बिकने लगे! दिन भर परिश्रम करने वाले—अपने परिश्रम का भरपूर बदला पाने के वास्तविक अधिकारी—इतने क्षीण क्यों हैं? जो एक दिन दूसरों का पेट भरते थे (और आज भी रूपान्तर से भरते ही हैं) आज वही भूखों क्यों मर रहे हैं? हम इसके अन्यान्य कारणों का विचार अभी नहीं करते; सिर्फ़ यही बतलाते हैं कि इसके प्रधान कारणों में उनका अशिक्षित रहना भी एक बहुत बड़ा कारण है। यदि वे पढ़ना-लिखना जानें, यदि वे अपने और ज़मींदार के सम्बन्ध को भलीभाँति समझें, यदि वे क़र्ज़ लेने और क़र्ज़ चुकाने के नियमों से परिचित हों, तो उन्हें पद पद पर उन बाधाओं से त्रस्त न होना पड़े जो ज़मींदारों, सूदख़ोर महाजनों, गाँव के प्रभु पटवारियों और क्रूर कर्म्मचारियों की कृपा से भोगनी पड़ती हैं। पारस्परिक सहायता के अभाव में बेचारों को न जाने कितना—कभी कभी तो मूलधन से भी अधिक—व्याज देना पड़ता है। ज़रा सी देर हो जाने पर ज़मींदार साहब की ख़ुशामद करते करते प्राण जाते हैं। फ़सल तैयार होने पर गाँव का बनिया मनमाने भाव में उन्हें मूँड़ता है। इधर घर में फ़ाक़ेकशी की नौबत आती है! ग़रीब किसानों की अज्ञता से यदि कोई लाभ उठाता है तो सूदख़ोर महाजन, ज़मींदार और उसके कर्म्मचारी आदि। उनसे किसानों की रक्षा हो कैसे? उन्हें पेट भर अन्न मिले क्यों कर? अपने स्वत्वों से उनका परिचय हो किस ढंग से?

जब तक किसानों में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार न होगा, जब तक उन्हें संसार की सामान्य बातों का ज्ञान न होगा, जब तक वे मिलजुल कर पारस्परिक सहायता के नियमानुसार अपना व्यवसाय न करने लगेंगे, और जब तक वे अपने अधिकारों से परिचित न हो जायँगे तब तक उनकी दुःखनिशा का अन्त न होगा। इस आवश्यकता का उनको अभी ज्ञान तक नहीं है, इस कमी को दूर करने की चिन्ता तो दूर की बात है। इसलिए उनके हृदय में पहले ज्ञान-पिपासा उत्पन्न करना यद्यपि भूपति का काम है; तथापि यदि वहाँ से यह काम अभी न हो सके तो उन लोगों को यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए जो स्वराज्य का नक़्क़ारा बजा रहे हैं। जिनके लिए तुम स्वराज्य-प्राप्ति चाहते हो उन्हें स्वराज्य का अर्थ समझने योग्य कर दो। किसानों में ज्ञान-पिपासा के उद्भूत होने पर स्वराज्य-प्राप्ति का प्रश्न सहज ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल हो जायगा और सैकड़ों शिक्षितों को, जो इस समय मारे-मारे फिर रहे हैं, पूरा पूरा काम भी मिल जायगा। इसलिए गाँव गाँव में यथावकाश शिक्षा-प्रदान करने के लिए मदरसे खुलने चाहिए। भगवान् का भजन करने के समान ही लोगों को विद्यादान करना प्राचीन काल से पुण्य-दायक समझा जाता रहा है। उस पुण्य की प्राप्ति का उद्योग हमारे शिक्षित भाइयों को अवश्य करना चाहिए। शहरों में रह कर किसी दफ़्तर में १५-२० रुपये मासिक पर "बाबू साहब" बनने की अपेक्षा देहातों में रहना और अपने करोड़ों देश-भाइयों के सुधार में जीवन व्यतीत कर देना कहीं बढ़ कर है। पेट की आग यहाँ भी, ईमानदारी से काम करने पर, अच्छी तरह बुझ सकती है। यदि आप परमार्थ-मार्ग के मुमुक्षु हों तो स्मरण रहे कि वन में बैठ कर समाधि लगाने से जो सुख-प्राप्ति होती है वह जनतारूपी भगवान् की सेवा करने से भी हो सकती है। मोक्ष का यह भी उपाय है कि लोगों का उद्धार अज्ञान-पङ्क से किया जाय।

यदि संसार में स्वार्थ ही स्वार्थ का राज्य रहेगा, अपने ही विषयानन्द में यदि ज़िन्दगी बिता दी जायगी, तो मनुष्य की और विशेषतः भारतीय मानव-समाज की, अपेक्षा ही क्या रह जायगी? अपने किसान भाइयों की शिक्षा के लिए, अपनी जाति के सुधार के लिए, अपने देश के अभ्युदय के लिए और अपने राष्ट्र को ज्ञान-सम्पन्न कर्मयोगी बनाने के लिए हमारे शिक्षित युवकों को उचित है कि वे अपने हृदय-मन्दिर के कपाट खोल दें। स्वच्छन्दता-पूर्वक सभी लोग ज्ञान-लाभ कर सकें, इसके लिए मुक्तहस्त होकर स्वार्थ का त्याग करें। यदि आवश्यकता हो तो भिक्षा माँग कर उदर-निर्वाह करें और सात्विक त्याग के तत्त्व पर देहातों में—अशिक्षित जनों में—विद्यादान का महत्कार्य आरम्भ कर दें। बिना त्याग के देश सम्पन्न न होगा, बान्धव ज्ञानवान् न होंगे और दरिद्रता का दूरीकरण न होगा। इसलिए दूसरों के सुख को ही अपना सुख मान कर, इस उद्योग में—किसानों की शिक्षा में—हाथ लगाना चाहिए, जिससे देश में सुख की सरितायें बहें, राजा-प्रजा सुखी होकर इह लोक तथा परलोक का कर्त्तव्य पालने में समर्थ हों।

माधवराव सप्रे

चाहमान बीसलदेव का एक शिलालेख।

बीसलदेव का एक शिलालेख विक्रम संवत् १२२० का मिला है। उसे कई लोगों ने छापा है। अन्त में इंडियन एंटिक्वेरी की जिल्द १९ के पृष्ठ २१५ में उसे प्रोफ़ेसर कीलहार्न ने छाप कर प्रकाशित किया है।

इस लेख के तीन भाग हैं। प्रथम में तीन पंक्तियाँ हैं, दूसरे में ४ और तीसरे में ६। प्रोफ़ेसर कीलहार्न इस शिलालेख में 'भ' अक्षर को आधुनिक अक्षरों से विलक्षण बतलाते हैं। वह जैन-लिपि का है। परन्तु जैन-लिपि का केवल 'भ' ही नहीं है; किन्तु 'छ' और 'ज' भी हैं। इनके सिवा 'अ' अक्षर भी आधुनिक लिपि से विलक्षण है। द्वितीय भाग की पंक्ति ३ में 'वामभ्रुवां' शब्द में 'भ्रु' अक्षर सन्दिग्ध है। इस अक्षर में ऊपर 'ङ' और उसके नीचे 'ना' प्रतीत होता है।

इस लेख के प्रथम भाग की दूसरी पंक्ति पढ़ने में बड़ा गोलमाल हुआ है। कोई उसे कुछ पढ़ता है, कोई कुछ। सबसे प्रथम इस शिलालेख को राधाकान्त शर्मा ने इंडिया* रीसर्चेज़ में छापा था। उन्होंने बीसलदेव के पिता का नाम "अमिल्लदेव" पढ़ा है। उनको अमिल्लदेव पढ़ने में इस कारण भ्रम हुआ होगा कि 'द' के आगे 'ा' ऐसा चिह्न है। उसके आगे 'मे' मान कर उन्होंने "अमिल्लदेव" पढ़ लिया है। परन्तु 'म' पढ़ा नहीं जा सकता; क्योंकि पंक्ति के समस्त अक्षरों से 'म' नीचे है।

तदनन्तर कोलब्रुक साहब ने उसे छापा। उन्होंने उस नाम को "वेल्लदेव" पढ़ा। इन दोनों पाठों का

* इंडिया रीसर्चेज़, पापुलर एडिशन, कलकत्ता, जिल्द १ पृष्ठ ३१५—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवाला देकर प्रोफ़ेसर कीलहॉर्न अपने नोट में लिखते हैं—

"This name was first read Amilladêva; Colebrook read it Villadêva, but added in a note that it might also be read Avelladêva."

कोलब्रुक साहब ने 'द्' को हल् समझ कर वेल्लदेव पढ़ लिया होगा।

अन्त में प्रोफ़ेसर कीलहॉर्न ने उसे इंडियन एंटिक्वेरी की जिल्द १९ में छापा और उक्त नाम को "अवेल्लदेव" बताया। वे लिखते हैं कि 'व' के नीचे '०' ऐसा चिह्न विसर्ग का है।

"The small circle below and touching the left portion of the 'V' of the akshara 'Vê' of this word is the remainder of a sign of Visarga, which was denoted by two small circles, of which the upper one also is still faintly visible in the impression."

"Between Autmaj and Srîmad the sign of visarga was engraved, but subsequently struck out by a vertical line."

इसीसे भ्रम में पड़ कर प्रोफ़ेसर साहब ने "अवेल्लदेव" पढ़ लिया। परन्तु उनका पाठ भी ठीक नहीं। उनको यह भ्रम यों हुआ है कि राजपूताने में 'व' को 'ब' से पृथक् बताने के लिए प्रायः कम पढ़े लोग 'व' के नीचे बिन्दु लगाते हैं, जिससे 'व' अक्षर 'ब' से भिन्न समझा जाय और पढ़ने में भ्रम न हो। परन्तु उक्त शिलालेख में लिखने की यह प्रणाली नहीं है, क्योंकि सारे शिलालेख में 'व' अक्षर बहुत हैं। परन्तु 'व' के नीचे बिन्दु कहीं नहीं लगाया गया। तो फिर एक ही स्थल में बिन्दु कैसे समझा जाय? मैं तो इस नाम को "श्रीमदाह्लदेवात्मज" ऐसा पढ़ता हूँ। जिसे प्रोफ़ेसर साहब 'म' के आगे के 'ा' इस चिह्न को 'ए' की मात्रा पढ़ते हैं वह 'ए' की मात्रा नहीं; किन्तु 'द' के आगे आकार की मात्रा का चिह्न है। उसके आगे वकार नहीं, किन्तु द्वित्व नकार '(न्न) है। इसे पढ़ने में प्रोफ़ेसर साहब को भ्रम यों हुआ है कि दो नकारों में से ऊपर के नकार के ऊपर का भाग आधा ही स्पष्ट है; नीचे का भाग स्पष्ट नहीं। शिलालेख के फ़ोटो में, जो इस शिलालेख के साथ प्रोफ़ेसर साहब ने लगाया है, इस अक्षर का स्वरूप '(न्न) ऐसा है। इसका द्वित्व नकार (न्न) होना सर्वथा असन्दिग्ध प्रतीत होता है। इससे यह जाना गया कि बीसलदेव का पिता न तो अमिल्लदेव, न वेल्लदेव और न अवेल्लदेव था, किन्तु आन्नल्लदेव था। और आन्नल्लदेव होने में अनेक प्रमाण मिलते हैं।

हम्मीर-काव्य में चाहमान वासुदेव से रणस्तम्भ के राजा हम्मीर तक की वंशावली है। उसमें बीसल (विश्वल)* के पूर्व जगद्देव और उसके पूर्व आनल्लदेव नाम लिखा है। और, सुरजनचरित में वासुदेव से आरम्भ करके हम्मीर के आगे सुरजन के पुत्र भोज तक की वंशावली है। वह प्रायः हम्मीर-काव्य के अनुसार है। कहीं कहीं दोनों की वंशावलियों में कुछ अन्तर भी है। उक्त वंशावली में बीसलदेव के पूर्व जगदेव और उसके पूर्व अनलदेव नाम लिखा है। राजशेखर-कृत चतुर्विंशतिप्रबन्ध के अन्त में वासुदेव से

* आनल्लदेवो भटमौलिमौलि—
रथोपयेमे नृपतिस्वलक्ष्मीम्।
यः सङ्गरे दारितवैरिवार—
पाणिंधमं स्वर्गपथं चकार ॥ ४१ ॥
विस्मापकश्रीर्भवति स्म तस्माद्—
भूभृज्जगद्देव इति प्रतीतः।
ततोऽभवद्विश्वलदेवनामा
विश्वापतिर्विश्वविकासिधामा ॥ ४६ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम्मीर तक की वंशावली है। उसमें भी अनलदेव के अनन्तर जगदेव और उसके अनन्तर बीसलदेव का नाम है। पृथ्वीराजविजय-काव्य में वासुदेव के पूर्व एक नाम चापहरि लिख कर उससे वंशावली का आरम्भ किया गया है। इस ग्रन्थ में बीसल का नाम विग्रहराज लिखा है। उसके पूर्व जगदेव और जगदेव के पूर्व अरुणोराज नाम लिखे हैं। वीझोल्या* के शिलालेख में, जो विक्रमी-संवत् १२२५ का, पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का, है, वासुदेव के पुत्र सामन्त से आरम्भ करके सोमेश्वर तक वंशावली है। उसमें विग्रहराज के पूर्व अर्णोराज नाम है। पृथ्वीराजविजय का अरुणोराज और वीझोल्या के शिलालेख का अर्णोराज दोनों एक ही हैं। इसी अर्णोराज का दूसरा नाम आनलदेव था, जो हम्मीर-काव्य, सुरजन-चरित और राजशेखर-कृत चतुर्विंशति प्रबन्ध के अन्त में लिखा मिलता है। कर्नल टॉड साहब आनल के स्थान में "आना" लिखते हैं। इस समय भी उसके बनाये हुए तालाब का नाम आना-सागर प्रसिद्ध है। वह अजमेर के उत्तर की ओर है। टॉड साहब ने आना नाम तो सही लिखा है; परन्तु उन्होंने दो ग़लतियाँ की हैं। एक तो आना का नाम बीसल के पीछे लिखा है। पर बीसल का पिता होने से आना नाम पहले लिखा जाना चाहिए था। टॉड साहब ने यह ग़लती पृथ्वीराजरासौ के कारण की है। पृथ्वीराजरासौ में आना का नाम बीसल के बाद लिखा है। उसी को देख कर टॉड साहब ने भी वैसे ही लिख दिया है। पृथ्वीराजरासौ की वंशावली और टॉड साहब की वंशावली बीसलदेव से पृथ्वीराज तक परस्पर समान है। इसीसे जाना जाता है कि टॉड साहब ने जो वंशावली लिखी है वह पृथ्वीराजरासौ से ही ली होगी। केवल टॉड साहब ही पृथ्वीराजरासौ की भूल से भूले नहीं; किन्तु रासौ के कर्ता चन्द की भूल ने प्रायः सारे राजपूताने पर अपनी छाप मारी है। बूँदी के महाराव रामसिंह के आश्रित कवि मिश्रण सूर्यमल्ल चारण के रचे हुए वंशभास्कर ग्रन्थ में चाहमानों की वंशावली लिखी है। उसमें बीसलदेव से पृथ्वीराज तक की वंशावली टॉड साहब के लेख के अनुसार है। परन्तु उसमें ऊपर की वंशावली सबसे विलक्षण ही है। चाहमान से पृथ्वीराज तक १७७ नाम लिखे हैं और पृथ्वीराज का जन्मसमय, पृथ्वीराजरासौ के अनुसार, विक्रमी-संवत् १११५ माना है। टाड साहब ने भी उसी समय को ठीक सिद्ध करने का यत्न किया है। परन्तु रासौ के समय में और ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों के समय में अनुमान सौ वर्ष का अन्तर पड़ता है। इसी भूल के कारण राजपूताने की ख्यातों में पृथ्वीराज और उनके समकालीन राजाओं का समय प्रायः विक्रम-संवत् की बारहवीं शताब्दी लिखा गया है, जो वास्तव में तेरहवीं शताब्दी है।

दूसरी ग़लती यह है कि बीसल का समय विक्रम-संवत् १२२० है, जिसको टाड साहब ११२० मानते हैं। क्योंकि वे परमार भोज के उत्तराधिकारी उदयादित्य को बीसलदेव का समकालीन मानते हैं और कहते हैं कि उदयादित्य बीसलदेव की सहायता के लिए आया था। उदयादित्य के शिलालेख संवत १११५, ११३७ और ११४३ के मिले हैं। उनसे, टॉड साहब के मतानुसार, बीसलदेव का समय ११२० ही होना चाहिए। टॉड साहब यह भी लिखते हैं कि बीसलदेव का युद्ध महमूद के चौथे पुरुष मौदूद बादशाह से हुआ था; और महमूद का चौथा पुरुष मौदूद विक्रमी-संवत् १०९८—११०५ में विद्यमान था। इससे भी टॉड साहब के विचारानुसार, बीसलदेव का समय ११२० ही होता है। परन्तु न तो उदयादित्य बीसलदेव का समकालीन है और न मौदूद ही, क्योंकि इनके और बीसलदेव के समय में क़रीब सौ वर्ष का अन्तर है।

* देखो, बेंगाल एशियाटिक सोसायटी का जरनल, जिल्द L V, भाग १, पृष्ठ ४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णाकृतियों के नमूने नं० १

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे टॉड साहब की दी हुई चाहमानों की वंशावली, हम्मीर-काव्य की भूमिका में, जो मुंबई के एज्यूकेशन सोसाइटी के प्रेस में छपी है, लिखी हुई है। उसमें भी लिखा है कि टॉड साहब के मतानुसार बीसलदेव का समय शिलालेखों से विक्रमी-संवत् १०६६ से ११३० तक पाया जाता है। टॉड साहब अपने सिद्धान्तित संवत् की यथार्थता दिखलाने के लिए लिखते हैं—"महाराज बीसलदेव की जीत इस युद्ध (मौदूद के युद्ध) में हुई थी। इस बात की यथार्थता दिल्ली के विजयस्तम्भ के ऊपर खुदी हुई शिलालिपि के पाठ से भली भाँति ज्ञात होती है"—

पर शिलालेख में तो संवत् १२२० स्पष्ट लिखा हुआ है। वह भी एक बार नहीं; किन्तु दो बार। एक बार तो हमारे शिलालेख के प्रथम भाग की प्रथम पंक्ति के आरम्भ में ही लिखा है। दूसरी बार तृतीय भाग की पाँचवीं पंक्ति में लिखा है। फिर टॉड साहब का कथन कैसे माननीय हो सकता है?

बीसलदेव के दो नाम प्रसिद्ध थे। किसी ने बीसल लिखा है और किसी ने विग्रहराज। हम्मीर-काव्य के कर्त्ता ने बीसलदेव का नाम विश्वल (बीसल) और उसके पिता का नाम आनल्लदेव लिखा है। उसने आनल्ल के बनाये हुए तालाब* का उल्लेख भी किया है। राजशेखर-कृत चतुर्विंशति-प्रबन्ध और सुरजन-चरित में इसी के अनुसार बीसल नाम है। पृथ्वीराजविजय तथा बीझोल्या के शिलालेख में बीसल का दूसरा नाम विग्रहराज है। हमारे शिलालेख में बीसलदेव और विग्रहराज दोनों नाम मिलते हैं। प्रथम भाग की पंक्ति ३ में बीसलदेव नाम है, और दूसरे भाग की पंक्ति २ में विग्रहराज और पंक्ति ३ में विग्रह नाम है। तीसरे भाग की पंक्ति २ में बीसल और पंक्ति ३ में विग्रहराज नाम लिखे हैं। इससे स्पष्ट हो गया कि बीसल और विग्रहराज दोनों एक ही के नाम हैं। हमारा शिलालेख यह भी कहता है कि बीसलदेव के पिता का नाम आनल्लदेव था। हम्मीर-काव्य, सुरजन-चरित और चतुर्विंशतिप्रबन्ध की वंशावली में आनलदेव और बीसलदेव के बीच में जगद्देव नाम अधिक मिलता है। हमारे शिलालेख में उसका नाम नहीं। इससे मालूम होता है कि जगद्देव बीसलदेव का बड़ा भाई होगा। जगद्देव के लिए हम्मीर-काव्य में यह भी लिखा है कि उसने पितृहत्या की थी। इससे दूसरे ग्रन्थकारों ने इस पितृघाती का नाम न लिखा हो तो भी सम्भव है। हम्मीर-काव्य आदि की वंशावलियों में आनलदेव के अनन्तर जगद्देव का नाम है, जिससे यह भ्रम हो सकता है कि आनलदेव का पुत्र जगद्देव और उसका पुत्र बीसलदेव था। परन्तु हमारे शिलालेख से यह सन्देह दूर हो जाता है, क्योंकि उसमें स्पष्टरीति से यह लिख दिया गया है कि "आनल्लदेवात्मजश्रीमद्बीसलदेवस्य"। इससे उक्त सन्देह की सम्भावना नहीं।

रामकर्ण

कालिदास की नीति-शिक्षा।

कवि का काम केवल यही नहीं कि वह समाज का चित्र पाठकों के चित्त-रूपी चित्रपट पर यथावत् खींच दे; बल्कि उसका बड़ा भारी कर्त्तव्य, अपने सरस काव्य द्वारा, समाज के सामने एक उच्च आदर्श रखना है। कवि का कर्त्तव्य केवल यही बतलाना नहीं कि समाज किस रुख़ जा रहा है; बल्कि यह भी है कि उसे किस रुख़ जाना चाहिए। कवि

* आनल्लदेव के वर्णन में यह श्लोक है—

पर्यन्तशैलप्रतिबिम्बदम्भा—
त्क्रीडारसक्रोडितदिग्द्विपं यः।
अचीखनत्पुष्करपुण्यपारं
कासारसारं शुचिवारिवारम् ॥ २१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का काव्य एक दर्पण है, जिसमें पढ़ने वाला केवल समाज की सामयिक दशा का प्रतिबिम्ब ही नहीं देखता; बल्कि उसमें वह अपने जीवन का आदर्श भी देखता है। सच्चा कवि समाज का चित्र यथावत् खींच कर उसकी त्रुटियों और दोषों को दूर करता है, अपने मधुर शब्दों और अमृतस्राविणी कविता से मनुष्यों को उत्तमोत्तम शिक्षा देता है, मलिन विषयवासनाओं से चित्त को हटा कर उसे सत्कर्म्म की ओर प्रवृत्त करता है, तथा, अपनी कविता के बल से पौरुष, वीरता, साहस, देशभक्ति, जातीयता आदि गुणों को पैदा करके सोते हुए मनुष्यों को जगा देता है। किम्बहुना समाज और मनुष्यों के सामने उच्च आदर्श रख कर उन्हें कर्त्तव्यपथ की ओर प्रवृत्त करना ही कवि का परम कर्त्तव्य है।

इस बात में कालिदास कहाँ तक बढ़े चढ़े थे, यह उनके काव्य के रसिक पाठक ही जान सकते हैं। इस विषय में वे अनुपम थे, यदि ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं। कर्त्तव्य-शिक्षा और नीति-शिक्षा जैसी हमें कालिदास के काव्यों से मिलती है वैसी अन्य कवियों के काव्यों में दुर्लभ है। इस लेख का उद्देश, कालिदास से जो नीति-शिक्षायें हमें मिलती हैं उन्हें बतलाना है। कालिदास की नीतियों को हमने (१) व्यक्ति-नीति, (२) परिवार-नीति, (३) समाज-नीति तथा (४) राजनीति—इन चार भागों में बाँटा है। इन पर, इस लेख में, यथाक्रम विचार किया जायगा।

(१) व्यक्ति-नीति।

शरीर-रक्षा—कालिदास ने अपने शरीर की रक्षा और पोषण तथा अपनी उन्नति पर बड़ा ज़ोर दिया है। उन्होंने अपनी रक्षा तथा उन्नति करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य बतलाया है। दिलीप के विषय में वे कहते हैं—"जुगोपात्मानमत्रस्तः" अर्थात् यद्यपि उसे किसी बात का भय न था तथापि वह अपनी रक्षा करने में तत्पर रहता था। कुमारसम्भव में भी, ब्रह्मचारी के वेश में शिव, उमा से कहते हैं—"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"—अर्थात् धर्म्म का मुख्य साधन शरीर है; अतएव शरीर-रक्षा मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। रघुवंश में नन्दिनी-वधाकांक्षी सिंह भी दिलीप को उपदेश देता है—

"तदृच कल्याणपरम्परायां, भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्"।

हे राजन्! तू अपने सुन्दर बलवान् देह की रक्षा कर, जिससे तू अनेक सुखों को लगातार भोग सके। अपनी रानी की मृत्यु से दुःखित अज को सान्त्वना देते हुए वशिष्ठ-मुनि कहते हैं—"मरणं प्रकृतिः शरीरिणां, विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ"॥ देहधारियों का मरना स्वाभाविक है, जीवित रहना अस्वाभाविक—यह बुद्धिमानों का वचन है। यदि प्राणी क्षणमात्र भी जीवित रहे तो उसके लिए यह बड़े भारी लाभ की बात है—यह उसका परम सौभाग्य है। अतएव शोक में अपने शरीर का नाश करना मूर्खता है। कालिदास के इन वाक्यों से पता लगता है कि वे शरीर-रक्षा पर कितना ज़ोर देते थे।

धनार्जन—शरीर-रक्षा के बाद मनुष्य का दूसरा कर्त्तव्य धन पैदा करना है। कालिदास इस बात को भूले नहीं हैं। रघुवंश में लिखा है कि विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान करके खुक्ख हुए रघु के पास कौत्स-ऋषि गुरुदक्षिणा के लिए आया। किन्तु मिट्टी के अर्घ्यपात्र से ही रघु की निर्धनता का अनुमान करके उसने कहा—"स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि"—यज्ञ में दान देने से तुम निष्किञ्चन हो गये हो; अतएव तुमसे धन की आशा करना व्यर्थ है। क्योंकि चातक भी शरत्काल के जल-रहित बादल से जल की याचना नहीं करता। इस श्लोक से प्रकट है कि कालिदास धन को कितने महत्त्व की वस्तु समझते थे। इससे यह भी सूचित होता है कि धन के बिना लोगों में आदर और प्रतिष्ठा की कितनी हानि होती है। एक और रघुवंशी राजा—अतिथि—के विषय में भी कालिदास ने यही विचार प्रकट किये हैं—"कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसंग्रहः। अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते॥" धन पास रहने ही से लोग धनी मनुष्य का आश्रय लेते और उसकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं। इसी से राजा अतिथि ने धन-सङ्ग्रह किया, क्योंकि चातक पानी भरे हुए मेघों ही की सेवा और प्रशंसा करता है, जलरहित मेघों की नहीं। किन्तु कालिदास धनी कहलाने ही के लिए अथवा इसी लिए कि धन पास रहने से लोग धनी मनुष्य की ख़ुशामद करेंगे, धन पैदा करना अच्छा नहीं समझते और न वे यह चाहते हैं कि धन जमा करके मनुष्य कृपण और कदर्य बन जाय। धनार्जन का उद्देश कालिदास बहुत उच्च बतलाते हैं। उनके मत में धन पैदा करने का परम उद्देश परोपकार करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। रघुवंश में एक स्थान पर वे कहते हैं—"आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव"—श्रेष्ठ पुरुष दान देने ही के लिए धन का सञ्चय करते हैं; जैसे मेघ बरसने ही के लिए समुद्र से जल खींचते हैं। रघुवंशी राजाओं का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं—"त्यागाय सम्भृतार्थानां" रघुवंशी राजा दान देने ही के लिए धन इकट्ठा करते थे। और, दिलीप के सम्बन्ध में वे कहते हैं—"अगृध्नुराददे सोऽर्थम्" दिलीप लोभ-रहित होकर धन को ग्रहण करता था। मेघदूत में भी कवि एक जगह पर कहता है—"आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्" अर्थात् सज्जन पुरुष धन इसी लिए पैदा करते हैं जिससे वे विपत्ति में पड़े हुओं और दीन-दुखियों की सहायता कर सकें।

विनय और आर्जव—शिक्षा का बड़ा भारी गुण विनय और आर्जव है। शिक्षा मनुष्य को विनीत और नम्र बनाती है। शिक्षा पाने से मनुष्य को अपनी त्रुटियाँ और कमज़ोरियाँ मालूम हो जाती हैं। उसे यह भी समझ पड़ने लगता है कि यदि संसार में उन्नति करना है तो हमें अपने अभिमान को दूर करके विनय और नम्रता आदि गुणों को धारण करना चाहिए। अतएव कालिदास ने भी इस पर ज़ोर दिया है। वे स्वयं कितने विनीत और नम्र थे, यह इस श्लोक से पता लगता है—"मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्। प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः"॥ बड़े बड़े कवियों के यश की इच्छा रखने वाले मुझ मन्दबुद्धि को लोग वैसे ही हँसेंगे जैसे ऊँचे पेड़ पर लगे हुए फल तोड़ने की इच्छा से हाथ उठाने वाले बौने को। रघु के विषय में कवि कहता है—"तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः। उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम्"॥ काम्बोज विजय कर लेने पर काम्बोज-देशवालों के द्वारा दिये गये उत्तम घोड़ों के सहित सोने के बड़े बड़े ढेरों की भेंट निरन्तर रघु को प्राप्त हुई; परन्तु अभिमान न प्राप्त हुआ। अर्थात् इतना धन और ऐश्वर्य पाने पर भी उसमें अभिमान का लेश भी न आया। राम और उनके छोटे भाइयों के विषय में कवि कहता है—"स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणाम्। मुमूर्च्छ सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम्"॥ उन कुमारों की स्वाभाविक नम्रता शिक्षा पाने से और भी बढ़ गई; जैसे अग्नि का स्वाभाविक तेज घृतादि डालने से और भी अधिक हो जाता है। लवणासुर का नाश करने पर जब ऋषिगण शत्रुघ्न की वीरता की प्रशंसा करते हैं तब वे नम्रता के कारण अपना सिर नीचा कर लेते हैं। इस बात को कवि इस श्लोक में बड़ी अच्छी तरह प्रकट करता है—"तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः। शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीड़यावनतं शिरः॥" जब ऋषि लोग शत्रुघ्न की प्रशंसा करने लगे तब उनका सिर, जो प्रताप से ऊँचा था, नम्रता से नीचा होकर शोभित हुआ। राजा अतिथि के विषय में, रघुवंश में, कवि कहता है—"वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम्। तानि तस्मिन्समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः॥" यौवन, सुन्दर रूप और ऐश्वर्य इनमें से कोई एक भी मद का कारण होता है। अतिथि में ये सब थे। तो भी उसे अभिमान न हुआ। विक्रमोर्वशी में कवि एक स्थान पर कहता है—"अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः।" नम्रता वीरों का भूषण है।

इन्द्रियदमन—इन्द्रियों को अपने वश में रखना और उनको चञ्चल करने वाले कारणों के होते हुए भी उनका चलायमान न होना, एक ऐसा गुण है जिससे मनुष्य बड़े से बड़ा काम कर सकता है। कालिदास के मत में मनुष्य के इन्द्रियदमन और चरित्र की परख तभी होती है जब विकार पैदा करने वाले कारणों के होते हुए भी वह अपने चरित्र को अक्षुण्ण बनाये रहे। इसी बात को सिद्ध करने के लिए, कुमारसम्भव में, तपस्या करते हुए शिव और उनकी सेवा करती हुई पार्वती के एक साथ रहने का औचित्य दिखलाते समय कालिदास कहते हैं—"प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेने। विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः॥" स्त्रियों का समीप रहना तपस्या के लिए विघ्नरूप है। तो भी महादेवजी ने पार्वती को अपनी सेवा करने से मना न किया। क्योंकि इन्द्रियों में विकार पैदा करने वाले स्त्री आदि कारणों के होते हुए भी जिनके चित्त में विकार न पैदा हो वही सच्चे धीर और दृढ़-चरित्र हैं। विवाह करने का उद्देश भी कालिदास के मत में केवल कामतृष्णा का बुझाना ही नहीं है। कालिदास के मत में विवाह करने का उद्देश केवल सन्तान उत्पन्न करना है। कवि कहता है—"प्रजायै गृहमेधिनाम्"—अर्थात् रघुवंशी राजा पुत्र के लिए विवाह करते थे, विषय-भोग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए नहीं। दिलीप के सम्बन्ध में भी कवि यही बात, दूसरे शब्दों में, कहता है—"परिणेतुः प्रसूतये"—अर्थात् उसने सन्तान के निमित्त विवाह किया था। इन्द्रियों का दमन न करने और अत्यधिक विषय-भोग में फँसने से मनुष्य की क्या दशा हो जाती है, इसका बहुत सुन्दर चित्र कालिदास ने रघुवंश के अन्तिम सर्ग में, अग्निवर्ण की असामयिक मृत्यु का वर्णन करते हुए, खींचा है।

(२) परिवार-नीति।

दाम्पत्य-प्रेम—दाम्पत्य-प्रेम के उदाहरण कालिदास के काव्यों में भरे पड़े हैं। दिलीप और सुदक्षिणा का पारस्परिक प्रेम, उर्वशी के वियोग में पुरूरवा का पागल हो जाना, यक्ष का अपनी पत्नी के विरह में मेघ के द्वारा सन्देश भेजना, इन्दुमती के लिए अज का विलाप और काम के लिए रति का कारुणिक रोदन आदर्श दाम्पत्य-प्रेम के उदाहरण हैं। यहाँ पर हम कुछ श्लोक, उदाहरण के तौर पर, उद्धृत करके हम यह दिखाते हैं कि कालिदास के दाम्पत्य-प्रेम का आदर्श कितना उच्च था।

दिलीप अपनी महिषी सुदक्षिणा का कितना आदर करते थे और सुदक्षिणा भी किस तरह पति के प्रेम में पगी थी, यह नीचे श्लोकों से मालूम होता है—

> अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः।
> तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च॥

दिलीप ने अपने सारथि को आज्ञा दी कि घोड़ों को रोको। तब रानी को रथ से पहले उतार कर आप पीछे उतरा।

> वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्तमानं वनिता वनान्तात्।
> पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्॥

जब नन्दिनी को वन में चरा कर दिलीप आश्रम को लौटता था तब सुदक्षिणा दिन भर के वियोग में पति के दर्शनों के प्यासे नेत्रों से बार बार उसे देख कर भी नहीं अघाती थी, जैसे कोई उपासा मनुष्य बार बार शीतल जल पीकर भी नहीं अघाता।

देखिए, इन नीचे दिये हुए श्लोकों में अज अपनी पत्नी के लिए कैसा विलाप करता है—

> स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
> विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया॥

यदि यह माला ही प्राण हरने वाली है तो हृदय पर रक्खी हुई मुझे क्यों नहीं मारती? सच है, ईश्वर की इच्छा से कहीं विष भी अमृत हो जाता है और कहीं अमृत भी विष हो जाता है।

> अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा।
> यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता॥

अथवा मेरे खोटे भाग्य से विधाता ने इसे वज्र कर दिया, जिसने वृक्ष का नाश तो न किया, पर उसकी आश्रित लता का नाश कर दिया।

> शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम्।
> इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः॥

रात्रि चन्द्रमा को फिर भी प्राप्त हो जाती है, चकवे को चकवी फिर भी मिल जाती है—इस कारण वे दोनों वियोग को किसी तरह सह लेते हैं। किन्तु सदा के लिए तेरा वियोग मुझे क्यों न जलावेगा?

> धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः।
> गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे॥

आज मेरा धैर्य नष्ट हो गया, हास-विलास बन्द हो गया, गाना गया, ऋतु उत्सवहीन हो गये, गहनों का प्रयोजन जाता रहा, शय्या सूनी हो गई।

> गृहिणी सचिवः सखी रहः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
> करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥

तू मेरी भार्या थी, सलाह देने में मन्त्री थी, एकान्त की सखी थी, सङ्गीत आदि ललित कलाओं में मेरी प्यारी शिष्या थी। अतएव तुझे कठोर काल ने हर कर, बता, मेरा क्या नहीं हर लिया!

देखिए, इस श्लोक में विलाप करती हुई रति कितना उच्च भाव प्रकट करती है—

> मदनेन विना कृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे।
> वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण त्वामनुयामि यद्यपि॥

काम के बिना रति क्षणमात्र के लिए भी ज़िन्दा रही, यह निन्दा तो मेरी अचल हो ही गई। अब चाहे मैं तुम्हारा साथ देने के लिए चिता में भस्म भी हो जाऊँ, तथापि मेरा जलना भी इस कलङ्क को नहीं दूर कर सकता।

इसी भाव को कवि रघुवंश में भी इस प्रकार प्रकट करता है—

> अथ रामं शिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम्।
> सीतां मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

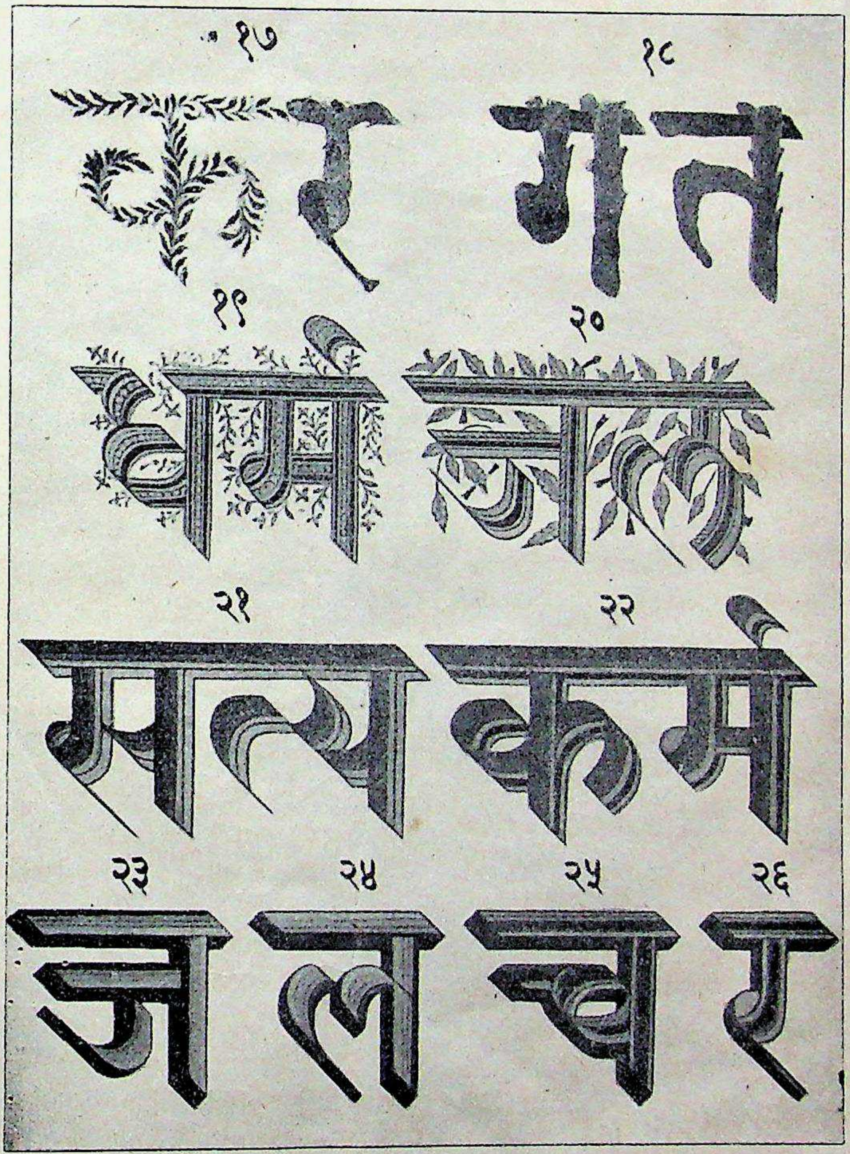

वर्णाकृतियों के नमूने नं० २

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

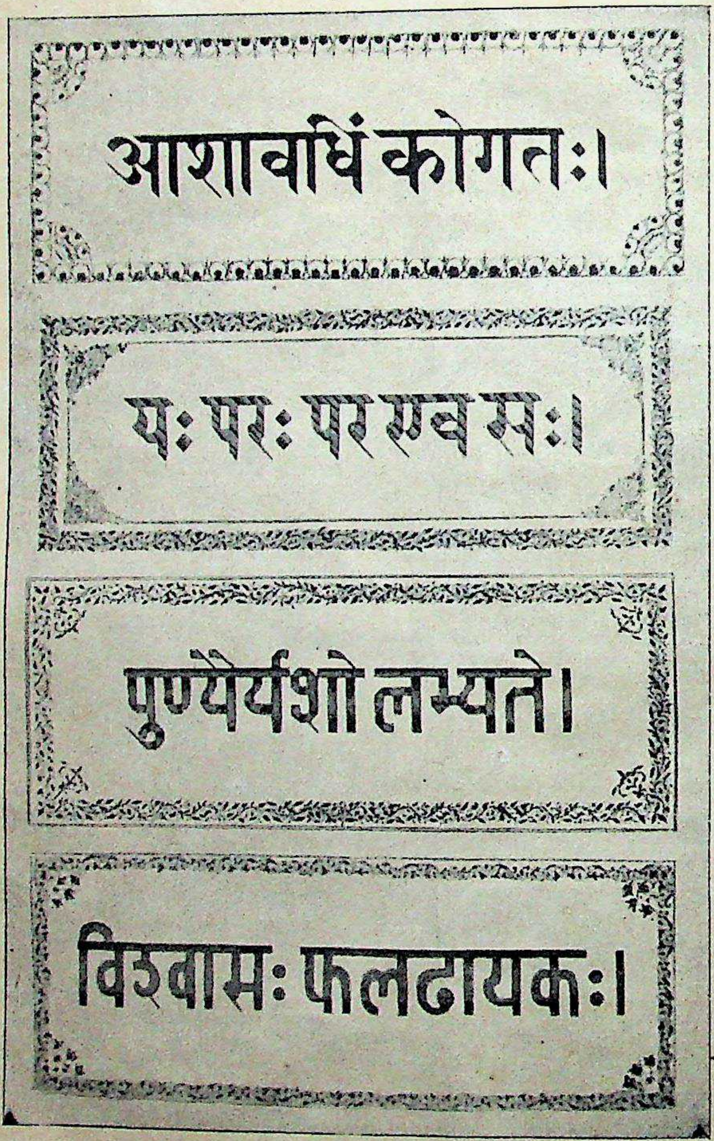

संस्कृत-सूक्तियों के नमूने।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम्।
प्राङ् मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता॥

राम के कटे सिर को देखने से व्याकुल-चित्त जानकी को त्रिजटा ने—"यह माया है"—कह कर जीवित किया। जानकी ने यह जान कर कि मेरे स्वामी जीते हैं, शोक को त्याग कर दिया; किन्तु प्रथम उनका मरण सत्य मान कर भी जीवित रही, इस कारण लज्जित भी हुई।

किसी और देश के साहित्य में दाम्पत्य-प्रेम का ऐसा उच्च आदर्श मिलना कठिन है।

एकपत्नीव्रत—विवाहिता सहधर्मिणी के रहते किसी अन्य स्त्री की इच्छा मनसा, वाचा, कर्मणा तक न करना एक-पत्नी-व्रत कहलाता है। इस व्रत का पालन बड़ा कठिन है। इस व्रत के पालन से मनुष्य भी देवता हो सकता है। इस व्रत की दीक्षा लिये हुए मनुष्य अतुलनीय दाम्पत्य-सुख भोग सकते हैं। गृहस्थी का तो एक-पत्नी-व्रत मुख्यतम अङ्ग है। कालिदास ने इस पर भी कितना ज़ोर दिया है, यह उनके काव्यों से प्रकट है। यद्यपि प्राचीन काल में बहु-विवाह की प्रथा भारतवर्ष में प्रचलित थी, इसमें कोई सन्देह नहीं; पर यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि कालिदास ने, सिवा दशरथ के वृत्तान्त में, इस प्रथा का ज़िक्र बहुत नहीं किया। कालिदास के काव्यों के प्रधान प्रधान पात्र एक-पत्नी-परायण हैं; और यदि कुछ ऐसे भी हैं जिनके एक से अधिक पत्नियाँ हैं तो इस बात की कवि ने उपेक्षा सी की है। विवाह के उपरान्त, उमा, जब बड़ी बूढ़ी स्त्रियों को चरण छूकर प्रणाम करती है तब वे यह आशीर्वाद नहीं देतीं कि "तू सौभाग्यवती हो" या "वीरप्रसू हो" किन्तु वे आशीर्वाद देती हैं कि "अखण्डितं प्रेम लभस्व पत्युः"—तू पति के अखण्डित प्रेम को पाने वाली हो—तेरे सुख में काँटा बोने वाली कोई सपत्नी तुझे न मिले। और यद्यपि यह बात प्रसिद्ध है कि गङ्गा पार्वती की सौत थी तो भी कालिदास ने कुमारसम्भव के सात सर्गों में एक स्थान पर भी इस बात का ज़िक्र नहीं किया। इन्दुमती की मृत्यु के बाद अज फिर विवाह नहीं करता। रामचन्द्र का एक-पत्नी-व्रत प्रसिद्ध ही है; और जब उनके लिए यह आवश्यक हुआ कि अश्वमेध-यज्ञ में अर्द्धाङ्गिनी-स्त्री साथ हो तब भी वे दूसरा विवाह नहीं करते; बल्कि सीता की सोने की मूर्त्ति बनवा कर उसी के साथ यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। इसी को कवि इस श्लोक में वर्णन करता है—

"सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्त्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे॥

"राम ने सीता का त्याग करके पुनः दूसरा विवाह न किया, बल्कि उसी की सोने की मूर्त्ति को सहधर्मिणी बना कर यज्ञ पूरा किया"—इस वृत्तान्त को सुन कर सीता ने दुःसह वियोग-दुःख को किसी प्रकार सह लिया। अपने पिता का अनुसरण करने वाला कुश भी एक-पत्नी-परायण था। जब आधीरात को कुश के शय्यागृह में, स्त्री के वेष में, राजलक्ष्मी ने प्रवेश किया तब वह उससे कहता है—

"का त्वं शुभे! कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति॥

हे सुन्दरि! बता तू कौन है? किसकी स्त्री है? मेरे निकट आने का कारण क्या है? इस बात को याद रख कर उत्तर दे कि रघुवंशियों का मन दूसरे की स्त्रियों पर कभी जाता ही नहीं।

पति-भक्ति—कालिदास का हर एक स्त्री-पात्र पति-भक्त और पति की आज्ञा पर चलने वाला था। सुदक्षिणा यद्यपि आसन्न-प्रसवा थी और मुश्किल से उठ बैठ सकती थी तथापि जब कभी राजा दिलीप अन्तःपुर में प्रवेश करते तब खड़ी होकर उनका अभिनन्दन करती थी। हिमालय जब अपनी पत्नी मेना से शिव के साथ उमा के विवाह का प्रस्ताव करता है तब वह उस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लेती है। क्योंकि "भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्त्तुरिष्टे पतिव्रताः" पतिव्रता स्त्रियाँ पति की इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं करतीं। किसी भी देश के इतिहास में सीता के समान पतिव्रता और साध्वी स्त्री मिलना असम्भव है। जब निर्दोष होकर भी वह गृह से निर्वासित की जाती है तब वह पति के विरुद्ध कुछ नहीं कहती; वरन् अपने ही को दोष देती है—

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः॥

तुमने मेरा त्याग अपनी इच्छा से किया है, इसकी शङ्का भी करना योग्य नहीं; यह तो मेरे ही पूर्वजन्मों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापों का प्रबल उदय है। अतएव वह निश्चय करती है कि—

माहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः ॥

सन्तान होने के उपरान्त मैं सूर्य्य की ओर दृष्टि लगा कर तप करने का यत्न करूँगी, जिससे, फिर भी, दूसरे जन्म में, तुम्हीं मेरे भर्त्ता हो और फिर कभी वियोग न हो।

पितृ-भक्ति—पितृ-भक्ति के भी अनेकों उदाहरण कालिदास के काव्यों में मिलते हैं। रघुवंशी राजकुमार पिता की आज्ञा का पालन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। रघु के विषय में कवि कहता है—

"युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः ।
वपुःप्रकर्षादजयद्गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत ॥

महाभुजावाला, चौड़ी छाती और विशाल ग्रीवावाला रघु, शरीर की सुन्दरता और गुणों में, पिता से बढ़ा हुआ था; तथापि नम्रता और पितृ-भक्ति के कारण छोटा ही दिखाई पड़ता था। वही रघु जब वृद्धावस्था में अपने पुत्र अज को राज्यभार सौंप कर वन में जाने लगता है तब अज करुणागद्गद होकर पिता से बार बार अपना परित्याग न करने की प्रार्थना करता है। जिस राज्य के लिए न जाने कितने बादशाहों और राजाओं ने अपने पिता का वध तक किया उसी पिता से दिये गये राज्य का अस्वीकार करके पिता से अपना परित्याग न करने की वह प्रार्थना करता है। अन्त में यह तय होता है—

स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः ।
समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया ॥

रघु संन्यास लेकर नगर के बाहर एक स्थान पर रहने लगा, और पुत्र-वधू के समान राजलक्ष्मी उसकी सेवा करने लगी।

दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत् ।
तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया ॥

अनेक राजकुमार जिस राज्य को कुत्सित उपायों से भी अपने अधीन करने का यत्न करते हैं, स्वयं प्राप्त हुए उसी राज्य को अज ने अपने पिता की आज्ञा से स्वीकार किया, न कि भोग की इच्छा से।

रामचन्द्र की पितृ-भक्ति की कथा इतनी प्रसिद्ध है कि उस पर कुछ लिखना पिष्ट-पेषण करना है।

भ्रातृ-प्रेम—कालिदास के भ्रातृ-प्रेम का आदर्श भी बहुत ऊँचा है। दशरथ के पुत्रों के विषय में कवि कहता है—

परस्पराविरुद्धास्ते तद्रघोरनघं कुलम् ।
अलमुद्द्योतयामासुर्देवारण्यमिवार्तवः ॥

राम आदि चारों भाई परस्पर प्रेम करते हुए रघुकुल को वैसे ही शोभायमान करते थे जैसे वसन्त आदि ऋतु नन्दनवन को अधिक शोभायमान करते हैं।

लक्ष्मण और भरत का भ्रातृ-प्रेम इतना उच्च और पवित्र है कि उसकी समता का उदाहरण किसी दूसरे साहित्य में मिलना दुर्लभ है। रघुवंश के इतिहास में भ्रातृ-विरोध का वैसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जैसा कि शाहजहाँ की मृत्युशय्या पर अथवा औरङ्गज़ेब की मृत्यु पर भाइयों के बीच हुआ था। भ्रातृ-प्रेम रघुकुल का परम्परागत धर्म्म था। कुश आदि ने भी इस गुण को पैतृक सम्पत्ति के समान अपने अपने पिता से पाया था। कवि लिखता है—

अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि ॥

लव आदि सातों भाइयों ने उम्र और गुण में सबसे बड़े कुश को गद्दी पर बिठाया। सच है, भ्रातृ-प्रेम रघुकुल की रीति ही है।

(३) समाजनीति

पारस्परिक सत्यव्यवहार—समाज के सभ्यों में, आपस में एक दूसरे के साथ सचाई और खरापन, समाज की स्थिरता का मूल कारण है। जिस समाज में लोग एक दूसरे को धोखा देने वाले होते हैं तथा एक दूसरे के साथ सचाई का बर्ताव नहीं करते वह समाज बहुत जल्द अधोगति को प्राप्त हो जाता है। कालिदास के काव्यों से पता लगता है कि वे सचाई के बड़े क़ायल थे। कालिदास के पात्रों का प्रधान गुण सचाई और खरापन है। कालिदास रघुकुल के राजाओं के सम्बन्ध में कहते हैं—"सत्याय मितभाषिणाम्" रघुवंशी राजा सत्य बोलने के लिए मित-भाषी थे, जिसमें उनके मुख से कोई बात झूठ न निकल जाय। दशरथ के विषय में कवि कहता है—"न वितथा (वाक्) परिहासकथास्वपि" हँसी-मज़ाक में भी कभी झूठ न बोलता था। एक दूसरे रघुवंशी राजा, अतिथि, के विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी कवि कहता है—"यदुवाच न तन्मिथ्या" जो कुछ उसके मुख से निकलता वह कभी झूठ न होता । यह प्रसिद्ध ही है कि दशरथ ने अपने प्राण और सुख को त्याग कर भी सत्य का पालन किया ।

कृतज्ञता—कृतज्ञता अथवा दूसरे के किये हुए उपकार को मानना कालिदास के पात्रों का दूसरा गुण है । जब प्रियदर्शन नाम का गन्धर्व, जो शाप के कारण हाथी के शरीर में बदल गया था, अज से मारा जाने पर पुनः गन्धर्व-शरीर को पाता है तब वह अज का प्रत्युपकार करने के लिए कितना व्याकुल होता है, यह इस श्लोक से मालूम होता है—

> "सम्मोचितः सत्ववता त्वयाहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन ।
> प्रतिप्रियं चेद् भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः ॥"

हे राजकुमार ! आपने मुझे शाप से छुड़ाया । यदि मैं आपका प्रत्युपकार न करूँ तो मेरा पुनः गन्धर्व पद का पाना वृथा हो जायगा । मेघदूत में भी कवि कहता है—

> "न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
> प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः" ।

नीच मनुष्य भी अपने उपकारी मित्र की सहायता के लिए आने पर प्रत्युपकार करने से विमुख नहीं होता; तो फिर उच्च कुल में उत्पन्न मनुष्य का क्या कहना है ! कालिदास ने पशुओं के उपकार का भी बदला देना मनुष्य का धर्म बतलाया है । वह इस श्लोक से प्रकट होता है—

> तान् हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्काकुत्स्थः कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान् ।
> आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानामानृण्यं गतमिव मार्गणैरमंस्त ॥

दशरथ ने, हाथियों से महा वैर रखनेवाले, गजमुक्ता लगे हुए कुटिल नखवाले, सिंहों को मार कर मानो युद्ध में अपने साथ उपकार करने वाले हाथियों से अपने को उऋण माना ।

दया और औदार्य्य—दया और औदार्य्य में भी कालिदास के पात्र किसी के पीछे नहीं । रघु कितने उदार और दानी थे, यह कालिदास के इस श्लोक से सूचित होता है—

> स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ।
> आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥

रघु ने विश्वजित् नाम का यज्ञ किया, जिसमें उसने अपना सर्वस्व दक्षिणा में दे दिया । सच है, श्रेष्ठ मनुष्य दान देने ही के लिए धन सञ्चय करते हैं, जिस तरह कि मेघ जल बरसाने ही के लिए समुद्र से पानी लेते हैं । रघु और कौत्स का वादविवाद, जो नीचे के श्लोक में है, औदार्य का कितना उच्च उदाहरण है—

> जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्वौ ।
> गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥

याचक की आवश्यकता से अधिक देने वाला रघु, और गुरुदक्षिणा के लिए जितना धन चाहिए उससे अधिक न लेने वाला कौत्स-ऋषि, दोनों अयोध्यानिवासियों की बड़ाई के पात्र हुए ।

रघुकुल के औदार्य्य की प्रशंसा में कवि कहता है—

> अप्यसुप्रणयिनां रघोःकुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता

रघुकुल में प्राण तक माँगने वालों की याचना कभी वृथा नहीं जाती ।

आतिथ्य-सत्कार—कालिदास के काव्यों में आतिथ्य-सत्कार की भी ख़ूब महिमा गाई गई है । वशिष्ठमुनि के आश्रम में दिलीप के जाने पर कवि कहता है—

> तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ।
> पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥

जब आतिथ्य-सत्कार से मार्ग चलने की थकावट जाती रही तब वशिष्ठ मुनि ने रघु से कुशलवार्त्ता पूछी । इसी तरह गुरु-दक्षिणा के लिए आये हुए कौत्स ऋषि का आतिथ्य-सत्कार करने के पश्चात् रघु ने उससे कुशलवार्त्ता पूछी है । जब राजकुमार अज इन्दुमती-स्वयंवर के अवसर पर विदर्भ-देश पहुँचा तब भोजराज ने अज का कैसा आतिथ्य-सत्कार किया, इसे कवि ने इस श्लोक में वर्णन किया है—

> प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः ।
> मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम् ॥

अज का प्रवेश राजधानी में करा कर और अज की सेवा में अपनी सर्वस्व-लक्ष्मी सौंप कर भोजराज ने उसकी ऐसी सेवा और ऐसा आतिथ्य-सत्कार किया कि वहाँ आये हुए लोग विदर्भराज को पाहुना और अज को उस घर का स्वामी समझने लगे ।

(४) राजनीति

युद्धनीति—कालिदास के काव्यों में युद्ध का जो वर्णन है उसमें साधारण तौर पर युद्धों में जो अत्याचार और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्याय होते हैं उनका कहीं ज़िक्र नहीं। कालिदास का युद्धवर्णन धर्म-युद्ध का वर्णन है। युद्ध पृथ्वी या धन लेने के लिए नहीं, बल्कि केवल शत्रुओं को दमन करके उन पर अपनी सत्ता स्थापन करने के लिए ही किया जाता था। विजयी राजा शरण में आये हुए शत्रु की विनती से ही सन्तुष्ट हो जाता था और जीते हुए राजा को उसका राज्य फेर देता था। यह कालिदास के इन श्लोकों से प्रकट है—

अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्॥

उद्धत वैरियों का नाश करनेवाले रघु से नम्र हो कर सुह्मदेश वालों ने अपनी जान बचाई; जिस तरह बेंत के पेड़ झुक कर नदी के वेग से अपनी रक्षा करते हैं।

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।
फलैः संवर्द्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः॥

जैसे धान के पेड़ उखाड़ कर फिर लगाये जाते हैं और, इस कारण, ख़ूब फल देते हैं; उसी तरह रघु ने चरणों पर झुके हुए वङ्ग-देश के राजाओं को राज्य से उतार कर फिर से सिंहासन पर बिठाया। इसके बदले में उन वङ्ग-राजाओं ने रघु का सत्कार धन से ख़ूब किया।

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्॥

धर्म के लिए विजय करने वाले रघु ने महेन्द्रनाथ को युद्ध में पकड़ कर बाद को छोड़ दिया। उसने केवल उसकी सम्पत्ति हर ली, उसका राज्य नहीं छीना।

निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये।

पराक्रम से जीते हुए शत्रुओं से नम्र होना तेजस्वियों की कीर्ति का बढ़ाने वाला होता है।

कालिदास के वीर योद्धा शत्रु की कमज़ोरी से अनुचित फ़ायदा नहीं उठाते थे, जैसा कि कवि के इस श्लोक से प्रकट है—

पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी।
तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकांक्ष॥

पहले प्रहार करने वाले सवार ने प्रहार करने में असमर्थ शत्रु पर फिर प्रहार नहीं किया; किन्तु उसको सुस्ताने और दम लेने के लिए अवकाश दिया।

रघु की धर्म-युद्ध-प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कवि कहता है—

नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम्।
पूर्व एवाभवत्पक्षस्तस्मिन्नाभवदुत्तरः॥

राज-नीति के जानने वालों ने धर्म-युद्ध और अधर्म-युद्ध दोनों मार्ग रघु को दिखलाये, किन्तु उसने पहला ही मार्ग स्वीकार किया; दूसरा नहीं।

नीति और शौर्य्य में क्या सम्बन्ध है, इसको भी कालिदास ख़ूब समझते थे। अतिथि-राजा के विषय में वे कहते हैं—

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः॥

बिना शूरता के केवल कोरी नीति कायरता है और बिना नीति के कोरी शूरता पशुत्व है—यह जान कर राजा अतिथि नीति और शौर्य्य दोनों के मेल से युद्ध में विजय प्राप्त करता था।

राज-धर्म—राजा का परम धर्म अपनी प्रजा का पालन करना और उसे हर प्रकार से प्रसन्न रखना है। वह राजा यथार्थ में राजा कहलाने योग्य नहीं जो अपनी प्रजा को प्रसन्न और सुखी नहीं रखता। इसीलिए कालिदास ने कहा है—"राजा प्रकृतिरञ्जनात्"। राजा अपनी प्रजा से बहुत अधिक कर न लेते थे और जो लेते भी थे उसे प्रजा के हितार्थ ख़र्च करते थे, जैसा कि इस श्लोक से प्रकट है—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

प्रजा का हित करने ही के लिए दिलीप उनसे कर लिया करता था, जैसे हज़ारगुना बरसने ही के लिए सूर्य्य पृथ्वी से जल लेता है।

कालिदास के काव्यों में राजा लोग पक्षपातरहित होकर दण्ड तथा पुरस्कार देते थे। रघु के विषय में कवि कहता है—

स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः।
आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः॥

नीति के अनुसार यथोचित दण्ड देने से रघु सब लोगों का मन हरनेवाला हुआ; जैसे न अधिक शीतल और न अधिक गरम दक्षिण-पवन सब का मन हरनेवाला होता है। दशरथ के विषय में भी कवि कहता है—

समतया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः।
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा॥

महाराज दशरथ पक्षपातरहित होकर, समान बरताव से, लोगों को धन का पुरस्कार देने से, तथा दुष्टों को दण्ड देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वरुण सहित यम और कुबेर के, और तेज में सूर्य्य के समान मालूम हुए।

प्राचीन-काल में प्रजा को राजा अपने पुत्र के समान पालते थे, यह इस श्लोक से पता लगता है—

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥

प्रजा को शिक्षा देने से तथा उसकी रक्षा करने और पालने से दिलीप वास्तव में प्रजा का पिता था। उनके माता-पिता तो केवल उनके जन्म देनेवाले थे।

शकुन्तला में भी दुष्यन्त एक स्थान पर कहता है—

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ।

दुष्यन्त अपने राज्य भर में डुग्गी पिटवा कर यह कहता है—"हमारी प्रजा में से मृत्यु के कारण जिस किसी का किसी रिश्तेदार से वियोग हो जाय वह दुष्यन्त को अपना रिश्तेदार समझे।

राम के विषय में कवि इसी बात को, दूसरे शब्दों में, कहता है—

तेनार्थवांल्लोभपराङ्मुखेन तेन घ्नता विघ्नभयं क्रियावान् ।
तेनास लोकः पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री ॥

लोभरहित राम से लोग अपने को धनवान् समझते थे अर्थात् रामचन्द्र लोभ से प्रजा का धन न हरते थे। विघ्न-भय को दूर करनेवाले राम से लोग यज्ञ आदि का अनुष्ठान करते थे। अर्थात् राम समस्त विघ्नबाधाओं को दूर करते थे, जिससे प्रजा निश्चिन्त होकर यज्ञ आदि कर्मों का अनुष्ठान करती थी। राम प्रजा को शिक्षा देनेवाले थे, इससे प्रजा उन्हें पिता समझती थी। वे प्रजा के दुःखों को दूर करते थे, इससे प्रजा उन्हें अपना पुत्र समझती थी।

राजभक्ति—प्रजा भी केवल दिखलाने के लिए नहीं, बल्कि सच्चे हृदय से, राजा की भक्ति करती थी। प्रजा राजा के सुख से अपना सुख और उसके दुख से अपना दुख मानती थी। जब बहुत दिनों के बाद दिलीप ऋषिवशिष्ठ के आश्रम से लौटे तब उन्हें देख कर प्रजा कितनी प्रसन्न हुई, यह इस श्लोक से जाना जाता है—

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम् ।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् ॥

बहुत दिनों से न देखने से उत्कण्ठित प्रजा वशिष्ठ के आश्रम से लौटे हुए, और पुत्रव्रत करने से कृश-शरीर दिलीप को अतृप्त नेत्रों से देख कर प्रसन्न हुई, जैसे नवीन उदय हुए चन्द्रमा को देख कर लोग प्रसन्न होते हैं।

इन्दुमती की मृत्यु से दुःखित अज के साथ प्रजा की कैसी सहानुभूति थी, इसे कालिदास इस श्लोक में प्रकट करते हैं—

स विवेश पुरीं तया विना क्षणदापायशशाङ्कदर्शनः ।
परिवादमिवावलोकयन्स्वशुचः पौरवधूमुखाश्रुषु ॥

जैसे रात्रि के वियोग से चन्द्रमा कान्तिहीन हो जाता है उसी तरह इन्दुमती के वियोग-दुःख से कान्तिहीन अज ने पुर में प्रवेश करते हुए, इन्दुमती के वियोग में रोती हुई नगरवासिनी स्त्रियों की आँखों से बहते हुए आँसुओं में अपने दुःख का प्रवाह सा बहते देखा।

अन्त में कालिदास का एक श्लोक लिख कर हम इस लेख को समाप्त करते हैं। इस श्लोक में कालिदास की नीतियों का सार है—

बलमार्त्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम् ।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना ॥

उस भाग्यवान् अज का बल भयभीतों का भय शान्त करने के लिए था, दूसरे पर अत्याचार करने के लिए नहीं, उसका शास्त्र-ज्ञान विद्वानों के सत्कार के लिए था, अभिमान के लिए नहीं; और उसका धन दूसरों के उपकार के लिए था अपने सुख के लिए नहीं। और कहाँ तक कहें उसके गुण भी दूसरों ही के हित-साधन के लिए थे।

जनार्दन भट्ट

विविध विषय

आयुर्वैदिक और यूनानी कालेज की आवश्यकता।

मेडिकल कालेज, मेडिकल स्कूल और मेडिकल प्रैक्टिशनर अभी कल के हैं। इनके प्रादुर्भाव के पहले इस देश के तीस करोड़ निवासियों की रोग-चिकित्सा कौन करता था? केवल वैद्य और हकीम। हकीमों के अस्तित्व के पहले यह काम केवल वैद्य करते थे। आयुर्वेद-विषयक अनन्त ग्रन्थों के नष्ट हो जाने पर भी अब भी इस विषय के सैकड़ों ग्रन्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यमान हैं। उनके अवलोकन से मालूम होता है कि किसी समय यह विद्या इस देश में बहुत उन्नति को प्राप्त थी। विदेशी नरेश यहाँ के वैद्यों को बड़े बड़े पुरस्कार देकर अपने यहाँ बुलाते थे। अरब, फ़ारिस, चीन और तिब्बत के विद्वान् यहाँ के आयुर्वेद-ग्रन्थों का अनुवाद अपनी अपनी भाषाओं में करके उनसे लाभ उठाते थे। पर अब वह समय नहीं। इन चिकित्सा-प्रणालियों का आदर करनेवाले नहीं रहे। वैद्यों और हकीमों को यथेष्ट वृत्ति देकर उनका सम्मान करनेवाले अब कोई विरले ही पाये जाते हैं। देश की गवर्नमेंट डाकृरी चिकित्सा की पृष्ठपोषक है। उसी की सहायता से वह प्रजा के रोग-निवारण का यत्न करती है। इस दशा में जो यूनानी और वैद्यक चिकित्सायें बिलकुल ही नष्ट नहीं हो गईं, यही क्या कम सौभाग्य की बात है। परन्तु कारणवश अवनति को प्राप्त होने पर भी किसी वस्तु के आन्तरिक गुण नहीं नष्ट हो जाते। जिन्होंने पश्चिमी वैद्यक-विद्या में पारदर्शिता प्राप्त करके भी आयुर्वेद का अध्ययन किया है वे जान गये हैं कि इस चिकित्सा में अनेक गुण हैं। उसकी भित्ति विज्ञान पर अवस्थित है। वह इस देश के निवासियों की प्रकृति के अनुकूल है। थोड़े ही खर्च से लोग इस चिकित्सा से लाभ उठा सकते हैं। जहाँ डाकृरों की पहुँच नहीं वहाँ यही चिकित्सा अधिकांश प्रजा की प्राण-रक्षा करती और उनकी रोग-जात पीड़ा दूर करती है। विपक्षी आक्षेप करते हैं कि इस चिकित्सा में जूड़ी और बुखार, अतीसार और संग्रहणी, कामला और हलीमक के लिए दवायें हो सकती हैं। परन्तु देशी वैद्य और हकीम चीरफाड़ का काम तो नहीं कर सकते। पर किसी बात की विस्मृति से उसका अत्यन्ताभाव नहीं सिद्ध होता। अभ्यास बना न रखने से सर्जरी-पास डाक्टर भी अच्छी तरह चीड़फाड़ नहीं कर सकते। और यदि सौ दो सौ वर्ष तक डाक्टरों को यह काम बिलकुल ही न करना पड़े तो डाक्टरी की इस शाखा की भी वही दशा हो जो आयुर्वैदिक सर्जरी की हुई है। जिस देश में चक्रवर्ती राजा थे, जिस देश में लाखों सैनिक युद्ध में मरते कटते थे, जिस देश के देहाती नाई तक साधारण चीर-फाड़ का काम करते थे वहाँ सर्जरी का प्रचार न था, यह कौन स्वीकार करेगा? पुराने ग्रन्थ और पुराने शस्त्र इस बात का अब भी प्रमाण दे रहे हैं कि आयुर्वेद की यह शाखा भी इस देश में थी और बहुत उन्नतावस्था में थी। अनेक अवरोधक कारणों से लोग उसे भूल गये हैं। और भूली बात, फिर भी याद आ सकती है। पश्चिमी देशों की सर्जरी खूब उन्नत है; पश्चिमी डाक्टरी ने भी विशेष उन्नति की है। पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि हमारी चिकित्सा-प्रणाली हेय, अतएव भूल जाने योग्य, है। गवर्नमेंट के डाक्टरी महकमे के सबसे बड़े अफ़सर, सर पारडी लूकिस, तक ने, भरे कौंसिल में, यह स्वीकार किया है कि हमारी चिकित्सा-प्रणाली हँस कर उड़ा देने की चीज़ नहीं। अभी उस दिन एक लड़के के दिमाग़ में कुछ फ़ितूर हो गया। उसे ऐलोपैथिक दवायें दी गईं; कुछ लाभ न हुआ। होमियोपैथिक चिकित्सा की गई; वह भी कारगर न हुई। पर एक टके की बच और शंखपुष्पी ने उसे नीरोग कर दिया। यदि यह बात मान भी ली जाय कि डाकृरी चिकित्सा ही सर्वोत्तम चिकित्सा है तो भी तो वह सब कहीं प्राप्य नहीं।

लाखों, करोड़ों देहातियों को उससे लाभ पहुँचाना, गवर्नमेंट के लिए, इस समय सम्भव नहीं। यह बड़े खर्च का काम है। और इतना खर्च वह नहीं कर सकती।

यही सोच कर इस प्रान्त के कौंसिल में १० अपरेल १७ को, माननीय सुखवीरसिंह ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने सलाह दी कि गवर्नमेंट लखनऊ में एक यूनानी और वैद्यक कालेज खोलने की कृपा करे। इसका समर्थन प्रजा-पक्ष के अनेक मेम्बरों ने किया। पर गवर्नमेंट ने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया। माननीय मिस्टर ओ-डोनल ने कहा—पहले यह बात मालूम हो जानी चाहिए कि ये दोनों चिकित्सा-प्रणालियाँ वैज्ञानिक आधार भी रखती हैं या नहीं तब कालेज खोलने का विचार करना ठीक होगा। अभी तो, बहुत समय तक, ऐसे कामों के लिए गवर्नमेंट के पास रुपये का होना ही सम्भव नहीं। बड़े कौंसिल में "पास" हुए एक प्रस्ताव के अनुसार गवर्नमेंट आव् इंडिया इस बात की जाँच कर रही है कि इन चिकित्सा-प्रणालियों की स्थिति वैज्ञानिक आधार पर मानी भी जा सकती है या नहीं। उसका नतीजा तो मालूम हो जाने दीजिए; तब देखा जायगा। फल यह हुआ कि यह प्रस्ताव "पास" न हो सका।

पर मदरास की गवर्नमेंट ने इस प्रान्त की गवर्नमेंट से कुछ अधिक उदारता दिखाई है। वहाँ एक महाशय ने उस दिन यह प्रस्ताव किया कि गवर्नमेंट आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सा-प्रणालियों की जाँच के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी योग्य अफ़सर की योजना करे। इस प्रार्थना को वहाँ की गवर्नमेंट ने मान लिया है। आशा है, मदरास की गवर्नमेंट और गवर्नमेंट आव् इंडिया की जाँच का फल अच्छा ही होगा।

२—सरकारी रिपोर्ट में साहित्यालोचना।

संयुक्त प्रान्त की १९१५—१६ की शासन-सम्बन्धिनी वार्षिक रिपोर्ट में साहित्य की जो आलोचना निकली है उसके कुछ अंशों का आशय नीचे दिया जाता है—

सन् १९१४ में कुल २०४२ पुस्तकें निकली थीं; सन् १९१५ में २०२३ अर्थात् १९ कम निकलीं। उर्दू में केवल ३६२ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। यह कमी फ़ी सदी २० के बराबर है। हिन्दी में ९४२ पुस्तकें छपीं। यह संख्या १९१४ की अपेक्षा कम है; पर कमी केवल एक फ़ी सदी के बराबर है। इससे सूचित हुआ कि काग़ज़ इत्यादि बहुत मँहगा होने पर भी हिन्दी की पुस्तकों की संख्या विशेष कम नहीं हुई। युद्ध के कारण समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों की संख्या में कमी नहीं हुई। वह ३१७ से ३५७ हो गई। अर्थात् ४० की वृद्धि हुई। किस भाषा में कितनी पत्र-पत्रिकायें निकलीं, इसका हिसाब सुनिए—

अँगरेज़ी में	६५
उर्दू में	१३५
हिन्दी में	१३३
अन्य भाषाओं में	२४

सो हिन्दी की अपेक्षा उर्दू में दो की अधिकता रही। सबसे अधिक पत्र-पत्रिकायें इलाहाबाद से निकलीं। उसके बाद लखनऊ का और लखनऊ के बाद बनारस का नम्बर रहा। ६८ पत्रादि नये निकले और २६ बन्द हो गये। जितने बन्द हुए उससे अधिक निकले, यह सन्तोष की बात है।

अपनी समालोचना में गवर्नमेंट ने कुछ बातें ऐसी लिखी हैं जिनके क़ायल बहुत कम लोग होंगे। लिखा है, हिन्दी के प्रेमी उर्दू को तो एकदम ही निकाल बाहर करना चाहते हैं, अँगरेज़ी को कुछ समय बाद। पर जहाँ तक हम जानते हैं, यह बात ठीक नहीं। हिन्दी के प्रेमी हिन्दी की प्रचार-वृद्धि मात्र चाहते हैं, उर्दू को निकाल बाहर करना नहीं। वे कहते हैं कि हिन्दी पढ़ने ही में हमारा सुभीता है और वही इस प्रान्त की प्रधान भाषा है। अतएव हमें उसी का आश्रय लेना चाहिए। जिनका सुभीता उर्दू से है वे उसे ख़ुशी से पढ़ें। हिन्दी के हितैषी उन्हें वैसा करने से न रोकते हैं और उनके मार्ग में विघ्न ही उपस्थित करते हैं। रही अँगरेज़ी, सो हिन्दीवालों ने उसका प्रचार रोकने की कभी स्वप्न में भी चेष्टा नहीं की। उन्होंने केवल यह कहा है कि कम से कम माध्यमिक शिक्षा मातृ-भाषा में दी जाय, अँगरेज़ी अन्य-भाषा के तौर पर पढ़ाई जाय। इस प्रार्थना को, किसी अंश तक, गवर्नमेंट ने स्वयमेव कार्य्य में परिणत भी कर दिया है। इस दशा में यह कहना कि हिन्दी के पक्षपाती अँगरेज़ी का समूल निष्काशन करना चाहते हैं, पूर्ण सत्य नहीं।

सरकारी समालोचक का कथन है कि मुसल्मान लेखकों ने अपने प्रति-पक्षियों के विषय में पिछले वर्ष की अपेक्षा संयमशील भाषा का प्रयोग किया। पर जब आर्य्यसमाजियों ने उन्हें क्रोध दिलाया तब उन्होंने दिखा दिया कि वे भी वैसा ही कठोर आक्रमण कर सकते हैं।

सरकारी समालोचक महाशय ने लिखा है—आर्य्यसमाजियों की समझ है कि वेदों में जो ज्ञान-विज्ञान और विद्या भरी हुई है उसकी अपेक्षा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान बहुत ही तुच्छ है। यह बात उन्होंने अपने लेखों द्वारा प्रकट की।

इतिहास लिखने वाले एक हिन्दू ने यहाँ तक कह डाला कि वर्तमान जापानी लोग उन आर्य्यों की सन्तान हैं जो भारत से जापान जाकर वहाँ बस गये थे। एक और हिन्दू-लेखक ने लिखा कि आर्य्यों के पूर्व-पुरुषों की आज्ञा से चीन, फ़ारिस और इँगलेंड के बादशाह भी भारतीय युद्ध में शामिल हुए थे। यदि सरकारी समालोचक इन हिन्दू-लेखकों के नाम भी दे देते तो बहुत अच्छा होता। मालूम नहीं ऐसी राय रखनेवाले इतिहास-वेत्ता कौन हिन्दू हैं और किस पुस्तक में उन्होंने ऐसा लिखा है।

दो तीन मुसल्मान-पत्रों ने रूस के साथ सहानुभूति दिखाई। औरों के विचार गवर्नमेंट के अनुकूल, अर्थात् राज-भक्ति-सूचक, रहे। कुछ मुसल्मान लेखकों ने रूस और इटली से अप्रसन्नता प्रकट की।

३—बङ्ग-भाषा का विशेष आदर।

गत एप्रिल के अन्त में बङ्गाल-प्राविंशल कानफ़रन्स के जलसे भवानीपुर में हुए। बाबू चित्तरञ्जनदास (मिस्टर सी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर० दास) बैरिस्टर कान्फ़रन्स के सभापति थे। दास महाशय कलकत्ते के नामी बैरिस्टर हैं। कितने ही बड़े बड़े मुक़द्दमों की पैरवी में उन्होंने बड़ी नामवरी पाई है। अँगरेज़ी भाषा पर उनका अधिकार विशेष नहीं तो उतना अवश्य है जितना मातृ-भाषा पर है। न्यायालयों में उन्हें सदा अँगरेज़ी ही में वक्तृता देनी पड़ती है। इस कारण अँगरेज़ी उन्हें हस्तामलक हो रही है। पर इस अँगरेज़ी-दाँ विख्यात बैरिस्टर की मातृ-भाषा-भक्ति देखिए। कांग्रेसों और कान्फ़रन्सों के प्रेसिडंट प्रायः अँगरेज़ी ही में अपना वक्तव्य सुनाते हैं। हाँ, कभी कभी वे अपने वक्तव्य का अनुवाद प्रान्तिक भाषा में भी प्रकाशित कर देते हैं। पर दास महाशय ने इस मर्य्यादा का उल्लंघन कर दिया। उन्होंने अपना वक्तव्य बँगला ही में लिखा और वही सुनाया। आपने उसे ऐसी सुन्दर, ऐसी भावमयी और ऐसी ओजस्विनी भाषा में लिखा कि श्रोता सुन कर मन्त्र-मुग्ध से हो गये। इस वक्तृता की प्रशंसा में बँगला और अँगरेज़ी के अनेक पत्रों और पत्रिकाओं ने कालम के कालम ख़र्च कर दिये। दासबाबू के बँगला-वक्तव्य का अनुवाद अँगरेज़ी में और लोगों को करना पड़ा। यदि महत्त्व का मालूम हुआ तो गवर्नमेंट के कर्म्मचारियों को भी उसे अँगरेज़ी का रूप देना पड़ेगा। और दृष्टि से दास बाबू की वक्तृता प्रशंसनीय हो या न हो, पर उनकी मातृ-भाषा-प्रीति सर्वथा अभिनन्दनीय है। और प्रान्तों के नेताओं को दास महाशय का अनुकरण करना चाहिए। अच्छी चीज़ की सभी क़दर करते हैं। हिन्दी में भी यदि इसी तरह की वक्तृतायें दी जायँ तो उनका भी उतना ही आदर हो जितना दास महाशय की वक्तृता का हुआ है।

४—जैन-साहित्य-सम्मेलन।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। किसी समाज की दशा से परिचित होने के लिए उसके साहित्य की ओर दृष्टिपात करना चाहिए। बिना साहित्य का परिशीलन किये मनुष्य समाज की स्थिति का यथेष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। जैन-समाज में किसी समय विद्या का ख़ूब प्रचार था। यह बात उसके प्राचीन साहित्य से अच्छी तरह ज्ञात होती है।

जैन-साहित्य का तत्त्वज्ञान, इतिहास, काव्यालङ्कार, ज्योतिष, व्याकरण, इत्यादि कोई भी विषय—साहित्य का कोई भी अङ्ग—शायद ऐसा न होगा जिसके ग्रन्थ जैन-साहित्य में न मिलें। फिर यह साहित्य बहुत प्राचीन है। इसमें संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में अनन्त ग्रन्थ हैं। इनमें से हज़ारों ग्रन्थ नष्ट हो गये। तिस पर भी न मालूम अभी कितनी ग्रन्थ-राशि अप्रकाशित पड़ी हुई है। जैन-साहित्य की ओर अब तक जैन विद्वानों का ध्यान भी कम था। पर अब सुदैव से उनकी दृष्टि इस ओर विशेष हुई है।

जैन-साहित्य-सम्मेलन इसी का फल है। इसका सर्वाधिक श्रेय जैनाचार्य्य श्रीविजयधर्म्म सूरिजी को है। आप ही के प्रयत्न और परिश्रम से इस साहित्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन ३—४—५ मार्च १९१४ ईसवी में हुआ था, जिसका वार्षिक विवरण इस समय हमारे सामने है। महा-महोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम्० ए०, पी-एच० डी, इस सम्मेलन के सभापति थे। डाक्टर हर्मन जैकोबी भी उसमें सम्मिलित हुए थे। और भी कितने ही जैनेतर विद्वानों और साहित्य-सेवियों ने पधारने की कृपा की थी। जोधपुर में यह सम्मेलन हुआ। अनेक विद्वानों की वक्तृतायें हुईं। जैन-धर्म्म के मुख्य सिद्धान्त "स्याद्वाद" की विवेचना करके सभापति महाशय ने जैन-साहित्य की उन्नति के ४ उपाय बताये—(१) एक सेन्ट्रल जैन लाइब्रेरी की स्थापना करना, (२) जैन ट्रेक्टस सोसाइटी बनाना, (३) जैन म्यूज़ियम (संग्रहालय) खोलना और (४) विश्वविद्यालयों के भिन्न भिन्न पाठ-क्रम में जैन-ग्रन्थों की नियुक्ति कराना।

साहित्य-विशारद विजयधर्म सूरिजी ने कहा कि लोग जैनों को नास्तिक कहते हैं। पर जैन नास्तिक नहीं हैं। आत्मा, पुण्य-पाप, स्वर्ग, नरक, मोक्ष इत्यादि पदार्थों को न मानने वाला नास्तिक कहाता है। पर जैन-साहित्य में इन पदार्थों का अद्वितीय विवेचन किया गया है। अतएव जैन नास्तिक नहीं।

डाक्टर हर्मन जैकोबी का भाषण भी, जैसी कि आशा थी, विद्वत्ता-पूर्ण हुआ।

जैन-साहित्य की उन्नति के लिए २० प्रस्ताव "पास" किये गये। जैन-साहित्य के संस्कृत और पाली-ग्रन्थों का उल्था देशी भाषाओं में करने का निश्चय हुआ।

सम्मेलन में १८ लेख पढ़े गये—४ अँगरेज़ी में, ६ हिन्दी में और ३ गुजराती में। अँगरेज़ी-लेख डाक्टर एफ़०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डबलू टामस, डाक्टर विन्सेन्ट ए० स्मिथ, डाक्टर एल्० पी० टेसिटोरी आदि के लिखे हुए थे।

हिन्दी-लेखों में मुनिराजजी विद्याविजय जी का लेख—"जैन-साहित्य में इतिहास के साधन" बड़े महत्त्व का है। आपने जैन-साहित्य को (१) चरणकरणानुयोग, (२) द्रव्यानुयोग, (३) गणितानुयोग और (४) कथानुयोग, इन चार अनुयोगों में विभक्त बताया। इनमें से कथानुयोग भाग पुराने इतिहास की बहुत सामग्री है। कथानुयोग के जितने ग्रन्थ हैं, प्रायः सभी में ऐतिहासिक बातें हैं। इस लेख में लेखक ने इतिहास के और भी कितने ही साधनों का उल्लेख करके ४५ ऐसी पुस्तकों का नाम दिया है जिनसे इतिहास की बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है। १४ रासों का नामनिर्देश करके आपने लिखा है कि ऐसे—"सैकड़ों रास जैन-साहित्य में मौजूद हैं"। इन रासों में भी ऐतिहासिक वृत्तान्त बहुत मिलते हैं।

सम्मेलन के इस सचित्र विवरण का दाम १) है। प्रकाशक श्रीयुत अभयचन्द भगवान् गान्धी, भावनगर, को लिखने से यह मिल सकता है। आकार बड़ा है। पृष्ठ-संख्या कोई पौने तीन सौ है। हिन्दी-लेख देवनागरी-लिपि में है।

५—श्री ज़मींदार-हितकारिणी सभा ग्वालियर।

महाराजा सेंधिया प्रजावत्सल नरेश हैं। आपके राज्य में अनेक ज़मींदार हैं। उनके हित-साधन के लिए महाराज ने ग्वालियर में ज़मींदार-हितकारिणी सभा क़ायम की है। इस सभा के द्वारा वहाँ के ज़मींदारों का कितना हित-साधन हुआ है, यह सभा के दूसरे वार्षिक विवरण से प्रकट होता है।

इस सभा का मुख्य उद्देश है—"रियासत गवालियर के ज़मींदार और काश्तकारों में ऐसे ज्ञान का प्रचार करना कि जिससे उन लोगों की जिस्मानी, इल्मी, इख़लाक़ी, माली और धार्मिक हालत को तरक़्क़ी मिले"। पूर्वोक्त प्रकार के ज्ञान-दान के लिए इस सभा की ओर से एक उपदेशक-क्लास खोला गया है। उसमें शिक्षार्थियों को आवश्यक शिक्षा दी जाती है और परीक्षोत्तीर्ण होने पर सभा उन्हें अपना वैतनिक उपदेशक बनाती है। रियासत में जगह जगह घूम कर उपदेश देना उनका काम है।

जो विवरण, अर्थात् रिपोर्ट, हमारे सामने है उसका सम्बन्ध उस वर्ष से है जो १ जुलाई, १९१५, ईसवी से आरम्भ होकर ३० जून, १९१६ ईसवी को समाप्त हुआ। उस वर्ष २२ उपदेशक और दो इन्स्पेक्टर प्रचार के काम पर तैनात थे। साल भर में सब लोगों ने मिल कर ५०२७ व्याख्यान, भिन्न भिन्न विषयों पर, रियासत के भिन्न भिन्न भागों में, दिये। फल यह हुआ कि ३०४ ज़मींदारों ने सभा का मेम्बर बनना स्वीकार किया। इस प्रबन्ध की बदौलत थोड़े ही समय में बहुत कुछ सुधार हुआ। उनमें से कुछ का उल्लेख, रिपोर्ट के शब्दों में, नीचे किया जाता है—

(१) बीज-भण्डार का क़ायम कराना।
(२) सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की कोशिश करना।
(३) पुराने कुओं को साफ़ कराना।
(४) नये कुओं का बनवाना।
(५) खाद की कुंडियों का बनवाना।
(६) बंजर ज़मीन को आबाद कराना।
(७) स्कूल क़ायम कराना।
(८) पेड़ों का लगाना।
(९) मन्दिरों की दुरुस्ती कराना।
(१०) बाग़ों का लगवाना।
(११) रामबाण लगवाना।
(१२) तालाबों के लिए मेंड़ें बनवाना।
(१३) जानवरों के लिए चारा इकट्ठा कराना।
(१४) आपसी झगड़ों को रफ़े दफ़े करना।
(१५) कच्ची पञ्चायत क़ायम कराना।

सभा की कृपा से ५२ नये स्कूल खुल गये हैं; भिन्न भिन्न गाँवों में चुने हुए अनाजों के बीजों के ४५ भण्डार क़ायम हो गये हैं; १ कोआपरेटिव बैङ्क और ४० कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटियाँ खुल गई हैं; २६ गाँवों में पञ्चायतें स्थापित हो गई हैं; ४९६ बीघा बंजर ज़मीन आबाद हो गई है। इसी तरह और भी कितने ही काम हुए हैं।

महाराज सेंधिया इस सभा को १२ हज़ार रुपये प्रति वर्ष देते हैं। इसके अतिरिक्त १२ हज़ार रुपये और भी छः वर्षों तक प्रति वर्ष देना स्वीकार किया है।

महाराजा सेंधिया का यह नया काम और राजाओं के लिए अनुकरणीय है। इससे प्रजा को बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट का लिपि-कौशल।

शाही ज़माने में फ़ारसी-लिपि के कितने ही प्रकार प्रचार में थे। विदेश से भी नामी नामी लेखक यहाँ आते और बादशाहों तथा अन्य धनवानों के लिए सुन्दर सुन्दर लिपियों में पुस्तकें लिखते थे। उनका बड़ा आदर था। अपनी लिपि की बदौलत वे ख़ूब रुपया कमाते थे। अँगरेज़ी में भी अनेक प्रकार की लिपियाँ प्रचलित हैं। पर वे सब लिखी नहीं जातीं। इनमें से अधिकांश छापने ही के काम आती हैं। जो लोग टाइप ढालने का व्यवसाय करते हैं उनके टाइपों के नमूनों की सूचियों में भिन्न भिन्न प्रकार के टाइपों की अच्छी बानगी देखने को मिलती है। देवनागरी में इस प्रकार की चित्र-विचित्र लिपियों का अभाव था। उसे मसवानपुर (ज़िला कानपुर) के पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट ने दूर कर दिया। सुन्दर और अनेक प्रकार की लिपियाँ लिखना बड़े कौशल का काम है। उसके लिए अभ्यास और परिश्रम दरकार होता है। वह एक प्रकार की कला है; उसकी सिद्धि सुनिश्चित नियमों के पालन से होती है। भट्टजी ने इस कला-कौशल में अच्छा नाम पैदा किया है। आपकी लिपि-सम्बन्धिनी पुस्तकों का परिचय बहुत पहले सरस्वती में निकल चुका है। इन पुस्तकों के सिवा आपने ड्राइङ्ग की भी कई कापियाँ तैयार की हैं। संस्कृत की अच्छी अच्छी उक्तियों की भी रङ्ग-विरङ्गी कापियाँ आपने प्रकाशित की हैं। वर्णाकृति-पत्र नामक एक छोटी सी पुस्तक में आपने अपनी लिपियों के अनेक नमूने दिये हैं। जिसे आपकी लिपि का चमत्कार देखना हो वह उस आकृतिपत्र में उसे देख सकता है। आपके भेजे हुए कुछ नमूने आज हम, इस संख्या में, अन्यत्र प्रकाशित करते हैं। साथ ही सूक्तियों के भी कुछ नमूने देते हैं। भट्टजी ने, अँगरेज़ी के ढंग पर, नाम के आद्यक्षरों के एकत्रीकरण द्वारा संक्षिप्त नाम (Monogram) लिखने की भी प्रणाली निकाली है और फ़ारसी-अरबी के नमूने के तुग़रों की भी सृष्टि आरम्भ कर दी है। इनके भी कुछ नमूने दिये जाते हैं। इन नमूनों से भट्टजी के लिपि-कौशल का बहुत कुछ ज्ञान पाठकों को हो जायगा।

७—नब्बे मील लम्बी भूगर्भ-वाहिनी नहर।

अमेरिका का न्यूयार्क नगर दुनिया के बहुत बड़े बड़े नगरों में गिना जाता है। जान पड़ता है, वह शीघ्र ही लन्दन से भी बड़ा हो जायगा। हर साल उसकी आबादी कोई डेढ़ लाख के लगभग बढ़ती है। वहाँ पानी का बड़ा ख़र्च है। इसका एक अलग ही महकमा है। हज़ारों आदमी उसमें काम करते हैं। उसके अफ़सरों को बहुत दिन से यह भय हो रहा था कि किसी न किसी दिन न्यूयार्कवालों को पानी पहुँचाना कठिन हो जायगा। इस समस्या को हल करने के लिए ६० मील की दूरी से एक नहर निकाली जा रही है। यह नहर कैट्स-किल नामक पहाड़ के दर्रों से निकले हुए मीठे पानी को न्यूयार्क पहुँचावेगी। इस नहर के बनाने में करोड़ों रुपया ख़र्च होगया और अभी न मालूम कितना और ख़र्च होगा। इस नहर का अधिकांश पृथ्वी के पेट के भीतर ही भीतर निकाला गया है। बीच में एक नदी आ गई है। उसके भी पेट के भीतर ही से नहर निकाली गई है। कई एक छोटी मोटी पहाड़ियों को भीतर ही भीतर काट कर लोहे के प्रकाण्ड नल बिठाये गये हैं। ख़ास न्यूयार्क शहर में कई मील तक भीतरही भीतर शहर पोला कर दिया गया है। ऊपर शहर बसा हुआ है, उसके सैकड़ों फुट नीचे डिनामाइट बारूद से पथरीली ज़मीन उड़ा कर नहर की खुदाई होती है। पर ऊपर आदमियों को इसकी ज़रा भी ख़बर नहीं होती। यह नहर शायद अब तक तैयार हो गई होगी। संसार में यह एक अद्भुत चीज़ होगी।

पुस्तक-परिचय।

१—स्वराज्य—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २+१०+८+२१६, काग़ज़ और छपाई साधारण, मूल्य सवा रुपया, लेखक—प्रो० बालकृष्ण, एम० ए०, गुरुकुल-काँगड़ी, हरद्वार। हिन्दी में यह पुस्तक अपने विषय की पहली ही है। ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। इस समय इस देश में "स्वराज्य" का नाद प्रायः सभी शिक्षित जनों के समुदाय से समुत्थित हो रहा है। पर इस "स्वराज्य" का क्या अर्थ है और कौन कौन देश इससे कितना लाभ उठा रहे हैं, यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है। इस दशा में लेखक महाशय ने, हिन्दी में, इस पुस्तक की रचना करके बड़ा काम किया। इसकी बदौलत अब हिन्दी पढ़नेवाले अनन्त मनुष्य स्वराज्य का तत्त्व समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँगे । इँगलेंड, फ़्रांस, जापान, अमेरिका, स्विज़रलेंड, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी आदि में किस तरह का स्वराज्य है, किस प्रकार का मन्त्रि-मण्डल है, कोई राजा है या नहीं, जहाँ राजा है वहाँ उसके तथा प्रजा के क्या अधिकार हैं, ऐसी ही ऐसी स्वराज्य-सम्बन्धिनी अनेक बातों का विवेचन इसमें किया गया है । आरम्भ में पारिभाषिक शब्दों की एक सूची है, जो बड़े उपयोग की है । स्वराज्य के ज्ञान की वर्द्धक इस समयोचित पुस्तक को पढ़ना हिन्दी-ज्ञाता प्रत्येक देशभक्त का काम है । भाषा संशोधन-योग्य है ।

❋

२—फ़्रांस की राज्यक्रान्ति का इतिहास— आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २२८, छपाई और काग़ज़ साधारण, मूल्य १५ आने, प्रकाशक—दीक्षित और द्विवेदी, दारागंज, इलाहाबाद । विनायक कोंडदेव ओक मराठी के नामी लेखक थे । उनको मरे अभी कुछ ही वर्ष हुए । उन्हीं की लिखी हुई एक मराठी पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है । अनुवाद किया है बाबू प्यारेलाल गुप्त ने । फ़्रांस की राज्यक्रान्ति पर फ़्रेंच भाषा में पुस्तकों का तो कहना ही क्या है, अँगरेज़ी भाषा में भी अनेक पुस्तकें हैं । उनमें से कुछ बड़ी बड़ी हैं और प्रसिद्ध लेखकों की लिखी हुई हैं । ओक महाशय ने मूल पुस्तक की रचना इन्हीं अँगरेज़ी-ग्रन्थों के आधार पर की है । मराठी पुस्तक की भाषा और लेख-शैली बहुत ही अच्छी है । अनुवाद की भी बुरी नहीं । पुस्तक का विषय इतिहास है । पर लिखने का ढंग बहुत सरस है । इससे पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है । इस पुस्तक के पाठ से मनोरञ्जन के सिवा ऐतिहासिक घटनाओं के ज्ञान के साथ ही साथ राजनैतिक बातों के ज्ञान की भी वृद्धि होती है । बड़ी अच्छी पुस्तक है । इसे एक बार ज़रूर पढ़ना चाहिए ।

❋

३—प्राचीन जैन-इतिहास, प्रथम भाग— आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १५०, छपाई और काग़ज़ अच्छा, मूल्य १२ आने, लेखक—बाबू सूरजमल्ल जैन, मल्हारगंज, इन्दोर, से प्राप्य । पृथ्वी-आकाश, लोक-परलोक, भूगोल-भारतवर्ष तथा जैनों के तीर्थङ्करों के विषय में जैन-साहित्य में जो कुछ लिखा गया है उसी का संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तक में है । मालूम नहीं, लेखक महाशय "इतिहास" शब्द का क्या अर्थ समझते हैं । वेदादि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों ने भारतवर्षवासी आर्य्यों और अनार्य्यों आदि के विषय में जो कुछ लिखा है उसे तो आप "सिद्ध नहीं" समझते । पर करोड़ों वर्ष पहले के सन्मति और क्षेमङ्कर आदि कुलकर्त्ताओं की स्थिति और उनके मनुष्यातिग कार्य्यों को वे शायद सिद्ध और पूर्णतः सच समझते हैं, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे इन सब बातों को अपने इतिहास में स्थान ही क्यों देते । तीसरे तीर्थङ्कर भगवान् सम्भवनाथ की सभा में लेखक महाशय ३ लाख श्रावकों और ५ लाख श्राविकाओं का होना बताते हैं । उनके विषय में आप यह भी कहते हैं कि उन्होंने—"चौदह वर्ष एक मास कम एक लाख पूर्व समय तक विहार कर प्राणीमात्र को उपदेश दिया" । यदि यह सब इतिहास ही की सीमा के भीतर है तो ऐसे इतिहास से केवल भावुक जैनियों का मनोरञ्जन हो सकेगा, औरों का नहीं । भाषा इस पुस्तक की जगह जगह पर सदोष है ।

❋

४—पैसा— इस पुस्तक में ६१ पृष्ठ हैं । आकार इसका मध्यम है । मूल्य है ६ आने । इसे शारदा-सम्पादक, पण्डित चन्द्रशेखर शर्म्मा ने लिखा है । प्रकाशक इसके—बाबू कृष्णप्रसादसिंह चौधरी, मैनेजर "पाटलिपुत्र", मुराद-पुर, बाँकीपुर, हैं । पुस्तक अर्थशास्त्र या सम्पत्तिशास्त्र से सम्बन्ध रखती है । वह चार अध्यायों में विभक्त है । धन क्या चीज़ है, वह किस तरह पैदा होता है, सिक्का किसे कहते हैं, मूल्य की घटती-बढ़ती के क्या कारण हैं, कर किस लिए लगाया जाता है, राज-कर लगाने का क्या उद्देश होता है—ऐसी ही ऐसी अनेक बातों का विवेचन इसमें है । इससे सम्पत्तिशास्त्र-सम्बन्धी अनेक तत्त्व ज्ञात हो सकते हैं । पुस्तक बड़े काम की है, इसमें सन्देह नहीं ।

❋

५—सिद्धि— आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १४८, मूल्य आठ आने, लेखक—ओझा चन्द्रशेखर शर्म्मा, प्रकाशक—बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद । इसमें—"अभ्युदय की ओर लगाने वाले, भूलों से होने वाली हानियों से बचाने वाले, नैतिक-मानसिक-शारीरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति के महत्त्व बतलाने वाले विचार''—हैं, कार्य्यशक्ति, उद्योगशीलता, सच्चरित्रता, मितव्यय, अपव्यय, विश्वसनीयता, व्यवहार आदि विषयों पर इसमें १३ निबन्ध हैं। भाषा सुन्दर और छपाई अच्छी है। पुस्तक की बातें प्रशंसनीय और अनुकरण-योग्य हैं। चरित्रगठन के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी ज़रूरत है।

❋

६—राष्ट्रीय वाणी—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २६, मूल्य ४ आने, छपाई और काग़ज़ साधारण, लेखक—श्रीयुत दयाशङ्कर शुक्ल, प्रकाशक—लोकसंग्रह-पुस्तकमाला-कार्यालय, बिन्दकी, फ़तेहपुर। इसके सम्पादक की राय है—''राष्ट्रीय शिक्षा, देश-प्रेम, स्वावलम्बन, आत्मोन्नति, स्वत्वाधिकार, अपनाने का भाव प्रत्येक भारतीय के हृदय में जागृत हो जाना चाहिए''। इसी लिए लोक-संग्रह-पुस्तक-माला का निकालना आरम्भ किया गया है। उसका यह ''प्रथम रत्न'' है। इसमें विशेष करके देश-प्रेम के उद्बोधक पद्य हैं। ग़ज़लों, लावनियों और अन्यान्य राग-रागिनियों में लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। उद्देश और कार्य्य स्तुत्य है। पद्य-रचना कहीं कहीं चिन्त्य है।

❋

७—जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य ८ आने, छपाई और काग़ज़ अच्छा, मिलने का पता—हिन्दी-गौरव-ग्रन्थ-माला, चन्दाबाड़ी, गिरगाँव, बम्बई। जेम्स एलन नाम के एक विद्वान् ने अँगरेज़ी में एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम है—Light on Life's Difficulties. यह पुस्तक उसी का अनुवाद है। अनुवादक हैं—श्रीयुक्त खूबचन्द सोधिया, बी० ए०, एल० टी०। पुस्तक में सदसद्विचार, आत्मत्याग, मनोविकार, स्वभाव, विवेक, जीवन के दुःख आदि विषयों का विवेचन है। बड़ी अच्छी पुस्तक है; मनन-योग्य है। भाषा में अलबत्ते कहीं कहीं त्रुटियाँ हैं। मूल पुस्तक के नाम का शाब्दिक अनुवाद कान को खटकता है। अँगरेज़ी मुहाविरों का अनुवाद हिन्दी में कभी कभी ठीक नहीं उतरता। ऐसे अवसरों में हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल शब्द-स्थापना करनी चाहिए। संस्कृत न जानने के कारण हम लोगों को ऐसी ऐसी पुस्तकें लिखने के लिए विदेशियों का आश्रय लेना पड़ता है। यदि संस्कृत का प्रचार इस देश में अधिक होता तो इस तरह की अनेक पुस्तकें लिखने के लिए संस्कृत-साहित्य से सामग्री प्राप्त हो सकती।

❋

८—पितृयज्ञ की संहति—आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ५२, मूल्य ४ आने, लेखक—लाला हरद्वारीमल चोखानी, ४०२ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता, उन्हीं को लिखने से प्राप्य। लेखक महाशय आर्य्यसमाज के अनुयायी हैं। पर आप पितृयज्ञ अर्थात् श्राद्ध की आवश्यकता के क़ायल हैं। श्रुतियों और स्मृतियों से भी उसे वे सिद्ध समझते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती के भी अनेक वचन उद्धृत करके उन्होंने श्राद्ध की सिद्धि कर दिखाई है। और भी कई आर्य्य-सामाजिक सज्जनों के वाक्यों के अवतरण देकर उन्होंने अपने उद्देश की पुष्टि की है। अन्य प्रमाणों से भी आपने अपने कथन को स्पष्ट किया है। आप सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के पूरे पक्षपाती हैं। इसीसे आपने ऐसी पुस्तक लिखने का साहस किया है। आपने लिखा है—''जो महाशय पुस्तक छपने की तारीख़ से ६ महीने तक इसका यथावत् उत्तर छापेंगे उनको पुरस्कार या भेंट रूप में १००) एक सौ रुपये प्रदान किये जायँगे''—सत्य के ऐसे धनी का भगवान् भला करे!

❋

९—माणिकजी की पुस्तकें—काशी के बाबू हरिदास माणिक ने अपनी लिखी हुई चार पुस्तकें प्रदान करने की कृपा की है। पहली पुस्तक है—**भारत की प्राचीन झलक, भाग पहला**—इसका आकार मँझोला और पृष्ठ-संख्या १४० है। दूसरी पुस्तक है—**भारत की प्राचीन झलक, भाग चौथा**—इसका भी आकार और मूल्य वही है। पृष्ठ इसमें १३२ हैं। छपाई दोनों की साफ़ सुन्दर और काग़ज़ साधारण है। भाषा मज़े की है। इन दोनों पुस्तकों में आर्य्यों के आत्मोत्सर्ग का वर्णन है। अनेक ऐतिहासिक घटनाओं, युद्धों और प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के रोचक और शिक्षाप्रद वर्णन हैं। काशी के हरिश्चन्द्र-स्कूल के हेड-मास्टर पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०, ने इस पुस्तक के चौथे भाग की प्रस्तावना लिखी है। उसमें आप लिखते हैं—''बाबू हरिदासजी माणिक ने भारत की प्राचीन झलक लिख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

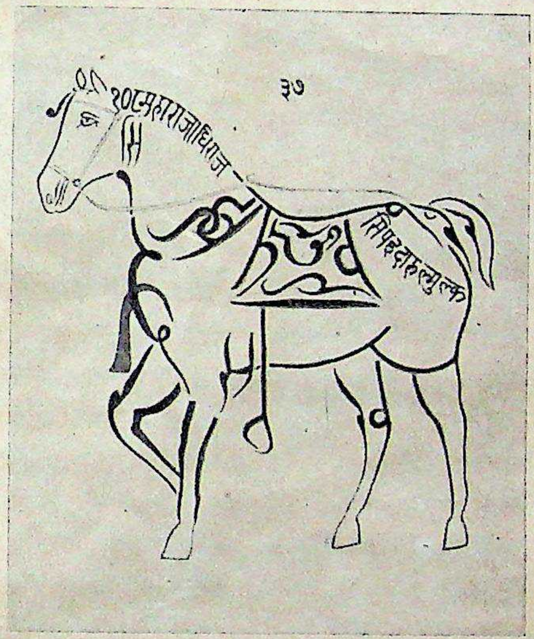

महाराजा चरखारी के नाम का तुग़रा।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्य

भारती
माणिक
खोज,
भारती
जा सक
सकता
इसका
काग़ज़
राना
घाटी क
मनोवेध
भारत
छपाई
इच्छनी
हैं, जो
कार्याल

१

मूल्य ४
सुखानन
श्रुतियों,
आदि से
भाग में
का यह

१

इसमें ४
मूल्य ३
जोधपुर
दिल्ली ज
लिखी थ
अनुवाद
मनुष्यों,
है। बड़ी
सौ वर्ष
की रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय इतिहास को रोचक बना दिया है। + + + + माणिकजी ने सच्चे इतिहासवेत्ता का काम किया है। उनकी खोज, उनकी लेखन-शैली, उनके उदाहरण सिद्ध करते कि हैं भारतीय इतिहास उच्च कोटि की शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है।" इससे बढ़ कर सार्टिफ़िकट और क्या हो सकता है? तीसरी पुस्तक है—**राजपूतों की बहादुरी**—इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १८४, टाइप बड़ा, काग़ज़ मोटा, मूल्य १२ आने है। इसमें हरदौल बुँदेला, राना संग्रामसिंह और बाबर, वीरनारी ताराबाई, हल्दी-घाटी की लड़ाई आदि ८ ऐतिहासिक लेख हैं। लेख सभी मनोवेधक और शिक्षा-जनक हैं। चौथी पुस्तक का नाम है—**भारत की क्षत्राणी**—इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ४७, छपाई और काग़ज़ साधारण और मूल्य ६ आने है। अम्बा, इच्छनीकुमारी, विदुला और सीता पर इसमें ४ निबन्ध हैं, जो सभी के पढ़ने लायक़ हैं। ये चारों पुस्तकें—माणिक-कार्य्यालय, काशी, को लिखने से मिलती हैं।

❋

१०—जीवरक्षा-दर्पण—आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ७६, मूल्य ४ आने, संग्रहकार—लाला पारसदास ख़ज़ांची, कूँचा सुखानन्द, देहली। इसमें २ भाग हैं। पहले भाग में श्रुतियों, स्मृतियों, दर्शनों, पुराणों, काव्यों और जैन-ग्रन्थों आदि से हिंसा-निषेध-सूचक संस्कृत-वचन उद्धृत हैं। दूसरे भाग में उन्हीं वचनों का भावार्थ हिन्दी में है। अपने विषय का यह अच्छा संग्रह है।

❋

११—हिन्दुस्तान का हाल—इसका आकार बड़ा है। इसमें ४० पृष्ठ हैं। टाइटिल पेज नहीं। छपी लीथो में है। मूल्य ३ आने है। मुंशी देवीप्रसादजी ने इसकी एक कापी जोधपुर से भेजी है। उन्हीं को लिखने से यह मिलती है। दिल्ली जीतने के बाद बाबर बादशाह ने एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी। मुंशीजी का किया हुआ यह उसी का हिन्दी-अनुवाद है। इसमें हिन्दुस्तान के फलों, फूलों, फ़सलों, मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, नदियों, पहाड़ों आदि का वर्णन है। बड़ी मनोरञ्जक पुस्तक है। इसमें हिन्दुस्तान की चार सौ वर्ष की पुरानी बातें हैं। उनमें भ्रम है, पर इससे पुस्तक की उपयोगिता कम नहीं होती। एक विदेशी बादशाह की लिखी हुई बातें विशेषता भी रखती हैं। अतएव पुस्तक एक बार पढ़ जाने योग्य है।

❋

१२—हरिभजन—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १२४, मूल्य ४ आने, लेखक—गुरुनारायण, एम० ई०, शोरा-वाल, इटावा—से प्राप्य। इसमें कुरीति निवारण, स्त्रीशिक्षा, संस्कार-महिमा, वेद-प्रचार, शराब पीने से हानि, विधवा-विलाप इत्यादि सामाजिक और अन्य कितने ही धार्मिक विषयों पर गाने लायक़ चीज़ें लिखी गई हैं। इसके सिवा देश-भक्ति और ईश्वर-भक्ति पर भी "भजन" हैं। छपाई, काग़ज़ और कविता साधारण है।

❋

१३—लोक-परलोक-हितकारी का शेष अंश—इस जिल्दबँधी हुई पुस्तक में ८० पृष्ठ हैं। आकार बड़ा है। टाइप बड़ा और साफ़ है। मूल्य ८ आने है। बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, से मिलती है। श्रीयुत बालेश्वरप्रसादजी की कृपा से इसकी एक कापी हमें प्राप्त हुई है। इस नाम की मूल-पुस्तक की आलोचना मई १९१६ की सरस्वती में निकल चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का अवशिष्ट अंश है। इसमें भी—"प्रसिद्ध स्वदेशी और विदेशी सन्तों, महात्माओं विद्वानों और ग्रन्थों के चुने हुए वचन हैं।" वचनों का सम्बन्ध लोक और परलोक दोनों से है। इसका एक एक वचन एक एक रत्न है। प्रत्येक वचन से शिक्षा मिलती है। भाषा इतनी सरल है कि कहते नहीं बनता। शायद ही और कोई इतनी सीधी सादी भाषा लिख सके। ऐसी पुस्तकों से आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी लाभ उठा सकते हैं।

❋

१४—मनुष्य-जीवन के कर्त्तव्य—इस ६४ सफ़े की पुस्तक की रचना जैन-प्रभात के सम्पादक बाबू सूरजमल जैन ने की है। मल्हारगंज, इन्दौर, के पते पर आप ही को लिखने से यह मिलती है। मूल्य ४ आने है। सच्चरित्रता, स्वच्छता, उदारता, उद्योगशीलता, स्वावलम्बन आदि १६ विषयों पर इसमें छोटे छोटे निबन्ध हैं। विचार उपदेश-जनक हैं। भाषा कहीं कहीं खटकती है।

❋

१५—भजन-तरङ्ग, प्रथम भाग—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १२६, काग़ज़ और छपाई साधारण, मूल्य ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने, लेखक—पण्डित चतुर्धरी रूपसिंह त्रिपाठी, आपका पता—बकेवर, ज़िला इटावा। इसका दूसरा नाम है ज्ञान-गङ्गा। इसमें—"भगवत्-प्रेम-रसपूरित अति सरल वाणी में सहज गाने के नारदी ध्वनि के भजन, ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल, कव्वाली और समाजी ध्वनि आदि के भजन भगवद्भागवताऽनुरागियों के आनन्दार्थ निर्मित हैं।"

❊

१६—अनुवाद-प्रभा—साधारण छपी हुई इस ८४ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ६ आने है। झङ्ग-निवासी पण्डित गौरीशङ्कर शर्म्मा ने इसकी रचना की है। आप हिन्दू-हाई-स्कूल, झङ्ग, में संस्कृताध्यापक हैं। यह पुस्तक आपको लिखने से भी मिल सकती है। संस्कृत पढ़नेवाले छोटे छोटे लड़कों को अनुवाद करना सिखाने के लिए यह लिखी गई है। व्याकरण के स्थूल नियम आदि इसमें नये ढंग से बताये गये हैं, अभ्यास के लिए अनुवाद-पाठ भी दिये गये हैं और आवश्यक बातें हिन्दी में अच्छी तरह समझा दी गई हैं। पुस्तक अपने उद्देश की सिद्धि की साधक है।

❊

१७—प्रलाप-पदावली—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ३२, छपाई और काग़ज़ साधारण, मूल्य ३ आने, लेखक—कवि पण्डित सुन्दरलालजी शर्म्मा त्रिवेदी, प्रकाशक—श्रीनीलमणि शर्म्मा, ज़मींदार, चन्द्रसूर, डाकघर राजिम, ज़िला रायपुर। लेखक महाशय के फुटकर पदों का यह संग्रह है। इसमें भक्ति-रस के ४८ भजन या पद हैं, जो भगवान् के भक्तों के पढ़ने लायक़ हैं।

❊

१८—मूल-रामरस—इस ३२ पृष्ठों की छोटी सी पुस्तक की पद्य-रचना पण्डित अवधेशसुन्दर द्विवेदी ने की है। भोजपुर (ज़िला रायबरेली) के अफ़सर मुदर्रिस मुंशी रघुवरदयाल श्रीवास्तव इसके प्रकाशक हैं। इसमें रामायण की संक्षिप्त कथा दोहा, चौपाई, सोरठा और हरिगीतिका में वर्णन की गई है। अन्त में चार पद (भजन) भी हैं। प्रकाशक से मिलती है। पता—रायपुर मझगवाँ, डाकख़ाना छूलहा, रायबरेली।

❊

१९—खाद और खेत। यह छोटी सी ३२ सफ़े की पुस्तक काश्तकारों के बड़े काम की है। कानपुर में खेती की विद्या सिखाने के लिए जो कालेज है उसमें लाला हरनारायण, एम० ए०, प्रोफ़ेसर हैं। उन्होंने इस पुस्तक को बड़ी सरल हिन्दी में लिखा है। इसमें खेत की ज़मीन और खाद के विषय में विज्ञानमूलक और अनुभवसिद्ध बातें हैं। जिनके यहाँ खेती होती है उनको यह पुस्तक लेकर तदनुसार व्यवहार करना चाहिए। जो खेती नहीं करते उनको चाहिए कि इस पुस्तक की बातें अपने पास पड़ोस के अपढ़ किसानों को समझावें। पूसा से जो कृषि-विषयक पुस्तकें अँगरेज़ी में निकलती हैं उनकी अपेक्षा इस प्रकार हिन्दी में लिखी गई पुस्तकों से ही किसान अधिक लाभ उठा सकते हैं। मूल्य डेढ़ आना। प्राप्ति-स्थान—मरचेंट प्रेस, रेलगंज, कानपुर।

❊

२०—देश-भक्ति से दोनों लोक—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ३०, मूल्य डेढ़ आना, लेखक—श्रीयुत बद्रीसाह, प्लीडर, अल्मोड़ा, से प्राप्य। यह पुस्तक है तो छोटी, पर सुविचार-पूर्ण है। लेखक का कहना है कि हमारी—"सब विपत्तियों का मूल कारण है हमारी स्वार्थ-परता।" हमें देश-भक्त बनना चाहिए। देश-भक्ति जागृत होने से दुखी देश सुखी हो सकता है। इससे मनुष्य के लोक और परलोक दोनों बनते हैं—"पहले छोटे-मोटे स्वार्थ से मन को हटा कर देशोपकार में लगाना चाहिए, फिर देशोपकार से मन को लोकोपकार में ले जाना चाहिए, तदनन्तर लोक से उसको हटा कर सच्चिदानन्द-रूप के ध्यान में ले जाना चाहिए।"

❊

२१—जगत्-जननी—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ८२, मूल्य ५ आने, सम्पादक—पण्डित मुनीलाल शर्म्मा, मिलने का पता—बाबू कपूरचन्द, बुकसेलर, फुलट्टी बाज़ार, आगरा। इस पुस्तक में पहले सामाजिक—विशेष करके स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाले—दोषों का वर्णन है। फिर भारतवर्ष की प्राचीन सामाजिक स्थिति का शास्त्रोक्त विवेचन है। तदनन्तर लेखक की प्रार्थना है—

"कि शास्त्रोक्त आज्ञाओं के प्रचार में कटिबद्ध हो जाओ। इस देश का नाम आर्य्यावर्त्त को सार्थक कर दो। पूर्वजों के कलङ्क को छुड़ा दो और ब्रह्मचर्य्य आदि गुणों को धारण करो।"

भाषा कहीं कहीं चिन्त्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२—लाला कन्नोमलजी, एम० ए०, की दो पुस्तकें—पहली पुस्तक अँगरेज़ी में है। इसमें २४ पृष्ठ हैं। मूल्य है ४ आने। नाम है—Lord Krishna's Message (अर्थात् श्रीकृष्ण का सन्देश) इसमें भगवद्गीता का आशय थोड़े में समझाया गया है। जगदुत्पत्ति, आत्मा, परमात्मा, आत्म-परमात्म-सम्बन्ध और मोक्ष का निरूपण करके मुक्ति के उपाय बताये गये हैं। ये उपाय कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, संन्यासयोग, भक्तियोग हैं। इस संक्षिप्त विवेचन से गीता का स्थूल आशय समझने में बड़ी सहायता मिलती है। जो अँगरेज़ीदाँ मूल-गीता नहीं पढ़ सकते वे इसे पढ़ कर गीता-गत ज्ञान की गरिमा का आभास प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी पुस्तक का नाम है—साहित्य-सङ्गीत-निरूपण। इसकी पृष्ठ-संख्या सवा सौ के ऊपर और मूल्य १० आने है। इसमें पहले तो भारतीय-सङ्गीत-कला का संक्षिप्त विवरण है; फिर रस, भाव और नायिका-भेद आदि का। इन्हीं रसादिक की समष्टि, लेखक महाशय की सम्मति में, साहित्य है। इसके अनन्तर राग-माला—नामक किसी अप्रकाशित संस्कृत-पुस्तक से राग-रागिनियों के लक्ष्य और लक्षण हैं। संस्कृत-मूल के नीचे उसका हिन्दी-भावार्थ है। उदाहरण सूरसागर से उद्धृत किये गये हैं। इस पुस्तक में एक विशेषता है। इसमें यह बताया गया है कि किस राग या रागिनी में कौन नायक या कौन नायिका है तथा कौन राग या रागिनी किस रस या भाव के अनुकूल है। यह नई बात है। यही नवीनता इस पुस्तक का जीवन-सर्वस्व है। पुस्तकान्त में राग-रागिणी और रस-भावादि के निदर्शक चक्र या नक़शे हैं। पुस्तक सङ्गीत और काव्य के प्रेमियों के देखने योग्य है। दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—आत्मानन्द-जैन-पुस्तक-प्रचारक मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा।

२३—मुखाकृति-विज्ञान—आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या २०६, काग़ज़ मोटा और चिकना, टाइप बड़ा, सुन्दर और सुदृढ़ जिल्द से युक्त, अनेक चित्रों से अलङ्कृत, अतएव मूल्य ४ रुपये। जर्मनी के लेपज़िक नामक नगर में लुई कूने नाम के एक विलक्षण पुरुष थे। उन्होंने जल-चिकित्सा के द्वारा रोग-शान्ति का एक नया उपाय निकाला। इसमें उन्हें बहुत सफलता हुई। अनेक साध्य, असाध्य और कष्टसाध्य रोगों से पीड़ित रोगियों को उन्होंने चङ्गा कर दिया। इस चिकित्सा के विषय में उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी। उसमें उन्होंने अपनी आविष्कृत चिकित्सा के तत्त्व आदि समझाये और सर्वत्र प्रचलित ऐलोपैथी नाम की चिकित्सा के दोषों का भी उल्लेख किया। कूने की चिकित्सा की उन्नति देख कर डाक्टर लोग यों ही उनसे अप्रसन्न थे। उनकी पुस्तक में अपनी चिकित्सा-प्रणाली की निन्दा पढ़ कर वे और भी क्षुब्ध हो गये। फल यह हुआ कि कूने पर उन्होंने मुक़द्दमा चलाया। उन पर यह इलज़ाम लगाया गया कि यह मनुष्य चिकित्सा-विज्ञान में बिलकुल ही कोरा है। जिसे यह अपनी आविष्कृत चिकित्सा-प्रणाली बताता है उसमें कुछ भी सार नहीं। उससे रोगियों के प्राण जाने का डर रहता है। इस मुक़द्दमे में पहले तो कूने साहब हारे, पर वरिष्ठ न्यायालय ने उन्हीं के पक्ष में फ़ैसला किया। कूने ने अपनी चिकित्सा की विज्ञान-मूलकता और उपादेयता सप्रमाण सिद्ध कर दी। तब से वे निष्कण्टक होकर इस चिकित्सा के द्वारा सैकड़ों हज़ारों रोगियों का हित-साधन करने लगे। उनके कारख़ाने की बड़ी बढ़ती हुई। उनकी पुस्तक के अनेक संस्करण हुए; अनेक भाषाओं में उसके अनुवाद भी हुए। इन कूने साहब को मरे कई साल हो चुके। एक महाशय जर्मनी में इनका कारख़ाना देखने गये थे। उनसे मालूम हुआ कि वह अब पहले के सदृश उन्नतावस्था में नहीं। अब उसकी देख-भाल कूने साहब की विधवा और उसके कर्मचारी करते हैं।

मुरादाबाद के वकील श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप, बी० ए०, कूने साहब की जल-चिकित्सा के बड़े प्रेमी और प्रशंसक हैं। आपने उनकी पूर्वोल्लिखित पुस्तक का अनुवाद भी हिन्दी-उर्दू में कर डाला है। हिन्दी-अनुवाद का नाम है—आरोग्यता (?) प्राप्त करने की नवीन विद्या। उसकी आलोचना सरस्वती में हो चुकी है।

प्रस्तुत पुस्तक कूने साहब के एक और ग्रन्थ का अनुवाद है। जर्मन-भाषा में लिखे गये उनके उस ग्रन्थ का अनुवाद किसी ने अँगरेज़ी में किया। उसका अनुवाद श्रोत्रियजी ने उर्दू में किया। उस उर्दू-अनुवाद को पण्डित ज्वालाप्रसाद शर्म्मा ने हिन्दी का रूप दिया। इस प्रकार यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२९१७

मुखाकृति-विज्ञान हिन्दी में तैयार हुआ है। इसका अँगरेज़ी नाम है—Science of Facial Expression. इसमें पहले तो कूने साहब की चिकित्सा का सारांश है। फिर इस बात की पहचान लिखी गई है कि रोगी कौन है और नीरोग कौन। इस पहचान का विशेष सम्बन्ध चेहरे से है। इसी लिए इस पुस्तक का तदनुकूल नामकरण हुआ है। पुस्तक में रोगियों और रोगरहितों के अनेक चित्र देकर यह बताया गया है कि ऐसा शरीर या ऐसा चेहरा हो तो समझना चाहिए कि मनुष्य रोगी है और ऐसा हो तो नीरोग। रोग-ह्रास-सम्बन्धी चित्र भी दिये गये हैं।

कूने साहब की चिकित्सा का तत्त्व जो लोग जानना चाहते हैं अथवा जो इनकी चिकित्सा से लाभ उठाना चाहते हैं उन्हें यह पुस्तक अवश्य लेनी चाहिए। इसकी भाषा यदि कुछ अधिक सरल होती तो अच्छा था। पूर्वोक्त वकील साहब ही ने इसे प्रकाशित किया है और वही इसे बेचते हैं।

❋

नीचे जिन पुस्तकों के नाम आदि दिये जाते हैं वे भी मिल गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) कायस्थ बेवा व मुहताज असोसिएशन, हिन्द, मुक़ाम लश्कर, गवालियर की सत्रहवीं सालाना रिपोर्ट, सन् १९१६ की—प्रकाशक, मुंशी कामताप्रसाद साहिब, गवालियर।

(२) Holy Maxims of Lord Mahavira—Published by the Secretary, The Vradhichandrajee Jain Sabha, Bhavanagar.

(३) सनातन-धर्म्म-महासम्मेलन (मथुरा) का द्वितीय वार्षिक कार्य्य-विवरण—सम्पादक, श्रीहरिहरसुरूप शर्म्मा, संयुक्त मन्त्री।

(४) पण्डित जगतनारायणजी का जीवनचरित—प्रकाशक, पं० नटवरलाल चतुर्वेदी, मथुरा।

(५) जैन इतिहास, अङ्क २—लेखक, पं० हीरालाल शर्म्मा, अमृतसर।

(६) वेद-मीमांसा—लेखक, पं० पुत्तूलाल जैन, इटावा।

(७) वीर-बालक } लेखक, पण्डित वासुदेव शर्म्मा,
(८) बाल-वीरता } मण्डावर, बिजनौर।

(९) भाषा-सुधार—लेखक, बाबू भगवानप्रसाद, बनारस।

चित्र-परिचय।

"आस असाढ़"

इस संख्या का "आस असाढ़" नामक रङ्गीन चित्र टेहरी-दरबार के चित्रकार सौदागर की चित्रकला का निदर्शक है। यह चित्रकार परलोकवासी महाराजा प्रतापशाह बहादुर के समय—१८७७-८४—में विद्यमान था। वन में गोचारण करते समय, आषाढ़ के महीने में, एक दिन अकस्मात् घन-घटा घिर आई और पानी पड़ने लगा। श्रीकृष्ण एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये। इतने में, सौभाग्यवश, राधिका भी भीगती हुई उसी वृक्ष के नीचे पहुँचीं। वृष्टि से रक्षा करने के लिए कृष्ण ने उन पर अपनी कामली का अर्द्धांश डाल दिया। इस चित्र में यही घटना चित्रित है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखिए !

अलबेरूनी का भारत।

(पहला भाग)

महमूद गज़नवी के ज़माने में अलबेरूनी नाम के एक विद्वान् मुसलमान ने भारत में आकर यहाँ का अपनी आँखों देखा हाल लिखा है। इस विद्वान् ने संस्कृत पढ़ कर हम लोगों के धर्मशास्त्र का भी खूब अध्ययन किया था। संसार के इतिहास में यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। भारत की उस समय क्या दशा थी इसका सच्चा और मनोरञ्जक वृत्तान्त जानना हो तो इसे अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल १।) अनुवादक हैं श्रीयुत सन्तराम बी० ए०।

रामलाल

(पं० मन्नन द्विवेदी बी० ए० रचित)

यह उपन्यास मौलिक है और बड़ा मनोरंजक है। इसमें हमारे अधःपतन और सामाजिक कुरीतियों का बड़ा ही हृदयग्राही चित्र खींचा गया है। देश-प्रेम और जाति-सेवा का उपदेश भी इससे खूब मिलता है। पुस्तक एक बार प्रारम्भ करने से बिना पूरा पढ़े कल नहीं पड़ती। हर्ष की बात है कि हिन्दी में भी ऐसे ऐसे मौलिक उपन्यास लिखे जाने लगे। पृष्ठ-संख्या–२२८। मूल्य केवल ॥।=)

मेघदूत

यह भी द्विवेदी जी महाराज की ही लेखनी का चमत्कार है। कालिदास की प्रसिद्ध पुस्तक 'मेघदूत' का रसास्वादन करना अभीष्ट हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल ।–)

अवश्य लीजिए !!

कुमारसम्भव

जिन सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी के ग्रन्थ पढ़ने के लिए लोग चातक की तरह दृष्टि लगाये रहते हैं, जिन्होंने स्वाधीनता, रघुवंश, महाभारत, सम्पत्तिशास्त्र आदि ग्रन्थ लिखे हैं उन्हीं की रचना यह भी है। यदि जगत्प्रसिद्ध कालिदास की लेखनी का रसास्वादन करना हो, यदि बिना ही संस्कृत पढ़े काव्यानन्द लूटना हो तो इसे अवश्य लीजिए। मूल्य केवल ॥।)

अकबर

ऐसा कौन भारतवासी है जिसने प्रसिद्ध मुग़ल-सम्राट् अकबर के बारे में न सुना हो? यह उसी अकबर का विस्तृत जीवन-वृत्तान्त है। इसके पढ़ने पर आपको अकबर के बारे में सैकड़ों नई बातें मालूम होंगी। पण्डित चन्द्रमौलि जी सुकुल एम० ए० ने बड़ी खोज के साथ इस पुस्तक को लिखा है। इसे अकबर का पूरा इतिहास कहना चाहिए। मूल्य केवल ॥।) है।

पतिव्रता गान्धारी।

गान्धारी का नाम कौन नहीं जानता? यह वही धृतराष्ट्र की पतिपरायणा सती साध्वी स्त्री थी जिसने पति के अन्धा होने के कारण अपनी आँखों पर आपही पट्टी बाँध ली थी। यह दुर्योधन आदि सौ कौरवों की माता थी। इसका उज्ज्वल चरित्र बड़ी मनोहर तथा सरल भाषा में बिलकुल नये ढङ्ग से लिखा गया है। पुस्तक ऐसी मनोहर है कि एक बार प्रारम्भ करके फिर छोड़ने को जी नहीं चाहता। इस के पढ़ने से महाभारत की पूरी कथा मालूम हो जाती है। इसके लेखक हैं पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी। मूल्य केवल ॥।) है।

पुस्तक मिलने का पता—**मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी गरमी पड़ती है !

शरबत के साथ

असली गुलाब-जल और केवड़ा-जल पीने से ही आत्मा को शान्ति मिलती है, चित्त प्रफुल्लित रहता है, काम में मन खूब लगता है और हरारत पास नहीं फटकती।

विलायती गुणहीन तथा हानिकारक

ऐसेन्स और सेकरीन से बने हुए चमकीले भड़कीले बाज़ारू शरबतों की ओर न जाइए; **चाँदी देकर मिट्टी लेना ठीक नहीं।** बल्कि उमदा चीनी का शरबत घर में बनाकर थोड़ासा

हमारा असली गुलाब या केवड़ा-जल

डाल कर सुख और लाभ दोनों उठाइए। याद रखिए, असली और नक़ली में बड़ा भेद है।

देशी गुणकारक वस्तु को छोड़ कर विदेशी हानि-कारक वस्तु से प्रेम करना ठीक नहीं।

केवड़ा-जल २॥) फ़ी बोतल; ३ औंस शीशी ।=)

गुलाब-जल १), १॥), २), ३), ४); ,, ,, ।-), ।=), ।≡), ।।-) ।।।)

पता—दी इंडियन परफ्यूमरी
१४, जार्जटौन, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृ० २२६, ईश्वरगीता, लेख में अनेक गीताओं का वर्णन। पर 'उत्तरगीता' का नहीं, उत्तरगीता पर गौडपाद का भाष्य।

" २७२, प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक अनुभव,

" ३२२ बीसलदेव का शिलालेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar